

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥

रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥

जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

[ संस्करण—१५२२० ]

कीर्ति सज्जन विज्ञापन भोजनेका कष्ट न उठावें ।  
'कल्याण' बाहरके विज्ञापन नहीं आपता ।

मूल्य } जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सन् चित्त आनन्द भूमा जय जय ॥ रामा० वा म० २॥  
१०) } जय जय चिद्वरूप हरि जय । जय अखिलात्मन् जगमय जय ॥ विदेशमें ३)  
२०) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ साधारण प्रति ।  
विदेशमें ॥



ये तु सर्वानि वसोनि मयि मन्वस्य मत्पराः  
अन्येनैव देवेन मा ध्यायन्त मये



तेषामहं सन्नुदतां कृष्णसत्कारभाषणरादि  
भवामि नचि शरणाथं मन्वावेरितचिन्तसाम्

सर्प ५  
संख्या १

हरे रामं हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

जयति शिवां-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥

रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥

जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

[ संस्करण—१५२२० ]

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें ।  
'कल्याण' बाहरके विज्ञापन नहीं छापता ।

मासिक-द्वय  
वार्षिक ४००  
बंदोर्गमें २००

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सन् चित् आनन्द भूमा जय जय ॥  
जय जय बिन्दुरूप हरि जय । जय अमिलारामन् जगमय जय ॥  
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

शामा-कर्म  
विदेशमें ३)  
साधारण प्रति ॥  
विदेशमें ॥

ॐ

ये तु सर्वाणि कर्माणि भव्यं कृत्वा स्व भवताः  
अलन्वित्रैश्च गोपैश्च मा भ्यायन्त उपायिनः

# कल्याण



B. K. Mitra

तेषामहं सप्तदशानां मृतुमन्तरमागतम्  
मयापि नचिरापायं मयापेक्षितचेतसाम्

घण्ट  
संख्या!



विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

१-श्रीरामायण-माहात्म्य ।	२	२०-श्रीरामप्रेमी दुःख भूषण महाराज ।	
२-तेरो हँसो ! ('तेरा ही')	३	(दुःखरथकुमार-पद-रत्न)	८८
३-श्रीरामायण-तप-रहस्य । (गोवर्धनपीठाधीरथर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्री ११०८ श्रीभारतीकुण्डलीभंजी महाराज)	४	२१-विदेह-भक्त राजा जनक ।	
४-रामोपविष्ट-भक्ति । (स्वामीजी श्रीभोजेबाबाजी)	१२	(श्रीकृष्णानारायणजी चौधरी)	६१
५-श्रीरामायण-रहस्य ।		२२-श्रीकविप्रज्ञाजी महंदा ।	
(श्रीकाञ्ची-प्रतिष्ठादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीश्रमन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)	२०	(पवित्रतप-श्रीमत्पूरामजी शर्मा, गुजरात)	६३
६-रामायणका नित्य पाठ करो ।		२३-श्रीहनुमान्जीके चरित्रले सिद्धा ।	
(महामना पं० श्रीमद्वनमोहनजी माळवीय)	२८	(पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)	६५
७-रामायणका सन्देश ।		२४-विभीषण । (श्रीरघुनाथप्रसादसिंहजी)	१०३
(साधु श्री टी० एल० वास्वानीजी)	२८	२५-रावणके जीवनले सिद्धा ।	
८-श्रीरामचरित्रमाला । (स० श्रीरूपकजाजी)	२६	(पं० उपेन्द्रनाथजी पाठक)	१०४
९-वाल्मीकीय रामायणकी विशेषता ।		२६-गोधराज जटायुकी अलौकिक भक्ति ।	
(विह्वर पं० श्रीवाङ्कण्यजी मिश्र)	२९	(धौहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी)	१०६
१०-श्रीमद्रामायण ।		२७-भगवान् श्रीराम ।	
(श्री १०८ स्वामी पं० रामवल्लभाशरणाजी महाराज, श्रीजानकीघाट, श्रीभयाप्याजी)	३२	(श्रीज्वाभामसाधु कानोदिया)	१०८
११-मर्त्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ।		२८-श्रीरामका प्रकृतद्वारा-प्रण । (प्रण-जन-शरण)	१२०
(राजबहादुर श्रीचिन्तामणि विभायक वैद्य प० प०, बृज-प० जी०)	३३	२९-श्रीरामावतारके विविधभाव और रहस्य ।	
१२-मर्त्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्त्यादा ।		(विह्वर पं० श्रीमनवाजीशङ्करजी)	१२२
(राजबहादुर राजा श्रीजुर्जनसिंहजी, जाबजी)	३५	३०-रामायणका रहस्य । (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)	१२८
१३-श्रीसैतनके चरित्रले काव्ये सिद्धा ।		३१-श्रीरामचन्द्रजीका अक्षमेघ यज्ञ और उसका महत्त्व । (डा०भार० रामशास्त्रीजी प० प०, पी०-यू० टी०, मैसूर)	१२९
(श्रीकवचदासजी गोयण्का)	४५	३२-रामायणमें आदर्श गृहस्थ । (महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण, काशी)	१३२
१४-रामायणमें संत ।		३३-शिव-सत्यवाच्य रामायणका अर्थ ।	
(साहित्यचार्य पं० श्रीमहाश्वामजी शास्त्री)	५०	(स्वामीजी श्रीरामानन्दजी, काशी)	१३५
१५-कनक और भरतकी भक्ति । (श्री'कनकवन्द्य')	६०	३४-कौन बचा है ? (स्वामी कृष्णाचन्द्रजी चक्रवर्ती)	१३८
१६-महाराजी कीसख्या । (कौशिककुमारनारय)	७४	३५-श्रीरामायणमें साँसाहार ।	
१७-रानी सुमित्रा ।			
(पं० श्रीश्रीमन्दाहरजी बाणिक प० प०)			
१८-श्रीरामायणकी कैलीजी			

डि० जिद्  
) १४१

१४१

३८-निपादका प्रेम । (खाचार्य श्रीधनन्तलालजी गोस्वामी, वृन्दावन) ... १४४	३६-सर्गः ... १४५
३९-दशरथके समयकी खोपोंवा । ... १४५	३७-श्रीगणेशप्रतिमाका प्राचीन विधान । (श्रीराजप्रसादजी विद्युत् एम० ए०) ... १४६
४०-श्रीरामायणा महाय । (पं० श्रीज्यामसुन्दरजी घाजिक) ... १४६	४८-रामायणमें आदर्श मानिजगत्-धर्म । (श्रीयुक्त संवत् कामिभण्डी, विद्युत्, साहित्य-विद्या) ... १४७
४१-धर्मियोग । (श्रीसियाशमभरणजी गुप्त) ... १४७	४९-तुलसीरामायणमें ... १४७
४२-रामायणमें हिन्दू-संस्कृति । (साहित्यरस पं० शयोर्यामिहजी उपाध्याय 'हरिऔध') ... १४७	५०-श्रीजीवनशङ्करजी घाजिक एम० ए०) ... १४७
४३-रामचरितमानस मधु है । (पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी) ... १४७	५१-श्रीगणेशकी शूर्पणखाके साथ व्यवहार । (पं० श्रीहृदयदत्तजी भागवान शर्मा, आचार्य, बी० ए०) ... १४८
४४-रामायणमें क्रोध-शान्तिका उपाय । (पं० श्रीरामदयालुजी मजूमदार एम० ए०, सगरादक 'उत्सव') ... १४८	५२-रामायणमें सत्याग्रह । (श्रीमन्त पादप्रसादजी जामदार, सिटायके स्वयंज, नागपुर) ... १४८
४५-रामचरितमानसके लोकप्रिय होनेका कारण । (रायबहादुर श्वभवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० साहित्यरज) ... १४८	५३-श्रीमद्रामायणा महाय । (म० श्रीबालकुराम विनायकजी, कनकभवन शयोर्या) ... १४८
४६-श्रीरामकी पुनः जन्मायात्रा और संन्यास । ('रामकिकर') ... १४८	५४-रामायणमें राजनीतिक अध्यानमें सहायता । (रायबहादुर सरदार माधवराव विनायक किये एम० ए०, एम० आर० ए० एम०, डि० प्रादम मिनिस्टर होकर छेट) ... १४८
४७-गोस्वामीजीकी निष्काम भक्ति । (पं० श्रीगणप्राथप्रसादजी मिश्र बी० ए०, बी० एल) १४८	५५-मानसमें ज्ञान और भक्ति । (पं० श्रीलक्ष्मीधरजी पाठक) ... १४८
४८-सुसाईजी और सीतावनवास । (धर्महार श्रीराजेंद्रमिहजी) ... १४८	५६-सुसलमान रामभक्त । (श्रीयमुनाप्रसादजी श्रीवांन्त) ... १४८
४९-रामायणीकथा । (पं० श्रीविद्युसेखरजी श्टाचार्य एम० ए०, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन) ... १४८	५७-रामायणका महाय । (स्वामीजी श्रीविवेकानन्दजी) ... १४८
५०-तुलसीदाज रामायण और उससे संसारका उपकार । (श्रीश्रीश्रीप्रसादजी गुप्त, 'कुमुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी०) ... १४८	५८-रामचरितमानसके निर्दोष शृङ्गारकी विशेषता । (सिद्ध श्रीकन्हैयालालजी पोदार) ... १४८
५१-बर्द्धा सबहि रामके नाते । (श्रीमुक्तेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' बी० ए०) ... १४८	५९-श्रीरामचरितमानसकी कतिपय विशेषताएँ । (पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी 'आन्त' और श्रीमुरलीधरजी दीक्षित 'आन्त') ... १४८
५२-श्रीवाल्मीकीय सुन्दरवाण्यम् । (श्रीहरिस्वरूपजी जीहरी एम० ए०) ... १४८	६०-श्रीरामायणोपदेश । (श्रीयुक्त चौधुरी रघुनन्दनप्रसादासिहजी) ... १४८
५३-श्रीसीताहरण-रहस्य (श्रीजनकमुताशरए शतलामहायजी भावन्, बी० ए०, एल-एल० बी०, सगरादक 'मानसपीयूष') ... १४८	६१-सबसे बड़ा रामनाम । (श्रीयुक्त के० वीर कृष्ण) ... १४८
५४-रामायणकालीन रूप-विधि । (पं० श्रीनरेशजी शर्मा, वेदतीर्थ) ... १४८	६२-राजनीतिज्ञ वाक्मिकी । (श्रीयुक्त 'महाराष्ट्रीय') ... १४८
५५-रामायणकालमें पराक्रम । (साहित्यभूषण चतुर्वेदी पं० श्रीहारनाथप्रसादजी शर्मा-एम० आर० ए० एम) ... १४८	६३-ज्ञानदीपका स्पष्टीकरण । (साहित्यरजन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी) ... १४८

- ७४-विवाहके समय सीतानीकी व्यवस्था ।  
(पं० श्रीराजेश्वरनाथ विद्याभूषण) ... २८२
- ७५-श्रीरामचरितमानस-पद्यपरिचय ।  
(श्रीगजलामसाद कानोदिया) ... २८७
- ७६-सूर्यवंश । (श्री वी० पृथ० वडेरे, एम० ए०  
एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एल०) ... २८८
- ७७-भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया ।  
(सिद्धता पं०श्रीलज्जारामजी शर्मा) ... २९६
- ७८-गोरवामीजी और महिला-समाज ।  
(पं०श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी) ... ३००
- ७९-भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके जन मासकी तिथियाँ ।  
(श्रीयुत वी० पृथ० वडेरे, एम० ए०,  
एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एल०) ... ३०२
- ८०-शुद्धरामायणके अष्टाक्षर रामायणका विधिपत्र ।  
(श्रीयुत वी० पृथ० वडेरे, एम० ए०,  
एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एल०) ... ३०४
- ८१-यनगमन और रावणपथकी तिथियाँ ।  
(पं० श्रीराधाकृष्णजी मिश्र) ... ३०६
- ८२-राम-नाम । (पं०श्रीवलदेवप्रसादजी मिश्र  
एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एल०) ३१२
- ८३-रामलीलामें सुधार । (श्रीयुत राजवहादुरजी  
खन्नाकर, एम० ए०, एल-एल० बी०) ... ३१४
- ८४-रावणकी लडा कहाँ थी ।  
(श्री वी० पृथ० वडेरे, एम० ए०, एल एल० बी०,  
एम० आर० ए० एल०) ... ३१७
- ८५-श्रीरामनामकी महिमा ।  
(शाधार्प श्रीमदुत्तमोदरजी गोस्वामी बी०  
दरशनतीर्थ, भागवतख) ... ३२३
- ८६-र और स की समझौतयाँ ।  
(पं० श्रीगुणरामजी जीवे 'गुणाकर') ... ३२४
- ८७-रामायण और उमकी शास्ताई ।  
(मो० भीमललितमोहन कार एम० ए०,  
बी० एल०, काश्मिरीर्थ) ... ३२६
- ८८-राम-नाम-भाषापर ।  
(रशामीजी श्री-कोनिर्मयाज्ञान्दजी पुरी, बामही) ३२२
- ८९-रात्रिपथका श्रीपथिप । (श्रीजनकमुनीशरथ  
श्रीजगन्नाथजी छावन्त बी० ए०,  
एल-एल० बी०, सग्यादक 'मानसपीपुष') ... ३३३

- ९०-मुलसीकृत रामायणकी समीक्षा ।  
(रेवरेण्ड श्रीपण्डित श्रीरम, मेलाचरन, इंगलैण्ड) ३४०
- ९१-रामायण संस्कारका सर्वोत्कृष्ट महाभाष्य है ।  
(डा० श्री पृथ० उन्क्यू० पी० मोरोनी,  
एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रेसिडेण्ट 'पुंग्लो  
इण्डियन लीग') ... ३४३
- ९२-रामायणके कुछ राजनीतिक सिद्धान्त और  
शासनसंस्थाएँ । (श्रीयुक्त वी० आर० रामचन्द्र  
दीक्षितार एम० ए०) ... ३४७
- ९३-यूरोपके सामान्य पाठकोंके लिये रामायणका  
स्वरूप । (श्रीयुत पृथ० डी० डी० टर्नबुल,  
एम० ए० वेडिन, इंगलैण्ड) ... ३५०
- ९४-महाकाव्योंमें रावण । (श्रीयुत एल० एन०  
ताडपत्रीकर एम० ए०, माधवविद्यालंकार,  
आधकारर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, एना) ... ३५३
- ९५-श्राद्धं पुरुष श्रीराम ।  
(श्री आई० जी० एल० तारापुरवाजा वी० ए०,  
पी-एच० डी०, बार-पेट-जा, प्रिंसपल  
M. E. Cama Athornam Institute) ३५३
- ९६ रामायणके शब्दसं ।  
(पं० श्रीगोविन्दराघोषीजी हुगबेकर) ... ३५४
- ९७-रामायणके धानर-शब्द । (श्री'रामायण-प्रेमी') ३५८
- ९८-रामायण और महाभारत । (डा० श्रीमन्मलदेवजी  
शास्त्री, एम० ए०, पी० फिल०) ... ३६३
- ९९-रामायणकी प्राचीनता । (एक रामायण-प्रेमी) ३६४
- १००-पावनीकीय रामायणसे ध्वनितारामकी मिडि ।  
(साहित्याचार्य श्रीरघुवर मिट्टलालजी  
शास्त्री काश्य-वेदान्त-नीर्थ एम० ए०,  
एम० डी० एल०) ... ३६६
- १०१-उदासी गायु भगवान् श्रीराम । (स्वामी  
श्रीहरिनामदायजी उदासीन, महान्, श्रीसाधुवेला) ३६८
- १०२-फारसीमें रामायण ।  
(श्रीमहेतरामदाजी मौलवी, कालिम-प्राजिल) ३६९
- १०३-मराठीमें रामायण । (पं० लक्ष्मण रामचन्द्र  
पात्राकर वी० ए०, सग्यादक 'सुमुड') ... ३७३
- १०४-बंगलामें रामायण ... ३७४
- १०५-उत्कल-रामायण ।  
(पं० श्रीडोचनप्रसादजी पादसेण) ... ३७५





- १४५-प्राज्ञान । (पं० बलदेवप्रसाद सिंह, एम० ए०,  
पल्ल-पल्ल० बी०, एम० द्वार० ए० पृथ०) ... १७१
- १४६-राम-चरित्र विद्यासार ।  
(श्रीनन्दकिशोरजी भा० 'किशोर' काव्यतीर्थ) १७६
- १४७-वैदेही-विलाप । (पं० मारुतकरजी मिश्र 'श्रीपति') १७९
- १४८-धाराण्य राम । (श्रीबाबूकृष्णजी बलदुषा) ... २१२
- १४९-राम-नाम । (श्रीमोतीलालजी श्रोमरे) ... २१७
- १५०-श्रीरामचरितमानस-महिमा ।  
(श्रीलोचनप्रसादजी पाठडेय) ... २४४
- १५१-गुलसीदाससे ।  
(श्रीमोहनबालजी महता 'विद्योगी') ... २४२
- १५२-रामायण । (श्रीरामवलदसिंह 'मधुर'  
एम० ए०, एम० द्वार० ए० पृथ०) ... २४६
- १५३-रघुवर भगो ।  
(श्रीनारायणशास्त्रीजी शास्त्री वैद्यनाथभूषण) २७६
- १५४-राज्य । (श्रीमैथिलीशरणाजी गुप्त) ... २८२
- १५५-प्रादिकवि यावत्कीर्ति ।  
(पं० श्रीरामचरितजी डपाभ्याय) ... २९६
- १५६-कैसे घाईं हार । (श्री'लतहा') ... ३०१
- १५७-गुलसी । (श्रीधनन्तविहारीजी माधुर 'धनन्त') ३०२
- १५८-भक्तभाषना । (श्री'रसिकेन्द्र' जी) ३१३
- १५९-गुलसीचन्दना । (श्री योगेन्द्र रामां) ... ३२१
- १६०-रामायणके रचयिता ।  
(कं० श्रीप्रतापनारायणजी पुरोहित कविरत्न) ३२२
- १६१-गुलसीरसुक्ति । (पं० श्रीशान्तिप्रियजी द्विवेदी) ३२६
- १६२-रामकथा 'सुरलोक-नरैनी' ।  
(पं० लक्ष्मीचन्द्रजी श्रोत्रिय) ... ३३२
- १६३-पतितोद्वारक गुलसी ।  
(पं० श्रीमदनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम') ... ३३६
- १६४-राम । (पं० गंगाविष्णुजी पाठडेय,  
विद्याभूषण 'विष्णु') ... ३४२
- १६५-रामचरितमानस-कवि गुलसी ।  
(श्रीविष्णु ब्रह्मचारीजी) ... ३४६
- १६६-भागसकी महत्ता ।  
(विद्यार्थी श्रीमदेशप्रसादजी मिश्र 'रसिकेन्द्र') ३६२
- १६७-राम । (पं० भगवतीचन्द्रजी त्रिपाठी विरारद  
एम० ए०, पल्ल-पल्ल-बी०) ... ३६४

- १६८-रामतन्मकी प्रतीषा । (श्रीमातादीनजी शुक,  
साहित्यशास्त्री, काव्यभूषण) ... ४११
- १६९-रसेने (भक्ति-गान) । (कवीन्द्र 'रसिकेन्द्रजी') ४२४
- १७०-गुलसी-काव्य । (श्रीदामोदरसहायसिंहजी  
'कविकिर्कर' पल्ल० टी०) ... ४३३
- १७१-दोनों लोकोका पन्थ । (श्रीसुब्रह्मदासजी केडिया) ४०२
- १७२-धरसाथे देत । (पं० जगन्नाथप्रसादजी द्विवेदी) ४६८
- १७३-सुम्मे अर्पण करे । (श्रीतासचन्द्रजी पण्डित  
पी० ए० 'चन्द्र') ... ४७२
- १७४-प्रार्थना (अर्चियत) ... ४७६

संग्रहित

- १७५-रामायण । (महाभार गाँधीजी) ... २८
- १७६-रामचन्द्र मंगल करे । (एच० पं० भावचन्द्रप्रसादजी  
मिश्र, सुदर्शन-मन्यादक) ... ३२
- १७७-रामायणकी विशेषता ।  
(कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर) ... १६८
- १७८-रामायणसे स्वार्थपरताका नाश ।  
(एच० श्रीचन्द्रमचन्द्र शेट्टीनाथ्याय) ... १८६
- १७९-रामायणमें ऐतिहासिक तथ्य ।  
(डा० एच० डब्ल्यू० वेल्स, सी० एम० ब्राह्म०) १९३
- १८०-रामायण सर्वोच्च महाकाव्य है । (गोरीसियो) २१०
- १८१-रामायणके उच्च भावोंका प्रादुर्भाव ।  
(श्रीकृष्ण-रामायणके अनुवादक) ... २३६
- १८२-रामायणमें रस । (बेबर) ... २६३
- १८३-रामायणसे परस्पर सहाय्यताकी दृष्टि । (मीक्स) २७०
- १८४-रामायणसंकेतनमाला पद्य । ... २८०
- १८५-संचित रामचरितमाला पद्य ।  
(श्रीमन्नरेवर-योगीन्द्रजी) ... २८१
- १८६-रामायणकी ओर अर्पिक आकर्षण ।  
(नेलसन-विरवकीय रचयिता) ... २८४
- १८७-रामायण नैसर्गिक काव्य है ।  
(श्रीमन-इयिडन एपिरसके रचयिता) ... २८६
- १८८-रामायणमें सगुण ईश्वर ।  
(डा० तर वार्न नियर्सन) ... ३१६
- १८९-धरम काव्य ।  
(रमार्गीय जटिस टी० बी० शेषगिरि अय्यर) ३२८
- १९०-राम अज्ञ रहे । (महात्मा गाँधीजी) ... ४१०
- १९१-रामचरितमानस । ( " " " " ) ... ४२६
- १९२-श्रीराम-नाम । ( " " " " ) ... ४३७

गो० तुलसीदासजीके उपदेश-स्य

१४३-जीवनका फल ।	...	१
१४४-रामके हृदयमें कौन समने हैं ?	...	१०
१४५-शत्रुनी पण्डित आदि कौन हैं ?	...	१३
१४६-रामके पार निवासस्थान ।	...	१४
१४७-दुःखकी धाममें कौन नहीं अलगा ?	...	१४
१४८-मन कौन है ?	...	१६
१४९-रघुवीरके गधे सेयक कौन हैं ?	...	२०

२०-सौमना से तो रामको ही प्यो ।	...	२३
२१-सामान्य तपस ।	...	२३
(स-सौमनास्यतपस्यस्यवर्षस्य)	...	२३
२२-समने तपस ।	...	२३
२३-सुखे परतपस श्रीराम सिके जीरी ।	...	२३
२४-श्रीरामसितमनसकी तपस अति ।	...	२४
२५-श्रीरामका कष्टकी तपस ।	...	२५
२६-कष्टतपस श्रीराम-तपस ।	...	२५

चित्र-सूची

बहुरंगे

शब्दका मुगट्ट

१-उद्धारकर्ता भगवान् ।	...	१
२-श्रीरामब्रह्मादत्त । (सुन्दरी)	...	३
३-परशुराम-राम ।	...	३
४-पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीताकी गुम मन्त्रणा ।	...	४
(सुन्दरी)	...	५
५-श्रीरामके घरखोंमें भरत	...	५
६-कैकेयीकी समा-याचना ।	...	५
७-श्रीराम-प्रविज्ञा ।	...	५
८-श्रीसीता-नाम ।	...	५
९-शिव-परिचय ।	...	५
१०-राम-शक्ती ।	...	५
११-श्रीसीता-धनसूया ।	...	५
१२-श्रीराम-बाहुका पूजन । (सुन्दरी)	...	५
१३-सदाप्रमत्त श्रीराम ।	...	५
१४-भगवान् श्रीराम और काकभुशुण्डि ।	...	५
१५-सुखे पहाड़पर श्रीरामकी जाँकी ।	...	५
१६-श्रीसीताजीके गहने ।	...	५
१७-कौमल्या-भरत ।	...	५
१८-सीताकी अग्नि-परीक्षा ।	...	५
१९-मानस-सरोवर ।	...	५

मादं

२०-श्रीरामगीता ।	...	५
२१-मोठे राम-गियाकी जोरी ।	...	५
२२-गीता बनवाय ।	...	५
२३-भगवा रामाजी प्रेममग्न नाच रहे हैं ।	...	५

२४-श्रीरामसिद्धि रामभिरा ।	...	२५
२५-श्रीरामराम । (प्राचीन गिर)	...	२६
२६-रामायण-गान-शिरा ।	...	२६
२७-सोमार्द्र तुलसीदासजी ।	...	२७
२८-रामायण-सुम ।	...	२७
२९-शत्रुप हय ।	...	२७
३०-श्रीराम और देव ।	...	२७
३१-राम-विशय ।	...	२७
३२-शब्दज्योतिष ।	...	२७
३३-लंका जजानेके बाद हनुमान्जी सीताजीकी चरण-चन्दना पर रहे हैं ।	...	२७
३४-हनुमान्जीका द्रोणगिरि लाना ।	...	२७
३५-गङ्गा-गर्भ-हरण ।	...	२७
३६-हार मोड़ना और हृदय चीरना ।	...	२७
३७-श्रीरामका ज्ञानोपदेश ।	...	२७
३८-पार्थके रथपर हनुमान्जी ।	...	२७
३९-हनुमान्पर इन्द्रका बज्रपात ।	...	२७
४०-सीताका पाताल-प्रवेश ।	...	२७

माननीय काशीनरेशकी रामायणके

४१-पार्वतीकी तपस्या	...	२८
४२-शिव-विवाह	...	२८
४३-बभट-मुनि और राजा प्रतापभानु	...	२८
४४-महाराजा जनकका प्रथम रामदर्शन	...	२८
४५-जयमाजा	...	२८
४६-जनकपुरमें दशरथजी	...	२८
४७-जनकपुरसे विदा	...	२८

पृष्ठसंख्या

पृष्ठसंख्या

४८-शिव-धनुष-संग	२६
४९-महाराजा दशरथजीका दरवार	७४
५०-गुरु वशिष्ठजीका धाममन	७४
५१-श्रीराम और केवट	७५
५२-दशरथ-भरण	७५
५३-भरद्वाज भाषणमें श्रीराम	६४
५४-लक्ष्मणका क्रोध	६४
५५-चित्रहूटमें भरत	६५
५६-चित्रहूटमें महाराजा जनक	६५
५७-विराध-वध	१०२
५८-जयन्तकी छुटता	१०२
५९-कपट-शृंग	१०३
६०-सीता-हरण	१०३
६१-आप्यमूकपर श्रीराम-लक्ष्मण	१०३
६२-किष्किन्ध्यामें लक्ष्मण	१३२
६३-अशोकपाटिकामें रावण	१३३
६४-सैगुण्य रामेश्वर	१३३
६५-लंकापर घड़ाई	१४०
६६-रावणकी मन्दोदरीकी सीख	१४०
६७-लक्ष्मण-मुखां	१४१
६८-कुम्भकर्ण-सुद्ध	१४१
६९-भरत-हनुमान्-मिलाप	१६२
७०-श्रीराम पुनः अयोध्यामें	१६२

अयोध्यापुरीके

७१-अयोध्या-नगर-हरण (१)	१८६
७२- " " " " (२)	१८६
७३-मन्दिर कनक-भवन (बाहरी हरण)	१८६
७४- " " " " (भीतरी हरण)	१८६
७५-मन्दिर श्रीनानेश्वरनाथ	१८७
७६-मन्दिर शीरामहल	१८७
७७-हनुमानगरी (१)	१८७
७८- " " " " (२)	१८७
७९-जन्मस्थान, कसौटीका खम्भा	२३६
८०-मन्दिर जन्मभूमि	२३६
८१-जन्मस्थान	२३६
८२-लक्ष्मणजीका मन्दिर लक्ष्मणघाट (बाहरी)	२३७

८३-लक्ष्मणजीके मन्दिरकी झाँकी (भीतरमें)	२३७
८४-लक्ष्मण-किला ( सामनेका हरण )	२३७
८५- " " " ( पिछला हरण )	२३७
८६-सूरज-कुण्ड	२३६
८७- " " जनानाघाट	२३६
८८-वशिष्ठकुण्ड	२५६
८९-दत्तधन कुण्ड	२५६
९०-गुलसीचौरा	२५७
९१-गोष्पामी गुजलीदासजीकी कुटी	२५७
९२-मणि-पर्वत	२५७
९३-मच्छ-भजेन्द्र	२५७
९४-झाँकी सरगुरु-सदन	२६६
९५-स्वर्गद्वारघाट	२६६
९६-मन्दिर राजद्वार	२६६
९७-दुदुवा राजमहल पीरो मन्दिर श्रीदर्शनेश्वरनाथ	२६६
९८-मन्दिर दशरथ-वध-भवन	२६७
९९-घर्महरि	२६७
१००-प्रेताके ठोकुर	२६७
१०१-गंजशहीदाँ	२६७

जनकपुरधामके

१०२-श्रीजानकीजीका नौलला मन्दिर	३२८
१०३-श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका सिंहासन	३२८
१०४-श्रीजानकी-मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके मन्दिरका झूँई हरण	३२८
१०५-धनुषप्रसे श्रीरामजीके मन्दिरका सामनेका पूर्वी हरण	३२६
१०६-श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी हरण	३२६
१०७-श्रीरामजीके मन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ	३२६
१०८-श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर	३२६

शृंगेश्वरपुरके

१०९-शाल्तादेवीका मन्दिर	३४१
११०-श्रीगिष्कटिकी समाधि	३४१
१११-श्रीरामके सोनेका स्थान रामचौरा	३४१
११२-श्रीगौरीशंकर पाठशाला	३४१

प्रमाण

नाशिक पञ्चवटीके

- चित्रकूटके**
- ११३-महागजेन्द्र-मन्दिर (राजवमवाग)।
  - ११४-मन्दाकिनीघाट ।
  - ११५-राजवमवाग (संगम) ।
  - ११६-बाईकुटी । (१)
  - ११७- " " (२)
  - ११८-परिक्रममें तुलसीवासीका मन्दिर ।
  - ११९-आनकीकुच ।
  - १२०-तुलसीवासीका मन्दिर रामघाटके पास ।
  - १२१-कटिकमिजा ।
  - १२२-आनकीकुच (मन्दाकिनीका दरवा)
  - १२३-कटिकमिजाके सामनेका दरवा ।
  - १२४-आनकानाथ (पहाड) ।
  - १२५-बाबा-पिडा (परिक्रममें) ।
  - १२६-राजसभाके ऊपर बना हुआ मन्दिर ।
  - १२७-राम-शय्या ।
  - १२८-अनल-मूल ।
  - १२९-अनल-मन्दिर ।
  - १३०-सीताकी हलौड़ी ।
  - १३१-बनुमानवाग । (१)
  - १३२- " " (२)
  - १३३-बाबावाजी ।
  - १३४-आनकानाथगिरि । (३)

प्रयागके

१३५-अनल-बाबा ।

इसके अतिरिक्त दो हेमिग-चित्र, ३: मानचित्र, और दो लिपिचित्र हैं ।

- १३६-नासि हनोदावती-दरवा (१) ।
- १३७- " " (२) ।
- १३८-नादका नाचा ।
- १३९-पञ्चवटीमें श्रीराममन्दिर ।
- १४०-गोदावरीपर गारोगंकरका मन्दिर ।
- १४१-धीरमवेश्वरमन्दिरका बाहरी दरवा ।
- १४२-गोदावरीका मूल ।
- १४३-रामायण और गंगा मन्दिर ।
- १४४-रामेश्वरके
- १४५-रामेश्वर मन्दिरका स्तंभ ।
- १४६-रामेश्वर मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार ।
- १४७-रामेश्वर मन्दिरका एक पार्श्व प्रवेशद्वार ।
- १४८-रामेश्वर मन्दिरकी प्रशिक्षणा ।
- १४९-राम-मंशोरा ।
- १५०-जयमल-सीध ।
- १५१-प्रजापति काशी ।
- १५२-पं० गंगाराम जोशीका घर (बाहरी दरवा) ।
- १५३-विजयपत्रिका जितनेका स्थान 'बाहरी भाग' ।
- १५४-तुलसीघाट
- १५५-धीरनुमावतीका मन्दिर ।
- १५६-गोमाहतीका चित्र ।
- १५७-संकरमोचनका भीतरी दरवा ।
- १५८-संकरमोचनका बाहरी दरवा ।







ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णोत्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



मायातीतं माधवमायं जगदादिं, मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।  
योगिर्घ्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥

वर्ष ५  
खण्ड १

श्रावण १९८७ जुलाई १९३०

संख्या १  
पूर्णा संख्या ४९

## जीवनका फल

सिय-राम-तरूप अगाध अनूप विलोचन-मीननको जल है ।  
धृति रामकथा, मुख रामको नाम, हिचे पुनि रामहिको भल है ॥  
मनि रामहिं सों, गति रामहिं सों, रनि रामसों. रामहिको बल है ।  
सबकी न कहै. तुलसीके मते इतनो जग-जीवनको फल है ॥





## तेरी हँसी



मेरे प्राणाराम राम ! तू बड़ा ही लीलामय है, खूब खेल खेलता है । मन माना नाच भी नचाता है और अलग बँदा टुक-टुक देखता हुआ हँसा भी करता है । यह सृष्टि तेरे हास्यका ही तो विलास है, परन्तु तेरा हँसना नित नये-नये रंग खाता है, तेरी एक हँसीमें सृष्टिका उदय होता है, दूसरीमें उसकी स्थिति होती है और तीसरीमें वह तेरे अन्दर पुनः विलीन हो जाती है । पर तू तीनों ही अवस्थाओंमें हँसता है, इतनी उधेड़-धुन हो जाती है, परन्तु तेरी हँसीमें कहीं विषमता नहीं आती । जोग तेरी हँसीके नाचा धर्य करते हैं, उनका वैसा करना अनुचित भी नहीं है, क्योंकि लोगोंको भिन्न भिन्न रूप भासते भी हैं । यही तो तेरी हँसीकी विलक्षणता है, इसीमें तो तेरी मीनका अलव नजारा है । किसीका जन्म होता है, तू हँसता है; वह खाता-खेलता और रंग रागमें मस्त रहता है, तू हँसता है; फिर हाथ फैलाकर वह सदाके लिये सो जाता है—अन्दनकी कण्ठ-ध्वनिसे दिशाएँ रें उड़ती हैं, तू यहाँ भी हँसता ही है । तेरी हास्यलीला अनादि और अनन्त है !

जोग तेरे इस हास्यकी याद लेगा चाहते हैं, अपने परिमित और विलास-विधम-मस्त बुद्धिबलसे तेरी हँसीका रहस्य जानना चाहते हैं, यह बुद्धिका सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते-होते सर्वथा विलुप्त हो जाना नहीं तो क्या है ? जलका जरा सा नगस्य कण सत्र शोरसे परिपूर्ण पारावाहीन जल-निधिका अन्त जानना चाहता है, यह असम्भव भावना नहीं तो क्या है ? जबतक यह अलग सदा देखेगा तबतक तो पता लगेगा कैसे ? और कहीं पता लगानेकी लगनमें अन्दर धला गया तब तो उसकी अलग सत्ता ही नष्ट हो जायगी फिर पता लगायेगा ही कौन ? जो ईदने गया था, वही सो गया ! अतः हे महामहिम मुनि-मन मोहन मायिक-मुकुट-मण्डिर राम ! मेरी समझसे तो तेरे इस हास्यके मर्म जाननेकी सामर्थ्य जगत्के किसी भी प्राणीमें नहीं है । हाँ, कोई तेरा खास प्रेमी तेरी कृपासे रहस्य समझ पाता है, परन्तु उसका

समझना न समझना हमारे लिये एक-सा है, क्योंकि वह फिर तुझसे अलग रहता ही नहीं—

सो जानै जेहि देहु अनैई । जानत तुमहि तुमहि होई जाई ॥

जो तेरी मधुर सुसुकानवर मोहित होकर तेरी ओर दौड़ता है, और तेरे समीप पहुँच जाता है, उसे तो तू अपनी गोदसे कभी नीचे उतारता नहीं, और जो विषय-विमोहित हैं उनको तेरे रहस्यका पता नहीं !

आश्चर्य है कि इसपर भी हम तेरी लीलाओंके, रहस्यो-द्घाटनका दम भरते हैं और जो बात हमारी स्थूल बुद्धिमें नहीं जँचती, उसे तेरे लिये भी असम्भव ही मान बैठते हैं ! हमारी इस बुद्धिपर—हमारे इस बाल-वापस्यपर तुम्हें क्या तो छाती ही होगी दयालय !

महर्षि वासुदेविक, महर्षि वेदव्यास और गोसाईं तुलसीदासजी प्रभृति धर्म्य हैं, जिनकी बाणीसे तूने दयाकर अपनी कुछ लीलाएँ जगत्को सुनायीं । तेरी इन लीलाओंके दिव्यालोकसे अस्तस्य प्राणियोंका समोमय मार्ग प्रकाशित हो उठा, जिसके सहारे वे अनायास ही अपने गन्तव्य स्थान-पर पहुँचकर सदाके लिये सुखी हो गये ! परन्तु तेरी ये लीलाएँ हैं बड़ी ही विचित्र, अद्भुत और मोहिनी, बड़े-बड़े तार्किक विद्वानोंकी बुद्धि इनकी मोहकतामें पड़कर धकरा जाती हैं । अथर्व ही जो जोग अद्वा-भक्तिपूर्वक बुद्धिका व्यर्थाभिमान छोड़कर तेरी शरण्य हो जाते हैं, उनके विवेक-चक्षुओंके सामनेसे तेरी दुस्तर मायाका आवरण हट जाता है !

प्रभो ! आज 'कल्याण'के पाँचवें वर्षके प्रारम्भपर तूने जो अपनी उन लीलाओंका कुछ गुणगान करवाया है, तेरी सब पर सदा रहनेवाली अथार कृपाके एक कल्याण अनुभव ही इसमें कारण है । नाय ! ऐसा कर दे, जिससे प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक समय, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घेठामें तेरी नित्य अनन्त कृपाकी पूर्ण अलखट माधुरी मूलतःके दर्शन होते रहें और फिर वह पूर्ण कृपाविप्रद कभी धाँससे ओझड़ न हो । सुना है, तेरी हँसीका रहस्य सभी जाना जा सकता है !

# श्रीरामायण-तत्त्व-रहस्य

( गोवर्धनपीठाधीश्वर पूज्यपार जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य रामाजी जी ११०८ श्रीमारातीरुगर्नाथजी महाराज )

शंकराकुठारागिनवीक्षणाम्नां शंकारकटवप्रदपूजनाभ्याम् ।

लंकाविपारातिरतिप्रदाभ्यां नमोनमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥

पवनजरविस्तृतपद्मप्रभवमुखविनुतांभिम् ।

त्रिभुवनजनततिपालं दिनमणिकुलमणिमीडे ॥



खिल संसारके बेचल समस्त मनुष्योंके ही नहीं, सभी जीवोंके मनमें स्वाभाविक यही एक इच्छा सर्वदा हुद्या करती है किहमें किसी भी समय, किसी भी स्थानमें, किसी भी अवस्थामें, किसी भी कारणसे, किसी प्रकारका भी तनिक-सा भी दुःख न हो । सब समय, सभी स्थानोंमें और सभी अवस्थाओंमें केवल सब प्रकारसे सुख ही हो । इसी स्वाभाविक इच्छासे प्रेरित होकर समस्त जीव अपनी अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, दैहिक, सामयिक आदि योग्यता तथा अनुकूलताके अनुसार अनेक प्रकारके प्रयत्नोंमें प्रवृत्त रहते हैं ।

सुखकी इच्छाके साथ ही दुःख दूर करनेकी इच्छा अर्थात् केवल सुख सुखकी चाह होना स्वाभाविक ही है । कारण, मनुष्यादि सभी जीवोंके मनका तो यही स्वभाव है कि जोदेने भी दुःखके प्राप्त होनेपर वह अपने अनुभवमें आये हुए और आते रहनेवाले अनेकानेक और बड़े-बड़े सुखोंका लेशमात्र भी अनुभव न कर, उसी एक छोटे दुःखका अनुभव करता है और दुखी होकर एकमात्र उसी दुःख-निवृत्तिकी चिन्तामें पड़ जाता है ।

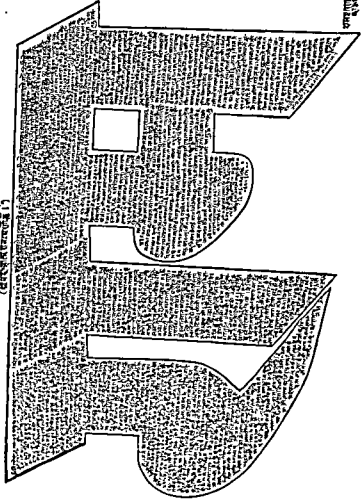
मनका यह अनुभव और वृत्तियुक्तियुक्त भी है । कारण, दुःख इतनी घुटी वस्तु है कि जैसे एक जोटेमें भरकर रखते हुए दूध या जलमें एक दो चूंद विपटाज देनेपर वह सबका सब दूध या जल विर ही बन जाता है, उसमें बहुत-से दूध या जलका जरा-सा भी प्रभाव नहीं रहना, वैसे ही अनेक तथा अनेक प्रकारके बड़े-बड़े सुखोंमें जरा थोड़ा-सा भी दुःख मिश्र जाता है तो वे सारे सुख दुःखमय ही बन जाते हैं, फिर उन बड़े बड़े सुखोंका तनिक-सा भी प्रभाव नहीं रह जाता । इसीजैसे यह अनुभवकी बात हुआ करती है कि जवनक वह दुःख दूर नहीं होता तवनक मनमें शान्ति नहीं रह सकती और भगवद्गीतामें ध्यानद्वन्द्व

परमात्मा भगवान् श्रीहृष्यघ्नरके श्रीमुखसे निकले हुए 'मशान्तस्य कुतः सुखम्' इस वाक्यानुसार जहाँ अशान्ति है, वहाँ सुख कभी नहीं हो सकता ।

इस विषयपर विचार करना चाहिये कि हमलोग मनुष्य-योनिमें आकर अपनी मनुष्यजातिको पशु, पक्षी आदि सबसे श्रेष्ठ क्यों मानते हैं ? जबसभी जीव मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि और कीट-समानरूपसे ही दुःख दूर करना और सुख प्राप्त करना चाहते रहते हैं, अर्थात् जब सबका ध्येय तथा लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है, तब उन सब जातियोंकी अनेक मनुष्यजाति किस अंशमें श्रेष्ठ है, जिसके आधारपर मनुष्य अपनेको सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । यह केवल अज्ञानी मनुष्योंका ही अभिमानजनित कथन नहीं है कि मनुष्ययोनि सर्वश्रेष्ठ है, जगद्गुरु श्रीआदि शंकराचार्य भगवान्ने भी अपने 'विवेकचूडामणि' ग्रन्थमें मग्नल श्लोकके पश्चात् प्रथम श्लोकमें ही 'जन्तूनां नरजन्म दुर्लभं' इत्यादिसे सर्वप्रथम यही विषय बतलाया है और श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें तो मनुष्ययोनिको देवयोनिकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ बतलाया गया है । पर हमलोगोंको इतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर कि हमारी मनुष्यजाति सर्वश्रेष्ठ है, यह विचार भी करना चाहिये कि वह क्यों श्रेष्ठ है और हमें उस श्रेष्ठताको किसप्रकारसे सफल करना होगा ?

इस विचारमें उतारनेपर यह तो स्पष्ट है कि शारीरिक बल आदि बाह्य अंशोंमें मनुष्य अपनी श्रेष्ठताका दावा नहीं कर सकता, क्योंकि इन अंशोंमें तो उससे श्रेष्ठ बहुत-सी योनियाँ पशु पक्षी आदिमें भी पायी जाती हैं । कदाचित् मनुष्य यह समझ कि हम सुख-दुःखके सम्बन्धमें, अन्य जीवोंके सदृश विचार करते हुए भी बन्धनकी निवृत्ति या मोक्ष चाहनेमें विशेषता रखते हैं ( जैसे आजकल बहुतसे लोग यह दावा करते हैं कि परराष्ट्रकी निवृत्ति या स्वाश्रयका खयाल करना आश्राप्योंकी विशेषता है इत्यादि ) तो यह भी बर्बा भूल ही है, क्योंकि सुगुण तो जन्ममात्रकी

श्री  
राम-गीता ।  
(सर्वत्रय-संग्रह-प्रथमः ।)



श्रीगुरुभ्यो नमः ।



स्वाभाविक हृष्ट्या है। मनुष्य जब एक छोटेसे चूड़ेको पकड़ना चाहता है तब वह भी उसके हाथसे बचकर भागने लगता है, यह सुसुप्ताका ही तो उदाहरण है जो केवल पाश्चात्त्योंका नहीं, केवल मनुष्योंका भी नहीं, प्रखृत जीवमात्रका स्वाभाविक जन्मसिद्ध लक्षण है।

अतः इस विषयपर गहरा विचार करनेपर यही निष्कर्ष निकलेगा कि मनुष्यमें दो बातें विरोध हैं। जिनमें एक है उसकी सुख-दुःख सम्बन्धी दृष्टि, जिससे वह पशु-पक्षी आदिकी अपेक्षा अधिकतर दूरदृष्टिसे सब विचार करता है, केवल तात्कालिक दृष्टिसे ही नहीं! कठोपनिषद्में भगवती श्रुतिने जो 'धेय-प्रेय' का विभाग किया है और गीतामें भगवान् भीकृष्णने—

'यत्तदत्र विभिन परिणामेऽमृतोपमम्'

'यत्तदत्रेऽमृतोपमम्' 'परिणामे विभिन'

—सुलका विभाग किया है, इसीसे मनुष्यजाति श्रेष्ठ है। अतएव यह भी कहना होगा कि जो मनुष्य जितने अंशमें दूरदृष्टिसे विचार करनेवाला है, उतने ही अंशमें उसका मनुष्यत्व सफल हो रहा है और जो मनुष्य जितने अंशमें दूरदृष्टिको छोड़कर तात्कालिक दृष्टिमें फँसकर काम करता है, वह उतने ही अंशमें अपने मनुष्यत्वको ध्वंस कर, इस समय पशुकी श्रेणीमें योग्यतासे प्रविष्ट होकर, अगले जन्ममें शरीरसे भी प्रविष्ट होनेकी तैयारी कर रहा है। कारण, कर्मसा यही नियम है कि मनुष्य इस जन्ममें अपनी धित-वृत्ति, गुण, कर्म आदिने जिस योभिके लक्षणोंमें प्रविष्ट होता है, उसका अगला जन्म अवश्य उसी योनिमें होता है। अतएव सुख-दुःखका निश्चय दूरदृष्टिसे हो, केवल तात्कालिक दृष्टिसे नहीं। यह मनुष्य-योनिमें विरोधताका पहला अंश है।

मनुष्य-योनिमें दूसरा विरोधताका अंश यह है कि उसको एक ऐसा अर्च्य साधन प्राप्त है जो अन्व किसी भी योनिमें नहीं मिलता। और सब योनियोंमें (जिनमें देव-योनिमें ही भी गणना है) जो शरीररूप साधन मिलता है, वह—

'इदं शरीरं कौन्तेय धैर्यामिस्तमिषीयते'

—इत भगवद्-वचनोंके अनुसार खेद तो अवश्य है, परन्तु है केवल भोगक्षेत्र, जिसमें पिछले जन्मोंमें किये हुए पुण्य-पारके फलरूपी सुख-दुःख भोगे जा सकते हैं। इसके सिवा अन्व कोई काम न तो होता है और न हो ही सकता

है। परन्तु मनुष्योंके शरीर भोगक्षेत्र होनेके साथ ही कर्मक्षेत्र भी है, जिनसे मनुष्य अपने भावी कल्याणके लिये आवश्यक कर्म, भक्ति और ज्ञान-मार्गोंके द्वारा लाभ उठाकर स्वयं ही अपने भविष्यके विधाता बन सकते हैं। इसीलिये श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें मनुष्य-जातिको देव-योनिसे भी बढ़कर श्रेष्ठ तथा धन्य बतलाया है। इस विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया कि मनुष्य-शरीर कर्मक्षेत्र भी है।

यह तो सबपर विदिन ही है कि मृत्यु कब आनेवाली है इस बातका कोई निश्चय नहीं, क्योंकि वह Notice (पूर्वसूचना) देनेके लिये किसी नियमसे यावद नहीं है; फिर यह भी पता नहीं चलता कि हमें आने वाले जन्ममें कर्मक्षेत्ररूपी मनुष्य शरीर मिलनेवाला है या केवल भोगक्षेत्ररूपी पशु शरीर। साथ ही यह भी अविदित है कि पशु-शरीरके बाद फिर कर्मक्षेत्ररूपी मनुष्य शरीर कब मिलेगा। इस दृशमें वह स्वयमेव ही स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य-योनिमें चाये हुए हमलोगोंको अपना मनुष्य-जन्म साफ़ करते हुए, अपने परम लक्ष्यमें पहुँचनेके लिये, अभीसे एकाग्रताके साथ लक्ष्यकी ओर अनन्य भावसे दृष्टि लगाकर, साधनोंमें संलग्न हो, जहाँतक हो सके, इसी जन्ममें अपने यथार्थ उद्देश्यको पूरा कर लेना चाहिये, नहीं तो कोई नहीं कह सकता कि इस कामके लिये हमें फिर कब अवसर मिलेगा। अतएव हम लोगोंको अत्यन्त जागरूकता तथा अग्रमत्तताके साथ विचारपूर्वक, यह पता लगाकर कि 'हमारा लक्ष्य क्या है और उसकी प्राप्तिके लिये कौन-कौन-से साधन हैं', उन साधनोंमें प्रवृत्त हो, अपने लक्ष्यतक पहुँच जाना चाहिये।

लक्ष्य और साधन, ये दोनों ही भगवती उपनिषद्-रुचिणी श्रुतिके इस मन्त्रमे स्पष्ट हैं—

श्रुतौ धनुःशतं क्षात्मा ब्रह्म तद्गुरुमनुच्यते ।

अग्रमत्तेन वेद्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अर्थात्, आत्म (जीवात्म) रूपी वाणको प्रणवरूपी धनुषपर बंधाकर, मद्म (परमात्म) रूपी लक्ष्यमें पहुँचाना है। अग्रमत्त होकर लक्ष्य करना चाहिये, जिससे कि जैसे वाण लक्ष्यसे तनिक भी हटकर-उधर न जाकर, लक्ष्यके भीतर प्रविष्ट हो उसके साथ एक हो जाता है, वैसे ही जीवात्म-रूपी वाण परमात्मरूपी लक्ष्यसे तनिक भी हटकर-उधर न रहकर, उसीमें घुसकर, उसके साथ एक हो जाय।

हरी परमावरणक कार्यमें हम लोगोंको सहायता देनेके लिये, गर्वश महापियोंने अपनी विशाल तपस्याके पत्रसे धनुषभ लिये हुए चढ़े-बढ़े तारोंको हमारे सामने, अधिकार-भेदके अनुसार, चनेक तथा मिश्र-भिन्न प्रकारके शास्त्र-ग्रन्थोंके रूपमें रक्षक, महात् उपकार तथा अनुग्रह किया है। इन ग्रन्थोंमें धीमन्नगव्रीता, भीमद्रागवत, भीमद्रामायण आदि चनेक ग्रन्थस्र जगद्विख्यात हैं जो शायुषम ज्ञानीसे लेकर अति पामर और अधम, भ्रम अनुभव-तक सब प्रकारके अधिकारियोंके अपनी-अपनी योग्यता और अधिकारके अनुसार, कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों मार्गोंपर कुल-न-कुल प्रकार काजकर, इहलोक तथा परलोकमें परम कार्याणकी प्राप्तिमें अत्यन्त सहायता देने-वाले हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही भीमन्नगव्रीतामें भगवान्ने उपदेश दिया है। गीताके प्रथमाध्यायमें अर्जुनरूपी नरके विषादयुक्त रदनसे तथा उस अध्यायके 'अर्जुन-विषाद-योग' नामसे यह स्पष्ट है कि सदृशों प्रकारके कर्मज्योंमें पड़े हुए, आगे पीछेकी परस्पर विरुद्ध बातोंका समन्वय न कर सकनेके कारण दुखी होकर रोते रहना ही सचका लक्षण है। भगवान् भीकृष्णरूपी नारायणके समस्त उपदेशसे तथा 'भगवद्गीता' शब्दसे भी यह स्पष्ट है कि सुख-दुःख, लाभालाभ तथा जय-पराजयकी चिन्ता छोड़कर निष्काम-भावसे अपने कर्त्तव्यको केवल कर्त्तव्य-बुद्धिसे ही करते हुए, नाचते-खेलते-गाते रहना, अर्थात् सभी अवस्था और क्रियाओंमें सच्ची शान्ति और आनन्दमें निमग्न रहना ही नारायणका लक्षण है, अतएव यदि किसी मनुष्यको सब दुःखों तथा व्यन्धनोंसे मुक्त होकर, अपने लक्ष्यरूपी नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सबिदानन्दघनस्वरूपी परमात्मरूप परमार्थस्वरूपमें पहुँचना हो, अर्थात् यदि किसी नरको नारायण बनना हो, तो उसे भी, अर्जुनरूपी नरकी तरह भीकृष्णरूपी नारायणको ही अपने रथका सारथि बनाकर, उससे यह कहना चाहिये कि—

'गच्छेयः स्यात्किञ्चित् ब्रूहि तन्मे  
शिष्यस्तेऽहं शापि मां त्वां प्रपन्नम् ॥'

'मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरण हूँ, मेरे लिये जो कुछ निश्चित श्रेय हो वही बतलाइये।' तदनन्तर नारायणसे न केवल अपने लिये बल्कि भगवद्भक्त्युत्साहगत भावमात्रके लिये यह अस्मिताय अमय दान प्राप्त करना योग्य है, कि—

'सर्ववर्माणपरिहाय मानस शरणं व्रत ।  
अहं त्वा सर्वपापिणो मोक्षप्रियात्मि मा मुच ॥'  
'कामेन । प्रतिजानीं दिन मे म कः प्रगदपि ।'  
'अन्याधिस्तयन्तो मा ये जनाः पशुगाम्भि ।  
तेषां निजामिमुक्तानां योगेणं बहामादम् ॥'

'साम्प्रकर्मोंके आश्रयको त्याग केज एक सबिदानन्द्यन वासुदेवकी शरण हो जा । 'मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, गू शोक न कर ।' 'हे कीर्त्तये ! यह निश्चयकर कि मेरे भक्तका नारा नहीं होता ।' 'जो अनन्य सक्त मुझे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन निष्प मुझमें खरे हुए पुरुषोंका योगसेम मैं स्वयं यदन करता हूँ ।'

इसप्रकार उरतीके उपदेशानुसार श्रवण करके अन्तमें उसके—

कचिदंतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्र्येण चेतसा ।

कचिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्त घनंजय ॥

—इस प्रश्नको सुनकर हृद निश्चयके साथ उगको यह जवाब देते हुए कि—

नमो मोहः स्मृतिरेन्था त्वप्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

'हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी, मैं सन्देहरहित होकर स्थित हूँ, श्रव आपकी ही आज्ञाका पालन करूँगा।' अज्ञा-भक्ति-प्रेमके बलसे निर्भय तथा निश्चिन्त होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी जगाम छोड़कर, उसीकी आज्ञानुसार अपने वर्णाश्रमादि अधिकारसिद्ध कर्त्तव्यकर्मको पूरा करके, इस नियमके अनुसार कि—

मध्यासकेमनाः पार्थ योगं युजन्मदाश्रयः ।

असंशयं सनप्र मां यथा शास्यसि तच्छृणु ॥

भक्तिसेम कर्मयोगसे अन्तःवरणकी शुद्धिके द्वारा संशय, विकल्प, विपरीतभावनारूपी दोषप्रवरहित और अक्षय्य विचारको धारकर मोक्षकी प्राप्ति करनेमें दिव्य श्रास की जा सकती है, क्योंकि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीविजयो भूतिमुखा नीतिर्मतिमम ॥

—जहाँ योगेश्वर भीकृष्णरूपी नारायणको अपने सारथि-रूपसे आगे करके धनुषारी पार्थरूपी नर पीछे रहकर युद्ध

करता हो, बड़ी लक्ष्मी, वय, विभूति और नीति धरवय ही रहेंगी। यही गीतोक्त उपदेशका सारांश है।

इसी प्रकारसे नर होकर नारायण बननेके लिये, ध्यान रोना छोड़कर गाते रहनेके लिये, नारायणको ही जाने शरीरदि रूपी रथका सारथि बनाकर, धृदा, भक्ति और प्रेमके बलसे निर्भय तथा निश्चिन्त होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी लगाम सौंपकर, उसीकी आज्ञानुसार अपने वशोधमादि अधिकारसिद्ध कर्तव्योंको निःस्पृहता और केवल कर्तव्य बुद्धिसे पूरा करके, भक्तियुक्त कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा ज्ञान और मोक्ष प्राप्त करनेमें विशयी होना होगा।

धीमन्नागवतमें धीमन्वान्ने श्रीकृष्णचन्द्रादि रूपसे इसी तत्त्वको अपने इतिहास तथा जीवनचरित्रसे दिखाया है कि नारायणका यही लक्षण है जो ऊपर बताया गया है।

धीमन्नामयणमें धीमन्वान्ने श्रीरामचन्द्ररूपसे पधारक प्रत्येक व्यवहारमें अपनी आदर्शमूल जीवन-प्रणालीसे मनुष्यजातिको यह दिखलाया है कि मनुष्यमात्रको किस-प्रकार संसारके अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करते हुए धर्मका पालन करना है। कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों कायदोंकी दृष्टिसे भी भगवान् श्रीरामचन्द्रका इतिहास हमकोरोंके लिये अत्यन्त आवश्यक और उपयुक्त शिक्षा देता है।

अनेक प्रकारके सम्बन्धियोंके साथ व्यवहारमें यथोचित सदाचरणकी दृष्टिसे देखें तो भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपने गुरुजन, माता, पिता, भ्रातृगण, सहायक, सेवक, सर्वसाधारण प्रजा आदि सभी सम्बन्धियोंके साथ यद्दार्तक कि शत्रुओंके साथ भी ऐसा सुन्दर आदर्श व्यवहार किया है जो बात-जातमें हम लोगोंके लिये अत्युत्तम रीतिसे शिक्षामय है और जिनके विशेष विनाशपूर्वक वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीरामचन्द्र सम्बन्धी ये सभी बातें जगत्प्रसिद्ध हैं।

परन्तु इस प्रसंगमें इस बातके लिये विशेष रूपसे ध्यान देना होगा कि भगवान्की दया तथा प्रेमके पात्र बननेके लिये प्रेम तथा भक्तिके अतिरिक्त और अन्य किसी भी प्रयोजक लक्षणकी आवश्यकता नहीं है। हम विषयमें श्रीरामचन्द्रजीके माता, पिता, गुरु आदि खास सम्बन्धियोंके अतिरिक्त, अनागरिक घरस्थवासी गृह, पशुरूपमें आये हुए मातावीरिदि वानरगण और राक्षस आत्यन्तर्गत विभीषण

आदिका स्मरण कराना पर्याप्त है। विस्तृत वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं।

कर्मकायदके अन्तर्गत चतुरिय-धर्मकी खास दृष्टिसे देला जाय तो उसमें अपने सुख-दुःखादिकी परवा न करते हुए, केवल धर्म-बुद्धिसे तथा विना ही द्वेष शत्रुनिवर्हण करना और प्रजापालन करना ही मुख्य है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनों अंशोंमें भी अत्युत्तम ही थे।

शत्रुनिवर्हणमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी वात्प्रावस्थामें किये हुए ताडकासंहारसे लेकर अन्तमें रावणादिके संहारतक द्वेषरहित हो केवल धर्मबुद्धि और साधप्रतिज्ञाके साथ अद्वितीय धृतरता और पराक्रमसे युद्ध करनेवाले ही थे। इस बातका पता इसीसे लगता है कि जब श्रीलक्ष्मणजी इन्द्रजित्को किसी प्रकार किसी भी अस्त्र शस्त्रादिके पराजित न कर सके तब उन्होंने देवदत्त हाथमें लेकर कहा कि—

धर्ममा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्विरि ।

सपरे चाप्रतिद्वन्द्वः शीरेने जहि रावधिम् ॥

'यदि दशरथनन्दन श्रीराम धर्ममाता, सत्यसन्ध और सत्यमें प्रतिद्वन्द्वी न रहनेवाले हों तो यह बाण इन्द्रजित्का बध करे।' इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी धर्ममाता, सत्यप्रतिज्ञता और अद्वितीय युद्धवीरतापर मन्त्ररूपी शपथ करके छोड़े हुए एक ही हाथसे उसी शपथके बलसे उन्होंने इन्द्रजित्को मार डाला था। भगवान् पूर्णवतार श्रीकृष्णचन्द्रजीने भी श्रीभगवद्गीताके दशमाध्यायमें अपनी विभूतियोंके वर्णनके प्रसंगमें 'रामः सत्यमातामहम्' कहकर शपथ किया है कि शस्त्र-धारियों अर्थात् युद्धवीरोंमें श्रीरामचन्द्रजी सर्वोत्तम थे।

प्रजापालनके विषयमें तो ये जगत्प्रसिद्ध बात है कि श्रीरामचन्द्रजीने प्रजाके मनमें शंकाकी सम्भावनासे भी उसे दुःख न होने देनेके स्थालसे, उस भगवती धीसीतादेवीके वियोगकी परम असह्य दुःखवेदनाको सहा, जो अपने प्राणोंसे भी अधिक मिय थी और, जिसके लिये चरणम तथा जङ्गलमें भगवान्ने भयंकर कष्ट उठाये थे।

श्रीरामचन्द्रजीका शासन इतना धर्मपूर्ण था कि उनके राज्यमें प्रजाको दुर्भिक्ष, अशांति, अशान्ति आदि अशान्ति दृष्टिसे तो अतिसाधारण दुःख भी कभी नहीं हो सके थे।

जब इस नियमके एकमात्र शपथाद्वयरूप एक ब्राह्मण बाककी शत्रु हुई और उसका पिता भगवान्के राज्यमनके



डारपर पहुँचकर खरो-खोटी मुनाने लगा कि राजाके अधर्मसे ही हमारे बालककी अकालमृत्यु हुई है इत्यादि, तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको राजनिन्दा करनेवाला राजद्रोही समझकर न तो दण्ड दिया और न उसका कोई खयडन या प्रतिवाद ही किया बल्कि अत्यन्त नम्रताके साथ यह स्वीकार किया कि 'यद्यपि हमने स्वयं ऐसा कोई पाप नहीं किया है, तो भी यदि हमने अपने राज्यमें ऐसा कुछ कुकर्म होने दिया हो तबसे इस माहणके बालककी यह अकालमृत्यु हुई है, तो यह अनर्थ भी हमारे ही दोषसे हुआ है. क्योंकि राजाकी ईभियतमे हमारा ही यह कर्तव्य है कि हम स्वयं मदाधारी रहते हुए राज्यमें भी पापाचरण न होने दें। अनप्य हम प्रत्येक दिशामें घूमकर पता लगायेंगे कि राज्यमें कहाँ क्या पाप हुआ है जिसके कारण हमारे राज्यमें एक धार भी अचवाद्दरूपमें भी एक अकाल-मृत्युका प्रसंग थाया।' तदनन्तर भगवान्ने उस पापका पता जगाकर उसे दूर भी कर दिया, इस विषयपर विशेष विचारकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके समयके बाद प्रेता और ड्रापर इन दोनों दुर्गाँकी समाप्ति होकर तीसरे युगमें पाँच हजार एकद्वितीय वर्षके बीच जानेपर भी, अब भी, जय-जय तथा जहाँ-जहाँ आदर्श राज्यराज्यन तथा प्रजाके मुलका मित्र करनेकी आवश्यकता होती है, तब-तब और तहाँ-तहाँ गारे भागवतमें यही प्रथा है कि लम्बे-लम्बे वर्षों न करके, आदर्श आदि छोटे शब्दोंमें भी काम न लेकर, केवल 'शमशाप' शब्दमें ही बना अपने पूरे तापवर्षको शरट कर देने हैं और धोना भी उनका धर्म समझ लेने है।

आचार-व्यवहार, सुदृशीता, धार्मिक शासन आदिके पक्षपर जब बराबरी और ज्ञानवापकी दृष्टिमें देखते हैं, तो श्रीरामचन्द्रजीकी मरिमा केवल पुराणोंमें ही सिद्ध नहीं है, (त्रिपर आत्रकवके शुभाक्ष चबदाके साथ कटाव किया कामें है) मंत्रोपनिषद्, रामशतोपनिषद्, रामकाण्डि-मुक्निषद्, मुक्तिशोपनिषद् आदि वेदात्मकी ज्ञान-ज्ञान मूल धर्मियोंमें भी मिलते हैं।

इसप्रकारके दृष्टिमें भी श्रीरामचन्द्रजीका पुराणोंमें तथा उपनिषद् उपनिषद्में यहाँ तक कि श्रीरामचन्द्रजीके स्वयं मंत्रों का नाम-नाम से ही मिलते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीके स्वयं मंत्रोंके नाम-नाम से ही मिलते हैं।

-और मुक्तिपुरी श्रीकाशीकेन्द्रमें श्रीविश्वनाथरूपमें अविद्याता होकर, वहाँ मरनेवालोंके दक्षिण कर्णमें अपने श्रीमुखसे ही रामतरक-मन्त्रोपदेश देकर उनको मुक्ति देने हैं इत्यादि। ये सभी बातें हतनी प्रख्यात हैं कि इनका केवल उल्लेख ही पर्याप्त है, वर्णनकी आवश्यकता नहीं।

अब कर्म, उपासना और ज्ञानकायिकी सम्मिलित दृष्टिसे धर्मान् अत्यन्त उपयोगी आध्यात्मिक दृष्टिमें भी विचार करना चाहिये कि श्रीरामायणका यथाया हुआ आध्यात्मिक ताव कौन-सा है? परम लक्ष्य क्या है? और उसके साधन क्या क्या हैं? इस विषयपर भगवान् जगद्गुरु श्रीआदिशंकराचार्य महाराजजीने अपने 'श्रामशोध' नामक छोटे परन्तु अति सुन्दर वेदात्म-ग्रन्थमें इस एक ही श्लोकसे दिग्दर्शनमात्र करा दिया है। यथा—

तीर्त्वा मोहार्णवं, इत्वा कामक्रोधादिराश्रमात् ।  
शान्तिशीला समायुक्त अहमारामो विराजते ॥  
धीमद्भगवद्गीताके  
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मवत्सद्वै मानवः ।  
आत्मन्येव च तन्तुष्टः..... ॥

इन लक्षणोंके अनुसार जो आमाराम बना हो, वही आमारामरूपी श्रीराम अज्ञानरूपी समुद्रसे पार होकर काम क्रोधादिरूपी राक्षसोंका वध कर, शान्तिरूपी सीताजीके साथ विराजता है। इसके सारवर्षका निम्नलिखित विवरण है—

सीतोपनिषद्में बतलाया गया है कि श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मवलीरूपी धीमीताजी सच्चिदानन्दकन्द परमात्मस्वरूपी भगवान्की चिद्रूपिणी महाशक्ति हैं। वह महाशक्ति आनन्दस्वरूपी भगवान्के साथ रहनेवाली शान्तिस्वरूपिणी महाशक्ति होती है। इस शान्तिस्वरूपिणी सीताजीके यदि काम क्रोधादिरूपी राक्षसोंका अविधितरूपी अहंकार स्वरूपी शरण्य अवनाना चाहे और उठाकर ले भी जाय, तो भी शान्तिस्वरूपिणी धीमीताजीका तो आमारामरूपी श्रीरामजीके ही साथ रहना सम्भव है, अन्य किसीके साथ नहीं। अतः काम-क्रोधादि राक्षसोंके राजा अहंकाररूपी शरण्यके साथ मिश्रकर उगरी होकर रहना शान्तिस्वरूपिणी सीताजीके जिये सर्वथा असम्भव और निरम्भव है। हाजीजिये शान्तिस्वरूपिणी सीताजी शरण्यका और निरम्भार ही किया करनी है क्योंकि वह तो 'शमशाप' है, अर्थात् शरीर दुनिपाको अमाना दुःख

पर दुःख देता हुआ, उसे रूखाते ही रखनेवाला घट्टकाररूपी राघुसेधर है जिसके साथ शान्ति कदापि टकर नहीं सकती ।

अतएव धीमन्नागवत् दशमस्कन्धके रासपञ्चाश्यायीमें ऐसा एक प्रसंग आता है कि अपनेको भूलकर भगवान् श्रीहृष्यचन्द्रजीके साथ नाचती, खेलती और गाती हुई आनन्दमें निमग्न हुई श्रीहृष्यके दिव्य दर्शन करनेवाली गोपियोंके मनमें जब घट्टकार आ गया, तब भगवान् एकदम अन्तर्धान हो गये । क्योंकि घट्टकार और परमात्म-दर्शन एक साथ कभी नहीं हो सकते, परन्तु जब भगवान्के गुण हो जानेपर गोपियाँ बड़े दुःखमें पड़कर उनकी खोजमें लगती हैं और—तन्मनस्कास्तदात्पिकाः उन्हींके सतत ध्यानसे पुनः अपनेको सर्वथा भूलकर तद्रूप बन जाती हैं, तब—

तासामाविरमुञ्चोऽरिः समयमानमुल्लाम्बुजः ।

—भगवान् हँसते-हँसते फिर प्रत्यक्ष हो जाते हैं, क्योंकि घट्टकारके छूट जानेपर परमात्माका दर्शन निर्विघ्नतासे हो सकता है !

हृत्सीजिये धीमन्नागवत्के दशमस्कन्धमें यह बात भी हुई कि परमात्म-रूपी भगवान् अचतीर्य होनेके बाद घट्टकार-रूपी कंससे कभी मिलते ही नहीं और जब मिलते हैं तब उसे मार बाधनेके लिये ही मिलते हैं । अतएव शान्ति-रूपिणी सीताजी घट्टकाररूपी राघुसे मिल ही नहीं सकती !

अब यह देखना है कि शान्तिरूपिणी सीताजी आभारामरूपी श्रीरामके साथ किसप्रकारसे मिलती हैं ? पहले तो श्रीहनुमान्जीके द्वारा सीताजीका पता लगाया जाता है । आध्यात्मिक दृष्टिसे यह हनुमान् कौन-से स्वरूप हैं ?

हनुमान्जी जिज्ञासा या विचाररूपी आध्यात्मिक स्वरूप हैं, विचारके द्वारा आभारामको यह पता लग सकता है कि शान्ति कहाँ रहती है ? हनुमान्जी (विचार) से ही पता लगता है कि सीताजी (शान्ति) को लंकामें (अर्थात् सीतेके वसिष्ठकर्मणि तपथा भवति तथा अं, कः=आनन्दः, आ=रतिः, अर्थात् नश्वर आनन्दकी वृत्तिमें) राघुसे (घट्टकारने) रख छोड़ा है । वहाँ (लंकामें) रखे जानेपर भी सीताजी (शान्ति) किसी विपरीत स्थानमें नहीं रहती जाती, वह केवल 'अधोक्त' वनमें (अर्थात् दुःखलेशरहित और समस्त-आराधनारूपी स्वरूपभूत आनन्दमें ही) स्थित रहती है, इसका कारण यह है कि वन्य अर्थात् विचाररूपी (वृत्त्यन्त

तरानित्यन्', इस न्यायसे) नश्वर आनन्दमें यथाार्थ शान्ति कभी नहीं रह सकती, क्योंकि उसका तो वास्तविक स्थान अशोक (आनन्द) का वन ही है ।

इसके सिवा धीमन्नामययमें यह भी बतलाया जाता है कि जिस सीताजीको राघु से गया था वह तो छाया-सीता ही थी । असली सीताजी तो श्रीरामजीकी अग्निमें छिप गयी थी । इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि जिस शान्तिको घट्टकाररूपी राघु से जाकर नश्वर आनन्दरूपी लंकामें रखकर देखा है, वह तो शान्तिकी छाया या आभासमात्र है । असली शान्ति तो आभारामरूपी श्रीरामकी शानरूपी अग्निमें ही छिपी रहती है । घट्टकाररूपी राघुको यह जरासी भी नहीं मिल सकती । उठाकर ले गयी हुई उस छाया-सीताको भी जब लंका (अर्थात् नश्वर आनन्दवृत्ति) में विचाररूपी हनुमान्जी देखते हैं तो वह छाया-सीता (अर्थात् शान्तिकी छाया या आभास) भी यादरकी वस्तुओंमें न होकर लंकामें भी (अर्थात् नश्वर आनन्दमें भी) अशोकवनमें अर्थात् भीतरके मूलस्वरूप-रूपी सच्चिदानन्दके वन या भवधारमें ही दिखायी पड़ती है भगवती धृति भी कहती है—

तस्यैव मात्रामुपग्रीहन्ति ।

इसप्रकार विचाररूपी हनुमान्जीने शान्त्याभासरूपी छाया-सीताके रहनेके स्थानका पता लगाकर आभारामरूपी श्रीरामको बतलाया । अतएव हनुमान्जीका यह प्रसिद्ध स्तोत्र आध्यात्मिक दृष्टिसे भी ठीक है कि—

अजनानन्दनं वीरं ज्ञानकौशिकनारामम् ।

कवीशमण्डहन्तारं वन्दे लंकाभयङ्करम् ॥

अज्ञाना = बुद्धि (अवधि, अव्यते वेति कर्तारि कर्मणि च लृट्) । बुद्धिका पुत्र तथा बुद्धिको आनन्द देनेवाला तो विचार ही होता है । जो काम अविचारसे किये जाते हैं, उनसे बुद्धिको उस समय कितना भी आनन्द हो, पान्थु पीड़े तो भयङ्कर प्रत्याघातका दुःख ही भोगना पड़ता है ।

घोरं अर्थात् (वि + ईरं) घोरक । विचारसे ही यथाार्थ हितके लिये घोरखा होती है । विचार ही वास्तवमें घोर होता है । अविचारसे अथपि तात्कालिक विचाररूपी घोरता होती है पर अन्ततक रहनेवाली यथाार्थ वीरता नहीं होती ।

ज्ञानकी अर्थात् (वायते इति जनः, जनशःकी कश्च अर्थात् आनन्दश्च जनकः) वन्द्य आनन्दसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि-

धेमके भारको अपने कंधोंपर धैसे ही उठा लेंगे जैसे उन्होंने प्रह्लाद, द्रौपदी, मीराबाई आदि अपने भक्तोंके भारको धारम्भार उठाया था ।

हम सभी दुःखोंसे मुक्त होकर शान्ति और आनन्दमें रहना चाहते हैं परन्तु शान्तिरूपिणी सीताजी धारम्भार-रूपी रामको छोड़कर दूसरे किसीके साथ कभी नहीं रह सकती और—

‘अशान्तस्य कुतः सुखम् ।’

—बिना शान्तिके आनन्द भी नहीं रह सकता, इसलिये हम संस्कृत और हिन्दीके एक अतिसरल शब्द-रूपसे लाभ उठाते हुए, इस लेखका उपसंहार करते हैं कि ‘हे कल्याण-पाठको और कल्याण-कांची सज्जनों, यदि तुम चाराम चाहते हो, तो मनसे, वाणीसे और अपने कामसे खूब

जोरसे कहो ‘आ राम !’ अभी तो ‘जा राम’ ‘जा राम’ कहते रहते हो, अर्थात् अपने हृदयके भीतर रामके लिये स्थान नष्ट देते हो तो राम कैसे आ सकता है ? अर्थात् ‘आराम’ कैसे हो सकता है ?

अतएव अगर चाहते हो आराम, तो मनसे धारो ‘आ राम’, वाणीसे कहो ‘आ राम’ कामसे भी कहो ‘आ राम’ और फिर पाते रहो ‘आराम’—

जय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की ।

तीर्त्वा मोहमहार्णवं स्थिरनिजानन्देऽसया रावणं  
हत्वा काममुत्सासुरव्रजवृताहंकारलंकाधिपम् ।  
भूमः प्राप्य विचाररूपदनुपत्पूर्वोक्षितां प्रेयसीं  
सीतां शान्तिनिजाकृतिं विजयते ह्यात्माभिरामो हरिः ॥

## रामोपदिष्ट-भक्ति

( लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेशास्त्री )

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमयमे ।

रामचन्द्रमहं वन्दे सधिरामन्दविप्रहम् ॥



यदि अयोध्यावासी प्रभुके पारंप्र नियम मुक्त और सदा हृदय हैं, तो भी प्रकृति-मण्डलमें रहनेसे कदाचित् विरयोंका किञ्चित् वायु लग गया हो, तो उसको गिटानेके लिये अपना अयोध्या-वासियोंके ध्यात्रसे संसारेके जीवोंका मुखर करके कल्पियुगी प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये एक बार

श्रीरामचन्द्रजीसे सब पुरवासियोंको बुझाया । भगवान्की आज्ञा मानकर गुरु बरिहट्टी, अम्बाध मुनिव्रत और प्राज्ञवादि चारों बर्योंके लोग राज-सभामें आये एवं बयोचित मन्त्रक वक्ता, काशीय दे प्रभु-आज्ञा या गुरु बरिहट्टी तथा अनेक मुनि और प्राज्ञक तथा अन्य उलम बर्योंके त्रिनसे समस्त धे से सब सभामें भगवान्के समक्ष बैठे और धर्म्य सब लोग बकर बैठे, तब अर्योंके कर्म-मरदादि अर-दुःखोंको गिटाने-कहने लगे—

‘हमिन्हो ! कल्प सब मेरी जान मुनिये, यह कल्पी है, हृदयके मुखक कर्कोदार कीजिये,

बयोंकि मैं अपने किसी स्वार्थके लिये नहीं कहूँगा, सबके कल्याणके हेतु परमार्थके वचन ही कहूँगा, इन बचनोंमें किसी प्रकारकी अपनीति भी नहीं होगी, सब लोकमर्षदा-सहित वेदममाणित सन्तोंके मतानुसार कहूँगा, यह बात मैं ऐश्वर्य दिखानेके लिये रजोगुण धारण करके नहीं कहूँगा, किन्तु सतोगुणसहित शान्ताचित्त होकर कहूँगा, इसलिये चित्त लगाकर सुनिये । यदि मेरे वचन आपको भावें—अपने लगे तो उनका आचरण कीजिये, मेरे कथनानुसार चलिये ।’

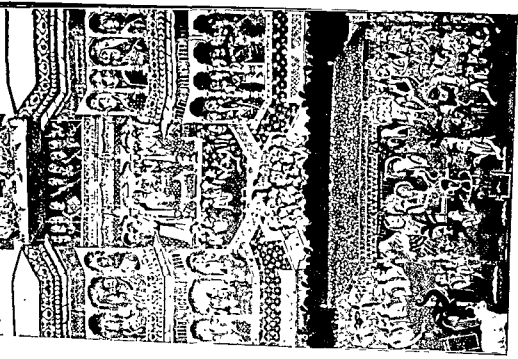
वचन तीन प्रकारके होते हैं, एक प्रभुसम्मिन्न, जैसे—राजासंग प्रजापर शासन करते हैं, दूसरे सुहृद-सम्मिन्न, जैसे—मित्रसे मित्र मन बिकाकर कहता है और तीसरे कान्तासम्मिन्न, जैसे—छी मश्रनागहित पठिते धार्ताज्ञाप करती है । यहाँपर भगवान्ने प्रथम मित्रके समान गुरुको रामभा कर त्रिय वचन कहे । अथ प्रभु-सम्मिन्न कहने हैं—

‘हे पुरवासियों ! मेरा सेवक बर्ही है और मेरा मित्रम भी बर्ही है, जो मेरा अनुदानन मानता है अर्थात् वेद, वेदान्त आदि शास्त्र, संदिता, पुराण, रामायण आदिमें त्रिनवी श्रीमुखमार्गिन धारार्थ हैं, उनको मानकर, उनके



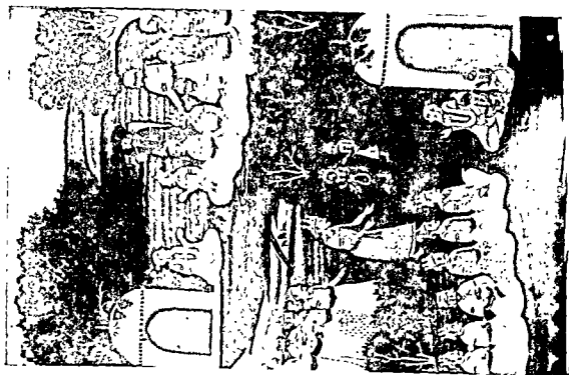
पार्वतीकी तपस्या ।

जन्म फोटि लगि रगि हमारी । बरल रुमु न तु र्हो कुम्भारी ॥



शिव-विवाह ।

गहि गिरित कुस कन्या-पानी । शिवहि समखी जनि भयानी ॥



अनुसार आचरण करता है, वही मेरा प्रियतम सेवक है, मैं उसीकी सर्वप्रकारसे रक्षा करता हूँ और जो मेरी आज्ञासे प्रतिकूल चलते हैं, वे अपनी फलवृत्तका बैसा ही फल भी भोगते हैं, इसलिये यदि तुम मेरी आज्ञाके अनुसार चलोगे, तब तो मैं सब प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करूँगा, और यदि न मानोगे, तो अपने कियेके अनुसार सुख-दुःख भोगोगे, उसमें मेरा कुछ दोष नहीं।'

सदनन्तर भगवान् कान्तासम्मित वचन कहते हैं—  
'भाइयो! यदि मैं कोई अन्त्याप वचन कहूँ, मेरे जिस वचनमें भावधर्मनीति, वेद-प्रमाण, साधुमत इत्यादि सबकी सम्मति न मिले, ऐसे वचनको सुन भय छोड़कर मुझे रोक देना, अर्थात् राजाज्ञा-भंगका दर मत मानना, क्योंकि सत्पुरुषोंकी सभामें सत्पुरुषके लिये असत् कहना उचित नहीं है वही नीतिशास्त्रका मत है।

'भाइयो! विचार करो! यह मनुष्य-शरीर वधे भाग्यसे प्राप्त हुआ है। लव जीवके अनेक जन्मोंका पुत्र्य वदप होता है, तब वह मनुष्य-शरीर पाता है। यह शरीर सुर-दुर्लभ है, अर्थात् देवताओंको भी मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति दुर्घट है। यह बात छिपी नहीं है। वेद, शास्त्र, संहिता, पुराण, रामायण, रहस्य, नाटकानि सभी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है कि मनुष्य-शरीर मुक्तिका द्वार है।

'हेलो! यह मनुष्य-शरीर सब साधनोंका धाम है। इस शरीरमें सभी साधन हो सकते हैं—प्रथम कर्मके साधन—पञ्च, होम, पूजा, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि; दूसरे ज्ञानके साधन—विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, अज्ञा, समाधान, सुसुद्धता, अव्यय, मनन, निर्दिष्ट्यासन और तर्क-पदार्थ शोधन; तीसरे योगके साधन—यम, नियम, ध्यासन, प्राणहार; प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधि एवं चौथे भक्तिके साधन—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, ध्यान, वन्दन, दास्य, सक्य तथा आत्मनिवेदन हैं। इसप्रकार जितने साधन हैं वे सब मनुष्यदेहसे स्वाभाविक ही हो सकते हैं, इसलिये यह देह सब साधनोंका घर है, सब साधन इसी देहमें रहते हैं—अन्य देहोंमें नहीं रहते। पण्ड, पत्नी, कीट, पतंगोंमें तो साधन करनेका ज्ञान ही नहीं है, देवयोनियोंमें ज्ञान तो है परन्तु वे ऐश्वर्य-सुख-भोगमें मूढ होनेके कारण साधन कर नहीं सकते, क्योंकि अमरलोकमें होनेसे वे जन्म-मरण और गर्भवासका भय नहीं मानते। मनुष्य सत्पुरुषोंके होनेसे जन्म, मरण, गर्भवास, नरक, चौतारी आदिका भय

मानते हैं। मनुष्योंमें-ऐश्वर्य भी अच्छल नहीं है, इसलिये वे विषय-प्राप्ति, लौकिक-सुख ल्यागकर मुक्ति-मार्गपर चारुद हो जाते हैं। इसप्रकार मनुष्य-शरीर मोचका द्वार है, क्योंकि इस शरीरमें मुक्ति प्राप्त होना सुगम है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो परलोक नहीं सुधाते, मुक्तिमार्गमें चारुद नहीं होते और विषय-भोगके बश हुए, इन्द्रिय-सुखोंके साधनमें लगे रहकर अनेक कुकर्म करते हैं, वे अनेक दुःख भोगते हैं। काम-वश-पर-स्त्री-हरण, क्रोध-वश दूसरोंकी हिंसा, लोभ-वश चोरी, ठगी, पर-धन-हरण, ईर्ष्या-वश पराया अपवाद करना, इत्यादि कुकर्म करनेमें तो नहीं करते हैं परन्तु जब उन्हीं कर्मोंके फलरूप अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं, तब फिर पीट-पीटकर पड़ताते हैं। भ्राग लगना, चोरी होना, राजाद्वारा लूटा जाना, चप, खास, पीनस, याई, पवासिर, कुछ आदि किसी कराज रोगका होना, यन्त्र, स्त्री, पुत्र आदिका विधोग होना, वैधुवा होना, दरिद्र होना इत्यादि अनेक प्रकारके कष्ट जब पाते हैं, तब पड़ताते हैं और काज कर्म एवं ईश्वरको ध्या ही दोष देते हैं।'

'यहाँ शंका होती है कि सब जीवोंकी ध्यवस्था काज, कर्म और ईश्वरके अधीन है, तो ध्या दोष कैसे हुआ? इसका समाधान सुनिये—जीवोंकी ध्यवस्था काज, कर्म और ईश्वरके अधीन है—यह ठीक है। अथर्व ही ईश्वर सबपर प्रधान है, परन्तु जीव भी तो ईश्वरका ही अंश है, वह सब प्रकारसे चैतन्य है क्योंकि वह अपना गुण, स्वभाव सब जानता है और वेद-पुराणोंद्वारा काज-कर्मको भी जानता है क्योंकि वेद उसी ईश्वरकी आज्ञा है। वेदका सिद्धान्त स्मृतिद्वारा आचार्य सुनाते हैं। जैसे कि सरोजमुन्दर धर्म-शास्त्रमें कहा है—'आहार, मैथुन, निद्रा, धन्ययन, दान देना और खेना वे सब सन्ध्याकालमें वर्जित हैं। 'कैसेका पात्र, ममूर, अने, कोर्दा, शाक, शहद, पराया अन्न, दो बारका भोजन और मैथुन आदि एकादशी, विदग्धा तिथि और दशमीको वर्जित हैं।' इस प्रकार काजका प्रभाव बताया है। स्वाभाविक वर्जित कर्म इसप्रकार बताये हैं कि 'जो अरुनी लगभगिनी मारीको कष्ट देता है, वह दिन-प्रति-दिन मद्य-व्यादि पापोंको प्राप्त होता है।' और भी कहा है कि 'तेज मजनेके बाद, स्तकके साथ जानेके बाद, और बनवानेके बाद और मैथुनके बाद मनुष्य अथवक स्थानसे हट नहीं हो जाता, तबतक वह पादनाजके समान

है।' इत्यादि कर्म सुनिश्चयिद्वाता प्रसिद्ध है। जोरी, रिगा, परधीगमन, भनहरव, पानिगा, अणवादि महाभागोंको तो मभी जानते हैं। इगमकार भान-दूधकर भी जोग मनुष्यकाच मानते हैं, न भीयादि पुत्रवरेण मानते हैं और न ईपरके दृष्टका भव करते हैं। भव काचमें, सर्वत्र दर्शयदिग महा-पाप तो करते हैं परन्तु जब उनका चक्ष भोगता पक्का है, जब काचको मिथ्या शेष जागते हैं कि हमारे लिये काचकच बचे नष्ट दिन हैं या हमारे दिनोंका कच है इतीत्ये इमें वे दुःखदायी भोग प्राप्त हुए हैं। कर्मोंको भी मिथ्या शेष जागते हैं और करते हैं कि हमको कर्म दुःख देने हैं। इमीप्रकार ईश्वरको मिथ्या शेष देने हैं कि ईश्वर हमको दुःख देता है। हमारे पक्षीको तो खूब पन दे रक्खा है, वह दिन-रात दूध-भन्नाई खाता है और हमको मृगी-रोटी भी रामपर नहीं मिलती। सारांश यह कि काच, कर्म और ईश्वरका वर तो मानते नहीं, हुए-स्वभाव-वरा देह-गुणके लिये, स्वार्थ-हेतु अनेक कुकर्म करते हैं, परन्तु फलभोगके समय अपना शेष काच-कर्म अपना ईश्वरके शिर मँदते हैं। इसलिये हे प्रवासियो ! देखो, जैसा गुम्हारा शरीर है, वैसा ही हमारा भी है। जैसे हमने विषय-भोग त्याग रखे हैं, वैसे तुमको भी त्याग देने चाहिये। विषयोंमें आसक्त नहीं होना चाहिये।'

'हे भाइयो ! यह मनुष्य-शरीर विषय-भोगके लिये नहीं प्राप्त हुआ है, इसलिये इन्द्रियोंके स्वाद आदि देह-सुखके साथमें मनको आसक्त करना उचित नहीं है, क्योंकि मृत्युलोकमें सुख तो योदें पर शोक, वियोग, रोग, कष्ट, भय विरोध हैं। जन्मभर यहाँ बने रहनेका निश्चय भी नहीं है। अणभदुर शरीर है, दम आवेगा या नहीं, इसकी भी खबर नहीं है, फिर यहाँ सुख कैसा ? जो जोग यज्ञ, तपस्या, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, व्रत, दानादि सकाम कर्म करते हैं वे उनका फल सुख भोगनेके लिये स्वर्गलोकको जाते हैं। परन्तु स्वर्गमें भी सुख योदा ही है, जबतक सुकृतरूप ईश्वर रहती है, तबतक तो सुख भोगते हैं, पर पुत्र्य पीय होते ही मृत्युलोकमें गिरा लिये जाते हैं, इसलिये स्वर्ग भी दुःखदायी है। यहाँ आकर फिर इन्द्रिय-सुख-साधनमें लगे, तो चौरासीको चले जाते हैं। जैसा कि गीतामें कहा है 'क्षणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' और सत्योपाख्यानमें कहा है—

'स्वर्गवासस्तु वैः पुण्यैः पुण्यान्ते च पतन्तवः ।'

'हे भाइयो ! मनुष्य-शरीर पानेका चक्ष बर है इन्द्रियोंके विना त्यागकर शरणमें मन लगाने, शरणोंका और शरणके प्रमाणमें जब मन रुद हो जाय, पानेके शरणमें मन लगाने शर्णात् अणव, कीर्तन, कायेन, चर्चन, कर्तन, शरण, शरण, आत्मनिवेदनादि भक्ति इगमकार भक्तिके द्वारा भाव बन्धनके पुत्रकर इतिमीत्यादि सुनिश्चय प्राप्त करे ! जो मूढ नर शरीर पाकर सुनिश्चय साधन त्याग इन्द्रियोंके विना—देह-गुणके साधन—अण जाते हैं, वे शठ गुणा बानी अणुको विन बन्धने शर्णात् भक्तिरूप अणुके बन्धने विनयन्त विन लेते हैं। विनयन्तको कामना बानी है, कामना-दानिगे को होता है, जोचये मोद होगा है, मोदने वेत्-परम भूजे का है, वेत्परम भूज जानेगे पुत्रि नष्ट हो जागी है और पुत्रि नष्ट हो जानेगे जीवका सार्थनारा हो जाता है बानी अणुको भक्तिके प्राप्त हो जाता है।'

यह भगवान् अगिठयोक्ति रूपकाकारते केन उपमानसे उपनेपका शेष करते हैं—

'हे भाइयो ! पागमवि तो सब धर्मोंकी मूच है पान-गुणा बानी पौषधी किमी कामकी नहीं। जो जोग साधनोंकी मूच पारसमयिकी लोकर बन्धने निकर्मा पौषधीको उठा खेतें हैं, वे मूढ हैं। पारसमयिके छू जानेसे कुषाणु जोदा भी सुखलं हो जाता है। उससे दपये-अरारकी, मयि-गुच्छा, धारपी-धाम, भूषण-वसन और मोद-वाहनादि सभी कुष हो सकते हैं। ऐसी पारसमयि किमी मूलको मिश्र गयी, उसके चाहिये या कि यह उसके गुण विचारता परन्तु उसने उसके गुणोंका विचार न कर उसे बद्धरत देखकर फेंक दिया। फिर उसे धौषधी मिली, सुहावनी सूरत देखकर मूलने उसके उठा लिया। धौषधी देखनेमात्रको ही सुहावनी होती है, वह किसी कामकी नहीं होती। उसमें जो देखनेको ब्रह्मी होती है, वह भी धापी होती है, धापा अंग तो रपान होता है, भीतरसे वह सर्वथा कष्टी ही होती है। यहाँ पारसके स्थानपर हरिभक्ति है, जो कुषाणुरूप पतित जीवोंको भी उत्तम हरि-सम्बन्धी बना देती है। यदि कोई दुराचारी भी मुझे अनन्यभावसे भजता है तो उसे साष्ट ही मानना चाहिये, क्योंकि यह सम्भागपर चल रहा है, इससे यह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता (गीता)। हे प्रवासियो ! भक्ति समता, सन्तोष,

विवेक, विराग, ज्ञान, विज्ञानादि सब गुणोंको उत्पन्न करनेवाली है। वासुदेवकी भगवती भक्ति मनुष्योंमें ज्ञान, वैराग्य, वीर्य उत्पन्न करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ऐसी परम उषयोगी भक्तिको त्यागकर मूढ मनुष्य गुप्तारूप विषयोंको मह्य कर लेते हैं, जो देखनेमात्रको सुख देनेवाले और सुहावने जगते हैं। यह सुख भी निरा सुख ही नहीं होता। जितना सुख होता है, उतना ही उसमें दुःख भी होता है और विचारनेसे तो विषय सर्वथा दुःखरूप ही हैं। इसप्रकार भक्तिरूप पारसको त्यागकर विषयरूप गुप्ता खेनेवालोंको कौन भया कहेगा ? कोई भी नहीं ! वेद, पुराण, सन्त, महात्मा सभी उसकी निन्दा करेंगे !

‘हे भाइयो ! मनुष्य-शरीर पाकर जो भक्तिका त्याग कर विषयोंमें आसक्त होते हैं, उनकी दुर्दशाका वर्णन मुनिये !

खानि—‘भाकर यानी खानि चार हैं, प्रथम जरायुज जो किहोमें बंधे उत्पन्न होते हैं, दूसरे भ्रूयज जो भ्रूयजले उत्पन्न होते हैं, तीसरे उद्भिज जो भूमिको फोड़कर उत्पन्न होते हैं और चौथे स्वेदज जो पसीनेसे उत्पन्न होते हैं। मनुष्यादि जरायुज हैं, पत्नी आदि भ्रूयज हैं, वृषजता आदि उद्भिज हैं और मन्थर, बाँसादि स्वेदज हैं, इनकी चौरासी जास योनियाँ हैं। उनमें मीनादि जज्जर योनि नौ जास हैं, वृषादि श्याकर योनि बीस जास हैं, कृमि कीटादि भोनि स्यारह जास हैं, पत्नी-योनि दश जास हैं, पशु योनि तीस जास हैं और मनुष्य-योनि चार जास हैं।

‘भाइयो ! यह जीव ईश्वरका भंग होनेके कारण अचिन्ताशी है परन्तु हरिभक्ति त्यागकर विषयोंके वश होनेसे चार खानि और चौरासी जास योनियोंमें जमता रहता है अर्थात् जीवरूप पत्नी वृषाद्यज्ज कर्मरूप पत्नोंके बजसे अनेक योनियोंमें उडा-उदा फिटता है। आदिकवचमें इन जीवोंमें जो सत्सगुणी होते हैं, वे मुनि होते हैं, रजोगुणी होते हैं, वे देवता होते हैं, और जो तमोगुणी होते हैं, वे दैत्य होते हैं। यह सत्ययुगका प्रभव है। पश्चात् ज्यों-ज्यों काज बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों गुण-स्वभाव बढ़ता रहता है। जीव ज्यों-ज्यों असत् कर्म करते हैं, त्यों-ही-त्यों नीच योनियोंमें जन्मते जाते हैं।

अननका आपार—‘पूर्वमें जब जीव विषयको मह्य करता है, तब उसे मायाकी प्रेरणासे काज, कर्म, स्वभाव और गुण घेर लेते हैं। उनके मन्थनमें बढ़कर जीव सब योनियोंमें जमता फिटता है अर्थात् गुणके अनुसार जीवका स्वभाव

होता है, फिर काज और कुसंग पाकर स्वभाव बढ़ जाता है इसलिये जीव असत् कर्म करके नीच योनियों जाता है। जैसे कि सत्सगुणके प्रभावसे प्रथम मुनि हुआ, फिर काज पाकर तमोगुणी स्वभाव हो गया, तो असत् कर्म करके नीच मादय हुआ। फिर असत् कर्म करके उत्रिय हो गया, वैश्य हो गया, यज्ञ हो गया, फिर श्लेष्य हुआ, श्यायदाज हुआ, बड़ा पशु हुआ, छोटा पशु हुआ, पत्नी, कीटजज्जर हो गया, फिर जन्तमें वृष गृष पर्यन्त हो गया। फिर कभी काज पाकर नर हो गया। इसप्रकार सब योनियोंमें जमता है और उनमें जन्मता मरता, दुःसह दुःख और जरा व्याधि वियोगादि अनेक कष्ट पाता है। यही जीवोंकी स्वाभाविक गति है।

ईश्वरका प्रभाव—‘ईश्वर जीवका परमसुदृढ-विना हेतु स्नेही है यानी यह जीवोंपर स्वार्थरहित स्नेह करता है, यह ईश्वरका दयारूप गुण है, कहा है—

रक्षणं सर्वभूतानामहमेव परो विभुः।

इति दशानुसन्धानं कृपा सा परमेश्वरी॥

( मगवद्गुण-दर्पण )

अर्थात् भूतमात्रके पाजन करनेको मैं ही समर्थ हूँ, इस प्रकारका दृढ अनुसन्धान रहता हूँ, इसप्रकारका अनुसन्धान रखनेसे ईश्वर विना हेतु स्नेही है। भागवतमें दूसरा गुण कल्या कहा है—

परदुःखानुसन्धानादिद्विधी मयंनं विभो।

कारुण्यमनुगुणस्त्वेव आतीनां मीढितारकः॥

अर्थात् जीवोंका दुःख देखकर स्वयं भी दुखी होकर, उनके दुःख मिटानेके लिये उपाय करनेका भाव कल्या है। विना हेतु स्नेही ईश्वर इस कल्याणके वश किसी भी जीवका दुःख देखकर, उसे दुःखसे सुवानेके लिये कल्याण करके कभी मनुष्य देह दे देता है अर्थात् चौरासीका भोग पूरा होनेसे पूर्व वीर्यमें ही साधनका धाम, मुक्तिका द्वार जानकर मनुष्य शरीर दे देता है। क्योंकि इस शरीरमें सब वस्तुओंका शान हो सकता है।

मनुष्य शरीरका माहात्म्य—यह शरीर जीवोंको भवसागर-से पार ले जानेके लिये बेधा है। जब सांख्य, लीसम आदिके जड़ोंको नदीद्वारा देशान्तरमें ले जाना होता है, तो मझाह पथोस-लीस जड़ोंको मित्रा उनपर पथ बँधी जकड़ो रख सबको रसोंसे एकमें ही बाँध देते हैं और उसके ऊपर बाँसका टाठ पर देते हैं। इसको बेधा करते हैं, यह बेधा किसी भी विभसे कभी नहीं हूबता, इसी प्रकार नर-शरीरमें



सीधे, मन, कथा, धडप, कीर्तन, पूजा, पाठ, ज्ञा और शान्ति राक्षसों के हैं। ये बुद्धि, विचार, और, ज्ञान और धर्मादि रसों-से बंधे हुए हैं। इनके ऊपर मनुष्य-दुःखका ज्ञानरूप डांड बंधा हुआ है, इस प्रकार नर-शरीर संसाररूप मागमें बंधा है, इसपर बैठकर मनोरथरूप जन्मके लेगमें पड़ा हुआ जीव बड़ा मागा है। यदि जीव किनारेपर जाना चाहता है और अद्वैतरूप धारण करना होता है तो वहने हुए चेहरेको नेर सेनेके लिये मेरा अनुभव यानी जीवोंपर राक्षस रूपका और समुद्र पवन पहनी है वह उसे किनारे लगा देती है। अर्थात् नर-समुद्रमें यदि जीव मेरी किष्कि भी अद्वैत करे तो उसे मेरा अनुभव सदा ही भयमें धार कर देता है।

‘भाइयो ! यह मनुष्य-शरीररूप बंधा हुएने योग्य नहीं है, यह सुन्दर नाव है, इसमें जल मनुष्य अद्वैतरूप धारण करना है, तब उसको मेरा अनुभवरूप वायु डकेजता है और सद्गुरुरूप कर्णधार—सेनेयाका उसको पाठपर जगा देता है। इन सब सामग्रियोंका प्राप्त होना जीवोंके लिये दुर्लभ है—ये बड़े परिश्रमसे प्राप्त होती हैं। इन सब सामग्रियोंके प्राप्त होनेपर तर जाना कुछ कठिन नहीं है। पर ऐसी सामग्रियोंको पाकर भी जो निर्वृद्धि मनुष्य भवसागरसे नहीं तरते और विषयोंमें आसक्त होकर फिर भवसागरमें ही चले जाते हैं वे कृतनिन्दक हैं अर्थात् यदि कोई उनके साथ भलाई करता है, उसका आभार मानना तो अलग रहा, उल्टी उसीकी निन्दा करते हैं। जिस निर्द्वेष स्नेही ईश्वरने करुणा करके नर-शरीर दिया है और सदा दया रखता है, उसका स्नेहसहित नाम तो भूलकर भी नहीं लेते और जय अपने किये हुए पापोंका फल दुःख भोगते हैं तो उसको गालियाँ देते हैं। ये ऐसे कृतघ्न हैं। जैसे महावनमें एक घिगारी लगा देनेसे दावाप्रिकी क्षीमा नहीं रहती कि कहाँ तक यह जायगी, वैसे ही कृतघ्नताके योग्य ही कर्मसे घसंख्य पाप बंध जाते हैं। एक दृष्टान्त सुनिये—

### कृतघ्नीकी कथा

एक इतिहास है कि कोई कुटुम्बी दरिद्री विष सुधा-निवारणार्थ महावनकी गया, वहाँ एक पचीने उसकी श्वयस्था पड़ी तब उसने धनकी भूख बलायी। पची उसे वास देकर और करारक बोला कि उत्तर वनमें एक दैत्य मेरा मित्र है, पास प्रतिदिन जाता हूँ, तू वहाँ जा। मेरा नाम ॥ वह तुझे बहुत-सा धन देगा। माझणने जाकर दैत्यसे

गव हाथ बड़ा, दैत्यने धन देकर माझणको गिरा कर दिया। जब माझण लौटकर महावनमें आया तो मार्गके मोतलके किने उसी पचीको मातर कर बाँध ले चला। दैत्यने यह जानकर उसे पकड़वा मँगवाया और दूधने दैत्योंके बड़ा कि दूधको या मायो, दैत्योंने कहा कि दूध दूधमत्रों हम नहीं खाएँगे गव दैत्यने उसे मरवाकर बहना दिया और गीघोंके कहा कि दूधको या जाओ। गीघोंने भी कहा कि दूध दूधमत्रा माँय हम नहीं खाएँगे। तदनन्तर माझण देवाताओंके बाँधकर पचीको परोपकारी जानकर उसे जिजा दिया। तब पची बोला कि ‘महासत ! दूध माझणके लजके-बाजे मूने मारते होंगे, दूधको भी जिजा दीजिये।’ दूधनकार आपस करके पचीने माझणको भी भिन्ना दिया और धन जिजाकर विदा किया। पचाहूँ जय पचीने शरीर त्यागा तो बड़ इरि-जोंको गया और कृतघ्नी जिम मरनेके बाद वसुधामे जाकर शीव नरकमें पड़ा। यह तो लौकिक कृतघ्नताकी गति है, जो ईश्वरसे कृतघ्नता करे हैं, उनकी तो न मान्य कथाया होगी ? मियमें मनुष्य-दुःख, बन्ध-मोक्ष आदि सब वस्तुओंका ज्ञान होता है ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर मुक्तिमार्गको त्याग जो विषयोंके बंध हो भवसागरके मार्गपर चलेंगे, वे अक्षय ‘धाममहा’ गतिको प्राप्त होंगे। जो जहर खाकर, पानीमें डूबकर धयया गला काटकर मरते हैं, और जो अपने हाथ ही अपने धाममाका धात करते हैं, उनको धाममहा करते हैं। ऐसे धाममहा जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसी गतिको वे कृतघ्नी प्राप्त होंगे। कदा है—

‘मुद्रिदमासं सुरुमं सुदुर्लभं  
द्रवं सुद्रुतं गुरुकणधारम् ।

मयानुकूले नमस्केत रिंतं  
पुमान् भवाम्बिच न तरेस आत्महा ॥’

ईश्वरकी विमुखता तो जोक-परलोक दोनोमें दुःखरूप है, यह थात ऊपर दिखाकर अब भगवान् सुखका मार्ग दिखाते हैं—

‘हे उरवासियो ! यदि तुम परलोकमें शुभ गति और इस लोकमें धर, कीर्ति, ध्यानसहित जीवन-सुख चाहते हो, तो मेरे बचन सुनकर उनका सिद्धान्त हृदयमें धारण करो। हे भाइयो ! जिसका प्रभाव वेद-पुराण गते हैं, मेरी यह शक्ति सुखद मार्ग है अर्थात् शक्ति-वन्ध परिश्रम विना ही सब प्रकारका सुख देनेवाला है। कर्म, योग, शानादिके साधनोंकी तरह इसमें कायाके धनेक प्रकारके

छेय, परिश्रम आदि करने नहीं पड़ते। भक्तिके अवयव, कीर्तनादि सभी साधन सुखप्रद हैं।

ज्ञानकी कठिनता—यद्यपि ज्ञान भी शीलका कल्याण करता है परन्तु ज्ञानमार्ग अग्रम है। विषयी, विमुक्त, म्लेच्छ-व्यापकजादि पतित शीलोंकी तो उसमें गति ही नहीं है, केवल मुहुवी मुमुक्षुओंकी ही गति है। उनके लिये भी अनेक प्रणुह यानी विघ्न हैं, साधन तो कठिन हैं ही पर साध ही स्वभावसे सदा प्रयत्न मनको स्थिर रखनेका कोई ऐसा आचार भी नहीं है, जिसमें मन टिका रहे। साधनमें कठिनता और विघ्न हसप्रकार हैं—

प्रथम साधन है वैराग्य, अर्थात् महालोकतकके भोग-सुखोंको दुष्ट जानकर त्याग देना, यही कठिन है, इसमें लोभ अनेक विघ्न करता है। दूसरा साधन है विवेक अर्थात् देह-सम्बन्ध-लोकसम्बन्ध असार जानकर त्याग करे, आत्मसार जागकर ग्रहण करे, यह महाकठिन है, इसमें मोह-अमता अनेक विघ्न करते हैं। तीसरा साधन पदसम्पत्ति है, इसमें प्रथम श्रम अर्थात् धासना-स्थाय, द्वितीय श्रम अर्थात् इन्द्रियोंको विषयसे रोकना, तीसरी उपरानता अर्थात् विषयोंसे मुक्त मोह लेना, चौथी तितिषा अर्थात् दुःख-सुख समान जानना, पाँचवीं यथा अर्थात् गुरु, वेदान्त-वाक्यमें विधास होना और छठी समाधान, मनकी स्थिरता है। ये सब अत्यन्त कठिन हैं, इनमें काम-क्रोध आदि अनेक विघ्न करते हैं। चौथा साधन है मुमुक्षुता अर्थात् मुक्तिकी उत्कृष्ट इच्छा होना, यह सबसे कठिन है क्योंकि सब साधनोंकी कठिनता और विघ्न इसी-अन्तर्गत हैं। इसप्रकार ज्ञानका गन्ध अग्रम है। यद्यपि माया प्रतीसे धोती जानेवाली नहीं है, परन्तु जीव भी तो हैश्वर ही अश है, इसलिये जीवमें भी महान् शक्ति है। पनी उस शक्तिको संभालकर यदि कोई मनको बरबर धाधीन कर ले, लोक-जनोंके संगको विघ्नोंका कारण जानकर उसे अलग हो, पहाड़, युवा आदिमें अलग रहकर बहुत छ करके वैराग्य शमादि साधन प्राप्त कर ले और आत्म-सुखवकी प्राप्त हो जाय, तो यह भी भक्तिके हीन रूपा ज्ञानो मुझे मिव नहीं है अर्थात् मैं उसकी रक्षा नहीं करता, [सकिये वलकर स्वतन्त्रता निबाहना दुष्ट है क्योंकि जीवमें रहस ज्ञान नहीं रह सकता, इसलिये जीव स्वतन्त्र नहीं है।

भक्तिकी सुलभता—हे पुरवासियो ! समता, शान्ति, सत्वोप, वैराग्य, विवेक, ज्ञान-विज्ञानादि सबकुछ गुणोंकी

शान्ति मेरी भक्ति स्वतन्त्र है अर्थात् भक्तिके होनेपर ज्ञानादि गुण आप ही आ जाते हैं। भक्त-सन्तोंका संग करनेसे वे सहजमें ही प्राप्त हो जाते हैं, सत्संग बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, अनेक क्षमोंका पुण्य उदय हुए विधा सन्तोंका संग नहीं मिलता और सन्तोंका संग सुरत ही भवसे पार करनेवाला है, सत्संगसे भक्ति होती है और भक्ति भवने पार करनेवाली है।

‘हे पुरवासियो ! मन, कर्म और वचनसे माहाणोंके चरणोंकी पूजा करना सबसे बड़ा पुण्य है। मनसे माहाणोंको बड़ा माने, कर्मसे साधोंग प्रथाम करे, जैसे आसनपर बैठावे, दोहरोपचारसे पूजन करे, भोजन-दान दे और वचनसे स्तुति करे। वेदके वचन हैं कि गाँवमें (पुरोहित), सीधोंमें (पयदा गंगापुत्र), यज्ञमें, कथापारायणमें, आदमैं और भूतकर्ममें विघ्न पूव्य हैं। पुण्यमात्रमें दानका पात्र माहाण ही है।’

इसप्रकार भगवान्ने विघ्न-पद-पूजाको उत्तम पुण्य बताया, फिर अग्रे करने लगे—

‘हे पुरवासियो ! जो पुण्य कष्ट त्यागकर भीतर-बाहरीकी समान प्रीतिसे माहाणोंकी सेवा करता है, उसपर सब मुनि और देवता प्रसन्न होते हैं। विघ्नोंकी पूजामें देवता, मुनि, पित्र इत्यादि सबको पूजाका भाग मिलता है। इस-लिये माहाणोंकी पूजा महापुण्य है, इस पुण्यके प्रभावसे सत्संग प्राप्त होता है और सत्संगके प्रभावसे भक्ति प्राप्त होती है।’

‘हे भाइयो ! एक गुप्त मत और भी है अर्थात् विघ्न-पद-पूजारूप पुण्यमें तीन ही वर्णोंका अधिकार है, माहाणोंका विशेष अधिकार नहीं है, वर्णोंके स्वजातीय होनेके कारण ये ब्राह्मरी, क्षोटाई-बर्वाइके मानापमानका स्व्याल रखेंगे, इस-लिये सभी भेद रखेंगे, माहाणमात्रको कोई बड़ा करके नहीं मानेगा, इस कारण यह पुण्यमत माहाणोंको भक्ति-प्रायक नहीं है, केवल तीन वर्णोंके लिये ही है परन्तु समाजमें चारों वर्ण हैं अतः वह गुप्त मत समीसे कहता हूँ। अद्य-तक तीनों वर्णोंसे पुण्य-मत कहा, अब विशेषकरके माहाणोंके लिये कहता हूँ। यहाँ माहाणोंमें बशिष्टादि एकसे एक महाव हैं मापुर्षमें मैं उचिय हूँ और ऐश्वर्यमें भी महाशयदेव कहलाता हूँ, इसलिये हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरकी भक्ति किये बिना कोई मेरी भक्ति नहीं पाता। अर्थात् जप, तप, यज्ञ, इष्टन, शौच, आचार आदि करनेसे भक्ति नहीं मिलती, केवल

भक्तजनोकी—महाभक्तजनोकी सेवा करनेपर उनकी कृपासे ही मिलती है। कहा है—

'रहूगणितत् तपसा न याति  
न वेगवया निर्वेषणाद् गृहादा।  
न छन्दसा नैव जटाभित्तूयै-  
विना महत्पादरभोभिषेकम् ॥'  
( श्रीमद्भागवत ५।२।२।२ )

शंकर भक्तोंमें सर्वोत्तम महात्मा हैं इसलिये प्रथम उनकी भक्ति करनी चाहिये, फिर वे मेरी भक्ति देते हैं।

'हे पुरजनों! ज्ञान-पथका परिधम मीने तुम लोगोंको बतया। भक्तिमें कुछ भी परिधम नहीं है। केवल दो चार घड़ी सन्तोंके पास बैठकर सात्संग करनेमें क्या परिधम है? विप्र-सेवामें भी परिधम नहीं है, वे तो केवल मगुर भोजनमें प्रसन्न हो जाते हैं और शिवकी सेवामें तो कुछ भी परिधम नहीं है, वह तो वेष्टपत्र और भग्नके फूलोंसे प्रसन्न हो जाते हैं, वे सब कर्म सुगम हैं। साधनोंमें भी न अष्टांग योग करना है, न मन्त्र-जाप या पुररचरण करना है, न पञ्चाग्नि आदि तप करना है, न राजसूय भरवमेघादि यज्ञ करना है और न चान्द्रायणादि व्रत ही करना है।'

'हे पुरवासियो! केवल इतनाही करना है कि सरल स्वभाव रहे, किसीसे न प्रीति करे, न वैर। सहज ही सबसे प्रिय वचन बोलें, क्रोध, ईर्ष्या, परपयचन, मान, मद, छल, कपट आदि कुटिलता मनमें न रखें। शुद्ध मनको मेरे सम्मुख करदे, जीविकायें जो व्यापार करे, उसमें जो कुछ लाभ हो, उसीमें सन्तोष रखें, लोभ न बढ़ावे।'

'हे भाइयो! मेरा भक्त कहलाकर मनुष्यकी आशा करना बड़ी भारी भूल है। जो शैलता, भावबन्ध जग, काठ-कमरबल्लू खेकर, त्यागी साधुका वेप बना सेठ साहूकारादि धनियोंके द्वार-द्वारपर द्रव्यार्थ याचना करता है वह मेरा भक्त कहाँ है? वह तो मायाका ही दास है! अथवा मनुष्य मेरा दास कहाकर यज्ञ, पूजा-पाठ, इवनादि सकाम कर्म करके देवताओंसे फल मांगे, तो उसे मेरा विश्वास कहाँ है? मैं पराचरकी पालना करता हूँ, फिर मेरा दास होकर दूसरेसे क्यों याचना करे? कहा है—

ॐ-भोजनप्युदादे चिन्ता नृमा कुर्वन्ति देवताः।

ॐ-उसी विश्वभ्रमे देवोंस भक्षण किमुपैवति ॥

और भी कहा है—

मानदग्याप्रयत्नात् प्रगतानपि तं जनम्।  
विनेतव्येन कृपा दानन्यजनकमग्न ॥

शिवार्चिगामें कहा है—

मनः स्वादन्यदेनानी सेतनं पन्तान्जना।  
तरमादनन्यसेवी सन् सर्वकामपगन्मुक्तः ॥  
श्रीशिवमन-काव्यो रामं व्यादेदनन्वपीः।

'हे भाइयो! अधिक क्या कहूँ, उपर्युक्त आचरणमें मैं प्रसन्न होता हूँ। जो ऐसा करता है, उस सन्तके मैं कर्षीन हो जाता हूँ। वह जो कहता है, वही करता हूँ, हे भाइयो! किसीके हितकी हानि करना ही बैरका मूल विग्रह है और धरती, धन, पाम, वाहन, भूय, वसन, भोजन, पान, गन्ध, स्त्री, पुत्र, पीत्र, राज्य एवं स्वर्गादिकी चाहमें मन खगाना अघट है तथा शत्रु, बौर, सर्व व्यापारिका अघ रचना प्राप्त है। जो भक्त या सन्त वैर, विग्रह, अघ, प्राप्त आदि एक भी नहीं रखता और सबसे समभाव रखता है, उस सन्तके लिये दुर्घों दियारपें सुखमय हैं, वह जहाँ जाय वहाँ आनन्द है।'

'हे भाइयो! जो लोग कर्ता बनकर किसी छुभायुक्त कार्यका आरम्भ नहीं करते यानी जो ऐसा नहीं मानते कि 'आज हम यह कर्म करेंगे' किन्तु ऐसा मानते हैं 'जैसी इच्छा होगी, वही कार्य उस काजमें होगा।' ऐसा समझकर आप कर्ता नहीं बनते और घर भी नहीं बनते अर्थात् आपको अपना नहीं मानते, सिर्फ निर्वाहसे प्रयोजन रखते हैं। ज्ञानि, विद्या, धन, रूप, बर्षाई, हन सवमें मन ऊँचा (अभिमान) नहीं करते, नीचे ही बने रहते हैं। जीव-हिसादि यावत् पापकर्मोंसे दूर रहते हैं। कोई कैसा भी क्रोध करे आप क्रोध नहीं करते। वेद, वेदान्त, शास्त्र, संहिता, सृष्टि, उपनिषद्, काव्य, पुराणादिका सिद्धान्त जाननेमें प्रवीण होते हैं और विज्ञानी होते हैं यानी अपना स्वरूप, मायाका स्वरूप और ईश्वरका स्वरूप भलीभाँति जानते हैं, ऐसे सन्तोंका साथ संग करे क्योंकि इनकी संगतिसे वे गुण प्राप्त ही आ जाते हैं। सजनोंके साथ प्रीति करनेसे त्यागी-स्वभाव उत्पन्न होता है, त्यागी स्वभाव होनेसे मनुष्य इन्द्रिय-विषय-सुख, स्वर्ग-सुख, अथवा मोक्ष—तिनकेके सम्मान त्याग देता है, फिर साधन करनेका प्रयोजन ही नहीं है।'

'हे भाइयो! भक्ति-पथका आग्रह रखें, जैसे अन्नपथक और, जलपथ भीन, स्वामी-विन्दुपर आसक्त हट रखते हैं,

इसी प्रकार हृष्ट-उपासनाकी दृढ़ताके लिये धनन्यतामल धारण करे। जैसे उत्तम पतियता अपने ही पतिको, पुरुष मानती है, दूसरे पुरुषको जानती ही नहीं, इसी प्रकार अपने हृष्टके सिवा न दूसरे इष्टपर दृष्टि करे और न दूसरेका नाम ले। उपासनाकी दृढ़ताके लिये भक्तिपत्रका इष्ट रखे परन्तु शठता भी न करे अर्थात् किसी भी रूपकी निन्दा न्यूनता भी न करे और दुष्ट तर्कोंको जैसे कि 'जानकी रावणके यहाँ रही फिर राम उसे घर ले आये' इत्यादि तर्कों दुष्टोंकी हैं, इनको दूर बहा दे, कभी मनमें धाने न दे।'

अप्युक्त गूण तो साधन करनेपर भी दुर्घट हैं, फिर रक्षाभाविक कैसे आ जायेंगे? इसपर भगवान् कहते हैं—

'हे पुरवासियो! शक्ति, वीर्य, तेज, बल, कृपा, दया, वात्सल्यता, करुणा, सौहार्द, सौजन्य, शील, उदारता आदि मेरे गुणोंका मन लगाकर श्रवण-कीर्तन करे, मेरे नाममें रत हो यानी प्रेमसे मेरा नाम स्मरण करे। इसके प्रभावसे ममता, मद, मोह आदि भाग जाते हैं, और मेरे रूपमें अनुराग

होता है। मेरे रूपमें अनुराग होना ही पराभक्ति है। इस पराभक्तिके अर्थमें सुखको बढ़ी जानता है, जिसको वह प्राप्त है। उसके भ्रान्तदमं देह-व्यवहारमें मन नहीं लगाता, इसलिये जीव निर्विश रहता है।'

भगवान्के धसूत-सम वचन सुनकर सब पुरवासियोंने प्रथाम किया और भगवान्के वचन गिर-मायेपर धारण कर लिये !

प्रिय पाठक ! इस आपके बावले अनुचरकी हस्तनी प्रार्थना है कि आप भी भगवान्के वचन अंगीकार करके सर्वदाके लिये सुखी हो जाइये—

कु०—जैसे कैसे भी बने, कजै मगवद्रुकि ।

तनसे मनसे बचनसे, जैसी होवे शक्ति ॥

जैसी होवे शक्ति, भक्ति कर भवसे तरिये ।

जन्म-मृत्युसे छूट, राज्य निष्कंठक करिये ॥

मोला हरिसे प्यार, करे भगवजन पैसे ।

प्यासा जलसे करे, अतसे भूसा जैसे ॥

## श्रीराम-भाँकी

( लेखक—भीसत्याचरणजी 'सत्य' बी० प०, विरारर )

( १ )

उज्ज्वल मयङ्क रम मधुजल सु-रत्नमय  
बाकी कल कल्पनाका जोड़ चढ़ जायेंगे ।  
पुन पुन आठ हार हीरक बनाने हेतु  
जगमग ज्योतिषुत तारे तोड़ लायेंगे ॥  
हंसवाहिनीके सख मानस तरङ्गणीये  
वीणाके सहस रसधार ही बहायेंगे ।  
एक बार छिन्तित्रिये रास मी मन्ना दे हम  
मनहर रामजूकी साँकी यदि पायेंगे ॥

( २ )

सूपरके प्रहपर गन्धवाहके समान  
अटल-नृत्य नित्य नूतन दिखायेंगे ।  
पकड़ चपल छवि चञ्चल मनेहारकी  
आबरके छोरपर केतु कहरायेंगे ॥  
एक ही हुमइमें समस्त विश्व-मण्डलमें  
इलककी कल्पि-विनयणी सी समायेंगे ।  
दिन को दिगन्त को कौनदे धुण धुण हम  
मनहर रामजूकी साँकी यदि पायेंगे ॥

## तुलसी-स्तवन

( लेखक—पं० आरामसेवकजी त्रिपाठी, संपादक 'मापुरी' )

( १ )

आन आड़े बकमें बचाई तुलसीने सुन,  
हास हो रहा था हिन्दू-धर्मके सुमर्मका ।  
हो रहे थे प्रबल प्रहार यकनोंके रोज,  
नाम मिटना ही चाहता था वर्ण-धर्मका ।  
रोटी और चन्दन बना था अर्घ्य दिन्दुओंका,  
'बेटी और रोटी या बनान बेटी-धर्मका ।'  
'मानस'की डाल दे स्व-नन्पुओंको तूने तन-  
अमर बनाया, बरलाया ज्ञान कर्मका ।

( २ )

पैसा मंत्र कूँका रामनामका त्रिमूर्ध होके,  
लासी मनकोंने फिरसे ये जान अगई ।  
तेरी भक्ति-भावनासे, मध्य-भारतीकी मूर्ति-  
अभिष्ट हुई थी, वह दिग्गमे समगई ।  
मटक रहे थे अमसे जे भव-सागरमें,  
'पानस'की पैसा पार टनघे लगा गई ।  
सुख-पताछा ररमिने मी पहरणी मात्र,  
अच्छ सुईर्ति विषमे है तेरी छा गई ।

# श्रीरामायण-रहस्य

( श्रीरात्री-पतिशक्तिभयङ्करमठारीधर ऋगद्वयद्वय श्रीमत्पद्मसुतस्य-श्रमप्रसादात्प्राप्तं श्री ११०८ श्रीमन्मन्त्रानां स्वामीजी महाराज )

एष च आदि शौचिक प्रमाणोंसे अथर्व ऋषियोंके जाननेका एकमात्र उपाय वेद है, इर्मात्रिये उसका नाम वेद पद्य है ।

प्रत्येकानुमित्या वा परतूपायो न युष्यते ।

यत्तं विदन्ति वेदेन तस्माद्देवस्य वेदता ॥

अर्थात् प्रत्येक वा अनुमितिये जो उपाय नहीं जाना जाता, ऐसे उपायको वेदसे जाननेके कारण उसका वेदत्व है ।

कर्म-ब्रह्म-कारणत्वक वेदके अर्थोंको समझनेके लिये स्मृतीतिहासपुराणोंकी सहायता लेना आवश्यक होता है । उनकी सहायताके बिना वेदार्थ-निर्णय करना असम्भव है । अतएव कहा गया है कि—

प्रत्येक पूर्वभाग्यों धर्मशास्त्रेण कथ्यते ।

इतिहासपुराणान्यां वेदान्तार्थः प्रकाशयते ॥

अर्थात् वेदके पूर्वभागके अर्थ प्रायः धर्मशास्त्रोंमें धरिये हैं, वेदान्तका अर्थ इतिहास-पुराणोंसे प्रकाशित होता है । अस्पष्टार्थक वेदोंके अर्थोंका स्पष्टीकरण स्मृतीतिहासपुराणोंमें किये जानेके कारण उनकी सहायता लेकर ही वेदार्थनिर्णय करना योग्य माना गया है । वेदोत्तरभागरूप वेदान्तके अर्थ निर्णय करनेमें तो इतिहासपुराणोंकी सहायता लेना अत्यावश्यक माना गया है, अन्यथा धोखा खानेकी सम्भावना रहती है । इसी आशयको लेकर बार्हस्पत्य स्मृतिमें कहा गया है।

इतिहासपुराणान्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।

विभेत्पुत्रपुत्रादौदेवो मामयं प्रतिरिष्यति ॥

अर्थात् इतिहास-पुराणोंसे वेदोंका उपबृंहण करना चाहिये, क्योंकि वेद अल्पश्रुत पुरुषसे बरता है कि कहीं यह हमारी बख्शना न कर दे, अतिविस्तृत नाना-शाखा-विभक्त वेदका एककण्ठसे अर्थ निर्णय करना बहुश्रुत नाना-शाखाभिन्न पुरुषका ही काम है, अल्पश्रुत पुरुष यह काम करने छोड़े तो सम्भव है कि भूलसे अर्थका अन्वय कर दे । ऐसे पुरुष इतिहास-पुराणोंकी सहायतासे सदानुकूल्येन अर्थ निर्णय करे तो अल्पश्रुतका भी कमी पूरी हो जानेसे करनेका भय नहीं रहता ।

इतिहास और पुराण ये दोनों श्रुतिधर्मोंमें अंतर्भूत हैं, इनके लिये आप्तोप्य उपायविषयमें 'इतिहासपुराणपत्रमम्' इत्युक्त्या पद्यम वेदके मामलेमें उल्लेख पाया जाता है । यह महत्व वेदोंमें सारगुण ब्रह्मकायके उपबृंहण होनेके कारण है । इतिहास और पुराण इन दोनोंमेंसे इतिहास प्रबल है, क्योंकि पुराणोंके समान देवनाग्यप्राण इतिहासमें नहीं है । साहित्यक, राजस्य, सामग-भेदने भिन्न पद्व्यय-विभक्त पुराण भिन्नदेवता-महात्म-प्रतिपादक माने जाते हैं । यथा—

अग्निदासस्य माहात्म्यं तामसु प्रकल्पिते ।

रात्रेतेषु तु कल्पेषु माहात्म्यं ब्रह्मणो विदुः ॥

सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमभिर्कृतं हरिः ॥

यस्मिन्कल्पे तु यत्किंच पुराणं ब्रह्मणो पुरा ।

तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्त्वकल्पेण बभूवे ॥

( मत्स्यपुराण )

पुराण मुख्यतया पाँच विषयोंके प्रतिपादक होते हैं । सर्ग, प्रतिसर्ग, बंश, मन्वन्तर और बंशानुचरित ये पुराणोंके मुख्य विषय हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च बंशो मन्वन्तराणि च ।

बंशानुचरितं चैव पुराणं पद्य लक्षणम् ॥

यह पुराणोंके लक्षण है । इतिहासमें इसप्रकार प्रतिपाद्य विषय सीमाबद्ध नहीं है । नानार्थप्रतिपादक इतिहास होते हैं । पुराणोपेक्षया इतिहासका महत्व 'इतिहासपुराणपत्रमम्' 'इतिहासपुराणाभ्याम्' इसप्रकारके नामनिर्देशोंसे ही मालूम हो जाता है । इतिहासपुराण यह समस्त पद्य है, इतिहास-शब्दकी अपेक्षा पुराण शब्दमें कम 'अच्' अक्षर है । अतएव 'अव्याख्यारपूर्वम्' इस व्याकरण-विधिके अनुसार कम अच्वाला पुराण शब्द इतिहास शब्दसे पहले आना चाहिये, परन्तु आधा है पीसे, इसका कारण इतिहासका श्रेष्ठत्व है, क्योंकि 'अव्यर्हितं पूर्वम्' इस दूसरी व्याकरण-विधिके अनुसार अधिक अच्वाला होनेपर भी अव्यर्हित (श्रेष्ठ) का नाम पहले आ सकता है । इसी विधिके अनुसार 'इतिहासपुराणम्'

इसप्रकार निर्देश हुआ है, इससे सिद्ध है कि पुराणकी अपेक्षा इतिहास श्रेष्ठ है।

अर्थात् इतिहास-ग्रन्थ मुख्यतया दो माने गये हैं, एक श्रीरामायण और दूसरा महाभारत। इन दोनोंमेंसे श्रीरामायणका स्थान ऊँचा है। महर्षि वाल्मीकिका तपः-प्रभाव लोकप्रसिद्ध है। वे आदिकवि कहलाते हैं, महात्मी तक उनको बहुमानकी दृष्टिसे देखते थे।

वाल्मीक्ये महर्षये सन्दिदेशासत्तं ततः ॥

श्रीरामायणका यह रत्नोक्त इसका प्रमाण है। ब्रह्मजी जब वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे थे, तो उन्होंने वाल्मीकीजीको आसन-दानसे सम्मानित किया था। उनको ब्रह्मजीका यह वरदान मिला था कि श्रीरामायणमें वे जो लिखेंगे, उसमेंसे एक पाठ भी मिया न होगी।

न ते वाग्वृता कान्ये कश्चिदत्र भविष्यति ॥

इससे यह सिद्ध है कि श्रीरामायण सत्यार्थप्रतिपादक है।

श्रीरामायणका जितना अधिक लोकप्रसिद्ध है उतना दूसरे किसीका नहीं, यह बात आज भी अनुभवसे सिद्ध होती है। नाना-काल-सिद्धिके जिये जोग श्रीरामायणका पाठ किया करते हैं। विद्वानोंको इसके अनेक प्रकारके प्रयोग मालूम हैं। वसु-वैजयन्त, अधिक लोक-प्रसिद्ध, अवतार-वैजयन्त इन सबसे श्रीरामायणका महत्व अधिक है। श्रीरामायणका अवतरणक्रम भी विचित्र है। यह श्रीरामायणके प्रारम्भमें बर्णित है। माण्डविक-ज्ज्ञानके जिये जाते हुए श्रीवाल्मीकिकीके सामने व्याघ्रका बाणसे क्रीड-पत्नीको मारना, क्रीडि (श्री-पत्नी) का विवाह, इस दरपके देखनेसे कल्याण-हृदय श्रीवाल्मीकिकीके मुखसे श्लोकका निकलना, शोधी ही शेरके पंखाव ब्रह्मजीका वाल्मीकिके आश्रममें आकर यह कहना कि 'मच्छन्दादेव ते शत्रुन् प्रवृत्तयं सरस्वती'। ब्रह्मजीका श्रीरामायण रचनेकी आज्ञा वाल्मीकिकीके देना, भूत, भविष्यत् समस्त रामचरित-ज्ञान-ज्ञाभका वरदान, रामायणमें बर्णित किये भी विषयके मिया न होनेका वर, यह सब रामायणवतरणके पूर्व कालकी घटनाएँ हैं। इनके विचारसे श्रीरामायणका महत्त्व हृदयगत हो जाता है।

श्रीरामायणका महत्व इस बातसे स्पष्ट होता है कि इसको वेदका रूपान्तर कहकर प्राचीनोंने प्रशंसा की है। जैसे महाभारतको पञ्चम वेद कहकर महत्व दिया जाता है, वैसे ही इसको वेदका रूपान्तर कहकर दिया जाता है। यथा—

वेदवेदे परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।

वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षात्प्रामाण्यमना ॥

अर्थात् वेदप्रतिपाद्य परम पुरुष जब दशरथके पुत्र हुए, तब वेद भी प्राचेतस-वाल्मीकिके द्वारा रामायणके रूपमें प्रकट हुआ।

श्रीरामायण केवल इतिहास ही नहीं है, किन्तु काव्य भी है, आदिकान्य होनेका गौरव इसीको प्राप्त है—

आदिकान्यनिदं त्वार्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।

यह आदिकान्य इसलिये है कि इसके पूर्व वेदको छोड़ कर संस्कृतकी व्यावहारिक भाषामें छन्दोबद्ध कोई ग्रन्थ ही नहीं था। महर्षि वाल्मीकिके मुखसे ही चतुर्मुख ब्रह्मजीकी वृष्टासे संस्कृतका छन्दोबद्ध श्लोक सर्वप्रथम निकला था।

इसप्रकार श्रीरामायण इतिहास सुदृढसम्मित होनेके साथ ही कान्तासम्मित भी होकर पाठकोंका महान् उपकार करता है। श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण सुदृढके समान पाठकोंको 'रामादिवर्द्धितान्यं न रावणादिवत्'—उपदेश देकर ओ उपकार करता है, रमणीयार्थप्रतिपादक ध्वन्यलङ्कार-प्रचुर सुन्दर काव्यरूप होनेके कारण कान्ताके समान रजन करता हुआ अभिमानी मनुष्योंको भी सन्मार्गमें जाकर महान् लाभ पहुँचाता है।

श्रीरामायणमें नाना छन्दके श्लोक नाना प्रकारके शब्दाजहार और अर्थालङ्कार स्थान-स्थानपर सञ्चिष्ट हैं। वर्णानशैली अत्यन्त सुन्दर है। सुन्दरकाण्डमें इस बातका अनुभव हम लोगोंको मिलता है।

श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण वेदान्त-भागका उपप्लव्यरूप है, यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। अतएव वेदान्तप्रतिपाद्य अर्थोंका इसमें वर्णन होना आवश्यक है। यह बात—'वेदोपप्लव्येणावाय सावमाहवत प्रभुः'—इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है। यहाँ हम रामायणप्रतिपाद्य अर्थोंमेंसे कुछ मुख्य अर्थोंका वर्णन करेंगे।

वेदान्त अर्थात् वेदका ब्रह्मकाण्ड परतत्त्वका प्रतिपादक है, यह सबको मालूम है। अणुपुररसर परब्रह्मका निरूपण वेदान्त-भागमें है। श्रीरामायणमें यह परब्रह्म कौन-से देवता है? इसका निर्णय किया गया है।

शब्द-तत्त्वार्थ-निर्णयके लिये सात जिह्व माने गये हैं, जिस धर्ममें ये सातों जिह्व अनुद्बल हों यही शब्द-तत्त्वार्थ विषयभूत माना जायगा।

उपक्रमोपसंहारावस्थातोऽपूर्वता परम् ।  
अर्थदादोपपत्ती च त्रिं तत्पर्यभिर्निवे ॥

शास्त्र-शास्त्र-पर्य-निर्णयके द्वि वे उतका प्रारम्भ श्रीर भग्न देशा  
जाता है । यहाँ जिस अर्थका वर्णन हो वह शास्त्रपर्य माना  
जाता है । जिस शास्त्रमें चारुवार जिस अर्थका वर्णन आया  
हो, यही उतका शास्त्रपर्य है । जो अर्थ अपूर्व हो, जिसका  
फल कहा गया हो, जिसकी प्रशंसा की गयी हो, जिसमें  
सर्व प्रकारकी उपपत्तियाँ हों, यही शास्त्रपर्य है ।

श्रीरामायणके आदिमें बालकापहके पद्यहमें सर्गमें  
श्रीविष्णु भगवान्के परत्वका वर्णन आया है—

पतरिभ्रजन्तरे विष्णुपपन्नो महाशुतिः ।  
शङ्खचक्रनादापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥

इस श्लोकमें महाशुतिः 'धीवश्रमः' और 'जगत्पतिः' ये सीन  
शब्द परत्वके सूचक पद हुए हैं । परज्योतीरूपाव, पीतवाससव  
श्रीर जगत्पतिव ये परमात्माके असाधारण धर्म हैं ।

तमद्भुजसुरास्तवै समभिपद्य सज्जताः ।

इस श्लोकमें समस्त देववन्द्यव समस्त देवस्तुत्यव वे  
परमात्मधर्म कहे गये हैं ।

अवधं दैवतैस्सर्वैस्समरे जहि रावणम् ॥

इस श्लोकमें सब देवाऽवध रावणवध-सामर्थ्य विष्णु,  
भगवान्का बताया गया है ।

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ।

सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥

सर्वदेवशरदयत्वरूप परमात्मधर्म बताया गया है । इस-  
प्रकार उपक्रममें विष्णु-परत्वका वर्णन आया है ।

उपसंहारमें उत्तर-रामायणके अन्तमें—

अथ तरिभ्रजन्तरे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

सर्वैः परिवृतो देवैः ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥

आययौ यत्र कानुत्यः स्वर्गोय समुत्सृज्यमानः ॥

इन श्लोकोंमें सब देवाभिगम्यत्व बताया गया है ।

आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्टया प्रातोसि राघव ।

म्रातुभिः सह देवाभिः प्रविशस्वा स्वकान्तनुम् ॥

मामिच्छसि महाबाहो तान्त्रुं प्रविश स्वकान् ।

वैष्णवी तां महतेजो यद्वाचां सनातनम् ॥

महाकी ह्य उक्तिमें श्रीरामरूप विष्णुका आकाश-  
शब्दकाव्य परमहमें प्रवेश बताया गया है ।

ये हि लोकगिरीर्षी न तां केचित्प्रानते ।

करो मार्गं निशम्याशी तत्र पूर्वकीप्रदान् ॥

त्वामभिन्नं महद्भुजमधर्मं चार्जं तवा ॥

विगामहकी ह्य उक्तिमें सब लोकगिरी, अज्ञेय,  
अचिन्त्य, महाभूयव ये परमात्मासाधारण धर्म रामकी  
विष्णुके बताये गये हैं । अत्रय विष्णुका परत्व सिद्ध होता है ।

युद्धकापहके अन्तमें भी—

ततो वैश्रवणो रामा यन्धामियुद्धर्षणः ।

सहसाग्रो महेंद्रश्च बरुणश्च परंतपः ॥

वधार्थेनयनः श्रीमान् महर्षिर्नो युध्वरः ।

कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥

पते सर्वे सामागम्य विमलैरमूर्धसत्रिभिः ।

आगम्य नगरीं रुद्रामभिन्नानुरच रावणम् ॥'

इन श्लोकोंमें राघव-विष्णुका सब देवाभिगम्यत्व बताया  
गया है ।

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवर्ता वरः ।

देवताग्रीही इस उक्तिमें सर्वलोक-कर्तृत्वरूप जगत्कारण  
महासाधारण धर्म राघवरूपी विष्णुमें बताया गया है ।

त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयम्भुः ।

इस श्लोकमें भी सब लोककर्तृत्व बताया गया है ।

अन्ते आदौ च लोकानां दृश्यते त्वं परंतप ।

इस उक्तिमें भी रामका परमह-जगत्कारण जगत्कारण  
बताया गया है ।

अष्टं ब्रह्म सत्त्वं च मध्ये चान्ते च राघव ।

इस अष्टभुजकी उक्तिमें स्पष्ट ही रामको अष्टभुज  
बतलाया है ।

'प्रथमवशान्यथ इवम्' 'शरणं शरणं च त्वामाहुर्विष्णो  
महर्षयः' 'त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता' 'स्वयम्भुः'  
'पूर्वः' न विदुः को भवानिति' 'दृश्यते सर्वभूतेषु' 'त्वं  
चारयसि भूतानि' 'संस्कारास्तेऽभवन्वेदाः' 'न हस्तित त्वया  
विना' 'जतसर्वं शरीरं ते' इन वाक्योंमें परमहसाधारण  
धर्म-सर्व-जगत्कारणत्व, सर्वशरणत्व, स्वयम्भुत्व, अज्ञेयत्व,

सर्वभूतान्तर्गामीत्व, सर्वधारकत्व, वेदसंस्कारकत्व, धनन्तत्व, सर्वेश्वरीकत्व आदि श्रीरामरूपी विष्णुमें बताये गये हैं ।

इस बातका भी रामायणमें बारंबार अन्वयास यानी कथन है । बालकाण्डमें 'अभिकर्मेनिरे विष्णु देवास्तिगणालम्बा' इसमें सर्वाधिकत्व कहा गया है । अयोध्याकाण्डके—'अधितो मातृषे लोके जने विष्णुस्तनातनाः' इस श्लोकमें सनातनत्व बताया गया है । आरण्यकाण्डके 'अभयेयं हि ततेजो यस्य सा जनकारयना' इस श्लोकमें धर्ममेव तेजोरूपत्व बताया गया है । किष्किन्धाकाण्डके—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मिकश्च ।  
अक्षयकौर्तिश्च निचक्षणश्च क्षिति क्षमावान्कृतजोपमाशुः ॥

—इस श्लोकमें अभयमेव चतुर्जोपमात्व ये दो असाधारण महालक्षण बताये गये हैं । सुन्दरकाण्डके—  
ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा

रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।

इन्द्रो महेन्द्रस्तुरनामको वा  
ब्राह्मे न शका दुषि रामबन्धुम् ॥

—इस श्लोकमें सर्वसंहर्तृत्व मुद्गेन परमज्ञत्व बताया गया है ।

विष्णुका परव प्रमाणांतरावेद्य होनेसे अपूर्वता भी है । श्रीराम-भक्तोंको भगवत्साक्षात्कृत्य मिलता है, यह बात रामायणके अन्तमें कही गयी है, अतएव कल भी है ।

बाल-काण्डमें—'अने दे भवथी जेहे' इत्यादिसे अर्धवैद्य कहा गया है । 'अग्निवत् लडनुदंष्ट्रा शैवं विष्णुपदकमैः । अभिकं मेनिरे विष्णु देवास्तर्गिगणालम्बा ।' इत्यादि अन्वयमें विचारपूर्वक विष्णुके अष्टावका निर्याव देवताधोने किया है, अतएव उपरति भी वर्तमान है ।

इसप्रकार यहविष सापर्व जिहोसे श्रीरामायणमें विष्णु-पक्ष प्रतिपाद्य होनेसे वेदान्त-वेद्य परमज्ञका स्वरूप निश्चय होता है ।

इसप्रकारका परतत्त्व किस रूपसे प्राप्त होता है, यह बात भी श्रीरामायणमें बखिप है । यह ब्रवाच है शरणागति । परमज्ञ परमात्माकी प्राप्तिका उपाय वेदान्तोंमें शरणागति ही बताया गया है । यथा—

यो ब्रह्मणं विदधाति पूर्वं सो वै वेदांश्च प्रतिजोति तस्मै ।

वं द देवमश्वमुद्दिब्रसादं मुनुधुर्वै शरणमहं प्रथमे ॥

(भेतास्तर ३० ११८)

इस शरणागतवतरोपनिषत्के मन्त्रमें मुमुक्षु-पुरुषोंको शरणागति कर्तव्य बताया गया है । इसी शरणागतिका वर्णन श्रीरामायणमें है । शरणागति सर्वपक्षसाधन है । इसके अधिकारी भी अनेक प्रकारके होते हैं । आरम्भसे लेकर अन्ततक श्रीरामायणमें शरणागति-उपायका वर्णन कई स्थलोंमें आया है ।

बालकाण्डमें—

देवगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वा शरणं गताः ॥

इस श्लोकमें रावण-नृपक रूप कन्यायें देव-जातियोंकी शरणागतिका वर्णन है ।

विशङ्कुके वृत्तान्त और द्युनःशेषके वृत्तान्तसे शरणागत-रचय परमधर्म बताया गया है और गुण्यीके विषयमें शरणागति करनेसे कल अवरय मिलता है, यह बात भी बतायी गयी है ।

अयोध्या-काण्डमें—

स ब्रातृक्षरणी गाढं निषीम्य रतुनन्दनः ।

सीतामुवाचतिवशा रावणं च महाद्रतम् ॥

इस श्लोकमें लक्ष्मणकी शरणागति कही गयी है ।

शिष्ये पुरस्ताच्छाहाया वागन्ने न प्रसीदति ॥

इस श्लोकमें भरतकी शरणागतिका वर्णन है ।

आरण्य-काण्डमें—

ते वयं भवता रक्षया भवद्विषयवासिनः ।

नगरस्यो बनस्यो वातं नो राजा वयं ब्रजाः ॥

इस श्लोकमें महर्षियोंकी शरणागतिका वर्णन है ।

स तं निषितं ममो शरभ्यदशरामाणाम् ॥

नवाहंमपि बाहुस्थः इपया पर्यपश्यद् ॥

स पित्रा च बरितकन्मुखैश्च परमर्षिभिः ।

वीन्तोऽहान् सगपरिक्रम्य तनेन शरणं गतः ॥

इस श्लोकमें काककी शरणागतिका वर्णन है ।

किष्किन्धाकाण्डमें—

इतपिपरस्य द्विदे नान्यवदमयस्यं द्विदम् ।

अन्दरेणाकृतिं बद्ध्वा हृदयमस्य प्रसादनात् ॥

इस श्लोकमें सुमीरकी शरणागतिका वर्णन है ।

सुन्दर-काण्डमें—

विद्यमौषधिकं कर्तुं राममथानं परित्सा ।

वयं जनिष्णुता दीर्घं त्वकालो पुदरसिः ॥



विदितस्त हि धर्मज्ञदशरणागतवत्सलः ।

तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥

इन श्लोकोंमें जानकीजीका उपदेश रावणको शरणागति करनेके विषयमें हुआ है ।

**युद्धकार्यमें—**

सोई परुषितस्तेन दासवचावमानितः ।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥

इस श्लोकमें विभीषणकी शरणागतिका वर्णन है ।

ततस्सागतेज्यां दर्शनस्तर्प्य राघवः ।

अङ्गुलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥

इस श्लोकमें श्रीरामचन्द्रकी शरणागतिका वर्णन है । इसप्रकार नानाविध फलापेक्षी पुरुषोंकी शरणागतिका वर्णन करते हुए उन लोगोंकी फलसिद्धिका वर्णन करनेसे मोक्षरूपी फलके लिये भी शरणागति ही मुख्य उपाय है—यह बात सूचित हुई ।

उपाय दो प्रकारके होते हैं—सिद्धोपाय और साध्योपाय । मोक्षके लिये सिद्धोपाय ईश्वर है और साध्योपाय भक्ति आदि हैं । ईश्वर सिद्ध उपाय होनेपर भी उनका उपायवेन हृदयवसायके साथ धरण करना आवश्यक है—यही शरणागति है । शरणागतिके प्रधान शरय्य वस्तु है, शरणागतिकी सफलताके लिये पुरुषकारकी आवश्यकता है, अतएव वह अङ्गभूत है ।

मोक्षरूप परम पुण्यार्थ-सिद्धिके लिये जो शरणागति की जाती है, वह यदि आवश्यक समस्त गुणपूर्ण व्यक्तिके विषयमें की जाय, सभी सफल होती है, अन्यथा श्रीरामचन्द्रजीकी समुद्रदेव-शरणागतिके समान निष्फल होती है । श्रीराम-कृत समुद्र-शरणागतिके निष्फल होनेका कोई कारण है तो नहीं है, और कोई नहीं ! श्रीरामचन्द्र भगवान्ने जो समुद्रकी शरणागति की थी, उसमें किसी प्रकारकी गृष्टि नहीं दिलायी जा सकती । उसमें करनेवालेकी चोरसे कोई अभाव नहीं बतलाया जा सकता । अतएवमें जिन गुणोंका होना आवश्यक है, समुद्रमें उन गुणोंके अभावके कारण ही, वह शरणागति निष्फल हुई । अतएव मोक्षार्थ-शरणागति जिन परमात्माके विषयमें करनी चाहिये, उनका समस्त गुणपूर्णत्व श्रीरामायणमें विस्तारके साथ वर्णित हुआ है ।

परमात्मा श्रीमन्नारायणके गुणोंका

सर्वत्र ही मिश्रण ।

वासवस्य, सौमीयस्य, सौत्रम्यस्य, ज्ञान, शक्ति आदि जिन मुख्य गुणोंकी आवश्यकता शरय्यमें होती है उनका श्रीरामचन्द्र भगवान्में होना श्रीरामायणमें अनेक स्थानोंमें स्पष्ट वर्णित है ।

वासवस्यगुण-दोषभोग्यत्व या दोषादसिद्धको कहते हैं, दूसरोंके दोषोंकी गुणके रूपसे ग्रहण करना अथवा दोषोंको न देखना यही वासवस्य है । युद्धकार्यके १८ वें सर्गमें श्रीरामचन्द्र भगवान् कहते हैं—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं क्रयजन ।

दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदपिहितम् ॥

अर्थात् जो मित्रभावसे धाये, उसको मैं किसी हान्यमें नहीं छोड़ सकता, उसका धाये कोई दोष ही क्या न हो, सगुणोंके लिये वह निन्दनीय नहीं है । यह उक्ति श्रीरामचन्द्र भगवान्के वासवस्य-गुणका प्रमाण है ।

महान् पुरुषका अथनेसे छोटे पुरुषोंके साथ अस्मिन् भावसे मिलनसार स्वभावका नाम सौमीयत्व है । यह गुण श्रीरामचन्द्रजीमें वर्तमान था । इसके कई प्रमाण हैं । अयोध्याकार्यमें श्रीरामके गुणोंका वर्णन करते हुए अयोध्यावासी जन दशरथके सामने कहते हैं—

संभ्रातृपुनरागम्य कुञ्जरेण रथेन । वा ।

पीरान् स्वजनवित्तं कुशलं परिपृच्छति ॥

व्यसनेषु मनुष्याणां मूर्धे भवति दुःखितः ।

उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥

अर्थात् श्रीराम जब दण्डयात्रासे लौटकर आते हैं तब नगरवासियोंसे स्वजनके समान कुशल-प्रश्न करते हैं । नगरवासियोंके दुःख देखकर स्वयं दुःखित हो जाते हैं । उनके उत्सवमें जैसे पिता पुत्रके उत्सवमें सन्तुष्ट होता है वैसे सन्तुष्ट होते हैं ।

विषयद गुहके साथ श्रीराम किसप्रकार मिलते थे यह बात—“शुजाभ्यां साधुपीनाभ्यां पीडयन्त्याभ्यमनवीत्” इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है । अपनी शुजाओंसे गुहको धार्मिकन करते थे । विभीषणको धत्रीकार करनेके पश्चात् उनके साथ भगवान् रामचन्द्र इसी प्रकार मिले थे—“एतौ शुजाय रामस्तु परिभ्रम्य विभीषणम्” विभीषणका भी धार्मिकन रामचन्द्रने किया था । यह सुगुरीलताका ही कार्य है ।

श्रीरामचन्द्रका सौत्रम्यगुण सर्वविदित है । ‘सर्वसं-मित्रतरमन्त्रिदीनात्मा विश्वधृक्’ यह श्लोक सौत्रम्यगुणका

प्रमाण है। इसमें कहा गया है कि सत्पुरुष सर्वदा उनके पास पहुँचते रहते थे।

भगवान् श्रीरामचन्द्रका ज्ञान 'बुद्धिमत्प्रोक्तिमान्गामी' 'बदरसी वानसम्पन्नः' 'बेरवेदाद्गतव्रतः' 'सर्वशास्त्रभेदरक्षणः' 'रक्षितमार्गपीतमानवान्' इत्यादि स्थलोंमें उल्लिखित हुआ है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शक्ति-प्रशंसितपटनासामर्थ्य उनके चरित्रमें यत्र-तत्र देखने योग्य है। काकासुरकी प्राय-दान करना, सुग्रीवकी रक्षा करना, चण्डल्याका उद्धार, जटायुको मोच देना अयोध्यावासी जन्तुमात्रको साम्प्रतिक लोक पहुँचाना, समुद्रको प्रलुभित करना इत्यादि कार्य उनके शक्तिके निदर्शन हैं।

शरत्पुरुषवर्णनके साथ पुरुषकार-रूपका भी वर्णन श्रीरामायणमें हुआ है। सुपुत्रुश्योंकी भगवच्चरित्रगायतिमें श्रीमहाजन्मीजी ही मुख्य पुरुषकार होती हैं। श्रीरामायणमें श्रीजानकीजीके पुरुषकारत्वोपयुक्त गुणोंका वर्णन विशेषरूप-में हुआ है। पुरुषकारमें रथप और रथक दोनोंके साथ वैशेष सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। जानकीजीके रूपमें प्रवृत्तियों श्रीमहाजन्मीजीमें भगवान्के साथ पत्नीत्व-सम्बन्ध प्रीर चेतनोंके साथ मातृत्व-सम्बन्ध वर्तमान है। अतएव महाजन्मी अर्थात् पुरुषकार मानी गयी हैं। उनके पुरुषकारत्वोपिप्त गुणोंका वर्णन श्रीरामायणमें है।

जैसे श्रीरामायण श्रीरामचरित्र-वर्णनपर है वैसे ही श्रीसीता-चरित्र-वर्णनपर भी है। अतएव इस काव्यका नाम सीताचरित भी है। राज-काव्यके षोडशमें—

काव्यं रामायणं कल्पेन सीताचारचरितममहत् ।

समम रामायणको सीताका चरित बताया है। पुरुषकार होनेमें कृपा, परतन्त्रता, अनन्याईत्व इन तीन गुणोंकी आवश्यकता होती है। श्रीजानकीजीमें ये तीनों गुण विशेषरूपमें वर्तमान थे। इस बातका वर्णन श्रीरामायणमें है।

श्रीजानकीजीका अज्ञानमें अशोकवनिकामें बन्दिनीके-रूपमें इस महीने रहना ही उनकी कृपाका सूचक है। जैसे भगवान्का रामावतार देवताओंके वध-निवारणार्थ हुआ और उनका वनवास दुखी महर्षियोंके दुःख-निवारणार्थ हुआ, इसी प्रकार श्रीमहाजन्मीजीका अवतार भी चेतनोद्धारके लिये ही हुआ था, और अशोकवनिकावास बन्दीरूप देवार्थि स्त्रियोंके उद्धारके लिये ही हुआ। कृपा का दया दूसरोंके दुःखको दूर स्वयं दुखी होनेको कल्पे

है। देवस्त्रियोंके दुःखसे दुखिनी हो स्वयं तत्समान भावसे बन्दिनी बन उनके दुःखोंके निवारणके लिये अशोकवनिकामें वास करना आपकी कृपाका ही कार्य है। श्रीजानकीजी असमर्थताके कारण बन्दिनीके रूपमें अशोकवनिकामें वास करती थीं—ऐसा कहना उनके सामर्थ्यसे अवभिज्ञोंकी उक्ति है। श्रीजानकीजी चाहतीं तो रावणको भस्म कर सकती थीं। श्रीजानकीजीने रावणके प्रति इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें कहा भी है—

असन्देशात् रामस्य तपसश्चानुपाठनार् ।

न त्वा कुर्मि दशग्रीव भस्म भरमाहतेजसा ॥

अर्थात् 'श्रीरामकी आज्ञा न पाने और तपस्याके रक्षाकी इच्छासे ही मैं तुमको अपने तेजसे भस्म नहीं करती हूँ।' इससे प्रकृत है कि 'नहीं तो कर देती।' धीरनुमाके पूर्वमें जबते हुए अग्निको शीतल करनेके लिये जो जानकीजी अग्निको 'शीतो भव इनुमतः' कहकर आज्ञा देनेका सामर्थ्य रखती थीं, तथा उनमें 'अग्नी कुल दशग्रीवम्' कहनेका सामर्थ्य नहीं था। जानकीजीका बन्दीवास ही उनके दया आदि गुणोंका सूचक है।

संसारी चेतनोंके दुःखोंको दूर धसद्विष्यु हो, उनके दुःखोंके निवारण करनेके लिये स्वयं पुरुषकार बन ईश्वरसे प्रार्थना कर समस्त अपराधोंकी क्षमा कराकर उनके उद्धारका प्रयास करनेके लिये कृपाकी आवश्यकता होती है।

स्वतन्त्र परमात्माको अपने वशमें कर उनसे चेतनोंका कार्य करा खेनेके लिये ईश्वरानुवर्तन करनेकी आवश्यकता होती है। अतएव भगवत्परतन्त्रतारूप गुणकी भी आवश्यकता पुरुषकारमें है। भगवान् इनके वचनसे चेतनोंका उद्धार कर दें, इसके लिये अर्थात् इनके वचनानुसार कार्य करनेके लिये अनन्याईताकी भी आवश्यकता होती है। भगवान् त्रिनको अपने परतन्त्र समझे और अनन्याई समझें उनके वचनोंके अनुसार कार्य करना उनके लिये आवश्यक हो जाता है। अतएव परमात्माको वशमें करनेके लिये परतन्त्र्य और अनन्याईत्व इन दो गुणोंका पुरुषकारमें होना आवश्यक है। श्रीजानकीजीके ये दोनों गुण श्रीरामायणमें दो घटनाओंके द्वारा प्रकटित हुए हैं।

द्वितीय बार जब जानकीजीको श्रीरामविद्योग हुआ, अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीका परिचय किया, तब अरम्यजीके द्वारा वनमें छोड़ी जानेके बाद अत्यन्त शोकाकुल श्रीजानकीजी शरीर त्याग करनेकी इच्छा होनेपर

Handwritten text in vertical columns, likely a manuscript or ledger. The text is dense and covers most of the page.

Handwritten text in vertical columns on the right side of the page, appearing as a separate section or entry.

Handwritten text in vertical columns, possibly a signature or a specific note, located below the main right-hand text.

Handwritten text in vertical columns at the bottom right of the page, continuing the content or providing a conclusion.

बापस खानेके लिये जाकर भी उनकी आज्ञाके बराबरी होकर पादुकाको ले बापस झयोपवा पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार राज्यकार्य चलाते रहे। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीके सिंहासनारोहणके बाद भी उनकी आज्ञाको विरोधार्थ करते हुए युवराज बने। श्रीलक्ष्मणजी तो उनकी परिचर्याकी ही प्रधान मानकर जीवराज्यको उस सेवाका विरोधी समझ कर श्रीरामचन्द्रजीके हजार समकानेपर भी जीवराज्य स्वीकार करनेमें सहमत नहीं हुए। परन्तु भरतजी केवल भगवत्-पातन्त्रताको प्रधानता देनेवाले होनेके कारण सेवामें विरोधकी भावनें हुए भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार युवराज बने।

सर्वान्मना पर्यनुनीयमानो

यदा न सीमित्रिदरपति योगम् ।

निपुज्यमानो भुवि जीवराज्ये

ततोऽभ्यपिबद्धरतं महात्मा ॥

अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रके सर्व प्रकारसे समकानेपर भी आज्ञापित होनेपर भी लक्ष्मण एवं जीवराज्य स्वीकार करनेको राजी नहीं हुए तब भरतको जीवराज्यमें अभिषिक्त किया। इसके यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीलक्ष्मणजी केवल सेवानिष्ठ थे और भातजी आज्ञाकारी थे। दोनों ही दोनों स्वरूपके पात्रक थे, किन्तु एक एकको मुख्य स्थान देते थे तो दूसरे दूसरेको मुख्य स्थान देते थे। श्रीलक्ष्मणजीकी सेवानिष्ठा उस समयकी घटनासे भी स्पष्ट हो जाती है, जब कि भगवान् श्रीरामचन्द्र जनवासके लिये तैयार हो रहे थे। उस समय भी भगवान् श्रीरामचन्द्रने श्रीलक्ष्मणजीको अधोपायमें रहकर मातृ-पितृ श्रद्धा करनेकी आज्ञा दी थी, किन्तु श्रीलक्ष्मणजी वनमें साथ रहकर श्रीराम-जानकीकी सेवा करना ही अपना प्रधान स्वरूप समझते हुए, वारंवार प्रार्थना करते श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति प्राप्त कर धयेष्ट सेवामें लग गये।

वेदान्त-शास्त्रमें धनैक अधोकार निरूपण होनेपर भी प्रधान हीन धर्म माने जाते हैं। यहूदा परताव, दूसरा ताबन और तीसरा फल। वेदान्तदर्शन-अष्टाध्यायके चार अध्याय हैं, उनमें दो अध्याय तो प्रकृतस्वरूप निरूपणपर हैं, एक साधन निरूपणपर है और एक फलनिरूपणपर है। प्रथमाध्याय सम्यक्साध्याय कहलाता है। उसमें किमिच्छार समस्त वेदान्त भाग एक प्रकृतत्वका निरूपण प्रका है यह बात बतलाना सही है। दूसरा अध्याय

धविरोधाध्याय कहलाता है, उसमें प्रथमाध्यायमें कही हुई भावोंपर जो विरोध उद्भावित हुए, उनका निराकरण करते हुए उसको दृढ़ किया गया है। जीवत्वका निरूपण तो प्रकृतत्व किया गया है। तीसरे साधनाध्यायमें मोक्ष-साधनोपायोंका निरूपण हुआ है। चौथे फलसाध्यायमें मुक्ताभाषाओंके प्राप्य फलका निरूपण हुआ है।

वेदान्तशास्त्रके उपर्युक्त श्रीरामायणमें भी उन्हीं अध्यायोंको चरित्ररूपमें निबद्ध किया है, मुख्य पात्रोंके अनुष्ठानोंके द्वारा उनका स्पष्टीकरण हुआ है। परतावका निरूपण विस्तारके साथ और साधनका निरूपण भी विस्तारके साथ हुआ। फलका निरूपण संक्षेपमें हुआ। जीवत्वरूप आदि का ध्यान भी यथोचित हुआ।

इसने श्रीरामायणके मुख्य प्रतिपाद्य धर्मोंमेंसे कुछका ही बहोपर स्पष्टीकरण किया है। श्रीरामायणके प्रतिपाद्यार्थ यथारह माने जाते हैं। उन सबके ध्यान करनेसे निदग्ध बहुल बढ़ा हो जाता, इसलिये प्रोष दिया है।

चौबीस हजार श्लोकवाला श्रीरामायण चौबीस अध्यायोंवाली सावित्री गायत्रीके आध्यायपर रचित हुआ है। गायत्रीके प्रथमाध्यायसे श्रीरामायणका प्रारम्भ और अन्तिम अध्यायसे समाप्ति हुई है। गायत्रीका प्रथम अध्याय 'त' है, श्रीरामायणके प्रारम्भके श्लोक 'तत्परत्वाध्यायनिरागन्' में तकार आध्याय है। गायत्रीका अन्तिम अध्याय 'द' है, श्रीरामायणका अन्तिम श्लोकका अन्तिम अध्याय भी 'द' है। उत्तररामायणके ११० वें श्लोकके अन्तमें, यहाँ कि श्रीरामायणकी कथा समाप्त हो जाती है यह श्लोक है—

ततस्तमाम्रान् सर्वान् स्थान् लोकागुरदिभिः ।

दृष्टः प्रमुदितेदेवैर्काम विदिवामहत् ॥

इसमें अन्तिम अध्याय 'द' है। इसके आगे जो एक श्लोक है, वह केवल फलस्वरूप है। प्रत्येक हजार श्लोकोंके अन्तमें गायत्रीके अध्याय क्रमसे पढ़े हुए हैं। प्रथम चौबीस अध्यायोंका होता है। उसी हिसाबसे देवता होगी। अतएव गायत्री-प्रतिपाद्यार्थ और रामायण-प्रतिपाद्यार्थ एक ही होगा चाहिये। गायत्रीमन्त्रमें जगत्कारणभूत सविता—परमात्माके वैश्रीमय स्वरूपकी उपासनाका ध्यान है, जो समस्त पादियोंकी बुद्धियोंकी सेवा करने है, अतएव बही परमात्मा रामरूपी श्रीमद्भारतीय भगवान्ही श्रीरामायणके प्रधान प्रतिपाद्य हैं—यह स्पष्ट है।

## रामायण

गीता और तुलसीदासकी रामायणके संगीतसे जो रूढ़ि और उत्तेजना मुझे मिलती है वही और किसीने नहीं मिलती। हिन्दूधर्ममें तो यही दो ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके विषयमें कहा जा सकता है कि मैंने देखे हैं।

तुलसीदासजीकी श्रद्धा अलौकिक थी। उनकी श्रद्धाने हिन्दू-संसारको रामायणके समान ग्रन्थका भेंट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबिले उसकी विद्वत्ताका कोई महत्त्व नहीं रहता। श्रद्धा और बुद्धिके चित्र भिन्न-भिन्न हैं। श्रद्धासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिये अन्तःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे वाह्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है। परन्तु उसका अन्तःशुद्धिके साथ कार्य-कारण-जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिशाली लोग अत्यन्त चरित्रदूषण भी पाये जाते हैं। मगर श्रद्धाके साथ चरित्रसूक्ष्मताका होना असम्भव है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि एक बालक श्रद्धाकी पराकाष्ठातक पहुँच सकता है और फिर भी उसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे? इसका उत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। भक्तिके, सत्संगसे श्रद्धा प्राप्त होती है। जिन्हें सत्संगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, उन्होंने—'सत्संगतिः कथय किं न कृतेति पुंताम्' वचनासूत्रका अनुभव अवरय किया होगा।

मैं तुलसीदासजीके रामायणको भक्तिमार्गका सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। (नवजीवनसे) — महात्मा गाँधीजी

## रामायणका नित्य पाठ करो

(महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय)

रामायण और महाभारत हिन्दुओंकी अतुल सम्पत्ति है। मुझे इनके अध्ययनसे बहुत सुख मिलता है। रामायणमें हिन्दू-सम्पत्ताके जिस ऊँचे आदर्शका इतिहास है, वह सदा पढ़ने और मनन करने योग्य है। रामायणको कफइना उसका अपमान करना है। उसमें तो भक्तिरसका प्रवाह बहता है जो जीवनको पवित्र कर देता है। रामायण हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आदर्श बतलाया गया है। मैं चाहता हूँ सब लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक रामायणका पाठ और उसमें बतलाये हुए मार्गपर चलकर हिन्दू-जातिको पुनः रामराज्यके सुख भोगनेवाली बना दें।

## रामायणका सन्देश

(साधु टी० पल० चखानीजी)

यद्यपि महाभारतके समान रामायण विधकोप नहीं है, तथापि वह महाभारतकी भाँति ही, एक महान् सांस्कृतिक धर्मग्रन्थ है। महाभारतके समान रामायण केवल विशिष्ट भारतीय साहित्य ही नहीं प्रस्तुत यह एक अमूल्य-धर्म-शास्त्र है।

सुरर शक्तीतकी एक निष्पन्न कथाकी भाँति नहीं, वरं एक मूढन सम्पत्ता, मशीन भारतके पुनर्निर्माणके लिये, एक सन्देश और एक सत्ता रखते हुए, जीवन-व्ययके रूपमें इसका मने मितरेने अध्ययन करना चाहिये।

... भवोपश-अपने घर विजयी है जब क्यों मर्यादने ध्वनी करते हैं। उन्होंने हुए। अतः इन पुराणन धर्मशास्त्रका — तदसः विषय (वचन्यासे विषय प्राप्त करो)।

यही बड़ी कलमें, मशीन गनोंमें, कायनकामनामें त विज्ञापितामयी सम्पत्ताके उपकरणोंमें नहीं, केवल तपस्या क्रियात्मक शक्तिमें ही संसारके नययुगकी धाराएँ निहित।

भारत पतितावस्थामें है किन्तु तब भी मेरा इत विधास है। उसका अद्यःपतन उसी दिन हुआ जब अरु अपनी तपस्याकी आन्तरिक भावना, अपने आदर्श का अपने धायको विस्मृत कर दिया।

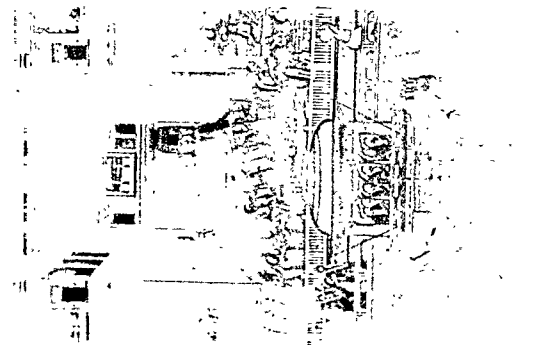
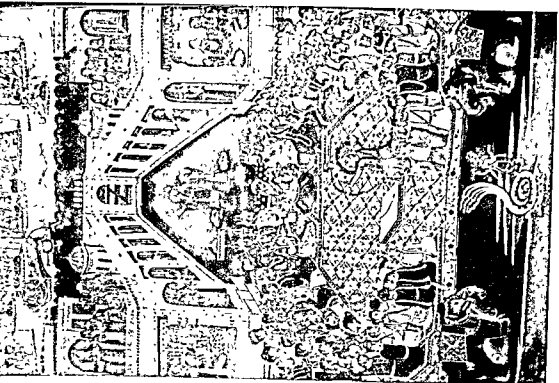
किन्ती पाश्चात्य राष्ट्रके अनुकरणसे नहीं, किन्तु ऐ चेतनासे-भगवान् रामकी इस चेतनासे ही हम मुक्त होंगे श्रीरामकी चेतना मष्ट नहीं हुई है। अतः भी हमें इन्द्रमें उसकी धायान् शुभायी देती है—हिंसा नहीं परापरकार नहीं, केवल तपस्या ही हमें मुक्त करेगी!



जयमाल ।  
मुक्त जुगत्पत्तन मान उद्यार् । त्रैम कियस वरिण न जाई ॥



जनकपुरमें दशरथजी ।  
नुप समीप सोहहि मुन चापी । जनु धन-धर्मादिक तन धारी ॥



## श्रीरामचरितमानसपर श्रीरूपकलाजीके वचनामृत

- १-विरक्ति और अनुरक्ति प्राप्त किया चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- २-श्रीमद्भगवद्गीताके गूढ़ तर्कोंका ध्यास समास समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ३-श्रीविष्णुपुराणका रहस्य समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ४-महर्षि मनु प्रभृतिकी स्मृतियोंका पण्डित हुआ चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ५-श्रीरामानन्द-मताब्ज-भास्करका तत्त्व समझना हो तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।

### वाल्मीकीय रामायणकी विशेषता

( लेखक-विद्वदर पं० श्रीबालकृष्णजी मिश्र )

कृजन्तं रामामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।  
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिंकोकिलम् ॥  
वाल्मीकिर्मुनिर्निर्दिष्टस्य कविता वनचारिणः ।  
शृष्वन् रामकथानादं को न याति पराङ्मतिम् ॥

१-वाल्मीकीय रामायण आदिकाव्य है। इसकी रचना किसी अन्य काव्यकी छाया लेकर नहीं की गयी है। इससे पूर्व लौकिक छन्दका ही अस्तित्व नहीं था, फिर काव्यकी तो बात ही क्या है ?

'आध्यायान्यत्र नूतनच्छन्दसोमवतारः'

—उत्तरचरित

२-काव्यके निर्माण करने तथा समझनेके लिये तीन बातें आवश्यक हैं,—(१) शक्ति। (कविःवमीजसंस्कारविशेष अर्थात् जन्मसे ही हृदयमें कविता करनेका एक विशेष संस्कार होता है; यह संस्कार अथवा शक्ति अर्जित नहीं अपितु ईश्वरप्रदत्त होती है) (२) स्थावर-जङ्गमात्मक संसारके समस्त विषयोंका बोध तथा काव्यशास्त्र इतिहासादि ग्रन्थोंके अध्ययनसे उत्पन्न हुई 'स्युत्पत्ति' (इसी स्युत्पत्ति अथवा आलोचनात्मक शक्तिके काव्यके बोध-गुणका ज्ञान प्राप्त होता है) और (३) काव्यशास्त्रके मर्मज्ञोंसे शिक्षा ग्रहण कर सन्तुष्टार काव्य-रचनाका अभ्यास। इन्हीं तीन विषयोंके सम्बन्धमें भालङ्कारशास्त्रके उद्भट पण्डित तथा काव्य-प्रकाशके रचयिता श्रीमम्मटाचार्य कहते हैं—

शक्तिर्निपुणता लेखकाभ्यशास्त्रार्थवेक्षणम् ।  
काव्यशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

—काव्यप्रकाश

इस श्लोकमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसमें तीनों शक्तियोंके लिये 'हेतुः' शब्दका प्रयोग न करके 'हेतुः' शब्दका ही प्रयोग किया गया है। इस एकवचनान्त 'हेतुः' शब्दका प्रयोग ठीक है क्योंकि इसका तात्पर्य तीनों शक्तियोंके सामञ्जस्यसे है। काव्य-निर्माणके लिये इन तीनों शक्तियोंकी

एक साथ ही आवश्यकता है। इसीलिये मम्मटाचार्यने लिखा है—

इति त्रयः समुदितो न तु व्यस्तास्तस्य काव्यस्योद्भवे  
निर्माणे समुद्भासे च हेतुः न तु हेतवः ।

—काव्यप्रकाश

किन्तु वाल्मीकीय रामायणकी रचना तो बिना ही किसी प्रसिद्ध सामग्रीसे हुई है। इसकी कथा इसप्रकार है, एक समय भगवान् कृष्णका सम्पादन करनेके लिये तपस्वी वाल्मीकि तमसा नदीके तटपर गये थे, वहाँ हठात् उनकी दृष्टि, ध्यायद्वाता निहत एक काममोहित क्रीड पक्षीके ऊपर पड़ी, उसे देख महर्षिको शोक हुआ और वही शोक अनुष्टुप्छन्दके श्लोकरूपमें परिणत होकर उनके मुखकमलसे प्रकट हो गया। ध्वन्यालोकमें लिखा है—

सहचरविरहकातर क्रीष्ण्यक्रन्दजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः ।

अर्थात् अपने सहचरके वियोगसे कातर क्रीड पक्षीके हृदयसे उत्पन्न हुआ शोक ही श्लोकके रूपमें परिणत हो गया। श्लोक इसप्रकार है—

मा निषाद । प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

वत् क्रीडमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

—वाल्मीकीय

भगवती सरस्वतीने यह वरदान दिया कि जो इस श्लोकका सर्वप्रथम पाठ करेगा, उसे 'सारस्वत-कवि' प्राप्त होगा। परमा—

यः प्रथममेतस्यैष्यते स सारस्वतकविः सप्त स्यते ।

—वाल्मीकीय

उसी समय भगवान् चतुराननने धाकर धाडा दी कि 'हे श्वेते! धारिके! धार शब्दात्मना प्रकाशमान् मण्डलतपके पूर्ण शास्ता है। धराः श्रीरामचन्द्रजीके चरितकी रचना कीजिये। धारकी दृष्टि अमतिहत प्रकाशसम्पन्न हो जायगी—





१०-षष्ठादशपुराणोंके प्रयोजता महर्षि-व्यासने भी रामायणकी बड़ी प्रशंसा की है। व्यासजी महर्षि वाकमीकिके विषयमें कहते हैं—

षडुक्तिमुद्रासुहृद्दर्शनीभिः,

कथारसो यदनुवृत्तैश्चतुर्गुणैः ।

तथाऽमृतस्यन्दि च यदचक्षितं

रामायणं तत्कवितृन्मुनाति ।

—बालभारत

चातुर्मीकीय रामायणमें सर्वप्रधान ध्वनि धीररस है। ध्वन्यान्वय रसोंका भी अक्षररूपसे यथास्थान प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा हृत्वी प्रशंसक है कि उसके प्रभावसे पढ़नेके साथ-ही-साथ उन रसोंकी प्रतीति होने लगती है। इस महाकाव्यके प्रधान नायक, धीरोदात्त, अनुकूल, मर्यादापुत्रपोसक, पार्थिववंशावतंस, आदर्श तथा प्रीतिपिण्ड पुरुष भगवान् रामचन्द्रजी हैं।

राम एव परं ब्रह्म राम एव परन्तपः ।

राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥

—राघवहस्तोपनिषद्

मो ह वै श्रीरामचन्द्रः सनगवानद्वैतपरमानन्दभद्रमा।

—रामोत्तरतापिनी उपनिषद्

अहो प्रासादिकं रूपमनुभवथ पावनः ।

स्थाने रामायणकविर्द्वैती वाक्यमवीरुवत् ॥

—उत्तरचरित

धीरोदात्तके लक्षण—

महासहोऽतिगम्भीरः क्षमावलविकल्पनः ।

स्वियो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥

—दशरूपक

महान् वीर, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान्, ध्याय्यस्थाघाते हीन, धीर, आत्मभिमाणी धीर दृढव्रती होना—ये धीरोदात्तके लक्षण हैं।

किसी भी स्थलपर श्रीरामचन्द्रमें आत्म प्रशंसाका शेष भी नहीं दिखता। धीरता भी नहीं पड़ती; धीरताकी उचितकी देखिये—

‘हतापराधस्य हिते नान्यत्पश्यामहं क्षमम् ।

अन्तरेणालसि बन्धा हृदयमणस्य प्रसादनात् ॥’

मो चैह्लसमणमुक्तमार्गमणणच्छेदोच्छेदलक्ष्योपि

च्छेदच्छेददिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्कृतो मास्यति ॥

—हनुमन्नाटक

दिव्यैरिन्द्रमिदं ब्रह्मणश्चरितैर्लोकान्तर् प्रापितः

केनाप्यत्र मृगाधि ! शशसंपतः कृतं च कथयन्ती ॥

—बालरामायण

हैं, धीरामने जहाँ तहाँ निन्दाके प्रसङ्गोंमें तो अपना नाम अक्षर लिखा है। यथा—

रामस्य नादुरासिभिर्भगर्मसिज सीताविभासनपटोः करुणा कुतस्तं ।

—उत्तरचरित

यह तथा चमाके तो प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। इनके सम्बन्धमें लिखना ही स्वार्थ है। अत्र रह गयी गम्भीरता, उसका भी दिग्दर्शन कराता हूँ।

आहूतस्याभिषेकाय विवृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वप्नोऽप्याकार विभ्रमः ॥

—वाक्यमीकीय रामायण

प्रतिनायकके वर्णनसे प्रधान नायकके उल्लेखकी वृद्धि होती है। इसका भी सुन्दर तथा युद्धकायदमें बड़ी स्त्रीके साथ वर्णन किया गया है। यथा—

यद्यमो न बलवान् स्वार्थे शक्यतेऽवरः ।

स्वार्थे सुरलोचस्य स शक्यस्यापि रक्षिता ॥

—वाक्यमीकीय रामायण

महाकाव्यके लक्ष्यके अनुसार इसमें प्रतिस्पर्धके ध्वनत्तै सुन्दरोंका परिवर्तन तथा निम्नलिखित विषयोंका बड़ी कुशलताके साथ चित्रण किया गया है—

प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या, रात्रि, अस्त, चन्द्र, सूर्य, शैल, वन, नदी, समुद्र, अग्नि, आश्रम, यज्ञ, नीति, युद्ध आदि। उपयुक्त रेखाङ्कित विषयोंके सम्बन्धमें नीचे लिखी सूक्तियाँ पढ़नेसे पाठकोंको ध्वनत्तः वर्णन-शैलीका पता तो अक्षरय लग जायगा।

‘चक्षुषश्चन्द्रकरस्पर्शहर्षेर्नीलिततारका ।

अनुरागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥

शक्यमम्बरोरुह मेघसोपानपकिमिः ।

वृष्टार्जुनमलामिहलङ्कृतुं दिवाकरः ॥

नहन्ति वर्षन्ति नदन्ति मान्ति

ध्यायन्ति नृत्यन्ति समादवसन्ति ।

नद्यो घनामृतामृतामन्ताः

प्रियाविहीनाः शिखिनः प्रवहन्ताः ॥

दर्शयन्ति शरजघ्नः पुत्तिनाभि शनैः शनैः ।

नवसङ्गमसौदा जघनानीत योषितः ॥

सारं यह कि श्रीवाक्यमीकीय रामायण महाकाव्यके समस्त लक्ष्योंमें आदर्श है।

# श्रीमद्रामायण

( अंक १०८ पृष्ठ १४ पं० ६० रामचन्द्रमहाराज की महाराज, श्रीमानकीपार, श्रीमदोष्णानी )

अधर्मेतपेरीप तापिनीपोपनिपत्के 'परममार्ग चरित्रेण' इत्य चाक्षयसे श्रीमद्रामायणमें सर्वधर्म साधनवच पूर्वतया भवगत है । मानव-जीवनको सार्थक बनानेके उपायोंको सुगमनाके साथ जाननेके लिये रामायण ही सार्थोत्तम साधन है । इसी एक कारणसे केवल भारतीय चिन्तनमण्डली ही नहीं किन्तु इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देशोंके समाजतत्त्वविद् पण्डितों तथा दार्शनिकोंने भी मुक्तकण्ठ होकर इसकी महिमा गायी है । ईश्वरके सभी आधिभांय सर्वकल्याणगुणपूर्ण तथा सर्वके विशेषकारण ही हुए हैं, परन्तु रामायणकाव्यके नायक परब्रह्म श्रीरामजीमें सर्वगुणोपलब्धिकी कुछ विशेषरूपेण रूपसे स्वीकार किया है । एक कविकी षष्ठी ही हृदयङ्गमा मूक्ति है—

अकर्णमपरोक्षेयं विधिर्मदाण्डभङ्गधीः । गुणानाकर्ण्य रामस्य शिरः सन्नाडयेदिति ॥

अर्थात् सूक्ष्मचिन्तित विधिसे शेषजीको इसलिये बिना कानके बनाया कि यदि कान रहें तो भीराम-गुण सुनकर ये शिरःचालन करेंगे, अतः ब्रह्माण्ड भङ्ग हो जायगा ।

## राम-विरहके आँसू

पार-धार बूझत कहा ? अरे मीत ! कुसलगत ।

जग-जीवन जोये बिना, जीवन बीतो जात ॥

राम-विरह-रस दूग यहँ, हेनर ! अँसुआ हैं न ।

निरखि नेह करि नेह मरि, नेह त्रियेनी नैन ॥

रहे अपावन क्यों मिलँ, जग-पावन सुख-पेन ।

राम-दरस भावत इन्हँ, नित न्हायत यों नैन ॥

सुकृत सुमन विकसित करन, राम-दरस फल लैन ।

सौँचत लता सनेहकी, निस-दिन माली नैन ॥

मुकता मनि अँसुआ अमल, कत दरकत दिन रैन ।

हरि उर पहरावन अहो ! हार बनायत नैन ॥

हरि-दरसन-हित सब तजे, अज्ञन, रञ्जन, चैन ।

अँसुआ-कन-मुकतानको, दान करत नित नैन ॥

विरह अगन धूनी तपै, राम-नाम सुख दें ।

अँसुआ-कन माला लिये, जपँ जोगिया नैन ॥—श्रीमद्भक्तकाल माडुर

## रामचन्द्र मंगल करे

(लेखक—२४०५० भाषवपसादजी मिश्र सुदर्शन-सम्पादक)

कौशलत्याके सुत दशरथके प्राणाधिकवर,

बन्धु भरतके वीर सुमित्रा-सुतके प्रियवर ।

वशिष्ठके शिष्य जनकजाके मनभावन,

देव विभीषणके प्रभु-पावन ।

काल हैं, सन्चारक शुभकर्मके,

मंगल करे नाथ सनातन धर्मके ॥

## शंकर और राम

(लेखक—श्रीमद्भुवनरासजी केविया)

शंकर छबीले रामहसि रमनीय-रूप,

शंकरसे राम कमनीय छवि-धाम हैं

राम अनुहार एक औदर-उदार ईस,

ईससे उदार राम पूरे सब काम हैं

राम-नाम हेतु-उपराम सिव-नाम ही सो,

राम-नाम ही सो अभिराम सिव-नाम है

पोषक प्रजाके प्रान सोषक सुरारिनेके,

रामके समान संभु संभु सम राम है ।

## मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

( लेखक—राज बहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल०एल० बी० )



शु श्रीरामचन्द्रको मर्यादा-पुरुषोत्तम और श्रीकृष्णको लीला-पुरुषोत्तम कहते हैं। यह संज्ञा उत्तर हिन्दुस्तानमें ही प्रसिद्ध है, महात्मा या दक्षिणमें कम है। पुरुषोत्तमका अर्थ है—परमात्मा—

उत्तमः पुरुषस्तन्मः परमात्मेतुदादितः ।

× × × ×

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथिनः पुरोत्तमः ।

( गीता )

परमात्माके अनेक अवतारोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र अत्यन्त सरल, भौतिक-शेषक और प्रत्येक बातमें मर्यादा-को लिये हुए है। श्रीकृष्ण चरित्र बहुत कठिन और गूढ़ार्थ-युक्त है। उससे बोध प्राप्त करना सामान्यबुद्धि मनुष्यके लिये कठिन है। प्रभु श्रीकृष्णको अत्यन्त राक्षसोंसे लड़ना पड़ा था, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रत्यक्ष राक्षसोंसे लड़े थे। इसीसे श्रीकृष्ण-चरित्र लीलारूप है और श्रीरामका चरित्र मर्यादारूप है। श्रीराम-चरित्रकी मर्यादा-शेषकताको मैं इस छोटेसे लेखमें ब्याप्तति निवेदन करूँगा। चरित्र अर्थात् है, परन्तु अर्थात् शक्ति-प्रयुक्त अर्थात् विषयमें भी प्रत्येक प्राणी घोड़ा-बहुत तेज़ा चाहता ही है।

संसारमें प्रत्येक मनुष्यको पुत्र, बन्धु, मित्र, शत्रु, पति आदि सम्बन्धोंका व्यवहार करना पड़ता है और कुछ धन्य-पुरुषोंको राज्य भी करना पड़ता है। उत्तम पुत्र, उत्तम बन्धु-उत्तम मित्र, उत्तम शत्रु, उत्तम पति और उत्तम राजा आदि सभी बातोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र मर्यादारूप है और आज हजारों वर्षोंसे यह धर्म-जातिका धारण होकर हमलोगोंके धारणोंपर योद्धा-बहुत प्रभाव डाल रहा है। यही हिन्दू समाजकी धन्यता है कि उसमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका धारणभूत चरित्र परिणामकारक हुआ है। इसीलिये हिन्दू समाज इस विषयमें अन्य समाजोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस विषयपर मैं ब्याप्तति कुछ वर्णन करना चाहता हूँ।

प्रभु श्रीरामचन्द्र उत्तम पुत्र थे। यह तो सभी जानते हैं कि पिताकी आज्ञा पालन करना पुत्रका परम धर्म है, परन्तु धर्मकी परीक्षा विपत्तिकारणमें हुआ करती है, स्वर्णकी

परीक्षा अस्मिमें होती है तो हीरेकी हथौड़ेकी बोटमें। एक श्रीरामकी युवराजके पदपर प्रतिष्ठा होगी। इस धोषधारासे सभी उत्तममें ध्यानदमन थे, परन्तु प्रातःकाल ही यह आज्ञा हुई कि श्रीरामको १४ वर्षतक वनवासी होकर रहना पड़ेगा। प्रभु श्रीरामचन्द्रने इस आज्ञाको भी पहलीकी भाँति ही ध्यानदमे स्वीकार किया। 'पिताकी कड़ी आज्ञाका भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये' यह हमारे समाजकी मर्यादा है। यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ है, अतः उस पिताकी आज्ञानुसार बर्तना पुत्रका कर्तव्य है; परन्तु साधारण लोग तो पिताका धन खेना चाहते हैं, पितासे धन-व्यागकी आज्ञा नहीं खेना चाहते। वे धन चाँदनेके लिये घदाऊतमें दावा दापर करनेको तैयार हो जाते हैं। रामायणमें लक्ष्मणको शोधी बतलाया है। लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं, 'यूँ ब्याप कामान्य होकर सौतेली माके फन्देमें फँस गये हैं, आप उनको कैद करके राजगद्दीपर बैठिये। भरतसे मैं निपट हूँगा।' उत्तम और अन्धम पुत्रका यही भेद दिखाना गया है। प्रभु श्रीरामचन्द्रने भाईकी यह सलाह नहीं मानी बल्कि जाकर माता कैकेयीसे बोले, 'मैं आपकी आज्ञासे ही वनवासके लिये चला जाता, आपने मेरे पिताजीको धीरमें क्यों डारा?' तत्पर्य यह कि सौतेली माताके साथ भी प्रभु श्रीरामचन्द्रने अपना उत्तम पुत्रभाव निभाया।

भरत और श्रीरामचन्द्रके सम्भारणसे उत्तम-पुत्रका धारण सिद्ध ही है। भरतको राजा बनाते हुए या वनसे लौटाते समय प्रभु श्रीरामचन्द्रने उत्तम पुत्र और उत्तम बन्धु हन दोनों विषयोंमें आदर्श बर्तन किया है।

सुमीव और विभीषणके सम्बन्धमें उत्तम मित्रका भी आदर्श धारण दिखलाया है। स्वार्थ छोड़कर मित्रका कार्य करना पड़ता है और प्रतिज्ञापूर्वक उसको निवाहना पड़ता है। रावण अन्ततक प्रभु श्रीरामचन्द्रसे शत्रु बनकर लड़ता रहा परन्तु जब यह युद्धमें मारा गया तब प्रभु श्रीरामने विभीषणसे कहा—'मत्पत्न्यानि वैराणि' 'वस, वैर सुखयुक्त ही था। अब शत्रुता समाप्त हो गयी। अब तो यह जितना तुमको प्रिय है उतना ही मुझको है। अतएव ब्याप्तवैभ उसको उन्मत्तिया करो।' अश्लीलके द्वारा अस्मिदमे जानेकी भाँति हैश्वरकी आज्ञाकी तब श्रीरामचन्द्रजीने रावणकी आज्ञाको

रथके साथ रानीमे बाँधकर तमाम लंकाभरमें नहीं घसितयाया। देगी दयार्थता और भीमिजता कहाँ मिल सकती है ?

धर्मप्रभु श्रीरामचन्द्रके उत्तम पतिके बतारको देखिये। संसारमें धार्मों मनुष्य पति होते हैं और सभी, यथारथिक भीतिके अनुसार धर्मके प्रयत्न करते हैं, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र तो परमोत्तम और अद्वितीय है। उन्होंने राजा होकर भी आजीवन एकपत्नीव्रतका पालन किया। साधारण लोग इस उत्तमता तक नहीं पहुँच सकते। वनवासकी भाशा होनेपर उन्होंने सीताजीको दुःख और कष्टोंकी भीतिके धारण रखना चाहा, परन्तु श्रीसीता-चरित्रभी प्रभु श्रीरामचन्द्रके समान ही उत्तमोत्तम बलिके उससे बढ़कर है। हिन्दु-संसारमें कियोंका आचरण अन्य समाजोंकी अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है और वह सीताजीके उदार चरित्रके आदर्शको लेकर ही है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। सीताजीने कहा—

यस्तव्या सह स स्वर्गो, निरयो यस्तव्या विना।

(बा० रा० २।३०।१८)

‘आपके साथ जिस स्थानपर रहना हो वही स्वर्ग है और आपके बिना जहाँ रहना हो वह नरक है। जब पतिके साथ राज्य-भोग भोगे हैं तब पतिके साथ वनवास क्यों नहीं भोगना चाहिये ? सती स्त्रीको पतिके साथ सुख और दुःख दोनों ही भोगने उचित है।’ यह मर्यादा सीताजीने ही स्थापित की। श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको साथ लिया और परिणामस्वरूप सीताहरण हुआ। श्रीरामने पतिका कर्तव्य पालनकर रावणको मार सीताजीको छुड़ाया परन्तु किसी सन्देहसे उन्होंने ग्रहण करना अस्वीकार किया। सीताजीने परीक्षा देकर अपनी शुद्धता सिद्ध की। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र उनको साथ लेकर आनन्दसे अयोध्या लौटे और सीताके साथ राज्याभिषेकहुए। आधुनिक सुशिक्षित विद्वान् प्रायः ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि ‘इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके साथ जो बर्ताव किया वह क्या उत्तम पतिके योग्य है ?’

‘मालोकनादध्रवणदहासीः धृतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।’

ऐसा प्रश्न कालिदासने भी सीताके मुखसे करवाया है। अतएव इस विषयमें कुछ अधिक लिखना पड़ेगा। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि यह बर्ताव प्रभु श्रीरामचन्द्रने राष्ट्रधर्मके अनुसार किया था, पतिके सम्बन्धसे नहीं। सीताजी एक वर्षतक राक्षसके घरमें रही थीं। इसी दुनियादपर

१. चला या और अयोध्याकी प्रजाके अन्तःकरणमें राजाके

सम्बन्धमें कुछ धर्मानि फैलने लगी थी। जब श्रीरामचन्द्रने विचार करके यह निश्चिन्त किया कि तब कर्तव्य पतिके कर्तव्यमे भी श्रेष्ठ है। राजाका दुःख निकलना चाहिये। *Cesar's wife must be above suspicion.* मन्त्रोंने इस विषयमें बहुत ही सतर्क विचारप्रकट किये हैं। प्रजारायण राजका परम कर्तव्य है—

‘श्रेष्ठं दयाम् च प्राणं च अपि वा जनकीमरि।

अरायणान् श्रेष्ठानां मुञ्चता नान्ति मेभ्यसा।।’

‘मुझे मीमांसा प्राणोंमे भी अधिक मिय है परन्तु बड़े शरण उममे भी अधिक मिय और अधिक श्रेष्ठ जन्य है। इसलिये प्राण और प्राणमे भी मिय जानकीका भी मैं बर्ताव करूँगा।’ इस चरित्रमे यह राजाका मर्यादात्मक कर्तव्य प्रकट होता है धर्मार्थ यहाँ प्रभु श्रीरामचन्द्र किम प्रकार ‘उत्तम राजा’ थे, यह बतलाया गया है।

‘उत्तम’ राजाका कर्तव्य जैसे सोचारायण है वैसे ही ‘सत्यप्रतिज्ञ’ होना भी है। यह धर्म्य चरित्रभागने प्राप्त होता है। श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूटपर मुनिवृत्तिये रहने बने, भरतने यहाँ पहुँचकर वनवासकी प्रतिज्ञा त्याग करनेके लिये उनसे अत्यन्त आग्रह किया और कहा, ‘पिताजीने भाग मेरे लिये ही यह आशा दी थी परन्तु मैं राज्य नहीं चाहता। आप ही राज्य कीजिये।’ प्रभु श्रीरामचन्द्रने इसको इन्कार दिया। उस समय वसिष्ठ ध्यादि अनेक लोगोंने कहा कि ‘भारत राजा है तो प्रतिज्ञा पालनेकी आवश्यकता नहीं।’ भगवान् श्रीरामने भरतसे कहा, ‘तुम मुझे राज्य करनेके लिये ले जाते हो परन्तु जो सत्यप्रतिज्ञ नहीं है वह राज्य का योग्य भी नहीं है, क्योंकि राज्यकी प्रतिज्ञा ही सत्यपर। ‘सत्ये राज्यं प्रतिष्ठितम्’ असत्य बोलनेवाला अर्थात् राजा बन हो सकता।’ महारानी विकटोरियाका घोषणापर धनदोती सनद है। यों कहनेवाला कर्जन हमारे रामराज्यके आदर्श (Ideal) से कितना गिरा हुआ है। इस बातको ध्यान में सोच सकते हैं। प्रजारायण और सत्यप्रतिज्ञत्व इन दो गुणों पर ही रामराज्य प्रतिष्ठित था फिर वह सुखी क्यों नहीं होगा। यदि कभी प्रजाको दुःख हो तो उसका भी भार राजा का होता है, यह प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी उच्च भावना थी तार्थ्य, इस उदात्त राज-कर्तव्यकी कल्पना अन्य किसी भी राजा या राज्यमें दिलायी नहीं देती। इसीकारण प्रभु श्रीरामचन्द्रको हम ‘उत्तम राजा’ कहते हैं और ‘सुराज्यके उत्तम आदर्श’ (Highest ideal) रामराज्य बतलते हैं।

इस घोड़ेसे विवरणसे यह मालूम होगा कि हम प्रभु श्रीरामचन्द्रको 'मर्यादापुरुषोत्तम' क्यों मानते हैं? इतिहासमें इससे सर्वथा विरुद्ध विराटाका उदाहरण धीरंगजय है। अश्वमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ और अश्वमेध राजा आदि सभी विरोधी गुण उसमें वर्तमान थे। पिताको झूठकर, ज्येष्ठ यज्ञ द्वाराको मार और मर्यादा पहले मित्र बनके पीछेसे-उसका घात कर, उसने राज्य किया। अनेक शत्रुओंको उसने धोखेसे मारा। महाराज शिवाजीको शत्रु बनाया और उसके मरनेके बाद उसके राज्यपर धारण किया।

सायप्रतिष्ठाका विरोध तो यहाँतक किया कि शिवाजीके साथ पहले यह प्रतिष्ठा की कि तुम्हारे बालकोंके साथ भी कभी धोखा नहीं होगा। फिर दरबारमें बुलाकर उन्हें कैद कर लिया। प्रजाजनका विरोध इतना बढ़ा कि हिन्दू मात्र ही पीड़ित हो गये। हिन्दुओंके परमपूज्य स्थान तोड़े गये। तत्पर्य यह है कि धीरंगजयका राज्य रामराज्यसे अत्यन्त विरुद्ध था। इस विरोधी दृष्टान्तसे पाठकोंको श्रीरामचन्द्रके 'मर्यादापुरुषोत्तमत्व' की कुछ कल्पना होगी।

## मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा

( लेखक-राधाकण्ठ राजा धीरुर्जनसिंहजी )



अश्वमेध-यज्ञ, श्रीरामचन्द्र-प्राणाधार, जानकी-जीवन, वैश्व-निरीक्षण, भक्त-जन-रक्षण, दुष्ट-निकन्दन, शत्रु-हितकारी, शरणागत-भय-हारी, भगवान् श्री-रामचन्द्र महाराजके परम महत्त्वमय, श्रीजनकदुखारी-हृदय-कञ्ज-भूषण, श्री सीमित्रि-बन्ध-सरोज-लालित, पतिव्रत-पावनीश्री पुरुषुनी-प्रसूति-धाम पद्म-पद्मोंसे जो इस देव-दुर्लभ वस्तु-पत्ताको पावन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा स्थापनद्वारा कर्मव्याकर्षण-विमूढ़ संसारको अप-प्रदर्शन कराना था और इसी कारण श्रीभगवान् 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' के शुभनामसे अलंकृत किये जाते हैं।

इस महावपुषं और आदर्श अवतारका यह विमिन प्रसिद्ध है और इसके मुख्य-मुख्य कल्याणप्रद चरित्रोंमें भी, जो मर्यादा प्रतिष्ठार्थ उदाहरणीय समझे जाते हैं, स्थूल रूपसे गुप्त नहीं हैं। जैसे-साधुओंके परित्राण और दुष्टोंके विनाशद्वारा धर्मकी संस्थापना, गुरु-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, मातृ-प्रेम, एक पत्नीव्रत, वर्षाधर्मधर्मपालन, राजनीति और भ्रजा रक्षा, इत्यादि। परन्तु प्रत्येक चरित्रका क्या रहस्य है, और उसके भावोंकी सीमा कहाँतक है जो आदर्शरूपसे मर्यादा प्रतिष्ठार्थ ग्रहण किये जा सकें, इसका परिचय बहुत थोड़े लोगोंको है, अतः मुख्य मुख्य चरित्रोंपर अनुक्रममे किञ्चिन् प्रकार दालनेका प्रयत्न किया जायगा।

( १ ) ऐसे उदाहरणीय पावन चरित्रोंका अधीक्षण उस शोचदितरीखा लीलासे होता है जिसमें उस प्रतिष्ठाकी

पूर्विका आरम्भ हुआ है जो आपके प्रत्येक अवतारके लिये अनादि कालसे चली आ रही है। मर्यादा-

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।  
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥'

इसके साथ इससे प्रजापक्षका आदर्श भी प्रकट होता है—

जब श्रीविश्वामित्रजी अपने धनुषकी रशमके लिये दोभों मधुर-मूर्च्छि अनाताओंको साथ लिये आश्रमकी ओर यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें ताड़िका नामकी विकराल राक्षसी अपने घोर रौद्र-नादसे समस्त वनको सञ्जादित करती हुई इनकी ओर भ्रष्टी। उस समय श्रीभगवान्के सम्मुख धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक ओर अपने उपास्य साधु महात्माओंका भक्षण और प्रजाका चर्चण करनेवाली घात-तापिनी विराचिनी—जिसके द्वारा देशके चौपट होनेकी कथा श्रीविश्वामित्रजीसे अभी सुन चुके हैं—के वधका प्रसंग और दूसरी ओर स्त्री-जातिपर हाय उठानेके लिये दोष प्राप्ति-का प्रतिबन्ध, जिसका भय भी पूर्ण प्रचार देखनेमें आ रहा है। किन्तु साधु महात्माओंके परित्राण और प्रजाकी रक्षाके भावका उस समय भगवान्के हृदयमें इतना आवेश हुआ कि उन्होंने उसी क्षण उस दुष्टके संहारका कर्तव्य अध्यान्त-रूपसे निश्चित कर लिया। श्रीविश्वामित्रजी महाराजके निम्न-लिखित उपदेशसे भगवान्के निश्चयकी पुष्टि भी हो गयी—

नहि ते क्षीयन्ते घृणा कार्यं नरोत्तम ।  
चतुर्वर्ण्यद्वितीयं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥

( वा० रा० १२५।१० )

'हे नरोत्तम ! तुमको क्षीयण करनेमें ग्लानि करना

उचित नहीं। राजपुत्रको चारों वनोंके कल्याणके लिये समय-पर (आततायिनी) खीका वध भी करना चाहिये।'

नृशंसमनूदीसं वा प्रजारक्षणकारणात्।

पत्तकं वा सदसं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥

(वा० रा० १२५।२८)

'प्रजा-रक्षकके लिये क्रूर, सौम्य, पातकयुक्त और दोष-युक्त कर्म भी प्रजा-रक्षकको सदा करने चाहिये।'

जय साधु महात्मा सतापे जार्ये और प्रजा पीड़ित को जय तब उस सतानेवाली और पीड़ा देनेवाली खीका वध भी आवश्यकीय है। पुरुष आततायी हो तो उसके लिये क्रिती विचारकी भी आवश्यकता नहीं।

इस चरित्रमें एक और गहरा रहस्य भरा हुआ है—धी-मगवान्ने जो प्रथम ही खीका वध किया, इसमें उन्होंने संसारको यही शिक्षा दी कि जो कोई भी प्राणी मनुष्य जन्म धारण करके जगत्में धार्मिक जीवन निर्वाह करनेका संकल्प करे, उसके लिये प्रथम और प्रधान कर्तव्य यही है कि वह स्वयुद्धिके सद्मयोगद्वारा यथाराज्य मायाका दमन करे, क्योंकि मायाके जगज्जालमें कैमनेके बाद धर्मकी वेदीपर अपने धीवचनकी आहुति दे सकना मनुष्यके लिये असम्भव-सा है।

(२) चात्र-धर्मका क्या रहस्य है, इसका आदर्श इस विभिन्न चरित्रमें प्रकट होगा। परम माहुरलिक विवाहोत्सवके पश्चात् जब धीविदेहराजने विदा जेकर धीकौरान नरेश अपने हृदयजगदित धरणी राजधानी जगन्-पावनो अपोष्वा-पुरीको वधार रहे हैं तो राजमें क्या देखने हैं कि प्रत्यक्षित नेत्र और कदमने हुए होमेंवासे भयदर वीरवेरवारी अष्टदुःख-बिम्बान वीररघुतामसी उग्ररूप धारण किये धीतामके शीव-धनुर्धर्म करनेपर धरना मंत्र कोप प्रकट करने हुए वीरतामने कहने हैं कि 'कदि एम ह्य वैष्णव-धनुर्वमें शर वरानेको मारने हो तो तुमने मैं हनुपुत्र कर्हेगा।'

यहाँ भी विष्ट विलिखित उल्लिखित है। एक और तो केने पुस्तकी कोरने—किरने हुंराम वार पूलीको वत्रिपहीम का रिषा का और ह्य मलय धी वैने ही उग्रधर्मके लिये किर्णकः प्रकृति हुई है—हम अष्टारका बुदाष्टार कि किर्णको लकिक की वत्रिप-वेरकताका पुत्र एक कल को मारन नहीं का मकल करै तुमही कोर अकल-वेरके वत्रि हुंरामें पुत्र-कल। कल वारी कदि कल मलय तुमों को वरुता है वरणीर कदि बुदाष्टारको अकल कर उरने हनुपुत्र का वरता

उनपर प्रहार कर उनके प्राण लिये जाते हैं तो पुत्र नष्ट होता है और यदि पुत्रभावके विचारने युदा-उत्तरमें उनके चरखोंपर मसक रक्खा जाता है तो पुत्र तेजकी हीनता होती है। अतः यहाँ ऐसी विधि-प्र-होनी चाहिये जिससे दोनों भावोंका साम्य रहकर पक्षोंका महत्त्व स्थिर रहे और एक भावका हतता प्राप्त हो जाय कि जो दूसरेको दया दे। अतः सर्वोपरि श्रीभागवान्ने इस जटिल समस्याके समाधानरूपमें का

वीर्मेहीनमिवाशकं क्षत्रधर्मेषां भावं।

अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽथ पराक्रमम् ॥

(वा० रा० १७२।२)

'हे भृगुवंशी ! आपने एक धीर्बहीन और धार-धसमर्थ मनुष्यकी तरह जो मेरे तेजकी अवस्था की है लिये आज मेरा पराक्रम देखिये।' इतना कहकर भी उनसे धनुष ले उसी वण चढ़ा दिया। तदनन्तर क्रो-होकर कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च।

तस्मात्पठको न ते राम मौक्त्यं प्राणहरं शरम् ॥

इमौ वा त्वद्व्रतिं राम तपोव्रतसमाहितम्।

लोकानप्रतीमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥

(वा० रा० १७३।६,७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं, विश्वामित्र-वहिन सत्यवतीके पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण-करनेवाला पाण नहीं छोड़ सकता। किन्तु, मैं आपकी धयवा तपोव्रतके प्राप्त होनेवाले धनुषम कोशोंका वि-कर्हेगा।'

हम धर्मित प्रभावान्वित चरित्रका मुख्य उद्देश्य यह कि जब हृदयमें दो भावोंका एक ही साथ संघर्ष हो दोनोंको हृदयकारने समझानेमें ही बुद्धिमानी है कि एकका दूसरेके द्वारा पराभव न हो जाय, दोनोंकी रक्षा साथ ही धर्मका भी नारा न होने पाये। यहाँ सामान्य मरुतोंके लिये और विशेषतया चरित्रोंके लिये हृदय मरु-को रक्षाका उद्देश्य है। वह यह है कि जिसमें किर्ण-उग्रभाव उग्रच हों, किन्ती ही कोवामि धरनेके, किन्तु हृदय-जितमें पूव वा आरवबुद्धि है वह नष्ट नहीं होनी चर-माय ही वरता वरनेत्र भी वर रहना चाहिये। अर्थात्वाच धनुषम किर्णो वंशमें महाभारत युद्धमें भी व-या। वरुं संका उग्रच होनी है कि तपन धी तो म-



परशुराम-राम ।

जडो हुजे तदालोके रामे वरधनुर्धरे । त्रिवीचीं जाम्बवन्धोऽसौ रामो राममुदरक्षत ।





ही था, फिर श्रीभगवान्ने उसको कुलसहित क्यों मार काजा ? उसने तो केवल धर्मपत्नीका ही दण किया था, श्रीपरशुरामजीने तो इक्ष्वाकु वार सजावियोंका विनाश किया और इस समय भी वह स्वर्ण भगवान्का संहार करनेकी बुद्धिसे ही वहाँ आये थे। इन्द्रयुद्धका यही तो भयोजन था।

इस शंकाका समाधान करनेके लिये श्रीपरशुरामजीके चरित्रका कुछ परिचय आवश्यक है। एक बार श्रीपरशुरामजीके पिता धरण्यासेवी ब्रह्मनाथ तपस्वी श्रीजमदग्निजीकी संवत्स्वरूपा हविष्यानी गौको सहस्रबाहु अशुभ जवरदली छीनकर ले गया। परशुरामजीने युद्धमें उसका बधकर अपनी गौ बुझा ली। तदनन्तर सहस्राशुभके पुत्रोंने एकान्त पाकर जमदग्निका बध कर दाला। पून्य पिताकी हसमकार हृष्या होनेपर परशुरामजीकी क्रोधाग्नि भडक उठी और इन्होंने इक्ष्वाकु वार पृथ्वीको-निःशत्रिय करनेका संकल्प कर लिया।

परशुरामजी भी श्रीभगवान्के ही अवतार थे, अतएव इस कार्यको करके उन्होंने दुष्टकृतियोंको ही दण्ड दिया था, अतः दुष्टकृति रावणके साथ इनको तुलना नहीं हो सकती। इन दोनोंके आचरण परस्पर सर्वथा विपरीत थे। हाँ, यह धरण्या है कि श्रीपरशुरामजीका संकल्प क्रोधावेशमें सीमासे बाहर चला गया था परन्तु इस प्रकारके आवेशके निरोधकी शक्ति केवल श्रीमर्यादा-पुरोत्तममें ही थी, जिन्होंने किसी भी भाव या आवेशको मर्यादासे बाहर नहीं जाने दिया।

(३) धर्मयुक्त युद्ध राजनीति क्या है, इसका विषय भी श्रीभगवान्की इस धर्मशीला लीलाके द्वारा पूर्णरूपसे प्रकट होता है।

श्व महारानी श्रीकैकेयीने कोपभवनमें प्रवेशकर श्री-दुरथ महाराजको दो वरदानरूपी वस्त्रोंसे छेदकर मूर्च्छित कर दिया, तब भगवान्ने वहाँ उपस्थित होकर इसका कारण पूछा, तो कैकेयीने यह सन्देश करके कि, श्रीराम इतना स्वाभिव्याग सहजहीमें कैसे करेंगे, उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर न देकर पहले उनसे प्रतिज्ञा कवानेका प्रयत्न किया। उधर-में श्रीभगवान्ने ये सतत स्मरणीय श्राव्य वचन कहे—

तदनुहि वचनं देवि । राहो मदभिकंक्षितम् ।

कारिणे प्रतिज्ञाने च रामो दिनाभिमानते ॥

(शं० रा० २११८।२०)

‘माता ! महाराजसे तुमने जो कुछ माँगा है सो मुझे बतला दो। मैं उसे सम्पादन करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

रामका यह सिद्धान्त स्मरण रखो, राम दो बात नहीं कहता थायात् उसने जो कुछ कह दिया सो कह दिया फिर वह उसके विरुद्ध नहीं करता।’

कैसी महत्त्वपूर्ण वचन-पाठकी प्रतिज्ञा है। विचारिये, एक शोर धनेक भोग-विजयसेंसे पूर्ण विस्तृत विशाल राज्यके सिंहासनकी अभिरुचि और दूसरी शोर शीत, आतप, श्वषट मार्ग, राक्षस, हिंसक पशु आदि धनेक विघ्न-बाधाओंसे युक्त कल्पनातीत क्लेश सहन करते हुए एकाकी धरण्यासेयन। इस जटिल समस्यामें जिस राजनीतिके दलपर धनेक रचनाएँ रची गयीं और आजकल भी कहीं उसको पालिसी (Policy) और कहीं डिप्लोमसी (Diplomacy) कहते हैं जो केवल सुश्रमधान होती है और जिसमें प्रकट कुल और ही किया जाता है तथा भीतर कुछ और ही रहता है। यहाँ उसके द्वारा साम, दान, दण्ड और भेदरूप अतुमिध नीतिका प्रयोगकर युक्ति और अतुराईसे काम लेनेका प्रयोजन कोई ऐसी उपाय सोच निकालना ही होता कि जिससे सिंहासनका स्वार्थ हायरे नहीं जाता। किन्तु श्रीरामके परम पवित्र हृदयमें राजनीति और धर्म दो रूपमें नहीं थे ? वहाँ तो राजनीतिका धर्म ही ‘धर्मसे धरिखद’ निश्चित था, धर्मकी दृष्टिसे तो एक अयोध्याका तो क्या, चौदह सुवनका साम्राज्य भी मृग-सरीसृक ही है। इससे सिद्ध होना है कि स्वधर्मको नष्ट करके स्वार्थसाधन करना मनुष्यमात्रके लिये निषिद्ध है, जिसमें राजपर तो नराधिपति होनेके नाते उसकी सर्वकारकी रक्षा करनेका दायित्व है। धर्मात्मा राजा कभी स्वार्थमें लिस नहीं हो सकता। यथार्थ राजनीति यही है जिससे धार्मिक सिद्धान्तोंका अयत्न न होकर व्यवहारकी सुकरता हो जाय। अर्थात् साम, दान, दण्ड और भेदरूप नीतिके द्वारा ऐसी युक्ति और निष्पत्तयें काम लिया जाय, जिससे व्यवहार भी न विगड़ने पाये और धर्मकी विरुद्धता भी न हो सके। सुख-प्रलारण्यादि-प्रधान दुष्ट-बुद्धिसे किसी व्यवहारको सिद्ध भी कर लिया तो वह अतुसः पृथनीतिका कार्य, धर्ममें परिणत होकर मनुष्यको नरकमें ले जाता है। इसके लिये ओयुधिष्ठिर महाराजका उदाहरण प्रसिद्ध है। जिनकी आजन्म दृढ सत्य-निष्ठा रही, उन्हें युद्धके अथवरपर दूसरोंके अतुरोपये केवल एक बात, और वह भी दये हुए शत्रुओंमें, धर्मपथा कोलनेके कारण दुःखप्रद भरकथा द्वार देखना पड़ा !

(४) अतु प्रेमकी पराकाष्ठा देखना चाहें तो इस कथा-मृतका पान कीजिये।

जब पित्रादरमें यह मूलना पहुँची कि श्रीभारतनी जन्म-  
 (मिली) रोना लिये भूमिपामने जसे आरहे ई तब लक्ष्मणजी-  
 से प्रोधावेरामें भारतनीको मुखमें पारिजित करनेकी प्रतिज्ञा  
 कर वाली। भगवान् श्रीराम तो उगको मुनने ही समार-  
 में आगये। वही निष्ठा परिशिष्टि है। एक घोर वर प्याग  
 सरल भाई है जो सर्वस्व त्याग करके धनम्यभारने सेनामें  
 तत्पर है और इसराज्य भी साक्षिष्यमें ही उपरिणत है और बुरगी  
 घोर यह प्रिय भ्राता है जो समीप नहीं है और जियकी  
 माताकी मृताके कारण ही ध्यान बनवानका दारुण दुःख  
 सहना पड़ रहा है परन्तु जियवे परस्पर परम गुरु और  
 अनिर्वचनीय प्रेम है। सामान्यरूपसे जगत्-व्यवहारानुसृत अणु-  
 रोचर ही विशेष ध्यान दिया जाता है किन्तु श्रीभगवान्का  
 हृदय ऐसी सुंदरेली बातोंको कच स्पर्श कर सकना था ?  
 यहाँ तो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही समान हैं। ऐसी दूरा  
 में धपने प्रेमीके विरह श्रीरामको एक शब्द भी किये सहन  
 हो सकता था ? विरह शब्दोंके कानमें पड़ते ही प्रेमावेशने  
 सत्काल उचोचित होकर श्रीरामने प्यारे भाई धीसदमणके  
 लिख होनेकी कुछ भी परवान न कर वे वचन कह ही बाले—

‘भाई लक्ष्मण ! धर्म, अर्थ, काम और श्रियिबी जो कुछ भी  
 मैं चाहता हूँ वह सब तुम्हें लोगोंके लिये। यह तुमसे मैं प्रतिज्ञा-  
 पूर्वक कहता हूँ, भरतने सुहारा कब क्या सहित किया है  
 जो तुम आज ऐसे भयाकुल होकर भरतपर सन्देह कर रहे  
 हो ? तुमको भरतके प्रति कोई अश्रिय या क्रूर वचन नहीं कहना  
 चाहिये। यदि तुम भरतका अपकार करोगे तो वह मेरा हो  
 अपकार होगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसा कह रहे हो तो  
 भरतको जाने दो, मैं उससे कह दूँगा कि तुम लक्ष्मणको  
 राज्य दे दो। भरत मेरी बातको अवश्य ही मान लेंगे।’

यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि श्रीभगवान्का  
 श्रीलक्ष्मणजीमें उतना प्रेम नहीं था, उनको तो प्राथीमाश्रममें  
 प्रेम है, फिर धपने धनम्यसेवक प्यारे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण-  
 के लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है तो  
 बालवमें लक्ष्मणजीपर नहीं है, उनके हृदयमें विहृति उपपन्न  
 हो गयी थी, उसीको निकालनेके लिये श्रीभगवान्का यह  
 कठोर वचन है। भगवान्के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मणजीका  
 मनोविकार नारा हो गया। इस प्रकार अन्य प्राथियोंके  
 साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान्को किसीसे तनिक भी  
 ह्येप नहीं है। सबके ध्यामा होनेके कारण वे तो सबके ध्याम-  
 रूप हैं। केवल अंतुरित विहृतियोंकी ही व्योचिंत दृष्टादि  
 विधियोंके द्वारा ऋद किया करते हैं।

( २ ) जब नासिकवादीको चिन्ता प्रकार भी न  
 गडनेका एक आश्रय इहान्त मुनिये— श्रीभारतनी के  
 पित्रादर पहुँचकर श्रीभगवान्को अन्तर्गुणी शीतलर तान  
 निनेक करनेके अनेक वचन किये, अनेक प्रार्थनाएँ कीं  
 श्रीभारतनी चादि अर्थियाँ मो भरनी करनी दुःख  
 अनुपार परामर्श दिया। तब उन अर्थियोंमें आश्रित कर्तव्य  
 मग मनाननचर्मगे विनात्म विरह प्रका हुआ। नमूनेके वि-  
 एक श्लोक श्रीजिये—

तममन्मनादिना चेतं हन्त तन्नेन वा नरः ।

उन्मत्त इव म ज्ञेयो नान्नि कर्मिन् कर्मवित् ॥

( वा० रा० २।१०।८१ )

‘हे राम ! अतएव यह माना है यह विना है बँ सम-  
 कर मो इन मन्मनादिमें निष्ठ होना है उमे उन्मत्त बाल  
 चाहिये, क्योंकि कोई किमीका नहीं है ।’ ऐसी ही और भी  
 धर्मविरह बाने थीं। श्रीभगवान्के लिये यह अनिष्टव अति  
 प्रगल्भ था। एक पदमें था घोर नासिकवादी और दूसरमें उन्म-  
 प्रच्छ करनेवाले धपने कुलारुण अर्थि। श्रीभगवान् बने ही  
 मरुपय थे, फिर जाबालि अर्थि तो कुलके आर्याधीय एवं  
 उपात्य है ऐसी महातुभारके प्रति श्रीरामके ध्याय इरने  
 विहृतभाव कच उपपन्न हो सकने थे ? परन्तु धर्मके विना  
 विरह शब्दोंने—जिनका आशय, श्रीभगवान्को सत्यने विक-  
 लित करनेका था—हृदयमें परिवर्तन कर दिया। श्रीभगवान्  
 उस समय मर्यादाचार्य नासिकवादीका तीव्र विशेष  
 करना ही उचित समझा और तिरस्कारपूर्वक उन्हें जो दुःख  
 कहा, उसका एक वचन यह है—

निन्दाग्रहं कर्म इतं पितुस्तदा-

स्वामगृह्णाद्विषमस्यबुद्धिम् ।

बुद्धयानेवैवविषयाचरन्तं

सुनास्तिकं धर्मपयादपेतम् ॥

( वा० रा० २।१०।८३ )

इसप्रकारकी बुद्धिसे आशरण करनेवाले तथा तब  
 नासिक और धर्म-मार्गसे हटे हुए धापको जो मेरे पिताजीने  
 याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ।  
 क्योंकि धाप श्रवैदिक दुर्गमस्थित बुद्धिवाले हैं।’ जाबालि  
 जाबालिके यह कहनेपर कि ‘मैं नासिक नहीं हूँ, केवल धाप  
 को शीथानेके लिये ऐसा कह रहा था और वशिष्ठजीके द्वारा इ-  
 का समर्थन किये जानेपर भगवान् शान्त हुए। धर्म और  
 सत्यके उन्नत भावोंके ध्यावेरामें नासिकवादीक अवज्ञाकी दृ-  
 काटा पर्याप्तक पहुँची कि पित्राभक्तिमें बँधे हुए श्रीरामने जो

पुत्र पिताके साथकी रक्षार्थ आज अनेक संकट सहन कर रहे हैं, उन्होंने पिताके कार्यमें भी अथवा प्रकट की। इससे जो मर्यादा स्थिर की गयी, उसका प्रत्येक उद्देश्य यही है कि मनुष्यको अन्वय सब विचार त्यागकर भास्तिक भावोंका उग्र विरोध करना चाहिये।

( ६ ) अथ गुरुभक्तिके गंग-तरंगवत् पावन प्रसंगपर विचार कीजिये।

यों तो कुल-उपास्य श्रीवशिष्ठ महाराजका महत्त्व तो स्वान् स्वानपर प्रकट है। प्रत्येक धार्मिक और व्यावहारिक कार्यमें उनकी प्रधानता रही है, जो यह गुरुभक्तिका पूर्ण प्रमाण है। परन्तु देखना तो यह है कि विकट समस्या उपस्थित होनेपर अन्य उदाहरणीय चरित्रोंकी तरह गुरुभक्तिके प्रथम भावोंका ही हृदयमें साम्राज्य होकर उसकी अन्वयन्ता किस विशेष चरित्रके द्वारा सिद्ध हो सकती है।—

लेखने कहना पड़ता है कि श्रीवाल्मीकि-रामायण, मर्यादा-रचाके इस एक मुख्य चंगकी पूर्तिमें अत्यन्त रहीं। उसमें कहीं भी ऐसा प्रसङ्ग नहीं है, जिसके द्वारा हनुको सिद्ध किया जा सके, प्रसृत चित्रकृतमें तो उपर्युक्त प्रसङ्गमें जब श्रीगुरु महाराजने अपने प्रथम हेतुवादके द्वारा श्रीभरतजीके पत्र-समर्थनकी चेष्टा की तो दूसरोंकी भाँति उनका कथन भी भगवान्ने स्वीकार नहीं किया।

श्रीमानस-रामायणने अपनी सर्वोच्चपूर्णता सिद्ध करते हुए चित्रकृतकी जीवामें ही इस मर्यादाकी भी वषेष्ट रचा की है—

श्रीवशिष्ठजी महाराज भरतजीका पत्र लेकर भगवान्ने कहते हैं—

सबके उर अन्तर भरहुं, जानहुं भरत कुमार ।

पुजन जननी भरत हित, होइसो करिय उपाव ।।

इसपर भगवान्ने जो उत्तर दिया वह गुरुभक्तिकी पराकाष्ठा है—

सुनि सुनि बचन कहत रघुराज । नाय तुम्हारे हि हाय उपाज ॥

सब कर हित सब राख राखे । आयसु किये मुदित पुर गाले ॥

प्रथम जो आयसु गो कहँ होई । माये मानि करी सिख सोई ॥

विचारिये, कहीं तो पितृभक्तिके पावनार्थ बनवासके लिये आप हूतने दण्ड हो रहे थे कि यदि कोई उसके विरुद्ध कहता या तो उसे तुरन्त उचित उपाय दे दिया जाता या परन्तु आज गुरुदेवकी आज्ञाके सम्मुख श्रीभगवान्ने अपनी

वह संकल्प सर्वथा ठीक कर दिया। गुरुभक्तिकी इससे अधिक क्या मर्यादा हो सकती है ?

( ७ ) मातृभक्तिकी परम सीमाका यह उच्च उदाहरण सुननेयोग्य ही है—

पद्मवतीमें भीमानकीजीसहित दोनों भ्राता सुखपूर्वक बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। जब श्रीलक्ष्मणजीने श्रीभरतजीकी स्थाया करते हुए कहा—

भर्ता दशरथो यस्याः सापुत्र भरतः सुतः ।

कथं नु साम्ना कैकेयी तादृशी करदर्शिनी ॥

( वा०रा० ११६।३५ )

जिसके पति श्रीदशरथजी महाराज और पुत्र सापुत्र स्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी मूर्ख स्वभाववाली कैसे हुई ?

यहाँ भी एक धोर यही प्राण्यपक्षसे सेवामें तत्पर 'अलीक-वचन बोलनेवाले' कथित भ्राता हैं और दूसरी ओर यही विमाता जिसके कारण वह सारा उत्पात और विग्रह हुआ। परन्तु कुछ भी हो, मातृभक्तिके भावोंने हृदयमें हतना उल्टा रूप धारण किया कि माताके विरुद्ध एक भी वचन उन्हें सहन नहीं हुआ। श्रीभगवान्ने कहा—

न तेऽन्वा मन्मना तात गर्हित्वा कदाचन ।

तामिदंवाहुनायस्य भरतस्य कथां कुक् ॥

( वा०रा० ११६।३७ )

'हे भाई ! तुमको मैं भली माताकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। इत्यादि-कुल-भेद भरतजीकी ही बातें कहनी चाहिये। इससे अधिक मातृभक्तिकी मर्यादा और क्या हो सकती है ?

( ८ ) मित्र-धर्म और स्वामिधर्म दोनोंकी पराकाष्ठाके विचित्र चित्रका दर्शन इस एक ही मर्मस्पर्शी जीवामें हो जाता है ?

भगवान्के निर्मल, विशिष्ट और मर्यादा-पूर्ण चरित्रोंमें तीन ऐसे हैं जिनमें उनके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञताके कारण अमोघ मनुष्य प्रायः भ्रांतेय किया करते हैं। इन तीनोंमें एक बाह्य-वचकी जीवता है।

अन्वय पुरुषोंकी जो बात ही क्या, स्वयं बाह्यने भी श्रीभगवान्को अधिष्ठित किया है। उसके आदेशोंके उल्लंघन करने प्रकाशसे समाधान हुआ है किन्तु इसमें सबसे मुख्य हेतु यह है—

जिस समय सुभीतेसे मित्रता कर श्रीभगवान्‌ने प्रतिज्ञा की थी उसी समयके वचन हैं—

प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसन्निधौ ।

प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥

(वा०रा०कि० ४।१८।२८)

‘मैंने सुभीतेको जो वचन दिया था, उस प्रतिज्ञाको अब कैसे टाल सकता हूँ ?’

विचारिये, बालिने साक्षात् श्रीभगवान्‌का कोई अपराध नहीं किया था, किन्तु बालि अपने मित्र सुभीतेका शत्रु था। अतः उसको अपना भी शत्रु समझकर उसके संशारकी तत्काल प्रतिज्ञाकी गयी। यही तो मित्र-धर्मकी पराकाष्ठा है। मित्रका कार्य उपस्थित होनेपर अपने निजके हानि-लामका सब विचार छोड़ उसका कार्य जिस प्रकार भी सम्भव हो, साधना चाहिये। इसीलिये मित्रके सुख-सम्पादनार्थ उसके शत्रुरूप भ्राताका वध किया गया। इस बातके समझनेमें तो अधिक कठिनाता नहीं है किन्तु जिस बातपर मुख्य आशेप होता है वह यह है कि ‘बालिको युद्धाह्वान द्वारा सम्मुख होकर धर्मपूर्वक क्यों नहीं मारा ?’ इस शंकाका समाधान श्रीवाल्मीकीय या मानस दोनों रामायणोंके मूलसे नहीं होता। टीकाओंके निर्णय-अनुसार यथार्थ बात यह थी कि बालिको एक मुनिका वरदान था कि सम्मुख युद्ध करनेवालेका बल उसमें आ जायगा, जिससे उसके बलकी वृद्धि हो जायगी। इस दशामें भगवान्‌के लिये एक अद्विज समस्या था ररही हुई। बालिको प्रतिज्ञा-पालनार्थ धरत्य मारना है। यदि धरती पेरत्य शक्तिसे धरम लेते हैं तो उस वरदानकी महिमा घटती है जो धरतीकी ही भण्डिके बलपर मुनिने दिया था। और यदि वरदानकी रक्षा की जाती है तो धर्मपूर्वक युद्ध न होनेसे पारकी प्राप्ति और जगद्में निन्दा होती है। इस समस्याके उपस्थित होने ही स्वामिधर्मके भावोंने हृदयमें इतनी प्रबलता की कि भगवान्‌ अपने धर्मार्थ और निन्दालुतिके विचारको हृदयसे तच्छन्न निकाल, अपने जनक मुख र्केषा करता ही मुख्य समझ उस सुभीतेके वचने हुए बालिको वादसे मारकर गिरा ही तो दिया।

इसमें बड़ी मर्यादा मिश्रित हुई कि स्वामीको कोई ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये जिससे अपनी स्वार्थ-निन्दिके द्वारा अपने दास या सेवकका महार घटे। इस विषयपर स्वयंभूव और निम्नश्रुद्धिमें विचार करना चाहिये कि

श्रीभगवान्‌का धर्मयुक्त कार्य वरदानकी महिमाको क्षीण करते हुए सम्मुख धर्मयुद्ध करना होता या अब हुआ है जिसमें अपने निजका विचार हृदयसे निकालकर केवल अपने जनके वरकी प्रतिज्ञा रक्खी गयी ?

(१) अथ शरणागत-वत्सलताके महार निरूपणका प्रयोग देखिये—

जिस समय विभीषणजी अपने भ्राता रावणने तिरस्कार होकर श्रीरामचन्द्रमें आये उस समय श्रीभगवान्‌ने अपने सभी समीपस्थोंसे सम्मति ली। उसमें किसीका मन विभीषणके अनुकूल नहीं हुआ। दात भी ऐसी ही थी, अकस्मात् आये हुए साक्षात् शत्रुके भाईका सहसा मैं विधास हो ? किन्तु इन सब विचारोंको हृदयमें छिद्रिन्ती स्थान न दे शरणागत-वत्सलताके भावने श्रीरामने सत्य अपना निश्चय इस वचनके द्वारा प्रकट कर दिया, जो नालाक्य समझा जाता है—

सहदेव प्रपन्नाय तदारमिती च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्भेतद्भक्तनम ॥

(वा. रा. ६।१८।१८)

(१०) लोकमतका क्या मूल्य है और राजाको वं

दितकी कितनी आवश्यकता है, इस प्रमुख विषयपर वर हृदयशीला लीला पूर्ण प्रकाश डालेगी—इसी प्रतिपादित धर्म और एकपत्नीव्रतका आदर्श भी सिद्ध हो बालि-वध-लीलामें कहा गया था कि भगवान्‌की लीलाओंपर आशेप होता है। उनमें दूसरी यह है। यि यह आशेप ऐसे मनुष्योंके द्वारा होते हैं जिनमें इस का काजके कारण पूर्ण विहृतियाँ आ गयी हैं। इस र संकीर्णताके युगमें ऐसे राजाओंके दरान तो करती हैं। प्रजाके आन्तरिक भाव जाननेका यत्न करके उनके कर्तव्य या अपराधोंको यथाशक्य दूर करनेकी चेष्टा करें, किन्तु भी तो नहीं हैं जो सुलेरूपसे धर्मार्थक आन्दोलनके प्रकट होनेवाले लोकमतका भी आशर करें। आजकलके ऐसे प्रयासोंका उल्टा दमन होता है। आजकलकी अज्ञानानुसार तो न्यायका पात्र वही समझा जाता है जो प्रबल संगठनद्वारा राज्यको दास्य करे। वस, ऐसी ही नीतियोंका अनुभव कर लोग इन उदार चरित्रों पर कुतर्क करनेको सज्ज हो जाते हैं, और यह नहीं सोचते उस रामराज्यमें लोकमतके आदर्शकी सीमा र्केषी थी कि वह आजकलके संकीर्ण विचारधाराके रूपका तर्कमें भी नहीं आ सकती। प्रयुक्त वे तो

उरुटे दूषण लगाते हैं। उस समय प्रजाके सचे हितके लिये कैसा भी कठिन साधन बचाकर नहीं रक्खा जाता था। इसीका एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है। एक दिवस कुछ हास्यकार पुरुष हास्यादिद्वारा श्रीभगवान्को रिम्बा रहे थे। उसी प्रसङ्गमें श्रीभगवान्ने उनसे पूछा कि 'नगरमें हमारे सम्बन्धकी क्या बातें हुआ करती हैं? उत्तरमें निवेदन किया गया कि 'संतुषन्धन, राधण्यघादि भङ्गुत कार्योंकी पूर्ण प्रशंसा है किन्तु इसप्रकारकी चर्चा भी नगरमें हो रही है कि रावणाने जिन श्रीसीताजीको झङ्गमें लेकर उनका हरण किया और जिन्होंने उसके पारमें निवास किया उनको जब महाराजने स्वीकार कर लिया तो अब हम भी अपनी स्त्रियोंके ऐसे कार्योंको सहन करेंगे।'

श्रीभगवान्को यह सुनकर परम खेद हुआ। उन्हें अपनी आदर्श पतिव्रता सहधर्मिणीकी पूर्ण पवित्रताका अटल निश्चय था, मन्त्रिक राधण्यके विजय करनेके अनन्तर उसको अपने समीप पुलाने पर कठिन अग्निपरीक्षा भी करा ली गयी थी और उसमें यह सबके समग्र ढोलके बंके उत्तीर्ण हुई थी। यह सब कुछ सूर्यवत् निष्कलङ्क सिद्ध होते हुए भी केवल लोकमतका महत्त्व बढ़ानेके लिये अपनी उस प्राणप्रियाके—जिसका वनवासमें किञ्चिद्-कालीन वियोग ही सर्वथा असह्य हो गया था—परित्यागका ही निश्चय करके अपने तीनों भ्राताओंके सम्मुख श्रीरामने यह वचन कहे—

'पुरजन और देशवासियोंके द्वारा (मेरे विषयमें) यह बहुत बड़ा अपवाद है। संसारमें उत्पन्न होनेवाले जिस किसीकी निन्दा भी जाती है वह निश्चय जलतक वे भक्तिर्तिके शब्द कहे जाते हैं तबतक नीचे लोकमें गिरता है। निन्दाकी सुनाई देवता भी करते हैं और कीर्तिका संसारमें आदर होता है। सब बड़े महात्माओंकी संसार व्यवहारमें कीर्तिके लिये ही प्रवृत्ति है। (दे पुरभ्रष्टो ! मैं अपने प्राय और दुःख सबको भी (प्रजामें) कीर्ति-रत्नके लिये) त्याग सकता हूँ।'

कहिये, लोकमतका इससे अधिक आदर क्या हो सकता है? और इसी कारण ऐसा त्याग किया गया कि जिससे अधिक सम्भव ही नहीं। परन्तु इसमें मुख्य तथा विचारणीय बात यह है कि वहाँ कोरे पोले लोकमतका ही आदर नहीं किया गया है, इसमें परम लोकहित भी अभिमत था, क्योंकि संसारकी दृष्टि अन्तर्धर्तों हेतुओंके तल तक न पहुँच केवल परिष्कारपर रहती है। अतः जैसा श्रीजानकीजीका दृष्ट चरित्र

था, उसकी सर्वथा उपेक्षा करके स्वल्पदृष्टिके द्वारा यही प्रसिद्ध हो गया कि, जब राजाने राचसोंके यशमें मास हुई पत्नीको ग्रहण कर लिया तो प्रजा भी राजाका ही अनुकरण करेगी। विचारिये, यदि श्रीभगवान् अपने हृदयको पापाण्य रत्नाकर श्रीजानकीजीका त्यागरूप उग्र कार्य न करते तो सदाचारको कियाना भयानक धक्का पहुँचता? सभी स्त्रियाँ श्रीजानकीजीके मुख्य ऐसे कठिन पतिव्रतधर्ममें रुद नहीं रह सकती विशेषकर कलियुग-सरीखे समयमें। सच पूछा जाय तो यह आदर्श धाजकेसे समयके लिये नहीं था क्योंकि आज तो सदाचारका सर्वथा छोप होकर संसारमें धर्मविन्दक विचारोंकी यहार्तक प्रचलता है कि लोग विशाह-संस्काररूप मुख्य संस्कारके धन्यनोंकी भी विभिन्न मित्र करवानेके लिये राजासे कानून बनवा रहे हैं। इस कालक कालमें योगि पवित्रता तो कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके कारणसे वेद थोड़े ही समयमें वर्णसंकर दृष्टिसे ध्यात हो जायगा। श्रीभगवान्के इस दूर-दरिद्रतापूर्ण चरित्रसे पतिव्रतधर्म और एकपत्नीव्रतकी भी पूर्ण पराकाष्ठा प्रमाणित हुई, श्रीजानकीजीकी अवतक वे श्रीभगवान्के साथ रहें, पूर्ण अनुरक्तता प्रकट ही है और अन्तमें भी उन्होंने स्वामीकी आज्ञा पावन करते हुए ही घोर घातना सहकर शरीर त्याग किया। साथ ही श्रीभगवान्ने भी कभी अन्य स्त्रीका संकल्प भी हृदयमें नहीं किया और वियोगके पश्चात् प्रकृतधर्ममें ही अपनी कोला समाप्त की।

(१) अन्तमें एक ऐसे पवित्र चरित्रका निरूपण होगा जिससे वर्णाश्रम-धर्म-रक्षा और न्यायपरायण्यताकी पराकाष्ठा सिद्ध होती है।

धन्यतः यह विषय गहन है और इसकी गहनताको न समझकर ही लोगोंकी दृष्टिमें यह अधिक आश्चर्ययोग्य समझा गया है। यह आश्चर्यजनक तीसरी कोला है।

एक समय एक ब्राह्मणका हृकञ्जीत शिल्पक मर गया। उसने मृत पुत्रको लाकर राजद्वारपर डाल दिया और विज्ञाप करते हुए आक्रोश किया कि 'इस बालककी अकालमृत्युका कारण राजाका महान् दुःकृत है।' अविमुक्ति आदिकी परिष्कारके द्वारा विचार किया गया तो योग्यरूपसे या दिव्यदृष्टिसे यह निर्णय हुआ कि कोई पुत्र अनधिकार लप कर रहा है। उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई। अहाँ ऐसा भ्रान्ताचार होता है वहाँ लक्ष्मीका भ्रमण हो जाता है और वहाँका राजा नरकगामी होता है।

यह सुनते ही श्रीभगवान् किसी अधिकारी या कर्मचारी-

को अनुग्रहान्धारी आज्ञा देकर अपना कोई गुणपर (गी० आर्० १०१०) लगाकर क्षयिण्यो मुक्त नहीं हुए, तबका गुणक विमानमें विराजित हो स्वयं उगरी शोभने निकले। जब क्षयिण्य विमानमें पहुँचे तो देना कि एक पुण्य कर्मात्तर में प्रवृत्त है। उतरो प्रभ करनेतर उगने एतद और गण्य उतार देने हुए क्या कि 'मि मिथ्या कभी नहीं बोलूँगा। मि शम्भूक नामक शूद्र देवलोचकी प्रातिके लिये तब कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही धीभागवान्ने गहगये उरका मन्क धेरन कर दिया। इधर इरका वध हुआ और उधर वर शानक तनीय हो उठा।

संक्षिप्त रूपसे क्या इतनी ही है, किन्तु हममें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल दृष्टि-गृहियाद्वार ही गुणे हुए हैं अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि मन्थके बाहर जागी ही नहीं उनको कैसी भी मुक्ति और प्रमाथोंमें समझाया जाय, वे उस साथ पर पहुँचे ही नहीं सकते। इती एक बातको जीजिये कि आज जो स्थान स्थानपर हृदय विर्याय करने-वाले हृदय देखनेमें आ रहे हैं—पिता पितामह अपने भेटे पोते सबको स्मरान्तर्भूमिके अर्थात्पर पूर्वजन्मके धोर अनिष्ट संस्कारोको भोगते हुए अपना शेष दुःखद जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें 'चकालमृत्यु ही नहीं होती थी अर्थात् प्राणी अपनी पूर्ण आयु समाप्त करके ही फालको प्राप्त होते थे और ऐसा अवसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुत्र मरे। तो यह बात परम आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। पान्तु फालकमें यात ऐसी ही है। वर्तमान नयी सम्बन्धकी चकाचौंधसे विहृत हुए दृष्टिवाले भले ही इसपर दिव्यगी उद्वाँले किन्तु जिनको चारों सुगोंके भिन्न भिन्न धर्मोंका ज्ञान है उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्धमें सामान्य आस्तिक बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें भी जो मदल शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणने बालकके मृतक शरीरको राजद्वारपर लाकर डाला और वहाँ उसका निष्पंथ होकर वह राजाके न्यायसे जीवित हो गया। आज ऐसा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिकारमें हो तो आज तो राजद्वारों-पर मृतक शरीरोंके ढेर लग जायँ और राजद्वारका नाम परिवर्तन होकर वह मृतकभवन ही हो जाय।

(ख) तप करना तो पवित्र काम है, उसको सन्तोष क्यों समझा गया? और ऐसा ही भी तो उस शूद्रके तप करनेसे

ब्राह्मण-बातकी मनुष्यता का साक्ष्य ! कोई मनुष्य तप करे कही और कोई मरे कही। तप का तप मन्क नहीं आता।

(ग) यदि दूरी शंकाका तप समाधान ही हो जा तो देना उध दूध क्यों दिया गया जो क्षयिण्योंके निरपेक्षाएँ काँट समझा जा सकता है ?

आधुनिक गुणमें—जब कि धर्मगत ब्रह्मज्ञान ही सिद्धिजगता हो रही है—वे शंकाएँ अनुचित नहीं समझे जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार हमने इस समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (श्रुतिधर्मों) से पर बात निरिद्ध है कि धर्म मनुष्यः दृष्टाः रक्षाएँ साधक है—अर्थात् उमके शोभित हैं। एक अरुध अर्थात्साधक और दूरा एह अर्थात्साधक। यद्यपि दोनों ही धर्मोनुतामनके अन्तर्गत हैं और दोनों ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति हैं एवं दोनोंकी साधन धारिण्य भी साकार ही है किन्तु जो भाग अरुधार्थसाधक उममें प्रधानता योग्यप्रतिष्ठित और दिव्यदृष्टिमान्य मर्यापि, मर्यापि, राजपि धारिण्य धर्मोच आत्मोन्नति है, व दूररे एह-अर्थात्-साधक भागका—त्रिषका शूद्र नाम व्यतार हो गया है—सम्पादन मनुष्य जातिके अधिष्ठाती कर्मोकी गुणोंके द्वारा भी हो सकता है और यही राजतन्त्र कर्तव्य है। अरुधार्थ भागसे येये विरयोका सम्बन्ध है त्रिष परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीरता। इसी भागके साधन मृष्टति नियमानुसार वयँ और धार्मिकोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी थी। उस समय वैसी उच आत्माओंके विधान रहनेसे दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था व राजद्वारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं ज वे किन्तु वैसी अनिष्ट घटनाओंद्वारा होनेवाले कठोंकी पुकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय कि जाता था। यही रामराज्यका महत्व था। आज व पवित्र और दिव्य सामग्री नहीं है। न वैसी उच आत्मा ही हैं और न वैसी राजा ही हैं जो अरुध विभागका पूर्ण नियन्त्रण कर सकें। इसी कारण वयँ और धार्मिकधर्मके वेगसे लोप होता चला जा रहा है। अब तो केवल ए भाग (ध्ववहार) शेष रह गया है। किन्तु उसकी दशा भी स्वाधियोंके हाथमें आ जानेसे परम शोचनीय है। अब ध्ववहारसम्बन्धी न्यायोंकी ही दुर्वारा है तो अरुधविभाग

द्वारा न्याय कदा सम्भव है ? इसी कारण अथ राजद्वारपर सूतक ले जानेसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ।

(ख) तप करना पवित्र ही नहीं वह तो परमेश्वर कणाका साधन है, जिसका सृष्टिके धार्मिकें श्रीभगवान्के प्रसादकी उपदेश किया था । किन्तु, इसके साधनके लिये चाहिये अधिकारी । यह शूद्र अधिकारी नहीं था, क्योंकि श्रीभगवान्के 'चातुर्यं मया सृष्टं गुणकर्माविभागः' वचनानुसार प्रत्येक वर्णकी उत्पत्ति कर्म और गुणके आधारपर हुई है । तदनुकूल इस वर्णमें उच्चगुणविशिष्टता नहीं होती, जिससे उसमें उच्च कर्मकी योग्यता हो सके और यदि अहङ्कारपूर्वक कोई उच्च कर्मका संकल्प कर ले तो वह अनधिकार चेष्टा है । उदाहरणके लिये समस्त क्षत्रियों कि राजतन्त्रमें यदि कोई कनिष्ठ अधिकारी उच्च अधिकारीका आसन अथवा स्वर्ण आरुढ़ हो जाय तो कितनी घबराहट उत्पन्न होकर उद्यमसाधक धर्मविभागमें अर्थात् राजतन्त्रमें हलचल मच जाय । वस, इसी प्रकार यदि कनिष्ठ अधिकारी जैसे अधिकारका कर्म करने लगे तो अद्यतनसाधक धर्मविभागमें भी पूर्ण हलचल मचकर उसके परिणामशून्य उत्पात और विग्रह आ उपस्थित हों । राजापर दोनोंका दायित्व है । इसलिये राजाका कर्तव्य है कि दोनों ही अनधिकार चेष्टाओंके अपराधियोंके लिये यथोचित दण्डविधान करे । आज यद्यपि उद्यमसाधकधर्मविभागका तो ढहरा जैसे तैसे चल रहा है परन्तु अद्यतन धर्मविभागके नियन्त्रणका सर्वथा अभाव है और देश वर्णसंस्कारसृष्टिके कारण अनधिकार क्रियाओंसे व्याप्त हो रहा है । मुख्यतया इसी कारण अतिवृद्धि, अनावृष्टि, हिम, आतप, शूलभा, महामारी आदि उपद्रवोंका वेग पूर्णरूपसे बढ़ रहा है ।

यहाँ यह धारण अवश्य प्राप्त होता है कि ऐसी दशांशमें शूद्रके लिये आत्मोन्नति या आत्मोद्धार करनेका अवसर ही नहीं है । यद्यपि देखनेमें यह धारण प्रबल दीखता है किन्तु वास्तवमें बात यह है कि अगर जो वर्णव्यवस्था प्रदर्शित की गयी है वह केवल प्रकृतिके नियमानुकूल है और इसके यथार्थपालन करनेपर अथर्व क्रमसः उत्पत्ति होती है । इसीके द्वारा उसका उद्धार पूर्णतया हो जाता है । परन्तु इन सबके ऊपर सदाफलप्रदाता भक्ति और प्रेमका दूसरा मार्ग है, जहाँ सारे नियम और बन्धन, फल हो जाते हैं । वहाँ शूद्र ही क्या, उससे भी नीचे अन्यत्र भी उस गतिकी प्राप्त होते हैं जिसको अधिमुनिगण सरसा करते हैं । यहाँ देखिये, जिन श्रीरामके हाथसे इस शूद्रका कप हुआ, उन्होंने ही शपथ और निपादजैसे अन्त्यजोंसे सलीम

प्रेम किया । उसीके प्रभावसे उनका वरगान आज अनेक पतितोंके उद्धारका परम साधन बना हुआ है । भगवान्के केवल इन्होंने प्रेम किया हो सो नहीं, पशु धानोंके दलोंके दल आत्मसात कर लिये, जिनमें कई तो मातस्मरणीय हैं और एककी महिमा तो यहाँतक बढी हुई है कि श्रीभगवान्के पवित्र नामके साथ उनका भी नाम संयुक्त हो गया है । यदि 'पवनसुत हनुमान्की जय' न बोली जाय तो 'सियावर रामचन्द्रकी जय' फीकीसी लगने लगती है । आज छूटाछूटाका प्रसंग उठाकर जो लोग वर्णव्यवस्थाको नष्ट अष्ट करनेपर तुले हुए हैं, वे यदि अपनी सुबुद्धिको काममें लाकर श्रीभगवान्के इस सिद्धान्तको यथार्थरूपसे समझ लें तो किसी उत्पातको अवसर ही नहीं मिले ।

अथ यह शंका रही कि शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मणपालकी सृष्टिका क्या सम्बन्ध है ? इसके समाधानमें उपयुक्त कथनानुसार अनधिकाररूपसे तप करनेपर कोई-न-कोई उत्पात होना ही था । सो वह इस ब्राह्मणपालकी सृष्टिरूपमें परिणत हुआ । अथ एक तो यह रहा कि तप करनेवाला कदा और बालक कदा और दूसरे यह कि अन्धादिके प्रहारसे ही किसीका बंध हुआ करता है परन्तु बालककी सृष्टिका हेतु तप क्योंकि समझा जा सकता है ? वस्तुतः तप करना और उसका इष्टानिष्ठ परिणाम होना, इन सबका अद्यतन धर्मविभागसे सम्बन्ध होनेके कारण यह लोकोत्तर सूक्ष्म जगत्का व्यवहार है । जो अव्यवहारित अरूप या अद्यतन है । यह जो विस्तार या विशालता देखनेमें आ रही है सो तो केवल स्थूल जगत्का दृश्य है । इसके सूक्ष्मरूपका अद्यतन वरगदके बीजसे समझना चाहिये । अर्थात् इतना विस्तृत वृक्ष एक राईसे बीजमें समाया हुआ रहता है । अतः सूक्ष्म जगत्में बैसा अन्तर नहीं रहता जैसा स्थूलमें दीखता है और वध होनेमें भी जैसे स्थूल जगत्में अन्धादिका प्रहार नेत्रका विषय होता है वहाँ बैसा नहीं होता । वहाँ इस प्रकारकी पटनाय अव्यवहारित गुणोंके व्यतिक्रमसे होती है, जो कर्मबन्धुका विषय नहीं है । अज्ञानके विज्ञानकी इस परमोन्नतिके कालमें तो ऐसी शंकाओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये, क्योंकि जब इस भौतिक जगत्में भी बिना ताके सहस्रों कोसकी दूरीपर अक्षमात्रमें समाचार पहुँचानेका सूक्ष्मशुक्ति का प्रयोग देखते हैं, जो चतुःस्रिगुणका विषय नहीं है तो अज्ञान जगत्के चमत्कारोंपर हमें क्यों सन्देह होना चाहिये ? अथ यह कि, उस बालककी ही सृष्टि क्यों हुई, अन्य उपद्रव क्यों नहीं हुए ? इसके



को अनुसन्धानकी आज्ञा देकर अथवा कोई गुप्तघर (सी० आई०डी०) लगाकर दायित्वसे मुक्त नहीं हुए, तत्काल पुण्यक विमानमें विराजित हो स्वयं उसकी खोजमें निकले। जब दक्षिण-दिशामें पहुँचे तो देखा कि एक पुरुष फठोर तपमें प्रवृत्त है। उससे प्रश्न करनेपर उसने स्पष्ट और सत्य उत्तर देते हुए कहा कि 'मैं मिया कभी नहीं बोलूँगा। मैं शम्भूक नामक शूद्र देवलोककी मासिके लिये तप कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही श्रीभगवान्ने खद्गसे उसका मस्तक छेदन कर दिया। इधर इसका पथ हुआ और उधर वह बालक सजीव हो उठा।

संक्षिप्तरूपसे कथा इतनी ही है, किन्तु इसमें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल दृष्टि-सृष्टिवादपर ही तुले हुए हैं अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि प्रत्यक्षके बाहर जाती ही नहीं उनको कैसी भी युक्ति और प्रमाणोंसे समझाया जाय, वे उस तत्त्व पर पहुँच ही नहीं सकते। इसी एक बातको लीजिये कि आज जो स्थान स्थानपर हृदय विदीर्ण करने-वाले द्रव्य देखनेमें आ रहे हैं—पिता पितामह अपने बेटे पोते सबको स्मरानभूमिके अर्पणकर पूर्वजन्मके घोर अनिष्ट संस्कारोको भोगते हुए अपना शेष दुःखद जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें 'अकालमृत्यु ही नहीं होती थी अर्थात् प्राणी अपनी पूर्ण आयु समाप्त करके ही कालको प्राप्त होते थे और ऐसा अबसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुत्र मरे। तो यह बात परम आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है। वर्तमान नयी सम्प्रदायी चर्काचौधपे विहृत हुई दृष्टिवाले भले ही इसपर दिसागी उद्वाहें किन्तु जिनको चारों गुणोंके भिन्न भिन्न धर्मोंका ज्ञान है उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्धमें सामान्य धार्मिक बुद्धिवाले मनुष्योंके द्रव्यमें भी जो प्रदल शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणे बालकके मृतक शरीरको राजद्वारपर छात्र दाखा और वहाँ उगका निष्पन्न होकर वह राजाके श्वाशुके अर्पण हो गया। छात्र देगा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिचारमें हो तो छात्र तो राजद्वारोंपर मृतक शरीरोंके डे। जग कार्य और राजद्वारका नाम परिचय होकर वह मृतकभवन ही हो जाय।

(ख) तप करवा तो वरिष्ठ काम है, उगको मरनेके क्यों सम्भव गया? और देगा ही भी

ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध? कोई मनुष्य तप करे कहीं और कोई मरे कहीं। यह बात कुछ सम्बन्ध नहीं आती।

(ग) यदि दूसरी शंकाका कुछ समाधान हो भी जाय तो ऐसा उग्र दृष्ट कर्षों दिया गया जो अति प्रकृत या निर्दयतापूर्ण कार्य समझा जा सकता है?

आधुनिक युगमें—जब कि धर्मपर अज्ञानकी पूर्ण शिथिलता हो रही है—ये शंकाएँ अनुचित नहीं समझी जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार क्रमसे इनका समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (स्मृतियों) से यह बात सिद्ध है कि धर्म वस्तुतः दृष्टादृष्टार्थ साधक है—अर्थात् उसके दो विभाग हैं। एक अदृष्ट अर्थसाधक और दूसरा दृष्ट अर्थसाधक। यद्यपि दोनों ही धर्मानुशासनके अन्तर्गत हैं और दोनोंका ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति है एवं दोनोंकी स्थापना दायित्व भी राजापर ही है किन्तु जो भाग अदृष्टार्थसाधक है उसमें प्रधानता योगबलविशेष और दिव्यदृष्टिसम्बन्ध महर्षि, महार्षि, राजर्षि आदि परमोच्च आत्माओंकी है, पर दूसरे दृष्ट-अर्थसाधक भागका—जिसका पृथक् नाम व्यवहार हो गया है—सम्पादन मनुष्य-जातिके अधिकारी कर्मचारी-गणोंके द्वारा भी हो सकता है और वही राजतन्त्र कहलाता है। अदृष्टार्थ भागसे ऐसे विषयोंका सम्बन्ध है जिनका परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीखता। इसी भागके साधनार्थ प्रकृति नियमानुसार वषण और आध्रमणोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी थी। उस समय वैसी उच्च आत्माओंके विद्यमान रहनेसे दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था और राजद्वारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं आते थे किन्तु ऐसी अनिष्ट घटनाओंद्वारा होनेवाले कष्टोंकी भी पुकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय दिया जाता था। यही रामायणका महत्त्व था। आज वह पवित्र और दिव्य सामग्री नहीं है। न वैसी उच्च आत्माएँ ही हैं और न वही राजा ही हैं जो अदृष्ट विभागका पूर्ण नियन्त्रण कर सकें। इसी कारण वर्षण और आध्रमण-धर्मके वेगवेग के भोग होना चलता जा रहा है। अब तो केवल दृष्ट भाग (व्यवहार) शेष रह गया है। किन्तु उसकी दशा भी स्वायत्तियोंके हाथमें आ जानेसे परम शोचनीय है। अब स्वायत्तियोंकी ही दुर्दशा है तो अदृष्टविभाग

व्याप्य कहाँ सम्भव है ? इसी कारण अथ राजद्वारपर क्लेश जानेसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ।

(ख) तप करना पवित्र ही नहीं वह तो परमोच्च कथा-साधन है, जिसका सृष्टिके आदिमें श्रीभगवान्ने महाजीको देना किया था । किन्तु, इसके साधनके लिये चाहिये धैर्यकारी । यह शूद्र अधिकारी नहीं था, क्योंकि श्रीभगवान्ने तुल्य मया सद्यं गुणकर्मविभागाः" वचनानुसार प्रत्येक की उत्पत्ति कर्म और गुणके आधारपर हुई है । तदनुकूल कर्मोंमें उच्चगुणविशिष्टता नहीं होती, जिससे उसमें उच्च की योग्यता हो सके और यदि अहङ्कारपूर्वक कोई उच्च का संकल्प कर ले तो वह अनधिकार चेष्टा है । उदाहरण-लिये समग्र जीविये कि राजतन्त्रमें यदि कोई कनिष्ठ अधिकारी उच्च अधिकारीका आसन ऋपटकर स्वयं आरूढ़ जाय तो कितनी अस्वस्थमना होकर एष्टार्थसाधक धर्म-भागमें अर्थात् राजतन्त्रमें हलचल मच जाय । वस, इसी-कारण यदि कनिष्ठ अधिकारी ऊँचे अधिकारका कर्म करने में तो अष्टार्थसाधक धर्मविभागमें भी पूर्ण हलचल करके उसके परिणामभूत उत्पात और विघ्न धा उपस्थित । राजापर दोषोंका दायित्व है । इसलिये राजाका कार्य-विधि कि दोनों ही अनधिकार चेष्टाओंके अपराधियोंके लिये यथोक्त दण्डविधान करे । आज यद्यपि एष्टार्थसाधकधर्मविभाग-पर तो दृष्टा जैसे जैसे चल रहा है परन्तु अष्टार्थ धर्म-विभागके नियन्त्रणका सर्वथा अभाव है और देश वर्षासंकर-शुद्धिके कारण अनधिकार क्रियाओंसे व्याप्त हो रहा है । मुख्य-तया इसी कारण अतिवृद्धि, अनावृद्धि, हिम, आतप, शलभा, आहारी आदि उपद्रवोंका वेग पूर्णरूपमें बढ़ रहा है ।

यहाँ यह ध्यायेन अवश्य प्राप्त होता है कि ऐसी दशामें शूद्रके लिये आत्मोन्नति या आत्मोद्धार करनेका अवसर ही नहीं है । यद्यपि देखनेमें यह ध्यायेन प्रबल दीखता है किन्तु वास्तवमें बात यह है कि ऊपर जो वर्णान्यथा प्रदर्शित की गयी है वह केवल प्रकृतिके नियमानुकूल है और इसके अर्थात् पालन करनेपर अवश्य क्रमशः उन्नति होती है । उसीके द्वारा उसका उद्धार पूर्णतया हो जाता है । परन्तु इन सबके ऊपर सद्यःफलप्रदाता भक्ति और प्रेमका दूसरा मार्ग है, जहाँ सारे नियम और बन्धन; असल हो जाते हैं । यहाँ शूद्र ही क्या, उससे भी नीचे अन्वयज भी उस गतिको प्राप्त होते हैं जिसको अधिमुनिगण तरसा करते हैं । यहाँ देखिये, जिन श्रीरामके हाथसे इस शूद्रका बंध हुआ, अन्वयजों ही शस्त्रों और निषादजैसे अन्वयजोंसे अस्तीम

प्रेम किया । उसीके प्रभावसे उनका वशगान आज अनेक पतितोंके उद्धारका परम साधन बना हुआ है । भगवान्ने केवल इन्होंने प्रेम किया हो सो नहीं, पशु पक्षियोंके पलोंके दल आत्मसात कर लिये, जिनमें कई तो प्रातः-स्मरणीय हैं और एककी महिमा तो यहाँतक बढ़ी हुई है कि श्रीभगवान्के पवित्र नामके साथ उनका भी नाम संयुक्त हो गया है । यदि 'एवमसुत इनुमान्गीकी जय' न बोली जाय तो 'सियावर रामचन्द्रकी जय' पीकी-सी लगने लगती है । आज छूटाछूतका प्रसंग उठाकर जो लोग वर्ण-न्यवस्थाको नष्ट भ्रष्ट करनेपर तुल्य हुए हैं, वे यदि अपनी सुबुद्धिको काममें लाकर श्रीभगवान्के इस सिद्धान्तको यथार्थ-रूपमें समझ लें तो किसी उत्पातको अवसर ही नहीं मिले ।

अथ यह शंका रही कि शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध है ? इसके समाधानमें उपयुक्त कथनानुसार अनधिकाररूपसे तप करनेपर कोई-न-कोई उत्पात होना ही था । सो वह इस ब्राह्मण बालककी मृत्युरूपमें परिष्कृत हुआ । अथ एक तो यह रहा कि तप करने-वाला कहाँ और बालक कहाँ और दूसरे यह कि अष्टादिके प्रहारसे ही किसीका बंध हुआ करता है परन्तु बालककी मृत्युका हेतु तप क्योंकिर समझा जा सकता है ? वस्तुतः तप करना और उसका इष्टानिष्ठ परिणाम होना, इन सबका अष्टार्थ धर्मविभागसे सम्बन्ध होनेके कारण यह लोकोत्तर सूक्ष्म जगत्का व्यवहार है । जो अव्यवहित अरूप या अष्ट है । यह जो विस्तार या विशालता देखनेमें आ रही है सो तो केवल स्थूल जगत्का दृश्य है । इसके सूक्ष्मरूपका इष्टान्त वरगदके बीजसे समझना चाहिये । अर्थात् इतना विलुप्त घृल एक राईसे बीजमें समाया हुआ रहता है । अतः सूक्ष्म जगत्में वैसा अन्तर नहीं रहता जैसा स्थूलमें दीखता है और वध होनेमें भी जैसे स्थूल जगत्में अष्टादिका प्रहार अत्रका विषय होता है वहाँ वैसा नहीं होता । वहाँ इस प्रकारकी घटनाएँ अव्यवहित गुणोंके व्यतिक्रमसे होती हैं, जो धर्मचक्रका विषय नहीं है । आजकल विज्ञानकी इस परमोन्नतिके कालमें तो ऐसी शंकाओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये, क्योंकि जब हम भौतिक जगत्में भी बिना तारके सहस्रों कोसकी दूरीपर क्षणमात्रमें समाचार पहुँचानेका सूक्ष्मभूतोंका चमत्कार देखते हैं,—जो चक्षु-इन्द्रियका विषय नहीं है तो अन्वयज जगत्के चमत्कारोंपर हमें क्यों सन्देह होना चाहिये ? अथ यह कि, उस बालककी ही मृत्यु क्यों हुई, अन्वयज उपद्रव क्यों नहीं हुए ? इसके

लिये अधिक दूर न जायें। यह बात प्रसिद्ध है कि धनेक रोगोंके बीजानु सदैव खाकार-मण्डलमें फिरा करते हैं, किन्तु न सय रोगोंकी ही उदासि एक साथ होती है और न सय मनुष्य ही किसी रोगमें एक साथ मरत होते हैं। विरोध देश, काज और पात्र ही उनके आह्वानके हेतु होते हैं। 'अथ, यही दूरा मूलम जगत्की है। अतः देसी ही विशेषताओंसे उस क्षणमें वह बाधक ही अनिष्ट परियामका पात्र हुआ।

इस उपयुक्त परिस्थितिपर यदि टाकनेसे यह प्रकट होगा कि उस समय भी श्रीभगवान्के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उपस्थित थी। एक ओर जिस माह्वय-बालकका शूलक शरीर उसके मा बापने द्वारपर बाल रखा है उसके लिये न्याय करनेकी उकट चिन्ता और दूसरी ओर एक पवित्र कार्यमें प्रवृत्त मनुष्यका बच, जिसका हृदयमें संकल्प आते ही इसमकारकी शंकाएँ उरस हो जाती हैं, जिनका निरूपण छपर किया गया है किन्तु वर्णाश्रमयमंकी रक्षा और न्यायपरायणताके भागोंके सम्मुख श्रीरामने धन्य किसी भी विचारको स्थान नहीं दिया।\*

(ग) अथ रही ऐसे उग्र दृष्यबाली तीवरो शब्दा, सो यह एक बात तो प्रत्यक्ष ही है, आजकी न्याय-यद्धतिमें भी देखा जाता है कि किसीका बच करनेपर अपराधीको बचका ही दृष्य दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जिस राजाके प्रत्येक प्रान्तमें परम शान्तिका बंधा बज रहा हो और समस्त प्रजा पूर्ण सुख और आनन्दका भोग कर रही हो, यहाँ यदि किसीका उस शान्तिमें बाधक होना सिद्ध हो जाय तो न्याय यही चाहता है कि उसे ऐसा उदाहरणीय दृष्य दिया जाय कि जिससे पुनः किसीको ऐसा अपराध करनेका साहस ही न हो और उस शान्तिके साम्राज्यमें अन्तर न पड़े।

(घ) उपयुक्त स्यारह पवित्र चरित्रोंसे जो मर्यादा स्थिर की गयी है उसका यथासक्ति दिग्दर्शन कराया गया।

अन्तमें इतनी बात और प्रदर्शित करनी आवश्यक है

● भगवान् श्रीरामने मर्यादा-रक्षार्थके लिये शम्भूकका बच किया परन्तु उसकी सत्कामनाका फल भी उसे दे दिया। वह स्वर्गके लिये तय कर रहा था अतएव भगवान्ने उसका बच करके उसे परमोत्तम स्वर्गमें भेज दिया। अर्ध्यात्मरामायणमें कहा गया है कि 'अद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्।' शब्दको परम उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इससे मर्यादा-रक्षार्थके सार्वभौमिक भगवान्की दयावृत्ता और उसके सचकी सफलता भी प्रकट होती है। —सम्पादक

कि सामूहिकरूपसे हम लोगमें प्रतिपादित समस्त चरित्रोंसे या धर्म्योंसे भी, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है, वह परमप्रभुकरणीय मर्यादा और निर्दिष्ट होती है कि प्रायः-पराय चिन्ता भी आचार्योंके आनेपर भी मनुष्योंके पुरोधापंहीन होकर लक्ष्यस्थान नहीं होना चाहिये। विचारिते, श्रीरामकी परम दायण आचार्यत्वाँ राज्यमिंशायनके स्थान या बननायमें ही समाप्त नहीं हुई किन्तु यहाँ तक पीछे गयीं कि प्राणने प्यारी धर्मसौखी भी वियोग हो गया और वह भी सामान्यरूपसे नहीं, एक विच्छेद और प्रच्छन्न राज्यके दरयाद्वारा, परन्तु जितनी जितनी अधिक भोरण आचार्यत्वाँ प्राणी उतने ही उतने अधिकधिक पुरोधापंके लिये उन्हाह होता गया। अतः प्राणीमात्रके जीवनकी सफलताके लिये श्रीभगवान्के द्वारा यह सर्वोच्च शिक्षारूप मर्यादा स्थिर की गयी है कि जिनकी अधिक आचार्यत्वाँ प्राप्त, उतनी ही अधिक पुरोधापं किया जाना चाहिये।

## इष्टदेव रामसे विनय !

मन मन्दिरके इष्टदेव ।  
 इस जीवनके आधार !  
 हे मधुकर ! वर सुमन कलौके  
 स्नेह-रता रखवारे ! !  
 बहुत दिनोंतक खोज-खोजकर  
 हाय ! तुम्हें हम हारे ।  
 किन्तु नहीं कुछ रमा पता  
 हा ! नही नयन-जल-पारे ! !  
 आज हुआ सीमाय प्राप्त  
 हम पहुँचे पास तुम्हारे ।  
 हुप अहा ! इतहस्य देखकर  
 दोनों नयन हमारे ! !  
 आवे हैं हम यहाँ तुम्हारे  
 दर्शन हेतु दुलारे ।  
 हृदय आज यह अर्पण करने  
 प्रेम चोटके मारे ! !  
 हम आतक है, स्वातिबुन्द तुम,  
 चलो हमारे द्वारे ।  
 करो पुण्यमय हे प्रियवर !  
 चल गृहको आज हमारे ! !

श्रीरामचन्द्र द्विवेदी "अरविन्द"

# श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयनका)



ह कइना शक्यकि नहीं होगा कि अखिल विश्वके स्त्री-चरित्रोंमें श्रीरामप्रिया जगज्जननी जानकी-जीका चरित्र सबसे उत्कृष्ट है। रामायणके समस्त स्त्रीचरित्रोंमें तो सीताजीका चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और पद् पद् पर अनुकरण करने योग्य है ही। भारत-वर्णनाओंके लिये सीताजीका चरित्र सम्मार्गपर चलनेके लिये पूण' मार्गदर्शक है। सीताजीके असाधारण पातिव्रत,

गाम, शील, धर्म, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्म-प्रायश्चना, नम्रता, सेवा, संयम, सद्ब्यवहार, साहस, शौर्य आदि गुण एक साथ जगत्की विरली ही महिलामें मिल सकते हैं। श्रीसीताके पवित्र जीवन और अप्रतिम पातिव्रत-धर्मके सरस उदाहरण रामायणमें तो क्या जगत्के किसी ही इतिहासमें मिलने कठिन हैं। आरम्भसे लेकर अन्ततक सीताके जीवनकी सभी बातें—केवल एक प्रसङ्गको छोड़कर—विचित्र और आदर्श हैं। ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे माता भा-बहिनोंको सन्तुष्टि न मिले। संसारमें अथवा अन्तर्गतनी चियां हो चुकी हैं, श्रीसीताके पातिव्रत-धर्ममें सर्व-प्रेरोधोपेयि कदा था सकता है। किसी भी ऊँचीसे ऊँची स्त्रीके चरित्रकी सूक्ष्म आलोचना करनेसे ऐसी एक-न-एक बात मेल ही सकती है जो अनुकरणके योग्य न हो, परन्तु सीताका ऐसा कोई भी आचरण नहीं मिलता।

जिस एक प्रसंगको सीताके जीवनमें दोषयुक्त समझा जाता है, वह है मायाशूकको मारनेके लिये श्रीरामके चले जाने और मातोषके मरते समय 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की पुकार करने पर सीताजीका धर-चाकर लक्ष्मणके प्रति यह कइना कि 'मैं समझती हूँ कि तू मुझे पानेके लिये अपने रूपेँ भाईकी मृत्यु देखना चाहता है। मेरे होमसे ही तू अपने भाईकी रक्षा करनेको नहीं आता।' इस बर्तावके लिये सीताने प्राण खलकर 'हुत पश्चात्ताप किया। साधारण स्त्री-चरित्रमें सीताजीका यह बर्ताव कोई विशेष दोषयुक्त नहीं है। रामाजीके संकटमें पड़े हुए समझकर आतुरता और प्रेमकी आतुरतासे सीताजी यहाँपर नीतिका उत्कर्षण कर गयी थीं। श्रीराम-सीताका अन्वय मर्यादाकी रक्षाके लिये था, इसीसे सीताजीकी यह एक गन्धी समझी गयी और इसीलिये सीताजीने पश्चात्ताप किया था।

नैहरमें  
प्रेम-व्यवहार  
जनकपुरमें पिताके घर सीताजीका सबके साथ बड़े प्रेमका बर्ताव या छोटे बड़े सभी स्त्री-रूप सीताजीको हृदयसे चाहते थे। सीताजी आरम्भसे ही सख्खा थी। लज्जा ही स्त्रियोंका भूषण है। यह प्रतिदिन माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया करती थी, घरके नौकर चाकर तक उसके व्यवहारसे परम प्रसन्न थे। सीताजीके प्रेमके बर्तावका कुछ दिग्दर्शन उस समयके पद्य'नसे मिलता है जिस समय सीताजी ससुरारके लिये विदा हो रही है—

पुनि धीरज धरि कुँआरि हँकारी । नार-नार भेटहि महतारी ॥  
पहुँचानहि फिरि मिलहि बहोरो । बड़ी परसपर प्रीति न धोरी ॥  
पुनि पुनि मिलति सकिन्ह बिलगार । बाल बच्छ जिमि धेनु लवारी ॥

प्रेम-विषय नर-नारि सब, सकिन्ह सहित रनिवास ।  
मानहुँ कीन्ह विदेहपुर, करुना-बिरह-निवास ॥  
सुक सारिका जानकी ज्वाप । कनक पित्रन्दि राखि पदप ॥  
म्याकुल कहहि कहौ नैदेही । सुनि धीरजु परिहरै न बेही ॥  
भये विकल खगमुम पहि भौंती । मनुजदसा कँसे कहि जाती ॥  
बेनु समेत जनक तब आप । प्रेम उमौमि लेखन जल छाप ॥  
सीय बितोके धीरता भागी । रहे कदावत परम विरागी ॥  
कीन्हि राय उर लार जानकी । निठौ महामरजाद गगनकी ॥

यहाँ शानियोंके आचार्य जनकके ज्ञानकी मर्यादा मित जानी है और पित्रोंके पक्षेकृत्या पशु-पक्षी भी 'सीता सीता' पुकारकर ध्यातुल हो उठते हैं, यहाँ किन्ता प्रेम है, इस बातका अनुमान पाठक कर लें। सीताके इस चरित्रसे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि बड़े-बड़े प्रेममें छोटे बड़े सभीके साथ ऐसा बर्ताव करना उचित है जो सभीको मिय हो।

माता पिताका  
आशा पालन  
सीता अपने माता पिताकी आज्ञा पावन करनेमें कभी नहीं चून्धी थी। माता पितासे उसे जो कुछ शिक्षा मिलनी, श्रीसीता उसपर रक्षा अमल करती थी। मियिजासे शिक्षा होते समय और चित्रदृष्टमें सीताजीको माता-पितासे जो कुछ शिक्षा मिली है, वह आमात्रके लिये पाठनीय है—

हेमिदु रंगन पिपिहि निवारी। निर अहेवन अगीम हमारी॥

सामु-सामु-सुख-सेवा करेहू। पनी-ग्न-लगे अयागु अनुगरेहू॥

पतिसेवाके लिये श्रीरामको राज्याभिषेकके बन्धने बकायक बन-  
वाम हो गया। सीताजीने यह रामाचार  
प्रेमाग्रह सुनने ही तुरन्त अपनी कर्तव्य निश्चय कर

लिया। नैहर-समुदाय, गहने-कपड़े, राज्य-परिवार, महज-  
बाग, दास-शामी और भोग-राग भादिसे कुछ मालस्य नहीं।  
प्राणाकी तरह पतिके साथ रहना ही पत्नीका एकमात्र  
कर्तव्य है। इस निश्चयपर आकर सीताने श्रीरामके साथ  
वनगमनके लिये जैसा कुछ व्यवहार किया है, वह परम  
उज्वल और अनुकरणीय है। श्रीसीताजीने प्रेमरूप विनय  
और हठसे वनगमनके लिये पूरी कोशिश की। साम, दाम,  
नीति सभी वैध उपायोंका अवलम्बन किया और अन्तमें  
वह अपने प्रयत्नमें सफल हुई। उसका ध्येय या किन्ती भी  
उपायसे धनमें पतिके साथ रहकर पतिकी सेवा करना। इसी-  
को वह परम धर्म समझती थी। इसीमें उसे परम आनन्द-  
की प्राप्ति होती थी। वह कहती है—

मत्तु पिता भगिनी प्रिय भार्। प्रिय परिवार सुहृद-समुदाई॥

सास-ससुर-सुख-सजन साहार्। सुत सुंदर सुखील सुसुदाई॥

जहलगे नाथ नेह अरु नाते। सिय तितु तियहि तरनिहुँ ते तते॥

तन-वन-धाम-धरनि सुरारजू। पतिनिहीन सब सोक-समाजू॥

भोग रोग सम, मूचन भाऊ। जन-जलना सरिस संसार॥

वनके नाना छेरों और कुटुम्बके साथ रहनेके नाना  
प्रलोकनोंको सुनकर भी सीता अपने निश्चयपर अटिगरहती  
है। वह पति-सेवाके सामने सब कुछ तुच्छ समझती है।  
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद विमल विषु बदन निहारे॥

यहाँपर यह सिद्ध होता है कि सीताजीने एकबार प्राप्त  
हुई पति आत्माको बदलाकर दूसरी बार अपने मनोऽनुकूल  
आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रेमाग्रह किया। यहाँतक कि, जब  
मगवान् श्रीराम किन्ती प्रकृष्ट भी नहीं माने तो 'दृढय विद्रीण'  
हो आनेतकका सङ्केत कर दिया—

पंसेउ बचन कठोर मुनि, जो न हृदय बिलगान।

तो प्रभु निरन विवेक-दुख, सहिहहि पौर प्रल॥

अप्याभरामायणके अनुसार तो श्रीसीताने यहाँतक  
स्पष्ट कर दिया कि—

रामायणनि बहूगः कृति बहूनिर्द्वैः।

गीतं रीता वनं श्लोकाः किं कुर्वन्नुद॥

अवगन्त्या रमिष्यति सर्वेषां तन्मद्विनी।

वरि गच्छति मोक्षवन्त प्रान्तंयत्पतिनेऽग्र॥

(५० त्त०)

'मिने भी प्राणोंके हाग रामायणकी अनेक कथाएँ मुनी  
हैं। कहीं भी ऐसा कहा गया हो तो बनवाइये कि किन्ती  
भी रामायणमें श्रीराम सीताको अयोध्यामें छोड़कर बन  
गये हैं। इस बार ही यह मयी बात क्यों होनी है? मैं आप  
की सेवाका बनकर माय चर्खी। यदि किन्ती तरह भी आप  
मुझे नहीं ले चकेंगे तो मैं आपके सामने ही प्राय त्याग  
रूँगी।' पतिसेवाकी कामनासे सीताने इसप्रकार स्पष्टरूपसे  
अवतारविरपक अपनी बड़ाईके शब्द भी बह दारे।

वाल्मीकि-रामायणके अनुसार सीताजीके अनेक रते,  
गिहगिहाने, विविध मार्गना करने और प्राणत्यागपूर्वक पराजय  
में पुनः मिलन होनेका निश्चय बनवानेपर भी जब श्रीराम बने  
साथ ले जानेको राजा नहीं हुए तब, सीताको बड़ा दुःख हुआ  
और वह प्रेमकोपमें आँसुमें गर्म-गर्म आँसुओंकी धारा बारी  
हुई नीतिके नाते इसप्रकार कुछ कठोर बचन भी कर गये,  
कि—'हे देव! आप सरीसे आर्यपुरण मुक्त जैसी अतुल्य,  
भाऊ, दीन और सुख-दुःखको समान समझनेवाले सहचरिणी-  
को अकेली छोड़कर जानेका विचार करें, यह आपको शोभा  
नहीं देता। मेरे पिताने आपको पराक्रमी और मेरी रक्षा  
करनेमें समर्थ समझकर ही अपना दामाद बनाया था।'  
इस कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीराम लक्ष्मणने  
अत्यन्त श्रेष्ठ पराक्रमी समझे जाते थे। इस प्रसङ्गमें श्री-  
वाल्मीकिजी और गो० तुलसीदासजीने सीता-रामके संवादमें  
जो कुछ कहा है सो प्रत्येक क्षी-रुपके ध्यानपूर्वक पढ़ने और  
मनन करने योग्य है।

सीताजीके प्रेमकी विजय हुई, श्रीरामने उसे साथ ले  
चलना स्वीकार किया। इस कथानकसे यह सिद्ध होता है  
कि पत्नीको पतिसेवाके लिये—अपने सुखके लिये नहीं—  
पतिकी आज्ञाको दुहरानेका अधिकार है। यह प्रेमसे पति-  
सुखके लिये ऐसा कर सकती है। सीताने तो यहाँतक कह  
दिया था 'यदि आप आज्ञा नहीं देंगे तब भी मैं तो साथ  
चर्खी।' सीताजीके इस प्रेमाग्रहकी आज्ञातक कोई भी  
निन्दा नहीं करता, क्योंकि सीता केवल पतिप्रेम और  
पति-सेवाहीके लिये समस्त सुखोंको तिलाञ्जलि देकर

आनेको तैयार हुई थी, किसी इन्द्रिय-सुखरूप स्वार्थ बनके लिये नहीं ! इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ताका व्यवहार अनुचित या पतिव्रत-धर्मसे विरुद्ध था । जो धर्मके लिये ही ऐसा व्यवहार करनेका अधिकार है । उसे पुरुषोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि धर्मिणी पतिव्रता-पत्नीकी बिना हृष्ट्या उसे त्यागकर पत्र चले जाना अनुचित है । इसीप्रकार स्त्रीको भी पति- और पति-सुखके लिये उसके साथ ही रहना चाहिये । उनके विरोध करनेपर भी कष्ट और आपत्तिके समय पति-के लिये स्त्रीको उसके साथ रहना उचित है । अथवा अवस्था देखकर कार्य करना चाहिये । सभी स्थितियोंमें के लिये एकसी व्यवस्था नहीं हो सकती । सीताने भी नती साधुताके कारण सभी समय इस अधिकारका योग नहीं किया था ।

तिसिवामे वनमें जाकर सीता पतिसेवामें सच कुछ भूल- कर सब तरह सुधी रहती है । उसे राजपाट, महल-बगीचे, धन-दौलत और दास-दासियोंकी भी स्थिति नहीं होती । रामको वनमें छोड़कर लौटा हुआ सीताके लिये विलाप करती हुई माता कीर्णव्यासे कहता — 'सीता निर्जन वनमें धरकी भांति निर्भय होकर रहती वह श्रीराममें मन लगाकर उनका प्रेम प्राप्त कर रही है । व्याससे सीताको कुछ भी दुःख नहीं हुआ, मुझे तो ऐसा मत होता है कि (श्रीरामके साथ) सीता बनवासके सर्वपाप है । चन्द्रावना सती सीता जैसे पहले यहाँ बगीचोंमें कर खेलती थी, वैसे ही यहाँ निर्जन वनमें भी वह रामके साथ बालिकाके समान खेलती है । सीताका मन मैं है, उसका जीवन श्रीरामके अधीन है, अतएव श्रीराम-साथ सीताके लिये वन ही अयोध्या है और श्रीरामके ना अयोध्या ही वन है ।' धन्य पातिव्रत ! धन्य !

सास-सेवा श्रीसीता पतिसेवाके लिये वन गयी, परन्तु उसके इस बातका बड़ा जोश रहा कि मुझोंकी सेवासे उसे अलग होना पड़ रहा है । सीता उनके पैर छूकर सच्चे मनसे रोती हुई कहती है—

× × × । मुनिव भाव में परम अमानी ॥  
 राम-समय दैव बन दीन्हा । मीर मनोरथ सुखलन करिन्हा ॥  
 जब छोम जनि छोईअ छोट्ट । करम बजिन कछु दोस न मोट्ट ॥  
 साम-यतीहूका यह व्यवहार आदर्श है । भारतीय जगत् में यह आदर्श और सीताका-सा व्यवहार

करना सीख जायें तो भारतीय गृहस्थ सब प्रकारसे सुधी हो जायें । सास अपनी बधुओंको सुधी देखनेके लिये व्याकुल रहें और बहूएँ सासकी सेवाके लिये छटपटावें तो दोनों ओर ही सुखका साम्राज्य स्थापित हो सकता है ।

सहिष्णुता सीताकी सहिष्णुताका एक उदाहरण देखिये । वन-गमनके समय जब कैकेयीजी सीताको बनवासके योग्य वस्त्र पहननेके लिये कहती है तब वशिष्ठ-सरीखे महर्षिका मन भी क्षुब्ध हो उठता है, परन्तु सीता इस कथनको केवल चुपचाप सुन ही नहीं लेती, प्राज्ञानुसार वह वस्त्रधारण भी कर लेती है । इस प्रसंगसे भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सास या उसके समान नाते-में अपनेसे बड़ी कोई भी स्त्री जो कुछ कहे या बर्ताव करे, उसको सुधीके साथ सहन करना चाहिये और कभी पतिके साथ विदेश जाना पड़े तो सच्चे हृदयसे सासुझोंको प्रणाम-कर, उन्हें सन्तोष कराकर, सेवासे बञ्चित होनेके लिये हार्दिक पश्चात्ताप करते हुए जाना चाहिये । इससे बधुओंको सासुझोंका आशीर्वाद प्राप्त ही प्राप्त होगा ।

सीता अपने समयमें लोकप्रसिद्ध पतिव्रता निरभिमानता थी, उसे कोई पातिव्रतका श्वा उपदेश करता ! परन्तु सीताको अपने पातिव्रतका कोई अभिमान नहीं था । धनसूयाजीके द्वारा किया हुआ पातिव्रतधर्मका उपदेश सीता बड़े आदरके साथ सुनती है और उनके चरणोंमें प्रणाम करती है । उसके मनमें यह भाव नहीं आता कि मैं सब कुछ जानती हूँ । बल्कि अनुसूयाजी ही उससे कहती हैं—

सुनु सीता तव नाम, सुनिरि नरि पतिव्रत करिदि ।  
 तोहि प्रान्धिय राम, कहैउँ कया संसारदि ॥

इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि अपनेसे बड़े-बड़े जो कुछ उपदेश दें उसे अभिमान छोड़कर आदर और सम्मानके साथ सुनना चाहिये एवं क्यासाध्य उसके अनुसार चलना चाहिये ।

सीताजीकी भक्ति-सेवाका भाव देखिये । अतिथि-सेवा यह अपने द्वारपर आये हुए भक्ति-अभ्यागत-की सेवा करनेसे कभी नहीं बूझती थी । कष्टवेधमें द्वारपर खड़े हुए राधकको भी सीताने बड़े आदरसे भिजा देना चाहा था । इससे स्त्रियोंको यह सीखना चाहिये कि द्वारपर आये हुए भक्तिका प्रेमके साथ क्याउचित सम्भार करना उचित है ।

गुरुजन-सेवा बर्षोंकी सेवा और मर्यादामें सीताका मन और कितना लगा रहता था, इस बातको समझनेके मर्यादा लिये महाराज जनककी चित्रकूट-याप्राके प्रसङ्गको याद कीजिये। भरतके धन जानेपर राजाजनक भी रामसे मिलनेके लिये चित्रकूट पहुँचते हैं। सीताकी माता श्रीरामकी माताओंसे सीताकी, सासुओंसे मिलती है और सीताको साथ लेकर अपने डेरेपर आती है। सीताको तपस्विनीके धेयमें देखकर सबको विषाद होता है, पर महाराज जनक अपने पुत्रीके इस आचरणपर बड़े ही सन्तुष्ट होते हैं और कहते हैं—  
पुत्रि पवित्र किये कुलदोज। सुजस भवक जग कह सब कोऊ ॥

माता-पिता बड़े प्रेमसे हृदयसे लगाकर अपनेक प्रकारकी सीख और असीस देते हैं। बात करते-करते रात अधिक हो जाती है। सीता मनमें सोचती है कि सासुओंकी सेवा छोड़कर इस श्रवणमें रातको यहाँ रहना अनुचित है, किन्तु स्वभावसे ही जज्जारीला सीता सङ्कोचयश मनकी बात मा-बापसे कह नहीं सकती—

कहत न सीय सनुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल माहीं ॥

चतुर माता सीताके मनका भाव जान लेती है और सीताके शीघ्र-स्वभावकी मन-ही-मन सराहना करते हुए माता-पिता सीताको कौशल्याके डेरेमें भेज देते हैं। इस प्रसङ्गसे भी स्त्रियोंको सेवा और मर्यादाकी शिक्षा लेनी चाहिये।

निर्मयता सीताका तेज और उसकी निर्भयता देखिये। जिस दुर्दान्त रावणका नाम सुनकर देवता भी काँपते थे, उसीको सीता निर्भयताके साथ कैसे कैसे बचन बहती थी। रावणके हाथोंमें पड़ी हुई सीता अति श्रेष्ठसे उसका तिरस्कार करती हुई बहती है 'घरे दुष्ट निष्ठापर, तेरी प्रायु पूरी हो गयी है, घरे मूल'। नू श्रीराम-चन्द्रकी सहधर्मिणीको हरणकर प्रज्वलित अग्निके साथ कन्या बाँधकर खडना चाहता है। तुम्हें और रामचन्द्रमें उलना ही अन्तर है जितना सिंह और सियारामें, समुद्र और जालमें, अरुण और काँजीमें, सोने और लोहेमें, चन्दन और कीचड़में, हाथी और बिछावमें, गरुड़ और कौपुमें तथा हंस और गौधमें होता है। मेरे अमित प्रभाववाले स्वामीके राते नू मुझे हरण करेगा तो जैसे मक्खी धीके पीने ही श्नुके बर हो जाती है, वैसे ही नू भी काँड़के गाँड़में खडा जावगा।' इससे यह सीखना चाहिये कि परमात्माके बलपर किसी भी कष्टतामें अनुबन्धे डरना उचित नहीं। अज्ञान-

का प्रतिपाद निर्भयताके साथ करना चाहिये। परमात्माके बलका सच्चा भरोसा होगा तो रावणका बध करके सीताको उसके धंगुलसे छुड़ानेकी भाँति भगवान् हमें भी विपत्तिये छुड़ा लेंगे।

धर्मके लिये प्राण-त्यागकी तैयारी विपत्तियें पड़कर भी कभी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। इस विषयमें सीताका उदाहरण सर्वोत्तम है। लङ्काकी अशोक-घाटिकामें सीताका धर्मनारा करनेके लिये दुष्ट रावणकी शेरसे कम चेष्टाएँ नहीं हुईं, राजसियोंने सीताको भय और प्रलोभन दिखलाकर बहुत ही तंग किया, परन्तु सीता तो सीता ही थी। धर्म-यागका प्रश्न तो वहाँ उठ ही नहीं सकता, सीताने तो छुलसे भी अपने बाहरी बर्तवमें भी विपत्तिये बचनेके हेतु कभी दौप नहीं भाने दिया। उसके निर्मल और धर्मसे परिपूर्ण मनमें कभी बुरी स्फुरणा ही नहीं आ सकी। अपने धर्मपर अटल रहती हुई सीता दुष्ट रावणका सदा तीव्र और नीलितुल्य शब्दोंमें तिरस्कार करती रही। एक बार रावणके वाग्वायोंको न सह सकनेके समय और रावणके द्वारा मायासे श्रीराम-लक्ष्मणको मरे हुए दिखला देनेके कारण वह मरनेको तैयार हो गयी परन्तु धर्ममें शिगनेकी भावना स्वप्नमें भी कभी उसके मनमें नहीं उठी। यह दिनरात भगवान् श्रीरामके चरणोंके ध्यानमें लगी रहती थी। सीताजीने श्रीरामको हनुमान्के द्वारा जो संदेश कइलाया, उससे पता लग सकता है कि उनकी कैसी पवित्र स्थिति थी—

नाम पाहूँ दिवस निरति, ध्यान तुम्हार कपट।  
लोचन निज पर-जन्त्रिका, प्राण जाहि कहि बट ॥

इससे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पतिके कियोगमें भीषण आपत्तियों आनेपर भी पतिके चरणोंका ध्यान रहे। मनमें भगवान्के बलपर पूरी वीरता, धीरता और तेज रहे। स्वयंके पालनमें प्रायोंकी भी आहुति देनेको सदा तैयार रहे। धर्म जाकर प्राय रहनेमें कोई बाध नहीं, परन्तु प्राय जाकर धर्म रहनेमें ही कल्याण है 'सर्वत्र निवर्तनं भवः।'।

सारधानी सीताजीकी सावधानी देखिये। जब हनुमान् भी अशोकघाटिकामें सीताके पास जाने के लिये सीता अपने बुद्धिकौशलसे सब प्रकार उनकी परीक्षा करती है। अचटक उसे यह विश्वास नहीं हो जाता कि हनुमान् बालकमें श्रीरामचन्द्रके वृत्त हैं, शक्तिरम्य हैं और जै-

जमें ही यहाँ भाये हैं सबतक सुलकर बात नहीं  
ती-है।

जब पूरा विधास हो जाता है तब पहले  
स्वामी और देवरकी कुशल पूछती है, फिर  
सू बहाती हुई कल्याण्य शब्दोंमें कहती है—'हनुमान् !  
नायजीका चित तो बड़ा ही कोमल है। कृपा करना तो  
सका स्वभाव ही है। फिर मुझे वह इतनी निष्ठुरता क्यों  
र रहे हैं ? यह तो स्वभावसे ही सेवकको सुल देनेवाले हैं,  
र मुझे उन्होंने क्यों बिसार दिया है ? क्या धीरयुनायजी  
भी मुझे याद भी करते हैं ? हे भाई ! कभी उस श्याम-  
न्दके कोमल सुलकमलको देखकर मेरी ये झल्लें सीतल  
गी ? चहो ! नाथने मुझको बिल्कुल भुला दिया ! इतना  
दकर सीता सोने लगी, उसकी वाणी रुक गयी !

बचन न अत्र नयन भरि नारी । अहह नाथामोहि निपट विसारी ॥  
इसके बाद हनुमान्जीने जब धीरामका प्रेम-सन्देश  
नाते हुए यह कहा कि माता ! धीरामका प्रेम तुमसे  
गुना है। उन्होंने कहलाया है—

तत्त प्रेमकर मन अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥  
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीतिरस पतनदि माहीं ॥

यह सुनकर सीता गदगद हो जाती है। श्रीसीता-रामका  
परस्पर कैसा भावदर्श प्रेम है। जगत्के स्त्री-गुरुष यदि इस  
मको भावदर्श बनाकर परस्पर ऐसा ही प्रेम करने लगीं तो  
इस सुलभव बन जाय !

सीतानीने जयन्तकी घटना याद दिलाते हुए  
कहा कि, 'हे कपिवर ! तू ही बता, मैं इस  
अवस्थामें कैसे जी सकती हूँ ? शत्रुको  
रपानेवाले धीरामशब्दमय समर्थ होनेपर भी मेरी सुधि  
नहीं लेते, इससे मालूम होता है अभी मेरा दुःखभोग शेष  
हीं हुआ है।' यों कहते-कहते जब सीताके नेत्रोंसे आँसुओंकी  
धारा बहने लगी तब हनुमान्ने उन्हें आधासन देते हुए कहा कि  
'माता ! कुछ दिन धीरज रखो। शत्रुओंके संहार करनेवाले  
कृपाकर धीराम और लक्ष्मण योद्धे ही समयमें यहाँ आकर  
आवणका बंधका गुह्रें अचञ्चुरीमें ले जायेंगे। तुम चिन्ता  
न करो। यदि तुम्हारी विशेष हृच्छा हो और मुझे आशा हो  
तो मैं भगवान् धीरामकी और तुम्हारी द्वापरे रावणका  
बधकर और लंकाको नष्टकर तुमको प्रभु धीरामचन्द्रके  
समीप ले जा सकता हूँ। अथवा दे देवि ! तुम मेरी पीठपर  
बैठ जाओ, मैं आकाशमार्गसे होकर महानगरको लक्ष्य

जाऊँगा। यहाँके राक्षस मुझे नहीं पकड़ सकेंगे। मैं शीघ्र ही  
तुम्हें प्रभु धीरामचन्द्रके समीप ले जाऊँगा।' हनुमान्के वचन  
सुनकर उनके बल-पराक्रमकी परीक्षा देनेके बाद सीता कहने  
लगी—'हे वानरश्रेष्ठ ! पतिभक्तिका सम्यक् पाठन करनेवाली  
मैं अपने स्वामी धीरामचन्द्रको द्योदधर संवेच्यते किसी भी  
अन्य पुरुषके श्रंगका स्पर्श करना नहीं चाहती—

भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामानन्दस्य वानर !  
नाहं स्पर्शं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥

( बा० रा० ५। १७। १२ )

दुष्ट रावणने बलाकारसे हरण करनेके समय मुझको  
स्पर्श किया था, उस समय तो मैं पराधीन थी, मेरा कुछ  
भी धरा नहीं बचता था। अब तो धीराम स्वयं यहाँ आवें  
और राक्षसों सहित रावणका बध करके मुझे अपने साथ ले  
जायें, तभी उनकी उन्नत कीर्तिकी शोभा है।'

बला विचारिये ! हनुमान्-सखीला सेवक, जो सीताजीको  
सच्चे हृदयसे मातासे बढ़कर समझता है और सीता-रामकी  
भक्ति करना ही अपने जीवनका परम ध्येय मानता है, सीता  
पतिव्रतधर्मकी रक्षाके लिये, इतने घोर विपत्तिकाठमें अपने  
स्वामीके पास जानेके लिये भी उसका स्पर्श नहीं करना  
चाहती ! कैसा अद्भुत धर्मका आग्रह है ! इससे यह सीखना  
चाहिये कि भारी आपत्तिके समय भी स्त्रीको यथासाध्य  
परपुरुषके श्रंगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये !

भगवान् धीराममें सीताका कितना प्रेम था  
और उनसे मिलनेके लिये उसके हृदयमें  
कितनी अधिक व्याकुलता थी, इस बातका  
कुछ पता हरणके समयसे लेकर लङ्का-विजयतकके सीताके  
विविध वचनोंसे लगता है, उस प्रसंगको पढ़ते-पढ़ते ऐसा कौन है  
जिसका हृदय कल्याते न भर जाय ? परन्तु सीताजीकी सखी  
व्याकुलताका सबसे बढ़कर प्रमाण तो यह है कि धीरयुनायजी  
महाराज उसके लिये विरहन्वाकुल श्लैष्म मनुष्यकी भाँति  
विद्वल होकर उन्नतचक्र रोते और विहाय करते हुए, अचि-  
कुमारों, सूर्य, पवन, पृथ्वी और जड़ वृक्षजन्तुओंसे सीताका  
पता पूछते फिरते हैं—

आदिना। मो लोककटाकतज लोकस्य सत्यानुत्तमसंसाधिन ।

मम प्रिया सा क गता इता वा संसख मे शोकहतस्य सर्वम् ॥

होकेतु सर्वे न नास्ति किमिद्यद्येन नित्यं विदितं भवेत्तत् ।

शंसस्व वाप्ये । नुत्तनास्तिनां तां भूता इता वा पथि वीते वा ॥

लोकोंके कृपाकृत्यको जाननेवाले हे सूर्यदेव ! तू सत्य



और असत्य कर्मोंका लक्ष्मी है। मेरी प्रियाको कोई हर ले गया है, या वह कहीं चली गयी है इस बातको नू भलीभाँति जानता है। अतएव मुझ शोकपीडितको सारा हाठ पतला ! हे वायुदेव ! तीनों लोकोंमें तुझसे कुछ भी छिपा नहीं है, तेरी सर्वत्र गति है। हमारे कुलकी वृद्धि कानेवाही सीता मर गयी, हरी गयी या कहीं मार्गमें भटक रही है। जो कुछ हो सो/पथार्थ कह।

हा मुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-व्रत-प्रेम पुनीता ॥

लठिभन समुसाथे बहु मीती। पूँछत चले रत्ना अरु पाती ॥

हे खग-मृग ! हे मधुकर सेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनेनी ॥

× × ×

पहि विधि निरूपत खोजत स्वामी। मनहुँ महाविरही अतिकामी ॥

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् श्रीराम 'महा विरही और अतिकामी' थे। सीताजीका श्रीरामके प्रति इतना प्रेम था और वह श्रीरामके लिये इतनी व्याकुल थी कि श्रीरामको भी वैसा ही बर्त्ताव करना पड़ा। भगवान्का यह प्रथ है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

श्रीरामने 'महाविरही और अतिकामी' के सदृश लीला कर इस सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिया। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि हम भगवान्को पानेके लिये व्याकुल होंगे तो भगवान् भी हमारे लिये वैसे ही व्याकुल होंगे। अतएव हम सबको परमात्माके लिये इसी प्रकार व्याकुल होना चाहिये।

अग्नि-परीक्षा रावणका बध हो गया, प्रभु श्रीरामकी आज्ञाले सीताको खान करवाकर और वध्याभूषण

पहनाकर विभीषण श्रीरामके पास लाते हैं। बहुत दिनोंके बाद त्रिपति धीरदुर्वीरके पूर्णिमाके चन्द्रलक्ष्मण मुखको देखकर सीताका सारा दुःख नाश हो गया और उसका मुख निर्मल चन्द्रमाकी भाँति चमक उठा। परन्तु श्रीरामने यह स्पष्ट कह दिया। 'मैंने अपने कर्णध्वका पालन किया। रावणका बधकर तुम्हको दुष्टके चंगुलसे सुदाया परन्तु नू रावणके धरमें रह चुकी है, रावणने तुम्हको बुरी नज़रसे देखा है, अतएव अब मुझे तेरी आश्रयकता नहीं। नू अपनी हृत्पानुसार चारों जहाँ चली जा। मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।'।

नामि मे त्वम्भिक्षुं प्रपद्ये तस्यतमितः ।

(वा०श०६।२१५।२१)

श्रीरामके इन अधुनपूर्व क्रोर और भयङ्कर वचन सुनकर विषमर्त्या सीताकी जो कुछ दशा हुई उसका नहीं हो सकता ! स्वामीके वचन-वाणीमें सीताके स चक्षुषोंमें भीषण घाव हो गये। वह घूट घूटकर रोने लगी फिर कल्याणको भी कल्याणमार्गमें हुजो देनेवाले कल्याणने धीरे धीरे गद्गद् वाणीमें कहा—

'हे स्वामी ! थाप साधारण मनुष्योंकी भाँति मुझे ऐसे क्रोर और अनुचित शब्द कहते हैं ? मैं अपने शीघ्र शपथ करके कहती हूँ कि थाप मुझपर विश्वास रखें। प्राणनाथ ! रावणने हरण करनेके समय जब मेरे शरीर शर्य किया था, तब मैं परवश थी। इसमें तो वैश्य दोष है। यदि थापको यही करना था, तो हनुमान्को जब पास भेजा था तभी मेरा त्याग कर दिया होता तो थाप मैं अपने प्राण ही छोड़ देती।' सीताने बहुतसी बातें क परन्तु श्रीरामने कोई जवाब नहीं दिया, तब श्रीरामकी दीनता और चिन्तासे भरे हुए लक्ष्मणसे बोली— 'सौमित्रि ! ऐसे मिथ्यावादसे कलङ्कित होकर मैं जीना नहीं चाहती। मेरे दुःखकी निवृत्तिके लिये तुम यहाँ अग्नि-परीक्षा तैयार कर दो। मेरे प्रिय पतिने मेरे गुणोंसे अप्रसन्न होकर जनसमुदायके सभ्य मेरा त्याग किया है, श्रव मैं अग्नि-परीक्षा करके इस जीवन्का श्रान्त करना चाहती हूँ।' वैदेही सीताने वचन सुनकर लक्ष्मणने कोपभरी जाल-जाल कर्त्तव्य एक बार श्रीरामचन्द्रकी धोर देखा, परन्तु रामकी लक्ष्मणकी धर्षीन रहनेवाले लक्ष्मणने आकार और संकेतसे श्रीरामके श्लव समझकर उनकी हृत्पानुसार चिन्ता तैयार कर सीताने प्रवृत्त अग्निके पास जाकर देवता और प्राणोंके प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर कहा—

यथा मे हृदयं त्रिष्यं नृपसंपति रावणवत् ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

यथा मां शुद्धचरित्रां दुष्टां जानाति रावणः ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

(वा०श०६।२१५।२५-५)

'हे सर्वलोक-साक्षी अग्निदेव ! यदि मेरा मन कभी श्रीरामचन्द्रसे चलायमान न हुआ हो, तो तुम मेरी कठो। मेरा रक्षित शुद्ध होनेपर भी श्रीरावण मुझे मानते हैं। यदि मैं पाल्पमें शुद्ध हूँ तो हे देव ! तुम रक्षा करो।'।

इतना कहकर अग्निको प्रदक्षिणा कर सीता वि

ते श्रमिर्न प्रवेश कर गयी। सब शोर हाहाकार मच  
। प्रज्ञा, शिव, कुबेर, इन्द्र, यमराज और वरुण आदि  
। आकर श्रीरामको समझाने लगे। प्रज्ञानोंने बहुत  
रहस्यकी बातें कही।

इतनेमें सर्वलोकोंके साक्षी भगवान् श्रमिदेव सीताकी  
में लेकर अकस्मात् प्रकट हो गये और वैदेहीको श्रीरामके  
शरण करते हुए बोले—

एषा ते राम । वैदेही पापमय्यां न विद्यते ॥  
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।  
सुवृत्ता वृत्तशीटीयं न त्वामत्यचरच्छुभा ॥  
रावणेनापनीतैषां वीर्योत्सिकेन रक्षसा ।  
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनान् ॥  
कुट्टां चान्तःपुरे गुहा त्वचिता त्वपरामणा ।  
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोरभिर्घोरबुद्धिभिः ॥  
प्रलोम्भमाना त्रिविधं तर्क्यमाना च मैथिली ।  
नाचिन्तयत तद्रक्षसवृत्तेनान्तरात्मना ॥  
त्रिशुद्धनावां निष्पापां प्रतिगृह्णीस्व मैथिलीम् ।  
न किञ्चिद्भिनातन्वा श्वमाहापयामि ते ॥

( वा०रा०दा०१०।६-११ )

'राम ! इस अपनी वैदेही सीताको प्रहण करो ! इसमें  
हैं भी पाप नहीं है। हे परिश्रमिमानो राम ! इस शुभलक्षणा  
ताने घाणी, मन, बुद्धि या नेत्रोंसे कभी तुम्हारा  
लक्षण नहीं किया। निर्जन वनमें जब तुम इसके पास  
में थे तब यह बेवारी निरुत्साह और विवश थी। इसीसे  
लगवित रावण इसे बलाकारसे हर ले गया था। यद्यपि  
सको अन्तःपुरमें रखवा गया था और घूरसे घूर स्वभाव-  
ली राक्षसियाँ पहरा देती थीं। अनेक प्रकारके प्रलोभन  
ये जाते थे और तिरस्कार भी किया जाता था, परन्तु  
घरोंमें भन छगानेवाली, दुग्दारे परायण हुई सीताने  
घरारे सिवा दूसरोंका कभी मनसे विचार ही नहीं किया।  
रामका अन्तःकरण शुद्ध है, यह निष्कार है, मैं तुम्हें आशा  
ता हूँ, तुम किसी प्रकारकी भी रांका न करके इसके  
रण करो।'

श्रमिदेवके बचन सुनकर सर्वदाशुशरीरम भगवान्  
श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए, उनके नेत्र हँसते भर चाये और  
गहोंने कहा—

'हे श्रमिदेव ! इसप्रकार सीताकी शुद्धि आश्चर्यकी थी,  
में थीं ही प्रहण कर लेता तो लोग कहते कि दुरात्पुत्र

राम मूर्ख और कामी हैं। ( बुद्ध लोग सीताके शीलपर  
भी सन्देह करते जिससे उसका गौरव घटता, आज इस  
श्रमिरीपासे सीताका और मेरा दोनोंका मुल उज्ज्वल हो  
गया है ) मैं जानता हूँ कि जनकनन्दिनी सीता अनन्यद्वया  
और सर्वदा मेरी इच्छानुसार चलनेवाली है। जैसे समुद्र  
अपनी भ्रमोदाका त्याग नहीं कर सकता, उसीप्रकार यह  
भी अपने तेजसे मर्यादामें रहनेवाली है। दुष्टात्मा रावण  
प्रदीप्त श्रमिकी ज्वालाके समान अग्रस इस सीताका स्पर्श  
नहीं कर सकता था। सूर्यकान्ति-सदृश-सीता भ्रमसे श्रमिन्न  
है। जैसे ध्यात्मवान् पुरुष कौत्सिका त्याग नहीं कर सकता,  
उसी प्रकार मैं भी सीतां लोकोंमें विशुद्ध इस सीताका  
वास्तवमें कभी त्याग नहीं कर सकता।'

इतना कहकर भगवान् श्रीराम प्रिया सती सीताको  
प्रहणकर आनन्दमें निमग्न हो गये। इस प्रसंगसे यह सीखना  
चाहिये कि कौन कौन भी हालतमें पतिपर नाराज न हो और  
उसे सन्तोष करानेके लिये न्याययुक्त उचित चेष्टा करे।

गृहस्थधर्म सीता अपने स्वामी और देवरके साथ भयोप्या  
लौट आती है। बड़ी बड़ी स्त्रियों और सभी  
सासुओंके घरोंमें प्रवास करती है। सब शोर सुल छा  
जाता है। अब सीता अपनी सासुओंकी सेवामें लगती है  
और उनकी ऐसी सेवा करती है कि सबको सुख हो जाना  
पड़ता है। सीताजी गृहस्थका सारा काम मुचारूपसे  
करती हैं जिससे सभी सन्तुष्ट हैं। इससे यह सिद्धा प्रहण  
अपनी चाहिये कि विदेरसे लौटते ही सास और सभी बड़ी  
बड़ी स्त्रियोंको प्रवास करना और सास आदिकी सचे मनसे  
सेवा करना चाहिये, एवं गृहस्थका सारा कार्य मुचारूपसे  
करना चाहिये।

श्रीसीताजी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न  
समान व्यवहार इन देवरोंके साथ पुरवत् बर्ताव करती थीं,  
और खानपान आदिमें किसी प्रकारका भी भेद नहीं रखती  
थीं। स्वामी श्रीरामके लिये जैसा भोजन बनता था ठीक  
वैसा ही सीताजी अपने देवरोंके लिये बनाती थीं। देसनेमें  
यह बात छोटीसी मालूम होती है किन्तु इसी बर्तावमें दोष  
आजानेके कारण केवल स्वामेकी बलुओंमें भेद रखनेसे मात्र  
भारतमें हमारा सम्मिलित बुद्धिओंकी त्रुटि दृशा हो रही  
है। सीताजीके इस बर्तावसे स्त्रियोंको खानपानमें समान  
व्यवहार रखनेकी सिद्धा प्रहण करनी चाहिये।

एक समय भगवान् राम गुहचरोंके हाता  
संता-परित्याग सीताके सङ्गधमें लोकावगाद सुनकर बहुत

ही शोक करने हुए लक्ष्मणने करने को कि 'भाई ! मैं जानता हूँ कि गीता विषय और आत्मिकता है, लक्ष्मणने उगने मेरे सामने लक्ष्मणने हूँ अग्रिममें प्रयोग करने कागरी परीक्षा ही थी और सर्वज्ञोक्त्याही अग्रिमदेवने सर्व शक्ति होकर समान देवता और अग्रिमोंके सामने गीताके पार-रहित होनेकी शोचन्या ही को तथापि हुए लक्ष्मणनाम्नके कारण मैंने गीताके त्यागकर निश्चय कर लिया है। हुएअपने पू. कच प्राण-काज ही शुभमन्त्र गारापीके स्वयं वैदाकर गीताको गीताके उग पार समान-नहींके तीरपर महाराम नाम्नीकेके आश्रमके पार निजने वनमें छोड़कर चला था। तुम्हें मेरे चारोंकी और जीवनकी शरण है, हुए सम्बन्धमें पू. शुभकी कुप भी न करना। गीतामें भी अभी कुप न करना।' लक्ष्मणने दुःखाने दृष्टकने भीन होकर आशा स्वीकार की और प्राण-काज ही शुभमन्त्रे कदकर रूप लुप्तवा जिया।

सीताजीने एक बार मुनिपोंके आश्रममें जानेके लिये श्रीरामने प्रार्थना की थी अतएव लक्ष्मणने द्वारा वन जानेकी बात सुनकर सीताजीने यही समझा कि स्वामीने अग्रिमोंके आश्रममें जानेकी आज्ञा ही है और यह अग्रिमपदियोंके अग्रिमोंके लिये बहुमुख्य गहने करने और विविध प्रकारकी वस्तुएँ लेकर वनके लिये विद्रा होगयी। मार्गमें भरकुन होते देखकर सीताने लक्ष्मणसे पूछा- 'भाई ! अपने गगर और घरमें सब प्रसन्न तो हैं न ?' लक्ष्मणने कहा- 'सब कुशल है।' यहीतक तो लक्ष्मणने सहन किया, परन्तु गंगाके तीरपर पहुँचते ही मर्मवेदनासे लक्ष्मणका हृदय भर आया और यह दीनकी भाँति घूट घूटकर रोने लगा। संयमशील धर्मश लक्ष्मणको रोते देखकर सीता कहने लगी- 'भाई ! तुम रोते क्यों हो ? हमलोग गंगातीर अग्रिमोंके आश्रमोंके समीप आ गये हैं, यहाँ तो हर्ष होना चाहिये तुम उल्टा खेद कर रहे हो। तुम तो रात-दिन श्रीराम-चन्द्रजीके पास ही रहते हो, क्या दो रात्रिके विद्योगमें ही शोक करने लगे ? हे पुरुषभेष्ट ! तुमको भी राम प्राणधिक प्रिय है, पर मैं तो शोक नहीं करती, इस लक्ष्मणको छोड़ो और गंगाके उसपार चलकर मुझे तपस्वियोंके दर्शन कराओ। महात्माओंको भिन्न भिन्न वस्तुएँ बाँटकर और यथायोग्य उनकी पूजाकर एक ही रात रह हम लोग वापस लौट आवेंगे। मेरा मन भी कमलनेत्र, सिंहसदृश वक्रस्थलवाले, ध्यानन्द्रवाताधर्मों श्रेष्ठ श्रीरामको देखनेके हो रहा है।'

लक्ष्मणने इन वचनोंका कोई जवाब नहीं दिया और सीताके पास सी-कारण सारा हो गयेके उग का पूर कर फिर वचन सामने गीता दृष्ट कर दिया। सी-कारणर पूरने और आशा देनेपर लक्ष्मणने गिर बं करने गार् वार्याने की-आशाएँका प्रयोग सर्वन व हुए कहा- 'गीते ! तुम विद्रा हो, किन्तु श्रीरामने तु-त्याग दिया है। अब तुम श्रीरामको हृदयमें प्राण व पवित्रतापूर्वका पावन करनी हुई आत्मिक मुक्ति प्राप्त में रहो।'

लक्ष्मणने इन वचनोंका सुनने ही सीता मुँह नी होकर गिर पड़ी। खोड़ी देर बाद होज जानेपर तो विज्ञान करने लगी और बोली- 'हे लक्ष्मण ! विज्ञानमें गीताको दुःख भोगनेके लिये तथा है। महान्त नारी, है किन्तु जोड़ियोंको विपुत्राया या जियने प्राप्त में हा-आश्रमवासी सभी होनेपर भी धर्मोत्तम नियति ताने द्वारा त्यागी जाती हैं। हे लक्ष्मण ! पूर्वाचरमें अब मैं हर्ष भी तब तो स्वामीकी गेराका गीतामय निजनेके रूप वनेके दुःखोंमें ही सुख माननी थी, परन्तु दे सीन ! हा नियतमके चिन्तनमें मैं आश्रममें कैसे रह सकूँगी ? अ-दुःखिनी मैं अपना दुःखका किमको सुनाऊँगी ? हे प्रणे ! महाराम, अग्रिम, मुनि अब तुम्हें यह पूछेंगे कि तुमको और मापरीने क्यों त्याग दिया, क्या तुमने कोई उरा कर्म लि-या ? तो मैं क्या जवाब दूँगी। हे सीमिते ! मैं आज ही हा भागीरथीमें हृदकर अपना प्राण दे देती, परन्तु मेरे हृद श्रीरामका बंध-बीज है, यदि मैं हृद मरूँ तो मेरे लक्ष्मणका बंध नारा हो जायगा। हृत्सिद्धिमें मर भी नहीं सकूँगे हे लक्ष्मण ! तुमको राज्ञा है तो तुम मुझ अग्रिमोंके को यहाँ छोड़कर चले जाओ परन्तु मेरी कुप बातें तुलने जाओ।

'मेरी भोरसे मेरी सारी सांभुओंका शय जोड़कर चर-वन्दन करना और फिर महाराजको मेरा प्रणाम कहकर उठव-पूखना। हे लक्ष्मण ! सबके सामने सिर नवाकर मेरा प्रणाम करना और धर्ममें सदा सावधान रहनेवाले महाराजको मेरी भोरसे यह निवेदन करना-

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्रेव राघव ।  
मकया च परया युका हिता च तव नित्यशः ॥  
अहं त्यक्ता च ते वीर अयशो मीरुणा जने ।  
यच्च ते बचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥

मया च परिहर्षस्य त्वं हि मे परमा गतिः ।  
 नरुच्यश्चैव नृपतिर्धर्मण मुसमाहितः ॥  
 मया भ्रान्तुषु बतंयास्तथा पौरैषु नित्यदा ।  
 परमो ह्येव धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुसमा ॥  
 मनु पौरत्रने राजन् धर्मण समताऽनुयाद् ।  
 अहं तु ननुशीनामि स्वशरीरं नरर्षम ॥  
 मयाऽपवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।  
 पतिर्हि देवता नाग्याः पतिर्वेनुः पतिर्गुरुः ॥  
 प्राणैरपि त्रियं तस्मादनृजैः कायं विशेषतः ।

(भा० रा० ७।४।२२-२८)

हे राघव ! आप जिस प्रकार मुझको तबसे शुद्ध समझते हैं उसी प्रकार नित्य अपनेमें भक्तिवाली और अनुरक्तचित्तवाली भी समझियेगा । हे वीर ! मैं जानती हूँ कि आपने लोकापवादको दूर करने और अपने कुलकी कीर्ति कायम रखनेके लिये ही मुझको त्याग दिया है परन्तु मेरे तो आप ही परमगति हैं । हे महाराज, आप जिस प्रकार अपने माइयोंके साथ बर्ताव करते हैं, प्रजाके साथ भी वही बर्ताव कीजियेगा । हे राघव, यही आपका परम धर्म है, और इसीसे उत्तम कीर्ति मिलती है । हे स्वामिन् ! प्रजापर धर्मयुक्त शासन करनेसे ही पुण्य प्राप्त होता है । अतएव ऐसा कोई बर्चाय न कीजियेगा जिससे प्रजामें अपवाद हो, हे रघुनन्दन ! मुझे अपने शरीरके लिये तनिक भी शोक नहीं है, क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम देवता है, पति ही परम रघु है और पति ही परम गुरु है । नित्य प्राणाधिक-प्रिय पतिका प्रिय कार्य करना और उसीमें प्रसन्न रहना, स्त्रीका यह स्वाभाविक धर्म ही है । क्या ही भासिक शब्द है ! धन्य सती सीता, धन्य धर्मप्रेम और प्रजावत्सलता ! धन्य भारतका सतीधर्म, धन्य भारतीय देवियोंका अर्घ्व त्याग !

सीताजी कहने लगी—'हे लक्ष्मण, मेरा यह सन्देश महाराजसे कह देना । भाई ! एक बात और है, मैं इस समय गर्भवती हूँ, पुत्र मेरी और देवकृत इस माताका निश्चय करते जाओ, कहीं संसारमें लोग यह अपवाद न करें कि सीता धर्ममें जाकर सन्तान प्रसव करती है ।'

सीताके इन बचनोंकी सुनकर दीनचित्त लक्ष्मण ध्याकुल हो उठे और तिर मुकाकर सीताके पैरोंमें गिर कुफकार मारकर जोर जोरसे रोने लगे । फिर उठकर सीताजीकी प्रदक्षिणा की और हो बर्षितक ध्यान करनेके बाद बोले—'माता, हे पापहिता सीते, पुत्र क्या कह रही हो ? मैंने आजतक

गुहारे घरणोंका ही दर्शन किया है, कभी स्वरूप नहीं देखा । आज भगवान् रामके परोक्ष मैं तुम्हारी ओर कैसे ताक सकता हूँ ।' तदनन्तर प्रथाम करके वह रोते हुए नावपर सवार होकर लौट गये और इधर सीता,—दुःखभासे पीड़िता आदर्श पतिव्रता सती सीता—अचर्यमें गलत फाड़कर रोने लगी । सीताजीके रुदनको सुनकर वाल्मीकिजी उसे अपने आश्रममें ले गये ।

इस प्रसंगसे जो कुछ सीखा जा सकता है वही भारतीय देवियोंका परम धर्म है । सीताजीके उपर्युक्त शब्दोंका नित्य पाठ करना चाहिये और उनके रहस्यको अपने जीवनमें उतारना चाहिये । लक्ष्मणके बर्तावसे भी हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पदमें माताके समान होनेपर भी पुरुष किसी भी स्त्रीके अन्न न देखे । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने अन्न किसीको न दिलावें । वाल्मीकिजीके आश्रममें सीता ऋषिकी आज्ञासे अन्तःपुरमें ऋषिपत्नीके पास रही, इससे यह सीखना चाहिये कि यदि कभी दूसरोंके घर रहने का अवसर आवे तो स्त्रियोंको अन्तःपुरमें रहना चाहिये और इसी प्रकार किसी दूसरी स्त्रीको अपने पहाँ रखना हो तो स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें ही रखना चाहिये ।

जो स्त्री अपने धर्मका प्राणपनसे पालन करती है, अन्तमें उसका परिणाम अच्छा ही होता है । जब भगवान् श्रीरामचन्द्र अरवमेघ यज्ञ करते हैं और लव-कुशके द्वारा रामायणका गान सुनकर मुग्ध हो जाते हैं तब लव-कुशकी पहचान होती है और श्रीरामकी आज्ञासे सीता वहाँ बुलायी जाती है । सीता श्रीरामका ध्यान करती हुई तिर नीचा किये हाथ जोड़कर वाल्मीकि ऋषिके पीछे पीछे रोती हुई आ रही है । वाल्मीकि मुनि सभामें आकर जो कुछ कहते हैं उससे सारा लोकापवाद मिट जाता है और सारा देश सीतारामके जयजयकारसे ध्वनित हो उठता है । वाल्मीकिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहते हुए धार्मिक कष्ट ढाला कि 'मैंने हजारों वर्षोंतक तप किया है, मैं उस तपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि सीता हुए आचरणवाली हो तो मेरे तपके सारे फल नष्ट हो जायें । मैं अपनी दिव्यदृष्टि और ज्ञानदृष्टिद्वारा विधास दिखता हूँ कि सीता परम शुद्धा है ।' वाल्मीकिकी प्रतिज्ञाको सुनकर और सीताको सभामें आयी हुई देखकर भगवान् श्रीराम गद्गद हो गये और कहने लगे कि 'हे महाभाग, मैं जानता हूँ कि जानकी शुद्धा है, लव-कुश मेरे ही पुत्र हैं, मैं राजधर्मपालनके लिये

ही प्रिया सीताका त्याग करनेको बाध्य हुआ था। अतएव आप मुझे क्षमा करें !

उस सभामें मद्रा, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वदेव, वायु, साध्य, महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्ध आदि धैरे हुए हैं, उन सबके सामने राम फिर यह कहते हैं कि 'हूरा जगत्तमें वैदेही शुद्ध है और इसपर मेरा पूण प्रेम है— 'शुद्धां जगता मध्ये वैदेद्यां प्रीतिरस्तु मे ।' हूतनेमें कायायबल धारण किये हुए सती सीता नीची गर्दनकर श्रीरामका ध्यान करती हुई भूमिकी ओर देखने लगी और बोली—

यथाऽहं राववादन्त्यं मनसापि न चिन्तये ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥  
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥  
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वैषि रामात्परं न च ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥

(वा० रा० ७।१७।१५-१७)

'यदि मैंने रामको छोड़कर किसी दूसरेका कभी मनसे भी चिन्तन न किया हो तो हे माधवी देवी, तु मुझे अपनेमें ले ले, हे श्रुषी माता ! मुझे मार्ग दे। यदि मैंने मन, कर्म और वाणीसे केवल रामका ही पूजन किया हो तो हे माधवी देवी, मुझे अपनेमें ले ले, हे श्रुषी माता ! मुझे मार्ग दे। यदि मैं रामके सिवा और किसीको भी न जानती होऊँ यानी केवल रामको ही भजनेवाली हूँ यह सत्य हो तो हे माधवी देवी, मुझे अपनेमें स्थान दे और हे श्रुषी माता ! मुझे मार्ग दे।'

इन तीन शपथोंके करते ही अकस्मात् घटती फट गयी, उसमेंसे एक उषा और दिव्य सिंहासन निकला, दिव्य सिंहासनके दिव्य देह और दिव्य ब्रह्मभूषणधारी नागोंने अपने मालपर उठा रक्ता था और उसपर श्रुषी देवी बैठी हुई थीं। श्रुषीदेवीने सीताका दोनों हाथोंसे आलिङ्गन किया और 'हे पुत्री तेरा कल्याण हो।' कहकर उसे गोदमें बैठा लिया। इन्होंने सबके देखने-देखने सिंहासन रसावलमें प्रवेश कर गया। सती सीताके जयजयकारसे त्रिभुवन भर गया !

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'भगवान् श्रीराम के दयालु और ग्राहकारी थे, उन्होंने विद्वान् जानकर भी सीताका त्याग क्यों किया?' इसमें प्रधानतः निम्नलिखित पाँच कारण हैं, इन

कारणोंपर ध्यान देनेसे सिद्ध हो जायगा कि रामका यह कार्य सर्वथा उचित था—

१-रामके समीप हृमप्रकारकी यात आयी थी—

अस्माकमपि दारेषु सङ्गीयं भविष्यति ।

यथा हि कुर्वते राजा प्रजा तनुनुर्वते ॥

—कि 'रामने रावणके घरमें रहकर आर्या हुई सीताको घरमें रख लिया इसलिये अब यदि हमारी स्त्रियाँ भी दूयोंके यहाँ रह आवेंगी तो हम भी इस यातको सह लेंगे, क्योंकि राजा जो कुछ करता है प्रजा उसीका अनुसरण करती है।' प्रजाकी इस भावनासे भगवान्ने यह सोचा कि सीताका निर्दोष होना मेरी बुद्धिमें है। साधारण लोग इस बातमें नहीं जानते। वे तो इससे यही शिक्षा लेंगे कि परपुरुषके पर बिना बाधा छोड़ रह सकती है, ऐसा होनेसे स्त्री-धर्मविलुप्त भिगड़ जायगा, प्रजामें वणसङ्करताकी वृद्धि होगी, अतएव प्रजाके धर्मकी रक्षाके लिये प्राणधिया सीताका त्याग कर देना चाहिये। सीताके त्यागमें रामको बड़ा दुःख था, उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था। उनके हृदयकी दशाका पूरा अनुभव तो कोई कर ही नहीं सकता, किन्तु वाल्मीकि रामायण और उत्तररामचरितको पढ़नेसे किञ्चित् दिग्दर्शन हो सकता है। श्रीरामने यहाँ प्रजाधर्मकी रक्षाके लिये व्यक्ति धर्मका बलिदान कर दिया। प्रजाधर्मके यज्ञावलमें आनन्दस्वरूपा सीताकी आहुति दे डाली। इससे उनके प्रजाधर्मका पता लगता है। सीता राम हैं और राम सीता हैं, शक्ति और शक्तिमान् मिलकर ही जगत्का नियन्त्रण करते हैं, अतएव सीताके त्यागमें कोई आपत्ति नहीं। इस लोकसंग्रहके हेतुसे भी सीताका त्याग उचित है।

२-चाहे योही ही संख्यामें हो सीताका भूदा अपवाद करनेवाले लोग थे। यह अपवाद त्यागके बिना मिट नहीं सकता था और यदि सीता वाल्मीकिके आश्रममें रहकर वाल्मीकिके द्वारा प्रतिशक्तके साथ शुद्ध न कही जाती और श्रुषीमें न समाती तो शायद यह अपवाद मिटता भी नहीं। सम्भव है और बन जाता, और सीताका नाम आज जित भावने लिया जाता है शायद वैसे न लिया जाता इस हेतुसे भी सीताका त्याग उचित है।

३-सती श्रीरामकी परमभक्ता थी, उनकी आश्रिता थी, उनकी परम प्यारी चर्चाङ्गिनी थी, ऐसी परमपुनीता सतीको निष्कृताके साथ त्यागनेका दोष भगवान् श्रीरामने अपने ऊपर ईर्ष्यालिये से लिया कि इससे सीताके जीवनकी वृद्धि हुई, सीताका भूदा बल भी मिट गया और सीता





पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीता ।

एकदा श्रीहृदयिनिःसर्वभोग समन्यिते । एकान्ते दिव्य-मयने सुखासीने रघुसमम् ॥  
 मन्दम्राण्णिक्य-संकारां दिव्यामरण भूयितम् । प्रसन्न-चन्दनं शान्तं विदुःसुखंज निर्मायम् ॥  
 सीता कमलवन्दासी सपर्यामरणभूयिता ॥







सुन्दरिकायाम् श्रीराम-साता ।

१०० रामो विचित्रसेनो बाल्यवने । पञ्चानने दिव्य-मयने सुधासीने वसुधामम् ॥  
 १०१ साता साता विचित्रसेनो सुधामम् । मगधे यदने शाले दिव्यदुर्गम् निजायाम् ॥  
 १०२ रामो विचित्रसेनो बाल्यवने ॥

जयन्तुपत्न्या वन गयी। भगवान् अपने भक्तोंका गौरव बताने-  
के लिये अपने ऊपर दोष ले लिया करते हैं और यही यहाँ-  
पर भी हुआ।

४-अवतारका लीलाकार्य प्रायः समाप्त हो चुका था,  
देवतागण सीताको इस बातका सङ्केत कर गये थे। अर्थात्  
रामायणमें लिखा है कि 'दशहजार वर्षक माया-मनुष्यरूप-  
धारी भगवान् विधिपूर्वक राज्य करते रहे और सब लोग उनके  
चरणकमलोंको पूजते रहे। भगवान् धीराम राजर्षि परमपवित्र  
एकपत्नीव्रती थे और लोकसंग्रहके लिये गृहस्थके सब  
धर्मोंका यथाविधि पालन करते थे। पतिव्रता सीताजी प्रेम,  
अनुकूल आचरण, नम्रता, हृदिग्रहोंका दमन, ब्रह्मा और  
प्रतिबुद्ध आचरणमें भय छादि गुणोंके द्वारा भगवान्का भाव  
समझकर उनके मनको प्रसन्न करती थी। एक समय धीराम  
पुत्र-वार्तिकमें बैठे हुए थे और सीताजी उनके कोमल  
चरणोंको दबा रही थीं। सीताने एकान्त देखकर भगवान्से  
कहा कि हे देवदेव ! आप जगत्के स्वामी, परमात्मा, सनातन,  
सच्चिदानन्दघन और आदिमप्यान्तरहित तथा सबके कारण  
हैं। हे देव, उस दिन हृद्वादि देवताओंने मेरे पास आकर  
स्तुति करते हुए यह कहा कि 'हे अगन्माता, तुम भगवान्की  
चिन्तयन्ती हो, तुम पहले वैकुण्ठ पथारनेकी कृपा करो तो  
भगवान् राम भी वैकुण्ठ पथारकर हम लोगोंको सनाय  
करेंगे।' देवताओंने जो कुछ कहा था सो मैंने निवेदन कर  
दिया है। मैं कोई आज्ञा नहीं करती आप जैसा उचित  
समझें वैसा करें।' अणभर सोचकर भगवान्ने कहा कि—

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं नदामि ते ।  
रुद्रपत्न्या मिसं देवि लोक्यादं त्वदाग्रयम् ॥  
त्यजामि त्वां वने लोकनादाद्गीतं इवापरः ।  
भविष्यतः कुमारो द्वौ बाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥  
इदानीं ददम्ये गर्भः पुनरागम्य मेऽन्तिकम् ।  
लोकानां प्रत्यर्थं त्वं कृत्वा द्रुपयामादरात् ॥  
भूमेर्विषयमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम् ।  
पद्मादहं यमिष्यामि पद्मं पुन मुनिश्रयः ॥

(अप्यारमराभावण)

'हे देवि, मैं सब कुछ जानता हूँ और तुमको एक उपाय  
बतलाता हूँ। हे सीते, मैं तुम्हारे लोकापवादका बहाना रचकर  
साधारण मनुष्यकी तरह लोकपवादके भयसे तुमको वनमें  
त्याग दूँगा। यहाँ वाल्मीकिके आश्रममें तुम्हारे दो पुत्र होंगे,  
क्योंकि इस समय तुम्हारे गर्भ हैं। तदनन्तर तुम मेरे पास आ

लोगोंको विश्वास दिलानेके लिये बड़े आदरसे-शपथ खा  
एष्वीके विवरमें प्रवेशकर तुम्हें वैकुण्ठको चली जाओगी और  
पीछेसे मैं भी आ जाऊँगा। यही निश्चय है।' यह भी  
सीताके त्यागका एक कारण है।

५-पूर्वकालमें एक समय युद्धमें देवताओंसे हारकर भागे  
हुए दैत्य भृगुजीकी स्त्रीके आश्रयमें चले गये और अर्थात्-  
पत्नीसे अभय प्राप्तकर निर्भय हो वहाँ रहने लगे थे।  
दैत्योंको भृगुपत्नीने आश्रय दिया।' इस बातसे कुपित होकर  
भगवान् विष्णुने उसका चमत्से तिर काट डाला था। पत्नीको  
इसप्रकार मारे जाते देखकर भृगुअपिने क्रोधमें हतप्रज्ञ  
होकर भगवान्को शाप दिया था कि 'हे जनार्दन ! आपने  
कुपित होकर मेरी अर्थात् पत्नीको मार डाला इसलिये आपको  
मनुष्यलोकमें जन्म लेना होगा और दीर्घकालतक पत्नी-वियोग  
सहनना पड़ेगा।' भगवान्ने लोकहितके लिये इस शापको  
स्वीकार किया और उसी शापको सत्य करनेके लिये अपनी  
अभिन्न शक्ति सीताको लालसे ही वनमें भेज दिया।

इत्यादि अनेक कारणोंसे सीताका निर्वासन रामके लिये  
उचित ही था। असली बात तो यह है कि भगवान् राम  
और सीता साक्षात् नारायण और शक्ति हैं। एक ही महान्  
तत्त्वके दो रूप हैं। उनकी सीला वे ही जानें, हम लोगोंको  
आलोचना करनेका कोई अधिकार नहीं। हमें तो चाहिये  
कि उनकी दिव्य लीलाओंसे स्वयं उठावें और अपने  
मनुष्य-जीवनको पवित्र करें।

मानवलीलामें श्रीसीतानी इस बातको प्रमाणित कर  
गयी कि बिना दोष भी यदि स्वामी स्त्रीको त्याग दे तो  
स्त्रीका कर्त्तव्य है कि इस विपत्तिमें दुःखमय जीवन बिताकर  
भी अपने पातिव्रतधर्मकी रक्षा करे, परिणाम उसका कल्याण  
ही होगा।

उपसंहार

सत्य और न्याय अन्तमें अवरय ही शुभ फल  
देंगे, सीताने अपने जीवनमें कटोर परिस्थितियों  
देकर स्त्रीमात्रके लिये यह मर्यादा स्थापित कर दी कि जो  
स्त्री आपत्तिका वनमें सीताकी भाँति धर्मका पालन करेगी उसकी  
कीर्ति संसारमें सदाके लिये प्रकाशित हो जायगी। सीतामें  
पतिभक्ति, सीताका भरत-रुष्मण और शत्रुघ्नके साथ निर्दोष  
वात्सल्य-प्रेम, सासुर्योंके प्रति सेवाभाव, सेवकोंके साथ  
प्रेमका बर्ताव, नैहर और ससुरारणमें गवके साथ आदर्श  
भ्रती और सबके सम्मान करनेकी चेष्टा, अर्थात्की सेवा,  
स्वयं-कृता जैसे धीर पुत्रोंका मानव्य, उनको शिक्षा देनेकी

पढ़ाया, साहाय, पैर, तप, धीरव और भादर्य धर्मपरायणता भादि सभी गुण पूर्ण विकसित और सर्वथा अनुकरणीय हैं । हमारी जो माताएँ और बहनें प्रमाद, मोह और आत्मशक्तिको त्याग करती हैं, वे भी अपने पति और पुत्रोंको भी तार सकती हैं । अधिक बया, जिनपर उनके, दुषा हो जायगी उक्तका भी कल्याण होना सम्भव है । ऐसी स्त्री-शिरोमणि पतिप्रता श्री दूरान और पूजनके पोष्य है । मनुष्यों-के द्वारा ही नहीं बल्कि देवताओंके द्वारा भी यह पूजनीय है और अपने चरित्रसे शिशुओंको पवित्र करनेवाली है ।

यद्यपि श्रीस्तीताजी साक्षात् भगवती और परमात्माकी शक्ति भी तथापि उसने अपने मनुष्य जीवनमें लोकशिक्षा-

के लिये जो चरित्र किये हैं, वे सब ऐसे हैं कि जितना अनुकरण सभी क्षिणी कर सकती हैं । संगारकी मर्यादा किये ही श्रीगानामका भयनार था । अनप्य उनके पति और उपदेशात्मकिक न होकर ऐसे स्वार्थरहित थे कि जिनको काममें जाकर हमयोग लाभ उठा सकते हैं । जो श्रीगाना यह कहकर कर्तव्यमें छूटना चाहते हैं कि 'श्रीस्तीता-सा साक्षात् शक्ति और ईश्वर थे हम उनके चरित्रोंका अनुकरण नहीं कर सकते ।' वे कायर और भक्त हैं । वे श्रीरामको ईश्वरका भयनार केवल कथनभरके लिये ही मानते हैं । तब भक्तोंको तो श्रीरामजीका चरित्रका यथार्थ अनुकरण ही करना चाहिये ।

## रामचरित-मानस

( १ )

सुर और असुरोंकी सङ्ग्रामे लीन देखि,  
कोकिला कलानिधि औ परियाँ सुरेशकी ;  
द्राक्षा रसाल मधु, मिष्ट स्वदु सर्पिणादि,  
—सुर-नर-भारियाँ औ बाँसुरी बजेदाकी ।  
भारती सुकवियोंकी मनुहार दम्पतीकी,  
सम्पति उदारचेता निपुण नरेशकी ;  
करके परस्पर विमर्श उक्त मण्डलीने,  
लूट ली पियूष-सी सुसम्पदा जलेशकी ।

( २ )

बारि-निधि-मन्यनके बाद यदि मूर्ति अहो,  
अबलोकिके दयनीय दुर्दशा रसेशकी ;  
नरि आदीं आँसुं करुणाकी मञ्जु मोतिबोसे,  
दयसिन्धु विद्यानिधि तुलसी द्विजेशकी ।  
सुधाको पकत्र करनेकी मय्य-भावनासे—  
प्रेरित हो पाकर सु-आशिस महेशकी ;  
'मानस-सरोवर' में रस बरसाने लगे,  
हेकर करोंमें बर वर्णिका गणेशकी ।

( ३ )

कोयलकी काकली सुरीले स्वर परियोंके,  
केकीके मधुर नृत्य चन्द्रिका निवेशकी ;  
नंदीके मोहन गुण सुधा नारि अशरकी,  
शारदाके सदनकी सम्पति बनेशकी ।  
जननीके क्षिण्य-सैह द्रष्टाकी उदारतादि,  
सकल सकेलिके अमी-मूरत विशेषकी ;  
भव-निधि-पोत सोई रचना है मानसकी,  
तुलसीकी वृत्ति है स्त्रीकृति उमेशकी ।

सर्वानन्दसिंह 'सर्वेश'

# रामायणमें भरत

(शैलक-साहित्यार्थ वं० श्रीशालग्रामजी शर्मा)



मायणमें भरतका एक विशेष स्थान है। यदि यह कहा जाय कि रामायणके पात्रोंमें भरतका चरित्र सबसे अधिक उज्वल है तो कोई अत्युक्ति नहीं। भरतने जितनी प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना किया—और जिस चैवं तथा साहसके साथ किया—उतना कोई दूसरा कर सकता, इसमें सन्देह ही है। जितनी परीक्षाएं भरतने दी उतनी यदि

कैसी दूसरेके सामने आयी होती तो होश मार जाते। भरतके चरित्रका मनन करनेसे प्रतीत होता है कि वह विपत्तियोंके महासागरमें अविकम्पितरूपसे स्थिर रहनेवाले महाशैल हैं। भरतके मनको डिगानेके लिये संसारकी बर्षासे बर्षा शक्ति बेकार सिद्ध होती है और भरतको सुभानेके लिये भायाके ऊँचेसे ऊँचे समुद्रमन ग्रन्थ निकम्मे ठहरते हैं। दुनियाँ एक घोर है और भरत एक प्रभोर है। एक घोर प्रलोभनोंके विशाल शैलकी चकार्पीय है और दूसरी घोर विपत्तियोंका अपार सागर है। घरके सब सरोसम्बन्धी उन्हीं उनका हित सुभा रहे हैं। उनके जन्मसे ही पहले, उनकी माता कैकेयीके विश्वाहसे भी पूर्व, उनके नानाने महाराज दशरथसे प्रतिज्ञा कराकी थी कि कैकेयीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा। इसी शर्तपर कैकेयीका विवाह हुआ था। दशरथने अपने कामीपनके कारण यह शर्त मंजूर कर ली थी। आज उनका वह मनोरथ सफल हुआ था। मन्थराके उपदेशसे कैकेयीने इस चिरपोषित मनोरथके लिये घरमें 'महाभारत' मचा दिया था। एक प्रकारसे भरतके मार्गके कटि—राम—को जड़ते उल्लास फेंका था। नाना, मामा आदि सबके सब राज-कार्यके लज्जबँकार और भरतके इतरतरहसे मददगार थे। १४वर्षका समय भी कम नहीं होता। इतने समयमें भरत प्रजाको कृष्णी तरह काट्टमें कर सकते थे। यदि कोई अड़चन होती तो उनके सहायक भी कम नहीं थे। यदि कोई दोष देता तो दशरथको देता जिन्होंने अनुचित शर्तपर शारी की थी। आलिर भरतका इसमें क्या दोष था? वह अपने 'जन्म-सिद्ध अधिकार' को कैसे छोड़ें? फिर कैकेयीको मिले वरदान भी तो कम नये!

माना कि राम, लक्ष्मणको महर्षि विद्यामित्रने जो

दिव्याञ्ज दिये थे वे भरतके पास नहीं थे। हम थोड़ी दूरके लिये यह भी मान लेते हैं कि यदि राम-लक्ष्मणके साथ भरतका संग्राम विग्रं जाता तो शायद भरत हार जाते, परन्तु इस संग्रामका भवसर ही कैसे था सकता था? राम लड़ते भी कैसे? भरतको राज्य देकर पिता दशरथने अपनी प्रतिज्ञा—चाहे अनिच्छापूर्वक ही सही—पूरी की थी इसीके कारण, सबके समझानेपर भी रामने राज्य छोड़कर वनका रास्ता लिया था। धर्मात्मा रामने पिताको अधर्म और असत्यसे बचानेके लिये राज्य छोड़ा था। फिर राम किन् वदाने इस राज्यके लिये युद्ध छेड़ सकते थे?

शायद कोई कहे कि १४ वर्ष वनवासके अनन्तर राम अपने राज्यके लिये लड़ सकते थे, परन्तु यह ठीक नहीं है। १४ वर्षके समयकी शर्त 'राम-वनवास' के साथ जगामपी गयी थी, भरत-राज्यके साथ नहीं। कैकेयीने जो दो वरदान माँगे थे, उनमें यह नहीं था कि भरत १४ वर्ष राज्य करे और बादमें आकर राम राज्य ले लें। उसने साफ कहा था कि 'भरतका राज्य हो—बिना किसी शर्तके—और राम १४ वर्ष वनमें रहे' यदि १४ वर्षके बाद राम चाहते तो नगरमें आ सकते थे, लेकिन राज्य वह कभी नहीं ले सकते थे। कैकेयीकी राजनीतिक गुरु मन्थरा इतनी भोली नहीं थी जो ऐसी कच्ची बात सिखाती, और न कैकेयीके पिताने ही ऐसी कमजोर शर्त की थी। वाक्यीकिने मन्थराकी उक्ति हस्तप्रकार लिखी है—

तौ च याचस्व-भर्तारं भरतस्याभियेचनम्।

प्रजाजनं च रामस्य वार्षाणि च चतुर्दश ॥

चतुर्दश हि वार्षाणि रामे प्रजाजिते वनम्।

प्रजामावगतस्तदहः स्मिरः पुत्रो मविष्यति ॥

(शु० रा० २।१।२०-२१)

'भरतका राज्य और रामका १४ वर्षका वनवास चतुर्दशमें आँगे। १४ वर्षतक जब राज्य वनवासमें रहेंगे, तो इतने दिनोंमें 'पुत्र'—भरत—प्रजाका स्नेह-भाजन हो जायगा और प्रजाके हृदयमें स्थान पा केनेपर वह—भरत—स्थिर हो जायगा। फिर उसका राज्य किसीके हितार्थे न दियेगा।' इससे स्पष्ट है कि १४ वर्ष वनवासकी शर्त सिद्ध हस्तलिखे की गयी थी कि इतने समयमें भरतका राज्य

स्थिर हो जाय, यह प्रजाका हृदय अपने घरमें कर सके और उनके विरोधी राम हतने समयतक प्रजाकी भाँवोंके भागे-गे-पुकर म हटा दिये जाय—जिगमे शोगोंका रतेह उनके ऊपरसे एकदम हट जाय । १४ वर्षके बाद रामको राज्य छोड़ा देनेकी न कोई बात थी, न हो ही सक्ती थी । ह्य दशामें भरतको रामने या उनके विरुद्धाभ्यांमें कोई बर नहीं था । रामको यदि क्रोध करना या खपना था तो अपने पितासे निघटते, जिन्होंने उनका अधिकार नष्ट किया । भरतका हृत्समें क्या दोष था ? उनसे राम किस गुनिपादपर घटक सकते थे ?

फलतः यह सिद्ध है कि भरतका राज्य निष्कषटक था । उनके मानाने ही हलका बीज बो रखा था । मन्थराने उसे झड़ुरित और पल्लवित किया था, कैकेयीने उसे पुण्य-कल-सम्पन्न बनाया था और भरत—केवल भरत—उसके उपभोगके अधिकारी थे । माता उन्हें राज्य दे रही थी, पिताने उन्हें राज्य देनेकी बात कहकर ही प्राण छोड़े थे, वशिष्ठ आदि समस्त ऋषिगण और मन्थ्रिगण उनके राज्याभिषेककी तैयारी किये बैठे थे, तमाम सूत, मागध, बन्दी तैयार थे । सम्पूर्ण सामन्तलोग सुपचाप यह हरय देखनेको प्रस्तुत थे और सारीकी सारी आयाजवृद्ध प्रजा हृत्सीकी धारामें थी ।

यह ठीक है कि प्रजा रामको राजा देखना चाहती थी, परन्तु यह भी ठीक है कि प्रजा भरतका वहिष्कार शायद ही कर सकती जब उसे पुराने इतिहासका पता चलता—जिसके कारण भरतको राज्य मिला था—तब वह भरतको उतना दोषी कदापि न समझती । हाँ, दशरथको भले ही दोष देती । फिर यही तो भरतका कर्तव्य था । प्रजाका रजन ही तो राजाका धर्म है । उन्हें यहाँपर अपनी प्रजारजन्यतक समस्त शक्तियोंका परिचय देना था । यदि वह हतना भी न करते तो राज्य क्या खला सकते थे ? इसके प्रतिरिक्त बहुत कुछ मार्ग तो उनकी माताने ही रामको वनवास देकर साफ कर दिया था और बाकीके लिये उनके नाना-मामा कसर फसे तैयार थे । वे सब सम्झल लेते, यदि भरत राजगद्दीपर बैठभर गये होते ।

हृत्ससे स्पष्ट है कि भरतने किसी राजनीतिक कारणसे राज्यका परित्याग नहीं किया । राजनीतिक कारण तो उनके राज्य खेनेके ही अन्तुहूल थे । अपनी दुर्बलता या अयोग्यताके कारण भी उन्होंने राज्य-त्याग नहीं किया था । किसीके बरसे, लोकपापवादके भयसे, स्त्रियोंके विरोधसे या और किसी ऐसे ही कारणसे उन्होंने राज्य नहीं छोड़ा था । वस्तुतः

भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंकी खोज करना एकदम-रो उनका अग्रमान करना है । भरत विद्वद् भक्ति और ईश्वरके अग्रमार हैं । पवित्रताकी सीमा और निःस्पृहताकी जाली खोति हैं । उनका हृदय राज्यका केन्द्र और धर्मका अग्र है, उनकी बुद्धि दशगा और संयमकी खान है । भरत सद्गुरुकी भाँति अग्राध और हिमावत्यकी भाँति प्रवृद्ध है । जने पवित्र और निःस्पृह अन्तःकरणमें जो निश्चय भरत एकदम कर चुके हैं, उसे उल्ट देना ईश्वरके भी सामर्थ्यमें बाहर है । स्वर्ण रामने भी धीर्गों प्रकारसे भरतको राज्य खेनेके लिये थाप्य किया । पिताकी आगाकी दात बतारकर, धर्मकी दान सुनाकर, प्रजाके हिनकी दुहाई देकर, कैकेयीके विवाहके हलकी हुई पिताकी प्रतिज्ञा और देवासुर-संग्रामके वरदानके पाद विशाकर, मतलब यह कि हर तरह दिहादुष्टाकर साँ राम भी उपयोग करके एक गये, पर भरत जो एक बार तो घोषनेका संकल्प कर चुके तो फिर अपनी दृढ प्रति-किसीके भी हटाये न हटे, न हटे ।

भरतके रोम-रोमसे प्रेम-पीयूषकी धारा बहती है । उधर अघरसे अग्नि-रसका प्रवाह उमड़ने लगता है । माके प्रत्येक निधासमें 'राम-राम'की दट है । 'भरे तो एक नाम दूसरा न कोई' दस, यही भरतका मन्त्र हो रहा है । मा छोपी, मापच छोपा, प्रजा छोपी, राज्य छोपा, दौलत छोपी, सुख सम्पत्ति छोपी, एक रामनामके पीये भरत सब संसार छोपा, अपना पराया छोपा, यदि न छोपा । एक रामनाम । हृत्सीसे हम कहते हैं कि भरतके चरित्र राजनीतिक बातोंके हैंदना उनके चरित्रका अग्रमान करना । पवित्र गंगाकी धारामें शेरकी माँद हैंदना है और गन्नेके भीत गोखरू तलाश करना है । दशरथने कैकेयीको समझते न बहुत ठीक कहा था कि 'एमादपि हितं मन्ये धर्मतो वदन्त अर्थात् 'धर्ममें भरतको मैं रामसे भी बढ़कर समझता हूँ । रामके बिना भरत कभी राज्य स्वीकार न करेंगे हर्णा रामके चरित्रमें राजनीति और धर्मनीतिकी गङ्गा-यमुना ति कर बहती है, परन्तु भरतका चरित्र तो पवित्र प्रेम गङ्गोत्तरी है । भरतके चरित्रको लक्ष्य करके यदि यह का जाय तो कोई अशुक्ति नहीं कि—

मुषातः स्वादीयश्चरितमिदमातु सिपिचंदां

जनामानानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्

हम कह चुके हैं कि जितनी प्रतिभू ह  
सामना—जिस धर्मके साथ—भरतने किया, उस तरह

नी सफलताके साथ—रामायणका कोई दूसरा पात्र कर  
 गया या नहीं, इसमें सन्देह ही है। कैकेयीने संसार भरका  
 धरम धरने सिर क्यों लादा ? केवल भरतके राज्यके  
 लिये। उसने वैधव्यतककी परवा नहीं की। समस्त प्रजा,  
 'पुण्य' अधिमग्न, तमाम वनवास, सब सामन्त कैकेयीको  
 घुंकाते रहे, परन्तु उसने सबकी उपेक्षा की, क्यों ?  
 केवल भरतके लिये। सब संसारको धरना बैरी बनाया  
 और धरने मायेपर अधिष्ठ कर्लकका टीका लगाया, किस-  
 लिये ? सिर्फ इसीलिये। यदि राजनीतिक दृष्टिसे देखा जाय  
 तो कैकेयीके सिवा भरतका कोई हितैषी नहीं था। उनके  
 लिये पितातक उनके शत्रु थे। विष्णुकर रामका राज्याभियेक  
 करनेके लिये ही उन्होंने उस समय भरतको कष्टसे उनके  
 नामाके यहाँ भेजा था। दशरथने रामसे साफ ही कहा  
 था कि—

'विप्रोपितश्च भरतो यावदेव पुरादितः ।

तावदेवाभियेकस्तं प्राशकालो मतो मम ॥'

(रा०रा० २।४।२५)

अर्थात् 'अथवा भरत इस नगरसे बाहर हैं तभीतक  
 आग्रा(रामका)राज्याभियेक ही जाना मैं उचित समझता हूँ।'  
 इससे स्पष्ट है कि दशरथने भरतके साथ घात की थी और उसी  
 लिये अवाह मन्थरा और कैकेयीका वह आचरण था। कौरव्याने  
 रामके अभियेककी बात सुनकर 'हजारों परिपन्थिनः' कहकर  
 भरतपक्षको रामका शत्रु बताया था। इस दृशमें भरतका  
 हितचिन्तक यदि कोई था तो कैकेयी आदि ही। परन्तु इन  
 सबको भरतकी धोरसे क्या पुरस्कार मिला, यह आगे  
 दिखिये और फिर सोचिये कि भरतके परिश्रममें कहीं राज-  
 नीतिक गन्ध भी है, या वह विपुल धार्मिक ही है ? भरत  
 जब मानाके यहाँसे उड़वाये गये तो सीधे कैकेयीके पास  
 पहुँचे। नगर और राजमहलके शोकमिश्रित सजावटको  
 देखकर वह कुछ खटक ही गये ही थे, जाते ही उन्होंने दशरथ,  
 राम आदिके सम्बन्धमें पूछताड़ शुरू की।

अभियेक्यति रामं तु राजा यत्नं नु यद्यथि ।

इलहं इतसंकरणे ह्येवा यावामपाशिरम् ॥

उदितं ह्यन्यथाभूतं ध्यनदीर्घं मने मम ।

पितरं यो न परपामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्नित्यं दातोऽस्मि संमतः ।

तस्य मां शीघ्रमाह्वयहि रामस्पाहिकिर्कर्मणः ॥

पिता हि ममस्ति ज्येष्ठो कर्ममार्तस्य जनताः ।

तस्य पादौ प्रदीप्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥

(रा० रा० २।७२।२७-२८, २९-३२)

अर्थात् मैं तो यह सोचकर बड़ा या कि या तो राजा  
 (दशरथ) भीरामका अभियेक करेंगे या कोई पत्र करेंगे।  
 परन्तु यहाँ तो मैंने कुछ और ही देखा, जिससे मेरा हृदय  
 विदीर्ण हो गया। आज मैं धरने प्रिय और हितचिन्तक  
 पिताजीको नहीं देख रहा हूँ। जो मेरे भाई, पिता, बन्धु आदि  
 सब कुछ हैं, जिनका मैं दास हूँ, उन धीरामका पता मुझे शीघ्र  
 बताओ। क्या भाई पिताके सदा होता है, मैं रामके पैरों  
 पड़ूँगा, आज वही मेरे लिये सब कुछ हैं।'

जब कैकेयीने कहा कि रामको वनवास दे दिया गया,  
 तो भरत दर गये। उन्हें सन्देह हुआ कि रामसे कोई अनुचित  
 कार्य तो नहीं हो गया जिसका यह दण्ड मिला। लेकिन  
 कैकेयीने बताया कि 'यह सब कुछ मैंने तुम्हारे लिये किया  
 है। तुम अब राजगद्दीपर बैठो' इत्यादि। इसके उत्तरमें  
 भरतने जो कुछ कहा है, उसमें आप भरतके हृदयका सच्चा चित्र  
 देख सकेंगे और भरतके पवित्र चरित्रका अचिकित्करूप पा  
 सकेंगे। सुनिये—

हुली होकर भरत बोले कि 'शोक-सन्तप्त मेरे  
 जैसा अभाग्य राज्य लेकर क्या करेगा, जो आज पितासे  
 भी हीन है और पित्रुल्य बड़े भाईसे भी हीन है। कैकेयी,  
 तुने मुझे दुःखपर दुःख दिया, तुने मेरे कटेपर नमक छिड़का,  
 जो राजाको मारा और रामको वनवास दिया।

मैं समझता हूँ कि तुम्हें यह मालूम नहीं है कि मेरा  
 रामके प्रति कैसा भाव है, इसी कारण तुने राज्यके लोभसे  
 यह अनर्थ किया। मैं राम लक्ष्मणके बिना कितने बलपर  
 राज्य करूँगा ? अच्छा, यदि बुद्धि और नीतिके बलपर मैं  
 राजकाज चला सकूँगा हूँ तो भी मैं तेरा मनोरथ पूरा न  
 होने दूँगा। तू अपने पुत्रको राजा देखना चाहती है, लेकिन  
 मैं तुम्हें यह न देखने दूँगा। यदि राम तुम्हें सदा माताके  
 तुल्य न समझते होते तो आज तुम्हें जैसी पापिनीका त्याग  
 करनेमें भी तुम्हें कोई संकोच न होता। कैकेयी, तू राज्यसे  
 अष्ट हो, धरी हुआ, झूरे ! तू धर्मसे पतित है, ईश्वर करे, मैं  
 मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे। तू माताके रूपमें  
 मेरी शत्रु है। तुने राज्यके लोभसे पतिकी हत्या की है। तू  
 सुरसे बात न कर। तू पाद रख, पिता और भाईके प्रति  
 जो तुने पाप किया है, मैं उसका पूरा प्रायश्चित्त करूँगा और  
 अपना वध भी बटाऊँगा। रामको राज्य देख मैं अपना  
 पाप छोडूँगा और तब अपनेको हृत्पुत्र्य समझूँगा।'

इस वर्णनमें आप देखेंगे कि कैकेयीके हृदयमें भरतको

सामाजिक वेदना हो रही है। वह अपने राजनीतिक दिनेत्री-को सीधे शत्रु कहकर पुकार रहे हैं। उनका हृदय धार्मिक भावनाग्रे परिपूर्य है। उनको शाश्वत दिवानेके लिये उनकी मानाने जो कार्य किया है उसे वह धीरे धीरे समझ रहे हैं एवं इसके प्रायश्चित्तके लिये अपनी शत्रुता तथा अपनी मानानेके कारणरन्ध्र तककी आकाङ्क्षा कर रहे हैं। धर्ममूर्ति भगतके निष्कलमर हृदयका यह रक्षा शिष्य है। इन्होंने धर्म, प्रेम और भक्ति जैसे पवित्र भावोंके सिवा और किसी दुर्भावको स्थान ही नहीं है। भारतका निष्काट प्रेम, निःस्वार्थ भक्ति और दम्भहीन धर्म उनके प्रत्येक वाक्यमें प्रकट होता है। वह रामके ऊपर अपनेको स्वोपास्य कर चुके हैं। रामकी विरोधी अपनी माँ भी आज उनकी दृष्टिमें शत्रु है। उन्हें रामकी गद्दीपर बैठनेमें घोर दुःख और रामके चरणोंपर लोटनेमें परम आनन्द प्राप्त हो रहा है। आज वह प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि मैं माताके पापोंका प्रायश्चित्त करनेके परास्त्री बूढ़गा। कहना नहीं होगा कि भरतने इस प्रतिज्ञाको अपनी जानपर खेलकर पूरा किया और लक्ष्य पूरा किया।

भरतने इस अवसरपर सबका सब दोष माताके ऊपर ही रक्खा है। पिता दशरथके विरुद्ध उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। यह भी भरतके परित्रको एक विरोपता है। लक्ष्मण और शत्रुघने तो बड़े स्वयं शत्रुओंमें—चाहे परोपमं ही सही—दशरथको खरी-खोटी सुनायी हैं, परन्तु भरतके मुँहसे उनके लिये एक भी कटु शब्द नहीं निकला। यों तो रामकी भी पितृभक्ति आदर्श है। उचित अनुचितका विचार छोड़कर, पिताकी आज्ञाका पालन जैसा रामने किया वैसा कोई क्या करेगा! परन्तु रामके पीछे दशरथने भी तो अपने प्रायश्चित्त गँवा दिये थे। अपनी प्रायाधिक प्रियतमा कैकेयीको भी उन्होंने रामके पीछे ही तिलाअलि दी थी। यह बल कही जा सकती है कि दशरथ रामको प्रायश्चित्त भी अधिक प्यार करते थे, परन्तु भरतके सम्बन्धमें यही बात नहीं कही जा सकती। भरतके विरुद्ध दशरथने पद-यन्त्र रचा था। भरतको राज्यसे भ्रष्ट करनेके लिये उन्हें काटसे पाहर भेजा था और उनकी अनुपस्थितिमें—उनके नामा, मामा-को सूचना तक न देते हुए—धर्ममें सुपके सुपके रामके राज्याभिषेक की काट-पूज्य आयोजना की थी। इससे भरतका मन मलीन हो सकता था। रामकी और उनकी दशरथमें बहुत भेद था। पिताका व्यवहार दोनोंके प्रति समान नहीं था। राम और भरतके प्रति दशरथके व्यवहारमें आकाश-पातालका अन्तर था। इस दशरथमें भरतका भाव भी यदि बदल जाता तो

हुए आश्रय न होगा। आश्रय तो यही है कि इस सब बातोंके होने हुए भी भाग रामके समान ही निरुत्सुक रहे। इसे देखते हुए यदि वह क्या जान कि भाग लाने भी बहाकर निरुत्सुक थे तो कोई कल्पित नहीं।

भारत रामके प्रेममें गाराधोर थे। उनके सार्वत्रिक थे। रामके धर्मिणिकी जगद भारतका तृण गिरनेको तैयार आता था। रामका प्रेमी ही उनका प्रेमनाशक था और रामके विरोधी उनका घोर शत्रु था। यही कारण है कि रामने प्रेममें प्राण देनेवाले पिताका कोई दोष भरतकी दृष्टिमें धारण ही नहीं। उन्होंने उन सब शत्रुओंकी उद्देश्य कर ही परन्तु रामका विरोध करनेवाली माँ कैकेयी उनकी धर्मिणी शूलकी तरह लटकने लगी। भरतको रामकी आज्ञाका कमी थी ही नहीं। वह तो रामके प्रेमके मूले थे। रामने पहिले आते हुए उन्होंने यही समझा था कि शत्रुदशरथ राज्याभिषेक होगा, उन्हींके लिये मुझे बुलाया है। वह अपने-को राज्यका अधिकारी समझते ही नहीं थे। कैकेयीके विवाहके समय की हुई दशरथकी प्रतिज्ञाका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य ही नहीं था। वह उसे काम-अवकाश प्रदान मात्र समझते थे और वरदानके नामपर कैकेयीका तृण माँगना उनकी नजरमें काट-पूज्य धर्म था। वह अपनी राज्य-प्राप्तिको ही धर्म समझते थे। यही उन्होंने जगद जगद कहा है। उन्हें कमी यह ध्यान ही नहीं था कि लोग—और खासकर उनके पिता ही—उन्हें रामका विरोधी समझेंगे और वह भी अधर्मपूर्वक राज्य देनेके लिये। विधि! धर्मराजकी दृष्टिमें इसप्रकार कामावेशकी प्रतिज्ञाका कोई मूल्य नहीं और धर्ममाँ भरतकी दृष्टिमें भी वह प्रतिज्ञा दो कौड़ी—यत्कि उससे भी कम—की थी। तब इसके लिये ऐसा 'शकायद तारदव' करेगे इसकी उन्हें कोई सम्भावना ही नहीं थी। इन्हीं कारणोंसे धर्ममाँ भरतकी दृष्टिमें दशरथका कोई दोष नहीं धारण और वह रामने समान ही पितृभक्त बने रहे। हाँ, रामकी विरोधिनी माता को वह शत्रु समझने लगे। मन्थराको जमीनमें धरतीमें हुए शत्रुघ्नका क्रोध शान्त करते समय उन्होंने यहाँ तक कहा था कि—यदि मुझे यह दर न होता कि धर्ममाँ राम मानुषात्क समझकर मेरा त्याग कर देंगे तो मैं आज इस दुष्ट कैकेयीका बंध कर डालता।

हन्त्यानहमिमं पापं कैकेयीं दुष्टचरिणीम्।

यदि मां धर्मिणी रामो नाम्भूयन्मातृघातकम्॥

(रा० रा० २।७।२२)

इन बातोंसे स्पष्ट है कि भरतका पवित्र हृदय रामको किमें तल्लीन और रामके प्रेममें मतवाला था। उनका ही मन्त्र था कि 'मेरे तो एक रामनाम दूसरा न कोई'।

अच्छा, अब प्रकृत बातपर ध्यान दीजिये। कैकेयीसे चलनेपर जब भरतको सब बातें मालूम हुईं और भरतके निकी खबर कौसल्याके कानतक पहुँची तो वह भी मित्राके साथ रोती, कंलपती और फाँपती हुई वहीं पहुँचीं। अब यहींसे भरतकी कठोर परीक्षाएँ आरम्भ होती हैं। भरत उन्हें किस धैर्य और कितनी दृढ़तासे पार करते हैं, यह ध्याये देखेंगे—

भरतं प्रयुवाचेदं कौसल्या मुशुदुःखिता ॥  
 इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकल्पकम् ॥  
 सम्राजं वत कैकेय्या शीघ्रं कृणुण कर्मणा ॥  
 शिष्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हसि ॥  
 अथवा स्वयमेवाऽहम् ... ..  
 कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि ॥  
 इदं हि तत्र विस्तीर्णं घनधान्यसमाचितम् ॥  
 हस्तमक्षरपत्रपूर्णं राज्यं निर्मातितं तया ॥  
 इत्यादिबहुभिर्वाचैः क्रूरैः संमार्गितोऽनघः ॥  
 विस्मये भरतस्तीव्रं व्रणे तुचेव सूचिता ॥  
 पयात चरौ तस्यास्तदा सम्भ्रातचेतनः ॥  
 विलम्बं बहुधाऽसंशो उन्वसंसस्तदाभवत् ॥

(वा० रा० २।७।५)

राम-वनवासये भ्याकुल कौसल्याकी दयनीय दशा देख कर भरतका कौमल-हृदय दुःखसे कातर हो उठा। उनका फाँपना, कडपना और बिलखना देखकर भरत घबरा गये और जब उन्होंने देखा कि कौसल्या राम-वनवासका कारण उन्हीं (भरत) को समझ रही हैं तब तो उनके दुःखका पारावार मरहम कौसल्याके कठोर भाषणोंसे भरतका निष्कलमपचित विचलित हो गया और वह मूर्छित होकर कौसल्याके चरणोंपर गिर पड़े। जब होशमें आये तो घ्रांसुमरे नेत्र और गद्गद कण्ठसे 'हा राम' 'हा राम' कहकर धुधर उपर पागलोंकी भाँति ताकने लगे। उन्होंने कौसल्याको विधास दिखानेके लिये लौकड़ों रापर्ये—ऐसी ऐसी कड़ी रापर्ये की जिनसे पापका भी कलेजा दहल जाय—सायीं। जिसकी अनुमति या आज्ञाकारिमें रामको वनवास हुआ हो, वह हकमें भागठा हुआ मारा जाय, औरमे घोर पापका फल उसे भोगना पड़े इत्यादि।

भरतकी इस दशाको देखकर कौसल्याके हृदयपर गहरी चोट लगी। उन्होंने स्पष्ट देखा कि भरतको रामके वियोगका दुःख उनके (कौसल्यासे) कम नहीं है और उनके अनुचित भाषणोंसे भरतके निरपराध हृदयको प्याकुल कर दिया है। इससे कौसल्या भी घबरा गयीं और भरतको गोदमें बिठाकर स्वयं रोने लगीं। उन्होंने कहा—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।  
 शपथैः शपमानो हि प्राणानुपशुणति मे ॥  
 दिदृशान चरितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः ।  
 नस्त सत्यप्रतिशो हि सतां लोकानवाप्स्यति ।  
 श्रमुक्त्वा आह्वमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।  
 परिष्वज्य महाबाहुं खरोद मृशदुःखिता ॥

(वा० रा० २।७।६-६२)

यह भरतकी तबसे प्रथम और तबसे कठिन परीक्षा थी। यदि उनके हृदयमें रामके प्रति अनन्त प्रेम न होता, यदि उनके व्यथारत्नमें विशुद्ध धार्मिकताको छोड़कर कहीं जरा भी राजनीतिक धालोंकी गन्ध होती तो रामकी माताके हृदयको इतनी जल्दी दयाद कर लेना उनके लिये सम्भव ही नहीं था। भरतके चरित्रकी यह सर्वोत्तम विजय हुई।

कुछ तो दशरथकी प्रतिशक्के कारण और कुछ राम-वनवासके कारण भरतकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। बधा बधा उन्हें सन्देशकी दृष्टिसे देखने लगा था। पद-पदपर लोग उन्हें रामका विपत्ती समझने लगे थे। रामके एक अनन्य भक्तको इससे बढकर दुःख क्या हो सकता था कि एक निपादसे लेकर बड़ेसे बड़े महार्पितक, बच्चेसे लेकर बड़ेतक सभी की-सुख उसे राट्टाकी दृष्टिसे—रामविरोधीकी दृष्टिसे—देखने लगे।

तबसे पहले कौसल्याने उनकी परीक्षा की, उसके बाद सुत, मातंग आदिका मन्त्र आया, फिर समन्त राजाओंकी और अनन्तर बसिष्ठ आदि ऋषियोंकी बारी आयी। सभी प्रकृतियों और प्रजाते भी भरतको परखा। इन लोगोंसे जब निबटे और रामको लौटानेके अभिप्रायसे गज्राकिनारें पहुँचे तो निपादराज गुहने डपटा लम्हाका। उन्होंने पत्रा देखते ही समझ लिया कि यह भरतकी सेना है और गज्राके उस पार अपने सब अनुचरोंको धीरी दुरम सुना दिया। देखिये—

गुरु कथते हैं, 'देखो, यह समुद्रके समान उमड़ती हुई



सेना गज़ाके उस पार खील रही है। रथमें कोविदारकी ध्वजा है। इससे स्पष्ट है कि दुर्बुद्धि भरत स्वयं आया है। अपना राज्य निष्कपटक करनेके लिये आज यह दुष्ट रामके वधकी इच्छासे सेनासहित धर आ रहा है। रामके बाद यह दुष्ट हमलोगोंको या तो रस्सियोंसे बांधेगा या मरवा ही डालेगा। राम तो मेरे स्वामी भी हैं और सखा भी हैं। आज उनका काम था पदा है। इस पुण्य-यज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिये हम स्वधर्मियोंको तैयार हो जाना चाहिये। रामके काममें प्राण देनेसे बढ़कर और कौनसा पुण्य होगा ? सब कैवर्त (निपाद) लोग गज़ाके मुहानोंको रोककर बट जायेंगे। पाँच सौ नावोंसे सब मार्ग रोक लो। एक-एक नावपर सौ-सौ जवान सब शखोंसे सुसज्जित होकर तैयार रहो। मैं जाकर भरतका मन ट्योलवा हूँ। यदि उसके मनमें कोई पाप न हुआ तब तो उसकी सेना पार उतार दी जायगी, अन्यथा पहले हम सब लोग यहाँ मर मिटेंगे तब फिर रामपर आँच आयेगी। हमारे जीतेजी कोई रामका बाल बँधा न कर सकेगा।'

देखा आपने ? यह माना कि निपादराज रामके अनन्य प्रेमी और भक्त थे, परन्तु देखा तो यह है कि भरतके भावको उन्होंने किना उल्टा समझा है ? यह ठीक है कि निपादराज रामके ऊपर अपने प्राण देनेको तैयार हैं, परन्तु सोचना तो यह है कि क्या भरत भी उनके प्राण लेनेको तैयार हैं ? हमें देखना यही है कि आज परिस्थिति भरतके किनी प्रतिबद्ध हो उठी है। आज उनके अमृतमय हृदयको एक बीगडी भी विषमय क्षमज्ञाने लगा है। भरतने हठी प्रतिबद्ध परिस्थितिको हार्यया अनुबद्ध बनानेका भीड़ा उठाया है।

निपादराज गुह भी बड़े अपने राजनीतिज्ञ थे। भरतकी जिज्ञासी शोद-शोदकर परीक्षा हथोंने की उतनी किसीने नहीं की। हथकी हा एक पात्रसे राजनीतिज्ञता टरकती है। अमी आप देन तुझे है कि यह धारने अनुचरोंने क्या बड़ रहे थे। अब आगे देखिये कि भरतके सामने भेंट पेश करने हुए हथान बँने 'भीगी विधि' बने बँडे हैं—

जगत्त्रय नरते ब्रह्मे तुतो बचनमजरीन् ॥

निष्पुत्रैव देतेऽपि बहिःशरणि वे वपन् ॥

निरेदमत्र वे हरे स्वके दासपूरे वम ।

बहिः शरणे वैतन् निरपैः स्ववर्गिणान् ॥

× × ×  
आशसे स्वाशिता सेना नत्सत्येनां विमावरीन

( वा० रा० १८४ )

'भरतके पास थाकर यहीं नप्रतासे 'गुह'ने कहा कि इस जङ्गलको आप अपने घर-आँगनका वगीचा समझिये। आते हमलोगोंको सेवा करनेसे वञ्चित कर दिया। भला भावसे यहाँ टहरनेकी क्या आवश्यकता थी ? 'दासगृह'—निपाद-स्थान—सब थापहीका तो है। वहीं टहरना चाहिये था। आपके दासोंका लाया हुआ कन्द, मूल, फल सब मौजूद है और भी जङ्गलकी छोटी बड़ी चीजें उपस्थित हैं। मैं समझा हूँ, उससे आपकी सेनाका खाना-पीना आजकी रातमें थारामसे चल सकता है' इत्यादि।

देखा आपने ? यह एक राजनीतिज्ञकी बात-चीत है क्या इससे पता चलता है कि अमी गुह अपने धर्म से इन्तजाम करके आ रहे हैं ? इसी बात-चीतमें जब भरत कहा कि 'यह जङ्गल तो बड़ा दुर्गम मालूम होता है। गज़ा मुहाना भी बड़ा भयानक है। तुम यह बताओ कि भरतान मुनिके आश्रमको किस ओरसे जायें ?' इसपर गुह कहा कि 'इस देरासे जानकारी रखनेवाले सैकड़ों निपाद गुणों साथ जायेंगे। मैं भी तुम्हारे साथ चल्दूँगा, परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारा हृदय तो शुद्ध है न ? कहीं तुम दुःख-भावसे धर्मात्मा रामके पास तो नहीं जा रहे हो ? तुम्हारी यह हतनी बड़ी सेना देखकर मुझे सन्देह होता है। यदि तुम्हारा हृदय दोषरहित है तो योदेसे आदमी खोजी रामके पास जा सकते थे। इस हतनी बड़ी कौत्रका क्या काम ?'

कश्चित् हुतो ब्रजसि रामास्याङ्किटकर्मणः ।

इयं ते महती सेना दाशुं जनयतीव मे ॥

( वा० रा० १२।८५।१० )

हथपर —

तमेवमभिमानन्तमाकाश इव निर्मलः ।

मरतः स्रष्टवया बाधा गुहं बचनमजरीन् ॥

मा भूत्स करोते यत्कटे न मां शङ्कितुमर्हसि ।

राधवः सदिमे भ्रात्रा ज्येष्ठः तिनूतमो मजः ॥

तं निवर्तयितुं मयि कापुत्र्यं बनरगिनम् ।

मुञ्चिन्त्या न मे कार्यो गुह स्वयं ब्रवीसि ते ॥

( वा० रा० १।८५।८-१० )

स्वयं आकाशकी तरह निर्मल—रागद्वेषके बादलोंसे रहित भरतने बड़ी शान्तिपूर्वक मधुर भाषामें—उत्तर दिया कि 'निषादराज, वह समय न धायें—मैं उस समयके लिये जीता न हूँ—जिस अनिष्टकी तुम धारणा कर रहे हो। राम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, मैं उन्हें पिताके तुल्य समझता हूँ। उन्हें बनवाससे वापिस लानेके लिये जा रहा हूँ। मैं सत्य कहता हूँ, तुम मेरी बातको ग्रहण न समझो।'।

रामके विचोरोसे घृति दुःखी, दीन, मलीन भरतकी बातचीतसे और उनके 'इहित-वैधितसे जब गुहको निश्चय हो गया कि भरतके मनमें कोई पाप नहीं है तब यह बोले—

घन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पदयामि जगतीतले ।

अपलादमत्तं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥

शाश्वती सद्यु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति ।

यस्त्वं ऋच्युगलं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥

( वा० रा० २, १८५। १२-१३ )

'भरत, तुम घन्य हो, तुम्हारे समान धर्मात्मा पृथ्वीपर त्रा नहीं है जो बिना यत्नके ही मिले हुए राज्यका त्याग-रहे हो। तुम्हारी यह कीर्ति संसारमें अमर रहेगी जो जगत्प्र बनावसी रामको कष्टसे छुड़ानेके लिये जा रहे हो।'

यहाँ आप देखेंगे कि निषादकी क्रोधर पात सुनकर । भरत अपनी नहीं हुए । उन्हें जरा भी क्रोध नहीं थाया। उन्होंने इस जंगलीकी छटवाले अपना अपमान नहीं समझा । आ एक मामूली मन्नाहकी यह मजाल कि यह चक्रवर्तीके प्र भ्रातृत्वसक भरतपर सन्देह करे और तपाकसे पूछ बैठे कि 'क्योंजी, तुम्हारे मनमें कोई पाप तो नहीं है?' केर राजकुमार इस येहूदगीपर जरा भी न विगड़े । उन्होंने स जंगलीको 'डैमफूल' (Damfool) 'नामाफूल' आदि ङु भी न कहा । प्रत्युत एक साधारण आदमीकी तरह येकविदाकर अपनी सफाई देने लगे ।

भरतको सुमन्तने बता दिया था कि निषादराज राम-हा मित्र है । उन्होंने उसे (गुहको) 'मम श्रुतेः सते'—मेरे गुह—राम—के मित्र कहकर सम्बोधन किया था । फिर वह उसका भाद्र क्यों न करते ? इसके अतिरिक्त भरत अपनी परिस्थिति समझते थे । वह जानते थे कि एक गुह ही नहीं, बल्कि प्रजाका कष्ट-बधा उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देख रहा है । इसी प्रतिबुद्ध भावनाको

बदलनेके लिये तो उनका यह प्रयास था । क्या वह काम किसीको 'डैमफूल नामाफूल' कहनेसे बन सकता था ?

निषादने इतनी परीक्षासे ही भरतका पीछा नहीं छोड़ा । उसने उनकी और भी कड़ी जाँच की । लक्ष्मणके साथ इसी जगह जो गुहको बातचीत हुई थी और रामको पार उतावते समय जो-जो घटनाएँ घटी थीं, उनका गुहने ऐसे मार्मिक शब्दोंमें वर्णन किया कि उसे सुनकर भरत मूर्च्छित हो गये । यदि भरतका प्रेम दिखावटी होता और उनके हृदयमें रामके प्रति जरा भी दुर्भाव होता तो वह निषादकी इस परीक्षामें अवश्य फेल हो जाते और चतुर राजनीतिज्ञ गुह इनकी असलियतको द्रुन्त साह जाता !

इसके साथ ही गुहने इसी अवसरपर बड़ी कुशलतासे भरतको अपनी शक्तिका भी परिचय करा दिया था, उसने साफ सूचित कर दिया था कि इस घोर अज्ञानकी चप्पा-चप्पा भर जमीन मेरी मँकाई हुई है । मैं चाहूँ तो बड़ीसे बड़ी सेनाको इसमें भटका-भटकाके मार सकता हूँ । इत्यादि

यह सब बताने और सब तरह भरतकी परीक्षा कर लेनेके बाद भी गुहने उनका पीछा नहीं छोड़ा । उसे इस बातसे सन्तोष नहीं हुआ कि भरतको राक्षस बतानेके लिये कुछ आदमी उनके साथ कर दे या पोटो-से आदमी लेकर स्वयं ही चला जाय । वह अपनी समस्त प्रीज लेकर भरतके साथ अन्तिम स्थान तक गया ।

माना कि उस समय भरतका भाव ठीक था, परन्तु ये तो वह कैदखीके ही गुण । रामसे बातचीत होते होते ही कहीं मनमुटाव हो गया और किसी बातपर यहाँ सतक गयी तब ? तब क्या वह अपने 'स्वामी और सत्ता'—राम—को झकेले ही सेनासहित भरतसे भिड़ने देगा ? यह कैसे हो सकता है ? यह जंगलका जीव अपनेको जंगलका मालिक और आचार्य समझता है । उसके धरमें उसके मित्रकी और भला कोई आँस उठाकर देल सकता है ? पहले वह अपनी बोटी-बोटी कटवायेगा, बड़ी-से-बड़ी सेनाके लुके छुड़ायेगा, तब कहीं रामपर आँस धायेगी । इसीलिये तो दल-बल-सहित निषादराज बड़ी सतकतासे भरतका पीछा कर रहे हैं । प्रत्युत निषादके चरित्रमें राजनीति-कुशलताके साथ साथ मित्र-धेम और स्वामि-मालिक सच्चा विश्व देखने को मिलता है । इसीसे ही हम कहते हैं कि भरतकी परीक्षा निषादने जितनी छोड़-छोड़के की उतनी किसीने नहीं की,

परन्तु भरतका चरित्र जितना-जितना अप्रिय-प्रीतिपूर्ण तथा गया, उतना ही उतना कुन्दनके समान दमकना गया।

धौर तो धौर, बुर ही धीरे धीरे सचके हृदयको परागनेकी शक्ति इगनेवाले, अग्नि-सिद्धि-गन्धर्व, त्रिकाक्षदूर्वा महर्षि भरद्वाज भी वेधारे भरतपर चोट करनेये न थूके। यह भरतसे पूजते हैं—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रसागलः ।  
पतदाचक्षुष रार्यं मे मद्वि मे दुष्पथे गनः ॥  
तुपुने मममियां कौराप्र्यानन्दनर्षनम् ।  
भाया राह सामायोऽयं चिरं प्रमत्त्रितो बनम् ॥  
निमुक्तः क्षीनिमित्तेन पित्रा मोक्षी महापराः ।  
वनवासी भवेतीह समाः किल जनुर्दश ॥  
कञ्चित् तस्योपापस्य पापं कर्तुमिच्छामि ।  
अकण्ठकं भोकुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥

(वा० रा० २।५०।२०।२३)

‘तुम तो राज्यका शासन कर रहे थे, मला तुम्हारे यहाँ आनेका क्या मतलब ? मुझसे साफ साफ कहो। मेरा मन विद्यास नहीं करता। जिन वेधारे रामको खोके कहनेसे तुम्हारे पिताने भाई धौर खोके साथ १४ वर्षोंका वनवास दे दिया है उन्हीं पापरहित रामके प्रति तुम अपने मनमें कुछ पाप तो नहीं रखते हो ? कहीं निष्कण्ठक राज्य भोगनेकी इच्छासे उनका वध करनेके लिये ही तो तुम इतनी बड़ी सेना लेकर चढ़ाई नहीं कर रहे हो ?’

धम्रसे भी कठोर और बाणकी नोकसे भी पैने इन शब्दोंको सुनकर भ्रातृवत्सल भरतके कोमल मनकी क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें। कैसी भयानक अवस्था है ? एक सर्वज्ञ महर्षिका पवित्रात्मा भरतपर ऐसा अनुचित सन्देश !! पृथ्वी फट जाय, आकाश गिर पड़े, पर्वत चूर चूर हो जायें, समस्त दिशायें जल उठें और भरत उसमें समा जायें। इससमय जो दशा भरतके हृदयकी हुई होगी उसका अन्दाजा कौन लगा सकता है ? परन्तु धन्य, महात्मा भरत !! यह इस अति विशोषकारी विपत्तिके समय भी उसीप्रकार दृढ़ रहे जैसे बड़ी-से-बड़ी आँधीको भगाधिरान हिमालय धीरेसे सह लेते हैं। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि—

पवमुको भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह ।  
पर्यभुनयनो दुःखाद्वाचा संस्रजमानया ॥  
हृताऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते ।

(वा० रा० २।५०।२४-२५)

भरद्वाज मुनिकी बातें सुनकर भरत दुःखसे कातर उठे। उन्हीं आँसुओंमें आँसू का गये और तथा ईश्वर का वर गिराई जाना कह मन्त्रे कि ‘यदि ‘भगवाद्’—त्रिकाक्ष दूर्वा भ्या—भी मुझे देगा ही समझने हैं, तब तो मैं कहीं डिङ्गना नहीं। मैं इतनाभय बेमौन मारा गया।’

माना कि भरद्वाजने उक्त बातें सचसे इरगये तो ही थी। उन्होंने रामके प्रेममें काकर यह पूजा या। बाल्यमें ने हृयका गान्ध निरंग किया है, परन्तु भरतको हृयकी खबर थी ? त्रिप आयातीये महर्षि भरतके मनको तै गच्छे थे उर्गी आयातीये भारतके लिये मर्त्तिका पराग लेना सम्भव नहीं था। इस लो समझने हैं कि भरत यह अति कठिन परीक्षा थी। जब वे उसमें पूरे उत्तरे महर्षि भरद्वाजने प्रयत्न होकर क्या कि—

उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतं वचः ।  
त्वामेतरनुगम्यन्न मुक्तं रावचंघने ।  
मुदमुनिर्दमर्धैर मायुनां जानुकनितः ॥  
जाने चैनमनःस्य ते वदोऽइरण्यनित्ति ।  
अपृच्छं त्वां तवप्रत्ययं कीर्तिं सननिर्बन्धनम् ॥

(वा० रा० २।५०।२०-२१)

हे भरत ! तुम शयुवरी हो। तुममें ऐसे सज्जन ही चाहिये। बर्षोंकी मत्कि, इन्द्रियोंका हमन और सज्जन का अनुगमन यह सब तुममें होने ही चाहिये। मैं तुम्हें मनकी ये सब बातें पहलेसे ही जानता था, परन्तु तुम्हें भावोंको दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिये ही तुमसे यह प्रश्न किया था।

बात ठीक है, हमारी सम्मतिमें यह परीक्षा मतनेई योग्य थी और भरत ही इस परीक्षाके योग्य थे एवं सज्जन जैसे महर्षि ही इस कठिन परीक्षाके परीचक होने को हम तो भरतके इस पवित्र चरित्रका स्तुति करनेमें अपना धन्यभाग्य समझते हैं।

भरद्वाजके पूछनेपर जब भरतने अपनी सब माता का परिचय उनको दिया और उस समय दुःखापेयमें का कैकेयीको कुछ सलत-मुलत कहा तब महर्षिने रामवचन के दैवी कार्योंकी ओर भी इशारा कर दिया था। वन साफ कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत तया ।  
रामप्रजानं ह्येतत्सुखोदकं मतिपति ॥

(वा० रा० २।५२।२१)

हे भरत, तुम रामवनवासमें कैकेयीका दोष न समझो।  
रामके वन जानेसे संसारका कल्याण होगा।

भरतकी परीक्षाओंका यही अन्त हो गया हो सो बात  
नहीं है। भरद्वाजके आश्रमसे जब वह सेनासहित चित्रकूट-  
के पास पहुँचे तो इतनी बड़ी सेनाकी कज-कज और आकाश-  
में उठी धूलको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि जरा देखो  
तो यह किसकी सेना है। लक्ष्मणने एक ऊँचेसे भाँजवृक्षपर  
बैठकर भरतकी सेना देखनेके बाद जो कुछ कहा उसे सुनिये—

शरणां सेनां रामाय वचनं चैदमब्रवीत् ॥

अभिनं संशययत्पार्यः सीता च मज्जतां गुहाम् ।

सख्यं कुश्व च चारं च शरान्ध कवचं तथा ।

( वा० रा० २।१६।१२-१४ )

‘आर ( राम ) जवरीसे धाग पुला दीजिये। सीता-  
को किसी गुफामें भेज दीजिये, कवच पहन लीजिये  
और धनुष-बाण लेकर तैयार हो जाइये ।’ अंगलमें धुँआ  
उठता देखकर वहाँ रहनेवाले मनुष्योंका पता भीष खग  
जाता है, इसीसे लक्ष्मणने धाग पुलानेकी कहा है।

जब रामने कहा कि जरा यह तो देखो कि यह सेना  
है किसकी, तब धपकती हुई ‘अग्नि’ तरह ओपमें भरे  
लक्ष्मण बोले—‘मादस होता है कि राज्याभिकहो जानेके  
बाद अपने राज्यको निष्कण्टक बनानेके निमित्त कैकेयीका पुत्र  
भरत हम दोनोंको मारनेके लिये आ रहा है। हममें  
कोविदारकी श्रवा है। आज यह हमारे बाबूमें आयेगा।  
जिस भरतके कारण इतना दुःख मिला है, उसे मैं आज  
समझूँगा। जिसके कारण आप अपने पैतृकराज्यसे व्युत्  
हुए हैं वह शत्रु ( भरत ) तो अवश्य ही वधके योग्य है।  
भरतके वधमें कोई दोष नहीं है। अपने पुराने अपकारीको  
मारनेमें पाप नहीं लगता। राज्यकी लोभिन कैकेयी आज  
देखेगी कि उसका पुत्र मेरे द्वारा उसी प्रकार मरोड़ा जा  
रहा है जैसे कोई मख हाथी किसी वृषको तोड़-मरोड़कर  
कैंक दे। आज पृथ्वी बड़े भारी पापसे मुक्त होगी। आज  
सेनासहित भरतका वध करके मैं धनुषबाणसे उच्चय  
होऊँगा।’

लक्ष्मणको शोषान्ध देखकर रामने उनका मित्राज ठण्डा  
किया और भरतकी एक और अग्नि-परीक्षा होते होते रह  
गयी। राम बोले कि ‘देखो लक्ष्मण, जब भरत स्वयं आये  
हैं तो फिर धनुष-बाण और दाल-सज्जवारकी क्या आवश्यक-  
६

कना है ? जब मैं पिताके सामने राज्य छोड़नेकी प्रतिज्ञा  
कर चुका तब फिर भरतके वधमें कलङ्कित राज्य लेकर मैं  
क्या करूँगा ? मैं चाहूँ तो यह समस्त पृथ्वी मुझे दुर्लभ  
नहीं है, परन्तु मैं अश्रममेंके द्वारा इन्द्रासन भी नहीं चाहता।  
जो सुख मुझे तुम्हारे, ( लक्ष्मणके ) भरतके और शत्रुमर्क  
बिना मिलता हो वह भय हो जाय। मुझे उसकी अपेक्षा  
नहीं।’

‘लक्ष्मण, भरत किसी दुर्भावसे नहीं आ रहे हैं। उन्होंने  
जब मेरे तुम्हारे और सीताके वनवासकी बात सुनी होगी  
तब स्नेह और शोकसे व्याकुल हो उठे होंगे। वह हमलोगों-  
से मिश्रने आ रहे हैं, किसी डुडी नीयतसे नहीं। माता  
कैकेयीसे अपसन्न होकर पिताकी प्रसन्न करके भरत मुझे  
राज्य देनेके विचारसे आ रहे हैं। भरतके मनमें कभी हम-  
लोचोंकी बुराई नहीं आ सकती। क्या उन्होंने कभी तुम्हारे  
साथ कोई बात की है ? फिर आज तुम्हारे मनमें ऐसी शङ्का  
और भय क्यों उठ रहे हैं ? खबरदार, भरतके लिये कोई  
कटु-वाक्य न कहना। उनके प्रति कहा हुआ तुम्हारा अण-  
शब्द मुझे लगेगा। यदि राज्यके लिये तुम मे बातें कह रहे  
हो तो भरतको आने दो, मैं उनसे कहकर राज्य दुभई दिला  
रूँगा। यदि मैं भरतसे कहूँ कि लक्ष्मणको राजगद्दी दे दो  
तो यह निश्चय है कि वह ‘बहुत अचढ़ा’ के लिये और कुछ  
न कहेंगे।’

रामकी इन बातोंने लक्ष्मणको पानी-पानी कर दिया।  
यह लज्जाके मारे जमीनमें गढ़ गये। फिर उन्होंने भरतके  
विरुद्ध कभी आँस न उठायी।

उपर लक्ष्मणका तो ऐसा भाव था और इधर भरतको  
देखिये कि उनकी क्या दशा थी—

मावत् रामं द्रुदयामि लक्ष्मणं वा महाबलम् ।

वेदेही वा महानागां न मे शान्तिर्मविष्यति ॥

( वा० रा० २।१८।६ )

भरतको बराबर यही रट थी कि जबतक मैं राम, लक्ष्मण  
और सीताके दर्शन न कर लूँगा तबतक मेरे व्याकुल हृदय-  
को शान्ति नहीं मिल सकती। जिन भरतके सम्बन्धमें  
लक्ष्मण समझते थे कि वह हमें मारनेको आ रहे हैं, धृत्र,  
चामर धारण करके राजा भरत हमारा वध करनेके लिये  
सेना लेकर यहाँ पहुँचे हैं, वही भरत जब रामके सामने  
पहुँचे तो उनकी क्या दशा थी—

परन्तु भरतका चरित्र जितना-जितना अभि-परीषामें तपता गया, उतना ही उतना कुन्दनके समान दमकना गया।

और तो और, दूर ही घेरे घेरे सयके हृदयको परलनेकी शक्ति रखनेवाले, ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न, त्रिकालदर्शी महर्षि भरद्वाज भी बेचारे भरतपर घोट करनेसे न चूके। वह भरतसे प्यूपते हैं—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रसासतः ।  
पतदाचक्षु सर्वं मे नहि मे शुष्यते मनः ॥  
सुपुत्रे यममित्रं कौस्तन्यान्दवर्धनम् ॥  
भ्रात्रा सह सभायोज्यं चिरं प्रव्राजितो वनम् ॥  
नियुक्तः स्त्रीनिमित्तेन पित्रा योऽसी महायशाः ।  
वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश ॥  
कश्चित् तस्यऽपापस्य पापं कर्तुमिहच्छति ।  
अकण्ठकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥

(वा० रा० २।१०।१०।२३)

'तुम तो राज्यका शासन कर रहे थे, भला तुम्हारे यहाँ आनेका क्या मतलब ? मुझसे साफ साफ कहो। मेरा मन विश्वास नहीं करता। जिन बेचारे रामको छोके कहनेसे तुम्हारे पिताने भाई और स्त्रीके साथ १४ वर्षका वनवास दे दिया है उन्हीं पापरहित रामके प्रति तुम अपने मनमें कुछ पाप तो नहीं रखते हो ? कहीं निष्कण्ठक राज्य भोगनेकी इच्छासे उनका वध करनेके लिये ही तो तुम इतनी बड़ी सेना लेकर चढ़ाई नहीं कर रहे हो ?'

बलसे भी कठोर और बाणकी नोकसे भी पैने इन शब्दोंको सुनकर भ्रातृवत्सल भरतके कोमल मनकी क्या दया हुई होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें। कैसी भयानक अवस्था है ? एक सर्वश महर्षिका पवित्रात्मा भरतपर ऐसा अनुचित सन्देह !! पृथ्वी फट जाय, आकाश गिर पड़े, पर्वत चूर चूर हो जायँ, समस्त दिशायें जल उठें और भरत उसमें समा जायँ। इससमय जो दया भरतके हृदयकी हुई होगी उसका अन्दाजा कौन लगा सकता है ? परन्तु धन्य, महात्मा भरत !! वह इस अति विशेषकारी विपत्तिके समय भी उसीप्रकार दृढ़ रहे जैसे बड़ी-से-बड़ी आँधीको भगाधिराज हिमालय धीरेसे सह लेते हैं। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि—

परमुखा भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह ।  
पर्युनयनो दुःखाद्वाचा संस्रवमानया ॥  
हतोऽस्मि यदि मामेवं मगवानपि मन्यते ।

(वा० रा० २।१०।१४-१५)

भरद्वाज मुनिकी बातें सुनकर भरत उठे। उनकी आँसुओंमें आँसू आ गये और यह सिर्फ इतना कह सके कि 'यदि 'मत्ता' दर्शी धारा—भी मुझे ऐसा ही समझे हैं, तब कहीं ठिकाना नहीं। मैं हतमाय बेमौत मारा गया।

माना कि भरद्वाजने ठक बातें सन्ने थीं। उन्होंने रामके प्रेममें आकर यह पूछा था। ने हमका साह निदेश किया है, परन्तु नबर थी ? जिस आसानीसे महर्षि भरतके सकने थे उसी आसानीसे भरतके लिये महर्षि परख लेना सम्भव नहीं था। यह अति कठिन परीक्षा थी। जब वे उसमें ही महर्षि भरद्वाजने प्रसन्न होकर कहा कि—

उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतः कः ।  
त्वयैवतपुत्रव्याप्तं मुक्तं शपसंसे ।  
गुणवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चतुर्विधम् ॥  
जाने चैतन्मनःस्थे ते दृढीकरणमस्तीति ।  
अपृच्छं त्वां तवप्रत्यर्थं कीर्तिं समन्वितैर्दश ।  
(वा० रा० २।१०।२४)

हे भरत ! तुम रघुवंशी हो।

ही चाहिये। यदोंकी भक्ति, इन्द्रियोंका का अनुगमन यह सब तुममें होने ही चाहिए। मनकी ये सब बातें पहलेसे ही जानता भावोंको दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति बनाने तुमसे यह प्रश्न किया था।

बात ठीक है, हमारी सम्मतिमें यह योग्य थी और भरत ही जैसे महर्षि ही इस हम तो भरतके इस पवित्र चरित्रका साथ अपना धन्यभान्य समझते हैं।

भरद्वाजके पूछनेपर जब भरतने का परिचय उनको दिया और कैकेयीको कुछ सहत-सुख कहा तब के देवी कार्पाणकी ओर भी इशारा कर दिया साफ कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत तया ।  
रामप्रव्राजनें कृतमुत्सोदकं सर्वत्र ॥  
(वा० रा० २।१०।२५)

हे भरत, तुम रामवनवासमें कैकेयीका दोष न समझो।  
उसके वन जानेसे संसारका कल्याण होगा।

भरतकी परीक्षाओंका यहाँ अन्त हो गया हो सो बात  
यही है। भरद्वाजके आश्रमसे जब वह सेनासहित चित्रद्यूत-  
पास पहुँचे तो इतनी बड़ी सेनाकी कज-कज और धाकाश-  
उठी भूखको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि ज़रा देखो  
यहाँ यह किसकी सेना है। लक्ष्मणने एक ऊँचेसे सालवृक्षपर  
बैठकर भरतकी सेना देखनेके बाद जो कुछ कहा उसे सुनिये—

शरारत सेनां रामाय वचनं चेदमत्रनीत् ॥  
अभिनं संशमयत्तार्यः सीता च मजतां गुहाम् ;  
सज्यं कुद्वच चापं च शरारं कवचं तथा ।

( वा० रा० २। १६। ११-१५ )

‘आप ( राम ) जल्दसे आग पुला दीजिये। सीता-  
किसी गुफामें भोज हीजिये, कवच पहन लीजिये  
धनुष-बाण लेकर तैयार हो जाइये।’ अंगलमें भुँआ  
र देखकर वहाँ रहनेवाले मनुष्योंका पता सीमा लगा  
र है, इसीसे लक्ष्मणने आग पुलानेकी कहा है।

जब रामने कहा कि ज़रा यह तो देखो कि यह सेना  
कसकी, तब धपकती हुई ‘अग्नि’ तरह ओपधमें भरे  
रण बोले—‘मादम होता है कि राज्यभियेक हो जानेके  
आपने राज्यको निष्कण्टक बनानेके निमित्त कैकेयीका पुत्र  
राम दोनोंको मारनेके लिये आ रहा है। रथमें  
वेदारकी चञ्जा है। आज यह हमारे कब्रमें धावेगा।  
भरतके कारण इतना दुःख मिला है, उसे मैं आत  
रूँगा। जिसके कारण आप अपने पितृकराज्यसे व्युत्  
हैं वह शत्रु ( भरत ) को भवश्य ही बधके योग्य है।  
उके बधमें कोई दोष नहीं है। आपने पुराने अपकारीको  
नेमें पाप नहीं लगता। राज्यकी लोभिन कैकेयी आज  
गी कि उसका पुत्र मेरे द्वारा उसी प्रकार मरोदा जा  
है जैसे कोई मख हाथी किसी वृक्षको तोड़-मरोड़कर  
दे। आज टूची बड़े भारी पापसे मुक्त होगी। आज  
सहित भरतका बध करके मैं धनुषबाणसे उजाय  
गा।’

लक्ष्मणको क्रोधान्ध देखकर रामने उनका मिजाज दण्डा  
र और भरतकी एक और अग्नि-परीक्षा होते होते रह  
। राम बोले कि ‘देखो लक्ष्मण, अब भरत स्वयं धाये  
गे फिर धनुष-बाण और बाल-सलवारकी क्या धावरव-

कना है ? जब मैं पिताके सामने राज्य छोड़नेकी प्रतिज्ञा  
कर चुका तब फिर भरतके बधसे कलङ्कित राज्य लेकर मैं  
क्या करूँगा ? मैं चाहूँ तो यह समस्त पृथ्वी मुझे दुर्लभ  
नहीं है, परन्तु मैं अधर्मके द्वारा इन्द्रासन भी नहीं चाहता।  
जो सुप मुझे तुम्हारे, ( लक्ष्मणके ) भरतके और शत्रुपके  
थिना मिलता हो वह भय हो जाय। मुझे उसकी अपेक्षा  
नहीं।’

‘लक्ष्मण, भरत किसी दुर्भावसे नहीं आ रहे हैं। उन्होंने  
जब मेरे तुम्हारे और सीताके वनवासकी बात सुनी होगी  
तब स्नेह और शोकसे व्याकुल हो उठेंगे। वह हमलोगों-  
से मिठने आ रहे हैं, किसी छुरी नीयतसे नहीं। माता  
कैकेयीसे अग्रसख होकर पिताको प्रसन्न करके भरत मुझे  
राज्य देनेके विचारले आ रहे हैं। भरतके मनमें कभी हम-  
लोगोंकी सुनाई नहीं आ सकती। क्या उन्होंने कभी तुम्हारे  
साथ कोई बात की है ? फिर आज तुम्हारे सममें ऐसी शत्रु  
और भय क्यों उठ रहे हैं ? लक्ष्मण, भरतके लिये कोई  
कटु-वाक्य न कहना। उनके प्रति कहा हुआ तुम्हारा अप-  
शब्द मुझे लगेगा। यदि राज्यके लिये तुम ये बातें कह रहे  
हो तो भरतकी आने दो, मैं उनसे कहकर राज्य तुम्हें विला  
दूँगा। यदि मैं भरतसे कहूँ कि लक्ष्मणको राजगद्दी दे दो  
तो यह निश्रय है कि वह ‘बहुत अघवा’ के सिवा और कुछ  
न कहेंगे।’

रामकी इन बातोंने लक्ष्मणको पानी-पानी कर दिया।  
वह लक्ष्मणके मारे जमीनमें गढ़ गये। फिर उन्होंने भरतके  
विषय कभी और न उठाया।

उपर लक्ष्मणका तो ऐसा भाव था और इधर भरतको  
देखिये कि उनकी क्या दशा थी—

यावत् रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं न माहावतम् ।  
वैदेही वा महामाणां न मे शान्तिर्भविष्यति ॥

( वा० रा० २। १८। ६ )

भरतको बराबर यही रट थी कि जबतक मैं राम, लक्ष्मण  
और सीताके दर्शन न कर लूँगा तबतक मेरे व्याकुल हृदय-  
को शान्ति नहीं मिल सकती। जिन भरतके सम्बन्धमें  
लक्ष्मण समझते थे कि वह हमें मारनेको आ रहे हैं, दुष्ट,  
चामर धारण करके राजा भरत हमारा बध करनेके लिये  
सेना लेकर वहाँ पहुँचे हैं, वही भरत जब रामके सामने  
पहुँचे तो उनकी क्या दशा थी—

जटिलं चौरवसनं प्राञ्जलिं पतितं मुनि ।

ददर्श रामो दुर्दशीं युगान्ते भास्करं यथा ॥

( वा० रा० २।१००।१ )

दुःखामित्तो भरतो राजपुत्रो महानलः ।

उत्सार्पति सकृदीनं पुनर्नोवाच किञ्चन ॥

( वा० रा० २।११।१८ )

जटावल्कलधारी, पर्यधुनयन, शरदकपठ, षीषदेह, शीन, हीन, मलीन, दुःखसे व्याकुल भरत एक अपराधीकी भाँति हाथ जोड़े घबराते तथा काँपते हुए रामके पास पहुँचे और पहुँचते पहुँचते ही मूर्च्छित होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। उस समय भरतके मुँहसे 'हा आर्य' के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं निकल सका।

रामने क्षणिके भरतको उठाया, प्रेमपूर्वक गोदमें बिठाया और इसके बाद जो जो बातचीत हुई वह सभी जानते हैं। जब भरत किसी प्रकार राज्य लेनेको राजी न हुए तो रामने इतना मंजूर किया कि—

अनेन धर्मशीलेन वनप्रत्यागतः पुनः ।

आत्रा सह मविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥

( वा० रा० २।११।१३ )

'वनसे लौटकर मैं धर्मात्मा भाई भरतके साथ राज्य स्वीकार करूँगा।' इवर अधियोंने देखा कि रामके ऊपर पीरे पीरे भरतका रंग चढ़ रहा है। उन्हें मय हुआ कि कहीं हमारा उद्देश्य ही नष्ट न हो जाय। इस कारण इसी समय ऋषिलोग भीचमें दूढ़ पड़े और उन्होंने भरतसे कहा कि 'बस हो लुका, अब और ज्यादा जिद न करो। यदि तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाये रखना चाहते हो तो रामकी बात मान लो। इन्हें १४ वर्षतक वनमें रहने दो। बादमें तुम और वह मिलकर राज्य बर लेना।'

तत्रमद्वैतमिच्छाः क्षिप्तं ददात्तोरवैरिणाः ।

भारतं रात्ररार्द्धमित्युचुः संगता वचः ॥

प्रार्थं वनस्य भाष्यं ते निरारं यत्प्रेथते ॥

( वा० रा० २।११।१५ )

बदि भरतके वचनेमें आकर राम उसी समय राज्य स्वीकार कर लेने लख मो फिर रामके द्वारा राजका वच करारके दो अर्धम अधियों और देवताओंने मिश्रकर तैयार की थीं, वह सब वचनें मिश्र करनी। जिसके लिये विषामिन-

ने दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगकर सुबाहु, भारीच, तास आदिका शिंकार कराया था, दिव्य अन्न और बला आदि बला आदि विचार्य सिलायी थीं, जिसके लिये जनकजी ही सीताको वनवासकी शिंका दी गयी थी, आगेके लिये भगवत्य आदि अधियों और इन्द्र आदि देवताओंने बड़ी पेशबन्दिर्दा कर रखी थीं वे सब संसूये नष्ट-भट जाते, हसीलिये राम-भरतके इस संवादमें अधिगे अधानक फट पड़े और भरतको उन्होंने रोक दिया।

यह सब कुछ होनेपर भी भरत अपनी हलसे नहीं हटे। उन्होंने कहा कि मैं अकेला इतने बड़े राज्यकी रोक-बन् नहीं कर सकता। सब प्रजा आपहीको राजा बनना चाहती है। आप इस राज्यको स्वीकार करके इसकी स्थापना कर दीजिये। मैं आपके सेवककी हैसियतसे आपके बदनसे लौटनेतक काम चलाता रहूँगा। दूरदर्शी भरत शान्त इसी आशयसे सुवर्ण-पादुकायें तैयार कराके अपने लक्ष लेते गये थे, वही उन्होंने पेश की और कहा—

अधिरोहार्थपादाभ्यां पादुके हेममूर्धिते ।

पते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥

सोऽधिकृत्य नरन्यायः पादुके व्यवमुच्य च ।

प्रायच्छतसुमहतेजा भरताय महात्मने ॥

( वा० रा० २।१२।२१-२१ )

हे आर्य ! आप इन खदाउथोंको पहनिये। वही आपकी प्रतिनिधि होकर आपका राज्य सहाजैगी। एतने खदाऊँ पहनीं और फिर उतारकर भरतको दे दीं।

स पादुके संप्रणम्य रामे नचनमप्रवीर ।

चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचौरपरो हृदम् ॥

फलमूलादानो वीर भवेयं रघुनन्दन ।

तवागमनमाकाङ्क्षुन् वसन् वै नगराददिः ॥

तव पादुकयोर्नर्मस्य राज्यतन्त्रं परन्तप ।

चतुर्दशे हि सम्पूर्णं वर्षेऽहनि रघुसम ॥

न द्रवयामि यदि त्वात्तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।

( वा० रा० २।१२।२१-२१ )

भरतने पादुकाओंको प्रणाम किया और रामने कि 'चौदह वर्षतक मैं एक वनवासी तापसाके समान चौर-पारी होकर नगरने वाहर रहूँगा और आपके प्रणयामें चञ्चलसे ही जीवन विधाई करूँगा।

पादुकाओंको राजसिंहासनपर स्थापित करके समस्त राज-शासनका कार्य, इन्होंने लिये, १४ वर्षतक करूँगा। चौदह वर्ष बीतनेके बाद पहले ही दिन यदि मुझे आपके दरान न मिले तो यह निश्चय जानिये कि उसी दिन मैं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करूँगा। फिर आपको मेरे इस पापी शरीरके दरान न हो सकेंगे।'

धन्य भरत, और धन्य उनकी प्रतिज्ञा। भरतका चरित संसारमें अद्वितीय है। इतिहासमें ऐसा दूसरा उदाहरण ही नहीं। धन्य हैं राम जिन्हें भरत-जैसे भाई-मिले। भरतका पवित्र चरित्र भारतके लिये, नहीं नहीं, संसारके लिये—ज्योतिःस्तम्भका काम दे सकता है।

'स पादुके ते भरतः स्वर्गद्वते

महोत्सवके संपीरगृह्य धर्मविद्।

प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं

चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥

(वा० रा० २।११२।२९)

ततः शिरसि इत्या तु पादुके भरतस्तदा।

छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविनी मती ॥

(वा० रा० २।११५)

रत्नतप च संन्यासं दत्त्वेन वरपादुके।

राज्यं श्वेदमयोव्यायां धृतपापो भवाम्यहम् ॥

(वा० रा० २।११५।२०)

भरतने पादुकायें ली, उन्हें अपने सिरपर रख्या, रामकी प्रदक्षिणा की और उन पादुकाओंको हाथीपर रखवाया। खोगोंको आज्ञा दी कि इन पादुकाओंपर छत्र धारण कराओ। इन्हें भगवान् रामका प्रतिनिधि समझो। यह रामकी धरोहर है। जिस दिन ये पादुकायें और श्वयोव्याका राज्य—जो मेरे पास धरोहरके समान सुरक्षित रहेंगे—मैं भगवान् श्रीरामको वापिस दूँगा उसी दिन अपनेको पापसे मुक्त समझूँगा।

भरतकी इन बातोंपर टीका टिप्पणीकरना हम अनाधरयक समझते हैं। 'हम तो पहले ही कह चुके हैं कि भरतका चरित पवित्र प्रेम और निर्मल भक्तिका प्रशान्त महासागर है। विशुद्ध धार्मिकताका आकर है। यहाँ किसी नीतिको स्थान नहीं। यहाँ तो सरलता, पवित्रता और निर्मलताके साथ पवित्र प्रेम और किशुद्ध भक्तिकी धारा बहती है। हम इस खेलको यहाँ समाप्त करते हैं।

## लक्ष्मण और भरतकी भक्ति

(लेखक—श्री 'जगन्नाथ')



धरप ही अति शुभ मुहूर्तमें श्रीगोस्वामी-गुलसीदासजीने रामचरित-मानसकी रचना आरम्भ की थी। जान पड़ता है इंसवादिनी, धीखापायि माँ सरस्वतीको उस समय पूर्ण सावकाश था। माँ निश्चिन्त थी, प्रकृति धी, आनन्दोन्मत्त थी। कविता-कलापकी तरङ्गें उनके हृदय-स्रोतोंमें खूब ही लहरा रही थीं। नबरसकी वाद हृदयमें उमड़ आयी थी। सान-तरङ्गसे पीया मंकरित हो रही थी। माँ आप ही गा रही थी, बजा रही थी, अलाप रही थी। अपने परम भक्तका कान्य-रचनाकी ओर मुकाब देल लीला-मिय, भक्त-चरजल भगवान्की काशा हुई। गोस्वामीजीके 'उर-अजिर' में आकर माँ स्वतन्त्र रूपवन्द नाचने लगी। या यों कहिये कि लीलायम 'उनके उर-अजिर' में बाणीको नचाने लगे।' अथ क्वा या—

बानी नू के बरन मुग, सुबदन-कन परिमान।

श्रीरुचि-मुस कुखेत परि, होत सुमेक समान ॥

अथ चञ्चल सिलसिला। सचमुच सुमेरुकी सृष्टि हो गयी। असंख्य रत्नखानि उनकी रचनाके भीतर भर गयी। जिन्हें 'मरमी सज्जन सुमति कुदारी लिये' आजतक खोज रहे हैं, और परिश्रमसे खोद खोदकर निकाल रहे हैं।

इनकी रचनाको देखकर साहित्य-रसिक, समर्थ, कवि, विद्व, कोविद चकित हो गये और हो रहे हैं। भूगर्भके साहित्य-खगलमें इनके मानसको एक अद्वितीय स्थान प्राप्त है। विद्वानोंका मत है कि संसारमें जितने ग्रन्थोंकी रचना हुई है उनमें जर्मन-नाटककार 'गैटी' का 'फोस्ट' और गोस्वामीजीकी रामायण, ये दो ही ग्रन्थ ऐसे हैं कि इन एक एकके पाठसे मनुष्य इतना ज्ञान लाभ कर सकता है जितना सैकड़ों पुस्तकोंके अध्ययनसे भी कदाचित् ही प्राप्त हो सके। बर्थाय ही रामचरित्र अर्ध-धर्म-काम-मोक्ष चारों पदाओंका देनेवाला है।

कवि, ज्ञानी, विद्वानी, भक्त, रसिक, जिज्ञासु सभी इसके समीप आकर अपना अमोक्ष पाते हैं और कृतार्थ हो जाते हैं।



श्रीगोस्वामीजीने तो हृदय अन्वय कायाकी । पना 'स्वात्म-  
सुखाय' की थी । किन्तु हमें आज येने मरत हृदय कि  
आज यह अन्वय, क्योंकों अन्त हृदयोंको सुख-आनन्द  
दे रहा है । किन्तु भूले-भटकोंको मर्यादातर ना रहा है ।  
मायकोंको नि दि देगा है । पक्षियोंको उमके 'प्रसिद्धे-मन्मथ'  
सक पहुँचाया है, अथिण हृदयको मंगल बना है ।  
विमुक्तोंको अन्मुक्त बना है । पर शनं यह है—

जो यह क्या मनेह मनेता । कतिहृदि गुनेहृदि मनुनि मनेता ॥

हृदिहृदि शन-पान अनुगामी । कति-मन्-भरित गुनेगत मनी ॥

स्नेहके साथ पाना-सुखना और पञ्च होकर समझना-  
तिर क्या ? क्या, बेधा पार है । दोनों शोक दम जायेंगे ।  
हिन्दी भाषा-भाषियोंमें चाहे वे शायु हों वा गृहस्थ, आज  
जो धर्म-धर्म, मरहदका ज्ञान, भक्तिका प्रचार, पूजा-पाठ  
देखा जाता है उन मरका उद्देशक हृदय समापयमें ही है ।  
यदि समापय नहीं होनी तो गलानन-धर्मकी क्या परिधिपति  
होनी, यह कहना कठिन है ।

कन्यासकारिणी, मोहहारिणी, भ्रमनाशिनी, शान्ति-  
प्रदायिनी, आनन्द-वर्दिनी, भक्ति-मुक्ति-दायिनी रामायणके  
पठन-पाठनमे जो मृम हो जाय, 'रम विनेष जाना मो नाहीं ।'  
हृदय अन्वयकी एक मूषी और है । म्वाश्रमे लेकर पवित्र  
तक हृदके पदनेसे समान आनन्द पाते हैं । यह ऐसा सुधा-  
नदाम है कि अपठित पुत्र पञ्जीयन् कोई एक शूँट भी पी खेनेपर  
उतना ही आनन्दित होता है जितना अगण पखित हृदके  
'दाम परस मञ्जन कर पान' से होता है । देश-विदेशमें  
किन्तु विद्वान् पखित ज्ञानी ऐसे हुए हैं और हैं, जो आजन्म  
हृदय परिश्रम और श्रदापूर्वक अध्ययन कर अमृत ही रह  
गये हैं ।

यदि रामायणके विषयमें विचारके साथ लिखा जाय तो  
एक अग्रम पोधी तैयार हो सकती है । गोस्वामीजीने हृदये  
समाप्त-रूपमें लिखा है । एक एक शीपाईको लेकर विचार  
काने और उदका भाष्य लिखनेपर सैकड़ों पत्रे रीगे जा  
सकते हैं, किन्तु हमकी व्याख्याका अन्त नहीं हो सकता ।  
'अ पाण'के पाठकोंके चित्तविनोदार्थ मानसके आधारपर  
तथा श्रीमरतजीके भक्तिभावके सम्यग्धमें  
प्रकाश वा अनेका यत्न किया जाता है । श्रीगोस्वामीजीने  
में एक एक भावका उदक उज्ज्वल उदाहरण दिया  
पत्रम् उनका रुचिगर पाम सुन्दर चित्रण किया है ।

पञ्च परमात्मके साकार तथा विचार करने अनु-  
म्य श्रीगोस्वामीजीने उदके साथ हीन प्रकाश मलय  
है । एक है वैदिक-वृद्धिके अनुसार काने इदोके मय  
जीव आमी, जिता, मया, मित्र आदि कोई एक मत जो  
कर उदके अनुकूल काने विचार तथा कथाको हृदय  
अन्वयद्वारा परिमार्जित तथा संकृत कर परमार्थमे  
प्राप्त करना । हृदके उदाहरण रामायणमें हृदयार्थ,  
अज्ञानी, विभीषण, बेधा, अन्वयानी, भावनी प्रकृति है ।  
हृदया है, श्रीगोस्वामिके अनुसार आचार्य । किन्तु अनुकूल  
जीविके कानेको उदका अंग मानता है । हृदके  
श्रीगोस्वामीभाष भी करने हैं । हृदकी व्याख्या करने हृ-  
गोस्वामीजीने कहा है—

'पंथा अम जीव अतिनयी । चेतन अन्त सत्त सुन्दरी ॥'

मीमासा है आनन्दुदिका सम्यग्ध । त्रियमें जीव कानेके  
भगवान्पे पृथक् नहीं मानता और जानता है कि मेरे हृदये  
'अन्वयार रूपानि भगवान्' हैं । जीव एवं अदका सम्यग्  
अधिप अनादि है । मायाके पक्षमें पना हृदके कान म  
भगवान्पे कोई अमई रचना नहीं चाहता । उदके को  
नाना नहीं जोड़ता, वरं उनके अन्विषाईको सूत्र ही  
रहना है । यदि उनका होना मानता भी है तो कानेको  
उदके अन्नग, मृत, स्वप्न जानता है । गोस्वामीजी कने  
हैं—

'सो मायात्म मयत् गुमदं । बंधो और मरकटी नई ॥  
जद चेतन हि अग्रिय परि मई ॥ यदपि मृषा दृष्ट कर्त्तरी ॥'

किन्तु परम पदको प्राप्त करनेके लिये, अपने मानव  
जीवनको सायंक बनानेके-लिये यह निराला आचरण है  
कि जीव प्रभुके साथ कोई एक सम्यग्ध जोड़कर उदके  
प्रौढ बनानेमें दक्षिण हो जाय । मनन, चिन्तन, पत्र-  
शीलनद्वारा उसकी पुष्टि करे । अनेक भावोंमें तस्य एवं  
दास्यभाव भी हैं । भावोंमें ये दोनों प्रधान माने जाते हैं ।

श्रीलखनवालाका प्रभुके साथ तस्यभाव और श्रीमर-  
जोका दासभाव था । 'तस्य' में 'ममेवामी' वे मेरे हैं और  
दासमें 'तल्येवाऽऽ' में उनका हूँ, यही भावनाएँ बलवान रती  
हैं । दूसरे भावोंके अनुसार तस्यभावमें भी सेवा-धर्म बना  
रहता है । क्योंकि भक्तिका प्रधान अन्न सेवा ही है । व  
हमें भी था 'सिंह सिंह लखन कम-मन-वानी ।' किन्तु हृदके  
मायुर्ग तथा प्रेमकी प्रगाढ़ता अधिक होती है । इस भावमें  
देशधर्मकी और भक्तका ध्यान नहीं जाता । अतएव एकदमी

मात्रा बहुत बढ़ी रहती है। यह सतपभाव अधिक शुद्ध एवं निष्काम है। माधुर्य तथा प्रेमकी मात्रा जितनी बढ़ती है स्वागकी मात्रा भी उसीके अनुरूप अधिकाधिक बढ़ती जाती है। स्वाग एवं कष्ट इस भावके भाविकको विचलित नहीं करते वरं उसके आनन्दको उत्तरोत्तर बढ़ाया करते हैं। अपने उपासपदेवके आदेशानुसार सेवामें लीन रहना, जो मिल जाए उसीमें सन्तोष करना— इस भावका उपासक इसीको अपना एकमात्र कर्तव्य— परम धर्म मानता है।

परमात्मा एवं जीवात्माके शुद्ध स्वरूपके विचारसे यह सत्यभाव बननादि है। श्रीसाधतरोपनिषत्में कहा है 'शु श्रणां सत्तुजा सत्वाका समानं वृक्षं परिषस्वजाले' (११।४।६०) इस देहरूपी वृक्षपर सुन्दर पशवाले दो विहङ्गम एक साथ सत्वाकी भाँति वास करते हैं— यहाँ दो विहङ्गमोंसे परमात्मा तथा जीवात्माका तात्पर्य है। इससे सिद्ध होता है कि जीव तथा मल्लमें अटूट सम्बन्ध है। किन्तु प्रभुकी छया बिना जीवको इसका ज्ञान नहीं होता, न इस ओर इसका ध्यान ही जाता और न प्रवृत्ति ही होती है।

जीव दो प्रकारके होते हैं, एक नित्यमुक्त और दूसरा साधारण। नित्यमुक्तको अपने निज स्वरूपका ज्ञान सदा-सर्वदा बना रहता है। वह कभी अपने लक्ष्यसे विचलित नहीं होता। साधारणको इष्ट, अभ्यास तथा अनुरीतिनहाय सहजका ज्ञान होता है। तत्पश्चात् वह अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, जिससे उसका दैहिक ज्ञान जाता रहता है।

श्रीलक्ष्मण तथा भरतजी प्रथम श्रेणीके जीवोंमें हैं।  
अतएव—

'जो आनन्दसिन्धु मुखरासी। सीकरसे त्रयलोक मुपासी ॥  
सो मुखधाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक विप्रना ॥'

—जो भगवान् हैं, उनके साथ श्रीलक्ष्मणजाल अपना सत्य भावका अटूट सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इनका यह सम्बन्ध बनादिकालका है। इसीसे इनके विकास होनेमें कुछ विघ्न नहीं लगा। और—

'बाराहिं ते नित्र हित पतिं जनी। रथमन राम चरन रति मानी ॥'

—इनका यह सम्बन्ध अन्ततक बना रहा। एक चरणके लिये भी आप अपने हृद्देवसे भ्रमना नहीं हुए। उनकी सेवामें विचलित नहीं हुए। जिसका परिणाम यह हुआ कि उस अवलामें शरीर धारण करनेके कारण आपको कोई चिन्ता न हुई। किसी प्रकारका मानसिक कुल नहीं

हुआ। सरकारके समीप रहकर उनकी रक्षिका पालन करना ही इनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्यसे यह कभी भ्रष्ट नहीं हुए।

शरीर धारण करनेके कारण ही प्रत्येक मनुष्यमें कोई-न-कोई दुर्बलता अवश्य ही रहती है। क्योंकि काल, कर्म, स्वभाव, गुण तथा संसर्ग-बन्ध जीव विधवा ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके शकौरोंमें पड़ा रहता है। जिसमें जिसकी मात्रा अधिक रहती है, वह उसीके अनुसार लोभी, क्रोधी, घादि विदोषियोंसे विभूषित किया जाता है। भक्तमें भी ये दुर्बलताएँ रह जाती हैं। क्योंकि यह जीवका सहज स्वभाव है। किन्तु भक्त अपनी इस दुर्बलताको भी प्रभुके ही काममें लगाता है। भक्तका भी यह सहज स्वभाव है।

श्रीलक्ष्मणजी सरोप शीरके ग्रंथ होनेके कारण लीससे भरे रहते थे। क्रोधीकी मात्रा इनमें प्रबल थी। किन्तु सारी रामायण देखनेसे ज्ञात होता है कि इन्होंने अपने लिये कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। आदर्श भक्त होनेके कारण इन्हें प्रभुको छोड़कर निजकी कोई रधि, लालसा, वासना थी ही नहीं और जब आप आरा-निराराकी परिधिसे बाहर ही थे तब इन्हें क्रोध ही क्यों होता, किसीपर अपने लिये लीभते ही क्यों? आप तो प्रभुकी केवल सायामाय थे, उनके प्रतिबिम्ब स्वरूप थे। यही भक्तका स्वरूप है।

अपने लिये तो नहीं, पर जब कहीं या कभी इन्हें ज्ञात होता या ध्येयका भ्रम हो जाता या कि कोई प्रभुके प्रति अपमानपुष्क कुल कह रहा है अथवा कर रहा है तब आप उचल पड़ते थे। पायापात्रका विचार इनके मनसे जाता रहता था। फिर कितनी सामर्थ्य थी कि इनके सामने अपना तिर उठा सके, इनके समुल लड़ा रह सके! श्री-जनकराजके 'शेर-विहान मही में जानी।' कहे ही आप कैसा प्रचण्ड रूप धारण करते हैं! पर अपने लिये नहीं! इन्हें ज्ञात हुआ कि इतमें मर्पादा-मुसपोत्तमका अपमान हुआ है। कहने लगे—

'रघुसिन्धुमहें जहें कोउ होरें। तेहि समार अस कहें न कोरें ॥  
कही जनक जति अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुटुम्बिनी जानी ॥  
मुनहु भातु-कुल-पंकर-मानू। कहेँ मुभाव न कतु अनिमानू ॥  
जो तुम्हार अनुसासन पावौ। कन्तु इव जहाँट उठावौ ॥  
कौंच छट मिमि बरौं पोती। सकौ मेव मूलक इव तौती ॥  
तब प्रताप मदिमा मन्वजला। का बापुतो पितक पुराना ॥

वासभाव स्वाभाविक होनेपर भी इसका पालन ध्वस्त कठिन है। श्रीभरतजीने स्वयं ही कहा है—

‘सन्तो सेवक धर्म कठोरा ।’

भरतजीकी भाव-गम्भीरता, नम्रता, सरलता, निरङ्कुलता, धीरता, बुद्धि-विषयता, समाचातुरी, वाक्य-पटुता, त्याग, सेवा, धर्मपुरीयता देखकर बुद्धि चकित हो जाती है। इनका वयं न क्योंकर हो सकता है ?

भरत-सील-गुण-विनय-बड़ाई । भायप-भगति-भरोस-भड़ाई ॥  
कहत सारदहुँकी मति हीचै । सागर सौपकी जाहि उलीचै ॥

साधारण मनुष्यकी क्या बात है जब राजर्षि जनकजीने इनके विषयमें कहा है—

धर्म राजनय ब्रह्मविचार । इहाँ यथामति मोर प्रचार ॥  
सोमति मोर भरत महिमाहीं । कहीं काह छल लुभति न छाहीं ॥  
भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहि राम न सकहि नखानी ॥

इनका चरित्र धार है। गोस्वामीजीने सत्यही कहा है—

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति विरति गुण विमल विभूती ॥  
बनत सफल सुकनि सुकचाहीं । सेस गनेस गिरा गम नाही ॥

इनके भावकी अग्रगताके विषयमें भी धीजनकराजने धार ही कहा है कि—

देनि परन्तु भरत रघुवरकी । प्रीति प्रतीति जाद नहि तरकी ॥  
भरत अबधि सनेह ममताकी । जयपि राम सीम समताकी ॥  
परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥  
साधन निदि राम-पग-नेहू ।

ठीक है सच्चा भक्त भी तो वही है जिसे भगवान् स्वयं भजे । इनका ध्यान श्रीरामचन्द्रके हृदयमें कभी नहीं हटा-

जग जगु राम राम जगु जेही ।

परिचाम हुआ—

जगु खेजत जग जीव धंरो । जे बिचये प्रभु खिन प्रभु हेरो ॥  
ठे सब भये परम पर जोगू । भरत दरम भेजत भव-तोगू ॥  
बर की बत भगवती नही । सुमिरत खिनहि राम मन मही ॥  
कौर कर्णोंमें क्यों ? सुबख भी तो सरकारने की-  
क्या है—

राम मन भरत सनेह । बिचि इषय भई मुना न दीन्य ॥  
सुगर रथच रिनु अरत । सुचि सुकजु नई भग्न मनन्य ॥

जिन्होंने-

निज जस जगत् कीन्ह उरियारी ।

सुमिरन ही क्यों धार इनकी सेवा भी तो क देखिये राग्याभिषेकके पूर्व—

पुनि करननिधि भरत हँकारे । निज करव्या राम निर-  
नहवाये प्रभु तीनिहुँ मारै । भकवठल इषल रगु-  
जिसे देख गोस्वामीजी कहते हैं—

भरत माय प्रभु कोमलताई । सेस कोटि-स्त सक्रिद नर

इधर भरतजीको भी किसी बातकी चिन्ता न उन्हे दीन-सुनियाना खयाल भी नहीं था। अपने-न सुधि रखते हुए भी आपने अपने जीवनका एकमात्र प्रसुकी प्रसन्नता ही रक्खा था। अक्षयमें जब इन्हें गरी-  
बात चली तब आपने कहा था—

ढर न मोहि जग कहहि कि पौचू । परलोकउकर नाहिन से-  
पकड़ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगे मे सिराम हुकरी

आपनि दारन दीनता, कहउँ सबहि सिराम ।

देसे भिनु रघुनाथ-पद, त्रियकी जनि न जय ॥

भरतजीके गुणोंका वयं न किसीसे कदापि नों सकता ‘कविकुल अगम भरत गुनगाथा ।’ जब प्रभुके प्राण-  
के प्रधान कारण ही यही माने जाते हैं तब और क्या कहा जा सकता है ?

होत न मूलक भाव भरतको । अचर सचर चर अचर करत को

प्रेम अनिय मन्दर विरह, भरत पर्यधि गँधीर ।

मथि प्रगटे सुर-साधु-हित, इपासिन्नु रघुवीर ॥

इनके त्यागका क्या पूछना है ? देखिये, प्रयागमें 1  
की पहचानके लिये मुनिकी भाशा या आदि-सिद्धिने ।  
'विधि-विस्मयदायक' विभव प्रस्तुत किया तब इन्होंने तब  
भोर भूषण भी नहीं किया। भोगकी सामग्री साम त  
हुए भी उसे भोग न करना ही तो सच्चा त्याग है ।

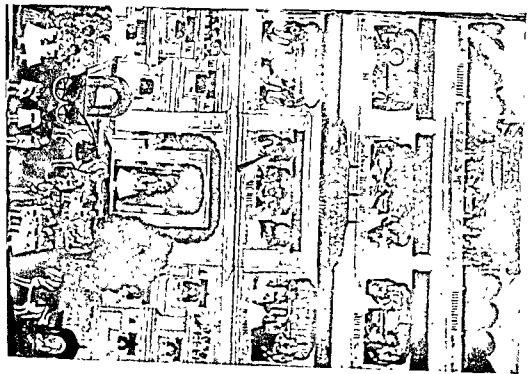
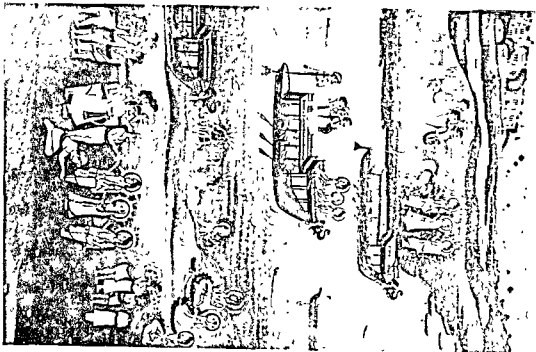
सम्पति खड्ग भरत खड्ग, मुनि आयगु सेरतार ।

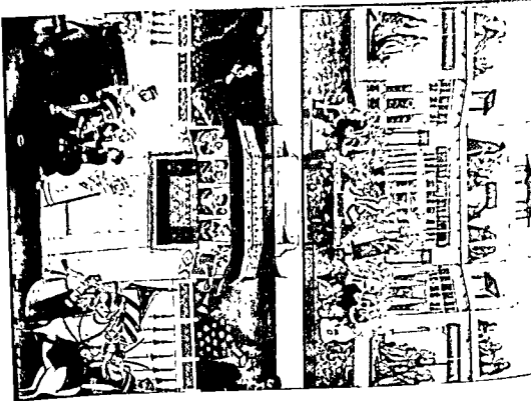
तेदि निमि आश्रम पीडा, राता भा निगुर ॥

सेवा-धर्मकी धोर इनका पूरा ध्यान बना रात ।

ध्यान था कि—

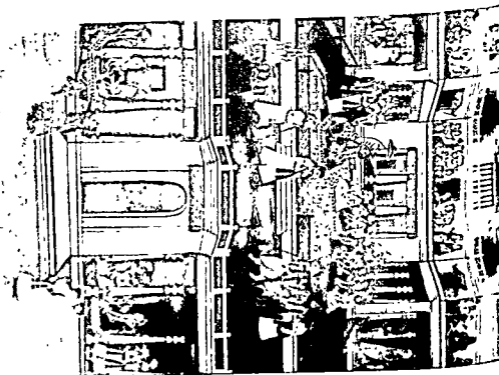
सेवक दिन मनेव भवदाई । करि सफल सुख रोम विरि ॥





द्वारवकीका दरवार ।

‘श्री धर्मि मय द्वागर् देका । कानु द्वागर् दिग यमर्दि देका ॥’



गुरु वसिष्ठमी ।

‘तय मजगर्द धर्मिच योदार्थे । रामयाम सिव दिग यमर्दि ॥’

प्रभुकी चरण-पादुका पानेपर धाप पूर्यरूपसे सन्तुष्ट  
हो जाते हैं और कहते हैं—

नाथ मयठ सुख साथ गयेको । लहेउ लाम जग जन्म गयेको ॥

'शाम, दम, नियमके आचरण' से धाप 'पद्म-जनित  
वेकारों' से रहित हो गये थे । माताकी कुटिल करनीको  
तुन धापने अपनेको कितना सम्हालकर क्रोधको श्लानित  
इया दिया । हार मानकर धापने कहा कि—

जोहसि सोहसि मुँह मसि लाई । ओल ओट उठि बैठसि जाई ॥

राम-विरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह विधि मोहि ।

मो समान को पातकी, नादि कहहुँ कछु तोहि ॥

इतना मनमें धाते ही धाप तटस्थ हो गये । धतपुत्र  
मन्थराको जब शत्रुहन्त्री 'रुगे धर्षातन भरि धरि मोदी'  
तब इपाविधि भरतने छुड़ा दिया । मद तो इनके बँट  
पड़ा ही नहीं था । सरकारने आप ही कहा है—

भरतहि होय न राजमद, सिधि-हरि-हर पद पाय ।

भरतजीके वैराग्यका पता तो शत्रुघ्न्याकापदके अन्तमें  
बलता है, जहाँ गोस्वामीजीने इनके आचरणके विषयमें  
कहा है—

अनधराज सुरराज सिद्धाहीं । दसरथ धन लखि धनद लजाहीं ॥

तेहु पुर नसत भरत बिन रागा । चबरीक जिमि चम्पक नगा ॥

कहा है कि—

चम्पामें गुन तीन हैं, रूप रंग अह नास ।

पर इतनोही शीट है, भ्रमर न आवत पास ॥

और—

लखन-राम-सिय कानन नसहीं । भरत मवन नसि तप तनु कसहीं ॥

परम पुनैत भरत आचरनू । मधुर मंजु मृदु मंगलकरनू ॥

भरतजीका भाव अपार अगम अधूर्व है । उसका  
अज्ञेय होना कठिन ही नहीं असम्भव है । गोस्वामीजीने  
इही कहा है—

सिय-राम-प्रेम-विभूष-पूरन

होत जनम न भरतकी ।

मुनि मन अगम जम नियम

सम दम विषम जत आचरत को ॥

हुस दाह दरिद रंम दूबन

सुखत भिस अपहरत को ।

कलिकाठ तुलसी से सठहि

हठि राम सममुख करत को ॥

और गोस्वामीजी ऐसा कबैं क्यों नहीं ? क्योंकि धाप-  
का तो सिद्धान्त था 'लेक सव्यभाव विनु, भव न तरे  
उरगारि' और इस भावके श्रीभरतजी आदर्श भक्त थे ।

अब देखिये, दोनों भाइयोंका प्रभुके साथ एक सम्बन्ध और  
आपसमें भावपका दृढ़ बन्धन रहनेपर भी अपने अपने भिन्न  
भिन्न भावोंके कारण दोनों महातुभावोंका स्वभाव धीरामचन्द्र-  
जीके साथ भिन्न रहा और उसकी वृद्धि एवं सुष्टि अपने  
अपने स्वभावके अनुकूल भिन्न भिन्न रीतिकी हुई । प्रभुकी  
रुचि-पालनमें दोनों समान थे । किन्तु श्रीलखनवाल्  
सरकारके निजकी सेवासे सन्तुष्ट रह अपनपा—अर्हबुद्धि एक-  
दम गँवा बैठे थे । अपने लिये प्रभुसे उन्होंने कभी कुछ  
नहीं कहा—कभी कुछ नहीं जाँचा, प्रभुको छोड़ संसारमें  
किसीकी नहीं जाना । प्रभुकी रुचि-पालन तथा सेवाके  
अतिरिक्त अपना निजका कोई धर्म नहीं माना । निजका  
सुख-दुःख, मान-अपमान इन्हें कभी विचलित नहीं कर  
सका । और भरतकी सरकारके नाते प्रजा, परिजन, माता,  
गुरु, पुरोहित, कुटुम्ब, परिवार, राज्य, और कोपकी सेवामें  
सद्भावसे प्रवृत्त रहे । किन्तु प्रेम-सरोवरमें सदा निमग्न  
रहते हुए भी वे सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोगकी  
आँचसे सन्तप्त एवं शीतल होते रहे । पर दोनोंकी  
तपस्याका फल हुआ एक ही परमपदकी प्राप्ति, प्रभुके  
पादपद्ममें पूर्य विशुद्ध प्रेम, हृदयमें धनपायिनी भक्तिका  
सर्वोपरि विकास, और अणुबिन्दुका सतत उद्धार । इन  
दोनोंके हृदय-सरोवरमें राम सदा कमलवत् विकसित रहे,  
उसीके चारों ओर इनका मन-भर सदा मँदराता रहा ।

सोभत जगत् स्वप्नो, रस रिसवैन कुचैन ।

सुरत स्थानपनकी सुरति बिसरामे सिपरी न ॥

संसारमें ऐसा प्रेम, ऐसी भक्ति अजन्म है । ये दोनों  
महातुभाव स्वार्थ-त्याग तथा धाम-त्यागके आदर्श चित्र हैं ।  
प्रेमकी वेदीपर इन दोनोंने अपना तन, मन, धन, सर्वस्व  
अर्पण किया किन्तु बदलेमें कुछ नहीं चाहा । इसीका नाम  
निष्काम धर्म है । इसीको निष्काम प्रेम कहते हैं । ऐसे ही  
भक्त अनन्त दिव्य ध्यानन्दसागरमें आनन्दरूप हीकर  
सदा निमग्न रहते हैं ।



जो केवल पितु आयसु ताता । तो जनि जाहु जानि भिड़ि माता ॥

जो पितु-मातु कहैउ बन जाना । तो कानन सत अवध समाना ॥

मातासे कहा गया कि 'पिताकी ही नहीं, माता कीकेयी-की भी यही सम्मति है।' यहाँपर कौसल्याने बड़ी बुद्धि-मात्रीके साथ यह भी सोचा कि यदि मैं 'श्रीरामको हृदयपूर्वक रखना चाहूँगी तो धर्म तो जायगा ही, साथ ही दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध भी हो सकता है।

राखें लुहदि करवें अनुरोधु । धर्म जाद अरु कन्धु विरोधु ॥

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मपरायणा साध्वी कौसल्या-ने हृदयको कठिन करके रामसे कह दिया कि 'बेटा ! जब पिता-माता दोनोंकी धाञ्जा है और तुम भी इसको धर्म-सम्मत समझते हो तो मैं तुम्हें रोकर धर्ममें बाधा नहीं देना चाहती, आगे और धर्मका पालन करते रहो। एक अनुरोध झवरय है—

मानि मातुके नष्ट नलि, सुरति विरति जनि जय ।

कह तो दिया, परन्तु फिर हृदयमें सूफान पातिप्रतधर्म थाया । अथ कौसल्या साथ ले चलनेके लिये आग्रह करने लगी और बोली—

कयं हि धेनुः स्वं वसंतं गच्छन्तमनुगच्छति ।

अहं त्वानुगमिष्यामि च न तस्य गमिष्यासि ॥

(श० रा० अ० २।२।१५)

'बेटा ! जैसे गाय अपने बछड़ेके पीछे वह जहाँ जाता है वहाँ जाती है वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ जाओगे वहाँ जाऊँगी।' इसपर भगवान् रामने माताको अक्सर जानकर पातिव्रत-धर्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया, जो श्रीमात्रके लिये मर्मन करने योग्य है। भगवान् बोले—

मर्तुः पुनः परित्सागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।

स मवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥

यावन्वीर्ये काकुत्स्थः पिता मे जगतीरतिः ।

शुभ्रया क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः ॥

जीवन्त्या हि स्त्रिया मर्ता दैवतं प्रमुदेत् च ।

मवत्या मम चैवाथ राजा प्रभवति प्रभुः ॥

न ह्यनाया वयं राजा लोकनाथेन धीमता ।

भरतश्चापि धर्मरत्ना सर्वमूर्तप्रियंवदः ॥

भवतीमनुवर्तते स हि धर्मरतः सदा ।

यथा मरि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्षिकः ॥

धर्मं नवानुयात्किंबिदप्रमत्ता तथा कुरु ।

दारुणधाप्यं शोको यथैनं न विनाशयेत् ॥

राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ।

मृतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥

भर्तारं ननुयतेत सा च पापपतिर्मनेत् ।

मर्तुः शुभ्रया नारी कन्धे स्वर्गमुत्तमम् ॥

अपि या निनमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ।

शुभ्रयमेव कुर्वते मर्तुः प्रियहिते रता ॥

एव धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ।

(श० रा० २।२५)

'हे माता ! पतिको परित्याग कर देना स्त्रीके लिये बहुत बड़ी क्रूरता है, तुमको मनसे भी ऐसा सोचना नहीं चाहिये, करना तो दूर रहा। जबतक काकुत्स्थवंशी मेरे पिताजी जीते हैं तबतक तुमको उनकी सेवा ही करनी चाहिये, यही सनातन धर्म है। जीवित स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है और पति ही प्रभु है। महाराज तो तुम्हारे और मेरे स्वामी राजा हैं और माझिक हैं। भाई भरत भी धर्मात्मा और प्राथीमात्रके साथ प्रिय आचरण करनेवाले हैं, वह भी तुम्हारी सेवा ही करेंगे, क्योंकि उनका धर्ममें नित्य प्रेम है। हे माता ! मेरे जानेके बाद तुमको बड़ी सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे महाराज हुली होकर दारुण शोकसे अपने प्राय न ख्याग दें। सावधान होकर सबदा वृद्ध महाराजके हितकी ओर ध्यान दो। व्रत, उपवासदि नियमोंमें तयार रहनेवाली धर्मात्मा स्त्री भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती है तो वह अथम गतिको प्राप्त होती है, परन्तु जो देवताओंका पूजन नमस्कार आदि विवृलुज न करके भी पतिकी सेवा करती है उसको उसीके फलस्वरूप उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही जगो रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये श्रुति स्मृतियोंमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है।'

साध्वी कौसल्या तो पतिव्रता-शिरोमणि थी ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थी, अथ पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका मरण सुनते ही पुनः कर्त्तव्यपर डट गयी और श्रीरामको बन गमन करनेके लिये उसने आज्ञा दे दी। कौसल्याके पातिव्रतके सम्बन्धमें निम्नलिखित



उदाहरण धीर भी प्यान देने योग्य है—जिस समय धी-  
रताजरी राजा भी धीरतामके साथ बन जानेको तैयार होनी है  
उस समय कौमल्याजरी उतम धातवाधवाजी सीताको हृदयमे  
लगाकर धीर उसका गिर मूँघकर निम्न-निम्न उदरेश  
करती है—

'पुत्री ! जो रिशवाँ वतिके द्वारा सब प्रकारमे सम्मान  
पानेपर भी गरीबीकी हाश्रतमें उनकी सेवा नहीं करती,  
यह शसती मानी जाती है। जो छियाँ सती है वे ही  
शीलवती धीर सत्यवादिनी होती है, वहाँके उदरेशके  
घनुवार उनका यत्ताँ होता है, वे अपने कुलकी मर्यादाका  
कभी उस'धन नहीं करते। धीर अपने एकमात्र पतिको ही  
परमार्थ्य देवता मानती है। बेटी ! भाग मेरे पुत्र रामको  
विताने पनवासी बना दिया है, यह धनी हो या निर्धन  
तेरे लिये तो यही देवता है भयः कभी उसका तिरस्कार न  
करना ।'

यद्यपि परम सती सीताजीको पतिमृतका उपदेश करना  
सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके वधनोंमे  
कुछ भी छुरा नहीं माना था अपना अपमान नहीं समझा और  
उसकी बातें धर्मार्थयुक्त समझ हाथ जोड़कर कहा—'माता ! मैं  
आपके उपदेशानुसार ही करूँगी, पतिके साथ किस प्रकारका  
यत्ताँ करना चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके  
द्वारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप अज्ञाधी स्त्रियोंके साथ  
मेरी मुलना न करें—

धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥

नातन्त्री नाद्यते वीणा नाधको विद्यते रथः ।

नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतारमजा ॥

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।

अमितस्य तु दातारं भ्रातारं का न पूजयेत् ॥

(वा० रा० २।१।२८-३०)

'मैं कदापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिसप्रकार  
चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती। जिसप्रकार बिना तारके  
वीणा नहीं बजती, जिसप्रकार बिना पहियेके रथ नहीं चल  
सकता उसी प्रकार धीर चाहे सौ पुत्रोंकी भी माँ क्यों न हो  
जाय, परन्तु पति बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकती।  
पिता, माता, भाई और पुत्र वगैरह जो कुछ सुख देते हैं वह  
परिमित होता है और केवल इन्हीं लोकके लिये होता है परन्तु  
पति तो मोक्षरूप अपरिमित सुखका दाता है, धतपुत्र ऐसी  
कीन दुष्ट स्त्री है जो अपने पतिकी सेवा न करे ?'

जब राम बनको जाने जाते हैं धीर महाराज दुग्ध दुग्धी  
होकर कौमल्याके भजनमें आते हैं तब आगेमें भाव हा  
उठें कुप कंठार नपन कद बैरिणी है, इनके उभरमें जब दुग्धी  
महाराज धर्माभासे हाथ जोड़कर कौमल्याके समा मिलते  
हैं, तब तो कौमल्या मर्ममल होकर अपने कृपार बना मनी  
पभाकार करती है, उगधी आँसुमें निर्भर तरह ली  
बहने लगते हैं, धीर वह महाराजके हाथ पकड़ उन्हें अपने  
मग्नकर रग घबराहटके गाय कदनी है—'दे नाय ! मुझ  
वहीं मूउ हूँ, मैं पालीगर गिर टेकर प्रार्थना करती हूँ।  
आप मुझपर प्रणत्र होइये। मैं पुत्र-वियोगमें वीरिना हूँ, न  
समा कीजिये। देव, आपको जब मुझ दार्थीमे समा मनी  
पदी तो मैं आज पतिमन-धर्ममे ऋट हो गयी हूँ। आज से  
शीलपर कर्णक बना गया है। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुने  
अपनी दार्थी जानकर उचिन दृष्ट होइजिये। अनेक प्रकृत  
सेवाओंके द्वारा प्रणत्र करने योग्य बुद्धिमान स्वामी है  
धीरको प्रणत्र करनेके िये वाध्य होता है, उस कीके हो  
परलोक दोनों मष्ट हो जाते हैं। हे रामिन् ! मैं धर्मको जान  
हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो उ  
कहा सो पुत्र-भोगकी अतिराध पीडासे घबराकर कहा है  
कौमल्याके इन वधनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई  
उनकी धौंस छग गयी।

उपर्युक्त धवतराओंसे यह पता लगता है कि कौल  
पतिमृत-धर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थी। स्त्रियों  
इस प्रसङ्गसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कर्त्तव्यनिष्ठा दशरथजी रामके वियोगमें ग्याहुब है, जान  
पान छूट गया है, मृत्युके चिह्न प्रवध रीत वहाँ  
लगे हैं, नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है, ऐसे  
अवस्थामें धीरज धारण कर अपने दुःसहको मुला श्रीरामके  
माता कौलत्या जिसका प्रायाधार पुत्र वधुसहित बनवा  
हो चुका है, अपने उपरदायित्व और कर्त्तव्यको समझती हुई  
महाराजसे कहती है—

नाय ससुप्ति मन करिय विचारः । रामवियोग यद्यपि अघर ॥  
करनधार तुम अवध जहाजू । चक्रेउ सकल प्रिय पथिक समान् ॥  
धीरज धरिय तो पादय पारः । नाहित नूडिहि सब परिवारः ॥  
जोमिय धरिय विनय प्रिय मोरी । रामलवनसिय मिलहि बढोरी ॥

धन्य ! रामजननी देवी कौलत्या ऐसी अवस्थामें हमें  
ऐसे आदर्श वचन कह सकती हो, धन्य तुम्हारे धैर्य, सत्य,  
पतिमन, विरवास और दुग्धारी आदर्श कर्त्तव्यनिष्ठाको !

वधु-प्रेम कौसल्याको अपनी पुत्र-वधु सीताके प्रति कितना वासव्य-प्रेम था, इसका विवरान नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है, जब सीताजी रामके साथ बन जाना चाहती है तब रोती हुई कौसल्या कहती है— मैं पुनि पुत्रवधु प्रिय पाईं । रूपरासि गुण सील सुहाईं ॥ नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाईं । राखहुँ प्राण जानकिहि लाईं ॥ पलैंग पीठ तजि गेट दिडोरा । सिय न दीन पगु अबलि कठोरा ॥ जिननमूरि जिमि जुगवति रहेऊँ । दीप बलि गहिँ टारन कहेऊँ ॥

जब सुमन्त भीसीता राम-रुद्रमणको वनमें छोड़कर अयोध्या आता है, तो कौसल्या अनेक प्रकार चिन्ता करती हुई पुत्रवधुका कुशल-समाचार पूछती है । फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती है तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती है 'बेटी! धूपसे खूबे हुए कमलके समान, मसले हुए कुसुमके समान, खलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा यह मलिन मुख देखकर मेरे हृदयमें जो दुःखरूपी अग्नीसे उत्पन्न शोकाग्नि है वह मुझे जला रही है ।'

यदि आज सभी सासोंका बर्ताव पुत्रवधुओंके साथ ऐसा हो जाय, तो घर-घरमें सुखका स्रोत बहने लगे ।

कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर समानमान नहीं मानती थी। उसका हृदय विशाल था । और प्रजाहित जब भरतजी ननिहालसे आते हैं और अनेक प्रकारसे विज्ञाप करते हुए एवं अपनेकी धिक्कारते हुए, सारे अनयोका कारण अपनेको मानते हुए जब माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा बठकर भाँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा लेती है और देसा मानती है मानो राम ही लौट आये । उस समय शोक और स्नेह उसके हृदयमें नहीं समाता, तथापि वह बेटे भरतको पीरज चँपाती हुई कोमलवाणीसे कहती है—

अजहुँ नचु मलि पीरज घरहु । कुसमय सनुसि लोक परिहरहु । अनि मानहु हिय हानि गलानी । काल करमगति अवष्टित जानी ।

× × ×  
राम प्रानतें प्रान तुम्हारे । तुम रघुकीहि प्रानतें प्यारे ॥ विनु भिष चारु सरइ हिम अगो । होइ बारिचर बारि विरागो ॥ मये म्यान बर मिटइ न मोहु । तुम रामहि प्रति कृत न होहु ॥ मत तुम्हारे इह जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख मुगति न रहहीं ॥ अस कहि मनु भरत हिय लाये । यन पय सवहि नयन जठ लाये ॥

कैसे आदर्श वाक्य हैं रामकी माता ऐसी न हो तो और कौन हो ?

महाराजकी दाहक्रियाके उपरान्त जब वसिष्ठजी और नगरके लोग भरतको राजगद्दीपर बैठाना चाहते हैं और जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते तब माता कौसल्या प्रजाके सुखके लिये धीरे-धीरे धरकर कहती है—

× × × । पूत पथ्य गुफ आयसु अहई ॥ सो आदरिय करिय हित मानी । तजिय विवाद काल-गति जानी ॥ बन रघुपति सुरपुर गगनाहु । तुम्ह गहि मौँति तत कदराहु ॥ परिजन प्रजा सचिव सब अन्ना । तुम्हही मुत सबकहँ अवलम्बा ॥ लखि विधि नाम कालु कठिनहि । धीरजु घरहु मनु बलि जई- ॥ सिर धरि गुफ आयसु अनुसरहु । प्रजा पालि परिजन दुख हरहु ॥

प्रजाहितका इतना ध्यान श्रीराम-माताको होना ही चाहिये । माताने रामके वन जाने समय भी कहा था 'मुझे इस बातका तनिक भी दुःख नहीं है कि रामको राज्यके बदले छान बन मिल रहा है, मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि रामके विना महाराज दशरथ, पुत्र भरत, और प्रजाको महान् श्रेय होगा —

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेसु । तुम्ह विनु भरतहि भूषतिहि, प्रजहि प्रचण्ड कलेसु ।

पुत्र-प्रेम कौसल्याको पुत्रवासलता आदर्श है । रामके वनवाससे कौसल्याको प्राथान्त श्रेय है परन्तु प्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मरक्षाके लिये कौसल्या उन्हें रोकती नहीं, बरं कहती है—

न शक्यसे वारनंतुं गच्छेदनि रघूत्तम । शीघ्र च निनिबर्त्सव वर्त्सव च सतां क्रमे ॥ यं पालयति धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च । स वै राघवशार्दूल धर्मस्तामभिरष्टु ॥  
( बा० रा० २ । २५ । २-२ )

बेटा ! मैं तुम्हें इस समय वन जानेसे रोक नहीं सकती । तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ । सत्युपयोगीके मार्गका अनुसरण करता रह । तू प्रेम और नियमके साथ जिस धर्मका पालन कर रहा है वह धर्म ही तेरी रक्षा करे । इस प्रकार धर्मपर दृढ़ रहने और महात्मायोंके सम्मार्गका अनुसरण करनेकी शिष्या देती हुई माता पुत्रकी मंगलरक्षा करती है और कहती है—

पितु बन्देन मातु बन्देनी । मन-मग्न जगन-मोहक सेनी ।  
अन्तःकृति मुपदि बन्वात् । बन्दिनेति द्विगु होत ह्यत् ॥

काव्यपरायणा धर्मगीता त्यागमूर्ति माता कौसल्या  
हरामकार पुत्रको राक्षस बनमें भेज देती है । विरोगके  
दारानलमें हृदय दहन हो रहा है परन्तु पुत्रके धर्मकी रेक  
और उसकी हर्ष-शोकरहित मुग्ध-दुःख शून्य आनन्दमयी  
मन्त्राल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवात्मिक  
समझती है । यह है सच्चा प्रेम ! यहाँ मोहको तनिक भी  
गुनाहता नहीं । भारतजीके सामने कौसल्या गौरवके गाय  
प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती है, - 'वेदा,  
महाराजने तेरे अर्धे भाई रामको राज्यके बड़े बन्धुवाग दे  
दिया परन्तु इससे रामके मुखपर झुप भी आनना नहीं  
भायी-

पितु आयतु भूषन-वसन तात । तजे रघुवीर ।

विसमय हरष न हृदय क्लृपि पहिरे मलकल-धौर ॥

मुल प्रसव मन राम न रोगू । सबकर सब विधि करि परितोषू ॥

चले विपिन मुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम-चरन अनुरागी ॥

मुनतहि लखन चले उठि साया । रहहि न जतन विधे रघुनाया ॥

तब रघुपति सबही सिर नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका मधुर मुखका  
देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है । चौदह साल बड़ी ही  
कठिनतासे श्रीरामके ध्रुव सत्य बधनोंकी आशानपर पीतते हैं ।  
लज्जा विजयकर श्रीराम जब अयोध्या लौटते हैं और जब  
माताको यह समाचार मिलता है तो वह सुनते ही हसप्रकार  
दौड़ती है, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बत्स जनु धेनु खवाई ॥

जनु धेनु बालक बत्स तजि

गृह, चरन नन परबस गई ।

दिन अन्त पुर खल सवत मन

हुंकार करि धावति गई ॥

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-  
समुद्रकी मर्यादा टूट जाती है, वह पुत्रको हृदयसे लगाकर  
बार-बार सिर घुंघती है और कोमल मलक और मुखमण्डल  
पर हाथ फेरती एवं टाँटकी अगाकर देखती हुई मनमें बहुत  
ही आश्चर्य करती है कि मेरे इस कलके कोमल कमनीय जरासे  
बच्चेने राखन-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे मारा होगा ।

मेरे राम बचसग तो बड़े ही सुशुमार हैं, वे मारने  
राखनोंके जैसे जीते होंगे !

कौसल्या पुत्रि पुनि रघुवीरि । विचारि हृत्पिपुन-लक्ष्मी ।

हरन विचारि बरि बग । कल मरि संकलि म्वा ॥

अनि सुशुमार जुगुन मन करे । निनिषा सुख मरुत मरे ॥

माता । क्या तुम इस बातको भूल गयीं कि वे तुम

'सुशुमार बरे बाबू' कीवार्थकेमे ही त्रिभुवनमें

विगाइनेवाले हैं । इन्हींकी मायाने सब कुछ हो रहा ।

ये तो तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे दाई पुत्ररूपमें प्रकट हो

जगत्का कल्याण करने हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं

माता तुम धन्य हो !

कौसल्याको अपने धर्मगुरुनका कल मित्रता-हैतु

रूप जीवन सुखमय बीतना है और अन्तमें वह अग्नि

द्वारा सायजान प्राप्त कर—

रामे सदा हदि प्यदा जिरा संमरकधनन् ।

अतिक्रम गतिनिशोऽप्यार परमो गतिन् ॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धु  
को छिन्न कर सात्विक, राजस, तामस तीनों गतियों  
साँधकर परमपदको प्राप्त हो जाती है !

## रामके हृदयमें कौन बसते हैं ?

ताजि मदमोह कपट छल नाना ।

करौ सघ तोहि साधु-समाना ॥

जननी जनक बंधु सुत दारा ।

तनु धन मवन सुहृद परिवारा ॥

सबके ममता-ताग बटोरी ।

मम पद मनहि पौष चटि डोरी ॥

समदरती इच्छा कछु नाही ।

हरष सोक मय नहि मन माहीं ॥

अस सज्जन मम उर बस कैते ।

लोमी-हृदय बसे धन जैसे ॥

# रानी सुमित्रा

( लेखक-पं० श्रीजीवनशङ्करजी यादविक पद० १० )



स्वामी तुलसीदासजीने अपनी रामायण-  
में कई श्राद्ध चरित्रोंका चित्रण कर  
अपनी अद्भुत काव्य शक्तिका परिचय  
दिया है। महापुराणोंके लिये चित्रपट  
भी विशाल होना चाहिये, इसीलिये  
महाकाव्यके बिना उनका गुणगान नहीं

सकता। परन्तु कुछ पात्र रामायणमें ऐसे भी हैं जिनका  
चरित्र बड़ी सूक्ष्मरीतिसे किया गया है। ताबीजी तत्वीरोंमें  
चेकराकी चतुराई बारीकीमें होती है। कला-प्रवीण कौरव  
देवानेके लिये अपना काम जान-बूझकर कठिन बना देता है,  
और फिर अपने प्रयासमें सफलता प्राप्तकर कृतकर्ष्य होता है।  
गोस्वामीजीने रानी सुमित्राका वणन बहुत ही संक्षेपमें किया है  
परन्तु उसमें कोई बात छूटने नहीं पायी। चित्रपट बहुत ही  
श्रेया है, इसीलिये बड़ी बारीकीसे काम लिया गया है।  
प्रत्यन्त अल्प सामग्रीका आश्रय लेकर कौरव दिखाना  
साधारण कवियोंका काम नहीं है।

सुमित्रा कौसल्याकी नाई पदरानी नहीं है और न कैकेयी-  
की तरह राजा दशरथकी मियतमा है। तिसपर भी यह माननेका  
कोई कारण नहीं कि राजा उसके प्रति उदासीन है। रानी  
ही स्वभावसे मिल-भाषिणी है और सांसारिक प्रपंच और  
भ्रमोंसे अलग रहना पसन्द करती है। सारे नगरमें राम-  
बनवासकी बात फैल गयी, हाहाकार मच गया परन्तु उसको  
कैकेयीके कौतुकका हाल ही नहीं मालूम ! उसको सब बातें  
जन्मजन्मजन्मसे मालूम होती हैं जब ये स्वयं श्रीरामके साथ बन  
जानेकी आज्ञा मांगने आते हैं। जन्मजन्मजन्मसे हाल सुनकर—  
गई सदाहि सुनि बचन कटेरा। मृगी देखि जनु दब चहुँओरा ॥

बात बहुत बड़बुकीभी और सुमित्राको अब पता चला।  
उसकी दशा उस हरिणीकी-सी हो गयी जो चारों ओर जंगलकी  
आगमें फिर गयी हो और भागका पत्र भी लूच फँस जानेपर  
लगता हो। स्वभावतः सुमित्रा कोई उपाय सोचने लगी कि  
कैकेयीकी लगायी हुई आगसे परिवार और पुरजनोंकी किसी  
प्रकार रक्षा हो सके। धवाकू होकर सोचने लगी और धूम्र  
ही परिस्थितिके समरूप गयी और भावीका चित्र उसकी  
आँखोंके सामने धरा गया। गोस्वामीजीने सुमित्राके मनोभावों-

के उमड़ते समुद्रकी एक ही दोहेमें कह दिया है। गागरमें  
सागर भर दिया है—

समुद्रि सुमित्रा राम-सिय, रूप सुसील सुभाव।

नृप सेनेह हखि पुनेउ सिर, पापिन कीन्ह बुदाव ॥

राम-जानकीकी युगल मूर्ति बन जाने योग्य नहीं। उनकी  
सुकुमारता, माधुर्य और रूपराशि साधारण नहीं है। उनका  
सौन्दर्य ऐसा है—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करहीं ।

इनको बन भेजना मानो कमलको भाड़में भूजना है,  
यह भी नहीं कि केवल शरीरकी सुकुमारता ही हो, मनकी भी  
कोमलता अतुलनीय है। उनसे कोई अपराध गुरुजनोंके  
प्रति बन ही नहीं सकता। क्योंकि भाइयोंमें—

चारिउ सील रूप गुनधामा। तदपि अधिक सुख-सागर रामा ॥

और श्रीरामजीको सभी जानते हैं कि ये हैं—

दिया विनय निपुन गुन सील ।

तो सुमित्राके लिये यह धारा करना तो ब्यर्थ ही है कि  
श्रीराम स्वयं बन जानेको मना कर दें। और फिर उनका  
स्वभाव भी कैसा है—

जाउ सुमाउ अरिहि अनुकूल। सी किमि करहि मातु प्रतिकूल ॥

और—

कहनामय मृदु राम मुगाऊ।

कैकेयीका जरासा दशरथ पावेंगे तो कौरव बन को प्रसन्न  
होकर थल देंगे। इस प्रकार सुमित्राने विचारकर देख लिया  
कि श्रीराम-जानकीका सौमन्य ही कैकेयीको सहायक हो गया  
है। श्रीरामजी कैकेयीसे कह चुके हैं—

सुन जननी सेउ मुद मुद माणी। जो पितु-मातु बचन अनुराणी ॥

फिर कौन उपाय काम दे सकता है ? इसका परिणाम यह  
होगा कि राजा दशरथ जो बिना राम-दर्शनके जी नहीं  
सकते, माथ छोड़ देंगे। शनियोंको वैधव्य दुःख प्राप्त  
होगा। यह समझकर सुमित्रा और भी थ्याहुल हो उठी।

एक सद्बोध सूक्त गयी, यदि सुमित्रा और कौसल्या  
दोनों मिलकर श्रीरामको आज्ञा दें कि बनको नहीं जाना  
तो क्या होगा ? श्रीरामको दोनों मिलकर रोक सकेंगी,  
कैकेयीविमाता है कैसे ही सुमित्रा विमाता है ? दोनों समान  
हैं। यदि दशरथ बन जानेको कहते हैं और कौसल्या रोक्की

है तो नीतिके अनुसार श्रीरामको माताकी आज्ञा विशेषरूपसे पालनीय होगी। धन है—

पितुर्देशगुणामाता गौरवेणातिरिच्यते ।

मातुर्देशगुणामान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥

यही विचारकर कौसल्याने भी श्रीरामसे कहा था—

जो केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जहु जानि बड़ि माता ॥

जो पितु-मातु कहैउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥

यदि दशरथकी आज्ञा बन जानेकी है तो कौसल्या उसका विरोध कर सकती है और दशरथ तथा कैकेयी दोनोंकी राय है तो श्रीरामका बन-गमन सर्वथा उचित है ।

इसी प्रकारका भाव सुमित्राके मनमें थाया कि कौसल्या और वह स्वयं श्रीरामको जानेसे रोक दें और यह तरीका सब फल भी हो सकती थी । सुमित्राको सूझी तो सही परन्तु इसमें भी अड़धन था पड़ी । राजपरिवार कैकेयीकी कृपासे फला फूला है । जब कैकेयीने अपनी उंगलीसे रथचक्रको सँभाला था और राजा दशरथके प्राण लक्ष्मणमें बचाये थे तो सब रानियोंके सौभाग्यकी भी उसीने रक्षा की थी । कैकेयीके कारण ही उनको पुत्रवती होनेका समय थाया था । तो फिर कैकेयीको पूर्ण अधिकार है कि उसकी कृपासे जो वस्तु दूसरोंको प्राप्त है उसपर अपना पुनः अधिकार कर ले । सुमित्रा यह सोचकर विरह हो जाती है और समझ लेती है कि श्रीरामको बन-गमनसे रोकनेका कोई उपाय नहीं, वैषम्य-दुःख प्रवरचम्पावी है, राजा दशरथ प्राण छोड़ ही देंगे और उसकी अपनी पृथा कालवधमें—

मृगी देसि दद जनु चतु भेरा—

—की सी है । क्योंकि कैकेयी पापिनने बचनेका कोई कसर ही नहीं छोड़रक्ता । देगा बार दिया है कि उसका अपाव ही नहीं, उत्तीघ्न नाम कुदाव है किमें आकाकी हो और जिगम्व उताव न बन सके । कैकेयी करने पुरदानका देगा बरका होगी वह बाव किर्मापी कल्पवधमें नहीं आ सक्ती थी ।

सुमित्राके मनमें वे सब चारों बिजलीकी तरह दौड़ गयी । अपनी बेचर्याको वह अच्छीभाँति समझ गयी । लक्ष्मणकी कोर उसका अपाव भी अपनी न जाने पाया था । परन्तु लक्ष्मणकी कल्पवध में । उसको तो विद्या भीगकर अंगानके बन्ध हीव अनेकी पुत्र कर्णी हुई थी । आज्ञाकी अलक्ष्मण्य और अलक्ष्मण्यको वे समझ न

सके । अन्त्याय-पूय अर्थ लगाकर उसकी चिन्ताअत्र प्रस का कारण लक्ष्मण्यजी समझे—

लगन रखेउ भा अनरथ आजू । यहि सनेह नस करव अजाजू ।

माँगत विदा समय सकुचाही । जाइ संग निवि कहहि कि नहीं ।

धन्य है लक्ष्मण्यजी, तुम भी अपनी माताके पल स्वभावको नहीं पहचान सके और उसपर क्रम मन-ही-मन खगाने लगे ! 'सनेहबस' तो वह प्रस परन्तु इस समय राम-जानकीका ध्यान है, गुहारा नहीं ।

सुमित्रा धीर गम्भीर पत्राणी है । जब कोई राज नहीं सूझा तो—

धीरज घरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहद नोली मूड नती ॥

यही धैर्य आर्यमहिलाओंकी शोभा है । लक्ष्मण्यजी माँपर व्यर्थ सन्देह किया । जब श्रीरामने साय से चलेने अनुमति दे दी थी तो कहा था—

माँहु विदा मातुसन जाई । आबहु बेगि चहु न नती ॥

अर्थात् लक्ष्मण्यजीके जिये बन जाना निश्चय हो गया था । मातासे आज्ञा लेना एक ज्ञानकी कारवाही गयी थी । माता रोकती भी तो वे कब माननेवाले थे । परन्तु सुमित्रा लक्ष्मण्यजीसे भी अपने आदर्श चरित्रमें न गयी । लक्ष्मण्यजी तो संकोच ही करते रहे और उसने निव मगिे उनको बन जानेकी आज्ञा दे दी और लक्ष्मण्यजी उपदेश भी दिया ।

सुमित्राका उपदेश अलौकिक है । नीति, धर्म, धर्म और वात्सल्यभाव उसमें सभी मल्लकरहे हैं । एक पक्ष टक में उच्च भावना, सहृदयता टपक रही है । कैकेयीके तिर एक भी अपराण्ड वह नहीं कहती । 'पापिन कोन्द कृपा केवल मनका भाव है । लक्ष्मण्यजीके सामने यदि कैकेयी जिये कट्ट बाण्य बोलती तो उसको उपदेश करनेका कर्तव्य ही क्या रहता ? विमाता तो मातासे अधिक मान्य ।

सुमित्रा नीतिमें सूत्र निपुण्य है । समयपर उचित काल कोजना धीर उचित कार्य करना उसका स्वभाव है । न जाननी है कि यदि लक्ष्मण्यजी अयोध्यामें रह गये तो श्रीरामके साथ बनको न गये तो भरतजीके जानेका विरोध होनेको पूर्ण सम्भावना है । लक्ष्मण्यजी तीने हैं, राने कल्पो कोच भा आगा है और तिया श्रीरामके राने कोई अरबमें दबा नहीं सक्ता । ऐसी अचर्यामें लक्ष्मण्य

न बन जाना नीतिको दृष्टिसे आवश्यक है। यह भी एक प्रारथ है कि सुमित्रा स्वयं उनको भाखा दे रही है।

सुमित्राने उपदेश बड़े संप्रेषमें किया है। उसमें राम-दहिमा वर्णित है और सेवक-धर्म भी बताया है। परन्तु उसमें सुमित्राके चरित्रका जो दिग्दर्शन होया है वही विशेष रीतिले देखने योग्य है। एक एक शब्दने सुमित्राके हृदयके भीतरी-भाव कविने व्यक्त किये हैं। जो श्रीराम बन जा रहे हैं तो कस्योप्यासे भी बड़कर रहने योग्य स्थान बन ही है।

जो वै राम सीय बन जाती। अबच तुम्हार काज कछु नहीं ॥

और बन जाना है सो केवल राम-जानकीके लिये ही नहीं, बल्कि—

—रेहु तज जग जीवन लाहु

यह अन्तर तो लक्ष्मणजीको बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है जो सहजमें सेवा-कार्य बन सकेगा। सुमित्राजी तो यहाँ तक कहती हैं—

तुम्हारेहि भाग राम बन जाही। दूसर हेतु तज कछु नहीं ॥

राग, रोष, ईर्ष्या, मद्, मोहके त्यागनेकी शिक्षा माता देती है। अपने कल्याणके लिये नहीं, बल्कि हस्तलिये कि इनके रहते सेवा-धर्म ठीक नहीं निभ सकता।

सकल प्रकार निकार विहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥

लक्ष्मणके हितके लिये हमसे बड़कर और कोई उपदेश माताकी समझमें नहीं आता।

अहि न राम बन लाहि कहेसु। सुत सोइ करेहु रई उपदेशु ॥

यही आदिने अन्ततक आदेश दिया। यह नहीं समझना चाहिये कि राम-भक्तिके कारण लक्ष्मणजीके प्रति सुमित्राका वात्सल्य-भाव आता रहा है। सुमित्राको लक्ष्मणजीकी चिन्ता क्यों होने लगी जब राम-जानकी उनके साथ हैं। वे धर्मपुत्री हैं सुमित्राको सब प्रकारसे शान्ति है। उनके कहोंकी वह चर्चा तक नहीं करती, क्योंकि—

तुम कहें बन सब भौंति सुभासु। संग चितु-भानु राम-सिय जासु ॥

कैकेयी और सुमित्राके स्वभाव और आदर्शकी तुलना गोस्वामीजीने बड़ी त्वष्टरलीसे कथित की है, दोनोंहीमें वात्सल्य-भाव बड़ा प्रबल है। एक श्रीरामका निर्वाचन कर

और प्रतिघातिनी बन कर भी अपने पुत्रको राग्य दिलानेकी चेष्टा करती है, दूसरी अपने पुत्रको जीवन सफल करनेका अवसर पाकर स्वयं निर्वासित करती है और श्रीरामकी सेवाके लिये उसे न्यौद्धार कर बाजती है, दोनों रानियाँ नीतिमें बड़ी नियुक्त हैं। कैकेयीने अपना कार्य साथनेमें यही कुटिलनीति और बुद्धिमानीसे काम लिया और सुमित्रा गम्भीरभावसे सोच-समझकर जो नीतिपूर्ण बात है उसके करनेमें सन्निक भी नहीं शिस्तकती। एक अल्पन्त निरुह है परन्तु भरत-जैसे साधुकी जननी है। दूसरी स्वयं शान्त स्वभाव है पर जन्म देती है सीखे स्वभाववाले लक्ष्मणजीको। दोनों अपनी अपनी धुनकी पकौ हैं। कैकेयीको कोई समझ-बुझाकर अपनी बातसे टका नहीं सकता और सुमित्राको भी अपने कर्तव्य-पालनमें किसीकी अपेक्षा नहीं। उसका विचार दृढ़ है और कर्तव्य-यप निर्दिष्ट है। कैकेयी अपने स्वार्थ और वात्सल्य-भावके पैगको रोक नहीं सकती। परिणाम कुछ भी हो, उसकी यात होकर रहे, यही उसका लक्ष्य है। सुमित्रा धर्म, नीति और भक्तिके सामने वात्सल्य-भावको रूँचा दर्जा नहीं देती। पुत्र-प्रेमकी भयांदा धर्म और नीति है। जिस स्नेहके कारण धर्म बूधे, वह स्नेह नहीं। हृत्तीलिये लक्ष्मणजीको बन भेजकर सुमित्राने माने कैकेयीके पापका मायशक्ति कर लिया।

सुमित्राके उपदेशमें एक बात की-समाजके लिये बड़ा जोर देकर कही गयी है। और वही बात सारभूत भी है। सुमित्राका हृदय करता है—

पुत्रपती जुबती जग सोई। रुपवर मण्ड जासु सुन होई ॥

शैली माताएँ होंगी शैली सन्तान और उसीके अनुसार आति। यदि माताएँ अपनी सन्तानको वात्सल्यकाये ही धर्मकी शिखा देनी रहें तो वह भागे चलकर सहजमें धर्माचरणमें प्रवृत्त हो जाया करे। भगवताकी भक्तिमें मन लगाना कठिन न भाव्य हो। पापोंसे रचना भी सुगम हो जाय। माताएँ यदि अपना यह कर्तव्य याद रखें और उदात्त आचरण करें तो संसारमें सुख-शान्तिकी विशेष वृद्धि हो।

## सद्गुणवती कैकेयी



मायणमें महारानी कैकेयीका चरित्र सबसे अधिक बदनाम है। जिसने सारे विश्वके परमप्रिय प्राणाराम रामको बिना अपराध वनमें भिन्नवानेका अपराध किया, उसका पापिनि, कलङ्किनि, राक्षसी, कुलविनाशिनी कहलाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। समस्त सद्गुणोंके आचार, जगदाधार राम जिसकी छाँछोंके कटि हो गये, उसपर गालियोंकी बौछार न हो तो किसपर हो ? इसीसे लालों वर्ष भीत जानेपर भी आत्म जगत्के नरनारी कैकेयीका नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं और मौका पानेपर उसे दो चार अँधे-नीचे शब्द सुनानेसे बाज़ नहीं आते। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कैकेयी सर्वथा दुर्गुणोंकी ही खानि थी, उसमें कोई सद्गुण या ही नहीं। सच्ची बात तो यह है कि यदि श्रीराम-वनवासमें कैकेयीके कारण होनेका प्रसंग निकाल लिया जाय तो कैकेयीका चरित्र रामायणके प्रायः सभी स्त्री-चरित्रोंमें शायद बदकर रामका जाय। कैकेयीके राम-वनवासके कारण होनेमें भी एक बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसका उद्घाटन होनेपर यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामके धनन्य और अनुकूल भावोंमें कैकेयीकीका स्थान सर्वोच्च है। इस विषयपर आगे बालक वयामति विचार प्रकट किये जायेंगे। पहले कैकेयीके धर्म गुणोंकी ओर दृष्टि बालिये।

कैकेयी महाराज कैकेयी पुत्री और दशरथजीकी छोटी रानी थी। यह कैकेय अत्यन्त गुन्दरी ही नहीं थी, प्रथम अस्तीवी प्रतिभता और बिराहना भी थी। बुद्धिमत्ता, मरलता निर्भयता, दयालुता आदि सद्गुणोंका कैकेयीके जीवनमें सब विभाग था। हमने अपने प्रेम और सेवाभावसे महाराजके दरबार इनका अविचार कर लिया था कि महाराज नामों वरारिषोंमें कैकेयीको ही गणने अधिक मानते थे। कैकेयी वनि-सेवाके जिये सभी कुछ कर सज्जी थी। वह समय अरारार दशरथ देवनाथोंकी गदापनाके जिये अरारारार नामक राजस्ये बुद्ध करने गये। उग समय कैकेयीकी भी वनिसे सेवा अरारारमें गयी थी, आराम था जिये नहीं, सेवा और अरारार वनिदेवको के जिये। कैकेयीका अविचार और अरारार ही-

से प्रकट है कि उसने एक समय महाराज दशरथके सारथि भर जानेपर स्वयं बड़ी ही कुशलतासे सारथिका कार्य करने महाराजको संकटसे बचाया था। उसी युद्धमें दूसरी बार एक घटना यह हुई कि महाराज घोर युद्ध कर रहे थे इतने उनके रथके पहियेकी धुरी निकलकर गिर पड़ी। राजाको बातका पता नहीं लगा। कैकेयीने इस घटनाको देख निश्चय पतिकी विजयकामनासे महाराजसे बिना कुछ कहे। अतन्त धुरीकी जगह अपना हाथ डाल दिया और बड़ी भीतर बैठी रही। उस समय वेदनाके मारे कैकेयीके आँसूके काले पड़ गये, परन्तु उसने अपना हाथ नहीं हटाया। विकट समयमें यदि कैकेयीने बुद्धिमत्ता और सहनशीलता काम न लिया होता तो महाराजके प्राण बचने कठिन।

शत्रुओंका संहार करनेके बाद जब महाराजको घटनाका पता लगा तो उनके आश्चर्यका पार नहीं था उनका हृदय कृतज्ञता तथा आनन्दसे भर गया। वे धीरता और त्यागपूर्वक किया करनेपर भी उसके मनमें कभी अभिमान नहीं, वह पतिपर कोई एहसान नहीं करती महाराज वरदान देना चाहते हैं तो यह कह देती है कि तुम तो आपके प्रेमके सिवा अन्य कुछ भी नहीं चाहिये। महाराज किसी तरह नहीं मानते और दो वर देनेके जिये। करने लगते हैं तब देवी-सेवायात्रा 'आचरयक होनेपर ही पूर्णगी' कहकर अपना पिण्ड तुम्हा लेती है। उसका यह ही त्याग सर्वथा सराहनीय है।

भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये हैं। पीछेते महाराज वैद्यमासमें श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी की, कितनी ही कारवासे हो, उस समय महाराज दशरथने इस अरार अल्पवयमें भरत और शत्रुघ्नको बुलानेकी भी आचरयक नहीं समझी, न कैकेयराजको ही निमन्त्रण दिया था। कहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय महाराज इतने ने इतीके द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका अरारार मान लिया था। परन्तु शत्रुघ्नकी प्रथा और श्रीरामके ही अधिक अनुराग होनेके कारण अरारार गुवाजना अरार करनेकी तैयारी कर ली गयी। यही कारण था कि रानी कैकेयीके मरकोंमें भी इस अल्पवयके रामाचार परछंते नहीं दृष्टे के। रानी कैकेयी अपना स्थान जानती थी, उसे पता था कि भरतको मेरे पुत्रके माने राज्याधिकार मित्रवा नहीं।

रानु कैकेयी इस बातकी कुछ भी परवा न कर राम-  
ज्याभिषेककी बात सुनते ही मरान्न होगयी। देव-मेरित  
बड़ी मन्थरासे आकर जब उसे यह समाचार सुनाया तब  
ह धानन्यमें डूब गयी। वह मन्थराको पुरस्कारमें एक दिव्य  
रत्नम गहना देकर 'दिव्यभाभरण' तथै जुग्याये भरदी शुभम'  
इहती है—

इदं तु मन्यरे महामाल्यातं परमं प्रियम् ।  
पतन्मे प्रियमाल्यातं किं वा मूयः करोमि ते ॥  
रामे वा भरते वाहं विधेयं नोपलभ्यम् ।  
तस्मानुद्यमि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेचयति ॥

न मे परं किञ्चिदितो वरं पुनः

प्रियं प्रियाहं सुवचं वचोऽमृतम् ।

तथा ह्यवेषस्त्वमतः प्रियातरं

वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥

( वा०रा०२।७।३४ से ३६ )

'मन्थरे ! तूने मुझको यह बधा ही प्रिय संवाद सुनाया  
है, इसके बदलेमें मैं तेरा और क्या उपकार करूँ ? (यद्यपि  
भरतको राज्य देनेकी बात हुई थी) परन्तु राम और भरतमें  
मैं कोई भेद नहीं देखती, मैं इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ कि  
महाराज कइ रामका राज्याभिषेक करेंगे। हे प्रियवादिनी !  
रामके राज्याभिषेकका संवाद सुननेसे बड़कर मुझे धन्य  
कुछ भी प्रिय नहीं है। ऐसा अमृतके समान सुखप्रद वचन  
सब नहीं सुना सकते। तूने यह वचन सुनाया है, इसके लिये  
तू जो चाहे सो पुरस्कार मांग ले, मैं मुझे देती हूँ।'

इसपर मन्थरा यहनेको फेंककर कैकेयीको बहुत कुछ  
उरुया सीपा समझाती है, परन्तु फिर भी कैकेयी तो श्रीरामके  
गुणोंकी प्रशंसा करती हुई यही कहती है कि 'श्रीरामचन्द्र  
धर्मज्ञ, गुणवान्, संयतेन्द्रिय, सत्यव्रती और पवित्र हैं,  
वह रामके श्रेष्ठ पुत्र हैं, अतएव (इसारी कुलप्रथाके अनुसार)  
उन्हें सुवचन-पदका अधिकार है। दीर्घायु राम अपने भाइयों  
और सेवकोंको रिताकी तरह पालन करेंगे। मन्थरा ! ए ऐसे  
रामचन्द्रके अभिषेककी बात सुनकर क्यों दुखी हो रही है।  
यह तो अभ्युदयका समय है ऐसे समयमें तू जल क्यों रही  
है ? इस भावी कल्याणमें तू क्यों दुःख कर रही है ?

यथा वै भरतो मान्यस्त्वया मूयोऽपि राघवः ।

कौस्तुभतोऽतिरिक्तं स तु शुभोत्ते हि माम् ॥

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा ।

मन्यते हि यथात्मानं यथा आर्तस्तु राघवः ॥

मुझे भरत जितना प्यारा है, राम उससे कहीं अधिक  
प्यारे हैं, क्योंकि राम मेरी सेवा कौसल्यासे भी अधिक  
करते हैं। रामको यदि राज्य मिलता है तो वह भरतको ही  
मिलता है, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि राम सब भाइयों-  
को अपने ही समान समझते हैं (वा० रा० २।८।१४-१६)

इसपर जब मन्थरा महाराज द्धारयकी निन्द्याकर कैकेयी  
को फिर उभाड़ने लगी, तब तो कैकेयीने उसको बड़ी बुरी  
तरह फटकार दिया—

इदरी यदि रामे च बुद्धिस्तव समाप्ता ।

प्रिद्ध्यावशेदनेनैव कर्तव्यं तव पापिनि ॥

पुनि अस कचहु कहसि परफोरी । ती धरि जीम कड़ाउँ तोरी ॥

इस प्रसंगसे पता लगता है कि कैकेयी श्रीरामको कितना  
अधिक प्यार करती थी और उसे रामके राज्याभिषेकमें  
कितना बड़ा सुख था। इसके बाद मन्थराके पुनः कड़ासुनी  
करनेपर कैकेयीके द्वारा जो कुछ कार्य हुआ, उसे यहाँ  
खिलनेकी आवश्यकता नहीं। उसी प्रकारके लिये तो कैकेयी  
आज तक पापिनी और अनर्थकी मूलकारबारुपा कहलाती  
है। परन्तु विचार करनेकी बात है कि रामको इतना चाहने-  
वाड़ी, कुलप्रथा और कुलकी रचाका इमेशा फिन्न रखनेवाड़ी,  
परम सुशीला कैकेयीने राज्यकोभसे ऐसा अनर्थ क्यों किया ?  
जो योड़ी देर पहले रामको भरतसे अधिक प्रिय बतलाकर  
उनके राज्याभिषेकके सुसंवादपर दिव्याभरण पुरस्कार देती  
थी और राम तथा द्धारयकी निन्दा करनेपर, भरतको राज्य  
देनेकी प्रतिज्ञा जाननेपर भी, मन्थराको 'परफोरी' कहकर  
उसकी जीम निकलवाना चाहती थी, वही जरासी देरमें  
इतनी कैसे घबल जाती है कि वह रामको चौदह सालके  
लिये बनके दुःख सहन करनेके लिये भेज देती है और भरत-  
के शील-स्वभावको जानती हुई भी उसके लिये राज्यका  
वरदान चाहती है ?

इसमें रहस्य है, यह रहस्य यह है कि कैकेयीका  
जन्म भगवान् श्रीरामकी लीलामें प्रधान कार्य करनेके  
लिये ही हुआ था, कैकेयी भगवान् श्रीरामको परमज्ञ  
परमात्मा समझती थी और श्रीरामके लीलाकार्यमें सहायक  
बननेके लिये उसने श्रीरामकी रचिके अनुसार यह जहरकी  
घूँट पीयी थी। यदि कैकेयी श्रीरामको बन भिन्नरानेमें कारण  
न होती तो श्रीरामका लीला-कार्य ही सम्पन्न होता।



न सीताका हरण होता और न राक्षसराज रावण अपनी सेनासहित मरता। रामने अपतार धारण किया था 'दुष्टगों-का विनाश करके साधुओंका परिप्राय करनेके लिये।' दुष्टोंके विनाशके लिये हेतुकी आवश्यकता थी। बिना अपराध मर्यादापुरुरोचाम धीराम किसीपर आक्रमण करने क्यों जाते ? आजकलके राग्यलोभी लोगोंकी भाँति वे अजरदस्ती परस्वापहरण करना तो चाहते ही नहीं थे। मर्यादाकी रक्षा करके ही सारा काम करना था। रावणको मारनेका कार्य भी दयाको लिये हुए था, मारकर ही उसका उदार काना था। दुष्टकार्य करनेवालोंका बध करके ही साधु और दुष्टोंका दोनोंका परिप्राय करना था। साधुओंका दुष्टोंसे बचाकर सद्गुणदेशसे और दुष्टोंका कालमूर्ति होकर मृत्युरूपसे—एक ही वारसे दो शिकार करने थे। पर इस कार्यके लिये भी कारण चाहिये, वह कारण था सीताहरण। इसके सिवा अनेक राग-विरदानोंको भी सचा करना था, पहलेके हेतुओंकी मर्यादा रखनी थी, परन्तु बन गये बिना सीताहरण होता कैसे ? राज्याभिषेक हो जाता तो बन जानेका कोई कारण नहीं रह जाता। महाराज दशरथकी मृत्युका समय समीप आ पहुँचा था, उसके लिये भी किसी निमित्तकी रचना करनी थी। अतएव इस निमित्तके लिये देवी कैकेयीका चुनाव किया गया और महाराज दशरथकी मृत्यु, एवं रावणका बध, इन दोनों कार्योंके लिये कैकेयीके द्वारा राम-वनवासकी व्यवस्था करायी गयी।

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

'भगवान् सबके हृदयमें स्थित हुए समस्त भूतोंको मायासे यन्त्रारूढकी तरह घुमाते हैं' इसी गीतावाक्यके अनुसार सबके नियन्ता भगवान् धीरामकी ही प्रेरणासे देवताओंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवी कैकेयीकी बुद्धि फेर गयी और जब उसका पूरा असर हो गया, (भावीवश प्रतीति उर भारं) तब भगवद्विष्णुनुसार बरतनेवाली कैकेयी

● देवताओंने सरस्वतीको यह कहकर भेजा था कि—

'मन्धरां प्रविशस्वती कैकेयी व ततः परम्।

ततो विभे समुत्पद्ये पुनरेहि दिवं शुभे ॥'

पहले मन्धरामें प्रवेशकरके फिर कैकेयीकी बुद्धिमें प्रवेश करना और रामके अभिषेकमें विघ्नकरके बापस बैठ जाना।

(अध्यात्मसमाख्यान)

भगवान्की मायाशर पेगा कार्य कर बैठी, जो ब्रह्मण होनेपर भी भगवान्की बीजाकी सम्पूर्णताके लिये ब्रह्मण आधारपक था।

अप प्रभ यह है कि 'जब कैकेयी भगवान्की परम धी, प्रभुकी इस आभ्यन्तरिक गुणलौकिके प्रति प्रकाशमें भी धीरामसे आभ्यन्त प्यार करती थी, राममें परिवारमें उरकी बड़ी मुष्णानि थी, सारा इ कैकेयीसे चुन था, फिर भगवान्ने उसीके द्वारा भीषण कार्य कराकर उसे कुटुम्बियों और ब्रह्मणानि द्वारा विरहृत, उपद्रवात् अपमानित और इतिहासमें स लिये खोफ-निन्दित क्यों बनाया ? अब भगवान् ही का प्रेरकहैं, तो साथी सरला कैकेयीके मनमें सरस्वतीकेद्वारा प्रेरण ही क्यों करवायी, जिससे उसका जीवन ख लिये दुखी और नाम सदाके लिये बदनाम हो गया हसीमें तो रहस्य है। भगवान् धीराम साक्षात् सच्चिदान परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुरागिणी सेविषा भी जो सबसे गुह्य और कठिन कार्य होता है उसको सर सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है, और हर कोई उसे करनेमें ही समर्थ होता है। वह कार्य तो किं अत्यन्त कठोरकर्मों, घनिष्ठ और परम प्रेमीके द्वारा करवाया जाता है। खास करके जिस कार्यमें कर्ताकी नामी हो, ऐसे कार्यके लिये तो उसीको चुना जाता है, के अत्यन्त ही अन्तरंग हो। रामका लोकापवाद मिटानेके लिये श्रीसीताजी वनवास स्वीकार करती हुई सन्देश कइती हैं कि, मैं जानती हूँ, कि मेरी शुद्धतामें आपको सन्देह नहीं है, केवल आप लोकापवादके मयसे मुझे त्याग रहे। तथापि मेरे तो आप ही परमगति हैं। आपका जोकाणन दूर हो, मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी शोक नहीं है।' यहाँ सीताजी 'रामकाण' के लिये कष्ट सहती हैं परन्तु

† कैकेयीके ऐसा करनेका एक कारण यह भी रहस्य जाता है कि 'कैकेयी जब लक्ष्मणनमें अपने पिताके घर थी, ११ वर्षों एक दिन एक कुरुप मादणको आया देणकर कैकेयीने उसके दिहगी उहायी थी और निन्दा की थी। इससे क्रुद्ध होकर वह तपस्वी मादणने कैकेयीको यह शाप दिया था कि 'तू अपने स्वामी अभिमानसे अन्धी होकर मेरे कुरुप वदनकी निन्दा करती है, इसलिये तू भी कुरुपा लौकी बातोंमें आकर ऐसा कर्म करेगी' जिससे जगहमें तेरी बड़ी भारी नाच निन्दा होगी।



न सीताका हरण होता और न राक्षसराज रावण अपनी सेनासहित मरता। रामने श्रवतार धारण किया था 'दुष्टूतों-का विनाश करके साधुओंका परिश्राय करनेके लिये।' दुष्टोंके विनाशके लिये हेतुकी आवश्यकता थी। विना अपराध मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम किसीपर आक्रमण करने क्यों जाते ? आजकलके राज्यलुभी लोगोंकी भाँति वे जबरदस्ती परस्पापहरण करना तो चाहते ही नहीं थे। मर्यादाकी रक्षा करके ही सारा काम करना था। रावणको मारनेका कार्य भी दयाको लिये हुए था, मारकर हो उसका उद्धार करना था। दुष्टकार्य करनेवालोंका बध करके ही साधु और दुष्टोंका दोनोंका परिश्राय करना था। साधुओंका दुष्टोंसे बधाकर सदुपदेशसे और दुष्टोंका कालमूर्ति होकर मृत्युरूपसे—एक ही धारसे दो शिकार करने थे। पर इस कार्यके लिये भी कारण चाहिये, वह कारण था सीताहरण। इसके सिवा अनेक शाप-वरदानोंको भी सच्चा करना था, पहलेके हेतुओंकी मर्यादा रखनी थी, परन्तु धन गये बिना सीताहरण होता कैसे ? रान्याभियेक हो जाता तो धन जानेका कोई कारण नहीं रह जाता। महाराज दशरथकी मृत्युका समय समीप आ पहुँचा था, उसके लिये भी किसी निमित्तकी रचना करनी थी। अतएव इस निमित्तके लिये देवी कैकेयीका चुनाव किया गया और महाराज दशरथकी मृत्यु, एवं रावणका बध, इन दोनों कार्योंके लिये कैकेयीके द्वारा राम-वनवासकी व्यवस्था करायी गयी।

ईश्वर सर्वमृतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वमृतानि यन्त्रारूढानि मानसा ॥

'भगवान् सबके हृदयमें स्थित हुए समस्त भूतोंको मायासे यन्त्रारूढकी तरह घुमाते हैं' इसी गीतानुसंगके अनुसार सबके नियन्ता भगवान् श्रीरामकी ही प्रेरणासे देवताओंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवी कैकेयीकी बुद्धि फेर गयी ॐ और जब उसका पूरा अस्तर हो गया, (आर्वाञ्ज प्रदति जर अर्ः) तब भगवद्विष्णुनुसार बरगनेवाली कैकेयी

• देवताओंने सरस्वतीके यह वरद्वर भेजा था कि—

'आजकल ब्रह्मण्यो कैकेयी व तपः कर्म।

सो विप्रे सन्नुपे बुनें विं हृदये ॥'

जबके कर्मोंमें प्रवेशके लिए कैकेयीकी बुद्धिमें प्रवेश करने और उसके अन्तर्हृदये विष्णुके बसने की अनुमति (अष्टावक्रावचन)

भगवान्की मायावश ऐसा कार्य कर बैठी, जो अल्पकाल होनेपर भी भगवान्की खीलाकी सम्युक्तके लिये बल आवश्यक था।

अब प्रश्न यह है कि 'जब कैकेयी भगवान्की परम शक्ति थी, प्रभुकी इस आभ्यन्तरिक गुहालीलाके प्रति प्रकाशमें भी धीरामसे अत्यन्त प्यार करती थी, रामने ही परिवारमें उसकी बड़ी सुख्याति थी, सात हजार कैकेयीसे पुरा था, फिर भगवान्ने उसीके द्वारा ही भीषण कार्य कराकर उसे कुटुम्बियों और श्रवणशिवों द्वारा तिरस्कृत, पुत्रद्वारा अपमानित और इतिहासमें दर्ज लिये लोकनिन्दित क्यों धनाया ? जब भगवान् ही उसे प्रेरक हैं, तो साध्वी सरला कैकेयीके मनमें सरस्वतीके द्वारा प्रेरणा ही क्यों करवायी, जिससे उसका जीवन खर्च लिये दुखी और नाम सदाके लिये बदनाम हो गया। इसीमें तो रहस्य है। भगवान् श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुयायिणी सेविका थी। जो सबसे गुह्य और कठिन कार्य होता है उसको सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है, और हर कोई उसे करनेमें ही समर्थ होता है। वह कार्य तो कि अत्यन्त कठोरकर्मों, धमिष्ठ और परम प्रेमीके द्वारा। करवाया जाता है। खास करके जिस कार्यमें कर्ताकी नामो हो, ऐसे कार्यके लिये तो उसीको चुना जाता है, अत्यन्त ही अन्तर्ग हो। रामका लोकापवाद मिटानेके लिए सीताजी वनवास स्वीकार करती हुई सन्देशा कर्ता हैं कि, मैं जानती हूँ, कि मेरी शुद्धतामें आपकी सती नहीं है, केवल आप लोकापवादके भयसे मुझे त्याग रही। तथापि मेरे तो आप ही परमगति हैं। आपका लोकापवाद पूरा हो, मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी शोक नहीं है। यहाँ सीताजी 'रामकाज' के लिये कष्ट सहती हैं तब

† कैकेयीके ऐसा करनेका एक कारण यह भी रहस्य जाता है कि 'कैकेयी जब लक्ष्मणनमें अपने पिताके घर थी, तब वहाँ एक दिन एक कुपुत्र प्राणलोकसे आया देखकर कैकेयीने उन्हें रिद्धि उपायी थी और निन्दा की थी। इससे मुझ होकर तपस्वी प्राणलोक कैकेयीकी यह शाप दिया था कि 'तू अपने लोके अभिमानमें लगी होकर मेरे कुपुत्र बदनामी निन्दा करती है। अन्तर्हृदय में ही कुपुत्रा कीकी शक्तोंमें आकर ऐसा कर्म करेगा' तबसे जगत्में तेरी बड़ी भारी नीच निन्दा होगी !





कैकेयीकी क्षमा-याचना ।  
क्षमस्व मम दोषात्पर्यं क्षमासागरहि साधवः ।  
परमात्मा सनातनः ॥

नकी बदनामी नहीं होती, प्रशंसा होती है। उनके विपत्तकी छात्रक पूजा होती है परन्तु कैकेयीका कार्य ससे अत्यन्त महात् है। उसे तो 'रामकाज' के लिये राम-तोषी मगधूर होना पड़ेगा। 'यावद्यज्ञदिव्याकौ' गालियाँ हनी पड़ेंगी। पापिनी, कलङ्किनी, कुलपातिनीकी उपाधियाँ हण करनी पड़ेंगी, वैषय्यका दुःख स्वीकारकर पुत्र और परनिवासियोंद्वारा तिरस्कृत होना पड़ेगा। तथापि 'राम-काज' जरूर करना पड़ेगा। यही रामकी इच्छा है और इस 'राम-काज' के लिये रामने कैकेयीको ही प्रधान पात्र चुना है। सोसे यह कलङ्का चिर टोका उसोके सिर पोता गया है। यह इसीलिये कि वह परमदा भीरामकी परम अन्तरंग मन्पात्री है, वह भीरामकी सीढामें सहायिका है, उसे दनानी-सुरगामीसे कोई काम नहीं, उसे तो सब कुछ सहकर भी 'रामकाज' करना है। रामरूपी सूत्रधार जो कुछ भी पाटें हैं, उनके नाटककी सांगताके लिये उनकी छात्रा-सुलार इसे सो वही खेल खेलना है, चाहे यह कितना ही क्रूर क्यों न हो। कैकेयी अपना पाटें बड़ा धृष्ट्या खेलती है। राम अपने 'काज' के लिये सीता और लक्ष्मणको लेकर सुरी-सुरी बनके लिये विदा होते हैं। कैकेयी इस समय पाटें खेल रही थी, इसलिये उसको उस सूत्रधारसे—नाटकके स्वामीसे—जिसके इंगितसे जगन्नाटकका प्रत्येक परदा पड़ रहा है और उसमें प्रत्येक क्रिया सुचारु रूपसे हो रही है—एकान्तमें मिलनेका अवसर नहीं मिलता। इसीलिये यह भरतके साथ बन जाती है और वहाँ भीरामसे—नाटकके स्वामीसे—एकान्तमें मिलकर अपने पाटेंके लिये पृथ्वी है और साधारण कीकी भाँति लीलासे ही बीजाभयसे उनको दुःख पहुँचानेके लिये जमा चाहती है परन्तु बीजाभय भेद खोजकर साफ कह देते हैं कि 'यह तो मेरा ही कार्य था, मेरी ही इच्छासे, मेरी मायासे हुआ था, तुम तो निमित्तमात्र थी, सुलसे भजन करो और मुक्त हो जायो।' यहाँका प्रसंग इस प्रकार है—जब भरत भीरामको और ले जानेका बहुत आग्रह करते हैं, किसी प्रकार नहीं मानते, तब भगवान् भीरामका रहस्य जाननेवाले मुनि वशिष्ठ भीरामके सङ्केतसे भरतको प्रलय ले जाकर एकान्तमें समझाते हैं—'पुत्र! आज मैं तुके एक गुप्त रहस्य सुना रहा हूँ। भीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इससे रावण-वधके लिये प्रार्थना की थी, इसीसे इन्होंने वरपत्रके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लिया है। भीसीताजी साक्षात् योगमाया है। भीलक्ष्मण शेषके अवतार हैं, जो

सदा भीरामके साथ उनकी सेवामें लगे रहते हैं। भीरामको रावणका वध करना है, इससे ये जरूर बनमें रहेंगे। तेरी माताका कोई दोष नहीं है—

कैकेयावरदानादि यद्यत्रिभुर भाषणम् ॥  
सर्वं देवदत्तं नोच्छेदेवं सा माययैक्यम्  
तस्मात्प्राग्रहं तत रामस्य विनिवर्तते ॥

(अध्यात्म रा०)

'कैकेयीने जो धरदान माँग और निष्ठुर वचन कहे थे, सो सब देवका कार्य था (रामकाज था) नहीं तो भला, कैकेयी कभी ऐसा कइ सकती? यतएव तुम राम-तो श्रयोप्या लौटा ले चलनेका आग्रह छोड़ दो।'

रास्तेमें भरद्वाजमुनिने भी संकेतसे कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत स्वया ॥  
राम प्रजाजनं ह्येतत्सुखोदकं भविष्यति ॥  
देवानां दानवानां च श्रवीणां भावितदमनान् ॥  
हितमेव भविष्यति रामप्रजाजनादिह ॥

(वा० रा० २।१२।११-३०)

'हे भरत, तू माता कैकेयी पर दोषारोपण मत कर। रामका बनवास समस्त देव दानव और ऋषियोंके परम हित और परम सुखका कारण होगा।' अब श्रीवसिष्ठजीसे स्पष्ट परिचय प्राप्त कर भरत समझ जाते हैं और भीरामको चरण-पादुका सादर लेकर श्रयोप्या लौटनेकी तैयारी करते हैं। इधर कैकेयीजी एकान्तमें भीरामके समीप जाकर झालोंसे धाँसुभोंकी धारा बहाती हुई व्याकुल हृदयसे—

प्राञ्जलिः प्राह हे राम । तव राजनिघातनम् ।  
कृतं मया दुष्टमिमा मायानेहितनेतसा ॥  
छम्बन् मम दीरगत्यं धमसासरादि साधकः ।  
त्वं साक्ष्यत्रिभुरव्यक्तः परमात्मा सनतनः ॥  
मायामानुषरूपेण मोहयस्वसिक्तं जगत् ।  
त्वयैव प्रेरितो लोकः कुस्ते साध्वसापुजा ॥  
त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम् ।  
यया श्रमि नर्तयौ नृबन्ति कुहकेष्टया ॥  
त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरुपिणी ।  
त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यता ॥  
पादि विश्वेश्वरानन्त । जगत्ताप नमोस्तु ते ।  
लिप्ति हेहमयं पाशं पुनर्विस्तदिगोचरम् ॥  
त्वज्जानामलस्यत्रेण त्वमहं शरणं गता ॥

(अध्यात्म रा०)

-इस मोड़कर बोली 'हे भीराम ! तुम्हारे शरणाभिनेकमें  
मैंने क्या किया था। उस समय मेरी बुद्धि देवताओंने विगाड़  
की थी और मेरा चित्त तुम्हारी मायासे मोहित हो गया था।  
अतएव मेरी इस दुष्टताको तुम क्षमा करो, क्योंकि साधु  
क्षमाशील हुआ करते हैं। फिर तुम तो साधुचरित्र हो।  
इन्द्रियोंसे अत्यन्त सनातन परामर्मा हो, मायासे मनुष्यरूप-  
धारी होकर समस्त विश्वको मोहित कर रहे हो। तुम्हींसे प्रेरित  
होकर लोग साधु-धरतापु कर्म करते हैं। यह साता विश्व तुम्हारे  
अधीन है, अस्वतन्त्र है, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं कर सकता।  
जैसे कद्रुपुत्रालियाँ न जानेवालेकी इच्छानुसार ही भाषती हैं, वैसे  
ही यह बहुरूपधारिणी गर्तकी माया तुम्हारे ही अधीन है।  
तुम्हें देवताओंका कार्य करना था अतएव तुमने ही ऐसा  
करनेके लिये मुझे प्रेरणा की। हे विश्वेश्वर ! हे प्रणव ! हे  
जगन्नाथ ! मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। तुम  
अपनी सार्वज्ञानरूपी निर्मल लीलाधार सञ्चारसे मेरी पुत्र-  
वित्तादि विषयोंमें छेड़रूपी फाँसीको काट दो। मैं तुम्हारे  
शरण हूँ।'

कैकेयीके स्पष्ट और सरल वचन सुनकर भगवान्ने हँसते  
हुए कहा—

यदाह मां महामाये नागृतं स्वयमेव तत् ।  
भवैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद् विनिर्गता ॥  
देवकार्यार्थे सिद्धपर्यमत्र दोषः कुतस्तव ।  
गच्छ त्वं हृदि मां निलं भावयन्ती दिवानिशाम् ।  
सर्वत्र विगतश्रेहा मद्भक्त्या मोक्षयसेऽचिरात् ।  
अहं सर्वत्र समदक् द्वेष्यो वा प्रिय पव ना ॥  
नास्ति मे कल्पकृत्वेव भजतोऽनुभजाम्यहम् ।  
मन्नाया मोहितपियो मामग्न मनुजाहृतिम् ॥  
सुखदुःखाद्यनुगमं जानन्ति न तु तत्त्वतः ।  
दिष्टया मद्गोचरं शानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥  
स्मरन्तीं शीघ्रं भवने लिप्यसे न च कर्मभिः ।

(अध्यात्म रा०)

हे महाभागो ! तुम जो कुछ कहती हो सो सत्य है इसमें  
किञ्चित् भी मिथ्या नहीं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये

मेरी ही प्रेरणासे उम समय तुम्हारे सुनने लिये बन  
ये। इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं। (तुमने तो मे  
काम किया है।) अब तुम जाओ और इन्द्रमें गद्गल  
करनी रहो। तुम्हारा अब इरादा सब ओरसे दृष्ट कराना  
मेरी हृदय भक्तिके कारण तुम शीघ्र ही मुक्त हो जाओगे  
गर्भ गमनादि हैं। मेरे न तो कोई द्वेष है और न द्वेष। तु  
भजता है, मैं भी उन्पको भजता हूँ। परन्तु हे माता !  
बुद्धि मेरी मायासे मोहित है वे मुझको तामने न क  
सुन-सु-गोंका भोग साधारण मनुष्य मानते हैं। यह  
श्रीमायाका विषय है कि तुम्हारे इन्द्रमें मेरा यह मन  
ताराज्ञान हो गया है। अपने धर्ममें रहकर मेरा काव  
रहो। तुम कर्मा कर्ममें अडि नहीं होओगी।'

भगवान्के इन वचनोंसे कैकेयीके स्थितिका पता ल  
है। भगवान्के कथनका सार यही है कि 'तुम महाभाग  
हो, भोग पाते तुम्हें अभागिनी मानते रहें। तुम निर्दोष हो,  
पाते तुम्हें दोषी समझें। तुम्हारे द्वारा तो यह कार्य मैंने  
करवाया था। जिन लोगोंकी बुद्धि माया-मोहित है,  
मुझको मामूली आदमी समझते हैं, तुम्हारे इन्द्रमें तो  
ताराज्ञान है, तुम धन्य हो !

भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर कैकेयी का  
और आश्चर्यपूर्ण इन्द्रपते वीरक्रोधात् साद्यत् प्रथम  
प्रदक्षिणा करके सानन्द भरतके साथ क्योम्बा लौट गयी।

उपर्युक्त स्पष्ट वर्णनसे यह अतीर्माति सिद्ध हो जाता  
कि कैकेयीने जान-बूझकर स्वार्थबुद्धिसे कोई अनर्थ नहीं कि  
था। उसने जो कुछ किया सो श्रीरामकी प्रेरणासंगत  
के लिये ! इस विवेचनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि कैके  
यहुत ही उच्चकोटिकी महिला थी। वह सरल, स्वार्थही  
प्रेममय, अहं-वासत्व-युक्त, धर्मपरायणा, बुद्धिमती, धार्म  
पतिव्रता, निर्भय वीरांगना होनेके साथ ही भगवान् श्रीराम  
अनन्य भक्त थी। उसकी जो कुछ चर्चा हमें हुई और हो रही  
है, सो सब श्रीरामकी अन्तरंग प्रीतिके निदर्शनरूप ही है।  
जिस देवीने जगत्के आधार, प्रेमके समुद्र अत्यन्त  
भरतको जन्म दिया, यह देवी कदापि तिरस्कारके योग्य  
हो सकती, ऐसी प्रातःस्मरणीया देवीके चरणोंमें आग  
अनन्त प्रणाम है।

—कैकेयी-नन्दन-पद-नन्दन

## श्रीशत्रुघ्नी



हामना श्रीशत्रुघ्नी भगवान् श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण सीतोंसे छोटे थे। श्रीसुमित्राजीके पुत्रपयान् पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें रामायणमें जो कुछ वर्णन आया है, उससे यही पता लगता है कि श्रीशत्रुघ्नी बहुत धोषा बोलनेवाले, अत्यन्त सेवस्वी, धीर, सेवापरायण, रामदासानुदास, सुपचाप काम करनेवाले, लक्ष्मणे सखुरप थे। श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न दोनों ही माइयोंने अपना जीवन परम पवित्र सेवामें बिताया परन्तु लक्ष्मणकी सेवास्य भी शत्रुघ्नीकी सेवाका महत्व एक प्रकारसे अधिक है। श्रीलक्ष्मण श्रीरामके सेवक हैं, परन्तु शत्रुघ्न तो श्रीराम-सेवक भरतजीके घरव-सेवक और साथी हैं। दाय्याकी भाँति उनके साथ रहते और सुपचाप आशानुसार सेवा किया करते हैं। ये बड़े संकोची हैं, अपनी धोरसे कभी किसी कामके बीचमें नहीं बोजते। किमीपर क्रोध नहीं करते, अपनी धोरसे भागे होकर कुछ भी नहीं करते। सेवकोंके सेवकका यही तो धर्म है।

श्रीशत्रुघ्नीके अपनी धोरसे बोलनेके विरोध भवसर दो मिलते हैं। प्रथम, जब श्रीभरतजी ननिहालसे आकर माता कैकेयीसे मिलते हैं और कैकेयी पाषाण-हृदया बनकर महाराज दशरथकी मृत्यु और श्रीराम-लक्ष्मणके वन जानेका विवरण सुनाती है और कहती है कि 'बेटा ! यह सब मैंने तेरे ही जिये किया है—

तत । बत मैं सकल सँवारी । मह मन्यरा सहज विचारी ॥

तब भरत शोककुल होकर विज्ञाप करते और आवेशमें आकर माताको भलाबुरा कहने लगते हैं। शत्रुघ्न भी माताकी कुटिलतापर अत्यन्त चुन्च हैं, शरीरमें घाग लग रही है, परन्तु उनका जो बोलनेका कुछ अधिकार है ही नहीं।

सुनि शत्रुघ्न मालु कुटिलदं । जट्टिगता रिसि कणु न वसई ॥

इसी समय कुवरी मन्यरा सजयजकर वहाँ आती है वह भरतको अपनी ही प्रकृतिके अनुसार स्वामी और राज्य-जोभी समझती है। वह समझती है कि भरतके लिये राज्यका सारा सामान मैंने ही बनाया है, वह मुझे इनाम देगा, इसीलिये बगदर कर आती है।

हँसती-उड़झती सजीधजी कुवरीको देखकर शत्रुघ्नीको धोषको यहाँ सहाल सकते—

रसि रिसि मोठ रणल लुपु माई । बरत अनल घुत अहुति पारै ॥  
हुमुकि रलत तकि कूर मारा । परि मुँह मरि महि करत पुकारा ॥  
पूरर टूट्ट पूट कणाल । दलित दसन मुस कपिर प्रचाल ॥  
पुनि रिपुहन रसि नरसिसल छोटी । रंग धरीसन धीर धरि हरीटी ॥

उपपुत्र इनाम मिल गया। दयामय भरतजीने मन्यराको छुड़ा दिया।

दूसरे, श्रीराम अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हैं, सीतों भाई सेवा और धर्मयुक्त शासनमें सहायता करते हैं। एक समय तपस्वियोंने आकर श्रीरामचन्द्रसे लवणासुरके शल्याचारोंका वर्णन करते अपना दुःखदा सुनाया और उसे मारनेके लिये प्रार्थना की। दुष्टदर्पहारी शिष्टरचक भगवान् श्रीरामने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और दरबारमें पूछा कि 'लवणासुरको वध करनेका श्रेय तुम लोगोंमें कौन छेना चाहते हैं? वहाँकी समृद्धिचा अधिकारी कौन होना चाहते हैं। भरत या शत्रुघ्न ?'

श्रीभरतने कहा कि 'मैं लवणासुरका वध कर सकता हूँ, इसपर शत्रुघ्नीने प्रार्थना की कि 'प्रभो ! श्रीभरतजी बहुत काम कर चुके हैं। आपके वनवासके समय इहाँने अयोध्याका पालन किया, अनेक प्रकार दुःख सदे, मन्दी-ग्राममें कुछकी शल्यापर सोये, फल-मूलका आहार किया, जटा रस्सी, बकल पहने, सब कुछ किया। अब मेरी प्रार्थना है कि मेरे रहते हूँ वृद्धके लिये न भेजकर मुझे ही भाशा दीजिये।'

शत्रुघ्नीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामने उनका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा 'भाई, तुम्हीं जाकर हैल्य-वध करो, मैं तुम्हें मधुदेयके सुन्दर नगरका राजा बनाता हूँ।' श्रीराम जानते थे कि शत्रुघ्न दुष्ट राक्षसका वध करना चाहते हैं, उन्हें राज्यका जोभ नहीं है। इसलिये पदछेते ही कह दिया कि 'धीनशिष्ट भादि ऋषि मन्त्र और विधिपूर्वक तुम्हारा धर्मिके करेंगे। मैं जो कुछ कहूँ सो तुम्हें स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि बाइकोंको गुण-जनोंकी आशाना पालन करना ही उचित है।'

इसपर धीर-सम्पन्न श्रीशत्रुघ्नी बड़े ही संकोचमें परकर धीरेसे कहने लगे। 'महाराज ! बड़े आइयोंके रहते राज्य-गरीपर बैठना मैं अधर्म समझता हूँ, जब भरतजी महाराज लवणासुरको मारनेके लिये कह रहे थे तब मुझे बीचमें नहीं बोलना चाहिये था। मेरा बीचमें बोलना ही मेरे लिये



इस दुर्गतिका कारण हुआ। यह भारकी भाग्याका उल्टपन करना भी मेरे लिये कठिन है। क्योंकि भाग्ये में यह धर्म कई बार गुन गुन हैं।'

इसके बाद शत्रुघ्नी सवत्यागुरवर पढ़ाई करने हैं, शास्त्रों में धीपारमीकिनीके आधममें उदरने हैं, उर्रा रातको सीताके दोनों कुमारोंका जन्म होता है, जिये शत्रुघ्नीको पया हर्ष होता है। फिर जाकर सवत्यागुरका पय करके यहाँ

बारह वार रहकर श्रीराम-वर्तनार्थ कौटो है। फले पुनः श्रीरामकीके आधममें उदरने हैं और सवत्यागुर मुनि-रभिय रामायणका गान गुनकर भातन्में बंटा हो जाने हैं, अगोण्या आकर गवने मितने हैं, पुनः श्रीराम की भाग्ये मनुगुरी कौटकर धर्मपूर्वक शायन कर्ना।

इनके जीवनमें भी मर्णादाही बर्षी रिवा मितनी।

—पुरन-रामगुन

## श्रीरामप्रेमी दशरथ महाराज



मके यहाँ भक्तिप्रेमयश सापात् सधियानन्द-यन प्रभुपुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए। उन परम-भाग्यवान् महाराज धीदशरथकी महिमाका वर्णन बौन कर सकता है? महाराजें दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित भानन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्षतफका संन्यास करके श्रीराम-प्रेम-का आदर्श स्थापित कर दिया।

धीदशरथजी परम तेजस्वी मनुमहाराजकी भक्ति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महादू यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सख्य सद्गुणोंवाले, राजर्षि, ब्रैलोक्य-प्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उच्चम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय, अतिरथी, धन-धान्यके सख्यमें कुवेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे। (वा० रा० १।६।१ से ५ तक)

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वशिष्ठ, धामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, कारयप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, छटि,

अयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रार्थन, अक्षय और बर्षादादि विद्यायिनपसम्पन्न, अनीतिमें सज्जनेवाले, कारुण्य जितेन्द्रिय, धीमन्पन्न, पवित्र हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्र, मर्णा-पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञाका अनुभव करनेवाले, तेजस्वी, चमत्कार, कीर्तिमान्, ईश्वर, अक्षय कोष और क्षोमसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुण्यनर सिद्ध थे। (वा० रा० १।७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावने प्रजास प्रकाशसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दरवार सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दरवार अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें विष्णु-मातृ-मन्त्र शक्य-कुमारों यथा प्रायश्चित्त करनेके लिये अश्वमेध सदान्तर ज्योतिष आयुषोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आशोपर्वण यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्त्यान्य वस्तुओंके अतिर दस लाख दुग्धवती गावें, दस करोड़ सोनेकी मुर्तियाँ चालीस करोड़ चाँदीके रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये अश्वत्थको अजित वरुण राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना इन्द्र भाग लेनेके लिये स्वर्ग पधारे थे। देवता और मुनिअतिर प्रार्थनापर भगवान् धीविष्णुने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे बरस

● यद्यपि रामवनवासकी घटनाके कारण कहीं कहीं दशरथजीको कामुक बतलाया गया है। परन्तु ऐसी बात नहीं थी, ई वे कामपरायण होकर कैकेयीके वधमें होते तो यशपुत्रकी खीरका आधामाग कौसल्याको और केवल अष्टमांघ ही कैकेयीके ल देते। यद्यपि उन्होंने नहुविवाह किये थे, जो अवश्य ही आदर्श नहीं है परन्तु यह उस समयकी एक प्रथा-सी थी। वरुण श्रीरामने इस प्रथाको तोड़कर आदर्श सुधार किया।

† जो दसहजार शत्रुपरिणिके साथ अकेला लड़ सकता है, उसे महारथी कहते हैं और जो दसहजार महारथीके साथ अकेला कोरा होता है, वह अतिरथी कहलाता है।

ना स्वीकार किया और यज्ञपुस्तके स्वयं प्रकट होकर पायसाप्रसे  
ना हुआ सुवर्णपात्र देते हुए दशरथसे कहा कि 'हे राजन्! यह  
वीर अत्यन्त श्रेष्ठ आरोग्यवर्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करने-  
वाली है, इसको धरती कौसल्या आदि तीनों रानियोंको  
खिला दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार  
कौसल्याको वही समझकर उसे सीरका भावा भाग, मैफली  
सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग  
देया। सुमित्राजी वही थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक  
देना उचित था, इसीलिये धया हुआ अष्टमांश राजाने फिर  
सुमित्राजीको दे दिया। जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके  
'दो भागोंसे' लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए।  
(सत्यकार भगवान् ने चार रूपोंसे धवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परमप्रिय थे, परन्तु इन सबमें  
श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये,  
क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की  
गयी थी। वे रामका अपनी छाँवसे लज्जभरके लिये भी  
प्रेमलक्ष होना नहीं सह सकते थे। जब विधामित्राजी यज्ञरथार्थ  
श्रीराम-लक्ष्मणको भोगने भाये, उस समय श्रीरामकी उग्र  
वन्द्य वर्यसे अधिक थी, परन्तु दशरथने उनको अपने  
पाससे हटाकर विधामित्रके साथ भेजनेमें वही आनाकानी की।  
आखिर वशिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए। श्रीरामपर  
अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक  
श्रीराम सामने रहे, तब तक प्राणोंको रक्षता और आपके  
वचन सत्य कानेके लिये, रामके बिदुषते ही राम-प्रेमानन्दमें  
अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली!

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा  
केकरके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको  
सुवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवरय ही ज्येष्ठ-  
पुत्रके अभिषेककी रथुइलकी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग,  
आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि  
सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए  
थे। परन्तु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ  
रुई काम कर दिये। अन्तमें आदर्श मर्यादा स्थापित हो  
गयी, जिसके लिये भी भगवान् ने धवतार लिया था। इनमें  
निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यवा और श्रीरामप्रेम।

(२) श्रीरामके वनगमबद्धारा राष्ट्रसन्ध्यादिरूप कार्यके  
द्वारा दुष्ट-वन्दन।

(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श आत्-प्रेम।

(४) श्रीलक्ष्मणजीका प्रसन्नचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता  
और त्याग।

(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-व्रत।

(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधुप्रेम, पातिव्रत, धर्म-  
प्रेम और राजनीति-कुशलता।

(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-  
कुशलता।

(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'राम-  
काज' करना।

(९) श्रीहनुमान्जीकी निष्काम-प्रेमाभक्ति।

(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय प्राप्ति।

(११) सुमीवके साथ श्रीरामको आदर्श मित्रता।

(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश।

यदि भगवान् श्रीरामको वनवास न होता, तो इन  
मर्यादाओंकी स्थापनाका व्यवसर ही शायद न जाता।  
ये सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका  
वियोग होते ही अपनी जीवन-क्षीरता समस्त कर प्रेमकी टेक  
रख ली।

जिअन-मरान-कठ दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा ॥

जियत राम-विभु-वदन निहारा। राम-विरह मरी मारन सैवती ॥

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुपर गयी, रामके विरहमें प्राण  
देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान  
भागवान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-दर्शन-लाभसामें अनन्य  
भावसे राम-परायण हो, रामके लिये, राम-नाम पुकारते हुए  
प्राणोंका त्याग किया?

श्रीरामायणमें लक्ष्मण-विजयके बाद पुनः दशरथके  
दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर  
बैठे हुए दशरथजीके दर्शन करते हैं। फिर तो  
दशरथ सामने धाकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं  
और आलिंगन करते हुए उनसे प्रेमाश्रय करते हैं। यहाँ  
लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट  
कहते हैं कि 'हे सुमित्रा-सुवर्णपात्र लक्ष्मण! श्रीरामकी  
सेवामें खगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्र-

सहित तीनों लोक, सिद्धपुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभियन्तन कर उनकी पूजा करते हैं—  
येही जिन अत्यन्त धार प्रदत्तको देवताओंका हृदय और गुप्त साय कहा है ये परम सपत्नी राम वही हैं। (वा० रा० ६। ११९। २७-३०)

यहाँपर शक्य होती है कि जब शुद्ध सच्चिदानन्दधन श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए दशरथ-ने प्राणोंका त्याग किया था, तब फिर उनकी मुक्ति कैसे नहीं हुई? यदि श्रीरामनामके प्रतापसे मुक्ति नहीं होती तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि अन्तकालमें श्रीरामनाम लेनेसे समस्त बन्धन छूट जाते हैं और नाम लेनेवाला परमात्माको प्राप्त होता है? और यदि राममें मन लगाकर मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती तो फिर गीताके उस भगवद्-वचनकी व्यर्थता होती है जिसमें भगवान् ने यह कहा है कि—

अन्तकाले च मांमेव स्मरन्मुक्त्वा कवेत्वरम् ।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

(८। ५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निःसन्देह ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।'

इन प्ररोंका उत्तर तो गीताके इससे चगले श्लोकमें ही मिल जाता है। जिस प्रकारकी भावना करता हुआ मनुष्य प्राण छोड़ता है, उसीप्रकारकी गतिको प्राप्त होता है। ज्ञानमार्गी साधक अद्वैत अथर परब्रह्ममें चित्तकी वृत्तियोंको विलीन कर देह त्याग करता है तो उसकी अवश्य ही 'सायुज्य' मुक्ति होती है परन्तु ऐसा हुए बिना केवल श्रीरामनामके जपसे 'सायुज्य' मुक्ति नहीं होती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए प्राण-त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है, सच तो यह है कि बिना मन लगाये भी श्रीरामनामका अन्तकालमें उच्चारण हो जानेसे ही जीव मुक्तिका अधिकारी हो जाता है, इसीसे सन्तोंने अन्तमें श्रीरामनामको दुर्लभ बताया है—

जनम जनम मुनि जतन कराही। अन्त राम कदि आवत नाही ॥

परन्तु मुक्ति होती वैसी ही है, जैसी वह चाहता है। 'तो क्या मुक्ति भी कई प्रकारकी है? यदि कई प्रकारकी मुक्ति है तो फिर मुक्तिका महत्त्व ही क्या रह गया? इस

प्रश्नका उत्तर यह है कि 'सायुज्य' मुक्ति तो एक ही है। परन्तु केवल सायुज्य होकर 'सायुज्य' मुक्ति भी शक्य है, जिसमें जीवकी मित्र सत्ता पथाय समस्त परमात्म-गतामें प्रतिब्रह्मरूपने विज्ञीन हो जाती है। श्रीरामका पूरा बोध होनेके साथ ही साथ सगुण सायुज्य और सायुज्यकी पराकाष्ठा अन्त-रूप अन्त-स्वरूपमें परम प्रेम होनेके कारण यह सुखरूप (सगुण) मुक्तिरूपी धनका स्वामी होनेपर भी भगवान् की सन्तान साजोशय, साष्टि और साहस्य-मुक्तिका समस्त सुख भोग है। केवल सायुज्यद्वारा प्राणोंका उच्छ्वास न होकर परमात्मामें मित्र जाना, यह अमेद-मुक्ति, और अमेद-पूर्वक साकार ईश्वरकी सेवार्थ व्यवहारमें भेद रहना, यद्यपि भेद-मुक्ति, ये दोनों वास्तवमें एक ही मुक्तिके स्वरूप हैं। परन्तु शुद्ध प्रेमीमत्त इन दोनों प्रकारके मुक्तियोंसे भी अलग रहकर केवल भगवत्सेवामें लग्न होना है और जैसे भगवान् नित्य, मुक्त, अत्र, अविनाशी होनेवाले भी जीलासे अथवा-शरीर धारण करके विविध कर्म करते हैं, ऐसे ही यह-अत्र भी उन्हींका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाँति भगवान् की पवित्र जीवामें जीवने लगे रहता है। यह मुक्ति नहीं चाहता। अतएव जब तक भगवद्विच्छासे, भगवदर्थ, भगवद्वाञ्छानुसार निर्लेपभावने पर शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है तब यह भगवत्काम और भगवद्वाचन-गुण-कीर्तन करता हुआ ही जाता है। इस काम तो उसको कोई रहता ही नहीं, क्योंकि उसकी किन्हीं वृद्ध अथवा विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेममय परमात्मामें ही रता है। इतना होनेपर भी उपर्युक्त कारणसे ऐसे मात्मीक अमेद-मुक्ति नहीं होती। इसीलिये भगवान् शिवजी अजयकी उमासे दशरथके सन्वन्धनमें कहते हैं—

ता तं उमा मोच्छ नहिं पावा। दसरथ भेद-भगति मन रावा ॥  
सगुण उपासक मोच्छ न लेही। तिनहकई रामु भगति निर देही ॥

अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि अन्तमें श्रीरामनामका जप-कीर्तन करनेसे और श्रीराममें मन लगानेसे मुक्ति नहीं होती और इसी कारण दशरथजीकी भी उ- नहीं हुई। समझना यह चाहिये कि दशरथजीको मुक्तिकी कोई परवा नहीं थी। वे तो रामरसके रति थे। इसीलिये उदास रसके सामने उन्होंने मोक्षका भी धर ही संन्यास कर दिया। ऐसे मोक्ष-संन्यासी प्रेमी अ-

अच्छ-सेवाके लिये मुक्ति तो पीछे पीछे धूमा करती है।  
भगवान् तो अपने श्रीमुखसे यहाँ तक कह डाला है—

न पारमेष्ठ्यं न मोहन्द्रिष्यन्  
न सार्वभौम न रसाधिपत्यम् ।  
न योगसिद्धीरधुनर्भवं वा  
मय्यर्पितामेच्छति मद्दिनान्यत् ॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोगिनं शङ्करः ।  
न च सद्बुद्धेणो न श्रीनिवाता च यथा भवत् ॥  
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।  
अनुद्वज्याम्यहं नित्यं धूयेत्यम् शिरेणुभिः ॥  
(श्रीभद्रावत ११।१४।१४-१६)

जिस भेरे भक्तने अपना ध्यात्मा मुझको अर्पण कर  
देया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद,  
सर्वभौमी राजाका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धि, पाँ  
चौर मोक्ष भी नहीं चाहता । हे उद्भव ! मुझे ध्यात्मस्वरूप  
शेषजी, सद्बुद्ध, प्रिया लक्ष्मीजी और अपनी स्वरूप भी  
अतने प्रिय नहीं हैं, जितने तुम-जैसे अनन्य भक्त प्रिय हैं ।  
इसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदर्शी  
भक्तोंकी अर्पण-रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके  
पीछे पीछे फिरता हूँ ।' वैसी महिमा है ?

यद्यपि भक्त अपने भगवान्को पीछे पीछे फिरानेके  
लेये मुक्तिका तिरस्कार कर उसे नहीं भजते, उनका तो  
भगवान्के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे  
भगवान्के सिपा दूसरी और हाकना ही नहीं जानते । बस,  
यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर वे मुक्ति-  
का निरादर कर भक्ति करते हैं ।

अस विचारि हरिभक्तसयने । मुक्ति निरादरि मगति लुप्ताने ॥  
क्योंकि भगवान्के गुण ही ऐसे हैं—जिनको देखकर  
आत्माराम मुनियोंको भी उनकी अहैतुकी भक्ति करनी  
पड़ती है ।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युत्कृष्टे ।  
कुर्वन्त्यऽहैतुकी भक्ति इत्यंभूत गुणो हरिः ॥

दशरथकुमार-पद-नज

## विदेह-भक्त राजा जनक

( लेखक—श्रीकृष्णारावणजी चौपरी )

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युत्कृष्टे ।  
कुर्वन्त्यऽहैतुकी भक्ति इत्यंभूत गुणो हरिः ॥  
(श्रीभद्रावत)

नकी माया-प्रतिधर्या दृष्ट गयी है, ऐसे ध्यात्मा-  
राम, आसकाम, जीवनसुक मुनिगण भी  
भगवान् श्रीहरिकी अहैतुकी भक्ति करते हैं,  
क्योंकि हरिमैं ऐसे ही गुण हैं ।

विदेहराज तिरहुति-नरेश जनकजीको कौन नहीं जानता ?  
आप सर्वगुणसम्पन्न और सर्व सद्भावधार, परम तत्त्वज्ञ,  
मर्मज्ञ, अज्ञाधारण ज्ञानी, धर्म-धुनन्धर और नीति-कुशल  
महान् पण्डित थे । आपकी विमल कीर्ति विविध भाँतिसे  
गायी गयी है, परन्तु आपके प्रकृत महत्त्वका पता बहुत थोड़े  
ही लोगोंको लग सका है । श्रीगुसाईजी महाराज आपके  
प्रशंसा करते हुए करते हैं—

प्रनवाँ परिजन सहित विदेह । जाहि राम-पद गूढ सनेह ॥  
जोग जोग महँ राखेउ गोई । राम-निहाकेतं प्रपेउ सोई ॥

पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दधन, श्रीरघुनाथस्वामी महाराजके  
साथ धीजनकरायजीका जो अत्यन्त 'गूढ सनेह' और निय  
'योग' (प्रेमका अभेद सम्बन्ध) है, सो सर्वथा अनिर्वचनीय  
है । कहना तो दूर रहा, कोई उसे सम्यक् प्रकारसे जान भी  
नहीं सकता । उस प्रेमतत्वको तो बस आप ही दोनों जानते  
हैं । दूसरे बेचारे जानें भी कैसे ? आपने तो उस अकथनीय  
अनुपम अनन्त प्रेम-धनको पूरे जोभीकी भाँति इन्द्रिय-  
धवसायरूप प्रपञ्चमें ड्रिपा रक्ता है और एक घन-प्राण  
विषयी मनुष्यके सरना उसी परमधनके चिन्तनमें निरन्तर  
निमग्न रहते हैं । लोग आपके एक महान् ऐश्वर्यपरायण  
राजा, नीतिकुशल प्रजारजक नरपति समझते हैं, कुछ लोग  
ज्ञानियोंका आचार्य-भी मानते हैं, परन्तु आपके अन्तःकल-  
के निगूढ प्रेमका परिचय किसीको नहीं है ।

प्यारी-कुलारी श्रीसीताजीके स्वयम्बरकी तैयारी हुई है,  
देरा विदेशके राजा महाराजधर्मोंको निमन्त्रण दिया गया है ।  
पराक्रमकी परीचा देकर सीताको प्राप्त करनेकी आलससे  
बढ़े-बढ़े रूप-गुण और बलवीर्य-सम्पन्न राजा-महाराजा मियिखा-  
में पधार रहे हैं ।

हरी भवतारमें गाधि-तनय मुनि विरयामित्रजी आने  
 तथा धन्याय अगिनियोंके यज्ञकी रक्षाके लिये भवतार  
 महाराज दशरथजीके प्रायाधिक्रिय पुत्ररूप श्रीराम सहस्र-  
 को भोगकर आश्रममें जाये थे। यह क्या प्रसिद्ध है, यह!  
 विशेष कियेकी आवश्यकता नहीं। श्रीविरयामित्र मुनि  
 भी महाराज जनकका शिष्यरूप पाते हैं और दोनों राज-  
 कुमारोंको साथ लेकर मिथिलाकी ओर प्रस्थान करते हैं।  
 रातेमें शयनप्रस्ता मुनि-पत्नी बहसुवाका उद्धार करते हुए  
 परम-कृपाळु श्रीकौसलकिशोरजी कनिष्ठ-भ्रातासहित गंगा-  
 स्नान कर वनोपवनके प्राकृतिक सौन्दर्यको देखते हुए जनक-  
 पुरीमें पहुँचते हैं और मुनिसहित नगरसे बाहर मनोरम  
 बगीचेमें उतरते हैं।

बनजाह्ये, ये दोनों कौन हैं? मैं जि-  
 क्या वह वेदव्यभिच प्रत्य ही दो रूप  
 गेता राजाधिक ही बैरागी मन प्रा-  
 वंशोत्तरी मूर्ति क्या जाता है। जनक  
 विचार कीजिये।'

जनकका मन बन्नाहकारने रामरूपके ग-  
 तमुद्रमें निगम हो गया।  
 इन्द्रहिं किंवापन अति अनुराग। नरवत् प्रदुर्मुक्ति

मिथिलेश महाराज यह शुभ संवाद पाकर भ्रष्ट-  
 समाज सहित विरयामित्रजीके दर्शन और स्वागतार्थ  
 आते हैं और मुनिको साष्टांग प्रणाम कर आज्ञा पाकर  
 बैठ जाते हैं, इतनेमें ही पुलवारी देखकर—  
 स्वाम-गौर मूढ नयस किसोरा। लोचन-मुसद विश्व चित्त-चोरा ॥

जो मन-मुक्ति अपनेमें भगोचर मन्त्रका सुन म-  
 हुए थे, उन्होंने आज उस भगोचरको प्रत्यक्ष  
 देखकर तुरन्त त्याग दिया। 'गोद'का जोड़कर  
 उगमीद कौन करे? ऐसा कौन समझदार होगा जो  
 गोचरके मिलजाने पर 'भगोचर'के पीछे लगा रहे? श्री  
 महाराज जनकके लिये यही उचित था। प्रनेद भक्ति  
 विदेहराजकी परामर्शिक संगपरहित है।

—रयाम-गौर वदन, किशोरवधवाली, नेत्रोंको सुख देने-  
 वाली अखिल विश्वके चित्तको चुरानेवाली 'खुल जोशी'  
 वहाँ आ पहुँची, ये थे तो बाजक, परन्तु इनके आते ही ऐसा  
 प्रभाव पड़ा कि सब लोग उठ खड़े हुए, 'उठे सकल जन खुपाति  
 आवे।' विरयामित्र सबको बैसाते हैं। दोनों प्रभुशील संकोचके  
 साथ गुरुके चरणोंमें धीठ जाते हैं। यहाँ जनकराजकी  
 स्त्री ही विचित्र दशा होती है। उनकी प्रेमरूपी सूर्य-  
 कान्तमणि, रामरूपी प्रलय प्रचण्ड सूर्यकी रश्मियोंको प्राप्तकर  
 प्रवित होकर यह उठती है। गुठ प्रेम-धन श्रीरामकी क्षुधि  
 देखते ही सहसा प्रकट हो गया। मुगोंके सञ्चित-धनका  
 क्षयना यथायक सुख पड़ा।

इसीप्रकार ये भारतकी विदाईके समय जब क-  
 जामावाये मिलते हैं, तब भी उनका प्रेमसागर मग्न  
 सोइ बैठता है, उस समयके उनके वचनोंमें असीम शक्ति  
 मनोहर झलक है—जरा उस समयकी मूर्त्तिका भी देखो।  
 भारत विदा हो गयी। जनकजी पहुँचानेके लिये साज-सज  
 जा रहे हैं। दशरथ लौटना चाहते हैं, परन्तु प्रेमराज तब  
 लौटते नहीं। दशरथजीने फिर आग्रह किया तो आज तब  
 उतर पड़े और नेत्रोंसे प्रेमाशुधियोंकी धारा बहाते हुए उनकी  
 विनय करने लगे। इसके बाद मुनियोंसे स्तुति-अर्पण  
 की, तदनन्तर रामके—अपने प्यारे जामावा रामने-  
 समीप आये और कहने लगे—

मूर्ति मधुर मनोहर देखी। भवेत् बिदेह बिदेह बिसेशी ॥  
 प्रेममगल मन जानि नुप, करि विवेक धरि धीर।  
 मोटेउ मुनिपद नाइ सिध, गदगद गिरा गौरीर ॥  
 बहदु नाथ मुन्दर दोउ बाठक। मुनि-गुरु-निठक कि नुप-गुरु-पाठक।  
 प्रथ जो निगम नेत्रि कहि गारा। उमर बेर धरि की सोइ आरा ॥  
 सत्य विरायरूप मन मोरा। कष्टि होत मिनि चंद चकोरा ॥  
 जो प्रभु पूर्ण स्त्रीमात्र। बहदु नाथ जनि बरहु दुरात्र ॥  
 जनकजी करते हैं 'मुनिनाथ! विधाह्ये नहीं, सब

राम करो कहे मूर्ति प्रसंसा। मुनि-महेस-मन-मानस-इंठा ॥  
 करहि जोगजोगी जेहि लागी। कोह-मोह-मनवा-मद त्वायी ॥  
 क्यापक ब्रह्म अद्वैत अविनासी। चिदानन्द मिरगुन मुनरासी ॥  
 मन समेत जेहि जान न बानी। तरकिन सहरि सकल अनुमती ॥  
 महिमा निगम नेत्रि कहि करई। जो तिहुँ काल पकरस रई ॥  
 नयननिषय मो कहँ भयेउ, सो समस्त-सुख-मूठ।  
 सबर राम जग जीव कहँ, मप ईस अनुरूठ ॥  
 सवहि मूर्ति मोहि दीन्ह बहारी। निज जन जानि दीन्ह अवनर्त ॥  
 इन्द्रि सहस दस सारद सेका। करहि कलपकोटिक मरि देख ॥

मौर माय्य राश्र गुनमाया। कदि न सिराहिं सुनिहु रसुनाया ॥  
 मै क्कु कहां एक बर मोरे। गुम्ह रिसहु सनेह सुठि मोरे ॥  
 नार नार मीमां कर जेरे। मन परिहै चरन जनि मोरे ॥  
 धन्य जनकजी ! धन्य धारकी गुप्त प्रेमाभक्ति !  
 यदी दया चित्रदूटमें होती है।  
 इससे जनकजीकी भवस्थाका पता लगता है। जनक-

जी परम ज्ञानी थे, परन्तु परमज्ञानकी भवधि तो यही है कि ज्ञानमें स्थित रहते हुए ही परम ज्ञानस्वरूप भगवान्की मूर्तिमान् भापुरीको देखकर उसपर रीम जाय। ज्ञानका प्रेमके पवित्र त्रयरूपमें परिचात होकर धरणी अजस सुधाधारसे जगत्को प्लावित कर देना ही उसकी महानता है ! जनकजीने यही प्रत्यक्ष दिखला दिया !

## श्रीवशिष्टजीकी महत्ता

(केलक-परिहतर श्रीनृत्यामजी धर्मो, गुनरात)



चिकित्ता भगवान् महादेव पुत्र और प्रसिद्ध हस्वाकुर्वंशके गुरु श्रीवशिष्टजी महाराज अपकारी मनुष्यके घोर अपकारको प्रसन्नतापूर्वक सहनेवाले, अपनेको शत्रु समझनेवाले मनुष्यके भी शुभगुणोंकी प्रशंसा करनेवाले, व्यवहार कुशल, दैवीसम्पत्तिसे युक्त, अन्तरात्मासे अभिन्न महत्स्वरूपको मलीभरति जाननेवाले और साधन-साधक अधिकारी पुण्योंको प्रकृता स्वरूप और उसकी प्राप्तिके साधन बतलानेवाले थे।

धुमा और गुण-महाकृपा

सौ पुत्रोंको राक्षसद्वारा म्रिना ही कारण मरवा डालनेवाले विश्वामित्रपर न तो धारके मनमें धनिक-सा क्रोध उपजा और न सर्वथा समर्थ होनेपर भी शापादिद्वारा धारने उनका कुछ भी अनिष्ट किया। 'पुत्रोंकी शत्रु उनके प्राण-धर्मोंकी समाप्ति या कर्म-फल-भद्राता परनेधरकी ह्मपासे हुई है, इसमें विश्वामित्र और राक्षस तो निमित्तमात्र हैं।' यों रामसद्वत् उन्होंने मनको शान्त रक्खा। इतनी भयानक दुर्घाईको कुछ भी-प्रतिकार किये बिना-धारने प्रसन्नतापूर्वक सह लिया। इससे उनकी धार्ष्ट्य सहिष्णुता और समाधानकी अनुपम शक्ति का पता लगता है।

श्व विश्वामित्रने दम लानेकेद्वारा दिव्याओंको प्राप्त कर उनसे आश्रम और शिष्योंसहित वशिष्टके विनाशके लिये तीम प्रयत्न किया, तब आप शाय या अन्य किसी भी दिव्यादिव्य उपायसे उनका प्रतिकार करनेकी चेष्टा न कर शान्त-चित्तसे महाद्वेष धारय किये धरने आश्रमके सामने खड़े हो गये और विश्वामित्र-भेदित समस्त दिव्यादिव्य कर्षोंको धरने महाद्वेषमें डीन कर डाला। विश्वामित्रके

कुल अन्न वशिष्टका कुछ घनिष्ट न कर महाद्वेषमें प्रवेश कर गये। इस महाद्वेषमें उन्होंने शत्रिय और राजर्षिके बलसे प्राण्य या प्रकृषिके बलकी शक्ति श्रेष्ठता सिद्ध कर विश्वामित्रको यह बतला दिया कि उनका शास्त्रबल महाबलसे सदा ही निम्न श्रेणीका है। ऐसे विकट प्रसङ्गमें भी श्रीवशिष्टजीने अपने हृदयको धैर्य, सतर्कता और दमासे च्युत नहीं होने दिया। इससे उनके हृदयकी अत्यन्त उन्नत धवस्थाका पता लगता है।

व्यवहारमें विश्वामित्र श्रीवशिष्टजीके शत्रु हैं, तो भी श्रीवशिष्टजीने अपनी मिया साची पत्नी अन्त्यतीके सामने बातों-ही-बातोंमें विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा की। इससे उनके हृदयकी निर्मलता, निर्द्वेषता, शुभ गुणमहाकृता सिद्ध होती है। ऐसी शुभ गुणमहाकृता साधारण मनुष्योंमें कदापि सम्भव नहीं। यह तो केवल असाधारण मतिमान् पुण्यमें ही सम्भव है। धरने शुभगुणोंको गुप्त रक्षना और दूसरोंके शुभ गुणोंको प्रकट करना बड़ी ही टेढ़ी खीर है। ह्य विषयमें एक प्राकृत कविने ठीक कहा है—

जे गुण गोवर्द्ध जपना, पयस करे पररु।  
 तागु कदिगुणि दुष्टद हु, नति किमज मुचणसु ॥

'जो धरने सद्गुणोंको दिपाकर दूसरेके सद्गुणोंको प्रकट करता है, कजियुगमें ऐसे दुर्धर्म पुनररर में बलिहारी जाता है।'

एक दूसरे कविने भी शुभ-गुणानुगतकी लक्ष महिमा गायी है—

किं बन्धुना मणिदेवी, किं तर यदेमं किं सा शरणं।  
 इहं गुणगुरायं, सीस्महु मुसल कुतमरणं ॥

'बहुत पढ़ने, तप करने और दान देनेसे कौन-सा महान् फल मिलता है ? सुखसमूहके स्थावरूप केवल शुभ गुणोंके प्रति अनुराग करना सीलो, इसीसे महान् फल होगा ।'

वशिष्ठजी यद्ये ही व्यवहार-कुशल पुरुष थे, व्यवहार-कुशलता इनकी व्यवहारकुशलताके कुछ उदाहरण देखिये ! जिस समय विश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज दशरथके समीप श्रीरामको माँगने आते हैं उस समय पहले तो दशरथ यह प्रश्न कर लेते हैं कि आप जो माँगेंगे, वही दूँगा । परन्तु अपने साथ श्रीरामको भेजनेकी यात कइनेपर दुःखके साथ दशरथ अस्वीकार कर देते हैं । विश्वामित्रको शोक होता है । उस समय श्रीवशिष्ठजी दशरथ-जीको यद्ये ही बुद्धिमानकी साथ उचित कारण दिखाकर श्रीराम-खदमयको विश्वामित्र मुनिके साथ भिजवाते हैं ।

श्रीरामचन्द्रके वनवासकी भावी जानते हुए भी आप व्यवहारानुसार श्रीरामचन्द्रके सुवराजपदके लिये अनुमति देने हैं । निश्चित मूहूर्त्तकी पहली रातको श्रीराम-सीतासे अनेक प्रकार पूजा-पात्रादि योग्य विधि करवाते हैं, और आगे बढ़कर कैठेयीको भूल-भरा रामवनवासका वरदान वापस लेनेके लिये समझाने हैं । इन प्रसङ्गोंमें आपकी व्यवहार-यद्गुणाका स्वरूपा समागता है । इसके अतिरिक्त श्रीराम-विषोगमें शोकाभिमूढ महाराज दशरथको सान्त्वना देने और भीमरत्नजीको उर्राँके अनुसार समझानेमें भी आप बड़ी कुशलमाने काम लेते हैं ।

श्रीवशिष्ठजीके तपज्ञानके सम्बन्धमें तो प्रश्न यहना ही क्या है ? सुवराजके मन्त्र-कवि आत्माजीने 'अग्नेयीग'में उसकी मरिमा इत्यन्तकार गायी है—

रिषि वशिष्ठे वही कथ्य, रघुनन्दनने जेह ।  
 कर्त्तव्ये प्रद्वारिणागं, देवैःको छे तेष ॥

विश्वामित्रजीकी सेवायें श्रीवशिष्ठजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रति अज्ञानका बड़ा ही सुन्दर उपदेश किया है, जिसका सर्वत्र श्रीरामजीकीने योग्यशिक्षण-प्रमाणरूपमें किया है । इनके 'वैराग्य' नामके पहले प्रकरणमें यह लिखाया है कि श्रीरामचन्द्रजीके धर्म-कारणके लिये दिन-रात वैराग्यकी तपस्वि हुई थी वैया ही विमल वैराग्य सुमुखके अन्तर्गत था । तदन्तर 'सुमुख' वा 'सुमुख' नामके दूसरे प्रकरणमें सुमुखके कर्त्तव्य लिखा है । 'वैराग्य' नामके तीसरे प्रकरणमें अज्ञान

जगत्की उत्पत्तिका रहस्य और 'स्थिति' नामक चौथे प्रकरणमें अज्ञानके स्थितिका ताव समझाया गया है । इस नामक पाँचवें प्रकरणमें प्रतीतमान जगत्को पहने करनेके उपयोगों और 'निर्वाण' नामक छठे प्रकरणमें जगत्के शान्त हो जानेके अनन्तर जीवसमूह और श्रीवशिष्ठजीके स्थितिका निरूपण किया गया है ।

अज्ञानीके अज्ञानको दूरकर उसे ध्यात्मस्वरूपमें स्थिर करनेका ही ध्यात्मज्ञानीका कर्त्तव्य है । इसके लिये इन धन्य कोई भी कर्त्तव्य नहीं; यही विद्वानोंका मत है । अतः अनुसार श्रीवशिष्ठजीने अधिकारीवाँको अपने सत्त्व उपदेशद्वारा स्वरूपमें भलीभाँति स्थिर करनेका प्रयत्न किया है । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति धरय जगतमें इस स्वरूप रखने और प्राप्त व्यवहारको आसक्तिरहित होकर करनेके सम्बन्धमें जो सद्गुणपदेश दिया है, वह मनन करने योग्य है ।

'जैसे गीध मांसके टुकड़ेपर दूट पाता है, वही इस मनुष्यका मन मिथ्या आसक्तिके बंधन धर्मकी तपस्वी मानकर भोगोंपर दूट पड़ता है । (वाचस्पते ने विषय नहीं ) वाद्यदृष्टिसे प्रतीत होनेवाला दृश्य वषाधर्म नहीं । इस ज्ञानके द्वारा जिस मनुष्यके मनसे दृश्य-संसार-जनित मल दूर हो गया है उसको मोक्षरूप उच्छिष्ट परमात्मप्राप्ति होती है । इसकी हृद्यभाषोंके भलीभाँति ज्ञान के अनेक ध्यात्मप्राप्ति अवश्य ही हो जाती है । परन्तु निष्काम मन सांसारिक सिद्धियोंकी प्राप्तिमें आसक्त है इसको परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो ? इसीलिये—

नामिवाँछामयसग्राहं सग्राहं न त्वज्जगद्बन्धु ।  
 स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यन्ममास्ति तदस्तु मे ॥  
 इति संचिन्त्य जनको यथाप्राप्तं कियामती ।  
 असक्तः कर्तुमुत्तरयौ दिने दिनकीर्यया ॥

राजर्षि जनक विचार करते हैं—कि मैं विचित्र बन्धु पदार्थको पानेकी हृद्य नहीं करता और विचित्र बन्धु पदार्थका हृद्यत्वं त्याग नहीं करता । मैं अपने स्वयंके स्थिति ध्यातामें स्थिर रहता हूँ । जो मेरा माया जगत् है उसे ही भोग होकर रहे । श्रीवशिष्ठजी कहते हैं कि, मैं विचारकर जैसे हृद्य, दिन जगत्के प्राप्ति-क्रियामें अज्ञानरहित होकर प्रवृत्त होता है वैसे ही राजर्षि जनक स्वयंके विचारको बचावोन्म ध्यात्मनिर्वाह होकर करनेमें प्रवृत्त है रामचन्द्रजी, पुन भी वैसे ही प्रवृत्त होको ।

भविष्ये नानुसन्धते नातीतं चिन्तयत्यती ।

वर्तमानं निमित्तनु हस्तैवानुवर्तते ॥

राजर्षिजनक भूत और भविष्यकी घटनाओंका धारणहार स्मरण न कर केवल वर्तमान समयका हीसे हुए अनुसरण करते थे । हे रामचन्द्र ! तुम भी इसी स्थितिको प्राप्त करो ।

अन्तःकरणको अक्षयदेकरस और त्रितिरिणय आनन्द-रूप प्रदामें स्थित कर, बाहरसे नाटकके पात्रकी भाँति प्राप्त

व्यवहारको सुचारुरूपसे करनेवाले श्रीचरित्रजीके अन्तःकरणकी बालविक महत्ता तो उनके जैसे ब्राह्मण महावेत्ता ही भलीभाँति समझ सकते हैं । दूसरे लोगोंको तो उनकी महत्ताका साधारण-सा ज्ञान होता है । पुरोहितका कार्य करनेवाले ब्राह्मणोंको श्रीचरित्रजीके विचारों और बर्तानोंका अनुसरण कर अपने जीवनको कृतार्थ करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

## श्रीहनुमान्जीके चरित्रसे शिक्षा

(केवल-५० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायण)



रामचरितमानसमें श्रीहनुमत्-चरितका आरम्भ किष्किन्धाकायदके आदिमें 'मारुति-मिलन' प्रसङ्गसे हुआ है, वहाँ आप अध्वर्यु-पर्वतपर सुमीवके सचिवरूपमें दर्शन देते हैं । अन्ततः श्रीरामायणकारकी भाँति आपका भी वाचर-व्यु भगवान् शिवका रूपावतार था । गोस्वामीजीने दोहावलीके निम्नलिखित दोहोंमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है—

जहिं सरीरं रति रामसे, सो आदरहिं सुजान ।

रुद्र-देह तजि नेहस, मानर मे हनुमान ॥

जनि राम-सेवा सरस, समुद्रि करव अनुमान ।

पुरखा ते सेवक मये, हरते मे हनुमान ॥

( दोहा १५२ । १५३ )

रामायणमें इस गुरु तत्वको मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें बड़ी विधिब्रताके साथ कलकाया है । बालकायदसे अरण्य-कारणदक भगवान् शङ्करकी बन्दना पहले करने पीछे रघुनाथ-जीकी बन्दनाके श्लोक रखे गये हैं । परन्तु जब किष्किन्धा-कारणदमें स्वर्ग शङ्करजी हनुमान्-रूपसे श्रीरामकी सेवामें व्यवतरित हो जाते हैं, तब वहाँसे उत्तरकारणदपर्यन्त श्रीराम-बन्दनाके श्लोकोंको प्रथम स्थान दिया गया है और दास-भावानुसार शिव-बन्दना पश्चात् की गयी है । लङ्का और उत्तर-कारणदमें तो यह बात स्पष्ट दीख पड़ती है, किन्तु सुन्दरकाण्डमें तो शङ्करके स्थानमें श्रीहनुमान्जीकी ही बन्दना की गयी

है । इस बन्दना-क्रमके द्वारा और किष्किन्धाकाण्डमें श्रीराम-नामकी बन्दनान्तर्गत—

पुनि तुम राम-राम दिन राती, सादर जपहु अलग अरती ।

—के प्रमाणसे श्रीहनुमान्जीका शङ्करावतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध होता है । इसके सिवा आपका बल, पराक्रम और आप्रपमयी घटनाओंसे पूर्ण चरित्र ही आपको एक प्राकृत कथिसे सर्वथा भिन्न बना रहा है । अतः रामायणमें आपका चरित्र भी सर्वोपरि श्रेष्ठ, शिष्यणीय तथा अनुकरणीय है । उपर्युक्त वचनके अनुसार श्रीहनुमान्जीका चरित्र—'तर्ह रह सचिव सहित श्रेष्ठिवा-सुमीव-सचिवत्वसे आरम्भ होता है ।

सचिव कैसा होना चाहिये और उसे सचिव-धर्मका पालन किस भाँति करना चाहिये, इसका उत्तम उदाहरण श्रीहनुमान्-जीने दिखाया है । महाबली बालिके दुरत्यय आघातके कारण सुमीवको त्रैलोक्यमें कहीं ठिकाना नहीं रहा । ऐसे दीन, निराश्रय-जनका साथ देकर महाबली बालिके बैर मोल लेना मामूली बात नहीं थी । ऐसी दुरवस्थामें भी आप उनके मन्त्रिण्य-पत्न्यर दृढ़रहकर सदा सहायता करनेमें लगे रहे । यह परम साहसिकता और सच्ची भीतिकी पहली शिक्षा है । इतना ही नहीं, अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने सुमीवकी मित्रता करवा आपने उसको निर्भय कर दिया और इसप्रकार नीतिके एक ठोस सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये कि राजाके साथ ब्रह्मोंमेंसे यदि एक सर्वप्रधान ब्रह्म मन्त्री बन्ना रहे तो श्रेष्ठ सब नष्ट हो जानेपर भी राज्यको पुनः प्राप्त कर लक्ष्मण असम्भव नहीं है । रामायणमें सुमीव और विभीषण दोनों ही दीन पात्रोंके केवल मन्त्री ही बच रहे थे,



'तर्है रह शान्त गदित शुभोवा ।'—(शान्त गंग मे भगवान् गण्ड ।) इत्येते धर्ममें दोनोंके मनोरथ एकत्र ही हुए ।

श्रीहनुमान्जी जब शुभीयके लक्ष्मणे बद्धरूप पारव्याकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलते हैं और उनसे बातचीत करते हैं, तब आपकी शान्त गरिमा तथा अनन्य भक्तिका यदा सुन्दर शिक्षणीय परिचय प्राप्त होता है। आप तात्पर्यरूप भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणसे पूछते हैं—

को तुम्ह स्वामल गौर सरीस । छत्रीरूप निरतु 'वन' बीता ॥  
कठिन भूमि कोमलपदगामी । कवन हेतु विचरतु 'वन'स्तामी ॥  
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह 'वन' आनपवता ॥

इन तीनों चौपाइयोंमें 'वन' शब्द एकमें भी नहीं छूटने पाया है। बारबार 'वन' शब्दका मुँहसे निकलना इस यातका प्रमाण है कि आपके हृदयमें उन कोमल-चरणोंसे स्वाभाविक प्रेम है और उन कोमल चरणोंका या कोमल-चरणवालेका 'वन' में फिरना आपके हृदयमें गूल-सा खटक रहा है। कहाँ वह 'मृदुल मनोहर सुन्दर गात' और कहाँ वनके 'दुसह आतप यात' को सहनेका कष्ट! कैसा असामंजस्य है? कुछ इसीप्रकार धीभरतलालजीके मनमें भी उन कोमल-चरणोंका 'बितु पनहीं' वनमें भटकना खटका था। उन्होंने भी कहा था—

राम-रुलन-सिय बितु पनहीं । करि मुनिबेध फिरहिं वन वनहीं ॥  
यह दुःखदाह दहै नित छाती । मूल न नासर नीद न राती ॥

यहाँ भी 'वन-वन' शब्द असाह्य दुःखका सूचक है। चरण-सेवक श्रीहनुमान्जीने इस मिलनके पश्चात् भगवान्को कभी 'वन-वन' नहीं फिरने दिया। उन्होंने सेवक-भावका उच्च आदर्श दिखाया। लिये दोड़ जन पीठ चढ़ारं। दोनों भाइयोंको अपने कन्धेपर उठाकर सुमीवके पास ले गये। यही तो उनके प्रगाढ़ गुरु प्रेमका उच्चलन्त प्रमाण है। प्रभुकी लड़ाकी यात्रा भी श्रीमालतिके कन्धोंपर विराजित होकर ही हुई थी।

हनुमान सम नहीं बड़भागी । नहीं कोड रामचरन अनुरागी ॥

उपर इसी कार्यके द्वारा संकेतसे सुमीवको भी भगवान्के अपने मित्र होनेका प्रमाण दे दिया, क्योंकि, शत्रु होते तो कन्धेपर कैसे चढ़ाते? दोनों प्रभुओंको पीठपर चढ़ाकर श्रीराम-चरण-निष्ठाका निर्वाह तो किया ही गया, अब आपका भक्तिपूर्ण दूसरा चमत्कार देखिये! जब आप धी-राम-लक्ष्मणकी 'लुगड़-जोड़ी' से पहले मिलते हैं तो

उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये कैसे समाचारके तिलक का प्रयोग करते हैं, 'आत दोनों शत्रिय ही बती, किन्तु शत्रियरूपमें आत या तो त्रिदोषमें कोई है, न मनरातापय है, या अतिव्रत-मुचन पनि (साधन-कर्म) है।' यदि विचार किया जाय तो हनुमान्जीके वीं अनुमान अवतार-वरागारी-भेदसे ईश्वरके सम्बन्धमें सागर, धीरधुनापयी त्रिय परमज्ञके अवतार है, न पर-स्वरूपके अवतार मनरातापय भी है। उन्हीं परमज्ञोंके चला गुणावतार त्रिदोष है। इस प्रकार तीनों परम परमज्ञके ही हैं और तीनों ही पूर और नमस्कारके योग्य हैं। इसीलिये—मात्र नाव पूजा मन भयत्र का व्यवहार कि गया था। क्योंकि वेद बन्दे हुए वैभव-वात्, दुःखको बन्दे वाले तो उसके वैभवके अनुसार ही उसका सम्मान कि करते हैं। बरत्र बलीकी यथार्थ पहुँचसे हमें उनके चरणसे होनेको परिचय मिलता है और साथ ही यह पता चलता कि योगियोंके अन्तःकरण सत्यकी किम सहक पहुँच को है। रामायणमें इस विषयके और भी उदाहरण मिलते हैं। सच्चे जीही धीजनकजीने भी इसी प्रकार इस समय परला था—

त्रय जो निगमनेत्रि कहि गावा। उमय वेध परि की शेष जावा ॥

—मन्तराज विभीषणजीने भी श्रीमालतिके देवाँ कहि था—

की तुम्ह हरिदासन महे कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥  
की तुम्ह राम दीन अनुरागी । अपेक्षु मोहि करन बड़भागी ॥

विभीषणजीने विप्र-वेश-धारी हनुमान्के सम्बन्धमें ही अनुमान किये, कि या तो आप राम हैं या रामके लक्ष्मण ।

श्रीहनुमान्जीने भगवान् श्रीरामको उन्हींके दिने ही बुद्धिबलसे ही पहचाना था। सतत प्रेमपूर्वक भवा करने वालेको भगवान् बुद्धियोग देते हैं (गीता १०।१०)। लक्ष्मणके इस सिद्धान्तको श्रीहनुमान्जीने प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया। सच्चे अधिकारी भक्तके प्ररनोंका उच्चर देते हुए ही परमायजी महाराज अपने नाम, रूप और धामका निर्देश करके हुए कहते हैं—

कैसेलस दसरथके जाय । हम पितु बचन मानि वन जाय ॥  
नाम राम-रुखिमन दोड़ भाई । संग नासि सुकुमार सुदर्य ॥  
रहौ हरी निसिचर बंदेही । बिप्र किरिहिं हम सोखत देही ॥  
इसमें 'नाम राम रुखिमन दोड़ भाई' से नाम, 'कोलभ

परके रूप' हसमें धाम सथा रूप एवं 'हम विनु बचन मानि न भाए' और 'रहो हरी नितंबर बेरोहो' से जोलाका बंधन क्या है। सत्पन्तर भगवान् भक्तवर श्रीहनुमान्जीसे जुते है—

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुसाई ॥

'हमने सो अपना हाज सुना दिया, अब दे विप्रवर ! आप कौन हैं सो तो बताइये ?' इस मर्म-बचनके उत्तरमें श्रीहनुमान्जीने जो कुछ किया और कहा, उससे उनकी सभी दोनतां, यथार्थ शरणागति, भ्रष्टाधिक अनुक्ति, प्रसाधारण निर्भरता और गम्भीर ज्ञानका पता लगता है। जामी धीरामको पहचानकर मारुतिजी घरयोंमें गिरकर रामनन्दमें मग्न हो जाते हैं। शिवजी कहते हैं—सो छल उमा जार नहि रत्ना। इसके बाद उनके स्पवहार और बचनोंका आदर्श देखिये—

पुतकित तनु मुस आव न बचना। देखत रहिरे बेकै रचना ॥  
पुनि धीरज घरी अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही ॥  
मोर न्याउ मै पूछा साईं। तुम कस पूछहु नरकी नाईं ॥  
तव मायाबस फिरडें मुळाना। तते मै नहि प्रभु पहिचाना ॥

एक मन्द मै मोहबस, कुटिल हृदय अग्नान।  
पुनि प्रभु मोहि बिसरोउ, दीनबन्धु मगवान ॥

अदपि नाथ बहु अलगुन मोरे। सेवक प्रजुहि परै जनि मोरे ॥  
नाम जीव तव माया मोहा। सो निसरै तुम्हारेहि छोहा ॥  
तापर मै रघुबीर दोहाई। जानौ नहि कछु मजन उपाई ॥  
सेवक-सुत पति-मानु मरोसे। रहै असोच बने प्रभु पोसे ॥  
अस कहि परैउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस स्तवितमें श्रीहनुमान्जीने पाँचों स्वरूपोंका रहस्य बड़ी विचारगुणवासे खोज दिया है। जीवस्वरूप, परस्वरूप, विरोधस्वरूप, उपायस्वरूप और फलस्वरूप—इन पाँचोंका ही निचोड़ हसमें आगया, जो सर्व शाकोंका सार-रूप है और जिसको जानना अत्यन्त आवश्यक है। कहा है—

'प्राणस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्नुष्य प्रत्ययात्मनः।  
प्राप्तुपायं फलप्राप्तितया प्राप्ति विरोध च ॥  
वदन्ति सकला वेदा सैविहास पुराणकाः।  
मुनयश्च महारामानो वेदवेदान्त वेदितः ॥'

समस्त वेद, इतिहास, पुराणादि और वेद-वेदान्तके

ज्ञाता मुनि महात्माओंका सिद्धान्त है कि जबतक इन पाँचोंका बोध नहीं होता तबतक जीव संसारसे पार नहीं हो सकता। 'मोर न्याउ मै पूछा साईं' से 'जीवस्वरूप' का बोध होता है, जिसका आशय गोस्वामीजीने 'हर्ष विषाद व्यान अग्नाना। जीव भस अहमिति अमिगना ॥' बतलाया है। 'तुम पूछहु कस नरकी नाईं' 'तव मायाबस फिरडें मुळाना' 'मो निसरै तुम्हारेहि छोहा' 'पुनि प्रभु मोहि बिसरोउ दीनबन्धु मगवान' ह्यायितसे यहाँ 'ईश्वर स्वरूप' प्रकट होता है, वीसा कहा है—'व्यान अखण्ड एक सीतावर।' 'बन्ध मोच्छयत सर्वपर माया प्रेरक जीव।'।

'नाथ जीव तव माया मोहा !' से 'विरोधस्वरूप' यानी, सायाको दिखलाया, जो भक्तिमें बाधक हो रही है। 'सेवक-सुत पति-मानु मरोसे। रहै असोच बने प्रभु पोसे ॥' से 'उपाय-स्वरूप' अर्थात् दास और छोटे बच्चेकी भाँति सप साधनों-से रहित होकर केवल प्रपत्तिसे ही उद्धार होना बतलाया। 'अस कहि परैउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।' से 'फलस्वरूप'—भगवन्-चरणकी प्राप्ति तथा प्रेमानुक्ति ही परम फल है, यह दिखलाया है। इसीप्रकार 'तापर मै रघुबीर दोहाई। जानौ नहि कछु मजन उपाई ॥' कहकर सच्चे भक्तोंकी दीनतारूप मुख्य धारणाका मर्म भी समझा दिया। सच्चे भक्तोंके हृदयमें यह भाव कदापि क्षयमें भी नहीं आता कि 'मै भी कुछ हूँ' वा सुदरमें भी कुछ गुण हैं।' श्री-भरतजी कहते हैं—

× × × मै सठ सदा सदैस।  
आपन जनि न त्यागिहै मोहि रघुबीर भरोस ॥

प्रेमीवर सुतीक्ष्णजी महाराजने कहा है—

'भक्ति न विरति ग्यान मन नाहीं ॥  
नहि सतसंग जोगजप जाग। नहि दृढ चरन-कमल अनुराग ॥  
एक बानि करुनानिधानकी। सो प्रिय जाके भति न आनकी ॥  
गोस्वामीजी तो शपथ ही खा रहे हैं कि—  
कवित बिबेक एक नहि मोरे। सत्य कहाँ लेखि काण्ठ कोरे ॥

सारांश यह, कि भगवान्के सच्चे शरणागतजन 'अहं-मम' आदि समस्त सम्बन्धोंको निश्चितरूपसे प्रशुकी वस्तु समझ लेते हैं। वह अपनेको भी अपना नहीं समझते। भक्तवर श्रीधामुनाचार्यजीने कहा है—

'मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं  
सकलं तद्धि तवैव मायव।

नियत स्वमति प्रमुदपीरयता  
किन्तु रामर्पायि ते ॥  
(भालवनार)

'हे माधव ! हे मेरे नाथ ! मेरा जो कुछ है वह, और जो कुछ मैं हूँ सो, सब तेरा ही है । मेरी मति और प्रमुद शुद्धि भयवा भयन्व जो कुछ है सो सब तुमको समर्पण करता हूँ ।'

जब स्वामीके प्रति मन-वचन-कर्म सीनोंसे शुद्ध प्रपन्नता हो जाती है, तभी प्रभु उसे स्वीकार करते हैं—

अस कहि परेउ चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस चौपाईमें श्रीहनुमान्जीने शुद्ध प्रपत्ति सिद्ध कर दी । 'अस कहि' से वचनकी प्रपन्नता, 'प्रीति उर छाई' से मनकी प्रपन्नता, तथा 'परेउ चरन अकुलाई' से तनकी प्रपन्नता सिद्ध हुई । इतना ही नहीं बटु-नेपरूपी कपटको दूरकर 'निज तनु' भी प्रकट कर दिया । भय तो भगवान्से नहीं रहा गया, उठाकर हृदयसे जगा लिया और प्रेमाशु-धाराओं-से बने अभिषेक करने ।

'तब रघुपति ठगइ उर लावा । निज-लोचन-जळ सीचि जुड़ावा ॥'

श्रीहनुमान्जी कृतार्थरूप हो गये । स्वयं ही कृतार्थ नहीं हुए, इसके बाद सुग्रीव-विभीषण आदि जिन जिन लोगोंने आपसे सम्बन्ध रखता या किया, उन सबको भी प्रभुकी प्राप्तिद्वारा कृतार्थ करा दिया । यही तो सन्तोंकी महिमा है !

श्रीहनुमान्जीके संगसे उपलब्ध श्रीरामकृपासे सुग्रीवजी राज्यासनपर विराजते हैं, परन्तु जब राममदके कारण 'रमाविज्ञास'में रम जाते हैं तब श्रीहनुमान्जी बड़ी ही दूरदर्शितासे आदर्श विनयपूर्वक सुग्रीवको सब प्रकारसे सचेत कर देते हैं ।

इहाँ पवनपुत्र हृदय विचार । रामकाज सुग्रीव विस्तार ॥  
निकट जाइ चरननिह सिर नावा । अपिहु विधि तेहि कहि समुझावा  
इस काममें आपकी शुद्धिमत्ता, सुग्रीवके प्रति हितैषिता और 'रामकाज' की चिन्ता तथा मन्त्रिलक्षके नाते कर्तव्य-परायणता और नम्रता सभी एक साथ प्रकट हो जाते हैं । आप इतना ही करके शान्त नहीं हो जाते । सुग्रीवकी अनुमति लेकर स्वयं दूतोंको सम्मानपूर्वक बुलाते हैं और भय तथा प्रीति दिलाकर वानरोंको बुलानेके लिये उन्हें द्रुमन् भेज देते हैं । यदि आपने ऐसा न किया होता तो सुग्रीवपर कितना बड़ा कोपाक्रमण होता ।

जब वानरपूज इच्छे हो गये और श्रीरामचन्द्रजीको ज्ञातमें भेजे जाने लगे तब भारतका वन भी दक्षिण दिश की ओर चला । उरा समय सबमे पीछे आपने अंतर्जुनके के चरणोंमें तिरंगा प्रणाम किया । श्रीरामचन्द्रने अपने निष्कट बुद्धाकर अपने माकमपशारी कोमन कर-बन्धन एवं महाकरार रख दिये और आपना ही बन जानकर सदिराने निमित्त शुद्धिका दे दी । फिर श्रीरघुनायजी बोले—  
बहु प्रचार रीतिहि समुझापेहु । कहि बत निरह नेमि तुम्ह अन्तु ॥

आज श्रीहनुमान्जीका जीवन सफ़ल हो गया । यहाँ सोचा कि मेरे समान बड़भागी कौन होगा जिनके मन्त्र पर मेरे नाथने आज पाप ताप और माया हीनोंको सब साथ मिटा देनेवाले कर-बन्धन रख दिये । क्या है—  
कन्हू सो कर-सरोज रघुनायक, धरिदौ नाथ । लौठे सो  
जेहि कर अमय क्रिये जन आहत बारक निवस नाम दे ॥  
संतोह मुग्ध छँह जेहि करकी भेटति पापदास नाम ।  
निःसि-नासर तेहि कर-सरोजकी चाहत तुलसीदास नाम ॥

पशुतः लक्षायाप्राप्तं श्रीहनुमान्जीको लीनों ही सब प्राप्त भी हो गये । तीनोंका पृथक् पृथक् विवेचन सुनिये । श्रीहनुमान्जी लक्षा दहन करते हैं । यहाँ चारों तरफ दादाकार मच जाता है । भगवित जीव जलकर मल हो जाते हैं । इनकी गर्जनाको सुनकर अनेक राक्षस-नातिने गर्भपात हो जाते हैं । यह सब हुआ परन्तु आपका किसीने स्वप्नमें भी ऐसी शक्ता नहीं की कि हनुमान्जीके ऐसा करनेमें कोई पाप लगा । करते भी कैसे ? जिनके मस्तकपर परम कारुणिकका भ्रमय हस्त फिर गया, वहाँ पाप कहाँ ? यह तो हुई पापकी बात, अब तापकी क्या सुनिये । यों तो आप स्वामाविक ही त्रिविध तापसे मुक्त हैं, परन्तु यहाँ उस तापके सम्बन्धमें कहना है जिनके आपने सारी लक्षाको तप्त कर दिया था । आपकी हीनता जगत्पुत्री हुई अग्नि जिस समय करोड़ों लाख-लाख लक्षों लक्षाको दग्ध कर रही थी उस समय प्रलयपापि बा बरतना भी उसके सामने तुच्छ थे । अग्निशिलायें माते कर रसनाके स्रष्टा सबको घाट रही थीं । मूलजघार शुद्धि उस समय घृताहुतियोंके स्रष्टा अग्निको अतिक्रमण प्रचण्ड कर रही थी । समुद्रका जल उबल रहा था, विकट स्थितियोंमें आप सहज ही उबल रहे हैं, सारा शरीर रोमसे आहत है, परन्तु आपका भाँचसे आपका बाज भी बाँका नहीं होता । कैसा काल

है। बात यह है 'शोषर तिन्यु अन्नक तितलारं'—की प्रभुतावाले प्रभुका अभय हस्त तिनके सिरपर रक्खा गया, उनके लिये तापकी सम्भाषना ही नहीं रहती !

अब रही मायाकी बात; श्रीहनुमान्जीको तीनों प्रकारकी गुणमयी मायाका सामना करना पड़ा, परन्तु आप सबका पराभव करते हुए आगे बढ़े हैं। सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीनों ही मायासे सामना करना पड़ा। देव-कोकने आधी हुई सुरसा सनोगुणी, अधोनिवासिनी सिंहिका ओ उदते हुए पशियाँकी क्षायको एकत्र कर उन्हें खींच लेती थी, तमोगुणी, और मध्यलोक लंका-निवासिनी लङ्किनी रजोगुणी थी। उच्च, मध्य और नीचस्थानोंमें रहनेवाली होनेके कारण उपनिषद्मयी गीताके सिद्धान्तानुसार इनका क्रमशः साधिका, राजसी और तामसी होना सिद्ध है—

ऊर्ध्व गच्छन्ति सावस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणानुसिंस्थाः अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

इनमें सुरसा तो देवलोकोसे श्रीहनुमान्जीके बुद्धिबलकी (रीषाके लिये आधी थी)।

कदा पवनसुत देवन्दह देहा । जना चह बलमुदि-विसेहा ॥  
सुरसानाम अदिन्दकी माता । पदन्दि आद कपी वेदि बता ॥  
आर मुरन्द मोर्दि दीन्द अहारा । मुनि हंसि बोहा पवनकुमारा ॥  
रामकाज करि फिरि मैं आतां । सीताके सुधि प्रमुधि सुनतां ॥  
तव तव बदन पैठिहां आर् । सत्य कहों मोर्दि जान दे माई ॥  
कबनेहु जन देदि नहिं जाना । प्रसासे न मोर्दि कहेउ हनुमाना ॥

सुरसाने कहा-आज तो देवोंने लूच भोजन भेजा। इसपर श्रीहनुमान्जी हँसे। इस हँसमुख मुद्रासे यह सूचित होजा है कि आपको सुलह स्वीकार है। इसके बाद भारतजीने 'राम' शब्द का उच्चारण किया। क्योंकि श्रीराम-नाम सर्व विघ्नविनाशक और शत्रुको भी अनुचूड़ करनेमें समर्थ है। यथा—

हाँरि चारि चिरिके मोहरि हितकारी होति

आर् मीचु मिष्टि रटत रामनमके ।

पर इस राम-नामसे भी सुरसाने मार्ग नहीं छोड़ा। वहाँ यह शब्दा होगी कि हनुमान् सरीसे कामनिष्ठका यह प्रयोग निकल कर्यों हुआ। इसका उत्तर यह है कि सुरसा तो प्रविचूड थी ही नहीं जो अनुचूड़ होती। यह तो प्रारम्भसे ही अनुचूड़ थी, जो योग्यताकी जाँचके लिये आधी थी। इसीलिये यह नहीं हटी। इसके बाद आपने

यह सूचित किया कि मैं 'राम-काज' से जा रहा हूँ। बदेका काम सुनकर मामूली लोग भय खा जाते हैं (राम रजाइ सीस सबहीके)। इसका भी कोई फल नहीं हुआ, क्योंकि अभी परीक्षाके बहुतसे विषय बाकी थे। अब हनुमान्जीने सोचा कि श्रीजातिकी श्रीजातिके प्रति स्वाभाविक सदासु-भूति होगी, इससे, 'सीताके सुधि' प्रभुकी सुनानेकी बात कही। इसपर भी सुरसा नहीं हटी। तब प्रतिज्ञा करके समय खेता उचित समझा और 'तव तव बदन पैठिहां आर्' कहा, इसपर भी जब यह नहीं मानो, तब उसे 'माता' (माई) कहकर सम्बोधन किया। क्षियोंमें अपत्य-स्नेह स्वाभाविक होता है। कहीं मातृभावसे बालक समझकर ही पोक दे। हनुमान्जी किन्पी प्रकार भी 'रामकाज' करनेकी चिन्तामें मग्न थे, उन्हें दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं थी। इसपर भी जब यह न मानी तब आपने कहा कि फिर खा क्यों नहीं डालती (प्रसासे न मोर्दि) इतना सुनते ही सुरसाने एक योजनका मुँह फैलाया, श्रीहनुमान्जी 'रा' 'म' रूपी दो अक्षरोंके बलसे उससे दूने बढ़ गये। तब सुरसाने नारी प्रकृतिके अनुसार उनसे छद्मगुना सोलह योजनमें सुलका विलार किया। भारतजीको तो ('मोति प्रतीव है जातर 'दू' की 'हुलकी हुलके बल आखर दू' को') दो अक्षरोंका ही भरोसा था इसीलिये वे फिर दूने बत्तीस योजन बढ़े। तब तो सुरसाने किसी नियमको न मानकर सौ योजनमें मुँह फैलाया। श्रीहनुमान्जीने सोचा कि सौ ही योजन समुद्र पार करनेकी बात थी, धवधि भा पहुँची अतएव अब इत्से भी पार करना ही चाहिये। तब—अति लघुरूप पवनसुत कीर्णा-घोडासा रूप बनाकर उसके मुँहमें घुस गये और चटपट बाहर निकलकर भाशा मारी—

बदन पैठे पुनि नहेर आवा । माँगी बिदा तादि सिर नावा ॥

श्रीहनुमान्जीके बुद्धिबलका मर्म समझकर समुद्र हो सुरसाने चारीबाँद दिया—

'रामकाज' सब करिहुहु तुम बलमुदि निपात ।

अस्तिन देह गई सो हरिनि जडे हनुमान ॥

श्रीहनुमान्जीने अपने बुद्धिबलसे बाधको साधक बनाकर चारीबाँद प्राप्त कर लिया। कर्तव्यपथमें विघ्न करने-वालेके साथ किन् प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस बातकी हमें इससे लूच शिक्षा मिलती है। हमके बाद क्रमशः सिंहिका और लङ्किनीको स्वभावानुसार पुरालूच कर आप छोड़ा वृत्ते ।

शाध्यात्मिक दृष्टिसे इस लड़ा-यात्राका अभिप्राय यह है कि जब जीव भक्तिकी खोजमें परमार्थ-पथपर चलता है तो उसे तीन प्रकारकी गुणमयी माया बाधक होती हैं। इन तीनोंसे भीहनुमान्जीके सदाश व्यवहार करना चाहिये। सतोगुणोंसे विरोध विरोध न करे क्योंकि शुभकर्मोंकी प्रवृत्तिसे विरोध करना उचित नहीं और निवृत्ति होनेके लिये भजनके हेतुसे उसका सङ्ग निवाहना भी असम्भव है। घतः उसके अनुकूल होते हुए भी अपनेको छोटा बनाकर उससे झुटकारा पानेका प्रयत्न करे, प्रवृत्त न हो, क्योंकि शुभाशुभ दोनों ही प्रकारकी प्रवृत्तिका त्याग करना ही भगवन्-प्रेमियोंके लिये श्रेयस्कर है।

त्यागहि कर्म सुमासुमदायक। भजहि मोहि सुर नर मुनि नायक ॥

श्रुति कहती है —

'न कर्मणा न प्रजया न धनेन

त्यागेनैकन अमृतत्वमानशुः'

इस प्रकार सतोगुणी मायासे बचे।

सतोगुणी मायाको सिंहाकाकी भाँति जानसे मार जाये। साधन यह कि उसे निःशेष त्याग दे क्योंकि पापकर्मोंका धेरा भी परमार्थके लिये दिन और रातकी तरह विरोधी है।

धनः 'भूत न दोह दुमाय पाके ।' सतोगुणी माया बड़ी ही पागल और तीव्र होती है, इससे उसको छाया भी नहीं छूने देनी चाहिये, नहीं तो वह छायामात्रको पकड़कर ही हमारा ध्यान बट कर देगी। हमने सदा सचेत रहना चाहिये और जहाँ किञ्चि भी सन्देह हो, वहाँ—'तद्यु कपट बन्दि दुःखि चीन्हा' के अनुसार दुःख पहिचान कर कपट उतरवा काम लभाम कर ही धारणा चाहिये। 'तद्यु दिन एव न रात्रि बज्ज ।'

सतोगुणी मायाको अपनी भाँति बन्दि छोड़ दे, क्योंकि हमका सर्वथा विचारकाल करनेमें टारतारकाय भयव्यवहार हो जाना पड़ेगा। टारतारका भयके लिये कष्ट कष्ट प्रत्यक्ष काम करने हैं, परन्तु उनका ही विना भारवानुसार मत हो 'कष्ट कर्म कष्ट'। धनः सतोगुणी मायाको कष्टियोंकी भाँति न बचक करने दे और न बट ही करे, बल्कि कष्टों का, करने कायमें का उभयसे काम विचारके, 'कष्टकर्मकर्मकर्म न वैद्वान्बदरमः' (शुभ्र १।१६) श्लोकसे बच कष्टकर्म न होकर कष्टकर्म ही रहेगी। इसप्रकार कष्टकर्मोंसे बचने हेतु कष्टकर्मोंकी शक्ति-माताकी खोजमें बचने करना चाहिये।

इसके बाद श्रीहनुमान्जी अब लड़ाईमें भाग विरत जीसे मिलते हैं और उनको घन्तर-बाहरसे बट कर उनके बतलाये हुए मार्गसे शशोकवाटिकामें पहुँच कर सीताका साक्षात्कार करते हैं।

भक्ति-माताकी खोजमें निरत साधकको सतुल्य यह ही हनुमानरूपी जीवको विभीषणरूप सतुल्योक्त तदनन्तर भक्तिरूपी सीताके दर्शन हुए। इस प्रसंग विरोध ध्यान देने योग्य बात है कि मायासे झुटकारा भी सन्त-समागमके बिना यथार्थ भक्तिकी प्राप्ति नहीं है इसके सिवा साधकको छोटा-छरा बलीभाँति परधन किसीको गुरु बनाना चाहिये। इसकी विधि भी परी दी है। धरके बाहर श्रीराम-नाम अङ्कित और दुःख देखकर ही हनुमान्जीने सुरन्त विरवास नहीं कर नि जब विभीषण जगकर 'राम राम' कहने लगे, तब सि किया, क्योंकि रामायणान्तर्गत प्रतापमानुकी कथाने ही प्रकट है कि जगत्में साधुवेपमें घोर असुषु भी स्वार्थ-का निमित्त निवास करते हैं। कहा है—

तुलसी देसि सुबच, भूईहि मूढ, न चतुर नर।  
सुन्दर केकी पेलि, बचन सुधा-सम कसन कदि ॥

अतः जिस प्रकार श्रीहनुमान्जीने विभीषणके त और भीतरी सब लक्ष्योंको देखकर ही उन्हें सन्त बन तथा उनपर विरवास किया, सन्त-समागमके कर्म भक्तोंको बैसे ही परीचा करके विरवास करना चाहिये। साम्मत सन्तोंके लक्ष्य यथातथ्यं मित्र जानेरा तस ह्यु कार्यशान्तिकी सङ्घा नहीं रह जाती।

तब हनुमन्त कही सब राम-कथा निज मन।  
सुनत सुगन्तनु पुस्तक मन भग्न सुमिरि सुन-प्रन ॥

दो सन्तोंका सतसङ्ग हुआ। दोनों रामायणकी तब, मन, बचन एकाकार हो भगवान्के गुणानुसार ही हो गया। परन्तु इस अवस्थामें भी साक्षात्कार कि पूर्ण शान्ति नहीं। तभी तो वे बोले—देला परा माया। फिर विभीषणोपरिष्ट मार्गसे शशोकवाटिकामें ही भगवान् विभीषणकी सिधामे सीताजीकी सर्वाङ्गीय ध्यान धारणे स्वामीकी मुद्रिका मानाको प्रदान की।

मुद्रिका प्रदानमें भी एक रहस्य है। भक्तिके लिये कुन मायक भेद जाना है वह कन्तु होनी क्या है। के प्रवृत्ति ही हुई ही! कन्वया देवता की बन्दि किन्ही कन्वको कर्तते पाया। इन्हीं के।

'अदीव वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्' का विधान है। इस प्रकार जब भक्तिके निमित्त प्रभु-प्रदत्त वस्तु समर्पित की जाती है और राम-यशकी पुष्पाञ्जलि चढ़ाने लगती है—रामचन्द्र यश वर्णन लागू । तब तुरन्त ही स्वयमेव आह्वान होता है।

श्रवणामृत वेदि कथा सुनार्ह। कहि सो प्रणत होत किन मारं ॥

यहाँ बड़ा रहस्यपूर्ण प्रसङ्ग है। श्रीहनुमान्जीके निकट जानेपर माताजी पूरी परीक्षा देनेका विचार कर सुँह केर बैठ गयीं। फिर वैठी मन विसमत्त भयत् ।

तदन्तर जब हनुमान्जीने रामभक्त होनेके परिचयमें सहिदानी मुद्रिकाका लक्ष्य कराते और 'कहपानिधान' का नामकी साथ शंषय करते हुए उनका दास होनेकी शपथ उठाकर पृथक् रूपसे विश्वास दिलाया—

रामदूत मैं मानु जानकी। सत्य शपथ कहुवानिधानकी ॥

यह मुद्रिका मानु मैं आनी। दीन्ह राम तुम्ह कहैं सहिदानी ॥

तब उन्हें मन, कर्म, वचनसे 'कृपासिन्धु, का दास जान परम प्रसन्न हुई और पुत्रकित होकर सन्तुष्ट मनसे आशीर्वाद प्रदान किया।

जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सज्ज नयन पुत्रकावलि उढ़ी ॥

आसिष दीन्ह रामप्रिय जना। होहु तप्त बह सील निधाना ॥

अजर अमर गुननिधि सुन होहु। सदा करहि रघुनायक छोहु ॥

धरुने विमल वाराण पापा। हनुमान् मेममें तन-मनकी पि भूख राये।

करहु कृपा प्रभु अस मुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥

—यही निष्काम भक्तोंका परम धन है।

यहाँ श्रीहनुमान्जीने यह प्रमाणित कर दिया कि नगबन्ध-भेदियोंको प्रभुकी कृपाके कठोरिक और कुञ्ज भी नहीं चाहिये।

अब इतद्वय मयत्तें मैं माता। आसिष तब अमोघ विह्वला ॥

इसके बाद लड़ाये विरा होये समय हनुमान्जी कोहैं सहिदानी मारिगते हैं और भाषा चूड़ामणि उवाचकर देती है।

मुद्रिकाके पहले चूड़ामणि प्रदान करनेमें भी गूढ़ रहस्य है। भगवान्ने जो अपने हाथका मूषण 'मुद्रिका' दी, इसका अभिप्राय यह है कि 'हे सीते! तुम कहीं भी हो, मेरे कर-कमलकी छाया सदा तुम्हारे सिर पर मौजूद है, तुम शमय इसके छाद्ययमें शमय हो।' और उसके बदलेमें सिरका गढ़ना चूड़ामणि देनेका अभिप्राय यह है कि 'हे नाथ! यह शीश आपके कर-कमलकी छाया छोषकर दूसरा श्वलभजन नहीं रखता।' इस अभीष्ट सिद्धान्तकी शिक्षा प्राप्त कर श्रीरामकी जख्मी खैटनेकी आशाशुभार श्रीहनुमान्जी माताको धैर्य दिलाकर खौट चले।

सारा काम श्रीहनुमान्जीके कौशलसे ही हुआ था तथापि आप सङ्कोचयश स्वामी श्रीरामजी और सुगीवके पास धमकसे सामने सीना करके नहीं गये, बरं सिर मुकाये ही गये और जाकर भी पीछे ही छिपे रहे। सम्भवतः यह भी खयाल रहा होगा कि स्वामीकी आज्ञा बिना ही प्रसन्नवस लड़ा-दहन और साधन-व्य करना पड़ा, इसके लिये कहीं प्रभु श्रमसन्न तो नहीं होंगे? तदनन्तर आपकी सारी कहानी भगवान्को जासबन्तने सुनायी। इतना महान् कार्य करके भी हनुमान्जीके हृदयमें अभिमानका झुर्र न जमा। अभिमान-का अत्यन्त श्रमाव होनेके कारण ही आप अपना बल गुंजे रहते थे। इससे शिक्षा मिलती है कि बदसे क्या कार्य करके भी कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। श्रीहनुमान्जीने यह साथ सिद्धान्त बतला दिया—

सो सब तब प्रताप रघुपार्ह। नाथ न कहु मोरी प्रभुपार्ह ॥

'सारी सिद्धियाँ केवल प्रभु-कृपासे ही प्राप्त होती हैं।' साधकके लिये यह भावना शिक्षायन् विषय है। श्रीहनुमान्जीकी मज्जताका वर्णन प्रसंगपर गोस्वामीजीने रावण-छत्रद-संचादके प्रकरणमें किया है। जब रावण श्रीरघुनाथजीकी सेनामें सबके बलकी निन्दा तथा श्रीहनुमान्जीकी प्रशंसा करता है, तब छत्रदजी वस्तुस्थितिकी मज्ज करने हुए कहते हैं कि—

अब जानेत पुर दंष्ट कवि, विनु प्रभु-आयमु पद।

पुनि न गयेउ नित्र नाथ पद, तेहि मय रहेउ दुष्पाय ॥

तथा—

राज नगर अल्प करि दरहैं। मुनि अस बचन सल दो करहैं ॥

'हे रावण! अब मुझे यह रहस्य मालूम हुआ, बिना प्रभुकी आज्ञा छिपे उस बाबुरने लड़ा-दहन किया तभी तो

श्रीरामजी सञ्चरके सारा 'कहपानिधान' हनुमान्ने सम्कीर्णन रली थी, हनुमान्को हय मर्मस्य दाता आनन्द ही विरासत किया।

यद् भगवान्के भगवने नदी गगा, भयके मारे निरुद्धा। अथवा  
 पुण्डरीक भाग हो गयी नहीं है। भवा, वह कथा-गग गीता  
 सादा वाचक क्या हुने विराट नगरको भजा गयना है ?  
 धर्मद्वीके हुन कथनयो यद् विद् होना है कि श्रीरामान्-  
 धीकी अस्पष्ट गणना, विरिधिमामनाके कारण अत्रने भी  
 उनको इतना काम करनेवाजा नहीं समझा था। कोई  
 समझना भी कैसे ? श्रीरामानन्दी तो करने हुँये भवनी  
 बर्दाईकी कोई बात कभी करने ही नहीं थे, वे तो पुराण  
 सेवामें लगे रहते थे। वे कवि-गमानके शब्द-शान्तमें कभी  
 भाग नहीं लेते थे।

गोस्वामीजीने इनकी वन्दना 'महादेव विमरी वन्दना'  
 'वन्दो पवनकुमार' द्वारादि कथे ही कथये शब्दमें की है,  
 और इनका ऐसा रचना देकर इनके दिनवानुगन्धानकी  
 स्पष्टताके लिये एक जगह तो इनके नामके 'मान्' शब्दको  
 हटा ही देना अथवा समझा है। जिसने जीवन भर 'मान'  
 की उपेक्षा की, उसके नामके अन्तर्गत 'मान'का रहना  
 गोस्वामीजीको कैसे नहीं स्पष्टता ?

उभय मूर्ति तोहि आनहु हंसि कह कृपानिकेत ।

अप कृपालु कहि कपि चले अंगर 'हनु' समेत ॥

कैसा अथवा प्रसन्न है। विभीषणजी रावणसे विमुख हो  
 भगवान्की शरणमें आ रहे हैं, उन्हें शिवा खानेके लिये  
 कपिसमाज जाता है। सन्त मिलनका शुभ अर्थपर है। ऐसे  
 अवसरपर श्रीमारतिजी 'मान्' लेकर क्या करते ? यही  
 कारण है कि श्रीतुलसीदासजीने 'हनु' मात्रका प्रयोग कर  
 रक्षाभाविक वर्णनकी पराकाष्ठा दिखला दी।

इसी नम्रताके कारण हनुमान्जी भक्ति और शक्तिके  
 समान अधिकारी हुए, जिसके कारण अन्तमें श्रीभगवान्के  
 श्रीमुखसे भी ये उद्गार निकल पड़े—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं क्रोध सुर नर मुनितनु धारी।।

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माँहीं ॥

इतना ही नहीं, श्रीहनुमान्जीने, शक्ति प्रकृत्यसे श्री-  
 अक्षयजीको, विजय-सन्देशसे श्रीजानकीजीको, और अथ

शान्तनव गणेशके श्रीमरुतीको तथा समान इतने  
 कभी बना दिया। यही कारण है कि श्रीरामानन्द  
 शरणको भी अतः मान है।

मन ईन्द्र निरुद्ध हनर्प । वेः प्रमु लेर्पि स्वर्ग  
 मारु-गुन तव मारु कर्प । तुल्य वपु लेखनकर्प ।  
 निरिक्त जगु र्द्वि लेखर्प । बार बार प्रमु मित्रु र्पि ।

भगवान् शरण देने अथवा गुणानुसार करने इतने  
 करने हैं। भाग्य जीवन सेवा और पुण्यार्थक  
 और हुनये हमें वद् अन्वयम शिवा मत् इतने  
 भगवान्की सेवाके साथ साथ पुण्यार्थ करने अथवा  
 कृपादि होनी है और जीवन मरुत हो जाना है।

कन्दो पवनकुमार, शत्रु-वन पालक मन्वन्त ।

जगु हृदय-आधार बसहि रत्न सर-पत्तार ॥

पश्य हनुमान् तुमको और तुम्हारे छोड़ाना इतने

● बार्माकीव रामायणमें भगवान् अन्वयने र  
 कहा है—

परिष्पति कथा वाचरेषा लोके व मनिषा ।

लाभते मरिषा शक्तिः अदीरेण्यमरुत्तया ।

कोत्र हि वाचसास्वति वाचसास्वति मे कथा ।

पदेकरवोरधारव प्रागान्दास्वति ते को ।

देवसेहोपद्राणां महाम कृपिनेो वन

मदगे जीर्गतां वापु बलवोरुर्प को ।

नरः प्रत्युपकाराणांमापनवापाति पावर्प ।

( वा००० ०।४१।२२ हे १० )

'हे हनुमान् ! इस लोकमें अवगत मेरी कथा ऐसी

ऐसी शक्ति और तेरा जीवन रहेगा। और अवगत कथा

तबतक मेरी कथा रहेगी। हे वानर, पूने सुतर से से।

किये है, उनमेंसे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं आने प्र

तो भी तेरा बदला नहीं चुका सकता, फिर शेष उरकले

तो तेरा ऋण कैसे चुका सकता हूँ ? तेरे उपकार मेरे ही

जीर्ण हो जायें, ऐसा अवसर ही न आवे जब तुझे बल

बदला पाने योग्य पात्र बनना पड़े। क्योंकि जब मनुष्य

आती है तभी वह प्रत्युपकारका पात्र होता है, अतएव तुम्हारा

आपत्ति ही न आवे।' इन बचनोंसे पता लगता है कि श्रीरामानन्द

भगवान्को कितने प्यारे थे !—सम्पादक ।

# विभीषण

( लेखक—भीरुनाथमसादसिंहजी )



सारिक, राजनीतिक, पारिवारिक दृष्टि-से विभीषणका चरित्र निन्दनीय कहा जानेपर भी आध्यात्मिक विचार-की दृष्टिसे विभीषण एक उच्च कोटिके जीव हैं, क्योंकि संसारमें जन्म प्राप्त करनेका फल उन्हें पूरा मिला गया। अपने जीवनको उन्होंने पूर्ण-तः सार्थक किया। श्रीमुखके बचन हैं कि साधन-धाम, जका द्वार नरदेह बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। इसे पाकर। परलोक नहीं सँवार सकता, वह—

तो परत्र दुख पावत, सिर पुनि पुनि पठिताय ।  
कस्तहि कर्महि ईधरहि, मिय्या देल जगज ॥

विभीषणने विषयोंमें मन न लगाकर भवसागरसे पार निकाल कर दिया। 'सकल सुख स्थानि' स्वतन्त्र भगवद्भक्ति-र भवबन्धन कर इसलोक एवं परलोकमें यथेष्ट सुख प्राप्त किया।

विभीषणजीका मुकाबल तो भगवान्की और पहलेसे ही था, वह भगवत्-प्राप्तिके लिये उसलुक जल्द से किन्तु बिना सन्त-रूपाके सची भक्ति प्राप्त हो नहीं सकती, भक्तिके इत्यकर भेद मिल नहीं सकता। पर सन्त-समागम भी तो बिना पुण्य-भुंज नहीं होता।

'पुण्य-भुंज विनु मिलहि न सन्ता। सत-संगति संसृष्टि कर अन्ता ॥

विभीषणका पुण्य पूरा था। खलमयदलीमें रहनेपर भी वह अपने धर्म निचाहते थे। सभी तो निशिचरनाथ रावण की राजधानीमें भी हरि मन्दिरमें राम-रामका सुमिरन करते हुए वह सज्जनवत्-निवास करते थे। इन्हींके भाग्यसे श्री-निम्नान्जी लंकामें गये।

प्रभुके लिये इनकी उल्लेख्य उल्लेख्यतासे इसीसे जाहिर होती है कि यह विष्णुधर्ममें हनुमान्जीका चक्र सुनते ही तैरे और पूछने लगे कि 'आप हरि हैं कि हरिदास ? क्योंकि आपकी देवता ही मुझे प्रतीति होती है कि मैं जिसकी प्राणमें बैठा हूँ वह आप ही हैं।'

भक्त-मुक्त मद्रता, दीनता और सम्पूर्ण स्नेह भादि जो इनमें थे ही। जिस बातकी कमी थी उसकी पूर्ति भी

श्रीहनुमान्जीके दरशन और उपदेशसे हो गयी। मातृमन्दन एक आदर्श भक्त थे। इनकी दीक्षाके बाद आध्यात्मिक विकास होनेमें आश्चर्य ही क्या है ?

पहले तो वह रावणके मंत्री, उसके दरबारी, उसकी प्रजा और उसके बन्धु होने और सांसारिक वासनाओंके इदपमें रहनेके कारण दुबले थे, संकोच करते थे, पर जब इदप-सरोवरमें वैराग्य-सञ्चित भर गया, मनपर अनुसाराका अनोखा रंग चढ़ गया तब फिर धर्म छोड़कर अभर्षकी ओर जाना आपके लिये सर्वथा कठिन हो गया। जिस रावणके भयसे उसके समुल्ल होते भी संकोच करते थे, अबसर पाकर उसीको सद्गुण देनेके कारण आपने उसका पाप-महार सहन किया। अब क्या था, इस विलुप्त संसारमें इन्हें अपने उदनेका कोई और नहीं दीख पड़ा !

यह तो नियम ही है कि जब मनुष्यका सब बल हट जाता है, सारे सहारे छूट जाते हैं, दुनियासे प्रताड़ित और पीड़ित होने लगता है तब उसे भगवान् सुलते हैं। श्रीसुरदासजीने इसीलिये 'निरबलके बज राम' गाया है।

लंकासे विभीषण छायी होकर चले। पुण्य-भुंजने और दिया। मन निश्चल होगया। भगवान् श्रीरामचन्द्रके शिखिरमें पहुँचे। युद्ध-नीतिके अनुसार दूतोंने राक्षस जान इन्हें पकड़ लिया, सेनातिके पास बंध लाये गये। प्रभुको संवाद दिया गया। दुःखी होकर संसारमें कहीं रहनेका और न पाकर विभीषण थाया है, प्रभुने सहजमें ही इस बातको जान लिया। वास्तवमें, उस समय चक्रवर्ती रावणके बैरीको अपने पास रखने और रावणके क्रोधजन्यसे उसको बचानेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। इसीलिये विभीषणने श्रीरामका आश्रय ग्रहण करना चाहा क्योंकि इस समय तक संसारमें यह राष्ट्र हो गया था कि दरार-यन्त्र धीराम भगवान्के भवदार हैं। अतएव राहमें विभीषण मन-ही-मन सोचता आता था—

देहिहो जाह चरण-जल-जता। अहन-मुहुल सेवक सुख-दाता ॥  
जे पद परसि तही रिनि-नती। दंबक-कानन-पावन काटी ॥  
जे पद जनक-सुता कर ताये। कृष्ण-कुरंग-संग धरि-बाये ॥  
हर-उर-सर सरोज पद-अई। अहो मान्य मैं देखिहूँ तैई



जिन्ह पायन्ह कै पादुकन्हि मरत रहे मन लाइ ।  
ते पद आज बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥

प्रभुने जान लिया कि विभीषण शरय भया है । शरयागतकी रक्षाका प्रया सरकार कभी भूलते नहीं । विभीषण पुलाया जाता है और प्रभुके दर्शन मात्रसे वह पवित्र हो जाता है । वह किसी भी बातको नहीं छिपाता । निष्कपट भावसे कहता है कि, 'मैं तो आपके समीप घाने योग्य पात्र नहीं हूँ क्योंकि आप सुर-द्रावा हैं और मेरा जन्म 'निशिघर वंश' में है, तिस पर आपके प्रबल शत्रु रावणका मैं भाई हूँ । किन्तु बात यह है कि—

धवन सुजसु सुनि आयेऊँ, प्रभु भजन मन-मीर,  
ब्राहि । ब्राहि । आरति-हरन, सरन-सुखद रघुबीर ॥,  
यही प्रभुका मन्तव्य है कि—

सरनागत कहँ जेतजहि निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥

कोटि विप्र-न्ध लागहि जाहू । आप सरन तजउँ नहि ताहू ॥  
सनमुख होइ जीव मोहि जवहीं । जनम कोटि अघनासहि तवहीं ॥  
पापवन्त कर सहज सुमाऊ । मनन मार तेहि भाव न काऊ ॥  
जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई । मोरे सनमुख आत कि सोई ॥  
निरमलमनजन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न मावा

प्रभुकी प्रतिज्ञा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अमरं सर्वमोन्मयो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥

श्रीभागवान्के इस रहस्यको विभीषण धीहनुमान्जीसे सुन चुका था और उसीके बलपर यह भाया था । प्रभुने अपने प्रपद्यो रक्षा, उसकी शरयागति स्वीकृत हुई ।

यहाँ बंधका राज्य मिला, यहाँ परमपदकी प्राप्ति हुई । विभीषणके दोनों छोड़ बन गये । इसीसे कहा जाता है कि शरयमें आज्ञानेने पर प्रभु पत्रायात्रका विचार नहीं करते । शरयागत धीशकी यह धनरपही धरनाते हैं । ध्याम-समर्पण कर धरनेकी धनने हृदयामय प्रेमदेवकी हृदया पर छोड़कर 'मैरव' की सर्वथा धादृति से देनेका नामही शरयागति है । प्रभुके कतिरिक्त और किसी वस्तुकी धाकांचा नहीं, प्रभुको जो माने, वही दिया जाए, और वहीकी हृदयाकी धरनी हृदया मन्तव्य काय वही शरयागति है । यही भक्तिवा रहस्य है ।

## रावणके जीवनसे शिक्षा

(छेखक-पं० बनेन्द्रनाथनी पाठक)

जड़ चेतन गुण-दोषमय, विष कहै कहत ।



स उसके अनुपार प्रकाशो सुदिने शरय भाँति गुण और दोष, पूर्ण रूपसे व्याप्त हैं । अतः किसी वस्तुकी सर्वथा सर्वथा प्रयत्न निर्दोष करना बहुत कठिन है । फिर भी कष्टाकर प्रभुने सांसारिक मनुष्यके हृदयमें, इस विशद्वनामय जन्म श्रवणुणोंसे बचकर धर्म सुख प्राप्त करने

विमित, विवेकरूपी मणिको प्रदीप्त कर मन्व कृत किया है । इसी विवेकके द्वारा मानव समाज शैशव पारलौकिक सुखोंका भोग कर परमधाम प्राप्त करने योग्य बन जाता है । जिस मनुष्यकी विवेकरूपी शी विषय-वासनाओंके मोहमय धन्धकारसे प्रभाहीत हो गई है, वह नाना प्रकारके कष्टोंका लक्ष्य बन जाता है । हृदयसे भले-दुरेकी पहिचान करनेकी शक्ति नष्ट हो गई है और वह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य-भरी बन जाता है । यह बात उतनी ही सत्य है जितना कि दो और दोष अथवा दिनके बाद रातका होना है । हिन्दू संस्कृति की सम्यक्ताके इतिहासमें इस विषयके समर्पणमें प्रभु का उपलब्ध होते हैं । महाभारत तथा रामायणारि विषय ग्रन्थोंमें विवेक-भ्रष्ट राजाओंकी दुर्दशा तथा पतन का विशद वर्णन मिलता है कि जिसे पदकर आश्रयकी ही नहीं रहती । उन्होंने धाविषेकी राजाओंमें पुलस्त्य-कुम्भ-राक्षस-राज रावण भी था, जिसने उम तरस्याके द्वारा शरय शंकरको प्रसन्न कर देव एवं दानव दोनों ही से सुख देने तककी सेवा करवायी थी, जिसने अपने प्रबल मुण्डि प्रबल प्रतापसे काळाभि, हृन्द और बरयको भी धन कीत-दास बना रक्खा था, जिसने अपने जीवनमें राज्या कभी दर्शन तक नहीं किया था, जिसकी स्वर्णरुपी देवक्यर धमरेन्द्र भी खचित हो जाता था, जिसके शरय परमें असंख्य धन्त्रमुण्डियाँ अपनी सुलचन्द्रिकाकी उज्यव्योत्सना सदा सर्वथा चितकाया करती थी, जिसकी अक्षय, मेघनाद और कुम्भकरणके समान कतिरीय वरय योयुधोंसे पूर्ण थी, तथा जो स्वर्ण भी प्रकाश विषय मन्व परान्मयी, अद्वितीय राजनीतिय तथा मार्य देवों

प्राणी था, ऐसे राजस-राज रावणका भी हृदयकी विवेकमणि-पर धाड़कार और अशिवैकका पदां पद जानेसे पतन होते कुछ भी देर न लगी। विषयोपभोग और मध-मांसादि अशुभ्य पदार्थोंके निरन्तर सेवनसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अतएव उसने प्रभुको विस्मृत कर कामिनी और कांचनको ही संसारका सर्वोत्कृष्ट पदार्थ समझा, सुन्दरी नारियोंके अपहरणका पृथित कार्य उसके राज्यमें एक साधारण-सी बात समझी जाने लगी। अनेक कुल-कामिनियोंको उसकी अग्रतिहत काम-वासनाकी वृत्ति-के लिये विवश हो अपना सतीत्व नष्ट कर देना पड़ा। इस अधन्य ध्यापारका अर्थ प्रजापर बढ़े बढ़े कर लगाकर निकाला जाने लगा। काल बौक इतना बढ़ गया कि जिनके पास खाने तकके लिये भी पैसे न थे, उन्हें अपना रक्त फरके रूपमें देनेके लिये विवश होना पड़ा। ऐसा घोर अनाचार अधिक दिनोंतक भक्त-वत्सल भगवान्से सहा नहीं जाता। जब रावणके पापका घड़ा खबालय भर गया, तब उस फररूप अग्रिफले अनेक-नन्दिनी महारानी सीता-ने जन्म ग्रहण किया। समय पाकर जगज्जन्नीकी सौन्दर्य-की श्याति चारों ओर फैल गयी। रावण तो कामिनी कांचनका दास था ही, उसने भी जनकनन्दिनीको इस करनेकी चेष्टा की, पर सफल न हो सका। क्योंकि उस समय सन्निकट धामया तब उसने जानकीको सुरा प्र,परिग्रामस्वरूप स्वयं मयीलंकाकेसाथ अपनेको भी नष्ट प्र वाला। अतएव रावणके अतिरसे हमें जो शिषा मिलती है, वह बड़ी गम्भीर तथा मननीय है। रावण सर्वगुण उम्भ्र विद्वान् नृपति था किन्तु कुसंग और अभिमानसे उसका सदाचार तथा विवेक नष्ट हो गया था। विवेकभ्रष्ट मनुष्योंका अतथा पतन होता है, अतएव उसका भी सर्व-गया हो गया।

इससे यह सीखना चाहिये कि सदाचार, विनय, धर्म-परायणता, ईश्वरमें श्रद्धा आदि गुणोंसे ही मनुष्यका अशुभ्य और परम कल्याण होता है, इसके विपरीत ऊँचेसे ऊँचे पद, ऐश्वर्य और बलको प्राप्त करनेपर भी सदाचारविहीन मनुष्यका अन्तमें सर्वनाश हो जाता है। इसलिये धर्मरत

और दुःखप्रियताको छोड़कर सर्वै ही धर्मपालनमें ही तत्पर रहना चाहिये।

● सुमारी राघवकी कन्या कैकसीके गर्भ और पुलस्त्य-पुत्र मुनिवर विश्रवाके औरससे रावणका जन्म हुआ था। पिताकी आज्ञानुसार कैकसी विवाहार्थ मुनि विश्रवाके पास गयी थी। मुनिने उसके मनकी बात जानकर उससे कहा कि 'तू पुत्रेच्छसे मेरे पास आयी है, तेरे पुत्र होंगे परन्तु तू प्रदोषके समग्र आयी इससे तेरे दारुण सभाय, दारुण स्वरूप और दारुण संग्रहाले कूर-कर्मा राघव पुत्र होंगे। कैकसीने टकर कर कहा कि 'भगवन्' मैं आपके सहस्र ब्रह्मवादाके औरससे ऐसे निष्ठुर पुत्र नहीं चाहती, कृपा कीजिये।' इसपर मुनिने प्रसन्न होकर कहा कि 'हे योगिने! तेरे सबसे छोटा पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा।' इसी कैकसी-के रावण, कुम्भकरण और विभीषण नामक तीन पुत्र, और विभीषण से बड़ी शूर्पणखा नामक एक कन्या हुई। रावण और कुम्भकरणने महातप करके मन्नासे मनुष्यादि प्राणियोंके सिवा पत्नी, नाग, वृक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देव आदि कित्तोंके हाथसे न मरने, तथा इच्छानुसार मनमाना स्वरूप धारण कर सकनेका वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर बलगाँवित रावणने देव-दानव सबको जीत लिया। इसके उपर्य और अलाचारोंसे पीड़िता होकर अनेक सती देवियों-ने इसको भीषण शाप दिये थे। रावणने अपने सतिंले भाई कुबेरको लङ्कासे निकालकर उसपर अधिकार कर लिया था।

कहा जाता है कि रावण परम विद्वान्, बुद्धिमान, बली और चतुर था। वैदिक अनुष्ठान करता था और वेदोंपर उसने माध्य भी रचे थे। भगवान्के प्रति भी मन-ही-मन बड़ी भक्ति करता था। इसीलिये श्रीगुप्तोंकीने, सरदूषणके मनेपर सीताहरणका निश्चय करनेके पूर्व रावणके मनमें जैसे विचार आये थे और उसने किस छद्मसे सीता-हरणका निश्चय किया था, इस बातको निम्नलिखित चौपायोंमें बड़ी खूबीसे व्यक्त किया है—

सुरनर अनुसुर नाग खग माहीं । मेरे अनुचर सम कौड नाहीं ॥  
 खर दूषन मेतिह सम बरुन्ता । सिन्धुहि को मारे दिनु भगन्ता ॥  
 सुर-रंजन मंजन महि मारा । जो जगदीस रीन्ह अवतारा ॥  
 तो मैं जाइ बैर हृष्टि करउँ । प्रमु-सर प्राप्त तजे भव तरउँ ॥  
 हेसहि भजन न ठामस देह। मन क्रम बचन मन्त्र टट्ट पहा ॥

—सम्पादक

# गीधराज जटायुकी अलौकिक भक्ति

(लेखक—श्रीहारा श्रीराजेन्द्रसिंहजी)



**य**द्यपि मुसाहूजीने श्रीमरत, हनुमान् आदि अनेक भक्तोंके प्रेमका वषण किया है किन्तु गीधकी प्रीति रामायणमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है गीध रावणसे लड़कर पायल होता है—

किरत न बारहि नार पधारयो ।  
 चरि चोच चंगुल हय हति रथ,  
 संड-संड करि डारयो ॥  
 रिय निरुल चियो, छीनि लीन्हि सिय,  
 घन घायनि अकुलान्घी ।  
 तब असे काट्टि काट्टि पर पाँवर  
 है प्रमु-प्रिया परान्घी ॥  
 राम-काठ सरारत आउ तरयो  
 रिय न जानकि रयागी ।  
 मुत्तमिदान मुर निद सरारत  
 कय विदंग बहुमानी ॥

यह गीधको न मुसा मरनेके कारण परचात्मान कर रहा है, हनुमने ही श्रीराम-सम्पन्न करा पहुँच जाने हैं—

मेरे पथे हाव न रखी ।  
 नको बनु बीरि करि कमान उयो  
 कान-रता दर दायी ॥  
 हनुम को न केर प्रीतिरानी  
 हुने को कहर जन मानी ।  
 बावन हरा मि-चाराति को  
 री न जानकी रखी ॥  
 का न के मुहो रिदरे  
 लय के बन ।  
 कहर कान कभ रीर विदु  
 रिदु ह कमुद मुत्तम ॥  
 न को न को रीर रीर  
 रीर रीर रीर रीर ।  
 न को न को रीर रीर  
 न को न को रीर रीर ॥

श्रीरामजी भी गीधराजकी यह दशा देखकर मने में खेकर विलाप करने लगते हैं—

राघी गीध गोद करि लीनो ।  
 नैन-सरोज सनेह-सरिलि सुधि  
 मनहुँ अरध-जल दीनो ।  
 श्रीराम कहते हैं कि मैं गीधराजके मित्रने मित्र मृत्युके दुःखको भूल-सा गया था किन्तु विधातके यह सुख भी नहीं सुहाया ।

सुनहु लयन । सम-पतिहि मिले नन  
 मैं सिनु-मरन न जानौ ।  
 सहि न सवयो सो कठिन विपता  
 बड़ो पदु आजहुँ मज्जौ ।  
 श्रीराम गीधके प्रेमको देखकर 'सोदा-निलोप'के भूल जाते हैं और कुछ दिन जीवन-धाराय बरते हैं उससे बड़ा घामह करते हैं—

मेरे जल तप्त करू दिन जीये ।  
 देसिय आउ सुवन सेवा-मुस  
 मोहिं सिनुको गुन दीये ।  
 दिम्प-देह, इच्छा-जीवन जग  
 विधि मनाय मैनि दीये ॥

यहाँ श्रीरामजीने गीधराजको अपने मित्रका रूप दिया जो मुसरे किमीको नहीं दिया जा सकता । उसे देह, इच्छा-मरण आदि सभीदृष्ट देनेका बचन दिया, यह सब क्या दिया कि 'अपने जिये नहीं तो संगीको हनुमनेके जिये जीवन धाराय कीजिये' किन्तु गीधने हनुम कोरिया प्रणाम भी स्वीकार नहीं किया । अपने को श्रीरामकी गोदमें मरनेके सामान सुख और परमार्थ प्राप्त करि क्या हो सकता है ? हनुमनुके सामने अपने को कर्मोंको हस्तु सामग्य ।

मेरेको निरंज निरंजि पादुका नरि  
 बरी मुसा री ।  
 मेरे रीरि मन न चरि कर  
 रीरि री बने न रीरि ।

उसने कहा 'राम'

पर नाम मरत मुख आवा । अथमहूँ मुकुति होइ श्रुति गावा ॥  
मम लोचन गोचर आगे । राखौं देह नाथ फेदि लगे ॥

शुशु-समय जिसका नाम भी दुर्लभ हो जाता है स्वयं  
ही उपस्थितिमें, उसीके वचन सुनते हुए, उसीका नाम  
हुए तथा उसीका रूप सतत ध्यानसे देखते हुए,  
उसीकी गोदमें सिर रखकर शरीर छोड़नेके समान धन्य  
सौभाग्य हो सकता है ?

नीकै कै जानत राम दियो ही ।

प्रनतपाक, सेवक-कृपाल-चित

पितु पटरहि दियो ही ।

त्रिजग जोनि-गत गीध जगम-मरि

हाइ कुजंतु मियो ही ॥

महाराज सुकती-समाज सन-

ऊपर आज किमो ही ।

सवन वचन, मुख नाम, रूप-चहल

राम उठंग लियो ही ।

गुलसी मो समान बड़भागी

को कहि सकै दियो ही ॥

गीधराजने कहा 'हस नखर शरीरके दीर्घजीवन या  
प्रभारणकी प्राणमें पहचर में हस दुर्लभ अवसरको  
छोड़ सकता । मौत तो बहुत मिलेगी पर उस समय  
कहाँ मिलेगी ?

गुलसी प्रभु हूँ जीवन लगे

समय न खोलो खेहो ।

जाको नाम मरत मुनि-दुर्लभ

तुम्हदि कहां पुनि पैहो ? ॥

( ५० ११ )

कितनी ऊँची भावना है ! गुलसीजीने अपनी प्रतिभासे  
। प्रसंगको बहुत ही ऊँचा बना दिया है ।

दोहावलीमें भी गुलसीजीने बड़े शब्दों शब्दोंमें गीधके  
गीध श्रेय और दुर्लभ शब्दोंकी प्रशंसा की है—

विरत, करमगत, मगल, मुनि, सिद्ध, ऊँ

गुलसी सकल सिद्धत मुनि.

उन्होंने यहाँ तक कह दिया है कि गीधराजके समान  
शुशु संसारमें किसीको भी नहीं प्राप्त हो सकी ।

मुप, मरत, मरिहँ सकल, धरी-पहरके बीच ।

रुही न काहू आज लौं गीधराजकी मीच ॥

मुप मुकुत, जीवन मुकुत, मुकुत मुकुत हू नीच ।

गुलसी सबही ते अधिक गीधराजकी मीच ॥

( दोहा० १२४-२२५ )

सचमुच यदि ध्यानपूर्वक विचारा जाय तो मालूम होगा  
कि ध्यातक किसी भी भक्तको ऐसी मौत नसीब नहीं हुई ।  
आजीवन परम भक्तिमय जीवन बिताकर मरनेवाले हुए हैं,  
रामकाजमें ही शरीरका बलिदान देनेवाले हुए हैं, जन्मभर  
पाप करके अन्तमें 'राम-नाम' से मुक्त होनेवाले हुए हैं, किन्तु  
हसप्रकार रामके काजमें, रामका दर्शन करते हुए, रामके  
वचन सुनते हुए और रामकी ही गोदमें लेटे हुए प्राण  
त्यागनेवाला तो बड़भागी गीधके अतिरिक्त और कोई  
नहीं हुआ ।

फिर उसकी धन्यवैधि किया भी तो 'निजकर कीन्हो राम' ।  
ऐसा सौभाग्य तो इशरथको भी नहीं बढ़ा था ।

गुलसीजीने जिस शब्दोंकी कामना की थी, वह है—

समर भरन, पुनि सुरसरि तीरा । रामकाज छनगुं सरिरा ॥  
परहित लागि तजे जे देही । संत संत प्रसंत तेही ॥'

इनमेंसे एक 'सुरसरि-तीर'को छोड़कर गीधको शेष सभी  
वातें मिलीं । परन्तु सुरसरिके बड़े क्षेत्रमें वे पावन चरण मिल  
गये, जिनसे सुरसरीजी प्रकट हुईं-थी ।

गुलसीजीने विनय-पत्रिका, मानस आदि ग्रन्थोंमें स्थान  
स्थानपर रामजीकी हस बातके लिये बड़ी प्रशंसा की है  
कि उन्होंने गीध, शब्दी आदि नीच पतित और अधर्मोंको  
तार दिया ।

गीध अथम हग आमिष भोगी । गति दीन्ही जेहि अन्तत जोगी ॥

पर विचारनेकी बात यह है कि क्या सचमुच गीध  
अथम था ? अथवय ही भक्तोंके लिये तो यही उचित है  
कि वे

। ही कारण मानें और अपनी

दस्तावेजको तो यही कदना

न कथुफ मोरि प्रभुवाई ॥

किन्तु भगवान् उनकी करनीको अक्षयी तरह रामम्ने हैं और पहातक कहते हैं कि—

'प्रतिउपकार करौं का तोरा। तनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥'

यहाँ भी श्रीरामजी स्वयं गीघराजसे कहते हैं कि 'दुग्धारी मुक्तिका कारण मेरी कृपा नहीं है, इसमें कारण है निःस्वार्थ परोपकारमें दुग्धारा सुखसे प्राणत्याग कर देना।

जल भरि मयन कहत रघुराईं। ताल करम निजते गति पाईं ॥

पारहित नस तिनके मन माहीं। तिनकहै जग दुरलभ कहु नाहीं ॥

महाराज रघुराजगिहनीने तो रामकृपा और करनी करनी दोनों ही को मित्रा दिया है:—

कछुक दूर अगे बनि रघुरनि विरुल विदल निहणे।

रूपानिपान ज्यगु अंग-रज निज न्यतसे हरणे।

प्रमु-पद परति गीव तनु त्याग्यो, निज हाथनि बरि करे।

गीवराज कहै दरै राम गति वेद-पुरातनि सने ॥

भक्तोंको अपनी करनीको भी तो प्रमु-कृपा ही प्रमानना चाहिये !

## भगवान् श्रीराम

(लेखक—भीष्मालाप्रसादजी बननोदिया)

### प्रजावत्सल श्रीराम

कौसल-पुर-वासी नर नारि वृद्ध अष्ट बाल ।

प्राणहुँ तें प्रिय लागही सब कहै राम कृपाल ॥

उमा अवधवासी नर नारि कृतात्म्य रूप ।

ब्रह्म सन्धिदानन्द धन रघुनायक जहै मूप ॥



राजमें अनेक राजा हो चुके हैं और होंगे पर रघुकुलभूषण अवधेश श्रीरामके समान न कोई हुआ, न होगा। आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है तो सर्वाच्च प्रशंसामें यह यही कहता है कि यहाँ तो 'रामराज्य' है। इससे सिद्ध है श्रीरामका राज्यशासन ही आदर्श था। वास्तवमें यदि कोई सब इतिहासोंका तुलनात्मक अध्ययन करे तो उसे यही कहना होगा कि श्रीरामराज्यके सद्यः सुशासन और किसीके भी राज्यकाजमें नहीं हुआ। रामराज्यकी इतनी प्रशंसा क्यों है ? इस बातको यदि कोई जानना चाहते हैं तो देखिये—एक समय दशरथ महाराजके हृदयमें यह हृष्यता हुई कि मैं वृद्ध हो गया हूँ, श्रीराम राज्यके सर्वथा योग्य हैं इनको युवराज पदपर अभिषिक्त किया जाय। अपने इस मनोरथको महाराजने सभामें सबको सुनाया और सभीने सुनकर भक्ति हरं प्रकट किया एवं सभी महाराज दशरथसे अनुरोध करने लगे कि श्रीरामको शीघ्र ही युवराज-पद दिया जाना चाहिये। इस समय राजा दशरथ प्रजाका भाव

जाननेके उद्देश्यसे अवधवासी प्रजा तथा अन्यत्र रहनेसे प्रभ करते हैं—

'घाप खोग मेरे कहनेसे ही श्रीरामको क्यों राज बनवा चाहते हैं ? सब मैं धर्मासुसार राज्यशासन कर रहा हूँ। घापखोग श्रीरामको क्यों राजा देखना चाहते हैं ? मुझे प्यार हो रहा है, इसे घाप दूर कीजिये।' उत्तरमें लोगोंने कहा 'हे राजन् ! घापके पुत्र श्रीराममें अनन्त गुण हैं, न गुणोंके कारण ही हम सबखोग उनपर मुग्ध हैं तो इसीलिये हम श्रीरामको अपना राजा देखना चाहते हैं—

'श्रीराम सत्य व्यवहारके कारण सत्य-पुत्रक कहलाते। शोभा-धर्म श्रीरामसे ही हैं, श्रीरामके विना सभी प्रयोग ही जिस प्रकार चन्द्रमा सब प्राणियोंको आनन्द देनेवाला उसी प्रकार श्रीराम सब प्रजाको आनन्द देनेवाले हैं। चनामें श्रीराम पृथ्वीके समान हैं। बुद्धिमें श्रीराम वृक्षके समान हैं। वीर्यमें श्रीराम साक्षात् इन्द्रके समान हैं। श्रीराम धर्मेश, सत्यप्रतिज्ञ और शीलवान् हैं। कौन किसीकी निन्दा नहीं करते। श्रीराम सब प्राणियोंके लक्ष और प्रिय बोधनेवाले हैं। श्रीराम सगम्भनेवाले, सत्य-कृतज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। श्रीराम बहुदुःख, वृद्ध-आहतके सेवा करनेवाले हैं। श्रीराम, देवता मनुष्य और कृपुणोंके सब अर्थोंमें निरुप्य हैं। श्रीरामने समस्त विद्वानोंके नियमित ब्रह्मचर्यके साथ अध्ययन करके ब्रत-ज्ञान विद्या श्रीराम वेदोंको धर्म और उपांगों सहित अपनी जाननेवाले हैं। श्रीराम गन्धर्व-शास्त्रोंके जाननेवाले। श्रीराम कल्याणके आश्रय हैं। श्रीराम परम विनी ।

श्रीराम संग्राममें जाकर बिना विजय पाये नहीं लौटते । श्रीराम संग्रामसे लौटकर सब पुरवासियोंसे अपने परिवार-के लोगोंके समान, पुत्र, स्त्री, शिष्य, मूल्य और अग्निहोत्री आदिका कुशल समाचार पूछते हैं । श्रीराम माझ्योंसे पूछते रहते हैं कि आपके छात्र-शिष्य आपकी सेवा तो करते हैं ? श्रीराम जब किसीपर ध्याति देखते हैं तो दुखी होते हैं और उसको दूर करते हैं । श्रीराम बुढ़ोंकी सेवा करनेवाले हैं । श्रीराम सत्यवादी धीरोंकी उन्नति देखकर पिताके समान प्रसन्न होते हैं । श्रीराम धर्मका पावन करनेवाले हैं । श्रीराम मुसकराकर बोलनेवाले हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं । श्रीरामकी किसीके साथ छद्माई-भगवा करनेकी रुचि नहीं होती । श्रीराम किसी भी विषयमें घासक नहीं हैं । श्रीराम धर्म्य क्रोध या हर्ष नहीं दिखाते । श्रीराम थोड़े भी उपकारसे प्रसन्न हो जाते हैं और अनेक अपकार करनेपर भी किसीसे द्वेष नहीं करते और श्रीराम प्रमाद-विहीन आत्मस्वरूप्य हैं ।'

ऐसे सत्यपराक्रमी शोकपालके सद्य महात् गुणी श्रीरामको समग्र पृथ्वी अपना स्वामी बनाना चाहती है ।

वालायमें रामराज्यमें प्रजाकी जितना सुख था, उतना सुख और किसीके राज्यमें नहीं हुआ । निःसन्देह यह कति सौभाग्यकी बात हो यदि धीरयुवाजी-जैसे राजाकी प्राप्ति हो । श्रीरामके बाल्यावस्थाके ही स्वाभाविक गुणोंसे प्रजा अत्यन्त सुख थी, राज्यभियेके पूर्वसे ही बालक श्रीरामने धर्मवासियोंके मनकी सुरा लिया था । गौतामीकी महाराम दिखते हैं—

अनुज सखासंग मोहन करहीं । मातु पिता आत्मा अनुसरहीं ।  
जेहि निधि गुली होहि पुर-सेना । करहि इपानिधि सोइ संगेना ॥

महाराम दशरथके सुखसे राम राज्यभियेकेकी बात सुनकर प्रजाके हर्षका पार नहीं रहा ।

राम-राज अभिरुच सुभि, दिव हरे नर-नारि ।  
रगे गुणगठ राजन सब, विधि अनुकूल विचारि ॥

दशरथ श्रीरामके राज्यभियेकेकी संपारिषा हो रही हैं जब प्रभुकी इच्छा हुए और ही थी और हुआ भी बरी । अक्षयके राज्य-शासनके स्थानमें बनका शासन और दशरथ श्रीरामको मित्रा । श्रीरामकी बनवासके समय प्रजाकी ध्यावृत्तता देखिये—

सजि बन-साज-समाज सब; वनिता बन्धु संगेव ।  
बन्दि मित्र-गुरु-चरन प्रभु, चंत करि सबहि अचेत ॥  
चदि रथ सीय-सहित दोउ भाई । चले हरणि अवधि सिर नई ॥  
अहत राम लखि अवध अनाया । निकल लोग सब लगे साया ॥  
रुपासिनु बहुविधि समुदाहर्हि । भिरहि प्रेमवस पुनि विरि आवर्हि ॥  
सहि न सके रघुनर विरहाणी । चले लोग सब व्याकुल माणी ॥  
सबहि विचार कीन्ह मनमाहीं । राम लखन सीय विनु सुख नाहीं ॥  
जहाँ राम तहै सब सुख-साइ । विनु रघुनीर अवध नहि काजू ॥

बालक वृद्ध निहाइ गृह, लगे लोग सब साथ ॥  
तमसा-नीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाय ॥  
इसप्रकार सब प्रजा श्रीरघुवंशभूषणके साथ बन गमनके लिये तैयार हो गयी । पर अपनी प्रजाको सुख देनेवाले प्रजावत्सल राम सोचते हैं कि वनमें प्रजाको अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे, वहाँ अक्षयके समान आराम नहीं है, अतः आप प्रजाको अनेक प्रकारसे समझाते हैं—

रघुपति प्रजा प्रेमवस देखी । सद्य हृदय दुस मयेठ बितेसी ॥  
अदि सरेम मुदु बचन सुराप । बहुनिधि राम लोग समुदाय ॥  
किये धरम-उपदेस धनेरे । लोग प्रेमवस रिरहि न केरे ॥

जब इसप्रकार बहुत समझानेपर भी अक्षयवासी प्रजा श्रीरामका संग नहीं छोड़ती, तब श्रीरामको बाध्य होकर रात्रिके समय प्रजाको सोई डूई छोड़कर वन-गमन करना पड़ता है ।

तदनन्तर जब धीरभरतजी श्रीरामसे मिलनेको आनेकी इच्छा प्रकट करते हैं । उस समय पुरवासियोंके आनन्द और उत्साहको देखिये—

भरत बचन सबकहै प्रिय लगे । राम-सनेह-मुधा जनु पाये ॥  
अबसि अरिभ बन रामपहै भरत मंत्र मल कीन्ह ।  
सोक-सिन्धु नूत सवदि तुम अवलम्बन दीन्ह ॥  
अदि परसपर भा बट काजू । सछट चै कर समदि साजू ॥  
जेहि राखहि धर रहु रसवारी । सो जाने जनु गरदनि मारी ॥  
कोउ कह रतन कहिये नहि कहू । कोन अहे जग जीवन-रमू ॥  
नगर लोग सब सजि सजि जाना । बिचरू कहै कीन्ह पयाना ॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरामसे मिलनेको ध्यावृत्त होकर चित्रदूत जाती है और वहाँ प्रभुके दर्शन करती है ।

जब रघुनायकीके वनवासकी धरणि समाप्त हो गयी है और वे अक्षय लौटकर आने हैं, उस क्षणमें प्रजाकी उत्सुकता देखिये—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग ।

जहँ तहँ सोचहि नारि-नर इस-तनु रामवियोग ॥

समाचार पुरबासिन्ह पोय । नर अरु नारि हरषि उठि घाये ॥

जो जैसेहि तैसेहि उठि धावहि । नाल बृद्ध कोउ संग न लावहि ॥

एक एकसन नूहाहि धाई । तुम देखे दयालु रघुवाई ॥

श्रीराम इसप्रकार लोगोंके हृदयके आकर्षणके हेतु भवभ्रमगरीमें पधारते हैं। श्रीरामका वनसे लौटकर अयोध्यामें आना राज्यके लिये नहीं था, वह था—प्यारे भाई भरतके लिये और भवधवासी प्रजाके प्रेमके लिये। और फिर उनकी तीव्र प्रीतिके कारण ही आप राजसिंहासनपर बैठे थे।

दयालु श्रीरामका स्वभाव था कि वे दूसरोंके दुःखको सहन नहीं कर सकते थे और इसी स्वभाव-वशा भाई भरत और प्रजाके दुःखको मिटानेके लिये आपने राज्यशासन छोड़कर किया था।

अब श्रीरामके प्रजापालन-कालकी अवस्थाका कुछ वर्णन करते हैं। महामुनि धारमीकिजी कहते हैं—

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें श्रियोंको वैधव्य-दुःख नहीं था। सर्वभय और ध्याधियोंका भय नहीं था। संसार बाह्योंसे शून्य हो गया था। कोई अनर्थ नहीं करता था। यशोंको अपनेसे छोड़ोंका प्रेतकार्य नहीं करना पड़ना था अथवा बाल या युवा-शून्य कभी नहीं होती थी, सब प्राची प्रपन्न और धर्मरतापण रहते थे। रामकी बुद्धिको देखकर कोई किसीकी हिंगा नहीं करता था, प्रजा रोग तथा शोचरहित थी, शीर्षांशु भोगती और अनेक मन्त्रनिपुण होती थी। सब वृष पुत्र तथा फल-मूल प्राप्त करते। प्रजाको आचरणका अनुसार बर्णद्वारा जलकी प्रति होती। गुणदायक वायु रहती, मनुष्य अपने अपने कर्मोंमें मग्न रह करीमें मग्न रहते। और प्रजा सम्पन्नतापण रहती। अतएव यह कि प्रजा सर्व सुखत्रय-भगवत् थी। लोकार्थकी प्रतापत्र राजराजका वर्णन करते हैं—

राज राज देहे बरगंगा । हरिज भर नर सब सोका ॥

देव बर बहू सब कोई । राजराज विपला कोई ॥

बागवत् मित्र मित्र करत मित्र बेद-नप टोप ।

अरि हर हरि दुख नरे सब हंक नरन ॥

देविक देविक भेदिक लप । समग्र नरे बहूदि ब्यप ॥

सब सब बहूि बरतप ही । अरि हररुमि मिल दुहि टैटी ॥

चारिहु चरन परम जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अब नहीं ॥

राम-भगति-रत नर अरु नारी । सकल परम गतिके अतिरती ॥

अल्प-मृत्यु नहीं कबनिउँ पीरा । सब सुन्दर सब निदर सती ॥

नहिँ दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिँ कोउ अनुप न लखनरुँ ॥

सब निर्दम धर्मरत गुनी । नर अरु नारि अतुर सुम सुनी ॥

सब गुणग्य पंडित सब ग्यानी । सब इतग्य नहिँ कप सपनी ॥

प्रजावत्सल श्रीरामकी अवध और भवधवासियोंके कृपा थी, इसका भगवान्की अपनी उचित ही पत्र न जायगा। श्रीराम अयोध्या पहुँचनेपर पुष्पक-विमानमें ही आपने मित्र विभीषण और सुग्रीवादिसे कहते हैं—

सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी रचि रह रहैसा ॥

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । बेद-पुरान-निरित जग जलसा ॥

अवध सरिस प्रिय मोहिँ न सोऊ । यह प्रसंग जनि कोउ फेऊ ॥

जनमभूमि मग्न पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि यह सब पुरी ॥

अति प्रिय मोहिँ इहँकि नासी । मम धामदा पुरी सुसासी ॥

### दीनवत्सल श्रीराम

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।

जाहि दीनता कहँ, हीँ देखौँ दीन सोऊ ॥

अगत्में दीन-दुखी और अनाथोंके सचे दिलोंमें मित्र अधिक नहीं मिलते। साधारणतः लोग धनशु, संपन्न सबल और सुखी लोगोंकी ओर ही दौबते हैं। वेमे हर पुरुष कोई कोई ही मिलते हैं जो दीन और धर्मके दुखी पुरी होते हैं। हमारे चरित्र-नायक श्रीरामका सम्पूर्ण जीवन केवल दीन-दुखी अनाथोंके लिये ही था। इसीसे दयालु राम आदर्श दीनवत्सल माने जाते हैं और सब चरित्र सत्य-पुरुषोंके लिये मार्ग-प्रदर्शक समझा जाता। बाष्पावस्थासे ही श्रीरामका हृदय स्वभावतः पर-शुल-कातर रहा। शाश्वतमें श्रीरामके हृदयको कठोर और कोमलसे भी कोमल बतलाया है—

कुम्भिलुँ आदि कठोर अति कोमल कुमुमहिँ आदि ।

चित्त सोमैत रघुनाथ कर समुत्ति परे कडु करि ॥

जो धन-जन बलके अपने शक्ति हैं, उनके लिये हृदय 'बर्षाप्रति कठोर' है; पर दीन अनाथ आर्थोंके लिये यह बर्षाप्रति भी अधिक कोमल है। बाष्पावस्थामें ही श्रीरामका वही स्वभाव था, वे किसी भी बालकको न कोमल अथवा देव तकने से और न किसीकी शक्ति देते थे।

कैसी प्रकारसे सबको प्रसन्न रखते और हँसाया करते। खेलमें  
अपने स्वेष्यासे हारकर दूसरे बालकोंको जिता देते और  
अपने बच्चे भूपय तथा धरना स्वादिष्ट भोजन-पदार्थ देकर  
प्रसन्न रखते। धन्यके भाग्यवान् बालकोंकी भी ऐसी ही दशा  
थी, उनका चित्त भी जन-मन-मोहन धीरामके बिना चय  
नर नहीं जगता। पूज्यपाद गोस्वामीजी गाते हैं—

सुनि सीतापति सील सुमाड ।

मोद न मन उन पुलक नयन जल सो नर रोहर खाड ॥  
सिसुपलने पितु मातु मनु शुभ सेवक सखिब सखाड ।  
कहत राम-विशु-वदन रिसोहैं सुपनेहुं तब्यो न काड ॥  
केलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाड ।  
जीति हारि जुजुकारि दुखत देत दिवावत दाड ॥

जानकीबल्लभ धीरामका शील-स्वभाव सुनकर जिस  
दुखका मन प्रसन्न नहीं होता, शरीर पुलकित नहीं होता  
और नेत्रोंमें प्रेमाशु नहीं आते, उसका इधर-उधर धूल फाँकते  
रक्तका ही अच्छा है। बचपनसे ही पिता, माता, भाई,  
दास, मन्त्री और सखा कमी किलीने धीरामके सुख-  
सम्पन्नको स्वप्नमें भी कुपित नहीं देला। वे सदा ही प्रसन्न-  
रहते थे। भाई और दूसरे बालक जो उनके साथ खेलते,  
उनकी हार और अन्याय धीराम सदा देखते रहते थे।  
परन्तु अपनी कीवतपर भी (उनको प्रसन्न करनेके लिये) हार  
गाते थे। उन लोगोंको पुष्कार-पुष्कारकर प्रेमसे दौंच  
ले और दूसरोंसे भी दिलाते थे।

वशासनन्दन धीरामकी दीनबल्लता सार्वभौम है।  
ह न तो देना और कालसे परिच्छिन्न है और न व्यवहार  
और व्यक्तित्व ही। उनका सब काल, सब देश, और सभीके  
प्राथमिक समान वात्सल्य-भाव है। उनके शत्रु-मित्र, उच्च-नीच या  
नीच-दुरिदर भावसे कुछ भी व्यवहार-भेद नहीं है।  
प्रायश्चित्तता है केवल दीन और धार्मिक-भावकी।

कोसलकुमार रघुनाथजीकी दीनबल्लताके कुछ उदाहरण  
उठकोंके सम्मुख संक्षेपमें उपस्थित किये जाते हैं। देखिये—  
दीनभावपात्र राजा जनकको धीरामने कैसा सम्हाला।  
उनके धरनी धरपोनिजा कन्या श्रीसीताजीका स्वयम्बर  
का और निश्चय किया कि सीताको यही ग्रहण कर सकेगा  
यत्न-वीर्य और पराक्रमसे सम्पन्न होगा, उसपर निर्वल  
और धराशय्य अधिकार नहीं होगा। इस बल-वीर्य और  
पराक्रमकी परीक्षा होगी विद्याल शत्रु-प्रापकी प्रत्यक्षा

घटानेसे। महाराज जनकके इस प्रकारके प्रणयकी घोषणा  
सुनकर जनकपुरमें अनेक राजा धाये, परन्तु कोई भी इस  
परीषामें उत्तीर्ण नहीं हो सके, यहाँतक कि—

न शैकुर्महने तस्य धनुषस्तोळनेपि वा ।

उस धनुषको कोई न तो उठा सका, और न हिला ही  
सका।

तमकि तमकि तकि सिव-धनु भरही। उठे न कोटि भौति बल करही।।

त्रिन्हके कणु विचार मनमाही। चापसमीप मदीप न जाही।।

तमकि वरहि धनु मूढ़ नृप उठै न चलाई लजाइ ।

मनुहुं पाद मट-बाहु-बल अधिक अधिक गरुआइ ॥

धिगे न संसु-सप्रासन कैसे। कामी-बचन सवी मन जैसे ॥

सब नृप भप जोग उपाहासी। जैसे विनु विराग सन्यासी ॥

इस अवस्थामें मिथिलापतिकी कैसी दीन और भ्रान्त  
दशा होगी थी, तनिक उसका चित्र शकलोकन कीजिये—

नृपन्ह बिलोकिके जनक अकुलने। नौले बचन शीघ्र जनु साने ॥

अव जनि कोउ मालै मट मानी। नीर विहीन मही मैं जानी ॥

तज्जु आस नित्र नित्र गृह जाहू। लिखा न विधि बैदेहि विआहू ॥

सुकत जाइ जो पन परिहरऊँ। कुँअरि कुँअरि रहै का करऊँ ॥

जो जनतेउँ विनु मट महि भाई। तो पन करि करतउ न हँसाई ॥

जनक महाराजकी ऐसी दीनताको भला दीनबल्लक कब  
सहन कानेवाले थे ?

'सीच-मगन काखो सही साहिन मिथिलाको ।'

तौ सिव-धनु मृनालकी नाई। तोरहि राम मनेश गोसाई ॥

इसप्रकार धीरामने दीन हुए जनक महाराजके शोकको  
दूरकर शत्रु-प्राप तोड़ सीताको वरण कर लिया।

दूसरी माँकी देखिये ! निषाद दरिद्र है, नीच जाति  
है, परन्तु भगवान् उसे अविमानरहित और दीनभावयुक्त  
देखकर धरना सखा बना लेते हैं एवं उसका बच्चा ही मान  
तथा आदर करते हैं ;

हिंसरत निषाद तामस नुपु पसु-समान नन-चारी ।

भेते हृदय लगाइ प्रेमवस नहि कुलजाति विचारी ॥

श्रीरघुवीरकी यह भाति

नीचहूसों करत मेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥

परम अचम निषाद पँवर कौन ताकी कानि ।

लियो सो उर लाइ सुत ज्यो प्रेमको पहिचानि ॥



निराश्रको अपना सखा बनाकर श्रीरामने इतना अधिक आदर दिया कि परम ज्ञानी श्रीवशिष्ठ-सरस्व मुनि भी उसको गले लगाकर मिलने लगे—

प्रेम पुलकित केवट कहि नाम् । कीन्ह दूरिते दंड प्रनाम् ॥  
राम-सखा रिधि बरबस भेंटे । जनु महि दुखत स्नेह समेंटे ॥

मनुष्योंको अपनानेकी तो बात ही कौन-सी है? श्रीराम-ने पामर पशु-पक्षियोंको भी अपना लिया और ऐसा अपना लिया कि जिसकी कर्हीं तुलना नहीं है। रामके लिये प्रायोंकी बलि चढ़ानेवाले भक्त राज गीधके दर्शन कीजिये ! जगत् जननी सीताको रावण हरकर ले जा रहा है। गीधराज जटायु जब यह सुनते हैं तो चटपट दौड़कर सीताको रावणके हाथसे छुड़ानेके लिये मार्गमें ही उसके रथको रोक लेते हैं। रावणके साथ जटायुका युद्ध होता है। 'राम काज' लक्ष्मणे हुए जटायुके दोनों पंख रावण काट बालता है और हमसे घायल होकर लाचार जटायु जमीनपर गिर पड़ते हैं। जटायुकी असमर्थताके अथसरमें रावण सीताजीको छेकर चला जाता है। इधर रघुकुलभूषण श्रीराम लक्ष्मण-सहित सीताकी खोज करते करते जटायुके पास पहुँचते हैं। यहाँ जटायुके साथ श्रीरामके ध्यवहारको देखिये—

दीन मरीन दयालु विहंग  
पक्षों महि सोचत सिल दुसारी ।  
राय दीन-दयालु कृपायुको  
देस दुखी करना मर मारी ॥  
गीधको गोरमें शक्ति हथानिधि  
नेन-सरोवरमें भरि बारी ।  
बारहि बार सुधारहि पंख  
जटायुकी हूरि अन्तसों शारी ॥

इसलिये राम गीधकी दीन-दया देख बुलाने हो गये और जगको अपने गोरमें छेकर कुछ दिव अथवा धारण करनेके लिये शर्पका बाने लगे।

राम्पु इससे कौन-का स्वीकार करी दिया और करला भी देने? वह क्या बने जाय—

उपरा उरु शरण मुख जगत् । अवनत मुकुन होत धुनि नाश ॥  
हो कर शेषशरणा बने । गज्ज देह नाश ! केहि रणे ॥  
आकेका रूपने अदिक कथा अणगर फिर कर  
जिहवेको का ! अन्तरे अन्तर् श्रीरामकी सुविदुषंभ

सुकुमल गोरमें ही सदाके लिये शान्त हो जाते हैं। श्रीराम कहते हैं—

परहित बस त्रिनके मनमाहीं । त्रिन्ह कहैं बगदुर्जन कुराहीं ।  
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउं कहा तुम पूजानाहीं ॥

इसके बाद जटायुकी क्रिया भगवान् स्वर्ग शरण ले करते हैं—

अविरल भगति माँगि बर गीध गयेउ हरिचर ।  
तेहि कै क्रिया जपोचित निज कर कौन्ही रत ॥  
पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति  
अपने धाम प्रभो ।  
ऐसो प्रभु विसारि तुलसी सठ  
तू चाहत सुख पावो ॥

इससे भी आगे बढ़िये, हमारे दीनवत्सल गोरमें दरबारमें चेतन मनुष्य और पशु-पक्षी ही नहीं, बरकरा को भी बही स्थान मिलता है। देखिये—

गौतम-पत्नी अहल्या पतिके शासने पापक गोर  
गौतम-आश्रममें स्थित है। उसमें न सेवकी बने है और न श्रीरामको बुलानेका सामर्थ्य ही है। किंतु दीनता और जड़ता। दयालु रामने इस बन्धी गोर नहीं की। मिथिलापुरी जाते समय मार्गमें जटायु गौतम-आश्रममें उस पापायुको देखकर प्रभु श्रीराम विरवामित्र मुनिके पूछने लगे—

वेद पढ़ै न कहैं दिजबुन्द  
बनी यह कैसी बड़ना भैती ।  
सूखे रसास तमालनके तरु,  
जान परे कछु बढी अनेकी ॥  
कूजे नदी खग गुँजे न भौर  
रखी लहिये नहि आनु ली देनी ।  
कीजे कथा कहिये मुनि-नाथ  
गारण गौंस दिग्य यह कैनी ॥

विरवामित्र मुनि उत्तर देने हैं—  
गौतमनारी आश्रम, उपर-देह करि बर ।  
अरन-कमल-रज चादनी, कथा करतु सुनरी ॥  
अनाथ-नाथ द्यामथ दीनवत्सु दयाके बण हो दिख  
आस्यो छुने हैं और उनके आरथका शर्प बाने ही

उसी चयन करने स्वरूपको प्राप्त हो जाती है—

परस्त पद पावन सौक-नसावन

प्रगट भई तप-पुंज सही ।

देखत रघुनायक जन-सुख-दायक

सनसुख होइ कर जोरि रही ॥

श्रीरामकी दयालुताका कर्हातक वषण न किया जाय ?

व्यवहक वनमें विचरते हुए श्रीराम एक जगह हड्डियोंका ढेर देखकर मुनियोंसे पूछते हैं कि 'यह क्या' है ?—

अरिय-समूह देखि रघुराया ॥ पूछा मुनिन्ह त्रिगि अति दाय ॥

मुनियोंने उत्तर दिया—

निसिचर-निकर सकल मुनि साय । सुनि रघुनाथ नय जहन छाप ॥

मुनियोंके दुःखको देखकर स्वामी रघुनाथजीके नेत्रोंमें जल धा गया, भगवान्ने उनके दुःख दूर करनेकी उसी चयन प्रतिज्ञा की—

निसिचर-हीन करौं मही, मुज उठाव पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्हके आग्रनन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

इसप्रकार श्रीरामके प्रतिज्ञा करनेके बाद एक समय श्रीमती सीता प्रभुको राक्षसोंके बधरूप हिसामक कर्मसे विरत करनेके उद्देश्यसे प्रभुसे कहने लगी—'स्वामिन् ! इस संसारमें कामजन्य व्यसन तीन प्रकारके होते हैं—एक मिथ्याभाषण, दूसरा पर-छी-सेवन और तीसरा शत्रुताके विना हिंसा करना । हे राघव ! आपने न तो कभी श्रावतक मिथ्या शब्द उच्चारण किया है और न कभी भविष्यमें घाय कर ही सके हैं । अधर्मदायक पर-छी-गमन-रूप व्यसन भी आपमें नहीं है । आपको स्वयमें भी पर-छीकी घमिजाया नहीं होती । आप पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, पार्थिव और सत्यपरायण हैं । आपमें धर्म और सत्य पूर्ण-रूपसे विराजमान हैं । आप इन्द्रिय-विजयी हैं, यह बात अभी जानते हैं—परन्तु आप शत्रुता न होनेपर भी राक्षसोंके बधरूप हिंसा-कर्मको क्यों करना चाहते हैं ?' इसप्रकार भगवान्के प्रति श्रीसीताजीने प्रेम और ममतासे अनेक बातें कहीं । तब रघुकुलमण्डि श्रीरामने उत्तर दिया । 'हे धर्मसे बनकायमने ! तुमने सभी हितकर और मित्र बातें कही हैं । तुमने स्वयं यह बात भी स्वीकार की है कि परित्रको घटुप इसीलिये धारण करना चाहिये जिससे किसी भी शत्रुका शब्द कभी सुनायी न दे । हे सीते ! इस

दृष्टकारण्यवासी तीक्ष्ण श्रुतीके पालन करनेवाले मुनिगण प्रभुसे अपना रथक मानकर मेरी शरण्य हो गये हैं । वे क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंसे उत्प्रेक्षित हो रहे हैं, अत्यन्त दुखी हैं । यह सब बातें मुनियोंने मुझसे कही हैं । मैंने उनसे पूछा 'क्या करना चाहिये'—तब मुनियोंने कहा कि 'ये राक्षस सदा ही हम लोगोंके यज्ञ, धर्म, तपादि अनुष्ठानमें विघ्न करते हैं और विना ही कारण हमलोगोंको सताते हैं । यद्यपि हमलोग तपके बलसे इन राक्षसोंको भट कर सकते हैं किन्तु ऐसा करनेसे हम अपने तप और साधनसे गिरते हैं अतएव हे राम ! आप हमारी रक्षा कीजिये ।' हे सीते ! इसप्रकार उनके दीन वचनोंको सुनकर मैंने प्रतिज्ञा कर ली है और अब मैं प्रायण रहते कभी प्रतिज्ञाके प्रतिवृत्त नहीं चल सकता । मैं चिरकालसे सत्यको अपना हृदय समझता हूँ ।' इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

अस प्रभु दीनबन्धु हरि कारन-रहित कृपाल ॥

तुलसीदास सठ ताहि मजु छँडु कपट-जंजाल ॥

प्रभुकी दयालुताका दूसरा उदाहरण देखिये ! सुमीव अपने श्वेत भ्राता बालिके द्वारा निरुद्घीत हो, घरसे निकल पड़ता है और बालिके भयसे कहीं भी आश्रय न पाकर श्रद्धामूक पर्वतपर आश्रय लेता है । इस पदादपर बालि शायके भयसे नहीं जा सकता था । बालिने सुभीवकी सम्पत्ति तथा उसकी स्त्रीको हर लिया था । ऐसी दीन दशमें पदा हुआ सुभीव जब भगवान् श्रीरामका आश्रय ग्रहण करता है, तब वे उसके दुःखोंको सुनकर प्रतिज्ञा करते हैं—

सुनु सुभ्राव मैं मारिहौं वारिहिं एकहि बाल ।

ब्रह्म-रुद्र-सरनाप्त गप न उबरिहिं प्राण ॥

सुभीवके दुःखसे श्रीराम यर्हातक व्यथित होते हैं कि उस दुर्दशामय वीनको अपना मित्र मानकर उसके सारे दुःखोंको अपने ऊपर ले लेते हैं । मित्रधर्मका निरूपण करते हुए आप कहते हैं—

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं मिलेकत पातक मारी ॥  
निज-दुख गिरि-सम रज करि जाना । मित्रक दुख-रज मेक समाना ॥  
देत केत मन संक न घरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥  
विपत्तिकारक सतगुन नेहा । दुष्टि कह संत मिन गुन परा ॥  
'सखा सोच एगहुँ बल मोरे । सब विधि करव काज मैं तेरे ॥

कितनी दयालुता है ? श्रीराम, बन्धुगर्वित बालिकका बध करते हैं, उसके अपराधका यथोचित दण्ड देने हैं

परन्तु जब बालिक के बल और गर्वका नाश हो जाता है, तब तुरन्त ही उसी दिन कातर बालिके प्रति ऐसी दयालुता दिखाते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं-

सुनत राम अति कोमल बानी । बालि-सीस परसेउ निज पानी ॥

अचल करौ तनु राखहु प्राणा ।

मित्रके प्रति जैसी दयालुता है, वैसी ही शत्रुके प्रति भी है। श्रीरामकी दृष्टिमें कोई भी शत्रु नहीं, वे सभीके निज जन हैं। हाँ, अभिमानी, गर्वी, दुराचारीके लिये वे साक्षात् काल-सप्ट हैं, परन्तु दीनके लिये तो वे परम मधुर, रमणीय, मनमोहन और अति धनिष्ठ आत्मीय हैं ।

जगत्में सच्चा दीनबन्धु एक पतितपावन श्रीरामके सिवा और कौन हो सकता है ? प्राकृत मनुष्य कैसा भी क्यों न हो-नामा हो या अति बलवान, साधु हो या विद्वान्, समासील हो या दयावान्, कोई किनना भी ऊँचा क्यों न हो, फिर भी उसकी शक्ति और सामर्थ्य परिमित ही है। क्या है-

एके दानि मिरोमनि साँचो

येर जॉप्यो सोर जॉचप्रानम निरि बहु नाच न नाच्यो ॥

दुर्गके सिवा यह बात भी है कि प्राकृत जीवकी दया भी सभी मास होती है, जब उमपर जगत्-पत्रिकी दया होती है। क्या है-

मुनि गुर नर नाल अगुर लपेटे तौ पनेरे ।

इ लोपे जोगी शररे न नेहु नवन पने ॥

दुर्गके अनिश्चित जगत्में प्राकृत जवकी उदारता किमी-क किमी स्वार्थको छोड़ ही होती है । गोष्पामीजी कहते हैं-

हेतु वे उदार प्रसन्न ।

विदु वेद जे इरे दोरदा रन हरिस कोर नरा ॥

हेतु इन हीन रिणधी ।

जो वेनउ बरजवेरन, विदु वनन वा-उपपत्ती ॥

एक बात और है, जब दुर्गके किमिले भीन मित्र भी होते हैं तबसे कालके लिये मित्रसंगणक नहीं मिलता । कालके एक बात का दुर्ग काउके लिये अतिवक्त शुभ होता है । दुर्गका काल-विषय काल नहीं होता । पर भीगमवा हो शुभ विवक्ष्य ही है ।

हेतु वेनउ बरजवेरन, विदु वनन वा-उपपत्ती ॥

हेतु वेनउ बरजवेरन, विदु वनन वा-उपपत्ती ॥

इन सबके अतिरिक्त एक बात और भी है, स्वर्गके द्योत्कर शन्य किसीके भी सामने हाथ फैलाना बने बुराई बात है । परन्तु अपने स्वामीसे माँगनेमें प्राणिके भी यहाँ तो अपना वैसा ही अधिकार है वैसा मिताकी सम्पत्ति पुत्रका और स्वामीकी सम्पत्तिपर क्रीका अधिकार होता है । गोष्पामीजी महाराजने कहा है-

'तोहि माँगि माँगने न माँगने कह्यो ।'

'जे जे तै निहाल किए पूले फिरत पर ।'

यह बात अचरय है, कि प्रभुकी कृपासे प्रभुकी ही प्रति प्राप्तकर प्रभुके दास चाहे जैसे दयालु बन जाते हैं । जब स्वर्गके उगका अपना कोई प्रभाव और बल नहीं रहता । जो इहाँ सब प्रभुका है । प्रभु जो चाहें, यही कार्य करने सकते हैं और उनका चाहे जितना गौरव भी था लगे हैं, यह सब प्रभुकी इच्छा है । अतएव बल-बल प्राप्त अद्वितीय दीनबन्धुल ज्ञानकीवल्लभ श्रीरामके चरणोंमें होकर उपस्थित होनेसे सदाके लिये दीनताका बल प्राप्त सकता है-

कोमलचित अति दीनदयाला । कारन विनु रघुनाथ इत्यार ।

### भक्तवत्सल श्रीराम

नान्यारपृष्टा रघुपते हृदये मदीये,  
रक्ष्ये बदामि च भक्तानसिद्धन्तरामा ।  
मक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्मासं मे,  
कामादिदोषरहितं कुव मानसं च ॥

अशिक्ष भुवनपति भगवान् जब अपने भक्तोंके हार्त मित्रनेही उच्छ उच्छटा देखते हैं, अपना सब कर्म भक्तोंको विपत्ति-मग्न तरगतते हैं, सब भक्तोंकी भीति ही शुभके लिये वे स्वयं हृत्त धराधाममें पधारते हैं-

किन्तु वान बैहुंड तति, मङ्ग-जनके वान ।  
नेर नेर जन मन मारई, धारण सोर तन लान ॥  
बधनि भगवान्ने भीतीनामें अपने धननदक सब बर वनजाया है कि-

बरा बरा दि बनीव इगरीदेरी मारन ।  
अभु-भक्तवत्सल तदप्रमत्तं मृदुवत्तन ॥  
रिक्तवत्तन म-भुनी रिक्तवत्तन च कुण-वत्तन ।  
रक्ष्ये भक्तवत्तनके व-वत्तनि मुने कुने ॥

'हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूपको प्रकट करता हूँ। साधुपुरुषोंका उदार करनेके लिये और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।' तथापि अधिक विचारनेसे भगवान्के अवतरणका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि वे अपने प्रिय भक्तोंसे साक्षात् मिलनेके लिये और अपनी रमणीय लीलामें उन्हें सम्मिलित करके उनकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये ही प्रकट होते हैं। यदि कहें कि फिर अन्यान्य कारण क्यों बतलाये गये हैं ?—तो इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि अन्यान्य कारण भी होते हैं पर वे सब गौण होते हैं। मुख्य कारण उसे समझना चाहिये जिसके लिये स्वयं अवतार धारण करनेके अतिरिक्त दूसरे उपायोंसे काम ही नहीं चल सकता और गौण कारण यह है जिसमें वृष्णा हो तो स्वयं भजे ही प्यारें अन्यान्य अन्यान्य उपायोंसे भी काम चल सकता है। यदि हम 'अधर्मको दूर करके धर्मकी स्थापना' को ही मुख्य कारण मानें तो यह असंगत है, क्योंकि धर्म-स्थापनके अन्य उपाय भी हैं। भगवान् अपने भक्त और साधुओंके द्वारा भी यह कार्य करवा सकते हैं। दुष्टोंके विनाशको मुख्य कारण मानें तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि अपने भक्तोंको शक्ति देकर सहज ही भगवान् यह कार्य भी करा सकते हैं। इस स्थलमें इस शंकाको खान नहीं है कि भगवद्भक्त भगवान्की शक्ति पाकर उपर्युक्त कार्य नहीं कर सकेंगे, भगवद्-शक्तिये तुच्छते तुच्छ जीव भी महान्से महान् बनकर सब कुछ कर सकता है और अत्यन्त समर्थ भी तुच्छ बन जा सकता है—

जे चेतनकहैं जड़ की जड़हि करै चैतन्य ।  
अस समरथ खुनायाहिं भजहिं जीव ते धन्य ॥  
ताकहैं जग कहु भगम नहिं, जापर हरि अनुकूल ।  
निदि प्रताप बह्वानलहिं, जारि सके सत तुल ॥  
मसकहिं करहिं मिरांथे सम, अजहिं मसकते हीन ।

भगवद्-कृपासे सब कुछ सम्भव है, इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं। यह सब होते हुए जब भक्तके हृदयमें अपने प्रभुसे मिलनेकी चाह जागृत होती है और जब उस चाहका स्वरूप देसा उल्लेख बन जाता है—

देह मेहकी सुधि नहीं टूट गयी जग-प्रीत ।  
'नारायण' गावत निरे प्रेम-मेरे रसगीत ॥

प्रेमसहित गद्गद् गिरा, कदत न मुखसे बात ।  
'नारायण' महबूब निन और न कहु सुहात ॥  
मनमें लगी चटपटी कब निरहूँ श्रीराम ।  
'नारायण' भूयो सभी सान पान विश्राम ॥

इसप्रकारकी अवस्थामें जब वह मिलनाकांक्षी भक्त परम व्याकुल होकर हृदयेशको पुकारता है, तब उसके पास किसी प्रतिनिधिको भेजनेसे काम नहीं चल सकता। इस अवस्थामें भगवान्को स्वयं भक्तोंके वृष्णानुरूप स्वरूपमें आना पड़ता है क्योंकि अतन्व भक्तोंकी यह भी एक विधिप्रता है कि वे भगवान्के जिस एक रूपके उपासकहोते हैं, उसके सिवा उसी भगवान्के अन्य रूपके दर्शनसे उन्हें रूचि नहीं होती, यद्यपि वे उनमें कोई भेद नहीं मानते। जब श्रीराम वृष्णकारणमें पधारते हैं और सुतीर्थण मुनिको पता लगता है कि श्रीराम यहाँ आये हैं, तब वह उनके दर्शनार्थ व्याकुल हो उठते हैं। सुतीर्थणजी अवधेश-कुमारके उपासक थे और उनसे मिलनेके लिये श्रीरामको उनके आश्रममें जाना भी था परन्तु श्रीरामके आगमनकी खबर पाते ही मुनिकी क्या दशा होती है—जरा ध्यानसे देखिये !

प्रभु आगमन अवण मुनि पावा । करत मनोरथ अतुर धावा ॥  
हे विधि दानबन्धु हघुराया । मो-से सठपर करिहहिं दाया ॥  
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं । मिठिहहिं निज सेवककी नाई ॥  
एक बानि कदनानिषानकी । सो प्रिय जके गति न आनकी ॥

सुतीर्थण मुनि भगवान्के प्रेममें इतने विद्वल हो गये कि उनको अपने तन मनकी और मार्गीकी भी कुछ-कुछ नहीं रही—

निर्मर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥  
दिति अक विदितिसि पंथ नहिं सूसा । को मैं चलेउ कहाँ नहिं नूसा ॥  
कबहुँक फिरी पाठे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करै गुन गाई ॥

सुतीर्थण मुनिकी यह दशा थी। इतनेमें ही रघुकुलभूषण श्रीरामजी वहाँ पहुँच गये और अपने प्यारे भक्तकी प्रेम-दशा पेड़की छोटसे देखने लगे।

अविरल प्रेम मगति मुनि पाई । प्रभु देखाई तब अष्ट लुकाई ॥  
भक्तवत्सल श्रीराम धव अपने भक्तसे दूर नहीं रह सके—

अशिसव प्रीति देखि रघुबीरके दैव्य हरन मरनीत ॥  
प्रभुको अपने भक्तके हृदयमें श्रेष्ठ होकर भी सन्तोष

गर्ही हुआ, अतः भगवान् अपने भक्तों को ध्यानमें जगानेके लिये आगे बढ़े—

मुनिमग मौंस अचक होर बैसा । पुस्तक शरीर पनतान्क जैसा ॥  
तब रघुनाथ निकट बरिठ आर । देखि दसा निज जन मन भाय ॥

कमललोचन श्रीराम सुतीषणके पास आकर मुनिको ध्यानसे जगाने लगे ।

मुनिहिं राम बहु मौंसि जगावा । जागन, ध्यानजनित गुम पावा ॥  
मूप रूप तब राम हुवावा । हृदय चतुर्भुज रूप दिसावा ॥

मुनिके हृदयसे अयधेशकुमार श्रीराम-रूपको हटाकर धाप चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें प्रकट हो गये, तब—

मुनि अकुलाह उठा तब कैसे । विकर दीन फनि मनि निनु जँसे ॥

यहाँ श्रीरामोपासक सुतीषणजी विन्ध्यरूपसे तन्वष्ट गर्हीं हैं, यद्यपि श्रीराम और विष्णुमें भेद नहीं है तथापि भक्तको तो अपने हृत्पित रूपकी ही चाह रहती है—

सुतीषण मुनिका ध्यान टूट जाता है और वह सामने प्रत्यक्ष श्रीसीतारामको देखकर प्रणाम करने लगते हैं—

आगे देखि राम तनु स्थाया । सीता-अनुज सहित सुलथाया ॥  
परेउ लकुटे इव चरनाहि लाया । प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥

यहाँ सुतीषणके लिये भगवान्को श्रीरामरूपसे स्वयं जाना ही पड़ता है, प्रतिनिधिकी बात तो दूर रही, अपने ही दान्यरूपसे भी काम नहीं चलता ।

यदि यह कहा जाय कि भगवान् भक्तोंको ज्ञान प्रदान कर ऐसी ब्राह्मसे मुक्त क्यों नहीं कर देते अथवा मुक्ति प्रदान करके उन्हें सन्तोष क्यों नहीं करा देते?

इसका उत्तर यह है कि ऐसे रूप धाम और लीलाके उपासक भक्त आरम्भसे मोक्षकी चाह न रखकर ही स्थापन करते हैं । उन्हें मुक्तिकी परवा ही नहीं होती वह तो केवल अपने उपास्यको ही चाहते हैं । ऐसे भक्तोंके भावकी स्वयं भगवान् इस प्रकार बतलाते हैं—

न पारोष्ठयं न महेंद्रपिण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।  
न योगसिद्धीरुपमर्षना मर्यादितमेच्छति मद्रिनाऽन्यत् ॥  
शुक्लं चात्ससमर्थं चरनेबाबा भक्त एक मेरे सिवा  
ब्रह्मके पदको, इन्द्रके पदको, सार्वभौम राज्यको, पातालके  
योगसिद्धिकी, श्रीकृष्णके, मोक्षको भी नहीं चाहता ।  
इसको मुक्ति भी इच्छा रहित है—

'ये गुणावीनि निररः' और जिनको भगवान्के सिवा धन कोई भी अमिच्छता नहीं 'अन्यभिर्भोग इत्यं' वह तो चाहते हैं—केवल एक अपने ल्यारे प्रभुको, जो स्वयं प्राण और सब कुछ देनेवाला है । पर वे भक्त अपने कोई धन दानको न चाइकर स्वयं दाताको ही चाहते हैं । धन पदार्थोंकी तो बात ही क्या है—

'विमुक्तनिर्मां हतवेऽप्यकुम्भमूनी-  
रक्तिराममुदासीर्निर्विगुम्भम् ।

न चरति भावपरदाभिन्दन्,  
एतन्निर्मां हतं यः स वैष्णवः ॥

( श्रीभागवत ११.१३.१४ )

आपने निमेषके लिये भगवान्-चिन्तन छोड़नेसे ही त्रिकोकीका समस्त देशवर्ष भी प्राप्त होता हो तो भी भावपर परण-कमलोंका प्रेमी भगवान्-चिन्तनका त्याग नहीं करता ।

यामस्थाप समस्त मयकमणि कुंन्ति य स्वते ।

इसी भक्तिका आश्रय लेकर भक्त तारे महारथों शिरोमणि भगवान्को अपने घरमें कर लेते हैं ।

बतलाइये, इस भावके भक्तोंको भगवान् मुक्ति या धन देकर उनसे कैसे छूट सकते हैं ? ऐसे भावकोंकी इच्छा-पूर्ति लिये ही तो उन्हें स्वयं इस मल्लोकोमें जाना पड़ता है । यदि प्रतिनिधिद्वारा काम नहीं चलता । यदि कोई कहे कि ऐसे भक्तोंको तो कुछ भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये ? इतनी इच्छा भी उनमें क्यों होती है ? हाँ, ठीक है, उन्हें और कुछ भी इच्छा नहीं होती परन्तु वे अपनी प्रभु-सेवाकी चाह नहीं छोड़ सकते । इसीसे वे—

'मुक्ति निरतरि मगति लुभाने'

अतएव भगवान्के अपना नित्य शोषण बतलावने आकर यहाँ अवतीर्थ होनेका मुख्य कारण भक्तोंका भावन-वर्द्धन, उनसे प्रत्यक्ष मिलन तथा उनकी सेवाप्रदय ही होता है । यह अवश्य है कि अचतार ग्रहण करनेपर भगवान् जोचितता अनेक कार्य करते हैं । बहुतरसे जीवोंका उदार कर देते हैं और शेषके लिये तथा भविष्यत्में होनेवालोंके लिये अपने धामका मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं ।

यदि कोई यह कहे कि भगवान् अचतार न लेकर जब भक्तोंकी इच्छा हो तब तब उन्हें दान देकर बतलाते हो जानेसे भी तो काम चल सकता है । इसका उत्तर यह

है कि कहीं कहीं ऐसा भी होता है, भक्त धुवजीके लिये यही हुआ था। परन्तु बात यह है कि भगवान्के भक्तगण धनोसे और विचित्र भाववाने होते हैं। मनु-शतरूपाने उनको पुत्ररूपसे ही प्राप्त करना चाहा। भगवान्के साथ मनुजीका वार्त्तालाप सुनिये ! मनुजी कहते हैं—

दानि-सिरोमनि वृषानिधि, नाथ कहीं सतमाउ ।

चाहौं तुम्हहिं समान सुत, प्रमुसल कवन दुराउ ॥

देखि प्रीति सुनि नचन अनोडे । एवमस्तु कदनानिधि बेले ॥

आपु सरिस खोजौं कहीं जाई । नृप तव तनय होव मैं आई ॥

जब भगवान् कौशल्याजीके यहाँ चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए, तब भी माता कौशल्या भगवान्से प्रार्थना करती है कि—

माता पुनि बेळी सो मती डोळी तनुहु ठात यह रूपा ॥

कौजे तिसु-लीला अति-प्रियलीला यह सुख परम अनूपा ॥

सुनि नचन सुजाना रोदन ठला है नालक सुरमूपा ॥

भक्त काकभुशुचिदर्जाकी चाह देखिये—

जब जब राम मनुज-तनु परहीं, मक-हेतु लीला नहु करहीं ॥

तब तब अचपुरी मैं जाऊँ, नाल-चरित बिलेकि हरपाऊँ ॥

जनम-महोत्सव देखौं जाई, बरष पाँच तहँ रहौं लुभाई ॥

इष्टेव मम नालक रामा, सोभा वपुष कौटि-सत-कामा ॥

निज-प्रभु-वदन निहारै निहारी, लोचन सफल करौं उरगारी ॥

लघु बापस वपु धारि हरिसंगा, देखौं नालचरित नबुरंगा ॥

हरिकाई जहँ जहँ निरहिं, तहँ तहँ संग उठाई ॥

जून-परै अतिर महँ, सोह उठाइ पुनि साई ॥

भक्तिमयी शबरीजीकी आराधना आनन्द लदिये—

जब भगवान् श्रीशबरीके आश्रममें आये हैं, तब शबरी कहती है मेरे गुरु मतंग ऋषि कह गये थे कि—

रामो दाशरथिर्जातः परमप्रता सनतनः ।

आगमिप्यति चैकाग्रध्याननिष्ठासिरा .श्रव ॥

सनतन परमात्मा दशरथके पुत्र राम यहाँ आवेंगे, वृ

एकाग्र चित्तसे ध्यानपरायण होकर यहाँ स्थिर रहें ।

शबरीजीके अनेक कालसे श्रीरामदर्शनकी आकांक्षा करी थी, वह प्रभु श्रीरामको खिलानेके लिये निज स्वादिष्ट फलोंका संमिश्र किया करती थी—

प्राज्ञ कहीं स्वादिभरे सरस संमिश्रिषु फल श्रीरामके भेंट करती है—

कन्द मूल फल सरस अति रिप रामकहँ अति ।

प्रेमसहित प्रभु साथ नारहिं बार बखानि ॥

भगवान्ने श्रीशबरीके दिये हुए फलोंको निःसंकोच प्रेमसे खाया और फलोंकी बहाई करते करते नहीं थके, अन्तमें शबरीने श्रीरामके सम्मुख अपने प्राय त्याग दिये, तब श्रीरामने अपने हाथसे माताकी भाँति शबरीका अन्वयेष्टि संस्कार और उसकी ऊर्ध्व-क्रिया की। श्रीरामकी भक्त-वत्सलताका कदाँतक वयं न किया जाय ?

इसप्रकार उनके भक्त अनेक प्रकारकी आशा लगाये रहते हैं, कोई सत्य-रसके आस्वादनकी इच्छा करते हैं, तो कोई दास्य-रसकी। कोई माधुर्य-रसकी, तो कोई वात्सल्य-रसकी और कोई शान्त-रसकी। ऐसे सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् श्रीरघुनाथजीका अवतार है। प्रभुके साथ सम्बन्ध केवल भक्तिद्वारा ही होता है, चाहे वह किसी भी भाववाली हो। भगवान् श्रीशबरीके प्रति कहते हैं—

कह रघुपति सुनु मामिनि वाता । मानउँ एक मगतिकर नाता ॥

आति पीति कुल धर्म नडाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥

मगतिहीन नर सोहहिं कैसे । निनु अल मरिद देखिय जैसे ॥

भक्तिद्वारा मनुष्य भगवान् श्रीरामका आत्मीय बन जाता है। देखिये, वनवासी पशुजाति वानरोंने अपने भक्तिबलसे श्रीरामके हृदयपर कैसा अधिकार कर लिया। गुरु वशिष्ठके प्रति स्वयं श्रीराम अपने वानर भक्तोंके लिये कहते हैं—

ये सब सखा सुनिय सुनि मेरे । भय समर-सामर कहँ मेरे ॥

भय हित रक्षि अनम दन हारे । भरतहुँ ते मोहि अधिक पिपारे ॥

पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

प्रभु तस्तर कपि डारपट, ते किय आपु समान ।

तुलसी कहँ न रामसो साहेब सील-निधान ॥

जै ग्यान-मान-विमत तब भव-हरनि मगति न आदरी ।

ते पाइ मुर-हुर्लभ-पदादरि परत हम देखत हरी ॥

निश्वास करि सब आस परिहरी दास तब जे होइ रहे ।

जपि नाल तब निनु भ्रम तरहिं नभ, नाथ सोहँ स्मरामे है ॥

### शरणागत-वत्सल श्रीराम

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि,

श्रीरामचन्द्रचरणौ बचसा गृणामि ।

श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि,

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥

शरणागति समल शत्रुओंकी शरणागत है, शत्रुका कल है और इन शरणागतिका कल है परम श्रेयकी प्राप्ति। शत्रुओंमें शरणागतिका कल शत्रुओंकी है। कल कहनेसे तो शत्रु-गतिभावकी प्रयुक्त होती है। शत्रुओंकोभार भागान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागत बनवना भुक्तविकारा है, जिस समय रावणसे विगृहीत होकर विभीषण श्रीरामके शरण आता है, उस समयका श्रीरामका भाव देखिये—

विभीषण अपने चार अनुचरों गदिग श्रीरामके शिरमें धाकरा-भाग्ये आता है और सुभीषादि वानरोंको अपना परिचय देकर सर्वलोक-शरणाप श्रीरामके प्राणपरमें से बचनेके लिये अनुरोध करता है। यह कहता है—

निवेदयत मां शिष्यं रावणस्य महदमने ।

सर्वलोकशरणाप विभीषणानुचरियन् ॥

'सर्व लोकोंको शरण देनेवाले महारामा श्रीरामचन्द्रजीको मेरे आनेकी सूचना धार दे दें ।'

विभीषणके शत्रुओंको मुन और उसके चरों छोड़कर सुभीषादि वानर श्रीरामानुचरोंको उसके आगमनकी सूचना देते हैं। श्रीराम सब वानरोंकी सम्मति चाहते हैं इसपर सुभीषण कहता है 'भगवन् ! शत्रुसेनासे धकलान् यह शत्रु विभीषण अपनी सेनामें आया है, मौका पाकर अपनी सेनाका नाश जैसे ही कर देगा जैसे उल्लू कौबोंका नाश कर देता है। यह हाक्षस शूरवीर और कपटी है, अन्तर्धान हो सकता है और इच्छानुरूप स्वरूप धारण भी कर सकता है। इसका विश्वास नहीं करना चाहिये। यह रावणके गुप्तचररूपसे हमारा भेद खेने आया है।—

जनि न जाइ निसाचरी माया । कामरूपकेहि कारण आया ॥

भेदवेन हमार सठ आवा । राखिय बौधि मोहि अस माता ॥

इसको रावणका भेजा हुआ समझिये। इसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। यह पहले विरक्त भाव दिख कर पीछेसे मौका पाकर धोखा देगा। अतः इसे मन्त्रियों समेत मार ही बाजना चाहिये ।'

अहम् कहता है—'विभीषण शत्रुके चरोंसे आता है, उसपर सन्देश अवश्य करना चाहिये। अथवा पाकर वह प्रहार कर सकता है। हित-अहितका विवेचन करके बल संग्रह करना चाहिये। जिसमें अधिक दोष हो, उसको त्यागना चाहिये और जिसमें अधिक गुण हो उसीको संग्रह

करना चाहिये। यदि आर्यो विभीषणमें हित ही प्राप्ति हो तो शत्रु हैं और अहित गुण प्राप्ति ही संग्रह करें ।'

अंगरथना कहता है—'अब वह शत्रुसे मन्त्र करता है, अब अंगरथ ही शरणका भेजा हुआ है ।'

मेन् वानर कहता है—'वह रावणका शिष्य नहीं। शत्रु वचनोंमें हुण्ये सब समझाकर पूजने कहिये। शिष्य गुरुकुदि है या अगुरुकुदि, इसका भी सर्वज्ञानित करना चाहिये।

पद्मकृष्ण श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—'हे राम ! यह सब शत्रुओंके शरण है, शक्तिशाली, शान्तियुक्त है। रामों में क्या मन्त्रप्राप्त है। आर्यके विचारके सामने साधारणता की भी मन्त्रप्राप्त हुण्य है। मैं श्रेयप्राप्ति, कामधर्म वगैरे कुछ भी नहीं कहता। केवल आशानुसंगे बना शिष्य आपके शरणमें निवेदन करता हूँ। विभीषणके लक्ष्मणर उससे साथ हुआ जानना चाहिये। लक्ष्मणर पुत्राना भी अनुचित है, पर वृत्त भेदकर सब बातें सब भी ठीक नहीं बँधता। विभीषण यदि आर्यो सर्वत्र अधिक पराक्रमी और गुणवान समझकर आप ही को लक्ष्मणर बुद्धिमानकी काम किया है। यदि वृत्त भेदकर राम की आशय तो यह शंका करेगा और दुली भी होय उसकी बोलचालमें कोई दुष्ट भाव नहीं दीखता। जब मुख प्रसन्न है इसलिये विभीषणपर सन्देह नहीं होता। यह पूर्व होता, तो शंकाशून्य स्वल्प-विचलसे आर्यके लक्ष्मणर नहीं आ सकता। रावणको बलगायित, पाप-परायण लक्ष्मणर उसका मारा करनेके लिये तथा राज्यकी कामनासे सब बातें आया है। अतः आपकी विभीषणका संग्रह करना चाहिये।'

हनुमान्के इन नीति, धर्म, भक्ति और रहस्यबुद्धि मनुकेसे वचन सुनकर जानकीबहुत श्रीरामसे कहा—'मित्रे ! आप सबने मेरे हितके लिये ही परामर्श दिया। अब मैं इच्छा सुनिये—

मित्रभावेन संग्राह्य न लजेयं कथंचन ।

दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदपार्हितम् ॥

( भा. रा. ६. ११८. ११ )

मित्र-भावसे आपसे हुए विभीषणको मैं संग्रहता। यदि कुछ दोष भी हो तो भी ऐसे आशय नहीं त्यागना चाहिये। यही सत्युक्त्योंकी स्तुत्य सम्मति है।

सद्वन्तर सुमीवने फिर कहा—'श्रीराम ! विभीषण्य हुए था शिष्ट, पर वह राक्षस तो ही ही । आपसिके समय जब मैं अपने भाईको त्याग दिया है तो फिर यह किसका ग नहीं कर सकेगा ? जातिवाले और समीपबर्त्सालोग ही कभी शत्रुओंकी सहायता किया करते हैं, परन्तु अब पति छाती है तब उनपर ही प्रहार करने लगते हैं, यह इन्होंने सब कार्योंसे धरया होगा । इसके सिवा शास्त्रों-भी शत्रुके बलका ग्रहण करना दोषयुक्त बतलाया है, कि इसमें धोखा ही होता है ।' इसप्रकार सुमीवने त्याग्न श्रीरामके सामने अनेक युक्तियुक्त तर्क स्थित किये, श्रीरामने इन विचारयुक्त तर्कोंको सुन, यह जो सुमीवकी बड़ी प्रशंसा थी, और कहा 'मित्र ! यह उस हुए ही था शिष्ट, मेरा कुछ भी अपकार नहीं कर करता, क्योंकि मैं चाहूँ तो शूर्वीपर जितने राक्षस, पिशाच, जव और यक्ष हैं, सबका शत्रुत्वके अग्रभागसे ही विनाश कर दूँ । जब कपोत-सरीसे पपीने भी शरण्य चाये शत्रुका अपना मांस देकर सत्कार किया था, तब भला, मैं इसका से त्याग कर सकता हूँ ?

पुरुष यदि रक्षा न पाकर रक्षककी शॉखोंके सामने मारा जाता है तो रक्षकके सब पुण्य मरनेवालेको मिलते हैं और वह स्वर्गको चला जाता है । इसप्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें बड़ा भारी दोष है और उनकी रक्षा न करना स्वर्ग-से अछ करनेवाला, अपयश देनेवाला और बलवीर्यको नष्ट करनेवाला है ।'

सरनागत कहँ जे तजहि, निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥

सत्-पुरुषोंके व्यवहारको दिखानेकर शरणागतबन्धुल भगवान् श्रीराम अपने ब्रतकी धर्यान् नियमकी घोषणा करते हैं—

सष्टदेव प्रपताय तवासीति च याचते ।

अमयं सर्वभूतेभ्यो ददम्येतद्भ्रतं मन ॥

'यह मेरा व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरण्यमें आकर 'मैं सुमहारा हूँ' ऐसा कह मुझसे शरण्यकी याचना करता है, मैं उसको सर्व प्राथियोंसे निर्भय कर देता हूँ ।'

मम पन सरनागत-मय-हारी ॥

कोटि विप्र-बन्ध लागहि जाहूँ । आप सरन तजौं नहिं ताहूँ ॥

सनमुख होइ जीव मोहिं जनहीं । जनन कोटि अघ नासहिं तनहीं ॥

तदनन्तर भगवान् आज्ञा देते हैं कि—'हे सुमीव !

आनयैनें हरिष्रेष्ठ दत्तमस्मानयं मया ।

निमीपणो वा सुग्रीन यदि वा रावणः स्वयम् ॥

( वा ० रा ० ६ । १८ । १४ )

यह ध्यकि विभीषण्य हो चाहे स्वयं रावण्य हो, तुम उसको खिवा लाओ, मैंने उसे अभय दान दे दिया ।

जो समीत आता सरनाहँ । रसिहौं ताहिं प्रानकी नाई ॥'

प्रभुकी इसप्रकारकी घोषणाको जो पुरुष जानता है और जो उसपर विचार करता है वह अन्य समस्त आश्रयोंको त्यागकर एकमात्र शरणागत-मय-हारी भगवान्के ही शरण्य चला जाता है, वह कभी हृष्य रुधर नहीं भटकता । भगवान्की शरणागतिते वह सदाके लिये निर्भय हो जाता है । भक्त भवृंहतिजो महाराज अपने चित्तको उपदेश देते हुए कहते हैं—

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नापो मदि,

सित्ना द्रव्यपति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ।

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।  
न हन्यादानुशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्ताप ॥  
अत्तो वा यदि वा दसः परेषां शरणं गतः ।  
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षिन्त्यः इतात्मना ॥  
स चेत् मयादा मोहात्ता कामादापि न रक्षति ।  
स्वका शक्त्या यथा न्यायं तन् पापं लोकगर्हितम् ॥  
विनष्टः पदयतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।  
आदाय मुक्तं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥  
एवं दोषो महानत्र प्रपजानामरक्षणे ।  
अस्वयं चापशरयं च बलवीर्यविनाशुनम् ॥

( वा ० रा ० ६ । १८ । १७-११ )

'हे परन्ताप ! जब शत्रु दीनतासे हाथ जोड़कर शरण्यकी याचना करता हुआ प्रणाम करने लगे तो वह दूर्यंस बुद्धिवाला तेनेवर भी उसको न मारें शत्रु दुःखमें पड़ा हो, गर्वसे भरा हो ज्या दूसरोंके भयसे शरण्यमें आया हो, तब भी कृतात्म्या पुरुष शरण्योंकी कुछ भी परवा न कर उसकी रक्षा करे । जो पुरुष मय, मोह या कामसे शरण्य चाये हुए शत्रुकी अपनी शक्ति-के अनुसार रक्षा नहीं करता, वह पापका भागी होता है और संसारमें उसकी निन्दा होती है । रक्षा चाहनेवाला



बेरातानपहाय यदि मदन देवग विधेति।

निरीकारिक निर्दोषोत्प पराने नि रीन शर्मजदम् ॥

रे चित। वेग, यदि नू किमी राधापार्य राजा या यकीने दारपारमें जाता है तो उनके दारवाजेपर पहुँचने ही द्वारपाल पुसारे कहना है- 'धामी मित्रनेका रामप नहीं है, स्वामी पृकान्तमें है।' फिर वृगरे गमय जाना है तो कहना है कि 'स्वामी सोते है। गुलाकाग न होगी।' यदि मिथुक चर्ही द्वारपर बैठ रहता है तो यह कहना है 'यहाँ मग बैठो, स्वामी सुरोंमे तो माराज होंगे।' अतपुय रे गित। अथ भी राधपान हो और सांसारिक लोगोंके आशयकी धारा त्यागकर उस जगत्-पति प्रमुके दरबारकी शरय खे, वहाँ न तो द्वार-पर रोकनेवाला द्वारपाल है और न कोई कटोर पपन ही सुनानेवाला है, प्रयुन जो उमी शय धनना धानन्दको देनेवाला है।

भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर सुग्रीव और इतुमवादि अनुषर विभीषणको प्रमुके सम्मुख खे भाते है और विभीषण्य जब भगवान्के सम्मुख आता है तो भगवान्की

मन्-भातुगी देवकर वह विचार हो जाता है-

बदुरि रान छरि-गान विनेकी। हरेउ कुदि इकर सरीं

धीर यह कहना हुआ प्रमुके वाक्यों विपु बृहकी भाँति गिर पड़ना है-

मरन मुक्त मुनि भापेई, प्रनु मंत्र मन्-नी।

प्रदि प्रदि आरतीहरन, मरन-मुन्द सुनी।

भगवान् श्रीरामकी शरथागत-वसजना अनुत्ते प्रमुवाइ भीगोस्वामीकी करने है-

नदिन और कोऊ सरन लक दूने

धीरपुनी सन निरि निरान।

काछे राद्व स्वनात सेवजन

कदि प्रननर प्रीति मकार ॥

जन-गुन अद्व मन्त सुमेव करि

अवगुन कंठि निरिंकि निरान।

परम इवान् मन्त-विन्तमनि

विरद पुनीत पतीउ-जन-तान ॥

### श्रीरामका प्रणत-रचा प्रण



गवान् श्रीरामकी शरथागतवसजना सुमसिद्ध है। जब राक्षसराज विभीषण भगवान्के शरण आता है और जब सम्मति पूछे जानेपर सेना-पति सुग्रीव विभीषणको बाँध रखनेकी राय देता है तब भगवान् श्रीराम, नीतिके हिसाबसे सुग्रीवकी सम्मतिका सम्मान करते हुए अपना प्रण सुनाते हैं-

सखा। नीति तुम नीकि विचारी। मम पन सरणागत-भय-हारी ॥

इसके बाद विभीषण सादर श्रीरामके सामने लाया जाता है और श्रीराम उसकी सच्ची शरथागतिपर मुग्ध हो-अथ इच्छा न रहनेपर भी-उसे लङ्काधिपति बना देते हैं। केवल मुँहसे ही 'लङ्केश' नहीं कहते परन्तु 'मम दरसन अमोष जगमाही।' कहकर अपने हाथसे उसके राजतिलक भी कर देते हैं। सुग्रीवको यहाँ बड़ा आश्चर्य होता है। यह सेनापतिकी हैसियतसे सोचता है कि अमी लङ्कापर विजय तो मिली ही नहीं, पहले ही विभीषणको 'लङ्केश' श्रीरामने बड़ी भारी जिम्मेवारी अपने ऊपर खे ली

है। इससे सुग्रीव राजनीतिकुशलतासे बड़े ही विचरन से श्रीरामसे पृकान्तमें पूजता है 'नाथ! विभीषणको ले शरथागतिका फल मिन्न गया, परन्तु हे स्वामी! नी स इसीप्रकार रावण शरण आ जाय तो फिर क्या होना! क्या लङ्काका राज्य उसे नहीं दिया जायगा! दिया जाना तो स्वामीके वचन कैसे रहेंगे और यदि नहीं दिया जाना तो रावणको संगतोप कैसे होगा!' भगवान् और सुग्रीवका आशय समझकर हँसते हुए कहते हैं, 'मि! रामका मत यही है कि वह जो कुछ पृकवार करे देना उसे पलटता नहीं। लङ्का तो विभीषणकी ही होगी, नी रावण आवेगा तो उसके लिये अवय तैयार है-

नात कही जो कही सो कही,  
जो कही सो कही फिर फेर न आन।  
जो दसकरुणर आन मिके,  
गढ़ लंकें विभीषण, अवध दसानन ॥  
मरतहि बन्धु समेत कलाप करूँ,  
निज वास मैं हौ गिरिकानन।

ये नहीं पावहि लंक-अनास,  
कहाँ सतिमात नरेस दसानन ॥

रावण शरणा नहीं आया, उल्टेने तो श्रीरामके हाथसे नेमें ही अपना सौभाग्य समझा और यही उसके लिये चेत था। विभीषणको जो एक बार भगवान्ने अपना राया तो फिर कभी उसको नहीं भुलाया, आप उसकी मुझुधि लेते रहे और उसे विपत्तियोंसे बचाते रहे।

श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध हो रहा है, रावण बहुत दंष्ट्र होकर इतने वाय छोड़ता है कि श्रीरामका रथ एक झीके लिये बैठे ही टूट जाता है जैसे कुहरोसे सूयें। इसके बाद रावण एक सेल विभीषणपर छोड़ता है, इस सेलके गते ही विभीषणका मरण निश्चित है, क्योंकि यह भयोप। भगवान् श्रीराम इस रहस्यको जानते थे। शक्ति छूटते ही श्रीरामने अपना विरुद्ध सहाया—

आवत देखि सकि अति मारी। प्रनतारत हरि विरद संभारी ॥  
तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला ॥

शरणागतकी आर्त्तिका नाश करनेवाले श्रीराम शरणागत तकका प्रति कैसे देख सकते थे ? जो सब औरसे समता हटाकर श्रीरामके चरणोंको ही समताका एकमात्र केन्द्र बना जेता है और अपने आपको सर्वतोभावेन उनके प्रति धर्य कर देता है, उसके शरणागतका सारा भार, योग्यताकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। इसलिये भगवान्ने तुरन्त विभीषणको पीछे कर लिया और भीषण सेलका प्रहार सहनेके लिये छाती सामने करके शर्य खड़े हो गये। धन्य जाय ! ऐसे शरणागतसकल श्रीरामको भूजकर जो अपारत-रमणीय भोगोंमें रखते हैं, उनके समान दयनीय और कौन होगा ?

एक घटना और सुनिये। एक समय श्रीरामको मुनियोंके द्वारा यह समाचार मिळता है कि लङ्काधिविधि विभीषण प्रविष्ट देरामें कैद हैं। भगवान् श्रीराम अब नहीं टहर सके, वे विभीषणका पता लगाने और उसे सुझानेके लिये निकल पड़े। खोजते खोजते विमपोष नामक गाँवमें पहुँचे, विभीषण वहाँ कैद थे। वहाँके लोगोंने श्रीरामको दिखलाया कि विभीषण जमीनके अन्दर एक कोटरमें खड़ीतोंसे बंधा हुआ पड़ा है। श्रीरामके दृष्टनेपर आश्चर्योंने कहा— 'राजन् ! विभीषणने महाहत्या की थी, एक प्रति फार्मिक दूध आह्वय निजंन उपचरमें टप कर रहा था,

विभीषणने वहाँ जाकर उसे पदद्विजित काके भार डाला। आह्वयकी सृष्टि होते ही विभीषणके पैर वहाँ रुक गये, वह एक कदम भी,आगे नहीं बढ़ सका, महाहत्याके पापसे उसकी चाल बन्द हो गयी। हम लोगोंने इस दुष्ट राक्षसको बहुत मारा-पीटा परन्तु इस पापीके प्राण किसी प्रकार नहीं निकले। अब हे श्रीराम ! आप पधार गये हैं, आप चक्रवर्ती राजाजैध हैं। इस पापामाका बंध करके धर्मकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर श्रीराम असमजसमें पड़ गये। एक ओर विभीषणका भारी अपराध है और दूसरी ओर विभीषण श्रीरामका ही एक गुलाम है। यहाँपर श्रीरामने आह्वयोंसे जो कुछ कहा सो बहुत ही ध्यान देने योग्य है। शरणागत भक्तके लिये भगवान् कर्हातक करनेको तैयार रहते हैं, इस बातका पता भगवान्के शब्दोंसे लग जायगा। भगवान् श्रीराम स्वयं अपराधीकी तरह नत्रतासे कहने लगे—

वं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथन् ।

राज्यमासुर्मया दत्तं तथैव स भविष्यति ॥

मृत्यापराधे सर्वत्र स्वामिनी दण्ड इष्यते ।

रामवाक्यं द्विजः श्रुत्वा विस्मयादिदमब्रवीत् ॥

( पंचपुराण पातालखण्ड )

'हे द्विजवरो ! विभीषणको तो मैं चलखड राज्य और धायु दे चुका, वह तो मर नहीं सकता। फिर उसके मरनेकी ही क्या जरूरत है ? वह तो मेरा भक्त है, भक्तके लिये मैं शरण भर सकता हूँ। सेवकके अपराधी जिम्मेवारी तो बालकमें माबिकार ही होती है। नौकरके दोषसे स्वामी ही दण्डका पात्र होता है, अतएव विभीषणके बदले धायु भोग मुझे दण्ड दीजिये।' श्रीरामके मुखसे ऐसे बचन सुनकर आह्वयमचरकी आश्चर्यमें डूब गयी। जिसको श्रीरामसे दण्ड दिखवाना चाहते थे वह तो श्रीरामका सेवक है और सेवकके लिये उसके स्वामी श्रीराम ही दण्ड ग्रहण करना चाहते हैं। महाहा ! स्वामी हो तो ऐसा हो। भान्त मनुष्यो ! ऐसे स्वामीको बिसारकर अन्य किन साधनसे मुक्ति होना चाहते हो ? अन्तु !

आह्वय उसे दण्ड देना भूज गये। श्रीरामके मुखसे ऐसे बचन सुनकर आह्वयोंको यह विन्ता हो गयी कि विभीषण बदरी छूट जाय और अपने घर का लके हो अपनी बात है। वे विभीषणको छोड़ तो लकने

ये परमा पुोदानेमे क्या होगा, प्रकटहत्याके पारमे उगडी मो गति रकी हुई थी। अगएव माझगंने कर—'राम! ह्य-प्रकार बन्धनमें परे रगना उचिग नही है। धार वचिउ प्रभृति मुनियोंकी रापने हने पुदानेका प्रयव कीजिये।' धनन्तर श्रीरामने प्रधान प्रधान मुनियोंसे पूकर विभीषणके लिये तीन री ग्राड गोदानका प्रायभिल बगळाकर उमे पुका लिया। प्रायभिलहारा पिद्युद होकर जब विभीषण भगवान् श्रीरामके गामने आकर ग्राड प्रणाम करने लगा तब श्रीरामने उसे सभामें ले जाकर हैंगने हुए यह शिषा

दी—'येगा कार कभी नही करना चाहिये। जिनके दिन हो, नही कार करना चाहिये। हे राममान! तुमने मेवक हो, अन्तर दुर्गे मानुगीन होना चाहिये, री दगातु रहना चाहिये।' गारांश, येगा कोई कार नमने के करना चाहिये जिगमे उगके गामी भगवान् करत चाये।

भगवान् श्रीराम एक बार विभीषणको समझाते थे उमे उचिग शिषा देनेके जिये किरमे बडा मी लीये।

भगवान्

## श्रीरामावतारके विविध भाव और रहस्य

( लेखक-विद्वान् प० श्रीमशानीशंकरजी )

### उद्देश्य



रामके अवतारमें प्रधानतः दो उद्देश्य थे। प्रथम, संसार-दुःखके यथार्थ मूल कारण अधर्मका नाश करना और दूसरा, धर्मकी वृद्धि और रक्षाके लिये एक परम पावन चरित्र-वान् आदर्श महापुरुषका नमना संसारके सामने पेश करना। जब समस्त देवताओंने एकत्र होकर प्रेमपूर्वक अवतार धारणके लिये परमात्मासे सम्मिलित प्रार्थना की थी, तभी उसको परमात्माने स्वीकार किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि सार्वजनिक लोक-हित-कर कार्यकी सिद्धिके लिये अनेक पवित्रात्मा पुरुषोंका मिलकर प्रेमके साथ एकी-भावसे सम्मिलित हो उपासना और प्रार्थना करना आवश्यक है। श्रीशिवजीने कहा है—

हरि व्यापक सर्वत्र समान। प्रेमते प्रगट होहिं मैं जाना ॥

अग-जग-भय सवरहित विरामी। प्रेमते प्रनु प्रगट्ट जिनिं आमी ॥

पर-दुःखसे कातर हो पर-हितार्थ श्रीभगवान्की सेवाके भावसे, निःस्वार्थ होकर सबे हृदयसे जो त्यागरूप कर्म किया जाता है, वही यथार्थ भगवत्-प्रेम है। इसी प्रेमके कारण भगवान्ने अवतार ग्रहण किया। दूसरे उद्देश्यमें भी कि मनुष्यके चरित्रसंगठनके लिये, दिव्य गुण, कर्म और ऐश्वर्यका अधि-विकास करनेके लिये,—जो मनुष्य-जीवनका मुख्य

लक्ष्य है—एक ऐसे आदर्श परम पवित्र जीवनका नमना साधान् प्रकट होना था, जिसको इष्ट और आदर्श मान समस्त मनुष्यसमान अपना चरित्र संगठन करे और सर्वे ईश्वरीय दिव्य गुणोंका विकास करे। इसीलिये हम एक अवतारकी बीजाण्ड मनुष्योंके द्वारा हो सकनेवाले को सदा ही दुर्ह, जिसमे कि प्रत्येक मनुष्य उनको आदर्श मान ग्रहण कर सके।

### जन्म

महाराज दशरथने जो श्रीराम-जन्मके लिये पूर्वजन्म तपस्या और इस जन्ममें पुत्रोष्टि-यज्ञ किया था, उसने ही तात्पर्य समझना चाहिये कि यदि कोई पुत्र किसी पिता आत्माको धरने यहाँ जन्म-धारण करनेके लिये आहार्य बन चाहे तो उसको उस कार्यके लिये उपयुक्त तपस्या और करना चाहिये।

### बाल-भाव

बाल्यकालमें प्रायः बालक स्वभावसे ही परम पुत्र शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कपट, सत्यवादी, समदर्शी और प्रेमी होते हैं। इसीसे बालकका पवित्र स्वरूप स्वभाविक चित्ताकर्षक हुआ करता है। पवित्र और सुन्दर बालकोंमें भगवान्का विशेष प्रकार विद्यमान लगन पूज्य ईश्वरभावसे उनका ध्यान करनेपर किसी भी साधकको उपासनाके समान ही फल प्राप्त हुआ जाता है। जब साधारण बालकोंमें ऐसा होता है तो कौन वषां न कर सकत

धनुनापुत्रीके एक मनोहर बालस्वरूपकी उपासना श्रीरामलक्ष्मणमें बतलायी है जिसमें भगवान् अपने पिताकी गोदमें बैठे हैं। भक्तान् काकमुद्युधिदजी भी बालरूपके ही उपासक हैं। श्रीभगवान्के बाल-वेपमें ही उनको विधरूपके दर्शन मिले। इस रूपके उपासकको विशेषकर परम शान्त, प्रेम, सरल, निष्कण्ठ, सत्यवादी, समदारी, निर्विकार और भी होना चाहिये। इस भावका धाम श्रीप्रयोध्याजी हैं और इसमें वास्तव्यरसकी प्रधानता है।

### कुमार-भाव

इस भावमें भगवान् श्रीरामके ब्रह्मचारी-वेपकी उपासना की जाती है। इनके दो भाग हैं। एक गुरु श्रीवशिष्ठके द्वारा श्रीप्रयोध्यामें विद्या ज्ञान आदि की शिक्षा-दीक्षा और दूसरा, गुरु श्रीविश्वामित्रके द्वारा प्रवास और अभयमें प्रवेष्टा, ज्ञान और शस्त्रादिकी शिक्षा-दीक्षा।

माता-पिता और गुरुकी कठिनसे कठिन आज्ञाका विशेषकर धर्मरक्षाके लिये, सहर्ष पालन करना ब्रह्मचारीका धर्म धर्म है। श्रीभगवान्ने पिताकी आज्ञासे विश्वामित्रके साथ जाकर तथा फिर विश्वामित्र गुरुकी आज्ञासे उनके यज्ञकी रक्षा और सीता-स्वयंवरमें धनुष भंगकर इस धर्मका भली-भाँति पालन किया। धनुषभंग करनेके पश्चात् भी श्रीभगवान्ने अपने पिताकी आज्ञा बिना श्रीजानकीजीका पाषाण-प्रहार करना स्वीकार नहीं किया (बा० २। ११६। ११)

### मधुर मिथिला-भाव

यह परम मधुर और मनोहर भाव श्रीविदेह-नगरमें पशुपत्य करनेके समयमें धारण होता है। इस भावमें ब्रह्मचर्यकी पराकाष्ठा है, जिसके कारण श्रीभगवान्का सीमरूप अधिकाधिक तेजोमय, दिव्य, सुन्दर और रम्य हो जाता है। श्रीरामकी रूपमायुतीको देखकर जनिभ्रष्ट जनकजी कहते हैं—  
 ब्रह्म जे निगम नेरी कहि गथा। उमय बेन धरि सोइ कि आथा ॥  
 एहज बिराजत मन मोर। अकित होत किमि चन्द ककोरा ॥

जनकगुरुकी भाव्यराजिनी कारिया कहती हैं—

बन कितोर सुभम-सदन, स्वाम-गौर मुगपाम ।

अंग अंगर बरिबधि, केति-केति-सत काम ॥

भगवके बाजकोकी द्वारा देखिये—

सब निमु परि मित प्रेमबस, पतिम मनोहरग्य ।

धनु पुन्यदि अत्रि हरष दिव्य, देखि देखि दोउ प्रल ॥

इस भावमें मुख्य घटना दुष्पवाटिकामें श्रीगिरिजाजीके स्थान पर श्रीभगवान् और श्रीजानकीजीका परस्पर साक्षात्कार है, जहाँ श्रीजानकीजीके शारीरिक सौन्दर्यका वषट्क है—

जनु बिरिचि सब निज निपुनार्इ । बिरिचि विश्व कहुँ प्रगट देखाई ॥

सुंदरता कहँ सुंदर करई । उबि-गृह दीप-सित्ता जनु बरई ॥

श्रीमतीजीको देखकर श्रीभगवान्, लक्ष्मणजीसे कहते हैं—  
 जासु बिलोकि अङ्गुलिक सोमा । सहज पुनीत मन मर छोमा ॥

प्रत्येक जीवात्मा अपने इष्टका धरा होनेके कारण उनकी शक्ति है। निर्मम और निरहंकार होकर प्रेमपूर्वक सेवा भक्ति करनेसे ही उस इष्टका दर्शन और उसके साथ सम्बन्ध हो सकता है। यह सम्बन्ध सांसारिक सम्बन्धकी दृष्टिसे एक प्रकार विवाहके समान है, परन्तु यह तो जीवात्मा और परमात्माका आध्यात्मिक सम्बन्ध है, शारीरिक कदापि नहीं। आर्योंका विवाह भी अर्थात् दो जीवात्माओंका सम्बन्ध है। जिसमें वरको विष्णु, सप्तम कर कन्याका अर्पण किया जाता है।

प्रत्येक उपासकको अपने इष्टदेवकी प्राप्तिके लिये गायत्री शक्तिके प्रकाशके आश्रय और जीवन्मुक्त सद्गुरुकी आश्रयकता है। इस रामचरित्ररूप आध्यात्मिक नाटकमें श्रीजानकीजीको परम कृपापात्री साधिका समझिये और विदेह जनकको इस आध्यात्मिक विवाहमें सम्बन्ध जोड़ने-वाले सद्गुरु ! परन्तु इष्टरूप वरकी प्राप्तिके लिये विद्या-शक्तिको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। इसी मर्यादाके अनुसार श्रीजानकीजीने श्रीभगवान्की प्राप्तिके लिये श्रीगिरिजाजीका धारायण कर उनसे वरकी प्राप्ति की, तभी उनका श्रीरामके साथ विवाह हुआ।

इस मधुर मिथिला भावमें श्रीभगवान्का कृष्णरूपमें और उनकी दिव्य परा ध्यानन्दनवी शक्ति श्रीजानकीजीकी दुःखहिनके रूपमें युगल उपासनाकी जाती है। इस भावके उपासक भक्तकी दृष्टिमें श्रीभगवान्का यह विवाह आध्यात्मिक और रहस्यमय होनेके कारण निरूप्य है, अनूप यह परम मधुर 'युगल जोड़ी' सदा भवशा श्रीमिथिला नगरीमें रहती है। इस विवाहोत्सवके भावकी उपासना कालान्तर मधुर और रहस्यमयी है। इसीसे विवाहके समय देवजोकमें भी परम उत्सव हुआ था (बा० १। ६३। २६—२७)

जगत्के व्यवहारमें भी विवाहोत्सवके बंधन कालान्तर घटना दूसरी बनी है क्योंकि विवाहमें दो आत्माओंका एक-कारण किया जाता है। इस भावमें श्रीभगवान् करने लिये

कम्प और शरणाग्रोने परिनेहित हैं एवं भीमानधीची क्रावी  
 विष शरत्त श्रापीव गगिप्योने मेरिज हैं। मरकचे कम्प और  
 बाहर दोनोंकी सेवा हो रही है। विविध चीज काग, माला  
 प्रकार मृति-धार्पण कादिने द्वारा ज्वरिष्ठा शरका विष्णु प्रका  
 करता है। इस प्रकार हुए भावमें विविध मयुर रगधी वनेष  
 साम्यियां वर्णमान हैं। जैसे वृष्णावनका शरगोष्ण विष्णु है,  
 वृष्णावनमें भगवान् भीहृष्यपञ्च सर्वदा विराजमान हैं इत्यादि  
 परिपश्य वरमेकं न गच्छति। कैपेरी यह मयुर विधिचा  
 विवाहोत्सव भी निष्प है, जहाँ यह कर्ण, युगल जोड़ी, राश  
 वर्णमान रहती है। इस भाषका भाम भीजनक माली है, जनक  
 माली अब भी धर्मिष्ठ दिव्य शाय मेराभमें है, जहाँ वर्णमान  
 पार्थिव शय्यताकी पुराहर्षा पृष् प्रवेश नहीं कर पायी है।  
 धीमतीमीची कृपागे उस धामके और उग प्रोतके निरागी  
 धर भी प्रायः शुन्य और शरप हैं। भीरामोशरकको  
 जनकपुर और उसमें धीगिरिजाजीके स्थानका दर्शन भक्ति-  
 भावसे प्रवरप करना चाहिये।

इस मयुर भावके एक परम भागुक महात्माको किगीने  
 धीभगवान्की वनपाशका संवाद सुना दिया, जिये सुनकर  
 यह परम व्याकुल होकर विरहट गये। जहाँ अब भीमगी  
 और धीभगवान्ने दर्शन और आधासन दिया, तभी यह  
 यहाँसे खोटे। सुपरा जिलाके सिवानके पास रहनेवाले स्वनाम-  
 चन्व थीरामाजी इसी भावके उपासक थे। वे जहाँ कोई  
 पीतवक्षपाती दृष्टा देखते, वहाँ भगवत्-भावसे उसका आदर  
 और सेवा करने लगते। विवाहोत्सव सकही रामायणकी कथा  
 कहे और मयुर विवाहोत्सव प्रायः किया करते। उनका  
 भगवान्में अर्पित जीवन बहुतेही विरुद्ध और गाढ़ प्रेमसे  
 प्लावित था। यह यथार्थ ही भगवान्के सच्चे कृपापात्र थे।  
 उनकी सत्संगतिसे बनेक लोग सुधरे और ईश्वरानुगामी बने !

तापस-भाव

इस भावका प्रारम्भ वनपाशसे होता है। इसमें दया  
 और वैराग्यकी प्रधानता है। धीभगवान्को न तो राज्या-  
 भियेकके समाचारसे हर्ष हुआ और न वन-वासके संवादसे  
 शोक। यह दोनोंमें ही सम रहे। समता वैराग्यसे होती है।  
 ( पा० २, १ : १४ : २९-२३ )

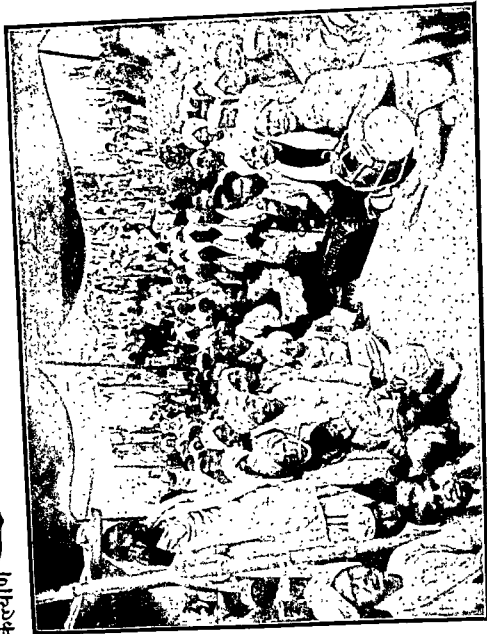
धीभगवान्के वनगमनमें कैकेयीही कारण थी, परन्तु  
 भगवान् कभी कैकेयीसे नाराज नहीं हुए, बल्कि उन्होंने यही  
 कि 'माता ! मैं केवल आपकी आज्ञासे ही वन जा

गया था। सुमन्त्र शापिने वरये श्री-रामाजी  
 को श्रीरामका शपथ सुनाया कि 'माता ! मेरी व्रतों  
 धार्पण है कि आप राजा दशरथजीको कैकेयी से  
 अनुगामी बनने' ( पा० २ : १२ : ११४ ) श्रीरामान्ने  
 कहा कि 'माता ! माता कैकेयी से वराधायमें वरक  
 वाकी जोउा करके तुम उनकी सेवा करो'। इसी  
 पहले भीजम्भवाजीने कहा था कि 'मैं माता से  
 निष्ठा गहन नहीं कर सकता।' वरने कैकेयी से  
 पहले भगवान् कैकेयीके गुरुमें ही पपारे थे। इन्ने  
 विद्व होगा है कि ज्ञाने गाप बुगर् करनेतनेमके  
 भगवान्ने बरी दगा थी।

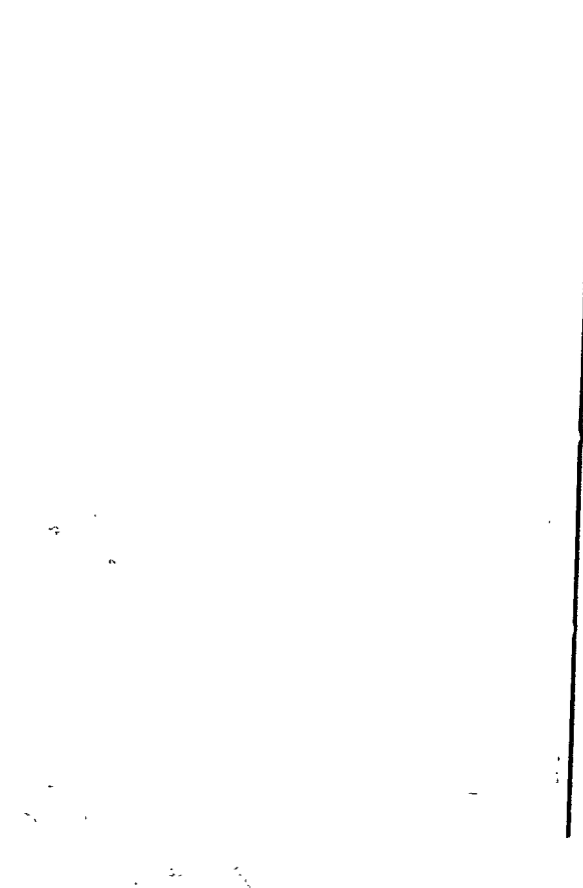
धीभगवान्का बाल्यकालमें राजभवनके मुनिके द्वारा  
 विद्याभित्तीकी अधीनतामें ब्रह्मचर्यरक्षा पावन करो  
 भीरामाके साथ उनके वंशकी रक्षा करना और इस वरने  
 मुनिमगधाराय-पूण्ड बधरुन परमेश्वरमें कर्णको बने  
 से मुक्तकर कर्णियाँकी एवं धर्मकी रक्षा करना, इस वि  
 क्यपाठी त्यागद्वारा मन्त्र होनेवांकी वरम रावनी ही  
 है। भगवान् भीहृष्यपञ्चने भी इसी शक्तिके द्वारा  
 अपने माता-निगामे प्रपूक हो साधारण गोपनेके  
 गाप परते हुए बधरुन द्वायक कियासे कर्णको न  
 विनाश कर धर्मकी रक्षा की थी। इस दृष्टिसे राजान्ने  
 एकपट बालकर माला कैकेयीने भगवान्का वंश ही क्य  
 किया। इस रक्षाधर्ममें वह तो केवल निमित्त थी, वरने  
 तो यह कार्य देवताओंका किया हुआ था। ( पा० १ : ११ :  
 २०-२३ ) धीभगवान् यदि वनवासको स्वीकार न करे  
 और भीसीताजी वनके विविध कष्टोंका एवं रावके  
 दरप होनेका भीपद्य संकट स्वीकार न करती तो हर, हुए  
 रावण, कुम्भकरण्य आदि महाबली राक्षसोंका वर  
 होता।

यह तो ऊपर कहा ही जा चुका है कि इस व-  
 सीलासे असुर और संसार दोनोंका ही मंगल हुआ। सु-  
 मरकर मुक्त हो गये और संसारमें असुरोंके प्रमाकसे बने  
 रक्षा और वृद्धि हो गयी। धीभगवान्, भीसीताजी की  
 भीजदमण्यजी इन तीनोंका वनवासरूपी त्याग संन्य  
 हितके लिये ही हुआ था। त्यागका परिणाम कर्ण  
 धानप और कल्याण, एवं भोगका परिणाम दुःख और  
 वन्धन होता है। धीभगवान्को वनपाशमें विविध शरीर  
 प्राकृतिक दरप, कृषि-समागम, सरल ग्रामीणोंके सिद्ध  
 प्रेम और वनके फल-मूलादि भोजनसे जो धानव्य सिद्ध

कल्याण



भक्त्यार रामाजी प्रेममय नाच रहे है



ह राजप्रासादमें कदापि सम्भव नहीं था। (वा० २।१६।१२  
। १५) इसीसे भगवान्‌ने श्रीकैकेयीसे कहा था—

मुनिगन निजनु बिसेषि नन सखि मँति द्वित मोर ।

तेहि महँ पितु आमसु नदुरि संमत जननी तोर ॥

माता कौसल्यासे भी यही कहा—

पिता दीन्ह मोहि काननराजू । जहँ सब मँति मोर बड़ काजू ॥

धीभगवान्‌के वनगमनके समय उनके स्वरूपको देखकर  
दगर और ग्रामनिवासी नरनारियोंका चित्रवत् मुग्ध होना,  
चित्रदृष्टमें कोल-किरातोंका उनकी सेवा करना, नीचवर्णके  
गृह-निपाद, पानरजातिके सुग्रीव और राक्षस विभीषणका  
आदिर्क मैत्री करना आदि उदार और सुलभयी घटनाओंसे  
यह सिद्ध होता है कि धीभगवान्‌ सर्वात्मा होनेके कारण  
समस्त प्राणियोंके परम मित्र हैं और उनको भी अपना भ्रंश  
होनेके कारण चराचर जीवमात्र मित्र हैं। धीवशिष्टजीने  
वनगमनके समय कैकेयीसे कहा कि 'तू अभी यह देखेगी  
कि धीरामचन्द्रके वन जाते समय पशु, पक्षी, मृग, सर्प  
और स्थावर वृक्ष आदि भी उनके साथ जानर चाहेंगे।'  
(वा० २।१७।१३) भगवान्‌के वनगमन करनेपर इस  
शोकका प्रभाव केवल वृक्ष, वदी, पशु, पक्षी आदि पर ही  
नहीं—वायु, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि, चन्द्र और सूर्य  
आदि पर भी पड़ा। (वा० २।२१।४-२ एवं २।४।११-१७)  
इससे पता लगता है कि ये सबको कितने मित्र थे।

धीभरतजीका चित्रदृष्ट आकर धीभगवान्‌को रागपापंय  
करना और उनके बच्चे स्वयं वनवासी बननेकी प्रार्थना  
करना वैराग्यका परमोच्च उदाहरण है। धीभगवान्‌का इन  
दोनों प्रस्तावोंको ही धारणीकार कर देना उससे भी उच्च वैराग्य  
है। भगवान्‌के भस्वीकार करनेपर भी दूसरी तरफ़से धी-  
भरतजीका उपर्युक्त दोनों ही प्रयोंका पालन करना अर्थात्  
राज्यके स्वामी धीभगवान्‌को मानकर स्वयं उनके हास वनकर  
सारा कार्य करना तथा नगरसे बाहर मुनिवेषमें विविध  
व्रत-नियमोंका पालन करते हुए कठिन तपस्यामें प्रवृत्त  
रहना, वैराग्य और त्यागकी उच्चतम सीमा है—न भूणे न  
परिष्यति। इस प्रकार धीभरतजीने निष्काम कर्मयोगका  
परमोच्च उदाहरण दिखला दिया। इससे यह सिद्धा प्रवृ  
कानी चाहिये कि प्रत्येक भ्रातृकको अपना सर्वत्र धीभगवान्‌  
के धर्मचक्र, ममता और आदरके त्यागपूर्वक केवल परमात्मा  
धीभगवान्‌को करनी बसु मान, अपनेको उनका निष्काम

दास समक, प्रत्येक सांसारिक भ्यवहारिक कर्म, उनके निमित्त  
उनकी इच्छानुसार ही करना उचित है। धीभरतजी  
धीभगवान्‌की धरय-पादुकाओंको सिंहासनपर धारण करना  
कर राज्यरासनका सारा धृतान्त उनको निवेदन कर उनकी  
आज्ञानुसार सब काम करते थे (वा० २।११।२२) इसी-  
प्रकार कर्मयोगीको उचित है कि वह अन्तरात्मा धीभगवान्‌  
को प्रभु मान उनको निवेदन करके उनकी आज्ञानुसार समस्त  
कर्म करे। योग्य भातृकको भगवान्‌की धनुमति मिलेगी।  
गीता कहती है कि धीभगवान्‌ ऐसे भातृकके अनुमत्ता है।  
'जो कर्म या साधन भगवान्‌के मंगोपुष्ट हो और जिस कर्मके  
फलमें आसक्ति न हो तथा परिणाममें एकरस—समान भाव  
रहे, वही कर्म भगवदाज्ञानुसार होता है।' ऐसा समझना  
चाहिये। यही निष्काम कर्मकी कसौटी है।

द्विपोंका परम आभूषण और विशेष गुण लज्जा है, जो  
इस गुणका परित्याग कर देती है वह (सती) धी नहीं है।  
सुपंचखाने लज्जाको सर्वथा त्यागकर धीभगवान्‌के सामने  
अनुचित प्रस्ताव किया और सीताको भक्षण कर बालना  
चाहा था, इसीनिधे धीभगवान्‌ने उसको विरूप करके उचित  
दण्ड दिया।

प्रेमकी परीक्षा और उसका विशेष विकास प्रियतमके  
वियोगकालमें होता है, वह संयोगमें कदापि संभव नहीं।  
धीभरतजीके प्रेमका विकसित स्वरूप धीरामके वियोगसे ही  
विश्वमें प्रकाशित हुआ था। धीसीताजीका वियोग भी इसी  
कारण हुआ। इसीकारण गोपियोंका भी भगवान्‌ धीकृष्ण-  
चन्द्रसे वियोग हुआ। धीराम-वियोगने श्रीजानकीजीकी  
जो अवस्था हुई थी, वही भक्तिकी पराकाष्ठा है—

नाम पाहू दिवस निति, प्यान लुगहार कपट ।

होचन निज पर जंत्रित, प्रान जाहि केहि बट ॥

हृदय-मन्दिरके चन्द्र धीभगवान्‌के धरय-कमलमें दिव्य  
ध्यात्मिक चतुर्धोंको लगाकर उनका ध्यान करना और  
सतत नाम स्मरण करते रहना ही उपासनाकी परमोच्च  
भवस्था है।

धीभगवान्‌का धरय पची अटापुका प्रेतकार्य करने  
हाथों करना उदारता और अनुकम्पाका परमोच्च उदाहरण  
है। इससे सिद्ध है कि धीभगवान्‌की दृष्टिमें ईश-नीच सब  
समान थे।



धीरावधीनी तापस-भारती प्रधान और भारती उपाधिवाली थीं। मित्र प्रकाश शायरीजीने रामानुज स्वामीको त्याग, परम तपस्विनी बन, बहोरात्र केवल एक श्रीभगवान्में ही अपना प्रेम-पलायन-विषय पूर्ण रूपसे लगा दिया था और वह उन्हें अर्पण करनेके लिये प्रेमोपहार अर्द्ध करनेमें ही मग्न रहती थी। इसीप्रकार भातुकना विद्या भी महा मार्चरा केवल श्रीभगवान्में ही संन्यास रहना चाहिये और उगके रामानुज स्वामीका लक्षण श्रीभगवान्की सेवा होना चाहिये तथा श्रीभगवान्की परम छुट्टिके लिये ही उन राक्षस अर्पण होना चाहिये।

बानरराम बालिने अपने छोटे भाई सुमीरकी बीका, जो उसके कन्या-सदस्य थी, यज्ञाकारसे समीप जाकर दिया, इसीसे यह ध्यानतापी था। ध्यातापीका अर्थ धर्म है। श्री भगवान्ने स्पष्ट ही कहा था कि, गनात्मन धर्मकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले हुए प्राणियोंके संहारक श्रीमान् भारत धर्मरक्षक शासन करते और शुभ-क्षेत्रे कामातक अर्थमियोंको दण्ड देते हैं, मैंने भी उन्हींकी धाशासे तुम्हें मर्यादा-रहितको दण्ड दिया है। (वा० ४।१८।२४-२५) श्रीभगवान्ने बालिने यह भी ठीक ही कहा था कि धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। जो एकके लिये कर्तव्य है वही दूसरोंके लिये अकर्तव्य है। इदयस्य अन्तरात्मा ही धर्मकी सूक्ष्मताको जानते हैं (वा० ४।१८।२५)। यह ध्यातापी-दमनका आदर्श है। इतना होनेपर भी उसके प्रार्थना करने-पर दया दिखाते हुए श्रीभगवान्—अपनी स्वाभाविक उदारतावश—उसे प्राण रखनेको कहते हैं। इससे बदकर क्या दया होगी ?

शत्रुके सहोदर भाई विभीषणको सबके मना करनेपर भी भगवान् आश्रय देते हैं, इतना ही नहीं, उसे मित्र बनाकर लङ्काका राज्य भी दे डालते हैं, यह श्रीभगवान्की उच्चतम उदारता है। इसका परिणाम भी परमोत्तम होता है। यहाँपर श्रीभगवान्ने शरणागतको अभय करनेकी जो घोषणा की है वह भक्ति-भावके महावाक्य हैं। (वा० ६।१८।२३)

श्रीभगवान्ने समुद्रपर सेतु निर्माण करवा यहाँ श्री-शिवजीकी स्थापना की, इसका रहस्य यह है कि श्रीरामोपासक या अन्य देवोपासकको अपने इष्टकी प्राप्ति श्री-शिवजीकी कृपा बिना नहीं हो सकती, क्योंकि श्रीशिवजी जगद्गुरु हैं। श्रीमुखके वचन हैं—

तेन वा कृतं न कश्चिं नुगरी। मीनं च पुनः कर्तुं नृणां ।  
 हीनं मत्तुं नो ह्यनन्तरि मेदि। मन्त्रि मेने त्वेव संरक्षते ॥

परतः त्वं नुनः मया मन्त्रिं बद्धुं न मेरे ।  
 गैहक मन्त्र विना नर मन्त्रि न चत्वा मेरे ॥

इस तापस-भारतमें श्रीभगवान्ने अर्द्धको बंधने दिया कि 'जो गुरु-धर्मकी सेवा और संन्यास सिद्धि चाहता है उसे त्याग और कर्णको मर्न संन्यास चाहिये। क्योंकि इनके बिना मर्न कार्य कभी सत्य हो सके।' इतमें ध्यात्मनैतिक त्याग ही मुख्य है, नहीं। श्रीभगवान्ने मुनिजनों रहनेपर भी अमुरोंका विनाश किया। इसी मंत्रिके अनुसार जानका भी यही परिणाम हुआ कि श्रीभगवान्को प्रभूत होकर अर्थमें रत और पड़का विनाश कर पड़ा। निष्कामभारते कर्मव्यका गतन प्राप्त था। श्रीमानकीजीके मना करनेपर भी श्रीभगवान्ने अमुरोंका ध्वंस करनेके संकल्पको नहीं छोड़ा और अमुरों से लेकर राक्षसक अमुरोंका ध्वंस किया। श्रीभगवान्ने राक्षसोंके साथ ध्यात्मरचाके लिये ही बुद्ध था, उनको लूटने-शमोदनेके लिये नहीं। अर्द्धापीन-अर्द्ध-प्रहार किया गया था। इसीसे राक्षसको बंध भेजा गया था कि सीताको सीटा देनेपर दोष हमा दिया जायगा, परन्तु जब उसने नहीं माना, तभी धर्म की गयी।

इस तापस-भावमें सत्य और ब्रह्मचर्यका पावन प्रधान है। श्रीभगवान्का सत्य-पालन तो अविचलता ही, उनका एकपत्नी-व्रत और ब्रह्मचर्य भी प्रसिद्ध (वा० ५।१५।२२) : शाश्वत कहता है कि 'जो गुरु-सन्तानार्थ अर्द्धकालमें यज्ञकी भाँति श्री-समागम करता है वह ब्रह्मचारी ही है। किसीके साथ ध्यात्मिक नहीं थी, यह भी मुख्य कारण है।

धीलक्ष्मणजीके ब्रह्मचर्यके लो क्या कहते हैं। इष्ट करनेके लिये प्रतिदिन श्रीसीताजीके सामने जाते उन्हींने उनके चरणोंके सिवा अन्य किसी भी दृष्टिपात नहीं किया (वा० ४।६।२२)। वनमें समय भी सीताके अर्द्ध देखना अस्वीकार कर लक्ष्मणजीके इस बर्तवसे यह शिषा ग्रहण करनी

के पुरखको माता आदि परमें बड़ी छियोंके चारणोंको मोड़कर धन्य किरी भी पर-कीका कोई भी ब्रह्म क्यारि नहीं देलना चाहिये ।

धीरनुमानजी नैष्ठिक महाधारी थे । अंकारमें रावणके मरुद्धमें रावणकी छियोंको विरवा सोगी हुई देखने पर भी उनका स्वामीन मन रही भर भी विषकित नहीं हुआ (बा० २।३।१४२-४३) । छोके दर्शनमे मत्तमें विकार हो जाना भी मैयुन है । अतएव महाधर्यकी सिद्धिके लिये मनका ऐसा निग्रह होना चाहिये कि कारवाय पर-कीके दर्शन, स्मरण, स्पर्श या भाषण आदि हो जानेपर भी उगमें क्यारि विकार उत्पन्न न हो । धीरनुमानजी इसके आदर्श थे ।

धीसीताजी तो परम आदर्श पतिव्रता थीं । उन्होंने भीरामके पाप जानेके लिये सेवक-भेड धीरनुमानका भी भ्रम स्पर्श करना नहीं चाहा ।

धनमें प्रवासित होनेपर भी धीमीताजी सुभिल नहीं हुई, अपुत्र स्वामीकी यह संदेहा क्यारवाया कि आप अपने भाइयोंके सख्यही पुरवासियोंकी रक्षा करें (बा० ७।२८।१४-१६) धीसीताजीने सोचा कि मेरी मिथ्या निन्दा करनेके कारण भीराम कहीं प्रजा पर रह न हो जायें । इस रूपनसे धीमीताजीने अपने कष्टोंकी कुछ भी परवा न करके मिथ्यावादी और दुःख देनेवाले लोगोंके प्रति कृपाधीर पतिकी प्रतिष्ठाके लिये परम उद्युक्तताके दोनों ही उग्रजल भाव दिव्यकृपे, जो सर्वेवा आदर्श और अनुकरणीय हैं ।

इस भावका मुख्य धाम चित्रकूट है और उसका प्यान यह है—

ध्यायेद्राजानु माहु धृतराजनुं ब्रह्मपद्मसन्धे,  
 पानं वासोवसानं नवकमरुदरंरूपनिधिं प्रसन्नम् ।  
 वामाङ्गकट सीता मुखकमरुमिच्छीकनं नीरदाभं,  
 नानालङ्कारदीप्तं दक्षमरुज्यामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

### राज-भाव

यह भीराम-चतुष्टय अथवा प्रयापतनका भाव है । इसमें राज्यभिषेकके बाद राज्यसिंहासन पर धीभगवान्,

धाममें धीमीताजी, करने भागमें भीरुदमय और सामने भीरनुमानजीका प्यान है । अथवा राजसिंहासनपर धीभगवान् और वामाङ्गमें धीमानकीजी हैं, धीरनुमानजी चरण सेवा कर रहे हैं । भीरुदमयजी दाहिनी ओर तथा धी-भरतजी बाईं ओर हैं, यही प्रयापतनका प्यान है । धीभरतजीके साथ बायीं ओर शत्रुगजीके रहनेसे यह पशुपतन हो जाता है । इस भावका प्यान धीचयोप्य है । इसमें सभी भागोंका समावेश है । राग्याकृष्ट होनेपर भी धीभगवान्का स्वभाव बाह्यकोंसे भी धायन्य कोमल और सरल था । उन्होंने सदा ही आदर्श गुरुय महाधारी-मत्तका पालन किया । इस भावमें धीभगवान्का सुन्दर वक्ष और अङ्गुलीयें आच्छादित मनोहर रूप हैं, आदर्श धर्मपंजी श्रीमानकीजी अर्वाङ्गिनी हैं । भीराम अघिपोंसे वेदित, परम ब्रह्मध्वं दोनों पर धायन्य अनुग्रहा करनेवाले हैं, परम आशा-कारी शीतों भाई सेवामें रह हैं । परम सुरक्षित और पूर्ण रूपने सन्तुष्ट प्रजाका एकाधिपत्य हैं । राज्यमें आपद्-विपदका एकात्म समाव है । अयोध्याजी परम समीप्य हैं, जहाँ पदम पुनीत और सौम्य सरयुजी बह रही हैं । धीरनुमान् आदि निष्काम दास सेवामें संजद हैं । ये सभी पवित्र और आदर्श सामग्रियाँ यहाँ वर्तमान हैं ।

अधिकृतके लिये धीभगवान् दुराचारीको दण्ड देनेमें प्रवश्य ही कटोर थे, जिससे दुराचारीका भी हित होता था । राजाके लिये यह गुण उसकी परम शोभा है ।

छियोंके सतीत्वकी रक्षामें कभी कोई बाधा न घावे, इसके लिये मिथ्यापवान्पर भी आदर्श सती धीसीताजीका त्याग और सत्यकी रक्षाके लिये सेवा-परायण धीरुधमयजीके त्यागका परमोच्च उदाहरण है । महाधर्य, त्याग और सत्यका पावन महारूप्य हैं । अन्तमें धीभगवान्का अोकहितार्थ दण्ड करना और तपस्वी मत्तका ध्वस्तनवन करना दया और वैराग्यसे परिण्य है ।

भगवान् धीरामके आदर्श जीवनसे हम सबको लाभ उठाना चाहिये ।



# रामायणका रहस्य

(श्रेयस्क-रामायणी श्रीशिवानन्दजी)



रामायणका रहस्य है—मनको वशमें करके नीयन्मुक्ति प्राप्त करना। अज्ञानके वशानन रावणके बंधका तात्पर्य है—दस कुटुंबियोंका नाश करना। ये कुटुंबियाँ निम्नलिखित हैं—

१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मायावश, ७ दम्भ,

८ अहंकार, ९ राग और १० द्वेष।

प्राथमिक श्रीसीताजीको 'मन', श्रीरामको 'मन्त्र', श्रीहनुमान्जीको 'सत्सङ्ग' और श्रीभरतजीको 'प्यास' समझना चाहिये।

सीताजीके अपने पति श्रीरामजीसे मिलनेका आध्यात्मिक अर्थ 'मनको मन्त्रमें लय कर देना' है। यह उसी समय सम्भव है जब कि हम राममें एकाग्रचित्त होकर उनका अनवरत ध्यान करें। यही रामायणकी गूढ़ शिक्षा है।

चित्तकी पूर्ण एकाग्रता एवं शुद्ध सात्विक भावनासे दो अक्षरवाले राम ( रा + म ) मन्त्रका सर्वदा जप करनेसे मन वशमें होता है। तदनन्तर समाधिनिष्ठा अर्थात् सर्वध्यापक रामके साथ तन्मयता हो जाती है। फिर विचारक तथा विचर्य, ध्याता तथा ध्येय, पूजक तथा पूज्य, उपासक तथा उपास्य सभी मिलकर एक हो जाते हैं। मन श्रीरामसे पूर्ण हो जाता है। यह 'भ्रमर-कीट-न्याय' के अनुसार तदाकार, तद्रूप, तन्मय, तदीय एवं तत्त्वहीन हो जाता है।

यह प्रसिद्ध है कि घुम जैसा विचार करोगे वैसे ही घन जाओगे। मन जिस वस्तुपर अधिक ध्यान रखता है वह वैसा ही बन जाता है। रामके ध्यानसे मन रामके साथ एकीभावको प्राप्त हो जाता है। उसकी इच्छा अगदुरपत्ति-कर्ता रामकी विरहेच्छामें विवर्धन हो जाती है। उस समय जीवलोक लोप हो जाता है। जैसे कीट भ्रमरके साथ रहने एवं उसका स्तव ध्यान करनेसे भ्रमरके रूपमें परिणत हो जाता है, ठीक वैसे ही, मन भी सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे रामरूप बन जाता है।

यह दो अक्षरोंका राम-मन्त्र सब मन्त्रोंमें सर्वोत्कृष्ट है। इसके दो कारण हैं। राममन्त्रकी रचना पन्चाक्षर अक्षर-मन्त्रोंके संघटनसे हुई है। 'रा' शब्द

'र' मन्त्र 'कारायणाय' से तथा 'म' शब्द 'म शिवाय' से लिया गया है। अतः यह मन्त्र रचित है। मन्त्र निगना घोटा होता है उसमें उतनी ही ध्वनि पित्तकी एकाग्रता होती है। राम-मन्त्र बहुत घोटा है। हमसे सरसतापूर्वक पित्तकी मन्त्र एकाग्रता हो सकेगी। पूजा, ध्यान अथवा श्रीराम-मन्त्रके जपमें मन वस्तु श्रीरामके ही आकारका शुद्धताके कारण वह शुद्ध भी हो जाता है। सतत जप द्वारा मन अन्त्य सब वस्तुओंको छोड़कर एक श्रीराममें ही परिपूर्ण हो जाता है। वह स्थिर हो जाता है फिर कभी अशुद्धताकी ओर नहीं भटकता। जबतक मनका अस्तित्व है, तबतक उसको ही वस्तु अथवा धारिये। अतः साधनाका उद्देश्य मनके पवित्र वस्तुओंका उपस्थित करना है।

मन्त्र-जपके समय समरूपसे शब्दोंकी के कारण ध्यानमें जपके अधिष्ठातृ देवताका आगमन होता है। संस्कारके बलसे मन्त्रोंकी गतिर्या उपलब्ध होती है।

मन्त्रमें 'धमत्कारपूर्ण' तंत्र अथवा शक्ति होती है। एक विशिष्ट विचार-धाराको प्रवाहित कर मानसिक तन्त्र परिवर्तन कर देता है। मन्त्र-जपसे तालबद्ध स्वरक क्रमकम्पनका ( Rhythmical Vibrations ) अनुभव होता है और इसीके द्वारा पञ्चकोशांसे उत्पन्न स्वर स्फुरण नियमित होता है। यही अन्त्यान्व वस्तुओंकी प्रयाहृत होनेवाले मनकी गतिका भी इवरोध करता है। जिस समय साधनाशक्ति अर्थात् अथवा अतिव्यक्त अथवा हो जाती है उस समय यह मन्त्र-शक्ति ही उसके बल प्रदान करती है। जिस समय मन्त्र-धैतव्य (सुधैतव्यता) जाग्रत होता है उस समय उसके द्वारा अतिव्यक्त सिद्धियोंका उदय होता है।

राम-मन्त्रका जप तीन प्रकारका है, (१) मन्त्रक (२) उपांश और (३) जोरसे उच्चारणपूर्वक। अथवा उपांश जप इजारायुया तथा मानसिक जप अति अधिक शक्तिशाली है।

इस कलियुगमें हठ एवं राजयोगका अभ्यास अत्यन्त घटित है। केवल एक भक्तिका मार्ग ही सबके लिये सर्वथा उपयुक्त है और यही सरल भी है। इसमें हृष्टदेवतासे महायत्ना मिलती है। भगवन्नाम-जपका अधिकारी प्रत्येक मनुष्य है। मन्त्र-शक्तिके द्वारा साधना-शक्ति पुष्ट होती है। रामरामाकी प्रार्थना एवं उसका मुखगान प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। यह बहुत सुरक्षित मार्ग भी है। जिस समय भक्ति पूर्णतया परिपक्वत्वका प्राप्त हो जाती है, उस समय ज्ञान अपने आप ही ध्या जाता है। भक्तिके द्वारा ही अधिकांश मनुष्योंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। हृद्यके अन्तःकालसे प्रार्थना कीजिये। शुद्ध भावसे राम-मन्त्रका सर्वदा जप कीजिये। राम-भक्तोंका सत्संग, रामायणका स्वाध्याय एवं नित्य कुछ घण्टें श्रीराम-संकीर्तन कीजिये। ऐसा करनेसे आपकी भी श्रीरामके दर्शन होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

### राम-नाम संकीर्तनः

राम राम राम राम राम राम रामने ।  
राम राम राम राम राम राम रामने ॥  
माधव गोविन्द हरि केशव हरि नारने ।  
नाद-गीत वेद-मन्त्र राम राम रामने ॥

यहाँपर राम-भक्तोंके संगके विषयमें कुछ कहना प्रयासगिक न होगा। सत्संग मनुष्यके कार्यक्रमको उलट देता है। इसीके द्वारा विषय संस्कार सार्विक संस्कारोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं तथा मनुष्यके हृदयमें सार्विक भावनाओंकी वृद्धिके कारण उसमें वद भक्तिका साम्राज्य हो जाता है। इसमें मनुष्यकी सांसारिक प्रवृत्तिको बदल देनेकी शक्ति है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—  
बिनु सत्संग बिबेक न होई । रामकृपा बिनु सुखमन सोई ॥

\* कीर्तनकी यह धुन मन्त्रास-भारतीकी है। लेखक महोदय मन्त्रासी है। इसीसे यह लिखी गयी है। सम्पादक

## श्रीरामचन्द्रजीका अश्वमेध-यज्ञ और उसका महत्त्व ।

(लेखक—डा० आर० राम शारदाजी एम० ए०, पी एच० डी०, मैसूर)



ज्ञान, क्षत्रिय एवं वैश्योंके लिये जिन जिन कर्तव्योंके पालन करनेका आदेश दिया गया है उन सबमें विद्याके परमात् वैदिक यज्ञका महत्त्व सबसे अधिक है। क्षत्रियोंके लिये राजसूय, अश्वमेध तथा विधजित्-इन तीनों यज्ञोंका करना सबसे अधिक महत्त्व रखता है। अतः ऐसा सुना जाता है कि वेदोंकी शिक्षामें विधाय तथा प्राचीन राजाओंके कार्योंका अनुसरण करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीने भी उपर्युक्त तीन यज्ञोंमेंसे अश्वमेध यज्ञ किया था।

यही यह प्रश्न उठता है कि श्रीरामचन्द्रजीने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान क्यों किया ? उनका उद्देश्य स्वर्गको प्राप्त कर वहाँके विशाल सुखोंका प्राप्त करना था या अपनी प्रजाका हित-चिन्तन भयंश साधारण मनुष्योंके लिये एक आदर्श उपस्थितकर उन्हें कर्मरूपर आहूत करना था ?

इनमें स्वर्ग-प्राप्तिका उद्देश्य तो सम्भव नहीं, क्योंकि उस समय अधिराज्य कर्मकी अपेक्षा उपनिषदोंके ज्ञानकारण-को अधिक महत्त्व देते थे। महर्षि भरद्वाज, गौतम तथा अन्य विशिष्ट साधु लोगोंके जीवनसे यह ज्ञात होता है कि वे वैदिक यज्ञोंके अनुष्ठानकी अपेक्षा तपस्यामें अधिक रत रहते थे। श्रीरामचन्द्रजीने किष्किन्धा और वंका जाते समय मार्गमें ऐसे अनेक साधुओंका संग किया था और स्वर्ग भी वे उपनिषदोंकी शिक्षामें पूर्ण परिचित थे। उपनिषदोंकी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रथमर्ष लोगोंके सामने एक आदर्श उपस्थित कर उन्हें कर्ममें प्रवृत्त करना भी उनका उद्देश्य नहीं हो सकता। देना होता तो बहुमन्य-साध्य अश्वमेध न करके उन्होंने अन्यान्य साधारण कर्मोंका अनुष्ठान किया होता। अतः यही सिद्ध होता है कि श्रीरामने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान अपनी स्थितिके उपयुक्त एवं विशेषतः प्रजाके हित-साधनार्थ किया। इस अनुष्ठानके द्वारा आर्थिक अशुभ्यरूप प्रजाहित करना ही प्रतीत होता है। प्रजाको उन्नति एवं सुख स्पष्टतः दो

घातोंपर निर्भर है—(१) अनुष्ठान अथवा (२) उपासना करनेके लिये आवश्यक साधन। यज्ञ करनेका विचार इन दोनों विषयोंको प्राप्त करना है। उस समय यह विस्वासा किया जाता था कि साधारण स्वर्गीय देवताओंको सन्तुष्ट करनेसे अनुष्ठान अथवा प्रीति हो जाती है। इसके अतिरिक्त यज्ञके द्वारा राजपूरी, पुरस्कार एवं दानके रूपमें मजदूरों, सैनिकों, अल्पियों तथा भिक्षुओंको प्रभु पर भिन्न जाता था, जिससे वे धनकी वृद्धि कर सकते थे।

उपयुक्त विषयकी पूर्ण तथा पुष्टि उन नियमोंसे हो जाती है जो कि काम्य यज्ञोंके सन्तुष्टानके लिये बनाये गये हैं। वेदमें तीन प्रकारके कर्मोंका उल्लेख है। (१) नियतकर्म—इसमें अर्थ-व्ययकी कोई बात नहीं है। (२) नैमित्तिक कर्म—इसमें थोड़ेसे धनकी आवश्यकता पड़ती है। (३) काम्य-कर्म—इसमें सोने एवं चाँदीका व्यय बहुत होता है। मनुके अनुसार तीनों उच यज्ञोंको अपने-पुत्र अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके निमित्त अत्यल्प धन रखकर अपनी स्थितिके अनुसार शेष द्रव्यसे बहुव्ययसाध्य यज्ञोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है। यदि वे लोग अपने भरण-पोषणसे बचे हुए अधिक द्रव्यको यज्ञानुष्ठान अथवा अन्य पुण्य-कार्योंमें नहीं व्यय करते तो राजाका यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह उनके अवशिष्ट द्रव्यको लब्ध कर उन लोगोंको दे दे जो धन अथवा अन्य पुण्यकार्य करनेके योग्य हैं। निश्चयपूर्वक लोगोंका सञ्चित धन भी, जिसका किसी पुण्य-कार्यके निमित्त उपयोग नहीं होता था, जन्त कर लिया जाता था और वह परोपकारके पुण्यकार्यमें लगा दिया जाता था। यह नियम प्रजाके लिये ही नहीं था, बल्कि राजा भी इस नियमके बन्धनसे मुक्त नहीं समझा जाता था। राजाका यह धर्म होता था कि वह किसी अर्जनशील कर्म अथवा शत्रुओंपर विजयप्राप्तिद्वारा धन संग्रह करके यज्ञानुष्ठान या अन्य पुण्य-कार्योंमें उसे लगा दे। कालिदासने रघुवंशके तृतीय सर्गमें इस विषयका बड़ा ही विराट् वर्णन करते हुए कहा है कि दिल्लीप-पुत्र महाराजा रघुने विश्वजित्-यज्ञमें राजभवनमें अपने उपयोगके लिये कुछ मिट्टीके बर्तनोंको छोड़कर शेष सोना चाँदी आदि सर्वस्व दान दे दिया था। इस रघु सर्वथा धनहीन हो गये तब उनके पास एक ब्रह्मचारी अपने पुत्रको दक्षिणा देनेके लिये कुछ धन लाया था। कहा जाता है कि ऐसी अवस्थामें सन्तुष्ट करनेके लिये धनपति

मुनेरने धन प्राप्त किया था। भारतीय विचारधाराके यह बात सिद्ध नहीं है कि रक्षिता मूर्ति पतञ्जलिके समयमें तथा अथर्ववेद-यज्ञ किया था जिसमें उन्होंने मनु स्मृतियोंके नियमानुसार समस्त अरण्य महात्मानोंको विनय कर दिया था।

यद्यपि देवनेमें तो यह एक धार्मिक है किन्तु वास्तवमें यह एक धार्मिक है। इस नियमकी वृद्धि बुद्धिमत्तासे किया गया है। इसके उपरोक्त लोगोंके पास बराबर बराबर धन रूँट जाता है। मनुष्यमें किसी विषयको सीखने एवं उपासना करनेके आन्तरिक शक्ति भिन्न भिन्न होती है। चाहे पैतृक हो या पूर्व जन्मके प्रारब्ध-कर्म हों। कुछ अनुष्ठान धनराशि-उपासना करनेकी बहुत शक्ति होती साय ही यह भी देखा जाता है कि इन स्थितियोंमें ऐसे होते हैं जिनको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके कारण दारुण दुःखोंका शिकार बनना पड़ता है। यही लोगोंका भाग्य है।

प्राचीन भारतमें हमें सदाचारपूर्ण विभिन्न आदर्श मिलते हैं। मीमांसकगण करते हैं सदाचारसे उपासना किये हुए धनद्वारा ब्रह्म आवश्यकताके सम्बन्धमें वैदिक धात्राका पालन करना धर्म का धर्म है। उनके मतानुसार धात्रा ही धर्म बलदाता है। कार्योंमें वैदिक धात्रा और सामाजिक कार्योंमें सामाजिक धात्रा या नियम ही उपयुक्त हैं। वैदिक धर्मोंमें लौकिक उपदेशों एवं लेखोंमें जिस धर्मके लिये धात्रा गयी हो, उसीको धर्म समझना चाहिये। इसके अनुसार मनुष्य वेदोंक उपदेश अथवा अपनी जातिकी रीति-रिवाज अनुसार कार्य करता है वह वैदिक धर्मोंका भीतर ही है। इस नियमके अनुसार एक बुद्धिमान् पुरुष मनमाना कर्माकार अपनी इच्छानुसार धार्मिक एवं पुण्यके कार्य व्यय कर सकता है। इसीलिये स्मृतिकारोंने यह नियम बनायेकी आवश्यकता समझी कि प्रत्येक मनुष्यको अपने पास उतना ही धन रखना चाहिये जो तीन वर्षके लिये अपने एवं कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये पर्याप्त हो। अधिक रखना न्याय-विरुद्ध था। कुछ स्मृतियोंमें तो वर्षकी अगह तीन महीनेकी ही धनपति बतलाई है। नियमको धर्मव्यवहारिक समझकर धीमद्वारा ही

न्य ग्रन्थोंमें निष्काम भावसे धार्मिक तथा शौकिक कार्य करनेके लिये छात्रा धी गयी है। मनुष्यको कर्म अथवा करना चाहिये किन्तु करना चाहिये फलकी कामनाको पाग कर। सदाचारपूष' मितव्ययिताकी स्पष्ट व्याख्या श्रीमद्भागवतके ७ वें स्कन्धके शौद्धर्वे अध्यायमें की गयी है। वही महाराज युधिष्ठिर एवं श्रीनारादजीका संवाद है।

श्रीनारादजीने कहा है कि मैं जिस सिद्धान्त (सदाचार-पूष' मितव्ययिता) के सम्बन्धमें तुमसे कहता हूँ वह प्रजागर ऋषिने प्राचीन कालमें भक्त प्रह्लादको बतलाया था। संवाद इसप्रकार है—

युधिष्ठिर—हे देवर्षि ! मुझे उस पथका निर्देश कीजिये जिसको ऋषि अनागरने मेरे सरश गृहस्थके कर्तव्योंसे अनभिज्ञ मनुष्यको उद्यमकी प्राप्तिके निमित्त बतलाया है।

गृहस्थ पतां पदवीं विधिना मन चाञ्जला।

याति देवकूपे । भूहि मादरो गृहमूढधीः ॥

( भागवत ७.१४.११ )

नाराद—हे राजन् ! प्रत्येक गृहस्थको प्रभु नारायणकी प्रसन्नताके लिये अन्य किसी भी फलकी इच्छा न रखकर महर्षियोंकी सेवा करनी चाहिये। धनोपाजनके निमित्त कार्य करते हुए प्रत्येक मनुष्यको समझ रखना चाहिये कि उसे उतना ही धन अपने पास रखना उचित है जितना उसकी उदर-पूर्तिके लिये पर्याप्त हो। जो इसने अधिक धन रखनेकी इच्छा करता है वह चोर है।

'अधिकं योऽभिमन्येत स स्वतो दण्डमर्हति।'

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दू समझ शौकिककर्म अपने स्वार्थके लिये न करके केवल समाज-हितके हेतुसे ही किया करते थे।

सदाचारपूष' मितव्ययिताके जाननेवाले ऋद्धतवादिनों ने इतिते संसार तथा सांसारिक कार्योंका संन्यास ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। धैर्यों तथा शौद्धर्वे ने भी संन्यासको ही मनुष्यका सर्वप्रधान कर्तव्य बतलाया है।

यदि किसी मनुष्यको इसप्रकारकी शिक्षा न मिली हो तबसे व्यापक वह कुमार्गीकी ओर धाकपतत हुए बिना ही अपने

मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखकर संसारका त्याग न कर सके, तो वह चाहे राजा हो या रत्न, उसे अपने कर्मोंका फल समाज-के हितार्थ उतर्गा कर देना चाहिये। प्राचीन भारतके राजा तथा समृद्ध पुरुष अपना सञ्चित धन, कर्मके इसी सिद्धान्तके अनुसार, यज्ञानुष्ठान एवं अन्यान्य पुण्य-कार्योंमें खर्चा करते थे।

भगवान् रामचन्द्रजीने लक्ष्मणे लौटकर देखा कि साधु भ्राता भरतके मितव्ययितायुक्त राजप्रबन्धसे राजकीय कोष धनसे पूष' है, तब उन्होंने उस सञ्चित धनको अपने सुलके निमित्त खर्च करने अथवा अन्यायुक्त लुटा देनेकी अपेक्षा एक वैदिक यज्ञका अनुष्ठान कर उसीमें उतर्गा कर देना उचित समझा। उनके यज्ञानुष्ठानका उद्देश्य केवल लोगोंके सामने ध्याम-त्यागका एक जीता-जागता आदर्श रखना तथा निष्काम कर्मके सिद्धान्तमें अपना पूष' विश्वास प्रकट करना था।

लोगोंकी विभिन्न क्रियाओंको नियमितरूपसे चलाने तथा प्रत्येक व्यक्तिकी नैतिकताकी रक्षा करनेके लिये भारतवर्षके प्राचीन ऋषियोंने तीन नियमोंकी रचना की थी ( १ ) वैदिक अथवा सामाजिक धाज्ञाके अनुसार कर्म ( २ ) निष्काम भावसे किये जानेवाले कर्म, और ( ३ ) कर्म एवं संसार दोनोंका त्याग।

इस प्रकारके सदाचारके नियम लोगोंके धार्मिक एवं राजनैतिक जीवनको ऐसे साँचेमें ढाल देने थे जिससे मनुष्य-आत्मिका कल्याण होता था। अनहङ्कारता ही इन नियमोंका तथ्य था और किसी भी मनुष्यको अपने मानसिक एवं शारीरिक सुखोंके लिये द्रव्य-भ्यष करनेकी स्वतन्त्रता नहीं थी।

अतः श्रीरामचन्द्रजीने जिस अष्टमोध यज्ञका अनुष्ठान किया, वह एक बहुमूल्य-साध्य धार्मिक कार्य था, जिसका अनुष्ठान किसी स्वार्थके लिये नहीं अपितु सर्व-साधारणके कल्याणार्थ किया गया था। इसीप्रकारके इन्हीं निष्काम कर्मोंके प्रभावसे उन्होंने राजर्षिका पद प्राप्त किया। श्रीरामचन्द्रजीके सामने रघु, जनक तथा अन्य राजर्षियोंके उदाहरण उपस्थित थे। उनका जीवन देवताओं तथा मनुष्योंकी भलाईके लिये था, अपने लिये नहीं।

# रामायणमें आदर्श गृहस्थ

(लेखक-महामहोपाध्याय पं० श्रीरामबनाथजी तटैय्याण)



राम-स्वरूपकी राग्यक उपलब्धि किये बिना इस संसारमें कोई भी सामाजिक, नैतिक और धार्म्यागिक जीवनमें स्थिति और उन्नति नहीं कर सकता। यह सिद्धांत हीने व्यक्तिके लिये अत्यवसनीय साथ है, जातिके लिये भी वैसे ही अनुपेय-योग्य वाज्यव्यमान साथ है। व्यक्ति

और जातिके इस आत्म-स्वरूपकी अनुभूति आजकल भारतमें क्रमशः चीथादपि चीथतर होती चली जा रही है और इसीके परिणामस्वरूप आज हम अपनेको भुलाकर, 'हमारे आत्माका स्वरूप क्या है? हमारी जीवनी-शक्ति कहाँ है? और हमारे जीवन-संग्राममें विजय एवं धी प्राप्त करनेका असाधारण साधन क्या है? इन बातोंकी खोजके लिये हम पाश्चात्य सभ्यताका अनुकरण करनेके निमित्त व्याकुल होकर भटक रहे हैं, पद-पदपर व्यर्थसंकल्प होकर देश विदेशमें अपमानित और लान्छित हो रहे हैं। जीवन भाररूप हो रहा है, और मोहमयी आशाका चीथ प्रकार भी क्रमशः अन्धकारके रूपमें परिणत होता जा रहा है। इस सर्वतोमुखी विपत्तिके कराल फलसे छूटनेका जो सर्वप्रधान साधन है उसीका नाम है 'रामायण'। सनातनधर्मी हिन्दूके आत्मस्वरूपको पहचाननेके लिये प्रत्येक हिन्दूको रामायणका पाठ करना ही होगा। वेद, श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र, महाभारत, पुराण, तन्त्र, ज्योतिष, काम्य और नाटक आदिमें जिसका विस्तार है, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा और वेदान्तमें जिसकी अत्यन्त कठिनतासे समझमें आनेवाले पारिभाषिक शब्दोंके द्वारा अज्ञोपना की गयी है, हिन्दू-धर्मके उसी भूमात्म तत्वको सरल भाषामें विविध रसोंकी सहायतासे सत्यके मनःप्रायको प्रभावितकर, जीवनके अनुभवोंके साथ मिश्रित-कर और आनन्दमय आत्सादनके योग्य बनाकर रामायण हिन्दुओंके आतीय जीवनके संगठनका सर्वप्रधान साधन बन गयी है। यह रामायण ही हमारे विश्वज्ञ और उद्देश्यहीन आतीयजीवनको फिरसे संगठित करेगा। यही और यही आशा आज भी देशके सनातनधर्मी उनके गन्धर्व-ययमें पूर्ण सहायता दे रही है।

में। यह विभाग है कि भविष्यमें यह विभाग ही रामय संगठन-शक्तियोंका केन्द्र-स्थान बनेगा।

गृहस्थ-जीवन ही जातिके इद्वैकीक और काव्य-अनुपपन्न अनिवार्य साधन है। इन गृहस्थ-धर्मके ऊपर श्यापना करना और पिराघिनीके कराल गालसे मुच्यर हुनको ऐसा कि नितामे पर धरमें विनेक, आत्म-त्याग, प्रसाद, कर्तव्यपरायणताके अथय सुपायागारकी जाय। महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत रामायणका मूल यही है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये निरर्कक आदर्शकी यही भारी आवश्यकता थी। मर्यादा भगवान् श्रीरामचन्द्र भारतीय आदर्शोंमें सर्वश्रेष्ठ अतप्य आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने उन्हींके कर कवि-कल्पनाके सर्वोच्च और जिस महाकाव्य रामायणकी रचना की है, उसकी जगतमें अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। सारे अनेक युगोंसे विद्वान् साधुओंका यही स्थिर निदान और यह अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता कि सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा अत्यव्यसत्यके आधापर हुई है।

हिन्दूका गृहस्थाश्रम आनन्द, सरलता, शान्ति, परता और विश्व-प्रेमका लीला-निकेतन है। इस आत्म-सफलतापर ही मद्र्मर्च, वानप्रस्थ और संन्यासकी पूर्ण अवलम्बित है। इसके विपरीत इस आश्रमकी अत्यव्य ही शेष तीनों आश्रमोंकी असफलताका कारण है। दिनसे हिन्दूजातिने इस सत्यको भुलाना आरम्भ कि उसी दिनसे उसका अथःपतन होने लगा। इस गृहस्थाश्रमके सर्वोत्कृष्टतर सरस चित्रको प्रत्येक हिन्दूके घरमें सुवर्ण करनेके लिये ही महर्षि वाल्मीकिने सुग-युगान्त-स्मृति कठोर तपस्या की थी। उसी तपस्याके प्रसूत फलका नाम है 'रामायण'। जिन मर्यादा-पुरुषोत्तमका आश्रय हम इस गृहस्थ-धर्मके समस्त अंग असाधारण एवं ताक होकर सजीव हो उठते हैं, उसी मर्यादा-पुरुषोत्तमकी कोसे सारा जीवन तपस्यामें वितार उपनीत महाकवि वाल्मीकि आत्मशक्तिमें अदायी

ते हुए पूर्ण मानवताके एकनिष्ठ सेवक महर्षि नारदकी  
रख होकर उनसे पूछने लगे—

कोन्वस्मिन्सम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।  
चारित्र्ये च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ॥  
आत्मवान्को जितक्रोधो धृतिमान्कोऽनसूयकः ।  
कस्य विन्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥  
पतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।  
महर्षे स्वं समर्षोऽसि शत्रुमेवंविधं नरम् ॥

( वा० रा० १ । १ )

'हे महर्षे ! इस समय इस भूमयज्ञपर ऐसा कौन  
पुरुष है जो उरुरोचित समस्त गुणोंका आधार हो, बल  
और चरित्रके सम्पन्न हो, प्राणीमात्रका हितकारी हो,  
हृन्मय-विजयी, जितक्रोधी और तेजस्वी हो एवं जो किसी-  
के प्रति असूया न करता हो तथा युद्धक्षेत्रमें जिसके रोषको  
देखकर देवता भी डरते हों। यदि ऐसे कोई महापुरुष हों  
तो ध्याप उन्हें जानते होंगे। मैं अत्यन्त कौतूहलसे उनकी  
धार्ते सुनना चाहता हूँ ।'

मर्यादा-पुरुषोत्तमके धनुसन्धानमें ध्याकुल तपःविलस  
महर्षि वाक्यमिके द्वारा इस प्रकारके नवीन विश्व-हितकर  
प्रश्नको धुन देवर्षि नारदने जो कुछ कहा था, सो  
इसप्रकार है—

महर्षे उरुमाक्षेव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।  
मुने बभूवाम्यहं नुद्भ्या वैरुक्कः श्रूयतां नराः ॥  
इत्याहुर्ब्रह्मराजो रामो नाम जनेः श्रुतः ।  
निपतात्मा महावीर्यो धृतिमान्धृतिमान् वशी ॥  
मुद्रिमाजीतिमान्वाग्मी श्रीमान्धृतिवर्धनः ।  
आजानुबाहुः सुशिराः सुवदन्तः सुविक्रमः ॥  
समः समविमरुजः सिम्घवर्णः प्रतापवान् ।  
पौनवशा विशालाक्षो टक्षनीतान्धुमरुद्रुणः ॥  
पनेरुः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।  
यशस्वी शानसम्पन्नः शुचिर्बदयः समाधिमान् ॥  
प्रजापतीसमः श्रीमान्धृता रिपुनिर्दनः ।  
रक्षिता जीर्योकरस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥  
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।  
वेन्देरज्जतस्वरो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिमानवान् ।  
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनतामा विचक्षणः ॥  
सर्वदामिमतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।  
आर्यः सर्वसमक्षैव सदैव प्रियदर्शनः ॥  
स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः ।  
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥  
विष्णुना सदृशो वीर्येण रोमनप्रियदर्शनः ।  
कल्याणिसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥  
धनदेन समस्त्यग्रे सखे धर्म इवापरः ।

( वा० रा० १ । १ । ७ से १५ )

'हे मुने ! आपने जिन अति दुर्लभ गुणोंका नाम  
जिया है उन सब गुणोंसे युक्त एक पुरुष हैं, मैं विशेष-  
रूपसे समझकर उनके सम्बन्धमें आपको बतलाता हूँ,  
प्यान देकर सुनिये। उनकी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पत्ति हुई है  
और वे रामनामसे सबमें प्रसिद्ध हैं। वे महावीर होनेपर भी  
जितेन्द्रिय हैं, धृतिमान् हैं, धीर हैं और मनको बशमें  
किये हुए हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिपरायण, वक्ता, धर्मे ही  
सुन्दर और अपने शत्रुओंको परास्त करनेवाले हैं। उनकी  
मुजाएँ जातुक लक्ष्मी हैं, सुन्दर सिर है, प्रशस्त कलाट है  
और उनका पदविन्यास अत्यन्त मनोहर है। उनके सभी  
अंग सुसंगठित और सुविभक्त हैं। शरीरकी कान्ति नेत्रोंको  
स्निग्ध करनेवाली है। वे प्रतापी हैं। उनका वस्त्रःशुक्ल  
विराल है, धाँवें धवी बड़ी हैं, वे अत्यन्त सौन्दर्यशाली  
और दृढ लक्षण-सम्पन्न हैं, वे धर्मके रहस्यको जाननेवाले  
और सत्यपरायण हैं। प्रजाका हित करना ही उनके जीवनका  
प्रधान कार्य है। वे पशुस्वी, पूर्ण ज्ञानी, दृढ़ और  
साधुओंके वशीभूत हैं, वे समाधि-सम्पन्न, प्रजापतिकी भाँति  
सदैव दृढ कायोंके विधाता और शत्रुओंका दमन करने  
वाले हैं। वे प्रायिणोंके और समस्त धर्मोंके रक्षक हैं, अपने  
धर्मकी धीर स्वजन बाणधरोंकी रक्षा करनेवाले हैं। वे  
समस्त वेदवेदाङ्गोंके रहस्यको जाननेवाले हैं और धनुर्वेदमें  
भी पूर्ण प्रवीण हैं। वे सब शास्त्रोंके गुरु तपको पूर्णरूपसे  
जानते हैं। उन्हें किसी विषयकी विस्मृति नहीं होती। वे  
असाधारण प्रतिभावाले हैं। सबके प्रिय और साधु प्रकृति हैं।  
दीन नहीं हैं, साधु लोग उनसे प्यार करते हैं। वे बुद्धिमान्  
हैं और सभीके सम्मान्य हैं। जिन तरह समुद्र नदियोंमें  
प्रधान है वही प्रकार वे भी सबमें प्रधान हैं। वे सबके



साथ समान भावने व्यवहार करते हैं। सर्वज्ञ भिनद्वर्गन हैं। समुद्रके समान गम्भीर और विशालतयके समान धीर हैं। साधारण विषयके समान पराक्रमी और चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर हैं। क्रोधमें वे प्रलयकालकी अग्निके समान और चमामें पृथ्वीके समान हैं तथा त्यागमें कुबेरके समान और सत्यमें तो साधारण धर्म ही हैं।'

उपयुक्त श्लोकोंमें जो कुछ कहा गया है वही समस्त रामायणका बीज है। सातों काव्योंमें इन्हीं मय दुर्लभ गुणोंसे सम्पन्न मर्यादापुराणोपम श्रीरामचन्द्रके त्रिलोकपारम-चरित्रोंकी विचित्र घटनाओंका वर्णन है। इस वर्णनके वैचित्र्य और माधुर्यसे आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने रामायण-में जिस उच्चाल भाव-तरङ्ग माला-संकुल आगाध-रस समुद्रकी सृष्टि की है, उसीके तरंग-विशेष कवियोंके कमनीय स्पर्शसे आज भी भारतके असंख्य नर-नारियोंके संसार-ताप-दग्ध हृदय शीतल होते हैं, नेत्रोंमें प्रेमाक्षुण्णोंकी बाढ़ आ जाती है, शोक, तप और दारिद्र्यसे विषुग्ण आत्मामें नवीन निःस्वास्थ्य कर्णध्वनिष्ठाका विमल प्रवाह बहने लगता है।

वाल्मीकिके बाद भी भारतमें बड़े बड़े महाकवि हो गये हैं, और श्रीरामके चरित्रका अथलम्बन कर अपनी असाधारण कवित्व-शक्ति और अलौकिक सृष्टि-निपुण्यताके द्वारा सहृदय समाजको आश्चर्यसे पुलकित कर रहे हैं। यह बात जितनी उज्ज्वल सत्य है, इसकी अपेक्षा अधिकतर जागृत्य-मान सत्य यह है कि इन समस्त पूर्ववर्ती महाकवियोंमेंसे किसीने श्रीरामायण-वर्णित चरित्रोंकी छायाका अनुकरण करनेके सिवा कुछ भी नवीन रचना नहीं की। महाकविके

रामायणरूपी मन्दन-काननमें जो अनन्त सुमिधुमन्त्र-विभे हुए हैं, उतीमेंसे पुन पुनका कुत्र कुत्रोप-करके राजतोगर, काञ्चिदाय, मयमृति, अयोध की-आदि अगणित मात्राकाररूप मराठविभेदे एवं सुन्दर नवीन हारगुण दिया है, इन हारोंमें नारायण-माना प्रकारके सुगन्धिवाजे पुष्पोंके समानेकी वें बहूद तारतम्य होनेके कारण उनके काव्योंकी सुन्दर तारतम्य कीगना है। पाल्पु यह कहा जा सकता है कि चरित्रके अङ्गित करनेमें इनकी कोई वितेय इति की।

गृहस्थके सामाजिक सुखोंके लिये जो उन सार्व-साधन हैं, मर्दिर वाल्मीकिने उन समीको एक अनन्त प्रधानरूपसे अन्वयन करके, अपनी रामायणमें सुन्दर निष्कण्ठ भावने विकसित कर दिया है। आदर्श आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श आदर्श सहचर, आदर्श अनुचर, आदर्श मन्त्री, आदर्श आदर्श सेवक और आदर्श पत्नी आदि हिन्दु-जीवनके समी सार-साधनोंसे महाकवि वाल्मीकिने सृष्ट आदर्श-गृहस्थ अतिरिक्तरूपसे नित्य परिष्कृत आदर्श हिन्दु-गृहस्थ-जीवनका आनन्द व लेख हिन्दु पाश्चात्य गृहस्थ-जीवनके अनुकरणमें प्रवृत्त हुए पुण्य भारतमें उसके लिये गृहस्थाश्रमके पावनके विद्वन्मनाके सिवा और क्या हो सकती है? हिन्दु आर्य-संसार-सर्वस्व रामायणका यथायं रस विद्या-वत् हिन्दुसमाजपर विशेषरूपसे यारसानेके लिये 'कला' सञ्चालकोंने 'रामायणार्द्र' निकालनेका जो सब हिन्दु इसके लिये वे प्रत्येक हिन्दु-हृदयसे कृतज्ञतापूर्वक प्राप्त करनेके पात्र हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

### खड्ग राम नाम है

- रावण निशङ्कपर धीर रघुवीर जिमि
- कौरव-कठोरन पे पार्थ बरुषाम है ॥१॥
- काली महिषेश हेतु भीम जरासन्धपर
- घोर बरुषाली नाम कालीपर ध्यान है ॥२॥
- कुम्भज जलेशपर चक्र शिशुपाल शीश
- दानव विदारनको अजनी लखाम है ॥३॥
- पाप तम पुञ्ज सबै नासत दिनेश जिमि
- ब्राह्म यमदूतनको खड्ग रामनाम है ॥४॥

# हिन्दूसमाजपर रामपूजाका प्रभाव

(केलक-स्वामीजी श्रीदयानन्दजी)



रीर, मन, और प्राणसे पूज्यपुरुषमें सह्यीन होकर क्रमशः तद्रूप-प्राप्ति, तदाकारभाव और तद्रूपताकी सिद्धि ही पूजाका क्रमोक्त लक्ष्य है। घतः मानवको पूज्य मानव तथा गृहस्थको आदर्श गृहस्थ बनानेके लिये इस युगमें श्रीराम-पूजा ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है। ऐसा पूज्य मनुष्य कौन है, जिसके आदर्शको देखकर प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवनको पूर्ण जीवन बना सकता है तथा प्रत्येक चरित्र नरपति अपने राजधर्मके पूर्णसुष्ठानद्वारा लोकपरलोकमें कृतकृत्य हो सकता है। महासुनि वाक्मीकिके इसप्रकार प्रश्न करनेपर देवर्षि नारदने श्रीभगवान् रामचन्द्रको ही ऐसे पूर्णमानवके आदर्शरूपसे वर्णन किया था।

श्रीरामचन्द्र संयतात्मा, महावीर्यवान्, कान्तिमान्, अतिमान्, जितेन्द्रिय, समुद्रतुल्य गम्भीर, हिमालयतुल्य धीर, विष्णुतुल्य बोर्ययुक्त, चन्द्रतुल्य प्रियदर्शन, कालाग्नि-तुल्य रणवेजयुक्त, श्रुतिवीर्यतुल्य धर्मायुक्त, कुबेरतुल्य धनदाता, धर्मराजतुल्य सत्यव्रत, कर्त्तव्यपालनमें बज्रतुल्य फटोर, स्वभावतः कुसुमसे भी कोमल-हृत्पादि सभी आदर्श-गुण एक ही साथ श्रीभगवान् रामचन्द्रमें प्रकट होनेके कारण ही वे पूज्य आदर्श पुरुष माने जाते हैं और उनकी आर्त्तिक पूजाद्वारा उपासक क्रमशः उनमें तन्मय होकर उनकी अलौकिक गुणवर्षीका लाभ कर सकते हैं। यही हिन्दू-समाजपर श्रीरामपूजाका परम प्रभाव है।

अब इन अलौकिक गुणोंपर कुछ विवेचन किया जाता है। श्रीरामचन्द्र एकाकी ही पूजावतार नहीं थे। चारों भाई मिलकर पूज्य थे। यही वाक्मीकिक रामायणमें प्रमाण है।

कौस्तुभानन्दनामं दिव्यकृष्णसंपुतम् ।  
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैश्वर्यमन्दनम् ॥  
मरतो नाम कैकेयं जज्ञे सत्यपराक्रमः ।  
साक्षादिष्णोक्षनुभोगः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥  
अथ रत्नमणशुभ्रौ सुमित्राजनवस्तुतौ ।  
वीरी सर्वोत्सृजराज्ञौ विष्णोरर्धसम्मन्वितौ ॥

( बा० २। १८ )

अवतार-विवेचनमें श्रीरामचन्द्र भगवान् विष्णुके आर्धांश, भरत चतुर्थांश तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्नप्रत्येक अष्टमांश थे। चारों मिलकर पूज्य थे। गृहस्थाश्रममें सम्मिलित रहना, एकप्राण एक-इन्द्रिय रहना ही पूज्यता तथा गार्हस्थ्य-सुल-शान्तिका लक्षण है, यही सत्य आदर्श इस अवतार-रहस्यके द्वारा प्रकट हुआ है। क्या उपासक इस रहस्यको रामपूजा द्वारा हृदयङ्गम करके गृहस्थाश्रममें आनुप्रेमका उच्च आदर्श स्थापन न करेंगे ? 'विदारयन्ति कुलमिति दाराः' की भाई भाईमें कलह कराकर कुलको फोड़फाड़ देती है, इसी लिये संस्कृत-भाषामें स्त्रीको 'दारा' कहा जाता है। किन्तु चारोंके मिलकर पूज्य होनेके कारण 'दारा' शब्दकी यह परितार्थता रामशुद्धमें कदापि नहीं हुई थी। यह सभी लोग जानते हैं कि श्रीरामचन्द्र सीताकी अपनेभाई लक्ष्मणपर अधिक प्रेम करते थे। इसी कारण शक्ति-शैल-मूर्च्छित लक्ष्मणके लिये सकल्य विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रने कहा था—

शक्या सीतारामा नारी मर्यदेके विधिन्वता ।  
न लक्ष्मणसमो भ्राता सधिनः साम्प्रसारिकः ॥  
परिरक्ष्यमाण्यहं प्राणान् वानराणां तु पदवताम् ।  
यदि पथत्वमापतः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ।

'संसारमें सीता-सदृश स्त्री मिल सकती है। किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई नहीं मिल सकता। यदि लक्ष्मणके प्राण न रहे तो मैं भी प्राण त्याग दूँगा।' इस बातको श्रीरामचन्द्रजीने सार्थक करके भी दिखा दिया। प्रजावत्सल श्रीरामचन्द्र प्रजारजनके लिये निर्दोष सहायिणी सीताको धनवास देकर भी जीवित थे, किन्तु दैवकारणसे जब भाई लक्ष्मणको उन्हें परित्याग करना पड़ा तो फिर श्रीरामचन्द्र जीवन धारण न कर सके और लक्ष्मण-वर्जनके कुछ ही दिनों बाद अपने अपनी जीला संवरण कर ली। उनके जीवनमें पवी-प्रेम, आनुप्रेम आदि सब प्रेमोंसे धर्मप्रेम विशेष रूपसे था, इसका भी ज्वलन्त प्रमाण उन्हींके इन शब्दोंसे प्राप्त होता है—

विसर्जये त्वां संनिद्रे माम्दुर्धर्मविपर्ययः ।

'तुम मेरे प्रति प्रिय होनेपर भी धर्म'के लिये मैं तुम्हें परित्याग करता हूँ।' क्या रामोपासक रामपूजाके द्वारा इस अलौकिक शिक्षाका लाभ नहीं कर सकेंगे ?

भगवान् भीरामचन्द्र किनके मित्र नहीं थे ? वे नरके मित्र थे, धानरके मित्र थे, देवताके मित्र थे, रावणके मित्र थे, प्रेताके मित्र थे, भीष्मके मित्र थे, पाण्डवाके मित्र थे, मित्राक्षके मित्र थे, मनाक्षके मित्र थे, कोत्रके मित्र थे और विराणके मित्र थे । सभीके मित्र होने पर भी वे अपनी पूण्य मर्त्यादार पूण्य प्रगिष्ठिन थे । वर्णाश्रम मर्त्यादाघ उल्लङ्घन करा भी नहीं करते थे । भगवद्गीताके सिद्धान्तानुसार 'म्राणगे गत्रि हरितना शुनि पैव तगकेन' अर्थात् आग्नाके विचारते 'समदर्शी' थे किन्तु 'समवर्ती' नहीं थे । कठोर परशुरामके प्रति उनकी उक्ति द्वारा यह स्पष्ट प्रमाथिन है ।

म्राणगोऽशीति पूज्यो मे विधामित्रहतेन च ।  
तरमाण्डको न ते राण मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥

( वा० रा० १ । ७६ । १ )

‘आप म्राण्य हैं और मैं चप्रिय हूँ, इस कारण मैं आपके ऊपर अक्षमहार नहीं कर सकता।’

अबोध पक्षपाती मनुष्य भीरामपर शररीके जूटे वेर खानेका घृणा ही दोष खगाते हैं । वाल्मीकि, गुलसीदास आदि किसीके भी प्रामाथिक प्रण्यमें इसका प्रमाथ नहीं मिलता है । अतः यह बात सर्वथा निर्मूल है । हो सकता है कि शररीने एक बेर चखकर देख लिया हो कि इस पेड़के बेर मीठे हैं या नहीं, किन्तु सभी बेर चखकर उसने श्रीभगवान्को खिलाये थे, यह सङ्गूण मिय्या कल्पनामात्र है ।

भगवान् श्रीकृष्ण 'मदनमोहन' और श्रीभगवान् रामचन्द्र 'मदन-दहन' थे । मदन-मोहन होनेके कारण ही श्रीभगवान् कृष्णने गोपियोंकी रमण्येच्छाको दग्ध नहीं किया था, किन्तु उसी भावसे उन्हें अपनेमें तन्मय करके उनकी कामादि घृत्तियोंका नाश कर दिया था । उन्होंने स्वयं ही कहा है—

न मय्यादेशितधिया कामः कामाय कल्पते ।  
वर्जितः कथितो धानः प्राप्यो बीजाय नेष्यते ॥

‘कामभावसे भी भगवान्के प्रति अनुराग करनेपर यह काम काम नहीं रहता है, जिस प्रकार भूजा हुआ धान फल उत्पन्न नहीं कर सकता, उसी प्रकार भगवान्में अर्पित काम भी निर्वाण हो जाता है ।’ किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्त्यादा-पुरषोत्तम होनेके कारण नहीं हो सकते थे । उनके लिये मदनभक्षकारी-

महादेवकी तरह 'मदनदहन' होना ही मर्त्यादहन व 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामने कामनिर्वाण शर्णाग्नाको काम न देकर उनके नाश-कान करारिते ही संसारकी श्रियोंके यह गिणा प्रदान की थी कि मदन रमण्येच्छा-कोतुन अविचारिणी श्रियोंकी घृणा ही दुर्गादेवता आदिसे । 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामचन्द्र तन्मय लिये प्रायः अग्नि कठोर एकपत्री-वतका पूण्य कान राके थे और रावणके हावने सीताको बुझाकर ही उनका प्रवेश कराया था तथा केवल प्रजातन्त्रता ही सीतने वनवाग देकर उनमें कठोर तपस्या और मद्रक्षय प्रण करवाया था । यह अलौकिक आदर्श प्रत्येक मनुष्यके लिये अचरय पालनीय है ।

एक-पत्रीवत तथा एक-पतिवतको पक्षर का ल गृहस्थ नर-नारीके लिये सर्वोत्तम आदर्श है और ही आदर्शका उल्लङ्घन उदाहरण श्रीराम-सीताके जीवनमें मिलता है । बाकि-वचने लिये जब सुमीचने श्रीरामचन्द्रके व मादम हुआ कि एक बाणसे सप्तताल बेर अनेकों और ही बाजिको मार सकते हैं, तब श्रीभगवान्ने कर्ण बाण चढ़ा कर उसी समय यह प्रतिष्ठा की थी कि मैं सीताके सिवा अन्य किसी स्त्रीमें मेरी कभी की-उक्ति नहीं तो मेरा बाण सप्तताल बेचकर लौट आवेगा । इस प्रकार प्रत्यपर चढ़ा हुआ एक-पत्री-वत पूरा ही उतरा था । ऐसेही लंकापुरीमें जब महावीरको दग्ध करनेके लिये उन्हें ईंधन वध लपेटकर रावणने आग लगावादी थी तब ही जलनेका संवाद सुन सीतादेवीने भी एक-पतिवतको उत्तर चढ़ाया था और उसीकी महिमासे उसके लिये अग्नि चन्दन शीतल हो गयी थी । जिस समाजके नर-नारियोंमें अनेक राम-सीताकी पूजा प्रचलित होगी, वहाँ इस अनुपम आदर्श अचरय अनुकरण होगा, जिससे गृहस्थाश्रम सार नन्दनकाननके रूपमें परिणत हो जायगा, वहाँ प्रेमकी उन्न मन्दाकिनी सदाके लिये प्रवाहित होती रहेगी, इसमें कर्ण भी सन्देह नहीं है । इसके अतिरिक्त मानव-जीवनको मनुष्य बनानेवाली-आत्मिकता, तितिक्षा, इन्द्र-सहिष्णुता, वैराग्य, विवृभक्ति, मातृभक्ति, आतृ-भक्तवत्सलता, शरणागत परायण्यता, ज्ञानस्युद्धा, सच्चरित्रता आदि सभी गुणवत् श्रीराम-जीवनमें पूण्य परिस्फुट हुई थी, जिनका साथ अनुपम मनुष्य-जीवनको भी अचरय ही अनुभव बना सकेगा, कुछ भी सन्देह नहीं है ।

'अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्मिमितो गृध्रः ।'

इन्द्र, कुबेर, वरुण, चन्द्र, सूर्य, यम, अग्नि, पवन, - इन षट् लोकपालोंके भंगसे राजाका निर्माण होता है, यही धार्यराजका सिद्धान्त है। इन्द्रका भंग रहनेके कारण राजामें प्रभुत्व करनेकी शक्ति आती है। कुबेरका भंग रहनेसे धन एकत्रित करनेकी शक्ति और वरुणका भंग रहनेसे भावरयक्तानुसार प्रजाको धन-दानकी शक्ति आती है। चन्द्रके भंगसे प्रजाको सुखी रखनेकी शक्ति और सूर्यके भंगसे प्रजामें ज्ञानविद्या-प्रसारकी शक्ति आती है। यमके भंगसे न्यायानुसूत्र विचार-शक्ति, अग्निके भंगसे पवित्रता और पवनके भंगसे गुह्यचरद्वारा प्रजाकी कुशल जावनेकी नीति राजाको प्राप्त होती है। इसप्रकारसे षट्गुणविरहित राजा ही वास्तवमें प्रजारजक राजा हो सकते हैं। शुक्लगीतमें लिखा है—

यो हि धर्मपरो राजा देवोऽस्यैव रक्षसाम् ।

अंशमूढो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो मनेत् ॥

धर्मपरायण राजामें ही उपर्युक्त षट् देवताओंके होते हैं, अधार्मिक राजामें असुर तथा राक्षसोंके भंग हैं, ऐसा राजा प्रजारजक न होकर प्रजापीडक होता और प्रजाका सर्वनाश करके ही अपना स्वार्थसाधन करता इसप्रकार प्रजापीडनका अन्तिम परिणाम क्या होता है, महर्षि वायवत्यके शब्दोंमें सुनिये—

प्रजापीडनसन्तापत् समुद्रमूढो हुवाशनः ।

राज्यं कुलं त्रियं प्राणतान्दग्ध्या विनिर्वर्तेते ॥

प्रजापीडनरूपी सन्तापसे उत्पन्न दानवान (विद्रोहार्थि) उनके राज्यको, भंगको, लक्ष्मीको और प्राणको अजायब विना वृष्ट नहीं होती। आज समस्त भारतवर्ष इसी घोर तापसे सन्तप्त है। किन्तु रामराज्यमें शीक हस्तसे विपरीत । श्रीमद्भागवत रामचन्द्र अत्यन्त प्रजावत्सल थे, प्रजारजन उनका एकमात्र भक्त था, प्रजाके सुखके लिये ही उनका जन्म पारण था। संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं था, जो केवल आरजनार्थ वे नहीं कर सकते थे। उनके समस्त प्राण, मूल सुख, समस्त पुरणार्थ प्रजारजनरूपी होमाग्निमें पवित्र तकी तरह होमे जा चुके थे। संसारमें ऐसा कोई रपति नहीं मिलेगा जो केवल प्रजारजनके लिये 'पू' देवोंका, परमभिया, पतिव्रता सोढा-रूपी अपनी सहधर्मिणीका

भी परित्याग कर दे। किन्तु श्रीरामचन्द्रके जीवनमें ऐसा हुआ था। उन्होंने सब धोरके कर्तव्यको तिलाजलि बेकर, यहाँतक कि अपने हृदयके श्रेष्ठ ज्ञानका भी गला घोटकर, 'पू' पवित्र जाननेपर भी केवल प्रजारजनके लिये ही परम सती, परम प्रेमवती निर्दोषा सीताको वनवास दे दिया था। ये सब उनके अपूर्व जीवनमें अलौकिक मर्यादा-स्थापनके दृष्टान्त हैं, उन्होंने एक समय अन्य राजाओंसे भी कहा था—

भूमो भूमो मानिनो भूमिपालाः,

नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः ।

मद्बद्धोऽयं धर्मसेतुर्नराणाम्,

काले काले पाहनीयो मवद्भिः ॥

श्रीरामचन्द्रने अत्यन्त विनयके साथ राजाओंसे प्रार्थना की कि वे उनके द्वारा निर्मित धर्मसेतुकी सुरक्षा सदा करते रहें। इस धर्मसेतुकी सुरक्षाका ही प्रत्यक्ष फल एकादश-सहस्रवर्षम्वापी रामराज्यमें धार्यप्रजाकी प्राप्त हुआ था, जिसकी मजदूर स्मृतिकी भावतक भी धार्यप्रजा नहीं मूल सकी है। रामायणके युद्धकाण्डमें कहा है—

श्रीरामचन्द्र महाराजके राज्यकालमें द्रिपोंको वैधव्य-दुःख नहीं देखना पड़ता था और किसीको भी सर्पभय तथा रोगका भय नहीं था। घोर, दस्यु आदिका अत्याचार नहीं था, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं था। वृद्ध माता-पिताको कभी अपने जीवनमें मृतपुत्रका आश्चर्य नहीं करना पड़ता था। सभी लोग 'दानन्दपू' तथा धर्मपरायण थे। श्रीरामचन्द्रके धार्मिक भावका आदर्श पाकर कोई भी परस्पर द्विसामें द्विस नहीं होता था। सहस्रों पुत्रोंके साथ सहस्रों वर्षों तक रोग और शोकशून्य होकर मनुष्य जीवित रहते थे। वृष्ट सदा ही फल-फूलोंसे सुशोभित रहा करते थे, इच्छामात्रसे ही भेष जब बरसाते और शीतल, मन्द, सुगन्ध, सुखस्पर्शी वायु बहा करती थी। अपने कर्मसे मूल होकर प्रजा अपने कर्मों ही तालर रहती थी। सभी लोग धर्मपरायण थे, कहीं भी निष्प्राय व्यवहारका प्रचार नहीं था और सभी सुखदयसम्पन्न थे। यदि राजा-प्रजामें संधी रामपूजा प्रचलित होगी तो पुनः भारतमें आदर्श पृथिव्य नरपति और आदर्श राजभक्त प्रजा उत्पन्न हो जायगी जिससे सबको रामराज्यका विमल सुख पुनः प्राप्त हो सकेगा, इसमें शरा भी सन्देह नहीं है। यही हिन्दू-समाजपर रामपूजाके प्रभावका कथञ्चिद् दिग्दर्शन है।

# कौन बड़ा है ?

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)



य हम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी जीवन-घटनाओंपर दृष्टि डालते हैं तो भगवान् श्रीकृष्णजी हमारे सम्मुख एक महान् योगिराज, अद्भुत राजनीतिज्ञ तथा पौंडरा कलासे पूर्ण अजेय योद्धाके रूपमें धाते हैं। और पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी विकटसे विकट परिस्थितिमें फर्तन्य-भागसे अविचलित, महान् तपस्वीके रूपमें दर्शन देते हैं। भगवान् रामके जीवन रथको बड़ी बड़ी दुर्जेय और प्रतिकूल स्थितियोंमेंसे पार होना पड़ता है। उनके जीवनसे अनुपमामात्रको कठिनाइयोंका सामना करनेकी अमोल शिक्षा मिलती है। उदाहरणस्वरूप—प्रतिकूल परिस्थितियोंमें शान्तभावसे सामना करनेकी उस शक्तिकी कलाकहम इस समय भी राम-नाम-श्रेणी, जगद्गन्ध महाशया गान्धीके जीवनमें पद-पदपर देख सकते हैं। अथ लोग कभी कभी यह प्रश्न करते हैं कि इन दोनोंमें क्या कौन है ? जैसे तो त्रियका चित्त जियमें रम जाय वही उसके लिये सब कुछ होगा है। हम चाहे त्रित रूपमें उसे भजें, रूपभेद होनेसे फटाफट बड़ा-घोटा नहीं हुआ करता। ऐसे भी भगवान् श्रीकृष्णको १९ कजाका अरवार मानते हैं और श्रीरामको १२ का। इसको हम चाहे यह कहें कि रणया १९ कानेके बाराबर होगा है अथवा रणया १२ मारोका होगा है, बाय एक ही है। प्यानेसे देखनेसे मालूम होगा कि श्रीकृष्ण चन्द्रवंशी थे और श्रीराम सूर्यवंशी। चन्द्र १९ कजाकोमें पूरा होगा है और सूर्य १२ राशियोंमें। कजा: इन दोनों कजाओंमें जिगी भी प्रकर कोई छोटा बड़ा नहीं है।

## शानी-यंडित आदि कौन है ?

होय दन्डित मोय दारही, मोई संन सुवान ।  
 मोई हू कनेय मो, मोई सुयट अमान ॥  
 नु हू मो मोय सुवैवन, मोई दाता प्यानि ।  
 नुई उके विर भई, रागदेवही हानि ॥

# श्रीरामायणमें मांसाहार

(लेखक—विद्यानाचर्यति पं० श्रीराजचन्द्रजी दास)



ह तो सर्वसम्मत है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और उनका हीरक विद्युत् एवं आदर्श है। जिस प्रकार हमें पामर जीव मद्यपान तथा मांस-खनबीर प्रथित कर्मोंमें लागे हुए हैं, उस प्रकार ऐसे कर्मोंमें जब भगवान्के भक्तजनोंका भी निरत होना असम्भव है, तब साक्षात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके उक्त निन्द्याचर्यकी कल्पना करना महा अनर्थ कि क्या कहा जा सकता है। कुछ लोग अमन्य शरीर परित्यज्य मांस-भक्षणका आरोप करते हैं और इससे अर्थ है श्रीवाचमीकीय रामायणके उन श्लोकोंका अर्थ है कि वे भगवान् रामचन्द्रकी उन अटल और अमर प्रतिशाओंपर ध्यान नहीं देते।

अच्छा, अथ सर्वप्रथम यह देखना चाहिये कि भगवान्की ये प्रतिशाएँ कौन-सी हैं, जिनमें मांस-खनबीर विरत होनेके विषयमें कुछ कहा गया है। ऐतिहासिक समय महााराजा दशरथ और महाराणी कैकेयीके भगवान् क्या कहते हैं—

चतुर्दश हि वर्षाणि वरयामि विरते वने ।  
 कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिव्रतमिषम् ॥  
 (भा० रा० २। ११। १)

अर्थात् विजन वनमें मैं चतुर्दश वर्षतक कन्दमूल एवं फलैर्जीवन् हित्वा मुनिव्रतोंकी तरह मांस-खनबीर त्यागकर निवास करूँगा। और भी कहा है—

पश्यानि मूरानि च मधुयन् वने  
 गिराथ परयन् शरितः मर्दिनि च ।  
 वने प्रदिवेन विविधपदपं  
 सुखी मारिष्यमि तपस्तु निःकि ॥  
 (भा० २। १। ११। १)

जिन् मुनिव्रत महाशयोंके प्रति भी मांस-खनबीर का त्याग करेगा है—

अनन्तकालिभ्यः नमश्च मृतकृत्यतः ॥

ये भगवान्की प्रतिज्ञाएँ हैं। इसके साथ यह भी प्तान देने योग्य है कि मर्यादा-पुरुषोत्तमकी सामान्य प्रतिज्ञा अपने कथनके विषयमें क्या है—‘तमो दिनान्निवापते- रामचन्द्र दो बार नहीं कहते अर्थात् एक बार जो कुछ कह देना सो कह दिया, उसके विपरीत वे कदापि कुछ मनसा, वाचा, कर्मणा नहीं करते।

अपद्धा, यह इन प्रतिज्ञायोंके विरुद्ध वाष्मीकीय रामायणके कुछ श्लोकोंकी, जिनमें अर्थाभास प्रतीत होता है, यथार्थ व्याख्यापर ध्यान दीजिये। चित्रकूटकी यथशाब्दिके वास्तुकर्म-सम्पादनके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्र-ने छत्रमन्थजीको इसप्रकार आज्ञा दी है—

ऐयेयं मांसमाहृत्य शालां यदयामहे वयम् ।

(वा० २।५६।२२)

इसमें स्पष्टतया मांसकी प्रकृति-सी प्रतीत अवयव होती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इसकी यथार्थ व्याख्या इस-प्रकार करना उचित है कि ‘ऐये’ शृंगशालार बँडकर, ‘यं’ (ये वायु इति मेदिनी) प्राणायाम करके, ‘मां’ (लोकमाता मा स्वमरः) छत्रमीरूप सीताको, ‘समाहृत्य’ सम्यक् बँडकर, ‘वयं’ हम, ‘शालां यजामहे’ शालाका यजन करेंगे। अथवा (दूसरा अर्थ) ‘ऐ’ हे लक्ष्मण, ‘ये’ (यः पानीयकलश इति मेदिनी) जल-कलशके समीप, ‘यं’ मरुत्यान् अर्थात् वायुदेवको, ‘मां’ दुर्गाको, ‘सं’ संप्रधारी गणेशजीको, ‘समाहृत्य’ उनके मन्त्रोंसे आवाहन करके, ‘वयं’ हम शालाका यजन करेंगे। फिर श्रीरघुनाथजीका वाच्य है—

मृगं हत्वानय शिष्टं लभणेह शुभेक्षण ।

(वा० २।५१।२३)

‘मृग’ वाम यहाँ गजकन्दका है। मदनपाठ-निघण्टुमें कहा है—(मृगः पत्नी कुपेते गजे च’ इति शब्दकोशः।) इस स्थानपर ‘कन्द’का लीप हो जाता है (विनापि प्रकृत्यं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपे वाच्यः—महाभाष्य) तात्पर्य यह है कि हे लक्ष्मण, गजकन्दको उलाड़कर शीघ्र ले आओ। यहाँ ‘शिष्ट’ पदपर ध्यान दीजिये। क्या यहाँ मृग बच होनेके लिये खड़े थे जो मारकर शीघ्र ला दिये जाते। ‘शुभेक्षण’ सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग श्रीछत्रमन्थजीके गजकन्द पहचाननेके आनुवंशी छत्रमें रहकर किया गया है। भगवान् बार बार करते हैं कि ‘कर्त्तव्यः साकृद्यो हि विविधमनुसर’ इस समय भगवान् श्रीराम वानप्रस्थ-धर्मका पाठन कर रहे

हैं। शाब्दोंमें वानप्रस्थाधर्मके लिये केवल कन्द-मूत्र-फल्लोंके ही खानेकी आज्ञा दी गयी है। इसीलिये भगवती सीताका राखणको फल-भिजा ही देनेका ध्यान आता है। आगे लिखा है—

स लभणः कृष्णमृगं हत्वा मेत्वं प्रतापवत् ।

(वा० २।५६।२६)

यहाँ भी काली लखावाले गजकन्दके लिये ही ‘कृष्णमृग’ पदका प्रयोग है। फिर इसके आगे कहा गया है—  
अथ विशेष सौमित्रिः समिद्धं जतवेदसि ॥  
तद्यु पक्ं समाहाय निष्टं छिन्नशोणितम् ।

(वा० २।५६।२६-२७)

लक्ष्मणजीने गजकन्दको धर्मिमें डाल दिया। यहाँ ‘निष्ट’ पदपर ध्यान दीजिये। ‘निस् तह’ पदमें एक बार पकनेसे ही ‘स’के स्थानपर ‘य’ होकर ‘निष्ट’ पद बन जाता है। वारम्बार धर्मि देनेसे ‘य’ नहीं हो सकता। भगवान् पाणिनिका सूत्र है—‘निसलपतापनासेवने’ कन्द ही शीघ्र एक बारकी धर्मिसे पक जाता है। मृग-मांस शीघ्र नहीं पक सकता। ‘छिन्नशोणित’का अर्थ है—नष्ट होता है क्षिण-विकार जिससे। गजकन्दके विषयमें वैद्यकशास्त्रमें लिखा है—‘लघुवैरिः कृटरन्ता’ इति मदनपाठः। इसके आगे यह श्लोक आता है—

‘अयं सर्वः समस्ताहः श्रितः कृष्णमृगे मया ।

देवता देवसंकरां यजस्व कुशलो ह्यसि ॥’

‘सम्यग् भवन्ति भक्तानि भंगानि येन स समस्ताहः’

अर्थात् लक्ष्मणजी करते हैं कि सब सम्यक् शरणाे हो जाते हैं चाहे जिससे, ऐसा यह कृष्णमृग-काली लखावाला गजकन्द प्रस्तुत है, आद्य यजन कीजिये। यहाँ ‘मृग’ पदके अर्थमें यह भी विशेष है कि ‘समस्ताह मृग’ को धर्मिमें नहीं डाला जाता है। पुनः भगवान् विष्णुको मांस-बलि देनेका कहीं विधान नहीं है और यहाँ विष्णुको भी बलि देनेका ध्यान है। अर्द्धा, यह तो चित्रकूटस्थ पर्ययाताके विषयका उल्लेख है, किन्तु आगे चलकर पञ्चवटीके प्रसंगमें फुलोंकी बलि चढ़ानेका एतद विधान प्राप्त होता है। अतः यदि चित्रकूटमें मांस-बलिका विधान होता तो इससे निश्च पञ्चवटीमें पुल्प-बलिका धर्यान क्यों किया जाता ? फिर देखिये, भगवान्ने दशरथजीको बदरपिण्याकका पिण्ड ही धारण किया है। पिण्डदानके समय भगवान्ने निष्कल्पसे कहा है—

इदं मुंक्व महाराज प्रीतो पदराना वयम् ।

यदस्यः पुरुषो तदसात्तरय देवताः ॥

इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीराम कलमूलका ही भज्य करते थे ।

रोहिमांसानि चोद्भूयन् पेशीश्वला महायशसः ।

शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशश्वले ॥

( वा० रा० ३ । १८ । ११ )

यदि उपर्युक्त श्लोकके विषयमें यह शक्य की जाय कि जटायुके लिये मांसपिण्ड क्यों दिया गया तो इसका उत्तर यह है कि यहाँपर इसका अर्थ मांसपिण्ड नहीं है। 'रोहि' नाम यीनका है उनका 'मांस' अर्थात् गूदा निकालकर 'पेशी' यानी गोली बनाकर दी गयी है। शृगका नाम 'रोहिया' अकारान्त है 'रोहि' नाम शृगका कहीं नहीं पाया जाता। यदि 'शृग' का अर्थ लिया जाय तो यदुबधनमें इसका अर्थ यहलसे शृगोंका मांस होगा, पर वहाँ तो पिण्ड ही दिया गया है। यद्यपि रामाभिरामीय टीकामें रोहि शब्दका अर्थ शृगवाची ही लिखा है, पर वहाँ कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। शब्दकोशमें—'रोहिशब्दो शृगे नांजे चेत' लिखा है। और 'मांस'का अर्थ गूदा भी है। मदनपाल निघण्टुमें 'वेर' के अग्रे लिखा है 'स मांसं मधुरं प्रोक्तं' मांस-सहित वेर मीठा होता है। अथ 'पम्पा'का प्रकरण भी देखिये—

धृतिपिण्डोपमान्स्वूर्लास्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथ ॥

रोहितोश्चक्रतुष्टाश्च नरुमीनांश्च राधव ।

पम्पायामिबुभिर्मत्स्यास्तत्र राम वरान्दहान् ॥

निरत्वक् पश्यानयस्तज्ञानकुरानिककण्टकान् ।

तत्र मत्स्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति ॥

भृशो तान्सादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसश्वये ।

पद्मगन्धिं शिवं वारि सुखशीतमनामयम् ॥

अंसी पुष्करपण्डेन लक्ष्मणः पाययिष्यति ॥

( वा० रा० ३ । ७३ । ११-१७ )

यह उक्ति श्रीरामचन्द्रजीके प्रति करण्यकी है। आप दोनों भ्राता धृतिपिण्डके समान कोमल स्वूल कट्टहल आदि पद्योंके गूदेको 'सात् द्विजान्'—उन पम्पा सरोवरके घासपास नाम करमेवाले पक्षियोंको भज्य करावेंगे। हे राम, पम्पामें— ( हृषेर्गेतिधर्म्याः इति निरुक्तम् ) अपनी आँखोंसे, 'हृषात्'—अर्थात् संहराना, वहाँ 'सं'का अर्थ हो

गया है, उगी महामाष्यके बार्तिकमें 'विनापि प्रयत्नं हृषेर्गेति परबालोपो बलम्पः' इकट्ठे हुए, स्वचारपरित, 'कल' (अथ इव तस) अर्थात् खातरंगकी मज्जिकाँ और टोंग पत्रशुण्ड, मज्जमीनोंको भी धारकी भक्तिसे ब्रह्महरी कर गूदे बावेंगे। 'भृशं' अर्थात् कल डालनेपर 'मम्पार' हर्ष 'स्वादनं स्वायुपस्तव' अर्थात् मज्जिकाँको भोजन करनेकी शीलबमयागी आपको कमलपत्रोंके दोनोंमें ब्रह्मचर करों, यहाँ 'स्वूल' पदके अर्थपर ध्यान न देनेके कारण ही टीकाकार ने इस रहस्यको नहीं समझा है। यदि यह कहा जाय कि महर्षि पाण्डोकिजीने ऐसा संदिग्ध कथन क्यों किया है अति प्रमाण है—'परोक्षप्रिया देवाः प्रलयदियाः' देवताओंके परोक्ष ही मिथ है, इसीके अनुसार अर्थ-अर्थ्योंको भी समझ चाहिये। सबसे बढ़कर हमारे इस लेखके प्रसार 'एगो दिनांभिमापते' यह भगवद्-वाच्य है। इस कथके सत्यमें रहकर ही विचार करना चाहिये कि जब भीतमें प्रतिज्ञा फल-मूल भज्य करनेकी है तब उनके विरत मांसका व्यवहार करना कित्त प्रकार सम्भव हो सक्ता। हमने ऊपर जित बातकी स्पष्ट विवेचना की है यदि कहीं अतिरिक्त किसी विद्वान्को और भी वाल्मीकीय रामायण कित्ती प्रकरणमें इस विषयमें कुछ पूछना हो तो वे 'कल' पत्रद्वारा ही अपनी शक्य प्रकट करें। उसका उत्तर समाधान किया जायगा।

### रामके चार निवास-स्थान

( १ )

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि पीहा जनु ।  
मुकुताहल गुनगन चुने राम बसहु हिय ताहु ॥

( २ )

सय कर माँगाहि एक फल राम-चरित-रति होउ ।  
तिन्हके मन-माँदिर बसहु सिय रघुनंदन दाँउ ॥

( ३ )

स्वामि-सत्ता-पितु-मातु-गुरु जिन्हके सय तुम तात ।  
मनमन्दिर तिन्हके बसहु साँय-साहित दाँउ प्रात ॥

( ४ )

जाहि न चाहिय कयहुँ कछु तुम्हसन सहज सने ।  
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निव गे ॥

## श्रीसीताजीका वनवास

(केसक-महामहोपाध्याय डा० भीमगंगाजीजी झा, एम० ए०

डि० डि०, वाराणसी, प्रयाग विश्वविद्यालय)



रामचन्द्रजीके चरित्रपरीचयमें श्रीसीता-वनवासके प्रसंगको लेकर दोपारोपण किया है। पर ये परीचय इस बातको भूल जाते हैं कि रामायणमें जितने चरित्र-चित्रण हैं प्रायः सभी आदर्शरूपेण हैं। अयोध्या आदर्श नगरी, दशरथ आदर्श पति, आदर्श पिता, श्रीराम आदि चारोंआर्श-आदर्शपुत्र, श्रीसीता आदर्श पत्नी—यहाँ तक कि रावण भी आदर्श शत्रु है। श्रीरामजीको वात्मीकिते आदर्श राजा भी बतलाया है। इसी आदर्श राजाके चित्रणमें उनको साधारण मनुष्यसे अकरणीय श्रीसीताजीका परिस्वागतक भी करवाना पड़ा। इसका कारण यह था कि राजाको जनश्रुतिद्वारा सीताजीके प्रति जब शङ्का का पता लगा तब उनको यह सम्येह हुआ कि इस शङ्काके उदनेपर भी यदि मैं मोहवरा सीताको घरमें रहने देता हूँ तो इस बातका डर है कि साधारण जनतापर इसका बुरा असर पड़े। बस, प्रजामें इस प्रकारकी उच्छृङ्खलाकी शंका होती ही आदर्श राजाका जो कर्त्तव्य हो सकता है वही श्रीरामने किया। अपने आदर्शको उन्होंने स्वयं बतलाया है—

सोहं दयां तथा सौम्यं शिदिता जानामीपि ।

आराधनाय टोचस्य मुञ्चती नास्ति मे वय्या ॥

यहाँ 'आराधनाय' पदमें 'प्रसन्न करके लिये' विवक्षित नहीं है—विवक्षित है 'रचय्याय' रचाके लिये—'प्रतिपाठनाय'—प्रतिपालनके लिये।

महापुराणोंके चरित्र-परीचयमें यह अर्थ रखना आवश्यक है कि वे 'महापुराण' में। साधारण पुराणोंमें जो नियम छाए होते हैं, वे उनमें नहीं हो सकते, न साधारण पुराणोंमें ऐसे उच्चकोटिके चरित्रको समझनेकी शक्ति ही हो सकती है।

**दुःखकी आगमें कौन नहीं जलता ?**

दास रत्ता एक नामसो उभय लोका सुख स्वामी ।  
तुलसी म्यारे हवे रहे दहे न दुसकी आगि ॥

## दास और परम-पद

(केसक—पं० भीरमारकरजी मिश्र 'श्रीपति')



श.श्यापिनी, भुवन-मोहिनी, मनोहर-मायाके रूप और लावण्यपर सुग्ध हो जानेकी मधुर झालसा किसके हृदयमें नहीं होती? सांसारिक ऐश्वर्यके सुख-मोगकी प्रयत्न पिपासा किसे स्वाकुल नहीं बना देती? प्रिय पदार्थको प्राप्त करनेकी कामना और जीवनको सदैव आनन्दमें व्यतीत करनेकी आकांक्षा किसे आकुल नहीं किया करती? मनुष्यमात्र जब स्वार्थ-रचाके लिये उत्सुक रहते हैं, सभी जन्म, मृत्यु, धरा और रोगके भयसे बचना चाहते हैं तब दास ही अकेला क्यों अपने अस्तिवत्को भिताकर धाम-स्वर्गाका अद्भुत आस्वादन सुना करे? दासका ही अन्तःकरण क्यों अनेक सात्विक भावनाओंका समारोह-स्थल बनाता रहे? कुछ महानुभाव तो यहाँ तक कह जाते हैं कि इस दास-भावने ही, स्वाभिमानपर पुकार चलाकर, स्वावलम्बन एवं स्वाधीनताके विचारोंको समूल नष्ट कर दासता है और देशको अधःपतनके मार्गपर पहुँचा दिया है।

सत्य ही दासता तुरी है, इसलिये कि उसमें और विषय-वासनामें पारस्परिक विरोध है। दासको अपना शीघ्र देकर पराये शीघ्रकी रक्षा करनी पड़ती है। मन, बचन और कर्मसे सदा स्वामीके अनुकूल ही अपने आचरण बनाने पड़ते हैं। दस-अपयस, मान-अपमानके भेदभावको मुखा-कर धरपाए, परिवारसे विरक्त होकर, अन्त्यकी शसजामें ही अपनी जीवन-श्रोतनाको नष्ट कर देना पड़ता है। ईसते-ईसते प्राणोंकी आहुति च्यानी होती है।

### दासकी निधिर्षा

पूषं सम्पन्न, स्वाग, वना और उदासीनता दासकी निधिर्षा है। शाहूँपके स्थानपर उसके हृदयमें अस्वामी निधि मरी होती है। जिन्हाको दूर करनेके लिये धनुर्गाथा आर-विन्हामयि दासके पास ही होता है। मद्, मान, मन्साकी मद्मूमिमें उसे अपार आत्मदुःख काटदुःख उद्वहताता दिलहापी पड़ता है। त्रिगुणहारी कल्याणका कौतुभ तो उसकी निजी सम्पत्ति है और आत्मगर्भणका अचर-वचनार कुनेके कोचने कदी बना-बना अरवा कन्ताप हुवा मूषवण है।



## दास और प्रभु

• धन, बुद्धि, विद्या और वियेक भद्रकारकी यादियाँ हैं । जिनमें पढ़कर जड़-जीव, जड़-पशुओं में ही वास्तविक सुखका अनुभव करने लगता है । एक ही जन्म क्यों, धरन् अनेक जन्मोंतक यदि अपने स्वरूपको भूला हुआ वह माया-मरीचिकामें- भटकता रहे तो कोई विचित्र बात नहीं । हृसीलिये हृद निश्चयवाले निष्काम सेवामें ही सर्वश्रेष्ठ समझ कर स्वामीकी सेवामें ही मन लगानेमें अपना परम कल्याण समझते हैं ।

उमासे शंकरजी कहते हैं—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।

रघुकुल-मनि भम स्वामि सोइ कहि सिव नायड माय ॥

भूतभावन भगवान् शंकर भी किसी औरको अपना स्वामी मानकर दास होनेमें गौरव समझते हैं । सत्य है, गौरवका प्रसन्न वहाँ कोई मूल्य नहीं रखता, क्योंकि दास जहाँपर प्रभुकी सेवामें ही सुख मानता है वहाँ प्रभु स्वयं दासकी पूजा करनेके लिये उद्यत हो जाते हैं । यथा—

लिंग यापि निधिवत करि पूजा । सिव समान मिय मोहि न दूजा ॥

सिव द्रोही मम दांस कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

सच्चे दास, भय और शोकसे मुक्त होकर सच्चे प्रभुकी सेवा करनेके लिये अपना सर्वस्व छोड़ बैठते हैं । पवनसुतसे धंकेरवारका भाई प्रश्न करता है—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाया । करिहहि कृपा भानु-कुल-नाया ॥

तामस तनु कलु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मनमाही ॥

प्रभु ऐसे दासका स्वागत किस प्रकार करते हैं—

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज विसाल गहि हृदय लगावा ॥

जो सम्पत्ति सिव रावनहि दीन्ह दिये दस माय ।

सोइ सम्पदा विनीगनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥

## दास और शक्ति

दासको उल्कारकी उल्टी छद्म दीपा कौन देता है ? उसमें अपरिमित शक्ति का प्रादुर्भाव कहाँसे होता है ? दया, ध्याननिद्रा और परोपकार-व्यापकता कहाँसे आ जाती है ?

• जीवन्मुक्त विनिमय और जीवन्मुक्त स्वामीके कार्य-अदृष्ट आहल कहाँसे उभर हो जाता है ? क्या वह दाम-भाषकी महत्वाचांचाया सीटा चक नहीं है ?

जदायु तो जठ, अथम, आमिरभोजी पनी वा, पित्र दशकृत्य जैसे प्रबल पापकामी सुमदको विरप कर हाके शक्ति उसमें आ बुझी थी । शक शरीर न था वो भी तापने अनस्थान करनेका पर्याप्त बल उसकी बाँचमें ही भर चुका था । अनेक पीड़ाओंसे पीड़ित होनेपर दासका मन अधीर हो उठता है, शरीर प्यपाओंसे व्यथित हो जाता है और कष्ट-सहिष्णुता पयान कर जाती है तब शीनरिक्तके दासको वह अपूर्व शक्ति देते हैं जिसके प्रभावसे वह अनप्यन सोइकर परम शान्तिको प्राप्त होता है—

करसरोत्र सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुनीर ।

निरखि राम-छवि-धाम-मुख विगत मई सर पीर ॥

## दास और तप

पुराण साची हैं, अनेक तपस्वी अपने तपसे निर्वात हुए, अनेक ज्ञानी मोहमें पड़कर अधोगतिको प्राप्त हुए ही परिधाम-स्वरूप उन्हें कठिनसे कठिन कष्ट और कठोरसे कठोर दृष्ट भोगने पड़े, परन्तु दासके तपमें उसके तपक लाने भगवान् हुआ करते हैं । जैसे ही प्रलोभन क्यों न पड़े दासको विचलित होनेसे प्रभु ही बचाया करते हैं ।

पद न सही, पादुकाओंकी भी सेवा दास उसी तपसे करते हैं, उन्हींमें मन लगाये हुए अपनी तपस्या पूर्य करे हैं और मनको भोग-विद्यासे कहीं दूर रखते हुए तप पदको प्राप्त होते हैं जिसके लिये सुर, नाग, किन्नर ही गन्धर्व सभी लालायित रहते हैं ।

अवधराज सुरराज सिहाई । दसरथ धन सुनि धनद उरार्थ ।  
तेहि पुर बसत भरत विनु रामा । चबरीक जिमि चणक बण ।  
रमाविलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़करी ।  
भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति विरति गुन विमल सिन्धी ।  
बरनत सकल सुकमि सकुचाही । सेस-गनेस मिरा गनु नही ।

यह है दासकी, तपस्या जिसका बर्णन कठिन ही नहीं बरन् असम्भव है । फिर उस तपस्याका बर्णन प्रभु शब्दोंमें करते—

तात भरत तुम धरम-पुरीना । लोक नैरविद प्रेम प्रदीना ।

करम बचन मानस विमल तुम्ह समान तुम्ह उर ।

गुद समाज रघु बन्धु गुन कुतमय किमि कहि जग ॥

वक्त प्रयत्नाकी पूर्ति विवेकी कर वंसे हैं—

मरत-राम-गुन-प्राप्त-सनेह । पुरकि प्रसन्न राठ बिदेह ॥  
सेवक स्वामि सुमाठ सुदावन । नेमु प्रेमु अति पावन पावन ॥

### दास और दीनबन्धु

दीनबन्धु सदा दासकी रचि रहते हैं । प्रायोंसे प्यारा  
जानकर हृदयसे लगते हैं और सखा एवं बन्धुके समान  
मानते हैं । श्रीरामजीने नीध निरादको अपना सखा बनाया  
था, जिसे गृह किस गर्वमरी बायीसे कह रहा है—

कपटी कायव कुमति कुजाती । लोक वेद नाहेर सब भौंती ॥  
राम कीन्ह आपन जवहीते । मजई मुजन भूषन तबहीते ॥

ऐसे कपटी और बुजातिवाले दासको कैसा धादर  
मिलता है, यह इन पंक्तियोंसे प्रमाणित होता है—

राम सखा गुनि स्पन्दुनु त्यागा । जले उजिरे उमगत अनुरागा ॥  
लोक वेद सब भौंतिहि गोचा । जायु छाँह सुख लेख्य सींचा ॥  
तेहि गिरे अंक राम-रघु-भ्राता । मिळत पुठक परि पूरित गाता ॥  
कहहि लहेठ पहि जीवन लाहू । भेउठ राममद्र गिरे नाहू ॥

### दासका श्रम

पितृ-श्रम्य, गुरु-श्रम्य और देव-श्रम्यसे उन्नय होना  
सरल है किन्तु दासके श्रम्यसे उन्नय होना अत्यन्त कठिन है ।  
दास मनुष्यकार था फल नहीं चाहता । वह तो प्रभुपर और  
अधिक श्रम्य लादनेके लिये जन्म-जन्म पद-सरोज-सेवाका  
ही धरदान माँगा करता है । उसे सेवामें ही परमानन्दकी  
उपलब्धि एवं सेवा करनेमें ही सच्चे सुखका लाभ मिलता  
है । ऐसी दशामें प्रभुको वड़ा सङ्घोष होता है । उस समय  
दासको धरनालेने और धरना सर्वदा उसे सौंप देनेके  
अतिरिक्त प्रभुको और कोई उपाय नहीं सूझता । पवनकुमारसे  
प्रभु कहते हैं—

सुनु कपि वेदि समान उपकारो । नहि कोउ सुर नर मुनि तनु धारी ॥  
प्रतिउपकार करउँ का तोरा । सनमुल होइ न सकत मन नोरा ॥  
सुनु सुत तीरि उरिन में नाहीं । देखै करि विचार मननाहीं ॥

ऐसी दशामें स्वामीको श्रम्यसे उन्नय करनेके लिये  
दास फिर उन्हीं धरनोंकी शरण जाता है । अ्यान समेत  
शूलधनसे भुक्त कर देनेके लिये प्रभुको उन धरनोंकी याद  
दिलाता है जो सहज ही पापायकी भी प्रतिमाको तार  
दिया करते हैं ।

बार बार प्रभु बहहि ठठता । प्रेममगन तेहि ठठुन मावा ॥  
प्रभु कर-पंकज कपिके सीसा । सुभिरि सो दस मगन गौरिसा ॥

### दास और कर्त्तव्य

सेवा-धर्म ही दासका परम कर्त्तव्य बन जाता है ।  
पत्न, सप, दत्त, विधानादि सभी सेवाके स्वरूपमें परिश्रत  
हो जाते हैं । स्वामीकी जब कभी जो हृच्छा हुई उसे वहीं  
पूर्ण करना पड़ता है । हृच्छा न भी हो तो भी सेवासे मुख  
मोझेनी कहीं गुंजाइश नहीं रहती । जपमणजी श्रीरामकी  
सेवा किस प्रकार करते हैं—

सेवहि लनन सीप रघुनीरहि । जिमि अबिकेकी पुरख सीरीरहि ॥  
सेवहि लनन करन मन नानी । जाय न सीक सनेहु बखानी ॥

कभी कभी प्रभुकी आज्ञा कबुई हो जाती है, उसमें  
यज्ञकी-सी कठोरता, विपकी-सी अलन और वायकी-सी  
मार्मिक च्पया भरी होती है । दासका मन तिलमिला  
उठता है, मस्तक घूम जाता है और कर्त्तव्यपरायणता काँप  
जाया करती है । जिन जनक-नन्दिनीके लिये असंख्य  
धानरोंको प्राय बिसर्जित करने पड़े थे, जपमण्यको हृदयपर  
सेल सहनी पड़ी थी और शत्रुके वंशका विनाश किया गया  
था, उन्हींका धरमान स्वयं सर्वदा-पुरुषोत्तम करते हैं और  
अग्निमें अर्पित जलाये जानेके लिये चिता चुननेका  
आदेश जपमण्य-सरीसे सुकुमार-हृदयको देते हैं । क्या  
जपमण्यके हृदयमें जगद-जननीजानकीके प्रति काफी मातृ-भक्ति  
न थी? धी धरयय ! किन्तु प्रभुकी आज्ञाके सम्मुख, हृच्छाके  
विस्त, दासको सिवा हृच्छापूर्ण करनेके और कोई चारा  
नहीं रह जाता ।

मुनि लछिमन सीतैक बानी । विरह-विनेक-धरम-नय-सानी ॥  
लोजन सकत नेरि कर दोऊ । प्रभुसन कलु कहि सकत न ओऊ ॥  
देखि रामरुख लछिमनु पाप । पावक प्रप्रति काठ बहु टाप ॥

यह है दासकी सेवा और इतना है कठिन कर्त्तव्य !

### दास और आत्मसमर्पण

अहङ्कारपूर्ण व्यक्तिव्यको छोड़कर जिस समय जीवात्मा  
प्रभुके धरयोंमें आत्मसमर्पण कर देता है और आत्मन्तरिक  
हृदयस्थ उपास्यदेवमें जब उसका मन पूर्णतया स्थिर होकर  
लग जाया करता है, उसी समय त्रिगुण-तरङ्गमयी-भोहात्मक  
प्रकृतिका धारण धीचसे हट जाया करता है और दास  
उस असखद धविनाशी शक्तिके धीधरयोंमें लीन हो जाता  
है । योगी, यती इती सुयोगके लिये यत्न किया करते हैं,  
किन्तु उनका उत्तरदायित्व दाससे कहीं अधिक हुआ करता

है। कारण, रामका अन्तर्भाविक अधिकारीमें प्रभुता ही हुआ करता है और वे अपने गौरवर प्रीति भी करते हैं—  
 प्रभु विभीषण प्रभु कर हीनी। कादि सरादेरकर दीनी ॥

जहाँ धामधामरूप हुआ, प्रभु शत्रुको भी बनाने है और अपने धामका अधिकारी बनाने है। बाकि बुध, दुराचारी और पतित धा, किन्तु—

• राम बादि नित्र धाम पठारा।

विराध धमुर धा। श्रीरामने बुध धानकर रामगुण धाधा धा। उसे भी उग्राँने धरनाया—

गुरतदि रथिर रूपतेहि धारा। देसि दुगी नित्र धाम पठारा ॥

कहाँतक कहा जाय। धमरा गमयमें भी जो प्रभुके समीप धाकर धपनेको सौंप देने हैं, वे धाम धामवरके अधिकारी धन धाते हैं।

राम गरिम को दीन दिरवनी। ईन्दे बुध मिन्तर ही।  
 धर-मन्थान धानान धनन। र्नि वं जे दुनेर धर  
 धममें हुना ही अरु हुना कि विन धरनें  
 जे धान धिर-अर-गुन धर गुन धामि मुनिकी ही।  
 नभनिनीता मुनि धरिना धैनेत धन मुनी।  
 धन मुनि-अंगुन-अर-गुन धन धिरा बरुधिनरें।  
 धर-अर ईद मुनुद राम रनेत नित्र धमनें।

-राध धानेरा  
 धाधिर्विध दुःखोंमे मुक होकर धाम  
 धरको धाम होंगे हैं, उग्राँकी सेवाने,  
 मनुष्य राधा धामधरनापध और सधर सैरिध  
 है। धारनाधा धाम धनकर नहीं, धर प्रभुका  
 ही धाम-धरका अधिकारी हो सधरा है।

### निपादका प्रेम

(केसव-भाचार्य श्रीमन्महाश्री गोरखानी)

ततो निपादापिपतिं दृष्ट्वा दूरदुपरिधतम् ।  
 सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहेन सह ॥  
 (वा० रा० २।५०।१५)



धुर्यंभय सख्य-प्रेममें शान्त और धारय—दोनों प्रकारकी—उपासनाधर्मोंकी धपेधा अधिक धास्वादन है। ईंखके रससे अधिक मिठास गुद धा रायमें होता है। सख्य-रसमें शान्त-रसका धास्वादन एकनिधा और दास्यका सेवा-सुख, धद दोनों धो होते ही हैं, किन्तु इसमें निःसङ्कोच 'प्रेम' विशेष होता है।

निपादराज विना लुल-कपटके सीधे-सादे शब्दोंमें निःसङ्कोच-भावसे कहते हैं—

नहि रामात्प्रियतमो ममास्ते मुनि कश्चन ।  
 (वा० रा० २।५१।४)

धद भयुर 'प्रियतम' शब्द प्रेमी निपादके सुँहसे ही नहीं, हृदयसे, कपटसे और प्रत्येक लोम-कृपसे, धीयाके सारोंकी तरह धनकार रहा है।

धनवासी शिकारी निपादके धाकोंमें कोमलता, ध्यधर-और श्रीराममें ममताका कारण प्रेम ही है।

सम्यग्ममृगिणस्तन्तो ममत्वहीयान्मृगः ।  
 मारुः स पत्र सान्द्रत्वा मुक्तेः प्रेमा मिनतते ॥  
 (भक्तिरसवृन्दम्)

जिस धाकने हृदय कोमल होता है, विलसे धन ममता उदय होती है उसीको धुधन 'प्रेम' धते है।  
 निपादराज और श्रीराम, धर्तुन और श्रीहृष्य, धध और श्रीचैतन्य, भध और भगवाद्की जोड़ी धधनेरें ॥  
 इससे उकूट प्रेमावस्था और कौन-सी हो सकती है। प्रेमी निपाद राजीवलोचन धीरामके मुलसे धर धर हुक है। जिसकी धारा उसे स्वममें भी न धी—कि,  
 धायास्थामुदितं सत्यं नासत्यं राममधिम् ॥  
 (ध० रा० २।११।१)

श्रीराम, ध्यारे निपादसे मिलनेकी सधमाच धिनि धर उसे हृदयसे धगा धारवार सधधते हैं। निपाद धुध हैं, धोखें भी तो क्या? कदठ गधर हो क्या है, धाँलोसे धरधर प्रेमाधु धलक रहे हैं, हृदयमें धाराका हो रहा है।

'हा हा कदानु भवितासि धद' धरमें ॥  
 (कणकधनुष)

प्रेमीके हृदयका भार कौन जाने । हृदयवत्समको उसने  
प्रकारसे हृदयमें रचवा, पर प्यासन मिठी । भुक्ति ह्रींसीको  
हृदय-सम्बन्ध कइती है, यही परम रस है । 'रसो वै सः ।'  
निपादके निष्कपट, निस्वार्थ प्रेमपर जितना भी लिखा

जा सके, योदा है । जो हस श्रेणीमें पहुँच जाते हैं उनके  
बाह्य धर्म-कर्म कुछ नहीं रहते । यदि मनुष्य हस उज्ज्वल  
प्रेममें मग्न हो जाय तो संसारसे दुष्ट विकारोंका समूल नाश  
हो जाय । पवित्र प्रेमाग्नि सयके हृदयमें जल उठे । ●

## दशरथके समयकी अयोध्या

यह मदानगरी बारह योजन लम्बी थी । इसमें सुन्दर  
भूमी-चीदी सड़कें बनी हुई थीं । नगरीकी प्रधान सड़कें तो  
हुत ही लम्बी चीदी थीं, जिनपर रोज जलका छिदकाव  
होता था, सुगन्धित फूल बिलेरे जाते थे, दोनों ओर सुन्दर  
बगीचे लगे हुए थे । नगरीके अन्दर अनेक बाजार थे, सब  
प्रकारके यन्त्र ( मशीनों ) और सुब्बके सामान तैयार मिलते  
थे । बड़े बड़े कारीगर बहाँ रहते थे । अदरियोंपर ध्वजाएँ  
उड़ाया करतीं थीं । नगरकी चारदीवारीपर सैकड़ों शतश्री  
( तोपें ) लगी हुई थीं, बड़े मजबूत किबाज लगे हुए थे ।  
नगरके चारोंओर शालवृक्षकी दूसरी चारदीवारी थी ।  
राजाके किलेके चारों ओर गहरी खाई थी । अनेक सामन्त,  
राजा और शूरवीर बहाँ रक्षा करते थे । व्यापारी भी अनेक  
रहते थे । नगर इन्द्रकी पुरीके समान बड़े सुन्दर बंगसे  
बसी हुई थी । उसके घाट कोने थे । वहाँ सब प्रकारके रथ  
थे और सात-मंजिले बड़े बड़े मकान थे । राजाके महलोंमें  
रथ बड़े हुए थे । बड़ी सघन बन्ती थी । नगरी समतल-  
भूमिपर बसी हुई थी । खूब घान होता था और अनेक  
प्रकारके और पदार्थ होते थे । हजारों महारथी नगरीमें रहते  
थे । वेदवेदाङ्गके ज्ञाता, अग्निहोत्री और गुथी पुरोधसे नगरी  
भरी हुई थी । महर्षियोंके समान अनेक महारथी भी  
बहाँ रहते थे ।

उस समय उस रम्य नगरी अयोध्यामें गिरन्तर आनन्द-  
में रहनेवाले, अनेक शास्त्रोंको श्रवण करनेवाले धर्मात्मा,  
साधवादी, लोभरहित और अपने ही धर्ममें सन्तुष्ट रहनेवाले

तो हूँदे भी नहीं मिलते थे । वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा  
इन्द्रिय-निग्रही, हार्थुक, सुशील और महर्षियोंके समान  
पवित्र थे । सभी स्नान करते, कुचङ्गल-मुकुट-माला धारण  
करते, सुगन्धित वस्तुओंका लेपन करते, उत्तम भोजन करते  
और दान देते थे । परन्तु वह सभी धार्मिकान् थे, सभी अग्नि-  
होत्र और सोमयाग करनेवाले थे । उद्ग विद्याका, चरित्रहीन,  
भोर और बण सङ्कर कोई नहीं था । वहाँके जितेन्द्रिय ब्राह्मण  
निरन्तर अपने नित्यकर्मोंमें लगे रहते थे । दान देते थे,  
विद्याप्ययन करते थे, परन्तु निषिद्ध दान कोई नहीं लेता  
था । अयोध्यामें कोई भी नास्तिक, कूडा, ईर्ष्या करनेवाला,  
भराक्त और मूढ़ नहीं था । सभी बहुध्रुत थे । ऐसा कोई न  
था जो वेदके छः अङ्गोंको न जानता हो, मत-उपवासादि न  
करता हो, दीन हो, पागल हो या दुस्वी हो । अयोध्यामें  
सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा राजाके भक्त थे । चारों  
वर्णोंके स्त्री-पुरुष देवता और अतिथिकी पूजा करनेवाले,  
दुखियोंको श्रावणयकतानुसार देनेवाले, कृतज्ञ और शूरवीर  
थे । वे धर्म और सत्यका पाजन करते थे । दीर्घजीवी थे  
और स्त्री-पुरुष-प्रादिते युक्त थे । वहाँके राजा ब्राह्मणोंके  
अनुयायी, वैश्य चम्रियोंके अनुयायी और शूद्र तीनों  
वर्णोंके सेवारूप सुकर्ममें लगे रहते थे । नगरी राजाके द्वारा  
पूषारूपसे सुरक्षित थी । विद्या-बुद्धि-निपुण अग्निके समान  
तेजस्वी और शत्रुके शपमानको न सहनेवाले योद्धाओंसे  
अयोध्या उसी प्रकार भरी हुई थी । नगरी में भरी  
रहती है । मत्तवाले

# श्रीरामायणका महत्त्व

( लेखक—पं० श्रीरामायणसुन्दरजी याचिक )

यत्पूर्वं प्रमुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् ।  
 श्रीमद्रामपदान्त्रमकिमनिशं प्राच्यै तु रामायणम् ॥  
 मत्वा तद्रघुनायनामनिरतस्वान्तस्तमः शान्तये ।  
 माषावदमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥१॥  
 पुष्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानमकिप्रदम् ।  
 मायामोहमल्लापहं सुविमलं प्रेमाग्नुपूरं शुभम् ॥  
 श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं मत्स्याऽवगाहन्ति ये ।  
 ते संसारपत्रहृद्योरकिरुणैर्दद्वान्ति नो मानवाः ॥२॥

श्रीरामायणजीके महत्त्वपर मैं कुछ लिखने-योम्य नहीं,  
 परन्तु नमचरनाथ गरुडके समान ही एक शुद्धतर  
 मच्छर भी अपनी शक्तिभर आकारमें उड़ता है। उसकी  
 कोई निन्दा नहीं करता, इसीके अनुसार यह शुद्ध  
 लेखक भी श्रीरामायणजीके महत्त्वपर कुछ निवेदन करनेका  
 साहस करता है।

श्रीगोस्वामीजीके वचनोंसे<sup>७</sup>, श्रीरामायणजी,  
 'श्रीरामतनु' हैं—

बालकाण्ड प्रभु पाँच, अयोध्या कटि मन मोहै ।  
 उर बन्वी आरण्य, हृदय किकिन्धा सोहै ॥  
 सुन्दर श्रीव सुखारविन्द टंका कहि गये ।  
 जेहि महँ रावन आदि निशाचर सवं समये ॥  
 उत्तर मस्तक मान हरि—येहि विधि तुलसीदास मनु ।  
 आदि अन्त ही देखिये—(श्री) 'रामायण'—'श्रीरामतनु' ॥

जिस प्रकार परमात्मा श्रीरामजीका अवतार अनुभूत  
 होता है—

शिबं गृह अस्तरिदां जाई । शुकुल-नीलक सुभरिहु भाई ॥  
 बीच बनी तरह अनुभूत श्रीभक्ति-महाराष्ट्रीयीका व्रजव भी  
 काम, धाम, सीता तथा रूपके स्वरूपमें होता है। श्रीरामायण-  
 जी—नाम धामादिमयी होनेसे श्रीभक्तिका भी स्वरूप है।

'भक्ति भक्त भगवन्तं गुरु चतुर नाम वा स्व-  
 उनके श्रीराम-तनु सूचित किया, अब भक्ति-स्वरूप का  
 दोनोंका वपु एक है। श्रीरामतनु कहिये अपना होने  
 स्वरूपा बोलिये, बोलियोंमें भेद है, बात-एकको दूसरी।  
 श्रीरामायणजीके भक्तिरूपका अर्थान्न नाम, धाम, व्रज  
 रूपमय रूपका भी दर्शन कर लीजिये—

'नाम—यहमई खुशाल नाम उदार।' अर्थ  
 रामायणजीमें श्रीनाम-महाराज, सूत्रमें भक्ति  
 श्रोतप्रोत हैं।

'धाम—श्रीरामजीका धाम (धाम) तो है ही।

'लीला—श्रीरामायणजी, श्रीसरकारी-चरित्र (चरि-  
 से तो परिपूय' ही हैं अतः वे लीला-मयी स्वरूपी

'रूप—'रामायण 'श्रीरामतनु' से रूप जो प्रक-

'रघुवरमगति प्रेम परिमित-सी

भक्ति-भगवन्त उभय कार्य-कार्य भी है और राम  
 भी। यही दोनों लक्ष्य हैं। गुरु और भक्त इनको प्राप्त  
 करनेवाले हैं। वास्तवमें परिणामतः चारों एक हो गये।  
 अतः श्रीरामायणजी गुरुरूप भी हैं—'उत्तर मस्तक  
 योगके।' भक्त-रूपा भी हैं—'जग हित निरपेक्ष लक्ष्य  
 इत्यादि। तात्पर्य यह कि श्रीरामायणजी वास्तविक 'राम  
 तनु' हैं। 'राम अनंत अनंत गुणनी'—अतः इनके अन्त  
 पाद सीनों कालमें कोई कैसे प्राप्त कर सकेगा।

कर्म दो प्रकारके हैं। सकाम और निष्काम। सका-  
 मौकिक सुखदायक, निष्काम—पारलौकिक (हित-  
 दाया हैं। 'रवि-रजनी' सम्मेलनकी अति महत्त्व  
 निर्वाणका संयोग अगममय ही कहा जायता है।

७ श्रीरामायणजीके प्रेमी-वचनोंसे हम विद्वानकी दृष्टाने अविषय रहना चाहिये कि पूज्यदाद श्रीगोस्वामीजीके  
 लक्षण ही है। उनको बणी बहुरिक्त नहीं, किन्तु वह लौकिक, दिव्य बणी है (To err is human)।  
 भूष हो गये हैं—इस लौकिक बचनका अर्थ निज हृदयनेशन हम जगद मयक कहिप्यार कर देना होगा।  
 वह लौकिक-वचनोंके अर्थसे निष्काम हित-मय-वचनोंके अर्थसे अविषय श्रीगोस्वामीजीके वचन  
 श्रीगोस्वामीजीके अर्थसे लक्षण ही है, किन्तु उनमें दूसरे वचनोंके भी तबैव मानना नहीं है।  
 हृदयके हरेके वचनोंके अर्थसे अविषय कहिये।

रामायणजीका अथवा मात्र हस 'असम्भव' पर भी  
उत्तल पोस देता है।

वे सकाम नर सुनहिं जे गारहिं, सुख सम्पत्ति नाना विधि पावहिं ॥  
सुर दुःखम सुखकरि जगमाहीं, अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं ॥  
जग-मंगल गुनग्राम रामके। दानि मुक्ति पन धर्म धामके ॥  
समन पाप सन्ताप सोकरे। प्रिय पाकर परलोक लोकके ॥  
मंत महामणि विषय ब्यालके। मेटत कठिन कुमंठ मालके ॥

हमारे कमंड भाई, कदाचिद् इन शब्दोंको कविकी  
विरायोकि मानें और नयी सन्ध्याकी तेज रोशनीमें  
श्रीरामायणजीके महत्त्वका दर्शन शायद निपट ही असम्भव  
है। हमें उनसे कहने-सुननेका अवकाश नहीं। हमारा तो  
अ-निवेदन केवल श्रीरामजीके जनसे ही है।

श्रीरामायणजी एक कविकी केवल कविता ही नहीं हैं,  
इ धार्मिक दिव्य शक्तिये परिपूरित हैं। श्रीगोस्वामीजी  
वर्ष कह रहे हैं—

'मणित मोरि सिव-कृपा विमाठी ॥' 'सुमिरि सिवासिव पाइ पताउ ॥'  
'तस कहिहौं दिव्य हरिके प्रेरे ।'

उनकी प्रायश्च फल दिखानेवाली बात भी सुन लीजिये—  
सपनेउं साँबेउ मोरिपर जो हर-मौरि पताउ ।-  
तो पुर होउ जो कहहु सब माषामनित प्रमाउ ॥

अतः श्रीरामायणजीको कविता न समझिये। यह वह  
मानस है जो मन्त्रमय सुन्दर धारिये जाबालव भरा है।  
इसपर एक भाष्यायिका सुनिये—

एक बार श्रीसूरदासजी बादशाहके दरबारमें विराज  
रहे थे। उनसे पूछा गया कि 'कविता' सर्वोत्तम किसकी  
है? निरपेक्षभावसे बताइये। उत्तरमें श्रीसूरदासजीने कहा—  
'कविता मेरी सर्वोत्तम है।' इसपर बादशाहको सन्तोष न  
हुआ, उन्होंने आश्चर्यान्वित होकर कहा कि—'मैं समझा  
नहीं। आपने अपने मुँहसे अपने कविताको सर्वोत्तम  
कैसे कहा? क्या इसमें कोई रहस्य है? गोस्वामीजीकी  
कविताके लिये आप क्या कहते हैं?'

श्रीसूरदासजीने सुसजुताकर कहा—'श्रीगोस्वामीजीकी  
कविताको आप कवितामात्र जानते हैं। मेरी भावनामें  
तो वह कविता नहीं, महान्मन्त्र है। मैंने जो अपने काव्यकी  
रहाया की, तो तो इसीलिये कि, उसमें 'भगवत्-यश'  
अंकित है।'

सब सुनरहित कुचि उल बानी। राम नाम-जश अंकित बानी ॥  
सादर कहहिं सुनहिं सुष ताही। × × ×

इतना कहकर सूरदासजीने बादशाहको श्रीगोस्वामि-  
पादका वाल्मिकि स्वरूप बतला दिया।

लेखका फलेवर धन रहा है, इस भयसे यह मतिहीन  
भीत है। अथ केवल श्रौवेणीमाधवजी ॐ कथित श्रीरामायणजी-  
के परत्वर दिव्यदर्शन करा देना शेष है, तो भी संछेपसे ही।  
पमा कीजिये।

'श्रीरामचरितमानस' कैसे, कब, और कहाँ बना और  
वह किस महत्त्वका है? इसका उत्तर हम श्रौवेणीमाधवजीके  
मूल काव्यसे ही श्रीरामकिशोररक्षणजीद्वारा अनुवादित  
शब्दोंमें प्रकट किये देते हैं—

'शुभाशस्तमें श्रीमाहतिवन्दने एक दिवस प्रसन्न  
होकर श्रीगोस्वामीजीसे कहा—"अब तुम यहाँसे श्रीधरपकी  
जाओ और वहीं कुछ दिन निवास करो।"

हृष्टकी आशा पाकर वे चले और तीर्थराज-नयागमें  
रहरे। उस समय मकर-जानके लिये योगी-तपस्वी, संन्यासी-  
सख्य एवं चतुर और मूर्ख सभी श्रेणीके लोग धामे  
हुए थे। पर्व भीत जानेपर छः दिनोंके बाद उन्होंने देखा कि  
सुन्दर अथयशको सुलभ-प्रायामें दो मुनि बैठे हुए हैं। दोनों  
सपके पुत्र हैं और दोनोंकी सुल-कान्ति ऐसी प्रदीप्त है कि उसके  
सामने चन्द्रमाकी छवि भी क्षिण जाती है। दूरहीसे दृग्दवत्-  
प्रणाम करते यहाँ हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनमेंसे एक  
मुनिने इशारेसे उन्हें बुला लिया और अपने निकट आसन  
दिया। उस श्रेष्ठ आसतको हटाकर गुलाईको पृथ्वीपर ही बैठ  
गये। उन्होंने अपना परिचय दिया और उनका परिचय प्राप्त  
किया। उन महात्माओंके पद्यान्त सत्संगमें उसी श्रीराम-

० वे महात्मा श्रीने, शशनीके समझाते थे। श्रीमद्वाराही सन्त-विशेषमणि श्रीमन् १० रामचरितमानसके परम  
हृद्यपात्र भक्तप्रवर श्रीरामकिशोरजी बचोऊने हारमें अपनी ओरसे प्रचारीन श्रीरामचरितमानसमें उक्त १० श्लोकोंका प्रथम-श्लोक  
श्रीरामचरितमानसकी श्रीरानी शामिल कर दी है। अच्छा होता, यदि वह 'श्रीरानी' शब्द प्रकटित हो जाती। निरसदेह  
श्रीगोस्वामीजीकी श्रीरानी इतने आर्थिक प्रमाणिक क्या होगी, जिसमें उनकी समयमें स्थित एक महात्माने अपनी भाँडों देदी  
वाँटे लियी है। संवत् १६८० खार्तिक शुद्ध नवमीके उक्त महात्माने इतकी लिखा था। श्रीमद्वारा उक्तकी 'शुचलि  
श्रीरामचरितमानसके विषय गयी। उकीके उन्होंने विव-प्रकटित श्रीरामचरितमानसके प्रकट कर अगुध पत्र उपहार किया है।

कमाकी चर्चा हो रही थी जिसे इनके गुरु (श्रीनारायणचन्द्रजी) ने बालपनमें शूकर-मेतमें ध्यान किया था। आश्रय-चकित होकर श्रीगोस्वामीजीने उरका गुण रहस्य उन्ही पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यजीने उत्तरमें कहा—'देवदेव महादेव-जीने इसकी रचना की, पीछे समय पाकर इसे मयानीको सुनाया। फिर श्रीमुमुक्षुभिक्खीको इसका उपदेश किया। मैंने जाकर श्रीमुमुक्षुभिक्खीसे इसे प्राप्त किया और अग्नि-भरहानजीको सुनाया।'

इसप्रकार मुनिराजने गुरु रामचरितमानस-तारकी परम्परा सुनकर ये चरखोंमें पड़ गये, युगल मुनीरवर बहुत प्रसन्न हुए। तब सावधानतापूर्वक युगल-मुनिवरोंका विमल संवाद उन्होंने श्रवण किया।

दूसरे दिन जय वे उस स्थानपर गये, तब उसे रूना पाया। न युगल मुनि ये, न वह वट छाँह और न पण्डुटी ही थी। वे विषयकी यादमें यह चले। अस्तु।

युगल मुनिवरोंके शीलस्वभावको फारण करते हुए ये वहाँसे चले। परन्तु भगवद्विष्णुसे फारीकी और निकल पड़े। कुछ दूर चले जानेपर उन्हें विदित हुआ कि मार्ग भूल गये। तब यह विचारने लगे कि भय क्या करें? लौट चलें या इसी मार्गका अवलम्बन करें? अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि जो हुआ सो हुआ, थय इसी मार्गसे चलें, फारीमें भगवान् संकरका दर्शन करके श्रीधवध चले जायेंगे। यह सोचकर वे आगे बढ़े और चलते-चलते गंगा-तटपर पहुँचे। फिर किनारे-किनारे चलते रहे। जहाँ सन्ध्या हो जाती वहाँ टिक जाते। तदनन्तर वे वारिपुर और दिगपुरके बीच अवस्थित श्रीसीतामङ्गी पहुँचे। यहाँ आसन लगाते ही उनकी चित्त-वृत्ति केन्द्र-च्युत हो गयी। न भूल, न प्यास और न निद्रा। विचित्र-की-सी दशा होगयी। साथ ही उनके पूर्वजन्मके संस्कार जागृत हो उठे। वहाँ श्रीसीतावटके नीचे तीन दिन रह गये और कुछ सुन्दर कवित्त (जो श्रीकवितावलीमें धर्षित हैं) बनाकर, मानसिक-उद्गार निकाल धागे ददे।

मार्गमें विन्ध्याचल (बुनारगढ़)के राजाको बन्दीगृहसे दुहाते हुए मुनिराज (श्रीगोस्वामीजी) फारी पहुँचे। वहाँ प्रह्लाद-घाटपर एक भाइयके घर टिके। अनन्तर उनके हृदयमें उमङ्गकी तरंगें उमर्षी और वे श्रीराम-चरितका ध्यान करने लगे, परन्तु दिनमें रची हुई कविता सावधानता पूर्वक सुरक्षित रखनेपर भी रातको छोप हो जाती थी।

प्रतिदिन यह छोप किता होती रही। इस कारण वे अविन्ध्यामें पड़े। क्या करना चाहिये, कुछ समयमें वे आना था। आठवें दिन श्रीमहादेवजीने स्वप्नमें आन कि—'तुम अपनी मातृ-भारामें काय्य रचना करो।' विभंग हुई और वे उठकर बैठ गये। मनमें बड़ी स्वप्नकी चर्चा रही थी। तत्पश्चात् भगवान् भूतनाथ भवानीचरणों पर प्रकट हो गये। गोसाईंजीने साक्षात् प्रयास किया। इसीमें कहा—'तुम अपनी मातृ-भारामें काय्यकी रचना करो। देववाणी मंजुनके पीछे क्यों पड़े हो? जिनमें इन कन्याय हो, वही करना चाहिये। वैद्यक पूर्व प्रण इस रुदिका आदर करनेके नाते गरके कत्यायकी उदेश्य इन कोई सुद्धिमात्रीका कार्य नहीं है। अथ तुम श्रीप्रदोक्तोंमें जाकर पास करो और वहाँ अपने काय्यकी रचना करो। मेरे प्रमादसे यह काय्य-रचना सामवेदीकी श्रुतके अन्त संफल होगी।'

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीउमा-महेश्वर बन्दर्षिते गये। अपने भाग्यकी साराहना करते हुए युग्मोंमें श्रीधयोप्यापुरीको चले। जिस दिन वादशाही-भारत उदयसिंहको सम्मान प्राप्त हुआ, उसी दिन श्रीगोस्वामीजी श्रीधवध पहुँचे।

अपरान्हमें विमल श्रीसरयू-चारामें स्नान करके सन्तुलित, वन-वाटिका और वीथियोंमें विचरने लगे। सन्ध्यासे भेंट हुई। ये कहने लगे—'चलिये श्रीउमाचरणोंमें निकट में आपको एक सुरम्य स्थान दिखलाऊँ।' सन्त श्रीगोस्वामीजीको वहाँ ले गये और उन्हीं पर रमणीय-स्थल दिखलाया। उस स्थानपर सुन्दर कृष्णोंकी विटपावली थी। उन कृष्णोंमें एक सुनिशान कृष्ण था। उसकी जड़में एक सुन्दर वेदिका बनी हुई थी। सा वेदीपर अग्निके समान तेजस्वी एक सुयसिद्ध सिद्धसिद्धासनसे बैठे हुए थे। उस मनोहर स्थलको गोसाईंजीका मन लुभा गया। उनके मनमें वहाँ बुटी बसनेकी इच्छा जागृत हुई। जब वे सिद्ध-सन्तके निकट पहुँचे तब उसने आसन छोड़कर जयकार किया और कहा—'मेरे गुरुने मुझे आशा दी थी कि उसीके अनुसार मैंने यहाँ निवास किया था। श्रीगुरुदेवजी इसका मर्म भी मुझे बतलाया था और उसे मैं आज प्राप्त देख रहा हूँ। श्रीगुरु भगवान्ने कहा था कि—'कुछ दिन पीतनेपर गोस्वामी तुलसीदासजी यहाँ आकर औरतकी

वर्ष न करेंगे। वे आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीके अवतार होंगे और श्रीपवनकुमारजीकी सहायतासे वे यह महान् कार्य करेंगे। यही जानकर राजाजान कुनेने इस स्थानपर वट-वृक्ष लगाकर इसकी सर्वोत्तम मर्यादा बाँध दी है। अथ वृ मेरी आज्ञा मानकर इस स्थानको परिष्कृत करके यहीं भजन कर। जब इस स्थानपर गोस्वामीजी उस महान् कार्यके लिये आये, तब कुटी और आसन उन्हें साँपकर तन त्याग करके मेरे पास चले आना।' गुणजीका उपदेश मुझे अन्धा बना और मेरे अनेक जन्मानिज पुण्यका उदय हो गया। यहाँ निवास करके, यहाँके सुखका अनुभव करते हुए तपस्या-पूर्वक मैं आपके आगमनकी याद देख रहा था। अतएव हे स्वामी! आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। अथ मैं अपने गुरुके पास जाता हूँ।'

पेसा कइकर वे सिद्ध सन्त वेदिकाले उतर पड़े और नमन करते हुए कुछ दूर आते चले गये। वे यहाँ आसन लगाकर ध्यानस्थ हो गये और योगासिके द्वारा अपने शरीरको भस्म करके परम धामको चले गये। इस लीलाको देखकर गुसाईंजीने कहा—'हे धनुर्धर! तेरी बलिहारी है।'

गुसाईंजी सुख-सुपास पाकर वहीं बस गये। इद संयमपूर्वक समय बिताने लगे। एक समय थोड़ा-सा दूध पी लिया करते थे। उन्हें केवल धीरधुनायजीका भरोसा था और किसीका भी डर नहीं था। इस तरह दो वर्ष बीत गये, परन्तु उनकी वृत्ति नहीं ढिगी और संवत् १६३१ का आरम्भ हो गया।

प्रेता-युगमें श्रीराम-जन्मकी तिथिपर जो ब्रह्म, राशि, लग्न, योग आदि पढ़े थे, ठीक यही संवत् १६३१ की राम-जन्मकी भी पड़े। उस दिन प्रातःकाल भौमवारको

श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए और संसारके कल्याणके निमित्त सपते पहले उन्होंने गोस्वामीजीको अभिषिक्त किया। अनन्तर उमा-भद्रेश्वर, गणेशजी, सरस्वतीजी, नारदजी, शेषजी, सूर्यभगवान्, शुक्राचार्य और बृहस्पतिजीने मंगल-मय आशीर्वाद दिये। इस निधिसे विमल रामचरितमानस-का आरम्भ हुआ। जिसके अवयव करनेसे मद्, दुग्ध, कामादि समस्त विकार और सब प्रकारके संशय मिट जाते हैं।

दो वर्ष सात महीने और छत्तीस दिनोंमें अर्थात् सं० १६३३ के मार्गशीर्ष मासमें श्रीराम-विवाहके दिन भवसागरसे पार उतरनेके लिये सात जहाज बनकर तैयार हो गये। पाण्डु-प्रपन्नको दूर बहाने, पवित्र सात्विक धर्मके चलाने, फलिकालके पाप-कलापका नाश करने, हरिभक्तिकी छटा दिखलाने, मतमतान्तरके वादविवादको मिटाने, प्रेम-पाठ पढ़ाने, सन्तोंके चित्तमें भजनकी लगन उत्पन्न करने, सज्जनोंके हृदयमें प्रमोद बढ़ाने, 'हरि-भक्ति शिवजीके हाथमें है'—इस रहस्यको समझाने और वैदिक भक्ति-मार्गको सुझानेके लिये सप्त सोपान-सुक्त दिव्य सद्ग्रन्थ बनकर तैयार हो गया। भौमवारको मध्याह्नके समय 'शुभमिति'—'हरिः ॐ तस्यत्' लिखा गया अर्थात् ग्रन्थ समाप्त हुआ। देवताओंने जयजयकारकी ध्वनि की और फूल सरसाये।

प्रातःकालमें यह ग्रन्थ तो उसी दिन बनकर तैयार हो गया था जिस दिन इसका आरम्भ हुआ था, परन्तु मनुष्यकी निर्बल खेलनीने उसे लिखनेमें इतने दिन लगा दिये।

धीमाणेशजीने उसी समय ह्य ग्रन्थकी पाँच प्रतियाँ दिव्य खेलनीसे लिखकर तैयार कीं और वे तत्काल सत्यलोक, कैलाश, नागलोक, पुन्नोक एवं दिग्पाललोकमें पहुँच

● इस सम्बन्धमें स्वयं बकील साहबने मुझसे भीतरफमें यह कहा था कि—'वचन श्रीगोरामाजीके परम कृपापात्र सया मांवेनीमाववर्नाका लेख सर्वथा प्रामाणिक माननीय है, किन्तु फिर भी इस विषयमें जब तब मेरे हृदयमें सन्देहाभास हो जाता था। रमणमाजीके भयंकर है! कि अब वह निश्चय हो गया। शान यह हुई कि श्रीमान् नीलकण्ठी (जो मेरे परम मित्र हैं और श्रीरामायणजीके अनन्य प्रेमी हैं) ने स्वयं निज मुझसे मुझसे कहा, कि—'प्रायः मेरी साधना करिके मेरे एक वर्ष हो चुका था। एक रात्रि मैंने स्वप्नमें उसे दिग्पाललोकमें देखा। वह मेरा हाथ पकड़कर अपने स्थानमें ले गया। वहाँकी जगदिक रचना देख मैं विस्मय और आश्चर्य हो गया। मैंने कहा तुम्हें परम दिग्पालक प्राप्त हुआ। यह बने सुखकी रात हुई। किन्तु वह तो कहाँ क्यों भी कुछ भजन होगा है! जगने दिग्पाललोकमें जिला हुई श्रीगोरामाजीह्य श्रीरामायणजी दिग्पालकी कर कहा—'वही हमारा रह है। हम सब इसकी उपासना करते हैं। अंगणेशजीने इसे यहाँ भेजा है। मैं बने ही आदरपूर्वक ब हुनने मंत्र था। मेरी कानि कहा कि 'तुम भी यहाँ अनुक सन्तमें आओगे।' इस स्वप्नको सुनकर और नीलकण्ठीकी निर्धारित परमपान-नावाये देकर ही श्रीगोरामाजीह्य यह मन्त्रेद दूर हो गया था।



कथाकी चर्चा हो रही थी जिसे इनके गुरु (श्रीनरहयानन्दजी) ने बालपनमें शूकर-खेतमें पशुन किया था। आश्रय-चकित होकर श्रीगोस्वामीजीने उसका गुप्त रहस्य उनसे पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यजीने उत्तरमें कहा—'देवदेव महादेवजीने इसकी रचना की, पीछे समय पाकर इसे भवानीको सुनाया। फिर श्रीमुमुक्षुशिङ्गीको इसका उपदेश किया। मैंने जाकर श्रीमुमुक्षुशिङ्गीसे इसे प्राप्त किया और ऋषि-भरद्वाजजीको सुनाया।'।

इसप्रकार मुनिराजसे गुह्य रामचरितमानस-वचककी परम्परा सुनकर वे चरणोंमें पड़ गये, युगल मुनीश्वर बहुत प्रसन्न हुए। तब सावधानतापूर्वक युगल-मुनिवरोंका विमल संवाद उन्होंने श्रवण किया।

दूसरे दिन जब वे उस स्थानपर गये, तब उसे सुना पाया। न युगल मुनि थे, न वह बट छाँह और न पशुकुटी ही। वे विस्मयकी वादमें बह चले। अस्तु।

युगल मुनिवरोंके शील-स्वभावको स्मरण करते हुए वे वहाँसे चले। परन्तु भगवदिच्छासे काशीकी ओर निकल पड़े। कुछ दूर चले जानेपर उन्हें विदित हुआ कि मार्ग भूल गये। तब यह विचारने लगे कि अब क्या करें? लौट चलें या इसी मार्गका अवलम्बन करें? अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि जो हुआ सो हुआ, अब इसी मार्गसे चलें, काशीमें भगवान् शंकरका दर्शन करके श्रीश्रवण चले जायेंगे। यह सोचकर वे आगे बढ़े और चलते-चलते गंगा-तटपर पहुँचे। फिर किनारे-किनारे चलते रहे। जहाँ सन्ध्या हो जाती यहाँ टिक जाते। तदनन्तर वे वारिपुर और दिगपुरके बीच अवस्थित श्रीसीतामढ़ी पहुँचे। यहाँ आसन लगाते ही उनके चित्त-भूति केन्द्र-स्थूल हो गयी। न भूल, न ध्यास और न निद्रा। विचिन्त-की-सी दशा होगयी। साय ही उनके पूर्वजन्मके संस्कार जागृत हो उठे। यहाँ श्रीसीतामढ़ीके नीचे तीन दिन रह गये और कुछ सुन्दर कवित्त (जो श्रीकवितावलीमें वर्णित हैं) बनाकर, मानसिक-उद्गार निष्कास आगे बढ़े।

मार्गमें विन्ध्याचल (धुनारगढ़) के राजाको बन्दीगृहसे चुपचापे हुए मुनिराज (श्रीगोस्वामीजी) काशी पहुँचे। यहाँ महादेव-पाटण एक माण्डके घर टिके। अनन्तर उनके हृदयमें उमड़की तरंगें उमड़ीं और वे श्रीराम-चरितका बचन बनने लगे, परन्तु दिनमें रबी हुई कविता सावधानता पूर्वक सुरक्षित रखनेपर भी रातको छेप हो जाती थी।

प्रतिदिन यह छेप-क्रिया होती रही। इस कारण वे शरी चिन्तामें पड़े। क्या करना चाहिये, कुछ समझमें नहीं आता था। आश्रममें दिन श्रीमहादेवजीने स्वयंमें आना ही कि—'तुम अपनी मातृ-भायामें काव्य रचना करो।'। विदा भंग हुई और वे उठकर बैठ गये। मनमें बड़ी स्वप्नकी चरित्र गूँज रही थी। तत्पश्च भगवान् भूतनाथ भवानीजीसहित प्रकट होगये। गोसाईंजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिवजीने कहा—'तुम अपनी मातृ-भायामें काव्यकी रचना करो। देववाणी संस्कृतके पीछे क्यों पड़े हो? त्रिमं सत्का कल्याण हो, यही करना चाहिये। केवल पूर्व प्रया अपय रुद्धिका आदर करनेके नाते सबके कल्याणकी उपेक्षा बरत कोई बुद्धिमानकी कार्य नहीं है। अब तुम श्रीशयोन्वानीमें जाकर वास करो और वहाँ अपने काव्यकी रचना करो। मेरे प्रसादसे यह काव्य-रचना सामवेदकी ऋचाके समान सफल होगी।'।

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीवमा-महेश्वर अन्तर्हित हो गये। अपने भाग्यकी सराइना करते हुए मुनिराज श्रीशयोन्वानीपुरीके चले। जिस दिन वादगाही-वरातमें उदयसिंहको सम्मान प्राप्त हुआ, उसी दिन श्रीगोस्वामिनारायण श्रीश्रवण पहुँचे।

अपरान्हमें विमल श्रीसरयू-घाटमें स्नान करके सप्त-पुलिन, वन-धाटिका और वीथियोंमें विचरने लगे। एक सन्तसे भेंट हुई। वे कहने लगे—'चलिये श्रीहनुमान्गणेश निकट मैं आपकी एक सुरम्य स्थान दिखवाऊँ।' वे सन्त श्रीगोस्वामीजीको वहाँ ले गये और उन्होंने वर रमणीय-स्थल दिखलाया। उस स्थानपर सुन्दर क-वृष्टोंकी विटपावली थी। उन वृष्टोंमें एक सुशिखर क-वृष्ट था। उसकी जड़में एक सुन्दर वेदिका बनी हुई थी। जब वेदीपर ऋषिके समान तेजस्वी एक सुप्रतिष्ठ सिद्ध-सन्त सिद्धासनसे बैठे हुए थे। उस मनोहर स्थलको देतत्र गुमराईजीका मन लुभा गया। उनके मनमें यहाँ उडीर बनाए बरतनेकी इच्छा जागृत हुई। जब वे दरसते दरसते इन सिद्ध-सन्तके निकट पहुँचे तब उसने आसन पीछे कर जयकार किया और कहा—'मेरे गुरुने मुझे आशा दी थी और उसीके अनुसार मैंने यहाँ निवास किया था। श्रीगुरुदेवजीने इसका मार्ग भी मुझे यतलाया था और उने मैं आज अन्त देन रहा हूँ। श्रीगुरु भगवान्ने कहा था कि—'कुछ दिन पीछेनेर गोस्वामी तुलसीदासजी यहाँ आकर श्रीरामचरित

वर्ष न करेंगे। वे आदिक्वि श्रीधामकीजिजीके अवतार होंगे और श्रीधामवन्दुमाजीकी सहायतासे वे यह महान् कार्य करेंगे। यही जानकर राजराज कुबेरे इस स्थानपर घट-वृच लगाकर इसकी सर्वोत्तम मर्यादा बाँध दी है। धब धू मेरी आज्ञा मानकर इस स्थानको परिष्कृत करके यहाँ भजन कर। जब इस स्थानपर गोस्वामीजी उस महान् कार्यके लिये धार्य, तप कुटी और धासन उन्हें सौंपकर तन त्याग करके मेरे पास चले धाना।' सुस्तीका उपदेश सुनके चण्डा लगा और मेरेमनेक जन्मावित पुण्यका उद्व हो गया। यहाँ निवास करके, यहाँके सुखका धनुभव करते हुए तपत्या-पूर्वक मैं आपके आगमनकी याद देख रहा था। अतएव हे स्वामी! आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। धय मैं अपने सुखके पास जाता हूँ।'

ऐसा कहकर वे सिद्ध सन्त वेदिकसे उत्तर पड़े और नमन करते हुए ऊँच दूर भागे चले गये। वे यहाँ धासन लगाकर प्यानावस्थित हो गये और योगाग्निके द्वारा अपने शरीरको भस्म करके परम धामको चले गये। इस लीलाको देखकर गुसाईंजीने कहा—'हे धनुर्धर! तेरी यजिहारी है।'

गुसाईंजी सुख-सुपास पाकर वहाँ बस गये। हृद संयमपूर्वक समय बिताने लगे। एक समय योजना-सा दूष भी लिया करते थे। उन्हें केवल श्रीरघुनायजीका भरोसा था और किसीका भी दर नहीं था। इस तरह दो वर्ष बीत गये, परन्तु उनकी वृत्ति नहीं डिंगी और संवत् १६३१ का धारम्भ हो गया।

ग्रेला-युगमें श्रीराम-जन्मकी तिथिपर जो प्रह, राशि, लग्न, योग ध्यादि पड़े थे, ठीक यही संवत् १६३१ की राम-जन्मको भी पड़े। उस दिन प्रातःकाल भौमवारको

श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए और संसारके कल्याणके निमित्त सबसे पहले उन्होंने गोस्वामीजीको अभिषिक्त किया। अनन्तर उमा-भद्रेश्वर, गणेशजी, सरस्वतीजी, नारदजी, शंभुजी, सूर्यभगवान्, शुक्राचार्य और बृहस्पतिजीने मंगल-मय आशीर्वाद दिये। इस विधिसे विमल रामचरितमानस-का धारम्भ हुआ। जिसके श्रवण करनेसे मद्, दग्भ, कामादि समस्त विकार और सब प्रकारके संशय मिट जाते हैं।

दो वर्ष सात महीने और छव्वीस दिनोंमें धर्मात् सं० १६३३ के मार्गशीर्ष मासमें श्रीराम-विवाहके दिन भवसागरसे पार उतरनेके लिये सात बह्नाज धनकर तैयार हो गये। पाल् उ-प्रपञ्चको दूर यहाँने, पवित्र सात्त्विक धर्मके चलाने, कलिकालके पाप-कलापका नाश करने, हरिभक्तिकी छटा दिखलाने, मतमतान्तरके दादविवादको मिटाने, प्रेम-पाठ पढ़ाने, सन्तोंके चित्तमें भजनकी लगन उत्पन्न करने, सज्जनोंके हृदयमें प्रमोद धराने, 'हरि-भक्ति शिवजीके हाथमें है'—इस रहस्यको समझाने और वैदिक भक्ति-मार्गको सुझानेके लिये सप्त सोपान-युक्त दिव्य सदग्रन्थ बनकर तैयार हो गया। भौमधारको मन्थाहूके समय 'शुभमिति'-'हरिः ॐ तस्यैव' लिखा गया धर्मात् ग्रन्थ समाप्त हुआ। देवताओंने जयजयकारकी ध्वनि की और फूल धरसाये।

वास्तवमें यह ग्रन्थ तो उसी दिन बनकर तैयार हो गया था जिस दिन इतका धारम्भ हुआ था, परन्तु मनुष्यकी निर्वल लेखनीने उसे लिखनेमें इतने दिन लगा दिये।

श्रीगणेशजीने उसी समय इस ग्रन्थकी पाँच प्रतिपाँ दिव्य लेखनीसे लिखकर तैयार की और वेतस्काळ सत्यलोक, कैलाश, नागलोक, सुलोक एवं दिग्पाललोकमें पहुँचल

\* इस सप्तम्वमें स्वयं बलीक साहबने सुखें श्रीअरभमें यह कहा था कि—'वचपि श्रीगोस्वामीजीके परम कृपापात्र राजा श्वेतेगीमाधवजीका लेख सर्वथा प्रामाणिक माननीय है, किन्तु फिर भी इस विषयमें जब तब मेरे हृदयमें सन्देहाग्रस हो जाता था। परमात्माको धन्यवाद है कि अब यह निपट दूर हो गया। बात यह हुई कि श्रीरामान् नौलकण्ठीनी (जो मेरे परम मित्र हैं और श्रीरामायणजीके अनन्य प्रेमी हैं) ने स्वयं निज मुखसे सुखसे कहा, कि—'प्रायः मेरी सहाय्यी खीवी मेरे पद वर्ष हो चुका था। एक रात्रि मैंने स्वप्नमें उसे दिव्यलोकमें देखा। वह मेरा हाथ पकड़कर अपने स्थानमें ले गया। वहाँकी अद्वैतिक रचना देख मैं विस्मित और चकित हो गया। मैंने कहा तुम्हें परम दिव्यलोक प्राप्त हुआ। यह बड़े सुखकी बात हुई। किन्तु वह तो करो वहाँ भी कुछ भजन होता है। उमने दिव्यशक्तिमें लिखें तुम्हें श्रीगोस्वामीकृत श्रीरामायणजी दिलसायी और कहा—'यही इमारा हृद है। हम सब इसकी उपासना करते हैं। ब्रह्मणेशजीने, हम वहाँ भेजा है।' मैंने बड़े ही आश्चर्य व ध्यानमें मग्न था। मेरा खिने कहा कि 'तुम भी यहाँ अगुक्त समयमें आओगे।' इस स्वप्नको सुनकर और नौलकण्ठीनीकी निर्धारित पत्रपत्र-वाचासे देखकर ही बकीरानाहक यह सन्देश दूर हो गया था।

# रामायणमें हिन्दू-संस्कृति

(लेखक—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')



द्वारास-प्रान्तके लक्ष्मणसिंह विद्वान् और वक्त्र श्रीयुत शिवस्वामी पेरने एक बार अपने एक प्रसिद्ध व्याख्यानोंमें कहा था, 'हमारा राज्य छिन जाये, ऐश्वर्य धूलमें मिले, विभव पददलित हो, समस्त सम्पत्ति हर ली जाये, हम सर्व प्रकार निःसम्बल हो जावें, सर्वस्व गँवा

हैं, तो भी हम निःस्व नहोंगे, यदि रामायण और महाभारत-जैसे हमारे ऐतौकिक रत्न सुरक्षित रह सकें।' इस कथनका रहस्य क्या है ? याम्बमें बात यह है कि जातिकी संस्कृति ही उसका जीवनसर्वस्व होती है। कोई जाति अपनी संस्कृति खोकर जीवित नहीं रह सकती, संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे जाति-जीवनका विशाल प्रासाद निर्मित होता है। जिस दिन यह आधारशिला स्थानरपुन होगी, उसी दिन पुष्ट्ये पुष्ट प्रासाद भी भट्टरा पड़ेगा। संग्राममें कुछ निर्जीव जातिपाँ अथ भी जीवित हैं, किन्तु अपनी संस्कृतिकों खोकर वे ऋषट्गल-प्राण्य हैं, उनको मरी ही समझिये, चाहे धान भैं, चाहे कज्र। कारण यह है कि संस्कृति ही किसी जातिके अस्तित्वका पना देती है, वही वह किन्हे है, जो उसके पूर्वगीरप, महान् आदर्श, और लोकोलर कार्यकलापशाता संग्रामकी अल्प जातियोंसे उत्पन्नः पृथक् करना है। जिन समय चारों ओर अल्पकार होनेके कारण वह अल्पजिन-गर्तकी ओर अग्रसर होनी रहती है, उस समय वगीके आलोचने आलोचिन होकर वह अल्प अथ अल्प करती है, और उस समुहनि सोचानर चरने लगती है, जो उसको अल्पनके समुच्च शिखरपर आरत कर देता है। भारतमें बहन, लक, हृष आदि वरी वरी बहकार अतिवर्त आनीं। राम ब्राह्मण बह सुगममान अति अल्पो, जिनके अरु रामय दिसा, वरी अपने चरकी वर दिव्य-मुकुटी बहारी, जिनके हात देवका देश उनके चरमें संदिश हो गया। किन्तु रामायण और महाभारत-का रचिक संस्कृतिके अल्पे दिव्य-चर आर भी अतिवर्त है, ही वरी, उतने वररी वर अरुचिक अल्प है कि जिनके बहने संसार-रिष, वरी अल्प भी

डुकड़े डुकड़े हो गयी। जिस समय भारतव्यापी मुसलमान साम्राज्य उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा था, और उसकी गुरुवर्षसे भारत-धनुषधरा कल्पित हो रही थी। जब यह अवगत हो रहा था, कि अथ भारतीयताकी समाप्ति हो जाणी, हिन्दू-धर्म विलुप्त हो जायगा, हिन्दू-जाति नाम-रूप रर जायगी, और भारतभूमिका अपार विभव मुसलमान जातिके विशाल उदरमें समा जायगा। उस समय कतिपय महान् आत्माओंमें कुछ ऐसी संस्कृति जागृत हुई, जिनोंने भारतवर्षकी वाधा ही नहीं पलट दी, हिन्दू-जातिअ पुनरुज्जीवन भी कर दिया, यह बात इतिहास जाननेवालोंमें अविविदित नहीं। यह कौन संस्कृति थी ? वही रामायण और महाभारतकी। उस रामायण और महाभारतकी जो हिन्दू संस्कृतियोंके भाष्यकार हैं। मैं समझता हूँ, जब रामायण-प्रान्तके विद्वान्के कथनका रहस्य आप लोगोंकी समझमें आ गया होगा।

भारतमें समय समयपर विभिन्न विचारके बने बने प्रवाह आये, कुछ काजतक उनके प्रवृत्त वेगके सामने बर आत्मविसर्जन करता दिखलायी पया, परन्तु उनके वैरीश पाँव स्थानरपुन कभी नहीं हुआ। वह राम सैमका, और अपनी भारतीयता-धारामें उसने सबको वीजिन कर दिया। उसकी महान् संस्कृति ही उसकी इस एकप्रताका कारण है। कविद्वय पुंगव वाचमीकीकी महिमाअपी खेजनी शिव प्रकार इन चार्य संस्कृतियोंका उल्लेख अल्प हुई है, वगी प्रकार गोरामी तुलसीदासकी कलाअपी कीर्तनामें भी उनका अलौकिक चमत्कार दृष्टिगत होता है। गोरामीजीकी बर्णन सामयिकता जिये है, इतिहसे उन्हींके रामायणके पुन देनी संस्कृतियोंका बर्णन नहीं किया जाना है जो हमारे सामाजिक जीवनकी सर्वांगीण शक्तिवरी करी जा सकनी हैं। गोवामीजीकी रामायण चार्यव्यथा और संस्कृतिका अलौकिक बर्णन है, अरु देविये, वरी उनकी खेजनी, हण विषयमें वरी ही मार्मिकतामें बहनी दिव्यवणी बहती है। उनकी आत्मक-का मेरे मेरे, अने अने प्रकार बर्णो है ? इतिहसे, कि हिन्दू अल्प जिन आदर्शोंका देनकर पुनरुज्जिन होता है, रर आदर्शोंका अल्पिन और अल्पिन बनता है, उतमें उन्हीं आरुती और आरुती बहा हो अल्पवरी विषय है। गोवामीजीकी

श्रीसीता-राम



श्रीरामः सीतायाः सखी । सीतायाः सखी श्रीरामः ।



लेखनीका चमत्कार यही है, कि वह मूर्तिमन्त धार्यसंस्कृति है, यह मूर्तिमन्त कहीं कहीं इतनी मनोहर और सुन्दर है, इतनी प्राञ्जल और सरस है, कि उसकी मर्मांसा नहीं हो सकती। उनकी अद्भुत रचनाओंके पहले समय कभी कभी इतनी सन्मयता हो जाती है, कि ब्रह्मानन्द-सुलका अनुभव होने लगता है। यही कविता मर्मस्पर्शिणी होती है, जिसमें वे ही रस्य सुन्दरतासे सामने आते हैं, जिनको हम प्रायः देखते रहते, अथवा जिनका अनुभव प्रतिदिन करते रहते हैं, गोस्वामीजी इसी प्रकारकी कविताओंके आचार्य हैं। वे न तो 'ल' पुल्लिङ्गके हैं, न अग्रम अग्रे परका व्यापार करते हैं, न अक्षरमें आसक्त-निर्माण ही। वे मानवचरित्रमें ही आत्माकी महत्ताका प्रदर्शन करते हैं, और नित्यके कार्य-कलापमें ही 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'की कल्पना। इसीलिये वे जो कुछ कहते हैं, उनको हृदय स्वीकार कर लेता है, कुछ इसी प्रकारकी कृतियाँ आपके सामने उपस्थित की जाती हैं।

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर भगवान् धीरामचन्द्र बन-पात्राके लिये प्रस्तुत हैं, भीमती कौरवपादवीकी सेवामें उपस्थित होकर उनसे अनुनय-विनय कर रहे हैं, इसी समय अविद्युद्भव विदेह-नन्दिनी यहाँ आयीं। गोस्वामीजी लिखते हैं—

समाचार तेरि समय सुनि सीप उठी अनुकार ।  
जाइ सासु-पद-कमल-युग बंदि बैठि सिध नाइ ॥

दोहके द्वितीय भागमें कुञ्जललाकी कितनी मर्यादा-शीलता अंकित हुई है, यह अविदित नहीं। भगवती जानकी सीधे आकर भगवान् रामचन्द्रके सामने नहीं खड़ी हो गयीं, उन्होंने कथोपकथन नहीं प्रारम्भ किया, क्यों ? इसलिये कि इससे भीमती कौरवपादवीका तिरस्कार होता। धार्य-जातिकी यह संस्कृति है, कि यहाँकी उपस्थितिमें बहुतेरे खजा स्थावर पतिते सगमाप्य नहीं करतीं, उनसे बातचीत तक नहीं। आज भी कुञ्जनोंमें यह परम्परा प्रचलित है। फिर आदर्श गृहिणी सीतादेवी ऐसा क्यों करती ? वे आयीं और सासकी चरख-बन्दना करके, सिर नीचा काके बैठ गयीं, कितना सबज भाव है। 'बैठि सिध नाइ' लिखकर गोस्वामीजीने जो भात्मिकता दिखवायी है, यही उनकी विशेषता है। यह 'बैठि सिध नाइ' आजकीजीके हृदयका प्रतिबिम्ब है। इस कार्यद्वारा उन्होंने अपनी मर्यादाशीलता, अपनी आडम्बरता, और अपनी अशक्तताको प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि दिखलाकर सहायताकी निष्ठा भी दर्शायी। सरस है कि आजकलकी शिष्टता

जलनाएँ, इसको पराधीनताकी कुसित बेनी समझें, जिनसे यह मर्यादाशीलताकी वह मौखिक माला है, जिसको धारणकर प्रत्येक कुल-यात्राकी अपूर्व शोभा हो सकती है। धार्यसंस्कृतियाँ अत्यन्त उदार हैं, उनमें स्वार्थपरताका उतना स्थान नहीं, जितना सदाशयताका। वह अपने सुख-विलासमें ही जीवनकी सार्थकता नहीं समझतीं, वह तभी कृतकृत्य होती हैं, जब गुरुजन, धार्मीयजन, अथवा अन्य उपकार-का मुक्त जनोंकी सेवाकर भ्राम्य-उत्सर्ग कर पाती हैं। वे उच्चहृलता एवं निर्लज्जतासे मर्यादाशीलताको, और संकीर्ण हृदयता एवं मदान्धतासे सद्बुद्धताको उच्च समझती हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें ऐसे आदेश हैं, कि जिनसे इसप्रकारके संस्कारोंका उदय हो।—कुण्ठ नीचे लिखे जाते हैं—

अभिवादनशीलस्य मित्वं वृद्धोपसेवितः ।

अत्यारि तस्य बर्द्धन्ते आयुर्विधायशोभकम् ॥

भगवान् मनु कहते हैं—

जो अभिवादनशील और नित्य बुद्धसेवा-त्तरण हैं, उनकी आयु बढ़ती है, और उन्हें विद्या, धन और बल प्राप्त होता है।

विवाहकालके समय ससुरादीनों की यह प्रतिज्ञा करती है—

कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा ते मन्जुभाषिणी ।

दुःखे शोरा सुखे हृष्टाः द्वितीये सा जनीद्वयः ॥

कुटुम्बकी रक्षा करूँगी, सदा मधुरभाषिणी रहूँगी, दुःखमें धीर और सुखमें भ्रान्तित रहूँगी।

(१) गुरुकु सखिषु मृत्ये मनुष्यमं च मृत्युर्मयं गतमद-  
माया वरंयेत् इति यथाहम्—

(२) मायैकचारिणी मृदयिभ्रमादेववत्पतिमातृकृत्येन  
वर्तेत, तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामाम्रमनि साधियेशयेत् ।

(३) भद्रमधुरपरिचर्यां तत् पारतन्त्र्यमनुसरवादिता-  
परिमिता प्रचण्डलापकरणमनुषैरहासः तत् प्रियाप्रियेभु स्वप्रिया-  
प्रियीष्वेव वृत्तिः । ( बालमानन )

(१) पतिते, गुरुते, सखिवासं और मनुष्यमं एवं सेवकोंसे निरभिमान रहकर यथायोग्य वर्तव्य करे।

(२) भावोंको आहिये, पतिको देवता-समान जाने, उसकी हृदयके अनुकूल जीवन व्यतीत करे और उसकी सम्मतिके अनुसार कुटुम्बीजनकी चिन्तामें लीन रहे।

(३) कुलवर्ष सास-ससुरकी सेवा करे, उनकी आज्ञा-  
में रहे, उनकी परतन्त्र बने, उनकी बातोंका जवाब न दे,

मिष्ट भाषण करे, जोरसे न हँसे। उनके प्रिय धर्मियको धरने मिय-धर्मियके समान समझे।

जिस समय धीमती जनकनन्दिनी सिर नीचा करके चरणोंके समीप बैठ गयीं—उस समय—

दीन्हि असिस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥

इस पद्यमें यथावसर 'मृदुबानी' शब्दका कितना सुन्दर प्रयोग है। यदि दोहेका 'पद-कमल बंदि वैठि सिल्-नाह' श्रीमती जानकीके विनय-नम्र हृदयका सूचक है, तो यह 'मृदुबानी' शब्द कौरव्यादेवीके कोमल वासन्त्यपूर्ण हृदयका परिचायक। इसके उपरान्त धीमती कौरव्यादेवीके हृदयकी क्या अवस्था हुई, इसकी सूचना यह श्रद्धाली देती है 'अति सुकुमारि देखि अकुलानी' कितनी स्वभाविकता है! वे कितना शीघ्र अपनी पुत्रवधुके हृदयमें प्रवेश कर गयीं। धीजानकीनी सासके समीप सिर नीचा करके बैठ तो गयीं, परन्तु मुहँ न खुला, ये कुछ कह न सकीं, कैसे कहतीं, संकोचने खब बन्द कर रखना था। यही नहीं, हृदयमें दुःखकी एक विपित्र धनधोर घटा उठ रही थी, ये सोच रही थी—

वैठि नमिन मुस सोचति सीना। रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता ॥

जहन चहत्त बन जीवननाथु। केदि मुकतीसन होएदि सायु ॥

कीतनु प्रान कि केरत प्रता। विधि करतव कतु जाइन जाना ॥

चाप चरन-नख देखिदि घरनी।

देना चाहने, सामयिक व्यवस्थाकी कितनी सुन्दर बच'ना है?—'वैठि नमिन मुस' से 'चाप चरन नख खेसति घरनी' तक केने भावमय शब्द-विन्यास हैं, उनके धीमती कावचीदेवीकी संकोचमय दशा, उनके विन्ता-नाश्र, उनके ल विचार, ललित प्रेम आधारित किना सुन्दर प्रकाश करता है। हृदयमें जो घटा घूमने उठ रही थी, नेत्रोंके लहारे पर बरस भी बही-गोस्तामीकीने खिला—

मंतु विवेचन कोचति बनी—

कीलक्यादेवी चरणे ही मय मयक गयी थीं, नेत्रोंके लहरे लहरे और चारों तरफि, हृदयके दुमरी चारोंकी को बिली लगी—

देने देखि चरनरजनी ॥

'रसकलागी' का किना सार्थक रूपण है—पुनरा-कल्पन को कल्पि हूषा ही, धरत ही लहके ही कल्प कल्प हृदयकीलना की लहके विदिन हुई। अन्तरी लप होई, अब लहके की मुदिने—

तत सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर-परजनहिं सिनारी।

पिता जनक मूपाळ-मनि, ससुर मानु-कुल-भनु।

पति रविकुल-कैरव विपिन विधु-गुन-रूप निवतु ॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाईं। रूप-रासि गुन सीउ हुईं ॥

नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाईं। राखेईं प्रान जनकिदि रईं ॥

कल्पवेदि जिमि बहु विधि लारी। सीचि सेनेहसैलिक प्रीति लारी ॥

पूळत फळत मयेठ विधि बामा। जानि न जाइ काह परिनना ॥

पलंगपीठ तजि गोद हिंदोरा। सिय न दीन्ह पु अवि कजेरा ॥

मिअनमूरि जिमि जोगवतरहेऊं। दीपनाति नहिं टारन बरेईं ॥

सोद सियचलन चहति बन साया। आयसु काह होइ सुजाया ॥

चंद-किरन रस-रसिक चकोरी। रविरेख नयन सके किमि मेरी ॥

करि, केहरि, निसिचर चरदि दुष्ट-जंतु बन मुरी।

विचनारिका कि सोह सुत सुमम सजीवन-मुरी ॥

बनहित कोळ किरत किसोरी। रची निरंधि विचन-सुस-मुरी ॥

पाहन कृमि जिमि कठिन सुमाऊ। सिन्हदि कलेसु न कान काऊ ॥

के तापसतिय काननजोगु। जिन्ह तप हेतु तमा सब भोगु ॥

सिय बन बसिदि तात कंदि भोती। विचरतिमित करि देखि देती ॥

सुर-सर-सुमम बनज-बन-चारी। बानर-जोग कि हेतुकारी ॥

अस विचारि जस आयसु होई। मैं सिस देईं जानीबिदि लोई ॥

जो सिय भवन रहे कह अंबा। मोदि कहं होइ बनु बरदाबा ॥

धीमती कौरव्यादेवी चादरों माता ही गयीं, चादरों

छात भी हैं। सामका पतोहके प्रति वह सदा और ललित

लौह को गृहको स्वर्ण बनाता है, गार्हस्थ्य धर्मको उषा

उद्गमको गुण-शान्तिमय कर देता है, वे अस्ती मूर्ति की

भावमय शक्तियोंमें उनके हृदयका प्रेम जिन प्रकार ललित

हूषा है, वह बड़ा ही शारीर, बरदा एवं शरत्त है।

'नयनपुत्रि करि प्रीति बढ़ाईं। राखेईं मान जनकिदि रईं।

कल्पवेदि जिमि बहु विधि लारी। सीचि सेनेहसैलिक प्रीति लारी।

मिअनमूरि जिमि जोगवतरहेऊं। दीपनाति नहिं टारन बरेईं ॥

इस संश्लेषमें किनाकी ममता भरी है, अपने जिन

चारभाष और चार है, किना प्रेम और कल्पना है।

किनाकी कल्या और प्रकाशीयता है, क्या वह कल्पना

होगा? कौन सहज है, जो इन भावोंको हृदयमें एकत्र

न पावेगा। जब कौरव्यादेवी बहती हैं, 'नयनपुत्रि' का

सोच विदेव। सिय न दीन्ह पु अवि कजेरा ॥

किराज किराजों । रवी विरंचि विषय-सुख-मेरी ॥ कै तापत-  
 निव धाननभोग् । जिह उपहेतु तमा सव भोग् ॥ शिव बन  
 बसिह ताव केह भोंती । विपणिलिन कपि देखि देवती ।'  
 तब जानकी देवीकी सरलता, कोमलता, उनके स्वभावका  
 भोजापन, और उनकी भीरु प्रकृति झाँझोंके सामने फिर  
 जाती है, साथ ही हृदयमें एक ऐसी वेदना होने लगती है,  
 जो पिताको विद्वह कर देती है । यदि कौरव्यादेवी  
 सीताजीका मुँह न जोहती रहतीं, उनके सुलसे रहनेका  
 ध्यान न रखती होतीं, तो उनके सुलसे इस तरहकी बातें  
 न निकलतीं । इन पंक्तियोंमें उनकी ध्यया ही मूर्तिमन्त  
 होकर विराजमान नहीं है, उनकी यह धाम्ना भी मलक रही  
 है, जो पुत्रवधके साधारण झंझोंको देखकर भी विचलित  
 होती है । 'चंद्र-किरण-रह-नासिक चंद्रां । रविरज नवन  
 नकै विमि जोरी । सुर-मर-सुमग बनन-नन-नारी । दार-जोग  
 कि हसकुमारी ॥ विषकाठिका कि सोह सुन सुमग सजीवन-भूरि ॥'  
 किसी पुत्र-वधके पथमें अपने पुत्रसे कोई सास इससे अधिक  
 और इससे उलमतासे क्या कह सकती है ? इन पंक्तियोंमें  
 एक कुल-बाधाका हृदय खोलकर उसके प्रियतमको  
 दिसाया गया है, और साथ ही यह भी सूचित किया  
 गया है, कि एक पति-मायाके वियोग-विधुरा बननेपर उसका  
 जीवन कैसा संकटापन्न हो सकता है । इनमें कौरव्यादेवी-  
 की गम्भीरता जितनी सुन्दरतासे स्फुरित हुई है उतनी ही  
 उनकी भायुक्ता, सहृदयता, और मार्मिकता भी । एक  
 ओर वे पुत्र-वधकी गम्भीर मनोवेदना, उसकी वन-गमनकी  
 प्रसमर्थता आदिका धारण इयाती हैं, और दूसरी ओर  
 पुत्रकी झल्लें सोलती हैं, और उसे उचित कर्तव्यके लिये  
 साधनान काती हैं । ऐसे अवसरपर वे अपने उत्तरदायित्वकी  
 भी नहीं भूलतीं, वे पुत्रके महादुःखोंमें, उनके कर्त्तव्यमें  
 संकोटों और ईश्वरविपाकको समझती हैं ।

अतएव यह भासा नहीं देनी, कि अपनी कोकी धररव  
 स्थाप केते काधो, केवल इतना ही कहनी है—

सोए शिव चरन चहनि बन साया । आयु काइ होर ह्युताया ॥  
 अत विचरि जत आयमु होरें । मै शिख देउं जनकिहि होरें ॥  
 फिर स्वयंभू और विरटकायता होकर वह कह परती हैं—  
 जो शिव मयन रहै कह संवा । सोई कहैं होर बहुत अरतवा ॥  
 वह अन्तिम पद्य उनके व्ययामक आन्तरिक भावका  
 सूचक है, पुत्र काय तो काय, किन्तु बिनपरीका पुत्रवधको

वह नहीं त्यागना चाहतीं । फिर भी कलेजेपर पथर रख-  
 कर उन्होंने धाम्मुखको तिलाजलि दी, और जानकी-  
 देवीकी मर्म-न्ययाओंकी ही मरहम-पट्टी करनेकी पूरी चेष्टा  
 की; यही है उनकी महत्ता और महानुभावता, यही 'राम-  
 महतारी' पदकी पूरी सार्थकता हुई । धार्यसंस्कृतिकी ही  
 यह उदात्त कल्पना है, और धार्यसंस्कृतिका ही है यह अपूर्व  
 प्रादुर्भ ।

आजकल सासकी बड़ी कुस्ता हो रही है, उसे मानवी  
 नहीं जानवी कहा जाता है । पुत्र-वधुओंका चले तो वे  
 उनका गला घोट दें, पर क्या करें, कई कार्योंसे विवरा हैं ।  
 फिर भी उनके विरुद्ध खेवनी धूमसे चल रही है, अधिकांश  
 पत्र-पत्रिकाओंमें वे यद्दे अल्पे शब्दोंमें क्राण्य की जाती हैं ।  
 यह वर्त्तमानकालिक कुछ धाम्दोखनोंका फल है, गुरुजनों-  
 से सब प्रकारकी स्वतन्त्रता साम करना ही कतिपय नम्य-  
 चादिपोंका मत है, उन्हींके झापों जहाँ माता-पिताकी क्षीण-  
 खेदर हो रही है, वहाँ स्वधूदेवीकी भी । मेरा निवेदन है कि  
 जितनी नवज्योतिर्मयी पुत्रवधुएँ हैं, क्या वे विशुद्ध दूधकी  
 चुन्नी, और साफ सुथरी हैं, और जितनी संसारकी कालिमाएँ  
 हैं, वे सासोंके मुँहपर ही पुनी हुई हैं ? कदापि नहीं,  
 अभी भी धार्यसंस्कृति जीवित है, भारतवर्षकी अधिकांश  
 कुल-खलनाएँ धाम भी उसीके शासनमें हैं । नगरोंमें  
 विशेषकर ग्रामोंमें अभी अनेक सास-वधुएँ ऐसी हैं,  
 जिनको हम मूर्तिमती कौरव्या और जानकी न कह सकें  
 तो मानवी तो अवश्य कह सकते हैं । उन्हींके पुत्रवधतापसे  
 धाम भी भारतमाताका मुग्य उग्गल है, मेरा विश्वास  
 है, सदाही उग्गल रहेगा, क्योंकि 'सन्धेने नये नामान्' ।  
 मैं यह नहीं कहता कि कुछ सासों नहीं हैं, हैं, अथवा हैं, किन्तु  
 जहाँ दो चार दुष्ट हैं, वहाँ दण्ड पर्वन भली भी है । कुस्ता  
 करने समय भली सासोंको बर्षों भुला दिया जाता है ?  
 कारण रहता काय जो धाम वधुएँ हैं, अथवा वे भी माय होंगी ।  
 मेरा विश्वास है कि सास भली होनेके लिये पुत्रवधका भी  
 भली होना धारवश्यक है । बिना कारण कोई छिन्नीकी नहीं  
 सनाता, सनातेके कारण होने चाहिये । फल बीजका  
 परिणाम होता है । बिना बुनीय कोये कुम्भ नहीं फल  
 सकता । हाकी होमों हायोंने बजनी है । पत्नी ह्य-  
 का आदर करेगी, जो कोई कारण नहीं है कि सास बरदा  
 खेकर सीपी हो । एवच्छाह बर्षों नहीं होना, किन्तु तैमाह-  
 नेये ही सब वैमल्य काग है, कतायेने विपरी काज भी  
 बन जागी है । सहिष्णुता और धमा बही चोत्र है,



• श्रीरामचन्द्र शरण प्रपद्ये •

सेवा और धामोत्सर्गसे पथर भी पिघल जाना है। भगवान् करे, घर घर श्रीमती को राप्या वीली सास और श्रीमती जानकी की वीली पुत्रपुत्रों दित्तजायी पर्व, त्रिदत्ते इमारे पवित्र गृहोंमें पाश्चाय कसुपिन प्रभावोंका पदार्पण न हो सके ।

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्योंका शर्त है। साहस तु विगुन्मत्ता गौरवगतिरिच्छते

माताकी पातें सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्र चिन्तित हुए, पहले तो थियेकमय पथन कहकर उन्होंने उनको राममाया, दूसरे उपरान्त धानकीजीसे हुए कहना चाहा, परन्तु मर्यादा बाधक हुई, माताका संकोच हुआ, किन्तु समय देखकर उन्हें उनसे कुछ कहना ही पड़ा, गोस्वामीजी लिखते हैं—

माता, पिता और आचार्य देवता हैं। माता देवता है। जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी अधिको संपत्तोपस्कर, दूध, दूध और धर्म-धर्म-पात्र होना चाहिये। पतिमें रत रहकर सदा सास-ससुराओं से करना उसका धर्म है। उपाध्यायसे दृश्युष आचार्य आचार्यसे शतगुण पिताका, और पितासे सहस्रगुण माताका है।

मातु सर्माप करत ससुचाही। बोलें समत ससुप्ति मन माहों। भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम हैं, परन्तु प्रपञ्च कालसे उनकी भी न खली। श्रीमती जानकीदेवीसे उन्होंने जो कहा, उसे सुनिये—

इस प्रधान धर्मको छोड़ा देनेके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्र उनकी भयङ्करताओं और बर्हाकी कसुपेचाप्रतिष्ठा वगैरे ही बिराद धर्यन किया है, पाठक रामायणमें उसके देव सकते हैं। अधिकार धर्यन यद्वा ही भावमय और सुखा है, कवित्व तो उसमें कूट-कूटकर मारा है—इत

राजकुमारि सिसावन सुनहू। आन माँति जिय अनि कष्टु गुनहू ॥ आपन मोर नीक जो चहहू। बचन हमार मानि गूर रहहू ॥ आयसु मोरि सास-सेवकाई। सब निधि भामिनि भवन भलाई ॥ पहिले अधिक धरमनाहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥

हरपदि धीर गहन सुधि आय। मृगजोचनि तुम्ह मीरुहुमार हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपनसु मोहिं देहादिदेवू ॥ मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिन्द किलवनवयोपिमरती ॥ नव-रसाल-वन विहरनसीला। सोह कि कोहिल सिपिन करिष्या ॥

वन जब मातु कराहिं सुधि मोरी। होइहि प्रेम-बिकल मक्षिगोरी ॥ तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुसायेहु मृदुबानी ॥ कही सुमाय सपय सत मोही। सुमुखि मातुहित राखौ तोही ॥ कैसी उचित और भाँतिक बातें हैं, भगवान् रामचन्द्र के विनय-मन्त्र और मर्यादाशील पुत्रके मुखसे दूसरी कौन निकलती? उन्होंने यह भी कहा, जो कुछ मैं कह रहा हूँ तुम्ह पूर्व श्रुति-सम्मत है, अतएव इस धर्म-फलको, कष्टका अनुभव किये लाभ करना चाहिये—

इन पंक्तियोंमें कितनी स्वामाधिकता और भावुकता है, सदृश्यजन स्वयं उसका अनुभव करें। कुछ प्राशङ्क विहाय मत है कि श्रीमती जनकानन्दिनीका चरित्र जिस रूपमें माता कविपंनि संकित किया है, वह कल्पित है, उसमें वास्तविकता खोरा नहीं। 'उनपर विपत्तिका पहाड़ दूट पड़ता है, परन्तु इन अवस्थायें भी उनको कुछ कहते नहीं देखा जाता, शायद तो है उनके मुखमें जीभ ही नहीं, या किसीने उनके मुखत सुहर लगा दी है। वह बड़ेसे बड़ा दुःख सह लेती है, लाल उरु भी नहीं कारती। बस दूट पड़ता है, किन्तु रिझती तक नहीं। ऐसी प्रस्तर-प्रतिमा हो सकती है, कोई भी पारिषी नहीं।' ऐसी ही ऐसी वर्तनार्थं करके, वे रिजने फफोले फोड़ते हैं, और इसप्रकारकी और किन्ती ही कटपटांग बातें कहते रहते हैं। वास्तव बात यह है कि जिस वातावरणमें उनके हृदयका विकास हुआ है, जो एक उनके नेत्रोंके सामने उपस्थित होते रहते हैं, कलि-कलने जिस पारस्परिक व्यवहारोंका उनको अनुभव है, ऐसी ही उनको विचारपरम्परा और मननशीली है। बोलती

कहता है—'प्रत्यक्षदेवतामाता' 'जननी जन्म-भूमिश्च कर्माक्षरणी' 'जननी जन्म-भूमिश्च कर्माक्षरणी' 'जननी जन्म-भूमिश्च कर्माक्षरणी'

मन्दरा: दया: दया व्यवपराह्मुक्षी।  
कसुपयो: पादवन्दनं मनुदत्तया ॥  
(पाठवत्कथ)

छियोंमें आत्मपरायणता अधिक होती है। वे उतनी पति-प्रेमिका, और स्नेहमयी नहीं होतीं, जितनी पश्चिमा विरोधतः भारतकी कुल-अलनार्थ होती हैं। वे पतिपरायणा सभीतक रहती हैं, अथवा उनके स्वार्थकी पूर्ति होती रहती है, स्वार्थमें भ्याघात उपस्थित होनेपर वे तत्काल उनके स्वयं देती हैं, आश्रयक यह प्रवृत्ति बहुत ही प्रबल हो गयी है। पतिकी आज्ञामें रहना, उनकी सेवाके लिये आत्मोत्सर्ग करना, उनकी दृष्टिमें आत्मविक्रम है। विवाह-अन्यत्र उनकी दृष्टिमें उतना पवित्र नहीं, वे बातकी बातमें उसे तोड़ सकती हैं। उनका स्वभाव उग्र, अस्वयत्न, और प्रायः अशुभ खल होता है, इसप्रकारकी प्रवृत्तिको वे तेजस्विता कहती हैं। उनकी स्वतन्त्रताकी क्षमना इतनी सीध होती है, कि पतिके सामने यदि थोड़ा भी झुकना पड़े, तो वे उसे परतन्त्रता मान बैठती हैं। जिस देश, जिस समाजके ऐसे आदर्श हों, उस देश और समाजमें पला, यदि सीता-देवीकी अधिक भीर, गम्भीर, संयत, आत्मत्यागकी मूर्ति, और पति-प्राया देवकर उनके विषयमें तथाकथित विचार प्रकट करे तो क्या आश्चर्य ! मेरे कथनका यह मतलब नहीं, कि योरपमें पतिपरायणा छियाँ होती ही नहीं, ऐसा कहना, और सोचना, अन्वय होगा। मिष्टनने एक स्थानपर 'ईश'के मुलसे इन शब्दोंको कहलाया है- ये शब्द उन्होंने आदर्शसे कहे हैं-

"What thou bidd'st Unargued I beg, so God ordains, God is thy law, thou mine."

'ओ भापकी आज्ञा होती है, उसे मैं बिना कुछ कहे मुझे स्वीकार करता हूँ। ईशरीय इच्छा यही है। भापके नियन्ता ईशर हैं और मेरे प्राप ।'

संसारमें जितनी सती साध्वी छियाँ होंगी, प्रायः सबके हृदयका भाव ऐसा ही होगा। यदि योरपकी छियोंमें ऐसा भाव न पाया जाता, तो मिष्टनकी खेजमोसे ऐसे शब्द निकलते ही नहीं, अभावमें भाव नहीं होता। योरपकी छियोंमें रजोगुण और तमोगुण ही होता है, सतोगुण नहीं, ऐसा कहना अस्वाभाविक होगा। यहाँ स्वभाविकताका बोध हो गया है, कृत्रिमता ही शेष है, यह भी यहाँ कहा जा सकता। किन्तु यह परम सत्य है कि आश्रयक धार्मिकताका स्थान श्लेषदाचारिता ग्रहण कर रही है, इसी-लिये यहाँका वायुमण्डल विशेष कटुपित हो गया है। योरपमें सती-साध्वी छियोंका अभाव नहीं, किन्तु वे

उँगलियोंपर गिनी जा सकती हैं। चेन्न प्रायः बैसी ही छियोंके हाथमें है, जिनका चित्रण ऊपर हुआ है। अतएव उन्हींके प्रभावसे लोग प्रभावित हैं। और जैसे ही अस्वयत्न विचार भारतकी युनीत सम्प्रदायमें पली छियोंके विषयमें प्रकट करनेके लिये थाय है, किन्तु इसप्रकारकी निर्मूल बातोंका मूल्य ही क्या ?

सीतादेवी भारतकी सती साध्वी छियोंकी शिरोमणि हैं, उनको आर्यसंस्कृतिकी दिव्य मूर्ति कह सकते हैं। उनके मुखमें विद्वान् है, किन्तु यही ही संयत। उनके मुँहपर मुहर कभी नहीं लगगी, वे समयपर बोलती हैं, किन्तु उनके शब्द तुल्य हुए और गम्भीर होते हैं, उन शब्दोंमें महातुभावता भरी होती है पर साथ ही हृदयकी विशाबता भी। कटु वचन कहना, उद्धत बन जाना, उनके स्वभावके विरुद्ध है। जैसी मर्यादाशीलता और सदारायता उभमें दृष्टिगत होती है, अन्यत्र नहीं। और बातोंकी तरह सम्प्रदायके भी स्वर होते हैं, पहले बड़ उतनी उदात्त, संयत और गम्भीर नहीं होती, जितनी उग्रतावस्वामें। सांसारिक अन्वय पदार्थोंकी तरह उसका भी क्रमशः विकास होता है। जो आतिथ्य पहले पशुओंके समान जीवनव्यतीत करती थीं, आज वे ऊँचे ऊँचे मङ्गलोंमें रहती हैं और वैज्ञानिक आविष्कारों-द्वारा जगत्को चकित करती हैं, यह उनकी सम्प्रदायके क्रमशः विकासका ही फल है। आर्य-सम्प्रदाय संसारकी सब सम्प्रदायोंसे प्राचीन है, और लगभग पूर्णताको पहुँच गयी है, इसलिये यह अधिकांश उदात्त गुणोंका आधार है। भागवती धानकी सतीत्वके विषयमें इसका प्रमाण है। श्री-आतिके हृदयका चरमोत्कर्ष उनमें देला जाता है, उनकी महातुभावता, संसारकी सती साध्वी छियोंका आदर्श है। विभिन्न हाथोंमें पढ़कर विचार-वैचित्र्यके कारण यहाँ यहाँ उनका चरित्र विद्वत हो गया है, किन्तु उनकी महत्ता यहाँ खर्ब नहीं हुई। दिव्यता और विद्वान् था, उसने कुन्दमाला-नरमक एक नाटक लिखा है। प्रकरण उसका 'वैदेही-वनवास' है। विविधमें पहुँचाकर खूबते समय लक्ष्मणकी अतकनन्दिनीसे सन्देशको प्रार्थना करते हैं-उस समय नाटककार उनके मुलसे ये वाक्य कहलाते हैं-

'तथा निपुणो नाम सन्दिग्धत इति प्रतिहत वचनतैरा शक्यमन्वय, न सीताया अन्वयम् ।'

'अहो अविद्वसनीयता प्रकट निपुणमत्तानां पुनः-हृदयाणाम् ।'

'ऐसे निष्ठुरके खिये मैं जो सन्नेरा देना चाहनी हूँ, इसमें लक्ष्मणके पचनकी दृष्टता है, सीताका सीभाव्य नहीं।' 'इशभावहीसे निष्ठुरभावपूर्ण' पुरुष-दृश्यकी अविधमनीयता विचित्र है।' ऐसे ही एक धयसत्पर भवभूति कौन-सा पय प्रहय करते हैं, उसे भी देखिये—उत्तररामचरितमें एक शयसत्पर वे श्रीमती सीता देवीकी सखी वासन्तीके मुखसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके विषयमें यह वाक्य कहलाते हैं—

'अपि देव ! किं परं दारुणः सित्वासी'  
'देव ! आप सचमुच बड़े निष्ठुर हैं।'

यह सुन सीतादेवी अपनी पतिमायाका परिचय दूँते हुए क्या कहती हैं, उसे भी सुनिये—

'सखी नास्तित् ! किं त्वमेवैवादिनी मवसि, पूजार्हः सर्वस्वार्पणुत्रे, विशेषतो मम प्रियसख्याः'  
'सखी वासन्ती ! तुम ऐसा क्यों कहती हो, आर्यपुत्र सबके पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।

दिग्नागकी जनकनन्दिनी, देवी नहीं मानवी हैं, उनमें धैर्यच्युति है, वे धैर्यच्युत होकर पतिदेवको निष्ठुर कहती हैं, साथ ही पुरुषजाति मात्रको स्वभावहीसे निष्ठुरदृश्य कह छालती हैं। इस कथनमें स्वाभाविकता है, किन्तु चित्तकी यह विरालता नहीं, जो मनुष्यको देवता बना देती है। विपत्ति ही मनुष्यकी कसौटी है, इसपर दिग्नागकी सीतादेवी कसनेपर ठीक नहीं उतरतीं। भवभूतिकी सीता देवी हैं, वे 'विपदि धैर्य' का धारण हैं, उन्होंने स्वाभाविकता र विज्ञय प्राप्त कर ली है, उनमें प्रतिहिंसा-भूति है ही नहीं, किन्तु सखीके ऋतु वचनको भी नहीं सह सकतीं, 'यह धाय बड़ा ही मार्मिक है, 'आर्यपुत्र सबके देव रूप है, यह रूप सुपजन ही नहीं, विपु-स्वामीजी उनके इसी रूपके उपासक हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बातोंको सुनकर सीतादेवीने क्या कहा, यह नहींके शब्दोंमें सुनिये।

सीतादेवीके सामने जनकनन्दिनीको सीधे पतिमे प्रत्यक्षमें मर्त्यादा वाचक थी, धयपुत्र उम्होंने उम्होंका, किन्तु इसमें उनको लक्ष्मणता न हुई।

भगवान् रामचन्द्रने देवी बातें कहीं, कि नीबन आयो। इमलिये पहले उम्होंने—  
लगी सागुपण कह कर जोरी। छनवि देते कीजे कीजे

इस पद्यमें किन्ती मर्त्यादा-शीलता है, 'अन्व' अन्विय मोर' में उनके सरज और विनय द्वारा शब्द प्रतिष्ठाया है। सातसे अन्वियकी समा उम्होंने पतिदेवके जो ड्रुप कदा, उसमें पति-देवका उमका पड़ता है— उसका एक एक शब्द बड़ा ही म है— उसकी ड्रुप पंक्तिमें देखिये—

मैं पुनि समुसि दीक्ष मन मादीं। पिय-विषांग-सन ड्रुमु मन मादीं।  
तुम्ह निनु रघु-कुल-कुमुद-विपु सुरपुर नरकसनन।  
मानु पिता मगिनी प्रिय भार्द। प्रिय परिवार सुख-सुगर्द।  
सागु समुर गुण सन्न सदाद्। सुत सुंदर सुसीत सुगर्द।  
जहें लगीनाय नेह अर नते। पिय निनु सिर्षि-तर्पिहुं देव।  
तनु धनु धामु परनि सुरराज्। पतिविहीन सब सोभसमाद्।  
भोग रोगसम मून भारू। जम-जतना सरिस संलक्ष्।  
प्राणनाय तुम्ह निनु जग मादीं। मोरहें सुखद कहुं कहु मादीं।  
जिअ निनु देह नदी निनु बारी। तीसिन नाय पुत्र निनु नारीं।  
नाय सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-विमल-विपु-बदन।

विवाहकालमें सप्तपदीके समय पत्नी प्रतिज्ञा का आर्त आर्तों मविष्यामि सुखदुःखविमामिनी।  
तवाज्ञा पालयिष्यामि पथमे सापदे बंदेद।

'आर्त' होनेपर आर्त हूँगी, सुख-दुःख मगिनी हूँगी और तुम्हारी आज्ञाका पावन करूँगी।' कहा जा सकता है इस प्रतिज्ञाके धनुसार उनको बड़ी करण्य बारी या, जो पतिने आज्ञा दी थी, किन्तु उम्होंने कुछ विवेक करना प्रारम्भ किया, क्या यह धर्मार्था नहीं। परकी का यह कि 'आपकाले निषमो नारित' दूसरी बात यह कि शर्मो प्रवशा क्या की ? कोई आज्ञा होनेपर उसके पावन करने जो बाधाएँ उपस्थित होंगी, क्या उनके विवेक बाध आशा न मानना है। आज्ञा माननेकी अपेक्षा पतिकी दुःख सुखसंगिनी होना, उनके खिये जीवन उत्सर्ग करना लक्ष्मणिक संगत नहीं ? सीतादेवीकी चेष्टा यही तो है। कीका सर्वस्य पति ही तो है, फिर वहाँ तो प्रायकी बाधा उपस्थित है—

रासिज अवय जो अगपि रगि ररन जनिभदि श्रुत।

ऐसी व्यवस्थामें उन्होंने जो कुछ निवेदन किया, उसमें विमतिपक्ष क्या ? जो श्री-धर्म है, जो शास्त्रसंगत बात है, वही तो वे कह रही हैं—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यशो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।  
पतिं शुभ्रपते येन तेन स्वयं महीयते ॥  
पाणिप्राहरय साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्यवा ।  
पतिशोकमभीसन्ती नाचरदिकश्चिदप्रियम् ॥

(मनु)

सा भार्या वा गृहे दृष्टा सा भार्या या प्रजावती ।  
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥

(व्यास)

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।  
अमितस्य हि दातारं मर्तारं पूजयेत्सदा ॥

(शिवपुराण)

'पतिरेको गुरुव्रीणाम् । (चाणक्य)

'श्रीको न तो कोई यज्ञ करनेकी आवश्यकता है, न व्रत-उपवासकी, पतिकी सेवा करनेसे ही वह स्वयंमें धारत होती है। पतिशोककी कामना करनेवाली साध्वी स्त्री चाहे जीवित पति हो चाहे मृत किन्तु उसका अभिय कभी न करे। भार्या वही है जो गृह-कार्यमें दृढ हो, सम्मानवाली हो, पतिप्राणा और पतिव्रता हो। पिता, भ्राता, पुत्र भोदा देनेवाले हैं, सब कुछ देनेवाला पति ही है, इसलिये यह सदा सत्कार-योग्य है। जिनको शुक एक पति ही है।'

श्रीमती जानकीदेवीके निवेदनमें इन्हीं धार्मिक सिद्धान्तोंकी ध्वनि घोष और क्या है ? हाँ, उनके हृदयके समान इनकी उक्तियाँ उदात्त व्यवस्था हैं। इस कथनमें कितनी सत्यता है, 'विद्यु-नियोग-सम दुख जग नाहीं' इसीलिये 'जनु धनु धातु धरति सुरराज् । पतिनिर्वाण सब लोकसमाज्' है, और 'भोग रोगसम, भूषण मारु' है। जब 'खड्ग-कुमुद-विद्यु बिना 'सत्पुत्र नरक-समान' है, तो 'जम-जातना-सरिस संसार' का होना क्या आश्चर्य ? फिर वे क्यों न कहतीं 'माननाथ उपर विजु जग माहीं । मो कहें सुखर कतरुं कतु माहीं ॥' जब वे 'मातु पिता मगिनो, ह्य्यादि धरे धरे सम्बन्धियोंका नाम सुन्दर विशेषणोंके साथ गिनाकर, यह कहती हैं 'जहें लगि नाथ नेह करु नाते । पिय विजु तिगहि तगिने ते ताते ॥' सब वे किस क्याकाकी ओर संकेत करती हैं, क्या यह बतलाना होगा ? विरहबाबाकी बातें कौन नहीं जानता-विरहियीकी

कौन नहीं जानता। चाहे यह उसकी मानसिक अधिकारी फल हो, किन्तु उसको अनुभव ऐसा ही होता है। उसको सुधाकर-किरणों भी अभिप्रेमयी शाल होती हैं, और मलयसमीर शेष-वास, और अधिक क्या कहें, उन्होंने यह बात कितनी दूरकी कही, गिज विजु देह 'नदी विजु नारी। तैसिभ नाथ पुत्र विजु नारी ॥ सत्य है, पुत्र्य, श्री-देहका माय्य है, और कामिनी कल्लोजिनीका सखिष, किन्तु इस बातको सीतादेवी-सदृश पतिप्राणा देवी ही समझ और कह सकती हैं।

इसके उपरान्त उन्होंने यह कहा—

स्रग मृग परिजन नगर वन बरकल निभल दुकूल ।

नाथ साथ सुह-सदन-सम परनसाक सुखमूक ॥

वनदेवी वनदेव उदार। करिअहिं ससु-ससुर-सम सारा ॥

कुस-किसलय-साधरी सुहायें। प्रसु-संग मंजु मनोजतुरारै ॥

कंद मूल फल अभिभ अहारु। अवध-सौष-सत-सरिस पहाक ॥

भ्राजकल 'खासो, पीसो, धाराम करो' का ध्वज-निर्योप ही सुनारी पड़ रहा है, ऐसी अवस्थामें सीतादेवीकी बातोंको कौन सत्य स्वीकार करेगा ? खग-भृगुको परिजन, वनको नगर, बरकलको विमल दुकूल, पशु-शालाको सुरसदन-समान सुखमूल कौन मानेगा ? क्या ऐसा माना जा सकता है यह तो चिकनी-सुपदी बातें हैं। वनदेव, वनदेवी, सास-ससुर नहीं बन सकते, कुस-किसलय साधरी, मनोजतुरारै नहीं कही जा सकती, न तो कंदमूलकल, अमृतमय आहार हो सकते हैं और न ध्वजके सैकड़ों सौंथोंके समान पहाड़, एवं न कोई बुद्धिमती स्त्री ऐसा कह ही सकती है। हाँ, यह कविकल्पना हो सकती है।

हृदय सबके पास है, जीभ सबके मुहोंमें है, जो जिसके मनमें धावे वह कह सकता है, जो चाहे सोच सकता है, परन्तु यह अग्रशयः सत्य है कि जो कुछ श्रीजानकी देवीने कहा वह धार्मिकजनके हृदयका सत्पा उद्गार है। यदि हम विवेककी धारोंमें खोल लें, तो भारतीय कुलवालाके मानस-दर्पणमें यह भाव बहुत ही स्वरूपमें प्रतिबिम्बित दिखारी पड़ेगा। श्रीमती सीतादेवी स्वयं इसके लिये प्रयास हैं, जिन्होंने एक दो दिन नहीं, क्षणभंग चौदह वर्ष भगवान् श्रीरामचन्द्रके साथ हमी भावसे स्वर्गीय किये। उनके उद्गारोंका प्रतिपादन निम्नलिखित पद्य बड़ी ही दृढ़तासे करते हैं—

● श्रीरामचन्द्र जीवन प्राप्ते ●

काय सहज सुम सुन्दर । मार-वि-विजु-वन्दु-मिन्दो ॥  
त्रिजु-त्रिजु-प्रसू-वद-वन्द-विन्दो । श्रीश्री-कुन्द-विन्द-मिन्दो ॥  
मेदि-मन-वन्द-वन्द-विन्दो । त्रिजु-त्रिजु-वन्द-वन्द-मिन्दो ॥

बालविक सुखका सागरक हृदयके भावोंमें है, किन्ती  
वर्षार्थ कपटा बहुविधतासे नहीं, इन वर्षोंको वाकर हय  
काठको सत्यमेववा पश्चि भवतीमार्गि मयक गच्छा है ।  
प्रेम प्रेमके जिये होगा है, सुख-उपमोंके जिये नहीं । जो  
प्रेम सुख-कामनाए उगगीहूण है, वह प्रेम नहीं, प्रेमका  
साहसकमाय है । सत्ये प्रेममें कश्ची अनुभूति होगी ही  
नहीं । सीतादेवी कहती है—

वन-नुस नाय कहे बनुतेरे । मय रिपद परिताप ननेरे ॥  
प्रभु-विशेष-मन्त्र-नेम-सामना । सब मित्रि होदि न कल्पनीयता ॥

सत्यमेवमें अर्ह-भाव नहीं होता, उगमें सेव-भाव ही  
प्रबल होता है । सत्यमेव सूर्य है, उसके सामने अर्ह-भाव  
अन्धकार छर ही नहीं सच्छा, उसके धरकोकनधर सेवा-  
भाउसरसिख अवरय विकसित होता रहवा है । भगवती  
वानकीमें यह भाव चिन्ता आयुव है, देखिये—

सबदि भक्ति विष-सेवा करिहो । मारगनित सकल आय हरिहो ॥  
पाय पसारि नेठ तदउाही । करिहो नाउ मुदित मन माही ॥  
सम-कन सहित स्पाम तनु देखे । कहे दुस समत प्रानपति देखे ॥  
सम-महि तून-उर-पह्लव-बासी । पाय पलोडिहि सन निसि दासी ॥

इन शक्तियोंमें चिन्ता ध्यामनिवेदन है, चिन्तनी  
अभाविकता और सरलता है, चिन्तनी हितकामना और  
सहायुभूति है, यह निर्यज हृदयकी धवतारणा नहीं, सबज  
मानसकी प्ररोचना नहीं, 'मनस्यैकं, वचस्यैकं, क्रियास्यैकं' की  
सत्यतामयी विभावना है । स्वार्थसाधनकी कपटभरी  
गायोजना नहीं, कर्तव्यज्ञानकी भाँकभरी साधना है ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने विपिनकी भयंकरताका पड़ा विरह  
न कहा रजनीधर करहीं । कपटवेष निधि कोटिक करहीं ॥

सीतादेवी इसका चिन्ता सुन्दर और गहमीर उचर  
ने, सुनिये—  
मुकुन्दप्रति जोही । लामिदि ठावि बयारि न मोही ॥  
निहारो । सिह-व-बुदि निमि ससक सिआरा ॥

इस उगमें चिन्ता ध्यामनीयता  
निर्भरता है, चिन्तनी प्रीतिगात्रका श्री  
इसका अनुभव प्रत्येक लक्षण कर सकता है

श्रीरामचन्द्रजीने वह भी कहा था, 'हय  
वनकेतू । हयका उगर वा ही हयमाती, को  
है । श्री मां आनकीदेविने स्वंगने काम नहीं  
बहुत धीर भावने संवा उगर ही रीती नहीं  
किन्तु हय शक्तिका उगर वा ही अज्ञानमय है,  
उगमें हयनी स्वाभाविकता है, कि वाकर पित बने  
जाता है । उगर वह है—

'मै मुकुमरी, नाम कानेगू । मुग्दि अंचाउरको रवेदे  
हयकचन-रचनाकी बलिहारी । हयको कन्दे है, कान  
पर रख दिया है कचेज निपावकर' किन्ती मीमां कुं  
है, साथ ही चिन्तनी प्रेममती ।

छेद हृदयाने पश्चि कहरा हो गया । मैने ही प्रमं  
छेद बिसनेके जिये जुने ये, किन्तु एक ही प्रमं  
विरह हो गया, इसलिये एक प्रलय और विव  
इस छेदाको समाप्त करेगा । शास्त्रमें अंको लप  
कहा गया है, सहधर्मिण्योका अर्थ है समाव पर्या  
सर्षी गुदिथी बरी है, जो पतिके भावोंको सम  
है और विना कहे उसकी पूर्ति करती है । पतिने बर  
सोखकर कुपु कहा, और तय जाने कोई कार्य सि  
तो यह सहधर्मिणी कहाँ रही । जिस जाने पतिके हाथ  
नहीं पहचाना, उसके कर्तव्यको नहीं समझा, जो कर्म  
श्रीवनयात्राके अनुकूल अपनेको नहीं बना सकी, किन्ती ह  
विशेषपर पतिका क्या धर्म है, जो इसकी मज्ज य  
यह सहधर्मिणी होनेका दावा नहीं कर सकती । विना  
समय कर कन्यासे कहवा है—

मम त्रते ते हृदयं दधानि, मम चित्तमनुचिचं ते म्द  
मननाचनेकमना जुपत्त्व, प्रजापतिपूता त्रिजुवनु म्दर

मेरे मतकी ओर तुम्हारा हृदय लिये, मेरे चित्त  
अनुकूल तुम्हारा चित्त हो, एकमना होकर मेरी क  
माना, प्रजापति तुमको मुझसे सम्बन्धित करें ।

विवाहके अन्तमें कन्याको प्रुषका हृदय का  
जावा है, यह प्रुषको देखकर कहातो है, 'सुगमति मुं  
परयामि' 'अपि प्रुष, प्रुय अचल अटल हो, मै तुम्हें देखती'  
इसका भाव यह है कि विवाहकार्यमें पतिके हाथ मझने

प्रतिज्ञार्थं क्वाप्सी गहं है धयषवा म्नेन स्वयं जो प्रतिज्ञार्थं की है, उनपर मैं भ्रुष-समान घबल घटल रहूँगी। ससपदी के समय यह यह भो कहती है—

बन्ने होमे च दानादी। प्रतिष्ठापि त्वया सह ।

धर्मार्थकामकामेषु ययुः षष्ठे पदे वदेत् ॥

यज्ञ, होम और दानादिमें—धर्म, धर्म, और काममें मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। इसीलिये 'अर्थ भाषां मनुष्यस्य' है। इसीलिये श्री धर्माङ्गिनी है, और इसीलिये सहधर्मिणी। रामायणमें इस संस्कृतिका एक बड़ा ही उत्तम निदर्शन है। गोस्वामीजी लिखते हैं—

उत्तरे ठाढ़ भये सुरसरि-रेता। सीय राम मुह रखल संमेता ॥

केबट उत्तरी देकवत कीन्हा। प्रमुहिं सकुच पडि नहिं कण्डु दीन्हा ॥

पिय-दियकी सिय जाननहारी। मनि-मुंदरी मन-मुदित उतारी ॥

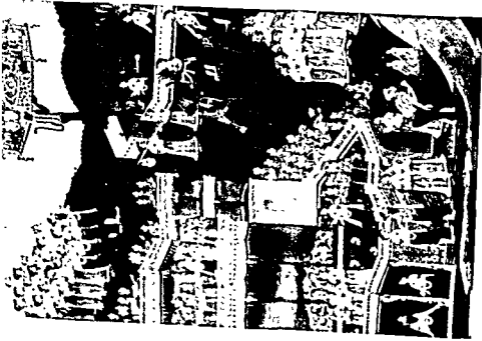
गोस्वामीजी की इस उक्तिमें कि 'प्रमुहिं सकुच यदि नहि कण्डु दीन्हा' बड़ा स्वास्थ है। 'प्रमु' शब्दका प्रयोग कितना सार्थक है, साधारण बन होते तो इस विषयमें वे कुछ वापरवादी कर भी सकते, किन्तु 'प्रमु'का प्रयोग करना बड़ा ही अनुचित था। बड़ी ही मर्यादाविरुद्ध बात थी। फिर उसके साथ, जो भीम भी नहीं हिंजा सकता। बड़े लोगोंके लिये दीनों शक्तिजनोंकी सहायता करनेके लिये, इसप्रकारके अन्तर यह ही सुन्दर होते हैं। सेवा करनेवाला यहाँसे बड़ी धारा रखता भी है। कमसे कम भगवान्को निपादकी मूढ़ी धरपर भर देनी चाहिये थी, किन्तु कहाँ, वे तो कुछ न दे सके। तापस-वेपमें उनके पास था ही क्या? फिर उनके लीको छोट क्यों न लगती, और वे क्यों न संकुचित होते। सीतादेवी सतीशिरोमणि हैं, सभी सहधर्मिणी और धर्माङ्गिनी हैं, उन्होंने पतिदेवके श्रद्धाकी बात ध्यान की, और तत्काल मुदित मनसे मण्डित मुँदरी उतार दी। गोस्वामीजीके शब्दोंकी मार्मिकता देखिये—'पिय-दियकी-सिय जाननहारी। मनि-मुंदरी मन मुदित उतारी।' कैसी मुँदरी उतारी! मण्डित। कैसे उतारी! मुदित-मनसे। चिपोंको गहना बड़ा प्यारा होता है, उनको उसे धरकर करते बड़ी कठिनाता होती है, पीदा भी होती है, वे धायानीसे उसे किसीको देना नहीं चाहती, जय करके कोई भले ही छे ले। यह साधारण गदनोंकी बात है, और मण्डित गदना! यह तो कल्लेजमें दिसाधर रखनेकी चीज है, उसका तो नाम ही न थीलिये! किन्तु सीतादेवीने बेसी ही मँगूठी उतारी, और वह भी मुदित मनसे,

जरा-सा तेवर भी नहीं बदला, पेशानीपर शिकन तक नहीं थाया। क्योंकि उनका सर्वस्व तो उनका जीवनधन है, उनका सौन्दर्य तो उनके हृदयका सौन्दर्य है। जो पति-प्रेमके आभूषणसे आभूषित है, उसको भूषणोंकी क्या आवश्यकता? जिसे पतिकी अनुकूलता बान्जनीय है, जो पतिमर्यादाकी भूखी है, गहनोंपर उसकी लार नहीं टपकती। यह चिरसञ्चित धर्मसंस्कृति है, भगवती जनकनन्दिनी इसकी उच्चतम धारदा है।

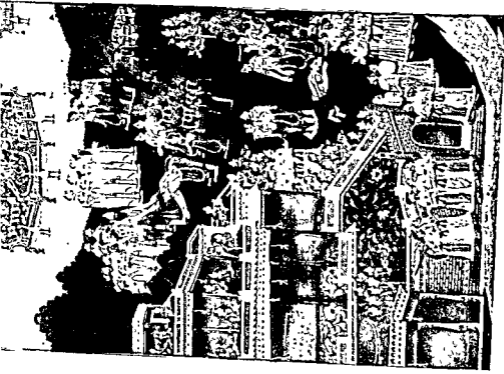
धार्मिक कालमें भी इसप्रकारके धारदोंका अभाव नहीं, एक प्रसंग आपलोगोंको सुनाता हूँ। देशपूज्य, दयासागर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका पवित्र नाम धाय-लोगोंने सुना होगा। उनकी श्री बड़ी साध्वी थीं। विद्यासागर महोदयकी उदारता लोकविधुत है। एक बार एक माहायण उनकी सेवामें उपस्थित हुआ, और उसने विनय की कि 'मैं कन्यादायसे आकुल हूँ, यदि आपने कृपा नहीं की तो मेरा निर्वाह होना कठिन है।' उसने दो सौ रुपयेकी आवश्यकता बतलायी। उस समय उनके पास कुछ नहीं था, वे चिन्तित हुए। माहायणको बाहर बैठाया, और धाय श्रुत्वर गये। सामने उनकी सहधर्मिणी धा गयीं, उन्होंने उनके मुखकी ओर देखा, और पृथा धाय चिन्तित क्यों हैं? उन्होंने कहा 'एक माहायण कन्यादायप्रसन्न है, और दो सौ रुपयेकी उसको धायपरयचना है, परन्तु इस समय तो मैं विरकुल रिक्त हूँ।' साष्ठीके नेत्रोंमें जल थाया, उन्होंने कहा, 'मेरे हाथके सोनेके कड़े किस काम आयेंगे।' यह कहकर उन्होंने अपने कड़े उतारे, और पतिदेवके हाथपर उनको रख दिया। अपनी पत्नीकी यह उदारता देखकर उनके श्रुत्वात् होने लगा, वे यथु-विसर्जन करते ही बाहर धाये, और उलुख हृदयसे उन्होंने कड़े माहायणदेवको सादर देकर कहा, इन्हें मेरी ओर धायको धर्यय दिया है।

रामायणकी संस्कृतिकी बातें सुनाते सुनाते एक धन्य धर्म्य भी मैंने धायलोगोंके सामने उपस्थित कर दिया। केवल हय विचारसे कि जिनमें धायलोग धार्यसंस्कृतिकी व्यापकताका अनुभव कर सकें। धार्यसंस्कृति धनु उदार है, और धाय भी वह धनु ध्याक है। हिन्दू-जातिपर जो उसका प्रभाव है ही, यहाँकी सुलभान-जाति, और ईसाईयों पर भी उसका अंग देना जाता है, धाय हयय यह है कि उनमें कथिर्मय हिन्दू-मान्यन ही है। धिक्कधिक संस्कार-आश होने होने होता है, लकाल धयषा पोने धमयमें





भारत-धनुमान मिलाप ।  
 धीनर्षणु स्युपति कर किकर । कुन्त मल भेटेड वति सादर ॥



राम पुनः अयोधामे ।  
 धार धरे गुर-वत-सरोह । अजुजसहित वति-पुलक-वनोरह ॥





**रामचरितमानस—**

सक्के डर अभिलापु अस कहहि मनाइ महेश ।  
आपु अछत जुचराज-पद रामहिं देखिं नरेश ॥

**बशिष्ठ रामायण—**

ये धारयन्ति गुरुपादरजः स्वरीर्षे  
ते कौ विभूतिमस्त्रिणां बशयन्ति नूनम् ॥

**रामचरितमानस—**

जे गुरुभजन रेनु तिर धरहौं । ते जनु सकल विभव बस करहौं ॥

**उत्तर रामचरित—**

कौणिकानां हि साधूनामर्षं बाननुवर्तते ।  
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमयोंऽनुधावति ॥

**रामचरितमानस—**

राजन राअर नामु असु सन अभिमत-दत्तार ।  
फल अनुगामी महिषमनि मन-अभिलापु तुम्हार ॥

**श्वेतकेतु रामायण—**

रामाभिषेकनुसान्तं ध्रुत्वायोग्यापुरे शुभे ।  
वाद्यानां धनचोरस्तु शब्दो जातः सुखप्रदः ॥

**रामचरितमानस—**

सुनत रामअभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवच बधावा ॥

**मंगल रामायण—**

आमदेन्याः सुराणां च देवनागस्य पूजनम् ।  
चकारानन्दपुका सा कौशल्या प्राह निजेरान् ॥  
पुनर्वर्तिं प्रदास्यामि वरमायं प्रदीयताम् ।  
श्रीरामचन्द्रकृत्याणां भवत्वेनं निवेदनम् ॥

**रामचरितमानस—**

पूजी आमदेनि सुर नाण । कहउ बहोरि देन बडिभाण ॥  
जेहि सिधि होइ राम-कृत्यान् । देहु दया करि सो बरदान् ॥

**हृदयति संहिवा—**

दासस्य भवने विद्वन् गुरोरात्मनं मुने ।  
मंगलानां महन्मूलं कल्पकर्मसकं तथा ॥

**रामचरितमानस—**

सेवकसदन रशानि आगमन् । मंगलमूल अमंगल दयन् ॥

**रघुवंश—**

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्ततामिति ।  
कैकेयीशंक्रयेवाह पलितच्छ्रमणा जरा ॥

**रामचरितमानस—**

सवनसमीप मर सित केसा । मनहुं जरठपनु अस उपदेसा ॥  
नृप जुबारातु रामकहुं देह । जीवन-जनम काहु किन लेहू ॥

**पाञ्चवल्क्य रामायण—**

कोमलं वचनं युत्वा कुमतिज्वलिता सती ॥  
अत्रवीत् कैकेयी तेऽत्र माया नैव चलिष्यति ।  
दीयतामयथा कृत्वा नकारमयशो नृप ॥  
गृह्णतां शीघ्रमेवाऽत्र प्रपञ्चा नैव मे प्रियाः ।  
स्वमावसरली रामो राममाता भवानपि ॥  
मया परिचिताः सर्वे स्वमावसरला जनाः ।  
विचारितं राममात्रा यथा भ्रम हितं तथा ॥  
प्रदास्यामि फलं तस्मै सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

**रामचरितमानस—**

सुनि मृदु वचन कुमति असि अरई । मनहुं अनल आहुति घृत परई ॥  
कहुहु कहै किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि-भाया ॥  
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥  
रामु साउ तुम्ह साउ सयानि । राममातु महि सब पतिचाने ॥  
जस कौसिला मोर मल ताका । तस फलु उन्हाहि देउँ करि साका ॥

**पुत्रस्य रामायण—**

निर्मिताः कोलकिरातकन्याः  
पितामहैनेव रशैर्विहीनाः ।  
कठोरशीला इव वज्रकटा  
अदुःखिताः काननबाहहेतोः ॥

**रामचरितमानस—**

बनहिल कोल किरात टिसोरी । रची बिरांचि विषय-सुख-भोरी ॥  
पाहन हनि निनि कठिन सुभाऊ । किन्हाहि कहेसु न कानन काऊ ॥

**अरुण रामायण—**

तपस्विनामो ह्यथवा वनयोग्या भवन्ति दि ।  
यामिस्त्वकस्तपः कर्तुं सर्वे योग्याः सुखात्मकाः ॥



खोजनेसे रामचरितमानसके सब दोहों, सोरठों, छन्दों और चौपाइयोंके मूल संस्कृत-ग्रन्थोंमें मिल जायेंगे। यह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि तुलसीदासजीने संस्कृत ग्रन्थोंका कैसा सूचन अध्ययन किया था। कहीं कहीं तो एक दोहेमें दो-नौ ग्रन्थोंके श्लोकोंका अनुवाद मिलता है। अब यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृतके

सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदासको कबउत्पन्न थे। हम जितने ही गदरे जाते हैं, उतना ही इस शक्तिीय रामायणकी ध्वस्त प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं। संस्कृत-नन्दन-काननमें विचरणकर तुलसीदासरूपी मधुपने समस्त फूलोंका रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जातिको दान किया है, उसकी तुलना संसारके किसी दानसे नहीं की जा सकती। ॥

## रामायणमें क्रोध-शान्तिका उपाय

(लखन-पं० श्रीरामदासजी मञ्जुमार एम० ए०, सम्पादक 'उत्सव')

तस्मात् यत्रः सदा कामो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः।

कामनेपादमस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदनः॥

तथापि क्रोध पर्वान् मोक्षविप्राय सर्वदा।

(अध्याय १०)

सारमें जो लोग अशेष दुःखोंको नहीं देखते और जो देखकर भी उनसे मुक्त होना नहीं चाहते, उनको क्या मनुष्य कहना चाहिये ? नहीं। यदि मुक्त होना चाहते हैं तो सदा-सर्वदा विद्याभ्यासका यत्न करना चाहिये। स्मरण रहे, इधर उधरसे जो



कुछ भी पढ़ लेनेका नाम विद्या नहीं है—

नाहं देहक्षिप्रात्तेति मुक्तिर्विचिती भण्यते।

'मैं देह नहीं हूँ, शैतन्य-स्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। इस विद्याभ्यासके लिये निरन्तर यत्न करना चाहिये। काम-क्रोध और लोभादि इस विद्याके प्रबल शत्रु हैं। इनमें भी क्रोध या मोच-मार्गमें सर्वदा ही विप्रकारो है।

धीलक्ष्मणजी रामवतवासकी बात सुनकर क्रोधके मारे तन-मनकी सुधि मूल रहे हैं। भगवान् व्यास लिखते हैं—

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीशत्रुर्वीनम्।

नदा निहन्मि भरतं तदन्धन् मत्तुल्यमपि॥

(अध्याय १०)

लक्ष्मणने कहा, 'कैकेयीके वशमें हुए उन्मत्त, भ्रान्त-चित्त राजा दुःशरधके कैदकर मैं भरतको उसके भित्तों और मांसार्थों-समेत मार डालूँगा।'

भगवान् वाल्मीकिजीने लिखा है कि लक्ष्मणका क्रोध दूर करनेके लिये भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। पर यहाँ भगवान् व्यास कहते हैं—

इति ब्रुवन्तं सौमित्रोमात्मिण्य रघुनन्दनः।

धीभगवान्ने लक्ष्मणको पकड़कर हृदयसे जगा लिया। परम शान्त पुरुषके प्रेमालिंगमन्से क्रोधाविष्ट शरीरके विहृत धनुष-परमाशुष्योंका स्पन्दन भी पौड़ी देरके लिये छन्द-सा धन जाता है। आलिङ्गनद्वारा लक्ष्मणको कुछ शान्त करके भगवान् कहने लगे—'रघुशार्दूल ! मैं जानता हूँ, तुम वीर हो। भरत मेरा प्रायश्चारा है। जब तुम भरतको भी (मेरे लिये) बध करनेको तैयार हो तो धवस ही तुम मेरे अत्यन्त द्रित-साधनमें रत हो, इसमें कोई सन्देह नहीं। भाई ! मैं तुम्हारा प्रताप खूब जानता हूँ, पर प्रताप दिखलानेका यह धवसर नहीं।' इस कथनसे क्या भगवान्ने श्लेष किया ? हरि ! हरि ! प्रेमसे परिपूर्ण हृदयमें क्या कभी श्लेष रह सकता है ? श्लेष तो असम्भूद्धर्शी हृदयके अभिमानपूर्ण दुर्गन्धयुक्त उद्गार हैं। धीभगवान्ने श्लेष रह ही नहीं सकता। धीभगवतीकिमें भगवान् कहते हैं कि अभियेकमें विप्र होना नियति है और नियतिको—'इधरके

० श्रीरामचरितमानसमें किस-किस मन्थसे भाव लिये गये हैं, इसका बहुत अच्छा संग्रह बाबू श्रीरणबहादुरसिंहजीने, गंगाधर प्रेस, रावरेलीमें छपवाकर प्रकाशित किया है। आप शास्त्रके तालकेदार बाबू गंगाधरसिंहजीके भ्राता हैं और २० सालके प्रेमपूर्ण परिश्रमसे विभिन्न मन्थोंको देखकर आपने यह बड़ा काम किया है। ऊपर चौपारं तथा दोहों और उनके नीचे प्राचीन मन्थोंके उर्ला भावके श्लोक छपे गये हैं। हमारे पास बार काण्ड तो आ चुके थे ये अब उल्टी हो छपनेकी शकना थी। यद्यपि कुछ प्रमाण छूट गये हैं तथापि आपका यह परिश्रम बहुत ही सराहनीय, शुल्ल और संग्रह योग्य है। हमारे पास जितने काण्ड आ चुके हैं उनमें लगभग २२५ मन्थोंके श्लोक उद्धृत हैं। रामायणपर यह बहुत सुन्दर संग्रह करनेयोग्य टीका है।

रिपयको—बन्धनकी शक्ति किर्तमें नहीं है। भगवान्  
प्यास हूय बाणको रिपयाने है कि—कोय कराने उपाय  
होता है औरकिम उपायने उगको सम्यक् निर्मूल किया जा  
सकता है। केनच कोय हो नहीं, भारी अतागि और भारी  
दुर्गोंका ओ कारवाही, उगका विनाश कैने किया जा सकता  
है। हम भूगण्डत्रमें समन देहोंके सभी नर-नारिणोंके  
पधार्थ कन्यायके लिये धीरामगर्भ-वर्द्धन भगवान् धीरामका  
अमृत उपदेश यहाँ उद्घण करते हैं।

धीरामगर्भ कहने लगे, 'भाई लक्ष्मण ! यह जगत्, यह  
राज्य, यह देह जो तुम देख रहे हो, यदि गण्य होगा  
तो इस देहको सिद्धासनपर बैठानेके लिये तुममें भरे राज  
भोगोंमें विरा करनेवाले लोगोंका गारा करना चाहते हो,  
तो तुम्हारा परिधम सफल होगा। किन्तु लक्ष्मण ! क्या  
यह सब राज्य है ? देखो भाई ! इन्द्रिय-मुण्य हो या राज-  
मुण्य, सभी मुख-भोग बादलोंमें विजलीकी चमकके समान  
घबल है। अभी है और दूसरे क्षणमें नहीं। जीवकी यह  
धायु भी, जैसे धाममें सपे हुए छोड़ेपर पड़ी हुई जलकी  
बूँद उसी क्षण सूख जाती है वैसे ही, क्षण-स्वामी है।  
जिस भोगके लिये मनुष्य इतना दुःखदाता है, उसको यह  
कय भोगेगा ? सर्पने मेंढकको मुँहमें निगल लिया है,  
मेंढक सर्प-कण्ठके कोमल मांसको मच्यर मानकर उसे  
भोगनेकी इच्छा करता है, ऐसे ही कालरूप काल सर्पके  
गालमें पड़ा हुआ यह मनुष्य भी अनित्य भोगोंको छोड़ना नहीं  
चाहता। यह मनुष्य भोगोंकी प्राप्तिके लिये दिन-रात अत्यन्त  
क्लेश सहता हुआ धन उपाजन आदि लौकिक और वैदिक  
अनेक प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। परन्तु सोचो ! यहाँ  
भोग कौन करता है ? मनुष्य क्या एक बार भी इस बातपर  
विचार करता है कि इन भोगोंको शरीर भोगता है या  
आत्मा ? देह, देहीसे भिन्न पदार्थ है, देह जड़ है और देही  
पूर्ण आनन्दस्वरूप है। जो देहसे देहीको अलग देखते हैं  
वे तो चैतन्यमें—पुरुषमें कोई भी भोग देख नहीं पाते।

फिर इस संसारके सम्मेलनपर भी तो विचार  
करो। पिता, माता, स्त्री, पुत्र, भाई, ये सब मिलकर  
संसारमें रहते हैं। यह सम्मेलन भी बहुद-ले लोगोंके रस्तेकी  
धर्मशास्त्रोंमें टिके रहनेकी भाँति अणुस्थायी है। थकावट  
और प्यास मिटाकर कौन कहीं चला जायगा, इस बातका  
पता है ? अथवा इस पारिवारिक सम्मेलनको

नहींके प्रसारमें बंधक थावे हुए कारोंके समान अति  
काचका समको। जयके प्रसारमें कहीं कहीं काने हुए  
प्रकारके काट पकड़ मित्र जाने हैं और फिर देखनेकी  
मर्तोंकी कोंयें था-गाकर कड़ी भरपूर हो जाने हैं।  
ही प्रसारके कर्मोंके लेकर को-पुत्र, माता पितापति  
होना है और कर्मका भोग पूरा होने ही कौन कहीं  
सना है हूय बाणको कोई नहीं दंग सकता।

लक्ष्मी—धन धापाकी भाँति अजड है। शीघ्र  
तारकी नार्थ पण्य मजूर है। धी-मुण्य स्व-मुण्यके  
तुल्य है और मनुष्यकी धायु भी अत्यन्त कम है, उग  
मनुष्य अभिमानने नहीं सकता। कइता है कि 'मैं  
धनको, इन भोगोंको तथा भोगूँगा !'

लक्ष्मण ! इस संसारमें कितने दिनोंकी रिपयि है।  
तो रमके समान है। फिर इस स्वप्नवत् अस्थायी संसार  
भी मनुष्य निरन्तर रोग, शोक और अनेक प्रकारके  
अवाञ्छितोंसे अंतर्गत रहता है। यह संसार आधुनिक  
गन्धर्व-नगरकी भाँति देखते-ही-देखते विडोत हो जाता  
है। हाय ! यह मूढ़ मनुष्य इस अत्यन्त अस्थायी संसारको  
स्थायी बनानेके लिये दीवालपर दीवाल चुनता है और  
तालोंपर ताले लगाता है, न मालूम क्या-क्या करता है।  
सूर्यदेवके उदय और अस्तके साथ-साथ प्रतिदिन मनुष्यकी  
धायु क्षय हो रही है। कितने लोग निरन्तर बृद्धावस्था  
पीडित हो रहे हैं और कितने मर रहे हैं तथापि मनुष्य  
एक बार भी यह नहीं सोचता कि इस देहका भी राज  
होगा। यथाश्रो, मनुष्य क्यों नहीं समझता ? पिछले दिनों  
की अपेक्षा अगले दिनोंमें नये-नये भोग मुझको मिलते  
रहेंगे, मूल्य मनुष्य केवल यही सोचता रहता है। पूर्ण  
अवस्थाको हर लेनेवाले कालके वेगको वह एक बार भी  
नहीं देखता। कचे घड़ेके जलकी भाँति जीवका जीवन प्रति-  
क्षण क्षीण हो रहा है। बीमारियाँ बैरियोंकी भाँति देहा  
सतत प्रहार कर रही हैं। बृद्धावस्था बाधिनके समान मुँह  
सामने गत रही है और मृत्यु तो समयकी बात देखती है  
साथ साथ घूमकर मानों यही कह रही है कि अब सम-  
थावे और कय मैं इसका संहार करूँ ।

जो शरीर मरनेके बाद दो दिन भी पड़ा रहने  
कृमि—कीटमय हो जाता है। सिंह-व्याघ्रादिके खानेसे जो  
विघ्नके रूपमें परिणत हो जाता है और जला देनेपर जो

एक वन जाता है, ऐसे कृमि-विष्टा-भस्मकी संज्ञावाले इस शरीरमें 'मैं' वन का अभिमान करके लोग कहते हैं कि 'हम जगत्-शक्ति राजा हैं।' स्वप्न, अस्थि, मांस, विष्टा, मूत्र, शुक्र और रक्त इत्यादि शरीरमें निरन्तर विकारको प्राण हो रहे हैं, सनत परिणामको प्राण हो रहे हैं। बताओ, ऐसा विकारो और परिणामी शरीर आत्मा कैसे हो सकता है ?

भाई लक्ष्मण ! जिन क्रोधादि दोषोंसे पुत्र शरीरपर आस्था करके तुम त्रिलोकको दण्ड करनेके लिये तैयार हुए हो, वे सब दोष देहाभिमानसे ही तो प्रच्छ होते हैं। 'शरीर ही मैं हूँ' इसी बुद्धिका नाम अविद्या है; 'मैं शरीर नहीं, मैं चित्-स्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। अविद्या ही माया है। आत्माको अनात्मा मानना ही माया है। इसमें विषेप-माया जगत्की कल्पना करती है और प्रावरण-आया ज्ञानको ढक रखती है। अविद्या जन्म-मरण-रूप संसारमें डेलु है और विद्या संसार दुःखका हरण करने-वाली है। अतएव जो इस दुःखसागरसे उरना चाहते हैं उन मनुष्योंको सर्वदा विद्याका अभ्यास करना चाहिये। 'शत्रुमुत्सृज ! मैं शरीर नहीं चैतन्य हूँ, मैं आत्मा हूँ।' जो आत्मस्थ झोड़कर सर्वदा ऐसा अभ्यास करते हैं, उनका प्रयान कर्तव्य काम, क्रोध, क्रोभादि शत्रुओंका नाश करना होता है। इनमें क्रोध तो मोघविद्याका यज्ञ ही विषम वैरी है, यह सदा-सर्वदा मोघके मार्गमें विष्ट ढाला करता है। क्रोधके चरममें होकर ही मनुष्य भिता, भाई, सुहृद् और सखाका वध करता है। क्रोध ही मनस्तापका मूल कारण है। जिस समय मनुष्यके अन्तःकरणमें क्रोधका घेग बढ़ जाता है उस समय उसको 'क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये' इस बातका कोई विचार नहीं रहता। इसीलिये वह धर्मके प्रति दुर्भाव्य धोलने लगता है और इसपर भी यदि क्रोध शान्त नहीं होता तो उन्हें मारने लगता है, एवं पीछे मदान् दुःखको प्राप्त होता है। इसप्रकारसे क्रोध मनुष्यको संसारमें बाँध रखता है और धर्मका ध्य करता है, अतः भाई लक्ष्मण ! तुम क्रोधका त्याग कर दो ! क्रोध मनुष्यका महाघनु है। कारण, वह क्रोध ही मनुष्यकी शत्रुको बुझा जाता है। लोग क्रोध-वश विष खाकर आत्महत्या भी कर लेते हैं।

घन इत्यादि पशुओं की जो हृद्दा है, वह अन्तरोत्तर बनती रहती है इसीलिये इस हृद्दाको वैतरणी नदीकी उपमा

दी गयी है। जैसे धमराजके मार्गमें वैतरणी एक अति भयंकर दुस्तर गदी है और पापियोंको उसे पार करना पड़ता है इसी प्रकार संसारमें यह हृद्दाका नदी भी दुर्बुद्धि संतारी मनुष्योंके लिये दुस्तर है। भाई ! सन्तोष ही—वाद्य विषयोंकी हृद्दाका त्याग ही—नन्दनवनकी नाई आनन्द-दायक है और मनकी निवृत्ति-रूप शान्ति ही कामधेनु है। कामधेनुसे हम जो वस्तु चाहते हैं, वही वस्तु वह देती है। इसीप्रकार शान्ति भी दो चार ब्रह्माण्डोंकी प्रासिकी अघेरा भी अधिक सुख प्रदान करती है। लक्ष्मण ! इन सब कारणोंसे तुम इस समय यदि शान्तिकी सेवामें लग जाओ तो तुम्हारा कोई भी शत्रु नहीं रहेगा। कारण, शान्तिकी सेवा तुम्हारी रष्टि आत्माकी धोर कर देगी तब तुम देखोगे कि आत्मामें कोई विकार नहीं। फिर शत्रु उत्पन्न ही कहाँसे होगा ! आत्मा न इन्द्रिय है, न मान है, न बुद्धि है और न प्राण है। वह इन सबसे श्रेयक वस्तु है। आत्मा शुद्ध है, स्वयं-प्रकाश है, निर्विकार है और निराकार है। देह, इन्द्रिय, प्राण इत्यादि तो आत्माके विषयीत हैं, अर्थात् वे अशुद्ध हैं, परमकाश हैं, विकारी हैं और आकारवाले हैं। मनुष्य जबतक शरीर, इन्द्रिय, प्राणादिते श्रेयक इस आत्माको नहीं जान लेता जबतक उसे जन्म-मरणकी प्राप्ति होती है और यह संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोगता है। अतएव तुम आत्माको सर्वदा शरीर, मन, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियोंसे श्रेयक मानो। इस तरह मानते हुए बुद्धि प्रवृत्तिका अफलम्वन करके बाहरसे लोभम्वनहार को। खेद न करो। सुख-दुःख तो प्राण्य है, जो चाये उसीको भोगते जाओ। फिर तुम कर्म करके भी कर्ममें लिप्त नहीं होओगे। हे राघव ! बाहरसे सर्वत्र कर्तृत्वपन दिखानेपर भी तुम भीतरसे शुद्ध-स्वभाव हो अतएव तुम कर्मफलसे निर्विस्त रहोगे।

लक्ष्मण ! यह जो तुम्हारे प्रति मैंने ज्ञानका उपदेश किया, इन सब बातोंको सदा-सर्वदा हृदयमें सोचते रहो तो फिर सारे संसारके दुःख भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे।'

'संसारदुःखैरिहोर्दीप्यते न कदाचन'

श्रीभगवत्पुत्रे यदी मार्यता है कि हमजोत इस ज्ञानको कभी न भूलें।

# रामायणकी विशेषता

( लेखक — कविगणेश श्रीरामचन्द्रकृत )



रामायणमें एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मन्त्री-बाणोंकी बहुत बड़ा करके दिग्गता है। विना-पुत्रमें, भाई-भाईमें, पति-पत्नीमें जो धर्मका सम्बन्ध और प्रीति एवं भक्तिका सम्बन्ध है, रामायणमें उसे इतना

महत्त्व दिया है कि वह बहुत राक्षसोंमें महाकाव्यके उपयुक्त हो गया है। प्रायः देश-जय, शत्रु-विनाश और जो प्रपञ्च विरोधी पक्षोंके प्रचण्ड आवाज-प्रतिवाज गाधारयुक्त महाकाव्यके बीचमें आन्दोलन और उद्दामताका सम्भार करते हैं। किन्तु रामायणकी महिमाने राम-राज्यके युद्धका आशय नहीं लिया है, इसमें कथित युद्धघटना श्रीराम-चन्द्र और सीताके दाम्पत्य-प्रेमको ही उद्गम्य करके दिग्गताके उपलक्ष्यमात्र है। पुत्रके लिये पिताका आशापालन, भाईके लिये भाईका आत्मत्याग, पत्नीका पतिव्रत, पतिका पत्नीव्रत और प्रजाके प्रति राजाका कर्तव्य कर्तव्य हो सकता है, रामायणमें यही दिखाया है। इसप्रकार भक्तिविशेषके परकी बातोंका इतना विराट् वर्णन करना किसी देशके महाकाव्यमें उचित नहीं समझा गया। इससे केवल कविका ही नहीं किन्तु सारे भारतवर्षका परिचय मिल जाता है। गृह और गृहधर्म भारतवर्षमें कितने और कैसे उच्च थे वे इससे जाने जायेंगे। हमारे देशमें गृहस्थाश्रमको भी अत्यन्त उच्च स्थान था, यह काव्य इस बातको प्रमाणित करता है। गृहस्थाश्रम हमारे निजके सुख और आरामके लिये नहीं या किन्तु गृहस्थाश्रम सारे समाजको धारण करता था और मनुष्यको यथार्थरूपसे मनुष्य बनाता था। गृहस्थाश्रमको भारतवर्षीय आर्थिक-जातिकी गाँव समझना चाहिये और रामायण उसी गृहस्थाश्रमका काव्य है। इसी गृहस्थाश्रम-धर्मको रामायणने सहृदयके समयमें—वनवासके दुःखमें डालकर उसे विशेष गौरव प्रदान किया है। कैकेयी और मन्थराके कुचक्रोंके कठिन आघातोंसे अपोष्याके राजगृहके नष्ट हो जानेपर भी इस गृहस्थ-धर्मकी दुर्बल दृढ़ताको रामायण प्रोत्थित कर रही है। रामायणने बाहुबल, विजयकी अभिलाषा और राष्ट्र-गौरव इन सबका परित्याग कर केवल शान्तरसात्त्विक गृहधर्मको ही कल्याणके अक्षुजलोंसे अभिसिक्त कर उसे सर्वोच्च सिद्धांतपर विराजित किया है।

राक्षसीय वादक कहेंगे कि इस प्रकार वर्णन अतिशयोक्तिमें परिणत हो जाता है। इस गृहस्थ-धर्मकी सीमागा नहीं हो सकती कि जिसका सीमाका और किम जगत् कल्पनाकी सीमाका उचित आशय अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाती है। किन्तु रामायणकारोंने कहा है कि रामायणमें कथित-वर्णन प्राप्त हो गया है, उनमें इन परी कहेंगे कि प्रकृतियोंके लिये जो अति-प्राहण है, दूसरेके लिये हीमा

जिन जगत् जो आदर्श प्रकृतित है उसे परिभाषामें अतिशय किया जाय तो उसे बढ़ाई होता नहीं कहेंगे। हम अपने कानोंमें कितने शब्दोंको ही सुन सकते हैं हमकी सीमा है, वह नहीं कि बतला सकता है और हम सुनने हो जायें। हमारे धर्मकी सीमाके बाहर कोई चिन्ताकर हमारे धर्म ही काफ़ डाले किन्तु निर्दिष्ट सीमाके बाहर हमारे धर्म शब्दोंको कभी प्रवृत्त ही न करेंगे। काव्यमें कथित भावके उद्भावनके सम्बन्धमें भी यही बात घटती है।

यदि यह बात सत्य है तो यह बात सर्वत्र माननी जा रही है कि रामायणकी कथा भारतवर्षके किसी आंशमें अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हुई है। इस रामायण भारतवर्षके आवाल-वृद्ध-बनिता और ऊँच नीच लोगोंमें केवल शिषा ही नहीं पायी है किन्तु आनन्द प्राप्त किया है, इसे केवल उन्होंने शिरोधार्य ही दिया सो नहीं, इसे उन्होंने हृदयमें भी स्थान दिया है। उनका धर्मराज ही नहीं, काव्य भी है।

श्रीरामचन्द्रजी जो एक ही कालमें हमारे निकट रहे और मनुष्य हैं, रामायण जो एक ही कालमें हमारी और प्रीतिभाजन हुई है, वह कभी सम्भव नहीं होना, यदि इस महाग्रन्थकी कविता भारतवर्षकी हृदयमें केवल कवियोंकी कपोल कल्पना ही होती और वह हमारे व्यवहारके कार्यमें न आ सकती।

इसप्रकारके ग्रन्थको यदि विदेशी समालोचक अपने काव्योंके विचारके आदर्शके अनुसार समझें तो उनके देशके सहित तुलना करनेमें भारतवर्षकी एक ही भी विशेषता प्रकट होती है। रामायणमें भारतवर्षके चाहा यही पाया है।

( रामायणी-वर्ण )

# रामचरितमानसके लोकप्रिय होनेका कारण

(लेखक—रायबहादुर अदधवासी लाला श्रीसीतारामजी नौ०५०)



सारके जितने काम हैं सब किसी-न-किसी प्रयोजनसे किये जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचनाका कारण यह लिखा है—

स्वप्न-सुखाय तुलसी रघुनयनाया—

गोपानिनन्धमतिमन्तुलमातनेति . ॥

काव्य-रचना यशके लिये की जाती है, धन कमानेके लिये की जाती है, भ्रमंगल नाशके लिये की जाती है और उपदेशके लिये की जाती है, पर यहाँ तो प्रयोजन केवल अपने धर्म-कारणका सुख है, जिसे संस्कृतमें पर-निर्वृति कहते हैं, परन्तु गोस्वामीजी अपने चक्रकर एक बात और कहते हैं—

वरनौ रघुवर निसद जस सुनि कलिकतुष नसाय ।

कहनेवाले कह सकते हैं कि गोस्वामीजीने अपने धोलाभोंको यह जाजब दिया है। पर ऐसा नहीं है, उनका मुख्य प्रयोजन तो यह है—

मेरे मन प्रबोध जेहि होई ।

क्योंकि राम-कथा 'निज स्वदेह मोह-भ्रम-हरणी' और 'भवसरिता तरणी' है। आश्रय यह है कि गोस्वामीजीके स्वार्थसे संसारका परमार्थ कैसे सिद्ध हो गया। हमारी समझमें यह धाता है, कि उन्होंने अपने समयके सारे प्रचलित धर्म ध्यानसे देखे थे। सम्भव है कि पहले उनका मन भी भारी-दोख था, परन्तु उन्होंने अपने सन्तोषके लिये जो राह निकाली, वही संसारके लिये धर्म-मार्ग बन गया। 'नानापुत्राद्यनिगमागम' मथकर जो रस निकाला वह भारतवर्षके लिये रसायन बन गया। सो भी कहुँही दवा नहीं, मित्र मित्र, स्वित्राले मत्र, यद्, सुगहरस, पाल, काके एक गये। शैव और वैष्णव जो एक दूसरेका सिर चोढ़ रहे थे, सबको यह रस भ्रष्टा जगा। विघातेकी बात है कि इसमें ऐसी कौन-सी बात थी।

किसी कविकी रचनाको समझनेके लिये कविके समयकी देह-रक्षा जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। वह कितनी बातें समयानुसृत कह जायता है जो तात्कालीन इतिहास जाने बिना समझमें नहीं आ सकती। गोस्वामीजीने कविताश्रीमें लिखा है—

एक तो कराळ कलिकाल मूल-मूल रामे

कोढ़मेंकी खाज-सी सनीचरी है मीनकी ।

इसको समझनेके लिये इतिहास और उपोत्पिप्रास दोनोंकी शरय बेनी पड़ती है। इस पंक्तिकी व्याख्या बड़ी रोचक है। इसके लिये हम भावाके सुप्रसिद्ध विद्वान् और मानसके अनुसारी सर जार्ज ग्रियर्सनके नोट्स (Notes) से एक घंटाका अनुवाद उद्धृत करते हैं। 'तुलसीदासजीके जीवनकालमें शनैश्चरने मीनराशिमैं दो बार प्रवेश किया, पहले चैत सुदी १ संवत् १६४०में, जो ज्येष्ठ संवत् १६४२ तक रहा और दूसरी बार चैत सुदी २ सं० १६६१ में। इस बार 'मीनकी सनीचरी' ज्येष्ठ सं० १६७१ तक रही, और इसी सनीचरीमें सुखमानोंका अत्याचार बनारसमें बहुत बढ़ गया था।

भारतवर्षमें जितने नये नये मत निकलते हैं, सब अपनेको सच्चा कहते और दूसरेको पाखण्ड बताते हैं। स्वामी रामानुजका जन्म सं० १०७४ वि० (१०१७ ई०) में हुआ। स्वामी रामानुज अपने गुरुसे लड़ते रहे। शैवों और वैष्णवोंकी लड़ाई और शैवोंकी हारका एक उदाहरण यह है—

तिरुपतिके एक मन्दिरमें मूर्तिके विषयमें बड़ा विवाद था। शैव कहते थे कि शिवकी मूर्ति है और वैष्णव उसे विष्णुकी मूर्ति बताते थे। निर्णय करनेके लिये विष्णुके चिह्न (शंख चक्र) और शिवके चिह्न (त्रिशूल) दोनों मूर्तिके धारो रखे गये और पट बन्द कर दिया गया। सवेरे पट खुला तो मूर्तिके शायोंमें शंख और चक्र देखे गये और त्रिशूल, दूध, पत्र, धा, चक्र, सब कुछ, धुआ, पत्तल, शैवों और वैष्णवोंका विरोध बढ़ता गया। स्वामी रामानुजके शिष्य कूरेश घोर उनके गुरु महार्णव दोनोंको शैवोंकी प्रेरणासे तात्कालीन भोजराज्यने सुखदापा और उनकी भाँखें निकलवा डालीं। ये विरोध अतक है। काञ्ची (Conjeeveram) में अब भी दो भाग हैं—(१) शिवकाञ्ची (२) विष्णुकाञ्ची। कहा जाता है, शैव विष्णुकाञ्चीमें जाते या वैष्णव शिवकाञ्चीमें जाते हैं तो अपनी भाँखोंपर पट्टी बाँध लेते हैं।



इतना शिष्यहर भय हम उन मित्र मित्र महोंका उल्लेख करेंगे जो गोस्वामीके समयमें प्रचलित थे। और निनको गोस्वामीजीने अपने मानसमें ग्रह्य किया है।

(१) शंकरस्वामीका वेदान्त-स्वामी शंकराचार्यका प्रादुर्भाव धानकलकी गणेश्याके अनुसार विक्रम संवत्की ११वीं शताब्दीमें हुआ था। इन्होंने वेदान्त (वात्सरायण) सूत्रकी एक टीका लिखी है जो 'शंकर-भाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके दूसरे अध्यायमें इन्होंने अपने समयके प्रचलित धर्मोंका खण्डन किया है। इस सम्प्रदायमें शिवकी उपासना की जाती है और ये ही शैव स्वामी रामानुजके विरोधी थे। स्वामी रामानुजने भी वेदान्त-सूत्रपर अपने मतानुसार एक टीका की है जो 'श्रीभाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है।

स्वामी शंकराचार्यने यौद्धोंको पराम्न करके भारतवर्षके बाहर निकाल दिया और गया आदि प्रधान यौद्ध-सीधोंको हिन्दू-वीर्य बना दिया था। उनको शिपाका प्रभाव धामकल भी हिन्दू-धर्मपर बहुत है। गोस्वामीजीके समयमें इस मतके अनुयायी बहुत थे। इसलिये पहला धर्म, जिसकी छटा देखनेका प्रयत्न करना उचित समझा गया, शंकरका वेदान्त था, और रामचरित-वर्णनमें वेदान्त लानेके लिये शंकर-गिरजाका संवाद उसमें मिला दिया गया, या यों कहना चाहिये कि रामचरितके पलानेवाले श्रीरामके परमभक्त एक शंकर ही हैं। स्वामी शंकराचार्य भी शंकरके अवतार माने जाते हैं। इसी कारण शंकरके मुँहसे शंकरका वेदान्त मानसमें बाल दिया गया। मानसके पढ़नेवाले जो वेदान्तसे परिचित हैं, गिरिगिजा-शंकरके संवादमें पद-पदपर वेदान्तके सिद्धान्त देखेंगे।

(२) रामानुज (लक्ष्मण)का श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय— दूसरा मत जो गोस्वामीजीके समयमें धूमधामसे प्रचलित था, स्वामी रामानुजका था। स्वामी रामानुजके सम्प्रदायको श्रीसम्प्रदाय कहते हैं और उनके अनुयायी इस देशमें साधारण रीतिसे आचारी कहलाते हैं। रामचरितमानसमें इस सम्प्रदायके समर्पक श्रीब्रह्मयज्ञी हैं। हम अपनी इस कल्पनाकी पुष्टिमें मुँही सुखदेवलाजजीकी टीकासे एक ग्रंथ उद्धृत करते हैं—

“बन्दौ लक्ष्मण १६-जल-जाता। सीतल सुखद भक्त-सुख-दाता।।  
रूपति हीरति विमल पताका। दंड समान भयो जस जाता।।

● पर टीका कठि-संभव ४९७० में लिखी गयी थी और प्राचीन टीकाओंमें आधुनिक प्रामाणिक है, इसमें बहुत गरीबी ने योग्य है। आशुकर कठि-संभव ५०३० है।

“ता पात्रे श्रीवर्मिन्ना-यति ब्रह्मयज्ञीके शरण-कृत भक्ति सीतल और सुन्दर भक्तियोंके आनन्ददाता तित्तो ई प्रथम करता है।

“कपूर्वीरतुं शरदिन्दुवचनं-  
पीताम्बरं सारसिखमनन्तनारीन्द्र।  
य धोर्मिलालरितमूषणमभितानं-  
रामानुजं मय मनोमयदं निजनाम् ॥

“श्रीरामचन्द्रकी कीर्तिरूपो उज्ज्वल पताकाको जित्त पद दृश्य-रूप है अर्थात् ब्रह्मयज्ञीका सम्पूर्ण साहस और रामके प्रतापके उदय हेतु है, देखो यज्ञ-रत्न और रंगुने और परशुराम-भागमन। ऐसे ही सब कार्यओंमें जानो श्री पातों सुगोंमें देखा ही है। देखो, सतयुगमें अनन्तान्त होकर अपने सहस्रमुखोंसे केवल भगवद्गुणानुसार ही गायो और आपर रामावतारमें मुष्टिकादि दैत्योंका बप ही जगुना और इक्ष्वाणुपुरका कर्ण इत्यादि केवल भगवद्गीर्ति-के निमित्त है। और कलियुगमें सब पाखण्ड, बौद्ध, धर्म और कुट्टियों के भगवद्कीर्तिरूपी पताका निराश्रय हो गयी तब श्रीब्रह्मयज्ञी यती होकर अपने सुहृद्गुरु बने उसको उठाकर खड़ा कर दिया। जैसे पशुपुराणमें मर्त्य ब्रिखा है।

“पासण्डे बहुले लोके कुट्टीजनसंकुले।

कलौ वैष्णवसिद्धान्तं पुनर्कदायते यती ॥

“अर्थात्-जब जैन, बौद्ध, धार्मिक, पाखण्ड कलियुग फैल जायगा और कुट्टिन करके संसार भर आध्यात्म वैष्णव-सिद्धान्तको फेरि यती उद्धार करेंगे।

“अनन्तं प्रथमे युगे द्वितीये लक्ष्मणं तथा।

तृतीये बलरामश्च कलौ रामानुजो यती ॥

“अर्थात्-जो सतयुगमें अनन्त मये औरदोतोंमें ब्रह्म और आपरमें बलदेव सोई कलियुगमें श्रीब्रह्मयज्ञी यती होईने।”

हम अपनी धोरसे इतना और बजाना चाहते हैं कि स्वामी रामानुजके अनुयायियोंने कम से-कम दक्षिण-देशमें श्रीराम-आनकीकी उपासना फैलायी और आपर दिन भी भारतवर्षमें अनेक राम-आनकीके मन्दिर इसी सम्प्रदाय-पालोंके ध्यधिकारमें हैं।

(३) स्वामी रामानन्दका सम्प्रदाय—तीसरा त स्वामी रामानन्दका है। स्वामी रामानन्दका जन्म त्यागराजमें संवत् १४०० विक्रमीमें हुआ था। आचार्यों तीर रामानन्दि्योंका ऋग्ना उठनेसे पहले हमजोग गनते थे कि स्वामी रामानन्द भी पहले आचार्य ही थे। परन्तु अब स्वामी रामानुजने रामानन्दीय सम्प्रदाय-का कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता। स्वामी रामानुजकी शिष्याको देशकी पुरासे कोई सम्बन्ध न था, न उनके समयमें परदेशियोंके धानेसे इस देशमें बढ़े वे ऐसे परिवर्तन ही हो गये थे जैसे कि उनके पीछे तीन सौ वर्षोंमें हुए। अखनौतीके याजारमें हजारों मनुष्योंका फौसी टकाया जाना, दिल्लीमें तैमूरकी आजाते नर-सुपदोंका प्रमत्नाना, ऐसी घटनाएँ उस समय न थीं, जिनका असर हृदय देश-सुधार करनेवालेपर न पड़ता। रामानन्दने यह तो देखा कि हमारे देशके पदक्षित चमार जो बड़ी रचिके गध गायका मांस खाते हैं, मुसलमान होकर खेल बन गये तीर जिन हिन्दुओंने उनसे पूजा की और उनका तिरस्कार रपा था, विनेत्री जातिका बल पाकर, उन्हींको चिदानेके ब्रह्मे से मो-बध करने लगे। स्वामी रामानन्दने लोधा कि इना दलितोद्धार किये काम नहीं चलता। इस भारतवर्षका यह भोजन मांस नहीं है, यहाँ आर्योंने इतने प्रकारके

घरों, खादित फलोंका आधिकार किया है कि मांस खाये बिना भी मनुष्य अच्छे-से-अच्छा भोजन करता और हृष्ट-पुष्ट रह सकता है। स्वामी रामानन्दने चमारसे कहा कि 'तुम मांस खाना छोड़ दो और कपटी बाँध लो तो हम तुम्हें अपनी पंगलमें भोजन करते हैं।' उनका एक प्रथम शिष्य रैदास चमार था। इतना ही नहीं उन्होंने कबीर छलाहेको भी अपनी शिष्य बनाया। भविष्यपुराणमें लिखा है कि स्वामी रामानन्दका एक शिष्य अयोध्या पहुँचा और यहाँ उसने अपने मुसलमानोंको वैष्णव बना लिया। यही धान-कन्नकी शुद्धि और दलितोद्धार है। उन्होंने यह सिखाया कि राम-जानकीके घरधोंमें भक्ति होनेसे आचारका काम नहीं। इस भक्तिका सबको अधिकार है, और-

जिनके त्रिय न राम बँदेही।

तत्रिये तिनहँ केटि बैरी सम यद्यपि परमसनेही॥

मानसमें स्वामी रामानन्दके स्थानापन्न भरत हैं। गोस्वामीजी आप रामानन्दी सम्प्रदायके हैं और अयोध्या-कायदे के अन्तमें स्पष्टरूपमें कहते हैं कि—

कलिकाल तुकसीसे सठनि दृष्टि रामसंगुल करत को।

जिसका अर्थ यह है कि स्वामी रामानन्दकी शिष्याने मुझे औरधुतापनीका भक्त बना दिया। ●

## आह्वान

काम क्रोध लोभ सरदूपण त्रिषिर तुल्य  
वासना विकल सूर्पणसा-सी सताती है।  
दस इन्द्रियोंका मोह दसमुख रावण है  
जिससे विवश बुद्धि-सीता दुःख पाती है।  
असुर-समूहोंसे ध्ययित हो हृदय-भूनि  
अति अकुलाती, धरराती, बिलसाती है।  
सोये किस ओर करुणाके धाम रामचन्द्र।  
याद इस ओरकी तुम्हें क्यों न आती है ?

बड़ेबनहार विम, पन० १०, पन्-११०, ११०, पन० मार० १०, पन०

● इनके इस विवरण विद्वानों और राजाजगके वैविधोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये मैं ही मीठा काने लिख रहा हूँ। अथवा  
१० पर दूरी आस्था की आवश्यकता है।



देखकर मलकते उसे प्रणाम किया तथा बोले—'आप मेरी धर्म-माता हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अपने कुपुत्र और महान् सपके प्रभावसे ही मनुष्यको आपके (विभीषण-सदृश भर्षोंकी जननीके) चरण-दर्शनका सीमाप्य मिजता है। आज मुझे आपके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे श्रीकौरव्याजी हैं, वैसे ही मेरे ब्रिये आप हैं।' बादमें देकसीने मातृभावसे धारीवादि दिया और भगवान् धीराम-को विधपति जानकर उनकी स्तुति की। इसके बाद 'सरमा'ने भगवान्की स्तुति की। भरतको सरमाका परिचय जाननेकी लुधा हुई, उनके इशारेको समझकर 'इजितविरू' श्रीरामने भरतसे कहा, 'यह विभीषणको साध्वी भायाँ हैं, इनका नाम सरमा है। यह महाभाग्य सीताकी प्रिय लखी हैं, और इनकी प्रकृति बहुत दृढ़ है।' इसके बाद सरमाको समपौचित उपदेश दिया। फिर विभीषणको विविध उपदेश देकर कहा के 'हे निष्पाम! देवताओंका प्रिय कार्य करना, उनका

धराराध कभी न करना। लड्डामें कभी मनुष्य आर्वें तो उनका कोई राक्षस यत्र न करने पावे।' विभीषणने प्राज्ञानुसार चलना स्वीकार किया।

तदनन्तर पापस खौटनेके लिये सुमीव और भरतसहित श्रीराम विमानपर चढ़े। तथ विभीषणने कहा 'प्रभो! यदि लड्डाका पुत्र ज्यों-क्यों बना रहेगा तो पृथ्वीके सभी लोग यहाँ आकर हम लोगोंको संत करेगे, इसलिये 'क्या करना चाहिये?' भगवान्ने विभीषणकी बात सुनकर पुत्रको बीचमेंसे तोड़ बाढा और दश भोजनके बीचके टुकड़ेके फिर तीन टुकड़े कर दिये। तदनन्तर उस एक एक टुकड़ेके फिर छोटे छोटे टुकड़े कर डाले, जिससे पुत्र टूट गया और यों लड्डाके साथ भारतका मार्ग पुनः विविध हो गया। यह कथा पद्मपुराणसे ली गयी है।

—रामचन्द्र.

## गोस्वामीजीकी निष्काम-भक्ति

( लेखक-पं. श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिय बी० ए०, बी० एल० )

श्रुतिं वा मनते मां जनाः सुप्रतिनोऽर्जुन ।

भक्तं विज्ञानुर्योषीं ज्ञानी न्व मरतैव ॥

(गी० ७।१६)

६  
स श्लोकमें भगवान् धीरुष्यने भर्षोंकी चार श्रेणियाँ बतलायी हैं। चार्ते, जिज्ञासु और धर्षार्षी, ये तीन श्रेण्ये सधाम भर्षोंके हैं। चौथी श्रेणी ज्ञानी धर्षार्ष निष्कामी भर्षोंकी है। इनमें प्रथम तीन श्रेण्यीके भक्त निरप्रयोजके हैं। भक्तिी चरम सीमा निष्काम भक्ति है और इस भक्तिने प्राप्त कर लेनेपर भर्षोंके ब्रिये और कुपु पाण्डुनीय हों रह जाता। इसप्रकारकी भक्ति संन्यस करेदुपी होती। धर्षार्ष इसका कोई हेतु नहीं होता। इनमें स्वार्थका लक्ष्य नहीं रहता। कहेदुपी धर्षार्ष निष्काम भक्ति ही भक्तिी पराकाष्ठा है और इस भक्तिीसाधनका एक किणु भी बिपने पान कर लिया, उसने बहकर बहभागी इस लसारमें और और दूसरा हो लकता है ?

किणु, संन्यसमें ऐसे बिषये ही भक्त हुए हैं जिनके चरमें निष्काम भक्ति प्राप्तसे ही उत्पन्न हुई हो। अन्य

प्रकारके भक्त प्रारम्भमें निरप्रयोजीके ही भक्त थे, किणु भक्तिी निरन्तर निरपुत्र हृदयसे धन्यास करते करते धन्यमें उगहोंने भी निष्काम भक्तिी प्राप्त कर लिया, जैसे कि भूष धादि। प्राचीन कालमें हम इसप्रकारकी प्रहेदुकी बल्लभ भक्ति बाजक प्रह्लादमें पाते हैं। किसी स्वार्थ धयवा हेतुको लेकर प्रह्लादके हृदयमें भगवद्भक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी। बाजक प्रह्लाद दिन-रात पृथ्विहभाषने भगवद्भक्त्या का शरण एवं कीर्तन किया करते थे। उगहें स्वर्ग इस बातका कुत्र भी ज्ञान नहीं था कि वे क्यों और किणु ब्रिये नाम-शरण किया करते हैं। उनके हृदयमानसमें भक्तिी निरमैत्र प्रोत् जनवतरूपमें प्रगहित हो रहा था और इस भक्ति-भागीरथीमें चरने लाग्णं मन, प्राय, इन्द्रियको निरमजित करनेमें उगहें एक प्रकारका अनिर्बन्धीय आनन्द प्राप्त होता था। बस, इनके सिवा उनकी भक्तिी, उनके धर्मिता भगवद्भक्त्या-शरणका और कोई दूसरा कारण था हेतु ही नहीं था। प्रह्लादकी भक्तिने प्रत्यक्ष दोष कर भगवान् उगहें कर देना चाहते थे तो प्रह्लादने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया है—

यस्त आशिश आशासे न रा भूतः रा वै वगिह ।  
आदासानो न वै भूतः स्वामिन्याशिश अदमनः ॥  
न स्वामी भूयतः स्वप्नमिच्छन्गो रति अशिशः ॥

( भागवत ७।१०।४-५ )

अर्थात् हे भगवन् ! जो आरामे घरदान पानेकी आशासे अर्थात् किसी उदरेय या मनोरथको छेदर आरामकी भक्ति करता है वह सच्चा भक्त, सच्चा सेवक नहीं, वह तो प्रेमका अनिया है, वह तो भक्तिका सौदा करता है, और उसके बदलेमें प्रभुने कुछ चाहता है। ऐसे ही जो स्वामी अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिये घरदान देना चाहता है वह भी सच्चा स्वामी नहीं। फिर भी यदि मेरे भक्ति मेरी सेवापर प्रसन्न होकर वर देना ही चाहते हैं, तो यही वर हूँ कि "कामानां हृदयसंग्रह भवत्युद्गणवरम्" मेरे हृदयमें कामनाओंकी कभी उत्पत्ति ही नहीं हो। अहा ! निष्काम भक्तिका कितना सुन्दर परिपाक है। धन्य है इस भक्तप्रवर राजककी यह निष्काम भक्ति और धन्य है वह देश जिसने ऐसे भक्तशिरोमणिको पैदा किया। अपने ऐसे भक्तोंको लक्ष्य करके ही तो भगवान्ने उद्वसते कहा है—

न किञ्चित्साधवो धीरा मत्का ह्यकान्तना मम ।

बाम्भन्त्यपि मया दत्त फेवत्यमपुनमवम् ॥

( भागवत १।१०।३४ )

अर्थात् मेरे जो अनन्यभक्त भक्ति करनेपर भी कैवल्य या मोक्षकी इच्छानक नहीं रखते, वे पवित्र और धीर भक्त ही मुझे ध्यारे हैं।

अर्थात्, यह तो हुई प्राचीनकालके निष्काम भक्तोंकी बात। अब हमारे हिन्दी-कवि-कुल-कमल-दिवाकर भक्तिभास्कर गसाई तुलसीदासजीकी निष्काम भक्तिका मनुना सीजिये और उनकी भक्ति-सुधा-नसकी चारानी खलिये। अहा ! तुलसीकी अनन्य निष्काम भक्तिका क्या कहना है ? वह तो पुण्य-सखिला भागीरथीकी विमल-धवल-धारासे भी निर्मल, स्फटिकसे भी बढ़कर स्वच्छ एवं प्राणसिता और हृदुसे भी बढ़कर मधुर है। उसकी मधुरतामें जो मादकता है वह संसारमें अन्वय्य तुलसीम है। उस मादकतामें जो एक बार मल हो गया, तुलसीकी अनन्य-भक्तिका रसावृत जिसने पानकर लिया, उस निरदल प्रेमका एजकजा हुआ प्याला जिसने अपने मुँहमें धौल मूँदकर डेंडेल लिया, उसने बढ़कर भाग्यवाद् इस संसारमें और धीर है ? तुलसीदासजीकी निष्काम भक्ति किजनी उष,

गम्भीर एवं सारम है, इसका अन्वय्य उन्ही अंतोको नि सच्चा है जिन्होंने तुलसी-साहित्य सरोवरमें पानी छगाये है। 'विनयपत्रिका' में अपने हृदये मगलवत उन्ही प्रति आत्म-निवेदन करते हुए हम महामहिम मानने निष्काम-भक्ति-परिपूरित जो हृदयोद्धार प्रकृति हैं जो तो वास्तवमें अनुमन, अनुजनीय तथा अद्वितीय हैं। जो विरक्त-साहित्यको ईद जाह्ये, धार्मिक अन्वय्य अन्वय्य खलिये, फिर भी आरामको 'विनय' के पद निवेदने प्रतीत होंगे और आरामके मुखसे बरस निकल संयुक्त हैं तुलसीदास और धन्य है उनकी निष्काम भक्ति। 'विनयपत्रिका'के मंगलाचरणमें ही तुलसीदासजीने अपने भक्तिभावका यों परिचय दिया है—

मौगत तुलसीदास कर जेरे । बसहि राम तिय मनत सेरे ।

तुलसीदास कर जोड़ कर माँगते तो हैं, लेकिन तो माँगते हैं ? हम संसारी जीवोंके समान घट-दौड़, मल मयादा, स्वर्ग, यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं माँगते। वर माँग हतनी ही है कि 'बसहि राम-तिय मनत सेरे' ए ही वरदान चाहिये, हृदयमें एक ही आकांक्षा है, दिवने ही चाह है और वह यही है कि—

अर्थ न धर्म न कामलक्षि, गति न यहाँ निर्बल ॥

जनम जनम रति रामपद, यह वरदान न अल ॥

उन्हें इसके सिवा और कुछ नहीं चाहिये। नि चाहनेको और रह ही क्या बाता है ? एक हुले ही तुलसीदासजी कहते हैं—

'तुम तो बड़े दीनदयालु हो। तुम्हारे समार वर भी दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारा नाम ही गुरीबिदास है। फिर एक बार क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसीदास मो'। बस, मैं हृदयसे ही रुठायो हो जाऊँगा।' तुलसीके हृदय ही खालसा है. एक ही अभिजापा है; वह यह है कि 'ज्यों त्यों तुलसी रुपाड चरन-सरन पावे।' चाहे जिन लो हो तुलसीदासको रुपासागर प्रभुकी चरक-राज नि। और मुनिसे, महात्मा तुलसीदास अपना मनेभिन अपने भक्तिसे इसप्रकार व्यक्त करते हैं—

बहौन सुगति सुमति संपति कहु रिपि सिधि विनुड वर्य ।

हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ो अनुदिन जियन ॥

सुगति नहीं चाहिये, सुमति नहीं चाहिये, सन्धि, अवि, सिद्धि, बढ़ाईं कुछ भी नहीं चाहिये। बस, वर ही

तो केवल यही कि रामचंद्रमें दिन दिन अनुराग बढ़ता जाय।  
 ते वह अनुराग भी कैसा? हेतुरहित धर्माय किसी हेतु या  
 लक्ष्यको लेकर नहीं, बिल्कुल धर्मदुःख, निःस्वार्थ।  
 हे हेतुरहित अनुराग ही क्यों चाहिये? और कोई  
 मित्राया या छात्रला क्यों नहीं? इसीलिये कि—

अथ नापदि अनुराग जागु जद त्यागु दुरासा जी वे।  
 नुसे न काम-अग्नि तुलसी कहूँ विषय-भोग बहु घीते ॥

—कामनाओंका तो कोई अन्त ही नहीं। इतपर  
 तो यदि विषय-भोगकी याचना की जाय तब तो वह  
 प्रमाप्ति और भी धक्क बढेगी। अतएव नायमें 'अनुराग  
 मे' ऐसा उपाय भव करना चाहिये, क्योंकि नायमें 'अथ  
 अनुराग जग जायगा तो फिर कामका नाम ही नहीं रहेगा।'

अहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।

गुणार्हणी अपने मनुष्य कहते हैं कि यदि दान ही देना है तो—  
 तुलसीदासवर किरपा करिय मागि दान देहु आज।

—भक्तिचा दान दीजिये, और किसी बस्तुका नहीं।  
 महात्मा तुलसीदासजीके इस निष्काम भक्तिभावका परिचय  
 हम उनके अनुसूच्य ग्रन्थ रामायणमें अनेक स्थलोंपर पाते हैं—

परमानन्द उपासतन मन-परिपूरन काम।  
 प्रेन-भाषि अनपायनी देहु हमहिं शीतल ॥  
 माय एक बर माँगौ, राम इषा करि देहु।  
 जनम जनम अनु-पद-कमठ, कबहु धैरि नहिं नेहु ॥

रामदास तुलसी अपने पापसे, माझिकमें एक बर माँगने  
 हैं, वह बर यदि तुलसीके माझिक देनेकी कृपा करें तो इन  
 रूपमें हैं कि अपने चरख-कमजमें अन्म-अन्म स्नेह नहीं  
 पटने हैं धर्माय इन संसारमें भले ही बार-बार धाना-धाना  
 रहे, लेकिन इस माझिकके चरख-कमजमें तुलसीका नेह  
 पटे नहीं, बढ़ता ही रहे। लेखक-लेखमात्रका किना  
 मुन्दर बिच सीका है। बहिहारी है इन संसय लेखक-भावकी।  
 तुलसीजीने लेखकको पाकर कौन माझिक अपनेको चम्प  
 नहीं मानेगा? एक दूसरे प्रसंगपर गुणार्हणी बतलाते  
 हैं कि इस शरीरसे उन्हें हमनी ममता मेम क्यों है? केवल  
 हमीजिये कि—

राखर कल रघुचरिणर प्रेमा। हेदि विन कोउ न करै ठेमा ॥  
 रि ठन राममयी मे चरै। तयो मेदि मन्ना अविचरै ॥  
 कोदि ठे कबु मित्र स्वाराव होई। हेदिपर अमरा बर सब कोरै ॥

इस शरीरसे ही तो राम-भक्ति करती है? तो  
 फिर इस शरीरपर ममता क्यों न हो? लोग स्वार्थके लिये  
 हीतो ममता करते हैं और तुलसीका भी एकमात्र स्वार्थ अपने  
 प्रभुकी भक्ति करना है। अच्छा, अब तुलसीदासजीके हृदयकी  
 एकमात्र छात्रला क्या है सो भी उन्हींके शब्दोंमें सुन  
 लीजिये—

सूरी निजिधि ईबना गाड़ी। एक कालसा उर अति नाड़ी ॥  
 रामचरन बारिज नम देखौ। तब निज जनम सुफल करि लेलौ ॥

इसमें भक्तिका चरम उत्कर्ष ही निष्काम भक्ति है। इस  
 प्रकारका एक भी निष्काम भक्त जिस देशमें हो, वह देश  
 धन्य हो जायगा, उस देशके निवासी अपने कृतार्थ हो जायेंगे।  
 माता वसुन्धरा भी ऐसे ही भक्तको पाकर अपनेको  
 सनाया समझती है, जैसा कि भारद्वाजियुगमें लिखा है  
 'भोरन्ति विद्यते मूलानि देवताः सनाया येवं भूनेवति।' 'पितृ-  
 राण्य ध्यानन्दिन सो उठते हैं। देवताएण्य नाचने छगते हैं और  
 पृथ्वी सनाया हो जाती है।' ऐसे ही भक्तोंके घरमें भगवान्  
 हो जाते हैं—

'अहं नकपरापीनो हस्तान्तर इव इति ॥  
 हापुभिर्मंस्तहदमो मकैर्मंजनप्रियः ॥

'मैं स्वयं स्वन्न नहीं हूँ, मैं भक्तोंके भागीन हूँ।  
 मक्तोंने मेरे हृदयको ग्रम लिया है।' महात्मा तुलसी  
 इसी कोटिके निष्काम भक्त थे। भगवान् रामचन्द्रमें  
 उनकी अनन्य भक्ति, निष्काम प्रेम एवं एकनिष्ठ अनुराग  
 था। अपने हृदयच आनकी-जीवनपर बलि मानेके  
 लिये उनका हृदय आजुब हो रहा था। 'वानर-जीवनटी  
 नलि जेहो।' सचमे रामदास टरते न! हृदयका कोई भाव  
 छिपाया नहीं। हृदयका कण्ठ विचरुख उगमोचन कर दिया,  
 कजेमा काटकर रख दिया, दिख सोखकर दिला दिया और  
 दिया ही अपने हृदयमें निरन्तर बजनेवाली वह अनुराग-  
 काताकी श्वाकसमी अरपट, जिनमें एककर सारे विषय-भोग  
 भसीभूत हो रहे थे। गुणार्हणीकी रामायणके पानेवाछे  
 इन देशमें आसों नहीं करीजो होंगे। किन्तु हममेंमे किनेको  
 उनकी-जीमी निष्काम भक्तिचा शानका भी प्राप्त हो सका है।  
 हममेंमे किनेके आंग विषयभोगमे विरग होकर उनके समान  
 रामदास बननेमें समर्थ हुए हैं। अभी गो इन कामदास ही  
 बने हुए हैं। काज हममेंमे किनेके ऐसे हैं जो तुलसीदासकी  
 भक्ति-भारतीयकी सुशीलक-कारामे अपने जीवन हृदय-  
 शरोकरको सरयिय करके इसमें रामचन्द्रचरम अनुपम बननेकी

पेश करते हैं। महात्मा गुजरातीदास अपनी रचित रचनाओं के रूप में हमारे लिये जो भगवन्त विधि छोड़ गये हैं उनका उपयोग करना भी तो इस नहीं जानते। आज जो हमारे हृदय में धरागत एवं हाहाकारकी ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है, भक्ति-गंगाकी पावन पुण्यमयी धाराएँ, बहिन होकर हमारा हृदय जो निराशा एवं निराशानन्दके कारण मीरग हो रहा है उसे एक बार फिर भक्ति-मुष्णामृतसे सारसित करने और मुरझाये हुए प्राणोंको भक्ति-राजीवनीसे सजीवित करनेका काम यदि कोई कर सकता है तो यह है गुजरातीदास और उनका अमर साहित्य। इसलिये हे भारतवासियो! आइये आज हम सब मिलकर भक्तिपूर्वक गुसाईजीके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवान्से यह धरयाचना करें कि—

कामिहि नारि विमारि त्रिमि, शोभिहि प्रिय त्रिमि दाम ।

त्रिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लगहु मोहि राम ॥

## राम-चरित-शिचा-सार

पुरुषोत्तम श्रीरामने, लेकर मानव-रूप ।  
कहकर नहीं, करके हमें, शिक्षा दी बहुरूप ॥  
हमको रखना चाहिये, सदा उसीका ध्यान ।  
यदि तत्सेवक-भावका, है हमको अभिमान ॥  
पिता-वचनसे राज्य तज, करके विपिन-मयान ।  
दिललाया पितु-भक्तिका, शुभ आदर्श महान ॥  
शबरीके जातिथ्यको, कर स्वीकार सहर्ष ।  
क्या न पतित-उद्धारका, दिललाया आदर्श ?  
वनचर-सेना साथ ले, सबल शत्रु निज जान ।  
दिया सङ्गठन साकिका, परिचय हमें महान ॥  
रिपु-सौंदर सहृदय निरख, दिया उसे सम्मान ।  
राज-नीति-सौजन्यका, यह आदर्श महान ॥  
माष्ण-कुल-सम्भूत भी, रावणका कर घात ।  
'जन-पीडक सब बन्ध है,' बतलायी यह बात ॥  
बतलाया संसारको, कर सीताका त्याग ।  
'राजाका सर्वस्व है, एक प्रजा-अनुराग' ॥  
गुरु-आज्ञासे भी नहीं, करके पुनः विवाह ।  
एक-पत्नी-व्रतकी हमें, दिललायी है राह ॥  
हाय ! भूलता जा रहा, यह आदर्श समाज ।  
हम पद-पदपर पा रहे, अतः पराभव आज ॥

नन्दकिशोर शा 'किशोर' काव्यनीर्य ।

## गुसाईजी और सीता-वचनवाच

(लेखक—श्री. मोशार रावेन्द्रमिहरो)



ता सीताजी सीताजीकी प्रीति-मूर्तिको देवता कोधारगढ़के ध्यानवास दिया जाना, और किन्तु श्रीराम-सदृश मयादा-पुरमे उनके हृदयको चोट कर दी—हृदयको दर्द है। कुछ लोगोंका तो मन है कि यह प्रसंग ही कति रामजी कभी ऐसा अन्याय-कार्य कर ही नहीं सकते! ऐसे धीरामके पद्य-चन्द्रमें कर्लकरूप मानते हैं।

यहाँ इस कार्यके न्यायान्यायपर बहस करने खेलके बहुत बड़ छाने और विषयान्तर हो जानेका इसलिये हम यहाँ केवल इसी बातपर विचार करें गुसाईजीने इस प्रश्नको किस दृष्टिसे देला है, तथा कैसा वर्णन किया है।

सबसे पहले यह बात भण्डी तरह समझावश्यक है और गुजरातीदासजीके प्रयोगका अर्थपर ध्यान देने पर हमें पता चलने लगेगा कि गुसाईजी कितनी कविके पोखे बाल बन्द करके नहीं चले हैं। कविता, और चरित्र-चित्रण आदि सभी विषयोंमें उन्होंने हलौ आचार लेते हुए भी अपनेपनको कायम रखा है। कथानकको भी उन्होंने वाल्मीकि या किसी पूर्ववर्ती कवि अनुसार ज्यों-का-त्यों नहीं रलकर अपनी विशेष दृष्टि समाजकी आवश्यकतानुसार परिवर्तित, परिवर्धित परिशीलितरूपमें सबके सामने रक्खा है। राम को वही जो वाल्मीकि, कालिदास या अथवाभारतमायकके हैं, कि गुजरातीके राम वही होते हुए भी उन सबसे भिन्न हैं—केवल गुजरातीके राम हैं। उनके चरित्रमें उन्होंने समाजकी आदर्श-भूत आवश्यकताओंका समावेश किया है। जिसे अनुपयोगी समझा उसे छोड़ दिया, जिसे उन्होंने समझा उसपर विशेष जोर दिया, और जिसे भारत समझा उसे छोड़ भी दिया है। उदाहरण देनेसे कथा बड़ जायगा। अतः इस विषयको यहाँ छोड़ने है। कथानकोंके विषयमें भी उन्होंने इसी परिपरीक्षा कायम किया है।

सीता-वचनवाचकी कथा भी इसीमेंसे एक है। गुसाईजीकी सीता, वाल्मीकि या कालिदासकी सीता

बहुल मित्र है—उसी प्रकार उनका 'सीता-वनवास' दोनों कवियोंसे मिश्र है। आगेके वर्णनसे यह बात तब हो जायगी।

वाल्मीकि तथा उनके आधारपर काबिदासका वर्णन तत्प्रकार है, कि श्रीराम सीताके विषयमें लोकापवाद नते हैं, जिससे उन्हें दुःख होता है और वे लोकापवादके लिये सीताके त्यागका निरचय करते हैं। जन्ममरणको जाकर सीताको गंगापर छोड़ जानेके लिये आज्ञा देते हैं। तेजाने एक बार तपोवन देखनेकी रुचि भी प्रगट की थी, तब उसीके बहाने जन्ममरणपर बैठाकर सीताको वाल्मीकि-राक्षसके समीप छोड़ जाने हैं; वाल्मीकि उन्हें आश्रय देते हैं और वहीं जन्म-कुशका जन्म होता है। बहुत दिनों बाद प्रथमच-यज्ञके अवसरपर जन्म-कुश रामायण गाते हुए प्रयोग्यामें आते हैं। वाल्मीकिजीसे सीताका भी पता प्रगटा है, श्रीराम उन्हें प्रहय करना चाहते हैं, पर सीताजी अपने पतिव्रताकी साधी देनेके लिये भूमिकी गोदमें स्थान ढालती हैं। उनके सतीत्वको सिद्ध करनेके लिये भाला चुपकी कट होकर अपने गोदमें स्थान देती हैं।

निरपराधिनी सती सीताको इसप्रकार दुःख सहते या धन्यायसे पीड़ित होते देखकर मनुष्यके हृदयपर गहरी गेट पहुँचना तथा किसी किसीकी क्रोध धाना भी स्वाभाविक है, किन्तु गुसाईंजीने गीतावलीके बारह पदोंमें इस कथानक-कृत जित प्रकार वर्णन किया है, उससे ये भाव बहुत कम हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र बहुत काल राग करनेके पश्चात् हृतके हुए लसे लोकापवाद सुनते हैं और एक ओर राज्यधर्म तथा दूसरी ओर पत्नीव्रतधर्म, इन दोनोंके असमझमें पड़कर विचार करते हैं। गुसाईंजीका वर्णन हृदयकारक है—

पाठिने अतिपार अत प्रियं प्रेम नाक सुमाउ ।  
होइ द्विउ किहि मौंति निउ सुनिचारहिं चित चाउ ॥

प्रेमके लिये श्रीरामके मनमें कितना स्थान था और वह किस प्रकार अन्योन्या था, इसे गुसाईंजीने आगे चलकर मञ्जीमति दिखलाया है—

राम जुगल सौप मनु प्रिय मनहिं प्रान प्रियाउ ।  
परम धानन प्रेम परिमति, समुति तुलसी गाउ ॥

बिना अनन्यता और अन्योन्याके प्रेम कोई बलु नहीं। यदि श्रीका धर्म पतिव्रत है तो पतिका धर्म भी पत्नीव्रत है। यह सम्बन्ध प्रेमका है, अधिकारका नहीं।

श्रीरामको सीताके पतिव्रत तथा गुण-श्रीलकी ओर देखकर उन्हें त्यागमें बहुत ही असमझस होता है—

मेरे ही सुख सुखी सुख अपने सपनहु नाहिं ।

मोहिनी गुन मोहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ॥

सचमुच 'राम-श्रीय-रहस्य'को तुलसीदासजीने अच्छी तरह समझा था। रामजीने हृदयहीनकी तरह बिना कुछ कहे सुने ही सहसा अपने मनसे ही उनका त्याग नहीं कर दिया, सीताको सजाह लेकर ही उन्होंने ऐसा किया—

दूत मुख सुनि लोकपुनि घर धरनि पूछी आय ।

इस वदसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस प्रगाढ़ प्रेम तथा धर्मका सम्बन्ध इस प्रकार नहीं तोड़ा जा सकता बौर कि अन्य कवियोंने वर्णन किया है। श्रीराम यदि सीताजीसे सजाह नहीं लेते तो सचमुच वे बड़े भारी दोषके पात्र हमके जाते।

फिर श्रीरामने जन्ममरणको केवल सीता-त्यागकी ही भाशा नहीं दी, किन्तु उन्हें वाल्मीकिजीको सौंप जानेका काम भी सौंपा—

वाल्मीकिं मुनीस आराम आरगहु पहुँचाइ ।

जन्ममरणकी भी उन्हें केवल गंगा-तटपर छोड़ नहीं आये, वह उन्हें वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंपकर आते हैं—

आये लवन के सौपी सिय मुनीसहिं अनि ।

- यद्यपि वाल्मीकिके पास छोड़ना रूप त्याग उठना निचुर नहीं तथापि त्याग तो है ही। सीताजीको अवरय ही बना भारी भाषात लगा और उन्होंने जन्ममरणसे दोन होकर कहा—

लवनलाल इपाल । निपटहिं बारवी न निरापि ।

पावनी सब तापसनि ज्यों राजवरम निषारि ॥

कितनी गहरी मार्मिक चोट है! पत्नीरूपते न सही, राजधर्मके अनुसार एक तापसीके रूपमें तो सीता अवरय ही पावनीय है, वह भी तो एक प्रजा है!

काबिदासने भी सीताके मुखमे यही कहलाया है—

नृपरम वर्णाग्रमपाठनं वत्

र एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।

निर्बिरिता-वेवप्रतस्तपाईं—

ठपसि सत्मानमवेतानीया ॥





एक प्रसिद्ध लेखकने बुद्धदेवकी जीवनीको सौर-जगत्-रूपक बताया है। किसीको महाभारतभरमें विप-तप्तके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दीखता। इस गीके भावुकोंसे रामायण भी नहीं बची है। कोई कहते कि इसमें रूपकके द्वारा उत्तर-पक्षसे दक्षिण-पक्षमें धार्य-यताके प्रचारकी बात कही गयी है। कोई कहते हैं कि मैं गूढ़ शब्दोंमें कृपिका वर्यन किया गया है। और भी एक बातें हैं—'आदिकाण्ड पीछेसे जोड़ा गया है, रामायण-प्रकृत धारम्भ अयोध्याकायस्थे है, खड्गाकायधमें इसकी गति हो गयी है, उत्तरकायध प्रसिद्ध है इसमें तो कोई देह ही नहीं! सीतानिवासन और लक्ष्मण-वर्जन आदि गणोंकी कल्पना पीछेसे हुई है।'

इन सब बातोंके सिवा यह भी सुना जाता है कि रामायणकी मूल कथा वाल्मीकिरामायणमें नहीं है, बौद्धों-भी रामायण है। कौन कह सकता है मूलमें उसीको कर कुछ न्यूनार्थिक फाके वाल्मीकिरामायणकी यह कथा ही रही गयी है? अनियोंकी भी रामायण है इसके अतिरिक्त मायण क्या एक बोही ही है? अण्यत्तरामायण, अस्तुत-मायण इत्यादि कितनी रामायणें हैं। भारतकी विभिन्न भाषाओंमें रामायणकी कहानियोंमें कितना भेद है! फिर 'बाह्योपमें-भी रामायण है। कौन-सी ठीक है? सबकी तजोचना करनेपर शायद रामायणी कथाके मूलका कहीं ता फने।'

वर्तमान आलोचना-प्रणालीमें इसप्रकार कितनी ही तें पैदा हुई हैं सम्भवतः अभी और भी होंगी।

परन्तु यह सब थोड़े से पण्डितोंकी बातें हैं। पण्डितों-में आलोचना परस्पर पण्डितोंके लिये ही है। भारतके गणामर जनसाधारणका इससे बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। इन आलोचनाओंकी कोई खोज-खपर नहीं रखते। उनकी 'दिमें रामायणका आकार कुछ दूसरा ही है। उनके सामने रामायणका स्थान सर्वथा स्वतन्त्र है। रामायण उनके जीवनका, समाजका और धर्मका आधार है। सुख-दुःख और सत्य-विषयमें रामायण उनके उज्ज्वल मधुर प्रकाशसे पय दिखलाकर खे चलती है। रामायण उन्हें सन्तवना देती है। रामायण उनके हृदयमें अविच्छिन्न आनन्द और परम शान्तिकी धारा सँधती है। जीवनके प्रतिदिनके कर्तव्योंके सामने रहकर रामायण उनकी परिचायना करती है। सब तो यह है कि भारतमें एक ओर रामायण तथा

दूसरी ओर महाभारत है, इसीसे भारतके जनसाधारण मनुष्य हैं, नहीं तो वे पशु बन चुके होते। वेद-वेदान्त-दर्शनों-ने भारतका हतना उपकार नहीं किया है, जितना रामायण और महाभारतने किया है। रामायण-महाभारत है, इसी-लिये भारत भारत है।

मान लिया कि रामायणमें आदिकाण्ड पीछेसे जोड़ा गया है, अथवा रामायणके या रामायण-संस्कृत पुराण, राम-लक्ष्मण, भरत-सीता आदिकी कोई ऐतिहासिकता नहीं है। यह भी स्वीकार कर लें कि रामायण वाल्मीकिजी-की रचना नहीं है। कुछ भी हो या न हो, हतना तो सत्य ही है कि 'रामायणका आदिकाण्ड नामक किसी पुस्तकका एक अंश है। रामायण नामक एक ग्रन्थ है, और वह किसी एक भारतीयद्वारा ही लिखित है, तथा उसमें राम-लक्ष्मण आदिका एक चित्र है, एक भाव है।' वस, इतनेसे ही वह भारतके जनसाधारणकी वस्तु हो जाती है और वे उसके जो चाहते हैं सो पा जाते हैं।

भाव और रूप दो वस्तुएँ हैं। भाव प्राय है, रूप देह है। जिस चित्रमें सिर्फ कुछ उज्ज्वल रेखाएँ खिंची हैं, पर भावका विकास नहीं हुआ है, वह चित्र चित्र ही नहीं है। जिस काव्यमें कतिपय सुन्दर-सुन्दर शब्दोंका समावेश है, परन्तु भावकी व्यञ्जना नहीं है, वह कु-काव्य है, ठीक प्राणहीन देहकी भँति वह सर्वथा निरर्थक है। काव्यका पाठक चाहता है भाव-रस। शब्द भाव और रसके वाहन है, इसीलिये वह शब्दको भी चाहता है। काव्यका विषय सभी समय ऐतिहासिक हो, इसके कोई माने नहीं है। ऐतिहासिक हो भी सकता है और नहीं भी। विषय कल्पित भी हो सकता है। इससे भावके स्फुरणमें कोई बाधा नहीं होती। भावके कार्यमें कोई रुति नहीं होती। भाव आनन्दमय और शान्तिमय है, जिसके चित्तमें भावका उद्रेक होता है, उसीको वह आनन्द और शान्ति प्रदान करता है।

बड़े बड़े समालोचक और लेखक कहते हैं कि श्रीराम नामक पुण्य कभी कोई नहीं हुए। उनकी ऐतिहासिकताका कोई प्रमाण नहीं है। मान लिया, ऐसा ही है। श्रीरामकी कोई रूप-मूर्ति कभी भी ही नहीं, परन्तु उनकी इस भाव-मूर्तिने तो कितने हृदयोंको पवित्र और उज्ज्वल बनाकर उन्हें शान्तिमय बना दिया है। हम तो भावमूर्ति ही चाहते हैं, वही हमें मुक्तिकी ओर ले जाती है।

राम, लक्ष्मण, भरत, सीता इत्यादि हमारे लिये एक-एक भाव हैं। राम, सीता इत्यादि नाम सुनते ही हमारे



वर्तमान रहेगी तबतक उसके साहित्य-भवनपर तुलसीदासकी यशःपताका फहराती रहेगी ।

रामायण हमारे प्यारे आर्यावर्षका प्राचीन इतिहास है । उससे हमें राजनीतिकी शिक्षा प्राप्त होती है । उसमें उपदेश भरे हुए हैं । वह एक उत्तम काव्य है । वह पग-पगपर हमको सीधे और सधे मागंका विद्युद्गम कराती है ।

यदि हममरिसे रामायणके अन्वय विषयोंपर विचारकर प्रत्येकके विषयमें विस्तारपूर्वक छिटा जाय तो एक अलग ही ग्रन्थ तैयार हो सकता है । किन्तु अधिक न लिखकर प्रत्येक विषयके सम्बन्धमें हम दो-दो चार-चार बातें ही यहाँपर पाठकोंको सुनाते हैं ।

### इतिहास

इस ग्रन्थसे समस्त भारतवर्षका परिचय मिलता है । इससे पता चलता है कि उस समय हमारे देशमें क्या-क्योंका आसन कितना ऊँचा था, गृह और बाह्य-धर्मको खी-गुरूप किस प्रकार पहचानते थे ? तथा राजा और प्रजामें क्या सम्बन्ध था ? सभी एक दूसरेके किस प्रकार शुभेच्छु रहते थे ?

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

जामु राज प्रिय प्रजा तुझारी । सो नृप अवसि नरक अतिकारी ॥

पाठको ! ऐसे राजा आजकल आपको कितने दिखायी देते हैं जो निष्कण्ट-भावसे ऐसा कह सकते हैं ? श्रीरामचन्द्रजी इन शब्दोंको अपने संकटके समयमें कह रहे हैं । उनको अपने सुल-दुःखका इतना ध्यान नहीं है जितना कि अपनी प्यारी प्रजाका है । वे फिर भरतजीसे कहते हैं—

सो विचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजा पतिवार सुझारी ॥

प्रजाकी भक्ति भी राम-धर्मवासके समय देखने योग्य है—

रामु चहत आँते मखेट विषादु । सुनि न जाइ पुर आरतनादु ॥

प्रजा कह रही है—

बहौ रामु तहँ सबुह समाजू । बिनु रघुवीर अवच कहि काजू ॥

चले साम अत मंत्र दद्राई । सुरदुर्गेन सुल सदन बिहाई ॥

बहुत समयमानेपर भी प्रेमके कारण वे नहीं छीटते—

किप घरन-उपदेश धनेरे । लोग प्रेमवत फिर्हि न फेरे ॥

बहूरी अगह वे कहते हैं—

अटत राम राजा अवच मरिय मरु सुब कोष ।

रामराज्यमें मनुष्योंकी स्थिति भी कैसी थी—

बरनासन निज निज घरम निरत बेदपय लोग ।

चलई सदा पावहि सुख नहि मय सोक न रोग ॥

दैहिक दैनिक नौतिक तापा । रामराज नहि काहुई भ्यापा ॥

सब नर करहि परसपर प्रीती । चलई स्वधर्म निरत सुखीरिती ॥

चारिहु चरत घरम जग माई । पूरे रहा सपनेहुँ अथ नाई ॥

× × ×

नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीन । नहि कोउ अनुष न लच्छनहीन ॥

सब निर्दम धर्मरत पुनी । नर अरु मारि चतुर सब गुनी ॥

सब गुनेन्य सब पंडित ग्यानी । सब इतग्य नहि कपटसयानी ॥

× × ×

एक-नारि-रत-रत नर हारी । तेमन बच नम पति-दित-कारी ॥

रामायणसे हमको उस समय जो प्रथाएँ आर्योंमें प्रचलित थीं वे भी मालूम होती हैं । जैसे जन्मोत्सव, नामकरण, मुचरन, यज्ञोपवीत, स्वयंवर, विवाहकी अनेक प्रथाएँ, राज्यभियेक, वरदान, दाहक्रिया, अतिथिसत्कार, युद्धकी अनेक प्रथाएँ सती होना आदि । 'रामायणमें आर्योंकी प्रथाएँ' इसी शीर्षकमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है । किन्तु पाठक स्वयं रामायणमेंसे इन प्रथाओंको आसानीसे जान सकते हैं ।

इस ग्रन्थमें रथभूमिकी घटनाओंका भी वर्णन है—

ढाढ़े महीपर-सिखर कोटिन्ह विनिच विभि गोहा चले ।

पहरत जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलम्बके बादले ॥

मकँट विकट मट जुटत कटत न लहत तन जर्जर मप ।

गहि सैल तेइ गढपर चलाबहि जहँ सो तहँ मिसिचर हप ॥

× × ×

संपानि जनु सगिकर छौँडेसि उरग जिमि अडि लणही ।

रहे पूरि सर धरनी गगन त्रिसि त्रिदिसि कहँ कपि माणहीं ॥

लंकाकायमें अधिकांश मार-काटका ही वर्णन है ।

रामायणसे श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वके भी कई राजा-महाराजाओं

और अधियों सुनिषोंका हाथ मालूम होता है । जैसे

चित्रकेत, शिवि, हरिश्चन्द्र, कन्यप, दधीचि, जमदग्नि आदि ।

उस समय अधि और सुनि अपने लोपोच्छसे क्या नहीं

कर सकते थे ? श्रीरामचन्द्रजी वाकमीकिजीसे कहते हैं—

तुम्ह रिफलदरती सुनिनाथा । निस्त्र नदर जिमि तुम्हरे हाथा ॥

भारतजी बरिष्ठजीके विषयमें कहते हैं—

गुरु विवेकसागर जग जन्ता । जिनहि विरर कर बरर समाना ॥

उस समय शत्रुन आदिभर भी लोकोका पूर्ण विधाग था । इसका उत्प्रेर रामायणमें जगह-जगह किया गया है । यथा—

'राम तोय तनु ससुन जनाये । परकहि मंगल अंग गुदाये ॥'

'सूर्पनसाहि आगे करि लीनी । अगुमरुप भुक्ति नारा हीनी ॥'

'जब अति भयो विरह उर दाहू । फरकेउ बाग नयन अर बाहू ॥'

'असकुन होन लगे विधि नाना । रोवहि बहु मृगान्त सर-स्वाना ॥'

धरमी रोजनेसे रामायणमें धौर भी कई ऐतिहासिक घातें मिल सकती हैं ।

### राजनीति

यद्यपि तुलसीदासजीको राजकाजी घातोंसे कोई सम्बन्ध नहीं था, यह धर्मोपदेशकमात्र थे । तिसपर भी रामायणमें उनके राजनीति सम्बन्धी उच्च कोटिके विचार हमको कई स्थानोंमें मिलते हैं । इसीसे मालूम होता है कि उनको इतिहास-व्यवस्थापर भी धी । नीचे इस विषयमें उनके कुछ विचार दिखाये जाते हैं । वे मन्थरासे कहलवाते हैं—

कोउ नृप होउ हमहि का हानी । बेरि छाड़ि अब होव कि रानी ॥

किसी किसीका कहना है कि तुलसीदासजीकी इस उक्तिका प्रभाव हमलोगोंपर बहुत बुरा पड़ा है और उनको ऐसा नहीं कहलवाना चाहिये था, किन्तु ऐसा कहनेवाले यह भूल जाते हैं कि ये शब्द एक कुटिल, दुष्ट और नीच दासीसे तुलसीदासजीने कहलवाये हैं न कि किसी बुद्धिमान और धार्मिक पुरुषसे ।

आगे धीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

'रहहु कहु सनकर परितोषू । नतर तात होहहि बड़ दोषू ॥

जासु राज प्रिय-प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक-अधिकारी ॥

रहहु तात अस नीति विचारी । सुनत लषन मे म्याकुल भारी ॥'

धारमीकिजीसे रामचन्द्रजी रहनेके लिये स्थान पृष्ठते हुए कहते हैं—

मुनि तापस जिनते दुख लहहीं । ते नरेस त्रिनु पावक दहहीं ॥

रामचन्द्रजी सुमन्तको विदा करते हुए कहते हैं—

कहव सेंदेश भरतके आप । नीति नतजव राज-पद पाए ॥

पाउनु प्रसहि कर्म मन बानी । सेवहु मातु सकल सम जानी ॥

आगे बरिष्ठजी कहते हैं—

संभिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना ॥

गुरु निगारको देखिये । वह भारतकोच जान  
शुन शंका करता हुआ कहता है—

भारत न राजनीति उर आनी । तब कहेक अब प्रीतन हनी ॥

तुलसीदासजीने राज-मरुदा उपश्लेष भी कई स्थानों  
किया है । वे जानते थे कि इस रोगमें कई राजा मर चुके  
राजनीतिको भूल जाने हैं, त्रियका परिधाम उनके कारण  
कारण होता है । यथा—

'कही तात तुम नीति मुहार । सक्ने कठिन राज-मद मार ॥'

'भरतहि हार न राज-मद, निवि हरि हर पर पाए ।

कचहु कि काँसी सीहरन्दि, छोर-सिन्धु विनस्तम ॥'

'सहसबाहु मुरनाय त्रिसंकू । केहि न राज-मद दीन्ह कलंकू ॥'

राजनीतिके अनुसार सुगन्धकी महिमाध गार भी  
तुलसीदासजी जगह जगह करते हैं । यथा—

'जाइ सुराज सुंदस सुसारी । भई भरत गति तदि अनुसारी ॥'

'अगम बास बन संपति भ्राजा । सुखी प्रजा ननु पाइ सुराजा ॥'

कोल-किरातोंकके मु'हने गुसाईंजी करवाते हैं—

रामरूपातु निवार निवाजा । परिजन प्रजा बहिय जस राया ॥

चाहे कोई भी कार्य हो राजाको उसे प्रत्येक जाति और  
सम्प्रदायके अगुओंके मनके अनुसार करना चाहिये ।

'गुरु-पद-कमल प्रनाम करि बैठे आनसु पाए ।

विप्र महाजन सीधिव सब जुरे समासद आए ॥'

'भरत नितय सादर सुनिय करिय विचार बडेरि ।

करव साधुमत लोकमत नृप नय निगम निजोरि ॥'

ये उदाहरण सिर्फ अयोध्याकायसे लिये गये हैं । वहाँ  
इसीसे अथवा अन्य कायदोंसे सैकड़ों उदाहरण लिये जा  
सकते हैं ।

### उपदेश

रामायणमें पग-पगपर हमको उपदेश मिलते हैं । वहाँ  
पर उनका थोड़ा-सा दिग्दर्शनमात्र किया जाता है । यथा—

(१) विद्वानों और गुरुओंका आदर—

'मुनि आगमन मुना जब राजा । मिलन गयेउ ले निरसना ॥'

'गुरु आगमन सुनत रघुनाया । द्वार आइ नायउ पर माया ॥'

(२) प्रतिज्ञा—

'रघु-कुल-रीति सदा बलि आई । प्राण अहु नव बचतु न आई ॥'

(३) पिताका पुत्रपर व्याह—

सब दुख दुसह सहजहु मोहीं । लोचन-ओट राम जनि होहीं ॥

(४) माता-पितामें भक्ति—

सुनु जननी सोह सुत बड़ मागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥

(५) स्त्रीकी पतिपर प्रीति—

जहँ लगी नाय नेह अरु नाते । पिय विनु तियहि तरनिहुँते ताते ॥

तनु धनु धामु वरनि पुरारजू । पति-निहीन सब सोक-समाजू ॥

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।

गुह्य विनु रघु-कुल-कुमुद-विधु सुरपुर नरक समान ॥

(६) सासकी पतोहपर प्रीति—

त्रिंजनमूर्ति त्रिभि जेगलत रहैकें । दीपनति नहिं दारन कहेकें ॥

कलपनेकि त्रिनि बहु बिधि लायी । सींचि सनेह सकल प्रतिपायी ॥

(७) सौतेली माका प्रेम—

गुह्येहि भागु रामु बन जाही । दूसर हेतु तात कहु नाही ॥

× × ×

जेहि न रामु बन लहाई कलेसु । सुत सोह करेहु ईहै उपदेसु ॥

(८) संगतिका परिणाम—

रामतीरक जो साँचहुँ काली । माँगु देहुँ मनमावन आली ॥

× × ×

जो विधि जनम देह करि छोडु । होई राम-सिय पूर-फोडु ॥

देसा कहनेवाखी कैकेयी कुटिल सन्धरासे बहकायी

गनेपर कहवी है—

होइ प्रत मुनिनेप घरी जो न रामु बन जाहि ।

मोर मरनु राउर-अत्रसु नुप समुसिअ मन माहि ॥

गुसाईजी कहते हैं—

को न बुसंगी पाय नसाई । रई न नीच मते गुह्यआई ॥

असिहि सुसौक कैकई रानी । दुष्ट सेतु ते मति बौरानी ॥

और—

सठ सुधरहिं ससंगति पाय । पास पाउ कुपात गुआय ॥

(९) धड़े भार्गवर प्रेम—

गुह्य विनु मातु न जानी काहु । करी सुमात्र नाम पतिकाहु ॥

मोरे सबह एक गुह्य स्वामी । दीनबंधु दर अंतरजामी ॥

बान कहु अनमयर मासु । इहि ते अधिक न मोर गुसासु ॥

(१०) मित्रता—

जेन नित्र दुख होई दुखारी । तिन्हहिं निकोक्त पातक भारी ॥

(११) अधर्म—

जे अथ मत्तु पिता गुह्य मारे । गाइ गोट महि सुर-पुर जारे ॥

जे अथ तिय मातक बंध कौन्हे । मोत महीपति माहुर दीन्हे ॥

× × ×

बेचहिं नेद धरम दुहि लेही । पिसुन पराय-पाप कहिं देही ॥

कपटी कुटिल कलहप्रिय कोषी । बेद-विदूषक निस्वदिरोषी ॥

लोमी लमपट लोक लबारा । जे ताकाहिं पर-वन पर-दारा ॥

× × ×

जे नहिं साधुसंग अनुरागे । परमारथ-पथ-विनुसु अभागे ॥

तवि श्रुति-पंथ नामपथ लहदी । बंधक विरधि नेप जग छहदी ॥

(१२) नारी-धर्म—

करेहु सदा संकर-पद पूजा । नारी-धर्म पतिदेव न दूजा ॥

अमित दानि मता बैदेही । अधम सो नारी जे सेव न लेही ॥

बूढ़ रोमबस जड़ धनहीना । अंध बंधिर क्रोधी अतिदीना ॥

पैसेहु पतिकर क्रिय अपमाना । नारी पाव जमपुर दुख नाना ॥

एक धर्म एक मत नेमा । काय बचन मन पतिपद प्रेमा ॥

पतिदेवक पर-पति-रति करई । रौरव नरक कल्पसत परई ॥

(१३) सेवकका धर्म—

बीरामचन्द्रजीको धयनी सेवासे सगुट करके हुनुमाजूनी

मांगते हैं—

नाप जगति तब अति अनपापनि । देहु दपाकरि सिव-मन-मापनि ॥

(१४) छोटे भार्गवर प्रीति—

अस बिचारि जिय जगहु ताता । गिहहिं न जगत सहोदर-भाता ॥

(१५) पतिका स्त्रीको उपदेश—

आयसु मोरि सायु-सेवकाई । सब बिधि मांमिनि मवन मरई ॥

पहिं ते अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सायु-सगुर-पद-पूजा ॥

(१६) घरकी फूटका परिणाम विभीषण

अच्छीतरह दिखता है ।

ऐसे उपदेशोंके प्रतिरिक्त और सुटकर उपदेश भी

बहुतायतसे मिलते हैं । उदाहरण—

‘धर्म न दूसर सत्य समाना । आत्म-निगम-पुनान बलाना ॥’

‘दामिनि दमकि रही धन माही । बलकी प्रीति क्या चिर नाही ॥’

‘बरादि अरुद स्त्री नियराये । क्या मनहिं दुख बिदा पाये ॥’

‘भेद अथज सहहिं गिरि बैते । बरके बचन सन्त सह बैते ॥’

'सुन्द मदी मरी जरी आरि । जम जेने पन मर बीती ।'  
 'महावृष्टि जरी वृष्टि दिवती । तिमि मरने कोर निगदि जाती ।'  
 'बनकाच मन दुम निमि देती । तिमि सुखेन पर-सगनी देती ।'  
 'कारर मन कहै एक भवता । दिन दिन अन्तरी पुकता ।'  
 'सठसान विनव पुष्टिमान प्रीती । मइत कानमन आर नती ।'  
 'कोपिदि साम कनिदि हरि कथा । आर बीन बने कन जया ।'  
 'तूने पने न को जदनि गुण बरिदि अन्त ।  
 मूरम हदय न जो जो गुण निरदि निरिषि तन ।'  
 'बीर कानवत हाण निमूटा । अरी शरिद अरणी अरी वूटा ।'  
 'सारा रोगवत सन्तत शोपी । राम विगुण गुणी री निरिषी ।'  
 'तनुषोषक निन्दक अथसानी । बीर शर तम बीरह प्रानी ।'

**उत्तम काव्य**

कविता—सामंज्य पुरुषोंके लिये रामायण एक बड़ा काम्यदायक ग्रन्थ है। जिस काव्यमें अलंकार, व्यङ्ग्यकी प्रपातता, रस और भावपूर्ण होता है, वह काव्य उत्तम कहा जाता है। रामायणमें आवृत्ति अत्यन्त तक से भरे पड़े हैं। अलंकार तीन प्रकारके होते हैं। शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।

शब्दालंकारमें किसी शब्दके बड़े बड़ी अर्थका दूसरा शब्द रल देनेसे काव्यके नियमके अनुसार छन्द होमेपर भी वह अलंकार नहीं रहता। यथा—

'तेहि कारन आनत हियहारे । कामी काक नलक निचारे ।'  
 'श्लका श्लकत पौयन कैसे । पइज कोस ओसकन जैसे ।'

इनमें यदि काक या बलाक अथवा कोस या ओसके छे यदि कोई दूसरा शब्द रल दिया जावे तो वह अलंकार रहता। शब्दालंकार छोट प्रकारका माना जाता है। अर्थालंकारमें शब्द पठनेसे अलंकारमें कोई मुक्ति जाती। यथा—

'तनु जुग अजल सनाला । ससिहिं समीत देत जयमाला ।'  
 'समें यदि 'जलज'के बड़े 'कमल' और 'ससिहिं'के

रख दें तो अलंकार नहीं जाता। अर्थालंकार इससे भी अधिक प्रकारका मानते हैं। मत है कि इन सबमें मुख्य उपमाअलंकार अलंकार उसीके निम्न निम्न रूप मात्र हैं।

काव्यका उद्देश्य देनेमें अलंकार ही काव्यकी उद्देश्य ही बनी ही है। अन्त करन-पहुन नम-रंगी। कम-दरन 'इगन संतु सगमन कैसे। कामी बचन 'मन मनीन वन सुंदर कैसे। निरन मरक 'नक तदेउ गुण सोच निहारे। वैन बके

उभयालंकार—एकके अधिक अलंकारोंके उभयालंकार करते हैं। यथा—

कर्म बचन मानत निनक, तुम्ह सनतनुम्ह गुण सनात लुग कनु गुन कुमनप किनि कदि न

इसमें अन्वय (अर्थालंकार) और अन्वय सम्मिश्रित हैं। कविभोग उभयालंकारके भी उभयमेव मानते हैं।

**व्यङ्ग्यकी प्रपातता—**

'बान-पीठ करनानिधानके। जनु जुग जनिह प्रव्रजते।'  
 'गुण निनेकसागर जग जाना। निदिदित्त कर-बदरकला।'  
 रामायणसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रस—कविभोग इसके ३ भेद मानते हैं। कोई-कोई भक्ति और वासव्यको भी सम्मिश्रित करते हैं। मानते हैं। यथा—

**(१) धीर—**

'सुनि सेवरु हुस दीनदयाला। फरकि उठी है मुवा तिलाळा।'  
 'देखि न जाय कपिनके उछा। अति निसाल तनु मनु गुम्हा।'  
 'भावहिं गनहिं न औघट धाटा। परवत फोरि करहिं गदि बटा।'

**(२) करुण—**

'मंजु विलोचन मोचति नारी। नोली देखि रामनहक।'  
 'हारुणन्दन प्राण विरीते। तुम विनु निनत बहुत दिन कैवे।'

**(३) शृङ्गार—**

'एक बार कुनि कुसुम सुहाये। निनकर भूषण राम बनाये।'  
 (४) हास्य—  
 'देखि तिनहिं सुर तिय मुसुकाहीं। बर लायक दुखहिनी मन रहीं।'

**(५) भयानक—**

'लागत अवष भयानक भारी। मानहुं काळ रात अंधिवादी।'  
 (६) अद्भुत—  
 'रवे छाए नम सिर अह बाहू। मानहुं अमित केतु अह गहू।'

(७) भीमटस—

जीनिन मरि मरि सप्पर साँचहिं । भूत पिसाच विविध विधि नाचहिं ।।

(८) रौद्र—

'जुनि सकोच नेले जुनरामा । गळ बनावठ तोहि न लग्ना ॥'

'जो सळ संकर करहिं सहाई । उदधि हतौं खुबीर दुहाई ॥'

(९) शान्त—

दोष-सिखा-सम जुबदि जन मन जनि होसि पतल ।

मजहिं राम ठनि कामद करहिं सदा सतसल ॥

(१०) भक्ति—

कमिहिं नारि विचारि जिमि होमिहिं जिमि प्रिय दान ।

पेले हे कर उग्रिही तुलसीके मन राम ॥

(११) चात्सल्य—

भोरे भल राम दोड आँसी । सत्य कही करि संकर सासी ॥

रहा माशुर्प, सो इसके लिये उदाहरणकी आवश्यकता नहीं । इसका सो रामायणभरमें सोत बह रहा है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि रामायणमें ऐतिहासिक और राजनीतिक बातें हैं । उसमें अर्धे अर्धे सारगर्भित उपदेश हैं और वह एक उत्तम कल्प है । इसके अतिरिक्त उसमें और भी समाज, शास्त्र, धर्म-नीति, पतितोद्धार, दृढ-नीति आदि सभी विषयोंकी अनेक बातें हैं । जो उदाहरण इस खेसमें दिये गये हैं उनमें कहीं कहीं इनकी भी मूलक दिशाएँ पड़ेगी । सारांश यह कि इस ग्रन्थमें एक ही जगह तुलसीदासजीने हमारे लिये कई अर्धही अर्धकी सामग्रियाँ एकत्र करके रख दी हैं । रामायण लिखकर उन्होंने जो संसारका उपकार किया है वह अक्षयनीय है ।

## वन्दों सवहिं रामके नाते

(लेखक—श्रीगुणेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' बी० प०)



श्वकी विविध विप्रमत्ताओंमें एक परम रहस्यकी अद्भुत बीजा चरितार्थ हो रही है । जीवनके चक्र और उतारमें एक प्रमुख प्रवाह प्रवाच गतिसे बहता चला जा रहा है । सुख और दुःखके मूलमें मसने-बाली अन्तर्धाराको धारा विप्रमत्ता स्पर्शक नहीं कर सकती । जीवन और मृत्युको प्रतिष्ठ करनेवाली मानव हृदयकी अन्तर्धाराको धाराका निखिल अन्धकार प्रभावित नहीं कर सकता । इस विविध-रस विधकी तहमें 'एक-रस' ही निरन्तर प्रवाहित हो रहा है जहाँ जीवनकी अतिशय, विप्रमत्ता तथा विरोध पहुँच नहीं पाते । हमारे अन्तर्दृष्टी महर्षि कवियोंने इसी शानकी मूल-आन्व्यन्तरिक ज्योति, हृदयकी अन्तर्धारा, तथा परदेके भीतरकी एक अनुपम छविके आलोचकपर ये-सुष होकर भाषाओंका उपहार सुटाया था । वास्तविकी और भ्यासने, तुलसी तथा सुरने, गेटे तथा होमरने, रोससपीयर तथा रोबीने, नहीं-नहीं, विश्वके सभी अमर कवियोंने 'भीतर' पैठकर 'रस' का पात्र किया था और इसी सामोन्मादके अतिरिक्तमें ये-सुष हो, जीवन और मृत्युसे ऊपर उठकर आनन्दकी वंशी फूँकी थी ! इस आनन्द-प्रवाहके एक घूर्णने विश्वकी आतुर पिपासा

शान्त हो गयी; इस अतुल छविकी एक भाँकीसे अगतकी तृपित आँखें जुग्रा गयीं !

विश्वके इस विराट् अभिनयका एक ही नायक है । आगूके इन नाना नाम और रूपोंमें एक ही नाम और एक ही रूप है ! दुनियाँके इन असीम स्वर्गोंकी तहमें एक ही सत्य है, एक ही चिरन्तन प्रवाह है ! विश्वके पायत् पदार्थ 'उसी' के स्पर्शके लिये म्याकुल हैं, आलापित हैं, और सभी बलु 'उसी' एक परम बलुके साथ सम्बन्ध चरितार्थ कर रही हैं । विश्वको असत्य, प्रवचन, अविश्वसिपूर्व मानकर इसके प्रति विरिक्त उत्पन्न करना संशयवाद (Scepticism) ही के नामसे पुकारा जायगा । परमात्माको विश्वकी विविध बीजाओंसे परे मानकर तथा इस अगतको परमात्मासे रहित मानकर शान और विवेककी शृष्क खोजमें जीवन भले ही खपा दिया जाय परन्तु उस शृष्कतामें मानव-हृदयको स्वरि शान्ति और अतुल आनन्द तथा उत्कृष्टताका आभास भी नहीं मिल सकता ! पूषा, विरिक्त तथा उदासीनता किससे करे ? इस 'मिथ्या' जगत्से ? अथवा 'घर' छोड़ देनेपर परमात्माका घर कहीं मिल सकता है ? क्या अपने ही घरको 'उस' का घर बनाकर उसीके दिव्य आलोकसे अपने अन्धकारपूर्ण अन्तर्लोकको आलोकित न करें ? विश्व-नाटकके





# श्रीवाल्मीकीय सुन्दरकाण्डम्

(लेखक—भाहरिस्वरूपजी जीहरी पन्० २०,)

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा ।

सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किञ्च सुन्दरम् ॥



सुन्दरकाण्डकी सुन्दरता नामसे ही प्रकट है, जैसा नाम वैसा ही गुण । कथाकी सुन्दरता कविकी कवित्वशक्तिकी पराकाष्ठा प्रकट करती है । वैसे तो वाल्मीकिजीका वर्णन तथा उपमाएँ सभी जगह अत्यन्त रोचक हैं, पर सुन्दरकाण्ड-को जादू भरा है, यह अकथनीय है । इस लेखका अभिप्राय सुन्दरका सुन्दरत्व दर्शाना है ।

बहुत मनन करनेके पश्चात् सुन्दरकाण्डका अर्जुनिक विरोधतः इन कारणोंसे प्रकट होता है—

(१) सुन्दरकाण्डकी कथा एक भाग-गाथा है । इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमसेवक भीहनूमान्जीके परामर्श-प्रमाणोपान्त वर्णन है, जिससे सर्वत्र धीररसका समुद्र उमड़ रहा है ।

(२) भगवान् रामकी प्रियतमा जगज्जननी महारानी सीताकी प्रति शोचनीय दशाका वर्णन कविने ऐसा मर्म-स्पर्शी किया है कि पापाख-हृदय भी बिना धाँसू बहाये नहीं रह सकता । कल्पारसका समुद्र उमड़ चला है ।

(३) श्रीसीता महारानीके प्रतिप्रत तथा सौन्दर्यादि गुणोंका अनुपम चित्र बड़ी ही विचित्रताके साथ चित्रित किया गया है ।

(४) महारानीजीका रावणके प्रलोभन-प्रपञ्च का खण्डन करना तथा उसके पवित्र हितकर उपदेश देना, रावण-सतीसे दुष्ट-व्यक्तिके लिये महान् शिक्षाप्रद है ।

(५) श्रीवाल्मीकि महाराजकी कवित्व-शक्तिका अनुपम परिचय लडा, चन्द्रोदय, पुष्पकविमान, अशोक-वाटिका, सीता, अशोक-वाटिका-विषय तथा लडा-वहन आदिके वर्णन-प्रसंगोंमें विशेषरूपसे मिलता है ।

वाल्मीकीय-सुन्दरकाण्डकी कथा भीनुवसी-सुन्दरसे निराधी है, अतएव वाल्मीकि-रामायणसे अलग-अलग पाठकोंके

लिये संक्षेपमें सुन्दरकाण्डकी कथाका रसास्वादन करा देना आवश्यक है ।

महारानी सीताकी खोज एवं लडा-वहनमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् स्वयं भीहनूमान्जीने आश्रुदादि बातोंको (वा० २।१६) जो धाम-कथा सुनायी है । वही कथा यहाँपर संक्षिप्तरूपसे उद्धृत की जाती है—

जाम्बवान्के पुल्लेपर भीहनूमान्जी महाराज कहने लगे—

‘आप लोगोंके सामने मैं इस महेन्द्राचलके शिखरसे उड़ा आते ही मार्गमें एक बड़ा विश्व उपस्थित हुआ । मैंने अपने रातेको रोक्कर खड़े हुए अत्यन्त सुन्दर और काञ्चनमय शिखरयुक्त एक पर्वतको देखा । यह देखकर मैंने अपनी पूँछसे उसके ऊपर इतने जोरसे धापात किया, जिससे उसके शिखरके छुनारों टुकड़े हो गये । इसपर यह महासिद्धि मुझसे बोला, ‘हे पुत्र । मैं तुम्हारा चचा मैनाक, श्रीरामचन्द्र-जीकी सहायता करनेके लिये उद्यत हूँ ।’ मैं उससे अपनी अभिप्राय प्रकट कर, जानेकी धनुमति ले आगे बढ़ा ।

तदनन्तर मैंने नागमाता मुरसाको देखा, वह तो मुझे खानेको ही उद्यत थी । मैंने कहा, ‘मैं सीताजीका पता लगाकर तुम्हारे मुखमें चला आऊँगा,’ पर वह न मानी । उसने मुझ बड़ाना दूर किया, मैंने भी अपना शरीर बड़ाना आरम्भ किया, अन्तमें मैं अपने विशाल शरीरको अँगूठके बराबर छोटा बना उसके मुखमें प्रवेशकर उसी राय बाहर निकल आया । तब यह सुझवर बहुत प्रसन्न हुई ।

मैं आगे बढ़ा, इतनेमें ही मेरी छायाको किसीने पकड़ लिया । सिद्धिका-नासी राक्षसी मुँह फैलाकर मुझे खानेको दौरी । पहले तो मैंने अपना शरीर खूब बढ़ाया, फिर अट छोटा बन आठकर उसका कलेजा निकाल आकारमें चला आया । राक्षसीका हृदय फट गया और वह मर गयी ।

तब बहुत दूर चल कर सन्ध्या-समय मैं जङ्घापुरी पहुँचा । वहाँ जङ्घा-भारी एक राक्षसी मुझे मार खानेके लिये मेरे सामने आयी । उस राक्षसीको मैं बाँयँ हाथके पूँसेसे परालकर धागे बढ़ा ।

मैं सारी रात जागकीजीकी खोजमें अटकता रहा । राखणके रनवासमें कुछ भी पता न लगा । तब मैं शोक



अदयित्वा पुरीं लङ्कानभिवाच च मैमिलीम् ।

समुद्रपथो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षताम् ॥

(वा० ५ । ४२ । ३३-३६)

'अथ ज्ञाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीको भय हो ! महाबली लक्ष्मणकी वध हो ! श्रीरामजीद्वारा-पाकित राजा सुग्रीवकी भय हो ! मैं धक्किष्टकर्मा (घोर कर्म न करनेवाले) श्रीरामका दास हूँ, मेरा नाम हनुमान् है । मैं शत्रुसेनाका नाश करनेवाला पवनदेवका पुत्र हूँ । हमारे शिखाओं और टूटोंके महारके सामने एक रावण क्या सहस्र रावण भी नहीं डर सकते । मैं समस्त राक्षसोंके सामने लङ्काका ज्वंस-कर जनक-नन्दिनीकी प्रणामकर अपना काम पूरा कर जाऊँगा ...।' यह पवनसुत हनुमान्जीकी घोषणा है ! अथ उनकी वाग्पटुता तथा बुद्धिमत्ताका एक बार और अवलोकन कीजिये—

रावण श्रीहनुमान्जीसे यह पूछता है, कि 'तू कहाँसे आया है ? क्यों आया है ? अशोक वन उजाड़ने और राक्षसोंको भयभीत करनेमें तुमको क्या लाभ हुआ ? मेरी इस दुर्गास पुरीमें तू कैसे आया ?' आप उत्तर देते हैं—'मैं जान हूँ, मेरे हृदयमें रावणसे भेंट करनेकी अभिलाषा थी किन्तु इसका सफल होना साधारणतः कठिन था, इसीलिये मैंने अशोकवाटिकाको उजाड़ दिया । राक्षसोंको मैंने अपनी शरीर-रक्षाके लिये मारा । मैं आपको अपने स्वामीका सन्देश सुनानेके लिये स्वेच्छासे प्रह्लादभ्रममें बंध गया । मुझे अतिपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीका दूत मानिये । अथ मैं आपसे हितके वचन कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये । आप सुवनविवेकात्मानिके पराक्रमको भलीभाँति जानते ही हैं, उसको श्रीरामने केवल एक ही माणसे मार डाला और उसके स्थानपर सुग्रीवको राजा बनाया । करोड़ों बानर सीताकी खोजमें धूम रहे हैं । मैं सौ धोखन समुद्र अर्धकर आपको देखनेके लिये यहाँ आया हूँ । आप तो धर्म और धर्मको भलीभाँति जानते हैं । आपने आपके प्रभावसे देववर्ष सम्पादन किया है । अतएव आपको तो यह ज्ञात ही होगा कि परायी-स्त्रीको धर्ममें बन्द कर रखना अनुचित है । आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषको ऐसे धर्मविरुद्ध एवं धनर्पणकारी तथा समूह नष्ट करनेवाले क्षत्रियों कासक होना अनुचित है । देखिये, अन्धमणके श्लेष और रामके बाणोंके आगे सुर या असुर कोई भी नहीं टिक सकता । अतएव मेरा कहना मान श्रीरामजीकी ओर हीजिये ।

सीताको संसारमें दैत्य अथवा देवता कोई भी नहीं पचा सकता । आप अपने तप-फलका धर्मके द्वारा नाश न करें । आप भव न समझिये कि देवतायाँ और दैत्योंसे अवश्य होनेके कारण आप अवश्य ही रहेंगे । सोचिये, सुग्रीव न तो देवता है और न असुर है, उससे प्राणोंकी रक्षा कैसे कीजियेगा ? चाहूँ तो मैं अकेला सारी लङ्काको नष्ट कर सकता हूँ, परन्तु श्रीरामजीने स्वयं ही इसके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है । सीताको आप काल-रात्रि समझिये । सीताजीके सेवसे आपकी लङ्का दग्ध हो चुकी, अथ श्रीरामचन्द्रजीके कोपसे वह भस्म हो जायगी । श्रीरामचन्द्रजी लोकसंसार कर एष्टि-रचनाकी शक्ति रखते हैं । प्रह्ला, शिव, इन्द्र कोई भी श्रीरामजीका युद्धमें सामना नहीं कर सकते, आपकी तो कुछ गिनती ही नहीं !

इस उत्तरकी गम्भीरतापर विचार कीजिये—पहला भाग आपकी बानर-अहृतिका द्योतक है । आगे चलकर बालिका स्मरण कराना, 'सुग्रीव न सुर है न असुर' तथा 'धर्ममें तप-नेत्रका नाश करता है'—आदि बातें कितने मार्केकी हैं ? फिर श्रीरामके पराक्रम, श्रीसीताके तेज और अपने बलका जितना शोचपूर्व वर्णन किया गया है, वह मूलपाठके पढ़नेहीसे प्रकट हो सकता है । सच तो यह है कि सुन्दरकाण्ड आदिमें लेखर अन्ततक श्रीहनुमान्जीके पराक्रम तथा चातुर्य-वर्णनसे श्रोतप्रोत्त है । सुन्दरकाण्डका नाम यदि हनुमान्काण्ड होता तो अनुचित न होता । सोचिये, पवनसुत हनुमान्की जप !

अथ महारानी श्रीसीताजीके अति पवित्र अनुपम चरित्रपर किञ्चित् दृष्टिपत्र कीजिये—संसारके इतिहासमें ऐसा अद्वितीय चरित्र प्राप्त होना असम्भव है । पति-वियोगमें आपकी दया दशा थी । जहलमें अंधिक भोभले जड़ी हुई नौकाके सदृश शोकाधिक्यके कारण आपकी दया सर्वथा दयनीय हो गयी थी । दृष्टिवीपर गिरे हुए किसी चीप-पुष्य तारेके सदृश आप मैले केशोंसे युक्त, शोकसे सन्तप्त तथा क्षान्तिसे विहीन हो गयी थी । केवल पतिप्रेमरूपी भूषण ही आपको विम्बित कर रहा था । आपकी ऐसी असहायताका ज्ञान पत्रवी थी मानो अपने मुखमें छूटकर बँधी हुई इपिनी सिद्धके चन्द्रभ्रममें फँस गयी हो । आपकी प्रभा बर्षाअनुके अथसामने शारदीय मेघोंसे आरुच्य चन्द्रकी ज्योत्स्नाके समान विप रही थी । उदरनादि न आगलेसे, फिर अवाच-योगीकी भाँति आप मजिन हो रही थी ।



सौंप दे। यदि वृद्धाकी रक्षा करना तथा सुलुसे बचना चाहता है तो श्रीरामचन्द्रजीसे मैत्री कर ले। देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मोत्सा और शरणागतवत्सलके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनसे जमापाचना कर, भुम्हे दे देनेसे तेरा कल्याण हो सकता है, अन्यथा वृ निश्चय मारा जायगा, क्योंकि तुम्ह-जैसे पापीको श्रीरामचन्द्रजी जीवित नहीं छोड़ सकते।'।

इस उपायका एक-एक शब्द पालितके बज, साहस, सौम्यता तथा माता सीताके जमा-गुणका अवलम्ब उदाहरण है। उपर्युक्त चरित्रके पठनसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानो महारानी-सीता अपने आगाध जमा-सागरमें रावणके पाप-पर्वतको डुबो देना चाहती हैं। अपने समस्त प्रयासमें विफल होनेके कारण रावण निरुत्तर होकर वापस चला गया।

धर्म में इस कायदेके एक रहस्यमय तथ्यको उपस्थित करता हूँ, जिसका श्रीजानकीजीसे विशेष सम्बन्ध है। श्रीसीताजी जगज्जननी लक्ष्मीजीका अवतार मानी गयी हैं। माताकी रूपी अपने दुष्ट बालकर भी होती है। रावणने माताको कष्ट देनेमें कुदृ भी उठा नहीं सकता था। सीताजीके सेजसे बरकर और शरणागत उसमें बलाकार करनेका सामर्थ्य नहीं था। इसीलिये वह समझ-बुझकर सीताको अपने प्रलोभनोंमें फँसाना चाहता था। इतने महान् दुष्टको भी क्यामयी-माता श्रीसीताजी उसी शरणागत-मन्त्रका उपदेश करती हैं जो श्रीबालमीकीय रामायणका रहस्य है। वैष्णवाचार्योंका कथन है कि शरणागत-मन्त्रकी व्याख्या ही श्रीमद्भारमीकीय-नामाधय है। श्रीजानकीजीका यही उपदेश आगे चलकर जडाकायदेमें श्रीरामचन्द्रजीके उपदेशसे सर्वथा मिलता है। माता कहती हैं—

विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ॥

तेन मैत्री प्रकृतं ते यदि जीर्वितुमिच्छसि ।

प्रसादनस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥

( भा० ५ । २२ । १९-२० )

देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मोत्सा और शरणागत-वत्सल हैं। यदि तुम्हे अपने प्रायोंका मोह है तो उनसे मिलकर उन्हें मना ले। इसी शरणागतिपर भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण-भगवान्ने और दिया है—

सर्वधर्मोपरिस्वयं मामेकं शरणं कुरु ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

२५

'हे पापों! धर्म-धर्मको छोड़ मेरी शरणमें आओ। मैं सब पापोंसे छुटा दूँगा। इस विषयमें शोक मत करो। यही बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी विभीषणके शरणमें आनेके समय कही थी—

सहदेव प्रव्रजाम तवासीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥

एक बार भी प्रणव होकर जो यह कहता है—'मैं यापका हूँ, उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ— यह मेरा मत है।'

माता जानकीने इसी मन्त्रका उपदेश रावणको दिया था, किन्तु उसने इससे लाभ नहीं उठाया। विभीषणजीने इस उपदेशका महत्त्व जाना और परम-लाभ प्राप्त किया। रावणके महाने माताका यह उपदेश सबके लिये है।

रावणकी बातों, जानकीके उपदेश एवं धर्मापर ध्यान धीजिये। महारानी सीता कहती हैं कि, 'रामसे मित्रता कर ले, वह शरणागत-वत्सल हैं, तेरे अपराधोंको क्षमा कर दोगे, इसमें तेरा कल्याण होगा।' धन्य है जगज्जननी माता सीते! यह खचन आपहीके योग्य हैं। यही धीमुन्दरकायदेका बीजमन्त्र है। दुखी संसारी-जीवोंके लिये यह भनोष उपदेश है। शतप्रब प्रत्येक कल्याणकामीको इसका भर्मे समझकर अनन्यभावसे भगवान्की शरणमें आयेन्त शीघ्र प्राप्त होना चाहिये। 'शुभस्य शीघ्रम्।'।

## रामायणमें ऐतिहासिक तथ्य

रामायण और महाभारतके श्लोकोंमें हम विजयी पुराणोंके द्वारा भारत महादेशके प्राचीन उपनिवेशोंसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतेरे ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त करते हैं। × × × इनमें रचनाशीलीकी धार्यता, भावप्रकाशनकी मनोहरता तथा वर्णनके प्रसारे प्रत्येक मनुष्य यदि कल्पनाके पर्देमें छिपे हुए संस्कृतके श्लोकोंको पढ़नेका कष्ट उठावेगा तो शक्याहीन भारतीय इतिहासके तात्विक स्वरूपका और तत्रत राजनीतिक क्रान्तिकी धया-सम्भव गम्य और शर्मिर अवस्थाका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

दा० एच० इमन्० बेहो, ए० एल० कार०,

# श्रीसीताहरण-रहस्य

(नेमक-श्रीरामकृत शरण शक्तिमहापदी सावन, श्री०५०, एम-एन० श्री०, संपादक 'मानव-नीच')  
 श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं है और ऐसा करने मेरी तपस्या भङ्ग होगी। यथा—



गराबूदे चरित्रोंके रहस्य कौन जान सकता है ? बुरी कुच जान सकता है जिसे वे कृपा करके जानें—'मो जने उरि देउ जनार्ण' नहीं तो किमीका भी सामर्थ्य नहीं जो उगे जान ले। जान ले तो फिर वह रहस्य ही क्या हुआ ? श्रीसीताजी आदिराजि हैं, श्रीरामजी-से उमका शिरोग कभी किसी फालमें नहीं है, दोनों अभिषेक हैं, एक ही होते हुए भक्तोंके लिये युगलरूपसे विराजमान हैं—'गिता भरम जल भीषि सम देखियत (परदियत) भिन्न न भिन्न।' मापुस्यमें पति-पत्नीभावसे श्रीरामजीको ये प्रतिराय शिष्य हैं। ऐसी परम-सती-शिरोमणिके हरणमें क्या रहस्य है, वह तो यथार्थ उस नरनायकके करनेवाले ही जानें। देखिये, अिनके एक सौंके वाणसे पीछा किया जानेपर अन्त ब्रैलोक्ममें मद्राश, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि किसीकी भी शरण न पा सका, क्या वे रावणको घर बैठे नहीं मार सकते थे ? अवश्य मार सकते थे। पर ऐसा होता तो आज हमको उनके चरित्र गान करके भवपार होनेका अपसर कहाँसे मिलता ? उनके दिव्य गुणों—कल्याण, भक्त्यासक्तता इत्यादिको हम कैसे विरधासपूर्वक स्मरण करके अपनेको कृतार्थ समझ सकते ?

स्मरण रहे कि यहाँ जो कुछ लिखा जा रहा है सो प्रधानतया धार्मिक वा भक्तिभावसे ही लिखा जा रहा है। यह चरित जानबूझकर किया गया है। गोस्वामीजीने तो हस्ते स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है और वाक्यीकि रामायणसे भी स्पष्ट है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने जान लिया था कि यह कपट-मृग मारीच ही है—  
 तत्र रघुपति जानत सब कारण । उठे हरषि सुर-काज सँवारन ॥

यदि जान-बूझकर ऐसा न हुआ होता तो क्या रावण परम-सती शिरोमणियोंकी भी सिरताज श्रीवैदेहीजीके कभी हाथ लगा सकता था ? अनुसूयाजीसे त्रिदेवकी न खली, तब इनके भागे रावणकी क्या चलती ? वा०रा० ५ । २२ में रावणसे यह स्पष्ट कहा है कि तुम्हे भस्म कर है तो भी मैं तुम्हे भस्म नहीं करती,

क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं है और ऐसा करने मेरी तपस्या भङ्ग होगी। यथा—

धसंदेसातु रामस्य तपसश्चातुपादनात् ।  
 न त्वां कुर्मि ददाप्रीत मस्य मस्माहेतिसा ॥ २  
 नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।  
 विविस्तन बधार्थान् विहितो नात्र संशयः ॥ २१

यह सीताहरण-चरित्र ही हमारी समझमें बल रामायणमें दिये हुए परधाम-यात्राचरितका बीज है। ए यजपर ११ हजार वर्ष राज्यकरके अन्तमें श्रीसीता-रयागकी खीलाकरके अथचपुरवासियोंपर अपना पान मि दिलाया है—'अति शिव मोहि इहंकि बासी' 'मन्ना मि प्रमुदि न थोरी' यह खीला नहीं तो और क्या है कि ११ वर्ष तक कोई चर्चा नहीं और जब परधाम-यात्राकी हवा तब एक धोबीद्वारा उनके विषयमें अपवाद सुना बला और उसीपर उनका त्याग किया जाता है।

हमारे परमपूज्य महाराज श्री १०८ वं० रामचन्द्र शरणजी (जानकीघाट, श्रीमधोप्याजी) ने इस विषयमें रहस्य बताये थे जो यहाँ लिखे जाते हैं—

१-रावणने देव, यक्ष, गन्धर्वादीकी कन्याओंको बरत ला-लाकर उनसे विवाह किया। कितनी ही देवियाँ उन यहाँ कैद थीं—अपने-अपने घरोंकी यह शोचनीय व देवताओंने आकर प्रभुसे बार बार कही। इन देवियोंके वाण्य विपत्ति सुनकर कल्याणवा महारानीजीने उनके सत्को पूर्व सान्त्वनाके लिये स्वयं रावणके यहाँ कैद होना स्वीकार किया।

२-सुतीक्ष्णजीके आश्रमसे चलते समय महाराजीने प्रभुसे कहा था कि आपने दण्डकारण्यके अधिपतिसे इतने रक्षाके लिये निशिचर-बधकी प्रतिज्ञा की है और अब इतना धनको चल रहे हैं, मुझे यहाँका जाना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि बिना अपराधके दण्डकारण्यअधित राक्षसोंका अन्त योग्य नहीं, यह पाप है। बिना अपराधके मारनेवाले हीरक लोकरमें प्रशंसा नहीं होती। यथा—

वि० विष्णुवा० ५ १५ ( १-२ ) में देखिये ।

प्रतिज्ञास्तत्या वीर दण्डकारण्यवतिनाम् ।  
 ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रहसाम् ॥  
 बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राष्ट्रानन्दच्छकप्रितान् ।  
 अपराधं विना हन्तुं लोकौ वीर न काम्ये ॥  
 (शं० ३।१।१०, १५)

यद्यपि प्रभुने उस समय यही उत्तर दिया कि मुझे सत्य सदा मिय है, पर मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका उसे ध्वज मैं नहीं छोड़ सकता । मैं अवरय राक्षसोंका वध करके मुनियोंको अभय करूँगा । तथापि सीताहरणमें यह रहस्य कहा जा सकता है कि रावणको सापराध हड़रानेके लिये यह परित हुआ ।

इस तरह लोक-वेश दोनोंसे उनका यह कार्य (रावण-वध) अनिन्य वा निर्वोप हो गया और इतसे मियाका भी मान्य रहा ।

ये भाव तो ऐश्वर्य और भक्तिभावसे हुए । धय एक और भाव जो एक पतिव्रताशिरोमणिय (पं० श्रीराजारामकी धर्मपत्नी) ने सीताहरणके बारेमें कहा है उसे उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

पतिपर भावसु कनि करहु अस परिणाम विचार ।  
 पतिदासी मृगतारहित सिय दुख सही अपार ॥

अर्थात् यह बात पतिव्रताके धर्मके प्रतिकूल है कि यह पतिको धाशा दे । श्रीपतिदासीजी पतिव्रताओंको सीता-हरणका उदाहरण देकर उपदेश देती हैं कि पतिको कभी मूलकर धाशा न देना (स्वामीको धाशा देना बड़ा पाप है) देखो, सीताजीने अपने पतिको धाशा दी, इत किया कि मृगको जैसे बने लाभो, उसीका यह फल उनको भोगना पड़ा कि जो उनका हरण हुआ और उनको कितना कष्ट उठाना पड़ा । इस अरिप्रसे स्त्रियोंको यह उपदेश हुआ ।

परी भाव स्वयं श्रीसीताजीके इन शब्दोंसे व्यक्त हो रहा है—

कामनूतनिदं वीरं कीणामसरसं मतम् ।  
 बुध्वा तस्य तावस्य मिस्रया भक्तिो मन ॥  
 (शं० ३।४।११)

पर्याप्त धारकी रूपवाकी पतिके लिये जो मैं आपने यह कह रही हूँ, वह खोरे है और स्त्रियोंके लिये अनुचित है, यह मैं जानती हूँ तथापि इन मृगको देखकर मुझे क्या विचार उन्मत्त हो गया है, अतः आप हुये से कार्य—  
 भावकं महाकाहो कीर्णं नो मतिव्यति ॥

और भी अनेक भाव लोभाने कहे हैं जिनमेंसे दो एक मानसपीयूषमें उद्धृत किये गये हैं । यहाँ इस लेखमें उनके खिलनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती ।

सुमुथिउजी, शिवजी आदिने मायाका हरण—माया-सीताका हरण—इतना स्पष्ट कहा है । यही बात गोस्वामीजीने भी स्पष्ट शब्दोंमें कही है—

‘सुनि मायासीता कर हरना ॥’  
 ‘निज प्रतिनिव रापि तहँ सीता ॥’

श्रीवैजनाथजी खिलते हैं कि अतिफण्या वेदपतीने प्रभुकी प्राप्तिके लिये अक्षय्य तप किया । उसको देख रावणने अवरदधी उसे पकड़कर लड़ा ले आना चाहा । उस समय उसने शाप दिया कि तेरा नाश मेरे द्वारा होगा । यह कहकर उसने अपना वह शरीर छोड़ दिया । यही यहाँ सीताजीका प्रतिविम्ब है । उसीमें सीताजीका भावो हुआ । वेदवतीकी कथा वाल्मीकीय उत्तरकाण्डमें है ।

वाल्वमें हमारे मित्र प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौड़ने जैसा कहा है वैसा ही है कि ‘मायामानुस्विना’ दोनों भाई, मायाकी सीता, मायाचन्द्र, मायाका संन्यासी, मायाका रय, मायाका विद्याप और विरह-कथा सभी कुछ दोनों धोरसे मायाका खेल था ।

इसमें महामाया और ईश्वरी-मायाके साथ राक्षसी-मायाको लीला हो रही है, ईश्वरी अथवा देवीमाया कामती किना राक्षसी-मायासे खेल रही है । मूर्ख राक्षस दुष्ट है कि मेरी माया बख गयी और इन मनुष्योंको मैंने मोहित करके धी-हरण कर लिया; परन्तु यह नहीं जानता कि मैं स्वयं ईश्वरी-माया जाबमें बेतरह कैस गया हूँ और मेरी बुद्धिका हरण कबका हो चुका है । अथ लक्ष्मणजीको ही परतमकी मायाका दला नहीं है तब देख-दुनुमादिकीतो बात ही क्या है—

‘शिव विरिचि कहे मोहरे को दे मयुरा आत ।’

अधिक खिलनेका समय नहीं है, दूसरे जो खिला गया वह प्रायः सभी मानसपीयूषमें निक्षेपण ही, इतसे बर्तोंको यहाँ भी भेजना उचित न जानकर नहीं खिला गया । हाँ, तीन-चार दोहे श्रीपतिदासीजीके (कैरेपीजी, शूर्यवन्ता आदिके कठिणोंसे जो उपदेश उन्हींने निकाले हैं उनको) उद्धृत करता हूँ—

कैरेपीजी—

दाती पति ठे हउ किये कैरेदि दुखकर ।  
 विरहान्न सुखनिनुखा भंजनन अत अपार ॥



सांगीत्री—

रानी न मारी पनीदहन राम बरिषा रहिह ।  
राणी सो बनायवप, रामु तदि तदि रहिह ॥  
राणी पनी-भारत बिना कहूँ न शिकों मान ।  
देहाहूँ निदरी नूँ दधुता नन जल ॥

कह्यो—  
राणी मन निरसहि सारा पनी  
रामुँ पामेउ वीर ते गीत-  
शूर्यग्या—  
गुणग्या नद रामरुँ तदि न  
दायी बने नामिका कटे

### रामायण-कालीन शपथविधि

(लेखक—१० श्रीनरोत्तम शास्त्री, बेरगंज)



शपथकी शपथ रीति-नीति की भाँति हमकी शपथविधि भी विरलभित होगयी है। आजकल जिन प्रकार शपथ की जाती है शपथवा आच्छेद किया जाता है वह सर्वथा हेय है। वैदिक-कालीन शपथविधि की बात जाने शीघ्रिये, उस समय शपथ खेनेका प्रकार बहुत ही सुन्दर था किन्तु रामायण शपथवा महाभारतके कालतक वह सुन्दर शपथविधि अविच्छलरूपेय खड़ी छाती रही। जिस-जिस प्रकार भारतवर्षके साथ परचक्रका संसर्ग होता गया, उस उस प्रकार वैदिक-शपथविधिमें, धार्य-शपथविधिमें परिवर्तन होता गया और आजकलकी शपथ लेनेकी पद्धति तो सर्वथा हमारे अधःपतनकी छोटक है। जब समाजके ऊपर मर्यादाभंगके और निम्नानुमदभंगके लक्षण बन्धन दीखे होकर उसकी रीति-नीति, आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चालकी पद्धतिमें अवरय ही परिवर्तन होजाता है, यह अपरिहार्य है।

भारत जब कौमल्याके पाम गया और ही चाहता था—अभी प्रयाग करके करने रामका बनराग उसकी सम्पत्तिमें नहीं हुआ कौमल्या माता स्वयं बोल उठी और कहने देलकर भारतको कहा—

इदं ते राज्यदानाय राम्यं प्राशनकथञ्च ।  
मग्रांतं नृद कैकेय्या दीप्तं क्रूरं कर्त्तव्यं ॥  
प्रस्थाप्य चौरवसनं पुत्रं मे बनवात्सिनम् ।  
कैकेयी कं गुणं तत्र परयति क्रूरदर्शिनी ॥  
शिशुं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ।  
दिरप्यनामो यत्रास्ते सुतो मे मुमहापयाः ॥  
अथवा स्वयमेवाहं ... .. ।

(श. २।७।१०-११)

शपथ क्यों ली जाती है ? इसलिये कि हमारे ऊपर शंका करनेवाले, हमको सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाले ध्यक्ति अथवा समुदायको यह विवश हो जाय कि हमने अनुचित, अतन्त्र, शपथ, सदाचारविरुद्ध, कुलमर्यादाके प्रतिद्वन्द्व, श्रेय कोई कार्य नहीं किया है जिससे स्वकुल, समाज और अपने वृद्धमर्यादाकी दृष्टिमें पतित होना पड़े, तथा प्रायश्चित्त होना पड़े। शपथ भी पवित्र-से-पवित्र, प्रिय-से-प्रिय वस्तु, सम्बन्धी, अथवा धर्म-कर्म या पवित्र माननीय प्रत्ययकी ली जानेकी प्रथा है। यह प्रथा सब जातियोंमें, सब समादायोंमें, सब राष्ट्रोंमें और सब खली था रही है।

‘जो भारत, तुम राज पाट चाहते थे, सो हमारे लिये कैकेयीने निष्कण्टक शपथ खे लिया, और मेरे रामको बलकलपारी बनाकर अंगल भेज दिया। न जाने उल्लेख क्या भला देला ? उसे कहो कि अब मुझे भी शीघ्र ही भिजवा दे, जहाँ मेरा यशस्वी राम खला गया है वा जहाँ उधरा हुआ है। रहने दो, मैं स्वयं ही सुमित्राको साथ ले खली जाऊँगी—

जो भाई, संभालो राज-पाट, उदाग्रो मौत्र, अंगल हाथी-घोड़े-रथ, धन-पायके कोठे, अथ तो लो हो ?’

इसप्रकारके मर्मभेदी वाक्योंको सुनकर विद्वान् भारतक हृदय व्याकुल हो उठा और शपथ लेकर विश्वास दिग्दर्शन अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय नहीं रह गया। उसने माता कौमल्याके चरण पकड़कर, विद्वान् कहा, माता मुझ निर्वृत्तको—

खबर भी नहीं कि यह सब काएट कैसे हुआ। तुम जानती ही हो कि मैं रामसे कितना प्यार करता हूँ। जिसकी सम्मतिसे राम बनको गये, उसका शास्त्राप्ययन निष्कण्ड हो जाय, वह पापियोंका नौकर बन जाय, उसको वह पाप सगे जो कि किसीको सुनकी और मुलकर मूश्रोससर्जन या मजोसर्जन करनेसे लगता है, भयवा गौको जात मारकर उठानेमें लगता है। नौकरसे बड़ा मार्केका काम कराके जो उसको यथारिति पारितोषिक नहीं देता, उसको दान-मानसे सम्नुष्ट नहीं करता, उसके स्वामीको जो पाप लगता है, जिसकी रायसे राम बनको गये, उसको वह पाप सगे। यज्ञमें तपस्वी-ब्राह्मणोंको दृषिया देकर जो मुकर जाता है, नहीं देता, उसको जो पाप लगता है वह पाप जिसकी सजाइसे राम बनको गये, उसको सगे। इष्यधर्ममें उतरकर—येन युद्ध-मसह्यर, जो भयना कर्तव्य पालन न करे उसको जो पाप लगता है, वह पाप जिसकी रायसे राम बनको गये उसको सगे। जिस दुरात्माने ऐसी सजाइ दी हो, उसका पदा-पदाया वेद-शास्त्रका ज्ञान नष्ट हो जाय। आधित्योंकी छाड़कर, धकेले ही स्थाय-शाय स्थानेगले निवृथ्य पुरुषको जो पाप लगता है, पुरुषनोंके तिरस्कारसे जो पाप होता है, वह पाप जिस काएटवाजने यह कार्य करवाया हो उसको सगे। गौको जात मारने या वैसे टूनेमें, गुरु-निन्दामें, मित्र-द्रोहमें, विरहास-घानमें, कृणवतामें जो पाप होता है, वह सब उस दुरात्माको सगे जिसकी रायसे यह काम हुआ। उस दुरात्माको अनुकूल सहधर्मिणी न मित्रे, उसके भयय मर जाय, उसकी धर्म-क्रिया नष्ट हो जाय, वह अनपय ही रह जाय, स्वययु होकर मर जाय, जिस दुष्टसे पैया कराया हो। वह पापी पागल होकर, बिपद्ये पहनकर, दर-दर मांगता फिरे, जिससे यह कराया हो। शराबके पीनेमें, अणुके खेजनेमें जो पाप है, वह सब उसको सगे, जिससे यह कराया हो। उस दुष्टका मन धर्ममें न लगे, उसका हान अणुधर्ममें जाय, उसका इच्छा किया-काया धन सुतेरोंके हाथ लग जाय जिस दुरात्माने यह सब कुपु कराया हो। दोनों सम्प्राप्तोंके समयमें जो सोता रहता है उसका जो पाप है वह उसको सगे जिससे यह कराया। स्तुपुसुनोंको जो जोक-ओकाणर दिखते हैं, जो सज्जि होती है, उनको जो कीर्ति मिळती है—वह सब कुपु उसको न मित्रे जिसके करनेसे, हरासे, मरविसेसे वह सब कुपु हुआ है। वह

माय-शुभ्रपासे धजित होकर घृषा धन्योंकी सेवामें सत्पर रहे, वह स्वल्प-धन और बहुत भुल्योवाला, अवादि-नोगयुक्त, सदा ह्यसन्तस होवे जिस दुरात्माने यह सब कुपु किया है। जिस पापीने यह करवाया है, वह कपटी-दुष्टी, सुगलखोर, दुर्भावयुक्त पुरुष राजदण्डके भयसे इधर-उधर मात-भारा फिरे। अनुस्नाता भाषाके पास न जानेसे जो पाप होता है वह पाप उस पापीके पक्षे पड़े जिसने यह किया-कराया। स्त्री-द्वेषसे सन्तानहीन हुए उस पुरुषकी सन्तान-परम्परा नष्ट होकर कुल नष्ट हो जाय भयवा उसके स्तिरपर वह पाप चड़े जो कि अनुकूल भाषाको छोड़नेसे लगता है। माह्यकी पूजामें बाधा दाखलनेसे जो पाप होता है वह उसको सगे जिसकी रायसे राम बन भेजे गये हों। बाल-वस (बहुदे) के हिस्सेका दूध निकालकर स्वयं पीनेमें जो पाप लगता है वह उसको सगे जिस पापीने यह सब कुपु किया कराया। भयनी सहधर्मिणीको छोड़कर जो पर-दारापर प्रपटि रहता है, उससे संसर्ग रहता है, जिस स्थितिके कारण राम बन गये हैं, उसको वह पाप सगे। पीनेके पानीको गदवा करनेवालेको, विप देनेवालेको, प्यासेको पानी न देकर उसको दिक् करनेवालेको जो पाप लगता है वह उसको सगे जिसने यह किया-करवाया। एक ही परापर-देवताको शृयक्-शृयक् मानकर उनपर घृषा वाद-विवाद करनेवालोंकी बातोंको जो सुपचाप सुनता है, उसको जो पाप लगता है, वह सब, यदि राम भेरी बरनीसे बन गये हों तो मुम्को सगे।

इस प्रकार शपथ लेता हुआ, आश्रीय करता हुआ, शोक-विद्वह भरत भूमिपर गिर पड़ा। तब कौसल्या-माताने 'पति-पुत्र-विहीना कौमल्याने पुचकारकर कहा— 'शिय भरत! एक जो वह दुःख या ही, धक लेती इन शपथोंसे और भी बड़ गया। यह सब सुनकर भेरे प्राथ सुट रहे हैं। तुम बड़मागी हो कि तुमने धर्म नहीं छोड़ा। तुम सत्यमतिज होकर ऋष्ये छोड़ोंको, ऋष्यी गतिके प्राठ होचोगे' देला वह धरनको गोदमें विज, उसकी पुचकारकर माता कौसल्या वृट-वृटपर रोने लगी।

रामायण-आश्रित समाज स्थिति, शोचस्तिष्ठि किठनी उच थी। हमारी पिनुमति, मायुमति, प्रायुमति, पतिमति, पतिमन-धर्ममें आम्ना आदि संगठित सत्यताकी लुहनामें मखाकोई देठ, कोई राष्ट्र पुरुच सज्जा है? आकाशवादी हो रही है—'भती! भती !!'





राम-श्वरौ ।

कन्द-मूल फल सरस अति दिये राम कहँ भानि ।

प्रेमसहित प्रभु खायदु पारहियार बखानि ॥



मनमें उनके प्रति क्याका सञ्चार हुआ। विभीषणने काम श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लिये बिना ही किया, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको यह पसन्द न आया और सीलिये उन्होंने क्रोधमें भरकर, उदाहना देते हुए भीषणको बर्जा और कहा—

किमर्थं मामनादृत्यं क्रियतेऽयं त्वया जनः ।  
निर्वायैवमुद्योगे जनोऽयं स्वजनो मम ॥  
व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।  
न मत्तो नो विवादे च दर्शनं दुष्प्रति क्षिमाः ॥  
सैषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ।  
दर्शनेऽस्या न दोषः स्थान्मत्समीपे विशेषतः ॥  
तदानीय समीपं मे शीघ्रमेनां विनीषणः ।  
रामस्योपायसंज्ञां समिन्कथं विनीतवत् ॥

(श० रा० ६।११५)

अर्थात् तुम मेरा अनादरकर मेरे जनोंको क्यों सता रहे हो ? अपने लोगोंको मना कर दो, कि वे मेरे जनोंको सतायें, क्योंकि ये सब मेरे स्वजन हैं अर्थात् घरके जनों जैसे हैं। वृष्टजनोंका बियोग होनेपर, राजविषयके य, समर-भूमिमें, स्वयंवरमें, यज्ञशालामें, विवाहमण्डप-अर्थात् जनसमाजके सामने बिना परदा या बिना घूँघट आना दोषावह नहीं है। अर्थात् इन खास अवसरोंको य अन्य दशाओंमें स्त्रियोंका जनसमाजके सामने आना आवह है। इस समय सीता बड़ी विपत्तिमें पड़ी हैं और युद्धकाल है। अतः ऐसे समय और विशेषकर मेरे सामने का बिना परदे आना-दोषावह नहीं है। अतएव हे भीषण ! तुम शीघ्र सीताको (सुजे सुँदर) मेरे पास ले जाओ। श्रीरामचन्द्रजीके इन बचनोंको सुन विभीषणने प्रया भङ्ग होते देख, सोच-विचारमें पड़ गये, श्रीरामजीकी आज्ञा टाल भी नहीं सकते थे। अतः परदे सीताको श्रीरामजीके पास ले गये।

इस प्रसङ्गमें एक बात और है, वह यह कि श्रीरामचन्द्रजी जानते थे कि केवल परदेसे ही स्त्रियोंका चरित्र रहेगा, ऐसी बात नहीं है, अतः उनकी ओर फिर भी रखा जाता था। इसीसे श्रीरामचन्द्रजीने कहा था—

न गृह्णाणि न बह्राणि न प्राकारास्तिरक्रियाः ।  
नेदशा राजसत्कारा नृसमावरणं स्त्रियः ॥

(श० रा० ६।११५।२७)

अर्थात् स्त्रियोंके लिये न घर, न चादरका घूँघट, न फनात आदिकी पहारदीवारी, न चिक आदिका परदा और न इस प्रकारका राजसत्कार ही धाक करनेवाला है (जैसा कि तुम कर रहे हो)।

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीने उस समय, राजकीय कारण दिलावा सीताको सबके सामने सुलभसुख्खा आनेकी आज्ञा दी तथापि श्रीरामचन्द्रजीका यह आचरण लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्को अत्यन्त दुःखदायी हुआ। आदिकविने लिखा है—

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमान्श्च इवज्जमः ।  
निशम्य नावयं रामस्य बभूव्यथिता भृशम् ॥

(श० रा० ६।११५।३२)

किन्तु वे कर ही क्या सकते थे ! इस श्लोकसे एक बातका पता और भी चलता है—वह यह कि आदिकविने 'एवज्जमः' विशेषण लगाकर यह जतलाया है कि सीताजीका परदा त्यागकर आना वानर-जातिको भी अच्छा नहीं लगा और सुग्रीव तथा हनुमान्को भी दुःख हुआ। किन्तु परदा त्यागकर सबके सामने निकलने-बैठनेमें अनभ्यस्ता जानकीकी उस समय क्या दुरा थी, यह भी सुनन योग्य है। आदिकवि कहते हैं—

रजया त्वन्कीयन्ती स्त्रेषु गानेषु मैथिली ।  
विभीषणेनानुगता मतीरं सम्भवततः ॥  
सा बल्लसंयद्धमुखी रजया जनसंसदि ।  
दरोद्रासाध भर्तारमार्थपुत्रेति माषिणी ॥

(श० रा० ६।११५।३४-३५)

अर्थात् जानकी लोगोंके सामने आनेमें मारे लज्जाके अपने शरीरमें दूबी जाती थी। विभीषण उसके पीछे था रहे थे, इसप्रकार सीता अपने पतिके निकट पहुँची। उस जनसमाजमें लज्जावश उसने घूँघट काड़ लिया था और इस अवमानस घबड़ा वह 'हे आर्यपुत्र !' कहकर रो पड़ी। साताने यहाँ जो 'हे आर्यपुत्र !' कहा उसका भी एक गुड़ रहस्य है अर्थात् वह श्रीरामचन्द्रजीको इशारेसे कहती है कि आर्यपुत्र होकर मर्यादाविह्वल कार्य क्यों कर रहे हैं ?

सारांश यह कि जिन अवसरोंपर परदेकी शिथिलताकी बात श्रीरामचन्द्रजीने कही थी वह भी उस समय जनसमाजको मान्य न थी, किन्तु बड़े लोगोंमें आदर्शके रूपमें उसकी अचमात्र की जाती थी, क्योंकि यदि वह अवसर समाज-मान्य होते तो प्रथम तो विभीषण ही क्यों दूकी

हुई पालकीमें गीताको बिठा और दटो-बधो करने लागे। द्वितीयतः यदि भूलवश विभीषणने ऐसा कर भी दिया होगा तो वे रामचन्द्रजीकी आज्ञा सुन आगा-पीता न करते। इसपर भी यदि कोई कहें कि अपने कामकी तीव्र आलोचना होनेपर अभिमानवश विभीषणने आगा-पीता किया, तो लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमानादिकों तो घुसा न लगना चाहिये था, किन्तु यह बात उनको भी पुरी खगी। अतः यह मानना पड़ेगा कि भार्यजाति रामायण-कालमें स्त्रियोंके लिये परदा-प्रथाको उपयोगी माननी थी। यह तो हुई भार्यजातिमें परदा-प्रथाके प्रचलित होनेकी बात। अथ जीजिये हम आपको रामायणकालमें भार्यजातियोंमें भी उसके प्रचलित होनेका प्रमाण रामायणहीसे निकालकर देते हैं। देखिये, जिस समय क्रोधमें भरे लक्ष्मण किष्किन्धामें गये और सुग्रीवके अन्तःपुरमें धुने, और खास जनानी-ह्योड़ीमें चले गये, तब इन्हें ह्योड़ी ही अन्तःपुरवासिनी लज्जनाघोंके नूपुरों और करघनीकी संकार सुन पड़ी ह्योड़ी वे लज्जित हो जहाँ-कै-तहाँ खड़े रह गये। आदिकवि कहते हैं—

कूजितं नूपुराणां च काशीनां निन्दं तथा ।

सल्लिशाम्य ततः श्रीमान्सीमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥

(वा० रा० ४।३३।२५)

अर्थात् नूपुरोंकी झमाझम और करघनीकी घटियोंकी संकार सुन सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मण लज्जित हो गये। आजकलके कुछ मनचले लोगोंके जैसे तो लक्ष्मण थे ही नहीं कि चाहे जिसके घरमें बेधड़क घुसकर बीबीसे 'शोक-हँस' करने लगते। वे तो बड़े उच्छृंखल चरित्रवान् थे। इसीसे आदिकविने लिखा है—

चारित्र्येण महानदुरपकृष्टः स लक्ष्मणः ।

तस्यावेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः ॥

(वा० रा० ४।३३।२०)

अर्थात् चरित्रमें श्रीलक्ष्मण बहुत धरे बड़े थे। अतः वे आगे न बढ़े और श्रीरामचन्द्रजीके शोकसे विकल एकान्त स्थल देख खड़े हो गये। इतनेमें भरोमें पूर तारा लक्ष्मणजीके सामने आती है। मारे नरोके उसे अपने शरीरके बख और आनूप्योंकी भी सुच-सुच नहीं है। उसके पैर खीं-के-कहीं पड़ते हैं।

सा प्रसन्नन्ती मरमिदुग्गी

प्रसन्नहासी मुग्धेननुत् ।

सप्रयुगा लक्ष्मणमत्रियानं

जगत्त तारा ननिताप्रवतिः ॥

(वा० रा० ४।३३।३३)

ताराको इस दृशमें देख लक्ष्मणजी 'अरुणः ५ मग्गनुज्जेत्तुपुवः' अर्थात् राजकुमारने गर्दन नीची कर

इस प्रसङ्गमें यह स्पष्ट है कि यदि कोई स्त्री देखकर उस जमानेके किसी पुराणके सामने खड़ी जाती है तो उस जमानेके पुराण, आजकलके कुछ लोगोंकी तरह खीं-धोर ताकने तक नहीं वे और न आवाजे करते थे, मर मारे सत्ताके गर्दन नीची कर लिया करते थे।

अब आइये, लक्ष्मणमें भी हम आपको दिखवाती हैं यहीं उच्च धारणकी स्त्रियोंमें कैसी परदा-प्रथा प्रचलित थी और यदि कोई स्त्री परदेकी चबहेलना करती थी तो उसे प्रति उसके पति किस प्रकार बिगड़ते थे। जिस रावणके मारनेका दुस्संवाद रावणके रत्नवासमें उस समय रावणकी अन्तःपुरवासिनी लज्जनाघें आकर सागरमें निमग्न हो, पाँच-प्यादे रणाश्रयमें पहुँची। वं शवसे लिपट बिलाप करती हुई मन्दोदरी कहने लयी—

दुःखान् सन्त्वसि कुक्षो मनिहानवमुष्कान् ।

निर्भेदां नगरद्वारप्रदुस्मनिवातां प्रभो ॥

पदयेष्टदार दारांस्ते अष्टतन्वावमुष्कान् ।

बहिर्निष्पतितान्सर्वांश्च कथं दृष्टवान् कुपसि ॥

(वा० रा० ६।१११।३।५)

हे स्वामी ! मैं घूँघट काढ़े बिना नगरके द्वार निकलकर पाँच-प्यादे यहाँ खड़ी आयी हूँ, हम इतने दिन सुकसे कुद क्यों नहीं होते ? देखो, मैं ही कनेकी बँ मयुत—सुगहारी प्यारी समस्त परिवाँ लक्ष्मण्यार और कि खोज अन्तःपुरके बाहर निकल आयी हूँ—इतने ही दृशमें देख तुम्हें क्रोध क्यों नहीं आता ?

आदिकविने इतना स्पष्ट घूँघट और परदेका रिवाज दिया है। इसपर भी केवल रामायण-महाभारतका मान्य सुननेवाले—इन्होंने लोगोंका नाम लेकर बे-पर्दागी का लक्ष्य किया करते हैं। किन्तु इन भोजे भाइयोंको परदे का सूझा कि अयोध्यामें तो यहाँ तक परदेका प्रामाण्य था

रनवासकी खास द्योहीपर जियों, बालकों और बूढ़ोंको ही  
पहनेपर रखा जाता था। देखिये—

प्रणम्य रामलान् वृद्धोऽसृतीयायां ददरोतः ।

सिनो बाळाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणततराः ॥

( सा०प० २ । २० । १२ )

उन बूढ़ोंको प्रणामकर शौरामजीने सीमरी द्योही पर  
जियों, बालकों और बूढ़ोंको पहना देने हुए देखा।

आदिबन्धुके खेलसे यह भी पता चलता है कि  
धयोप्यापुरीमें धविवाहिता कन्याओंको धोड़, विवाहिता  
नियीं माटिका आदिमें भी नहीं जाती थीं। देखिये—

नारामिके बनेपदे उदालानि समागतः ।

सायन्ने त्रीदित्तुं याम्भित कुमायो हेनमूषितः ॥

अधोन् भरान्वाज्यमें सोनेके गहनोंसे भूषित कुमारियाँ  
सायंकाळके समय बागोंमें क्रीड़ा करने नहीं जाती थीं।

इन सब प्रमायोंके रहते कोई भी विवेकी एवं विचारवान्  
पुरन रामायणके आधारपर यह नहीं कह सकता कि  
उस कालमें परदा था ही नहीं। जो प्रेमा कहता है, कवि  
कचवक्के कथनानुसार उम मर्दकी 'भरपर परदा' पद  
गया है।

## वैदेही-विलाप

१  
जिते प्राणोसे भी, अधिक प्रिय माना दुखद था ।  
तुम्हें होना स्वामी, मितल धनकी भी दुखद था ॥  
जिते प्राणोसे, व्यथित करते बिद पद ये ।  
जिते हा ! देखोके, सचमुच सिरांने निकट ये ॥

२  
तुम्हारी कामाजी, अरुने पग जो भी न चरती ।  
सदा आसोरोने, मित नव रही मोद मरती ॥  
सरोज्याही भावों, रघुपति । रही कष्ट सहती ।  
दिसा दो तेजस्वी, अरण्य सुपुत्रा बाल रनि-सी ॥

३  
जिते खोया स्वामी, गिरि बन गुफा खोजत रहे ।  
रनामोसे हूँछ, कडु रिपिनिके संकट सोहे ॥  
रनाया लोड़ा था, पतु सहज ही जीवन दिया ।  
रनाया भूषोंको, मन हृदय मा इतिव दिया ॥

४  
बाओ लोभे हो, कनक-मुग मेरा बह करों ।  
मिगनेको कोई, सिरपर नहीं आसन नहीं ॥  
रनाये भूषो-सी, उरक-उरक का संजिन बनी ।  
रती है हड़ामे, खुँ रिर रही मित्तर बनी ॥

५  
रगोसे बारा-सी, अरिख महा उण बहती ।  
चिताने चिन्ताही, निरुद्ध सहसा आर बहती ॥  
तुम्हारी ही मारत, सिर-व्यथिता यौन जरती ।  
तुम्हारी वैदेही, अहह निधि ! यो है कलपती ॥

६  
सुनिशके प्यारे, लपन तुमको या कटु कहा ।  
असोसे तो देखो, रठन इनना सहट रहा ॥  
कहाँ हो आसो ठो, रघुपति ! अरुनाया किमि करो ।  
अहित्या-सी नारी, सहज तुम ठारी प्रभु अरो ।

७  
दारद्राच-स्वामी, लपन लनने और मनने ।  
कड़ुता ही जना, लठन अर देखे विजयने ॥  
निराग उरक-सी, उर उर रही हाव ! अब तो ।  
प्रभो ! हेभे जो, निरुक्त अनेन आर सब ठो ॥

८  
पतिश्रान्त सीता, प्रभु-अनुचरी खोज करने ।  
मिरांने स्वामी सी, मित कुण्ड-कोई निरखते ॥  
रिमनेने दे सी, अहह ! मुफको मल अरना ।  
करावेदे स्वामी, रघुकुल-वन् बरा न लवना ॥

९  
तुम्हारी शोका भी, मितल मुझ होना अनुक था ।  
हुँसे सेवामे ही, मितल मितल आरा सिद्ध था ॥  
अहो अरुदर्शनी ! उर हृदय दे काय करती ।  
जितने रनावाँ, अब अरिह बरा हाव ! लवती ॥

रामायण विम, 'अ' ११



# सतीके मरणान्त प्रायश्चित्तका गुप्त कारण

( लेखक-श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत )



एथनिक चंभ घानी 'परम कल्याण' के अधिकारी 'कल्याण' के रसिक पाठक इस खेसका शीर्षक देखकर सम्भवतः आश्चर्य करेंगे और इस रामायणांकके विद्वान् खेसक भी कहेंगे कि इस विशिष्ट सुन्दर शं'कके लिये सम्पादकने

जिन शताधिक विषयोंकी सूची तैयार की थी, उसमें उपयुक्त नाम नहीं है। तथापि निम्नलिखित विषय पढ़नेपर मुझे आशा है कि वे इसको सूचित विषयोंके अन्तर्गत ही मानकर इसे श्रीरामचरित्रके पूर्णत्वका निदर्शक ही समझेंगे !

Ramayan - ...

कुछ समय पूर्व एक प्रसिद्ध कानून-व्यवसायी सज्जनने अपने प्यास्यानमें यह प्रतिपादन किया था कि 'श्रीराम ईश्वर-के अवतार नहीं थे, वे एक महान् सद्गुणसम्पन्न नरपति थे।' जो लोग पाश्चात्य शिक्षा-धीचाके कारण अपनी सनातन-धर्म-संस्कृति तथा औपनिषद्-विद्यासे कुछ दूर चले गये हैं, जिन्होंने 'प्रायः ब्राह्मिभेषत' इस सुवि-यचनानुसार आश्रमोंका उचित रीतिसे अभ्यास नहीं किया है और जो मनमाने सौरपर धर्म छगाकर अपनेको पण्डितमन्य मानते हैं, उनके विचारोंका ऐसा बन जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, कुछ तो इतनाही है कि इन उपाधिधारी आधुनिक विद्वानोंके सर्वसाधारण सर्वज्ञ और नेता मानते हैं और इनके वचनोंका अनुसरण करना चाहते हैं।

जैसे कानूनका बड़ेसे बड़ा किमीमास विद्वान् रोगीका निदान नहीं कर सकता, जैसे शिक्षा और अनुभवसम्पन्न कामी कारखाने मशीनके पुत्रें नहीं सुधार सकता और जैसे मिस चक्राबेबाबा 'स्ट' क्लास मेंकेनिकल इन्जिनियर सेगु-विर्मात्ममें लखार देनेका अधिकार नहीं रखता, वैसे ही शास्त्र-शास्त्र-मनुष्य मनुष्य टापीय कुछ विषयोंपर भी कुछ नहीं कर सकते। किमी भी एक विद्याविद्येमें कोई चारों किन्ना ही विपुल क्यों न हो वह सभी विषयोंपर मन देनेका अधिकारी नहीं है। जो लोग किन्नाको सब विषयोंमें अधिकारी समझते हैं वे भ्रष्ट कामे हैं और कबसे धारको ऐसा धरकरनेसे तो ब्राह्मिभेष ही। धरकरका आकाश धरने हैं।

अथएव जिमने जिस विषयका शास्त्रोंके ज्ञात अन्तरक है, उसीको उक्त विषयका प्रतिपादन करनेके लिये बंदना चाहिये और सुविज्ञ सज्जनोंको भी उनीति उत्सका मत मानना चाहिये, अन्यथा इन्हें ही सम्भावना है।

'श्रीराम मनुष्य हैं या ईश्वर' इस सम्बन्धमें इस पूर्व में बेलगाँवके एक मराठी पत्रमें एक बहुत कुछ खिल चुका है, इसके लिये 'श्रीरामचरित्ररहस्य' नामक मराठी पुस्तकमें भी इतना बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया गया है। उक्त पुस्तकमें ईश्वररूपान्तर'कल्याण'के तृतीय वर्णके 11 वें अंशमें प्रकृत हो चुका है, अथएव यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। इस ही साररूपमें इतना निवेदन कर देता हूँ कि भगवान् ईश्वर का रहस्य बड़े-बड़े ज्ञानियोंके सम्बन्धमें भी नहीं जाना जा सकता। महाजनीने उक्तमें लल्लादयः 'हमारे सच उदात्त भी नहीं हो जाते हैं' कहा है तब अन्यान्य ज्ञानियोंकी तो काँ कौन-सी है ?

महाज्ञानियोंके लिये भी अवतार रहस्य जानना कठिन है। धारण करता है? अवतार पादकाल

परिच करता है? और फिर उन अवतार-रूपोंके ल्याग करता है? इन सबोंका रहस्य महा धारि रूप भी नहीं जानते। महाज्ञानकी प्रति सुन्दर होना है परन्तु तेरे खोला-देह धारणका तब सब महाज्ञानियोंके भी पूर्व-रूपसे जाननेमें नहीं आता। तान्य यह कि इन्द्र, महादि देवता जो आता-रूपोंके वे ही सब भगवान्के अवतार-रूपको पहचाननेमें नहीं हो गये, उनको भी सब अवतार-रूपका ज्ञान नहीं। तब अन्य महाज्ञानियोंकी तो गति ही क्या है? श्रीरामके सम्बन्धमें इन्द्र और महाजनीकी जो दुर्बला दुर्बला ही सभी जानते हैं। हरी प्रकार श्रीरामायणमें लल्ला देवीकी भी बड़ी दुर्बला दुर्बला ही, इस कारण

सन्तोंने जिस प्रकार वर्णन किया है, उसीका सारांश यहाँ दिया जाता है।

श्रीरामका सीता-  
विरह, शंकरकी  
अचल निद्रा और  
सती-मोह।

रावणद्वारा सीताके हरे जानेपर श्रीराम सीता-वियोगसे व्याकुल हो गये। पूर्णिमाका शीतल सुवांशु उन्हें श्रीराम-मग्याहके प्रखर सूर्य-सा प्रतीत होने लगा। सुन्दर शीतल पवनके झकोरे उन्हें

वज्रपातका अनुभव कराने लगे। लक्ष्मणने पुत्रपत्न्या रचकर उन्हें उसपर सुलाया, पर वह फूलोंकी कोमल पंखड़ियाँ श्रीरामके बदनमें घुँईकी तरह चुम्बने लगीं। वे न तो फूलोंकी सेजपर सो ही सके और न उसपरसे उठकर कहीं एक स्थान-में शान्तिसे बैठ सके। एक साधारण मनुष्यकी भाँति 'हा सीते' 'हा सीते' की पुकार मचाते हुए शोककुल हो-गये। धर-उधर भटकने लगे। गुलाम्ही बिलते हैं—

पूरुनकाम राम मुखरासी। मनुजचरित कर अज अनिनासी॥  
पर-दुख-हरन को कस दुखतादी। भाविपाद तिन्हें मनमाही॥  
हा। गुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-जतनेम-पुनीता॥  
लडिमन समुदाप बहु मोंठी। पूछत चले लता तब घाठी॥  
हे खग भूग हे मधुकरसेनी। मुह देखी सीता भू-नैनी॥

सीताके वियोगसे उनकी विचित्र दशा हो गयी, वियोगके कारण उनका संयोग-चिन्तन जाग उठा और अन्तःकरण सीतामय बन गया, यहाँ तक कि वे 'सीता सीता' कहकर वृक्ष और पापायोंकी आज़िजन करने लगे।

श्रीरामकी यह दशा देखकर लक्ष्मणको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रभुकी समझानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सभी व्यर्थ हुए। आकाश-रहित देवता प्रभुकी मनेक सीलाको कौमुदल-पूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे। विषकण्ठक रावणका भगवान् श्रीराम कब सकुल संहार करेंगे, वे इसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भगवान् शंकर तो अपने आराध्य श्रीरामके गुण-सीता-चिन्तनमें सर्वदा ही हूने रहते हैं। वे प्रेमपूर्ण दृष्टिसे श्रीरामकी विचित्र सीलापुँ देख रहे थे। आर्षाङ्गिनी भवानी दायापिथी सती भी उठी दृष्टिसे देख रही थी परन्तु उसकी अन्तर्दृष्टिमें कुछ अन्तर उत्पन्न हो गया। श्रीरामके 'माया-मनुष्य रूप' को वह भूल गयी। उसने भगवान् शंकरसे पूछा कि 'आप जिन रामको पूर्वोक्त मानते हैं क्या वे यही हैं?' शंकरने कहा, 'हाँ, वही मेरे पूर्वोक्त राम हैं।' सती बोली—'वह तो 'सीता

पुकार मचाते हुए व्याकुलतासे पेड़-पत्थरोंको भी छातीसे लगा रहे हैं?' 'शिवजीने कहा 'तथापि यह पूर्वोक्त हैं।' सतीने पूछा—'क्या आप हुन्दीका ध्यान करते हैं?' शिवजी बोले,—'मेरे ध्यान, ज्ञान, विज्ञान सभी कुछ यह पूर्वोक्त राम ही हैं।' भवानीने कहा—'तब तो आप दोनों ही-भगवान् और भक्त एकसे ही विषयी और कामी दीख पड़ते हैं।' इतना कहकर वह हँस पड़ी। इसपर शिवजीने कहा, 'मेरा राम इस समय विषयी और कामीकी तरह रोता है, गिर पड़ता है, तड़पता है, परन्तु वृ निश्चय समझ कि यही परमेश्वर हैं।'

अन्य शंकरकी निद्रा! किसी भी अवस्थामें जिसके मनमें प्रभुके प्रति किञ्चित् भी विकल्प नहीं पैदा होता, वही तो सच्चा निद्रावान् है!

सतीको मोह हो गया था, उसने शंकरके सतीका रूप निश्चित वचन सुनकर उनसे कहा—'यदि मैं रामको दृष्टा हूँ तो?' शिवजी बोले, 'तब हम समझ लेंगे कि यह मरल नहीं हैं।' भवानी बोली—'आप कहें तो मैं इसी क्षण रामको चक्रमें डाल दूँ।' शंकरने कहा, 'वे पूर्व सावधान हैं, मेरी दृष्टा हो तो परीक्षा कर देख।' इतना सुनते ही सतीने सीताका रूप धारण कर लिया और वह उसी धोर गयी, जहाँ श्रीरामजी विचर रहे थे। सतीजी सीताके वेषमें (हँसती हुई) श्रीरामकी आँखोंके सामने व्यकर खड़ी हो गयी। श्रीरामने उसकी धोर बिना ही ताके मुँह फेर लिया और 'हा सीते' 'हा सीते' पुकारने लगे। 'दृष्ट देखिये, मैं आ गयी' कहकर सती फिर सामने गयी, भगवान् उसे वहीं छोड़ दूसरी धोर फिटकर पड़नेकी भाँति पेड़-पत्थरोंको आज़िजन करने लगे। वह बार बार श्रीरामके सामने गयी परन्तु राम उससे विमुख होकर घेरे ही 'सीते सीते' पुकारने लगे। यह देखकर लक्ष्मणने कहा—'रघुराम, श्रीसीतादेवीके सामने आ जानेपर भी धाप शोक क्यों कर रहे हैं?' यह सुनकर भगवान् लक्ष्मणपर विगड़े। जब लक्ष्मणने फिर विनती की तो राम उन्हें डाँटते हुए बोले—'सौमित्र, वृ भाई होकर भी मुझसे बैर क्यों कर रहा है? यहाँ कहाँ सीता धापी है? मेरा तो अन्तःकरण उसके लिये दग्ध हो रहा है।' यह सुनकर लक्ष्मणने

हो गया है, सुनते ही मारने दीवते हैं। माता सीता

# सतीके मरणान्त प्रायश्चित्तका गुप्त कारण

( लेखक - श्रीरामचन्द्र कृष्ण बाबा )



धार्मिक चेतनानी 'पारम कल्याण' के अधिकाारी 'कल्याण' के रीतिक पाठक ह्यन सेवका शीर्षक देगकर सम्मानः प्राप्त्य करीगे और ह्यन सामाज्याके विद्वान् श्रेणिक भी करीगे कि ह्यन विशिष्ट गुणपर प्रकडे जिये सागारके जिन शताधिक विषयोंकी शुद्धी गीपार की थी, जगमें उपयुक्त नाम नहीं है । तथापि निम्नलिखित विषय परनेपर मुझे धारणा है कि वे इच्छते स्थित विद्वयोंके अन्तर्गत ही मानकर ह्यते श्रीरामचरित्रके पूर्वापका निर्दोष ही समझीं !

बुद्ध समय पूर्व एक प्रसिद्ध कानून-व्यवसायी सम्जनने अपने व्याख्यानमें यह प्रतिपादन किया था कि 'श्रीराम ईश्वरके अवतार नहीं थे, वे एक महान् सद्गुणसम्पन्न नरपति थे।' जो लोग पाश्चात्य शिक्षा-दीपाके कारण अपनी सनातन-धर्म-संस्कृति तथा श्रीपरनिपद-विद्यासे कुछ दूर चले गये हैं, जिन्होंने 'प्रायश्चित्त-विशेष' इस सुवि-यचनानुसार शारंगोंका उचित रीतिसे अभ्यास नहीं किया है और जो मनमाने वीरपर धर्म खगाकर अपनेको पवित्रतममन्य मानते हैं, उनके विचारोंका ऐसा यन जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, दुःख तो इतनाही है कि इन उपाधिधारी धार्मिक विद्वानोंको सर्वसाधारण सर्वज्ञ और नेत्र मानते हैं और इनके वचनोंका अनुसरण करना चाहते हैं ।

जैसे कानूनका बचसे बड़ा डिमीप्रस विद्वान् रोगीका निदान नहीं कर सकता, जैसे शिक्षा और अनुभवसम्पन्न भामी डाक्टर मरीजके जुड़े नहीं सुधार सकता और जैसे मिल चढानेवाला फट्टे फ्लास मेंकेनिकल इञ्जिनियर सेट्ट-निर्माणमें सलाह देनेका अधिकार नहीं रखता, जैसे ही शाल-ज्ञान-गुण्य मनुष्य शास्त्रीय गुण विषयोंपर भी कुछ नहीं कह सकते । किसी भी एक विद्याविशेषमें कोई चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो वह सभी विषयोंपर मत देनेका अधिकारी नहीं है । जो लोग किसीको सब विषयोंमें अधिकारी समझते हैं वे भ्रम करके हैं और अपने आपको ऐसा समझनेवाले तो बुधामिमान और दुग्धका आचरण करते हैं ।

साधु जियने जिन विद्वक हाथोंके हाथ चलते हैं, जगकी उक्त विराटा प्रतिपादन करते हैं कि बना चाहिये और सुविष्ट सजनोंकी भी उनी उगका मन मानना चाहिये, अन्यथा बर्नाईः सम्भारना है ।

'श्रीराम मनुष्य है या ईश्वर' ह्यन सारमें ह्यन पूर्व ही बेजगतिके एक मराठी सजने ह्यन बहुत उच्च जिन पुका है, ह्यने की 'श्रीरामचरित्राहस्य' नामक मराठी पुस्तकमें भी ह्यने बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया गया है । एक पुस्तकमें 'रूपान्तर-कल्याण'के मनीष बंके ११ वें अंके ह्यने हो चुका है, अतएव यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है । ह्यने की साररूपमें इतना जियेदन कर देता है कि मनुष्यके रूप का रहस्य बने-बने ज्ञानियोंके समझमें भी नहीं आता । मझाजीके ह्यने बलसारयः 'हमारे सारा दुःख जो भी हो जाते हैं' कहा है तब अन्यन्य ज्ञानियोंकी तो ह्यने कीन-सी है ?

मझाजीके ह्यने भी अवतार रहस्य जलना कठिन है । श्रीरामचन्द्रके ह्यने भी व्याख्यानमें ह्यने की ही कहना-हे मने ! बुधारीके ही होकर भी जीजासे (स्वप्नात्) ही धारण करता है ! अवतार धारणको

धरित्र काता है ! और फिर उन अवतार-धरितोंके व्याख करता है ! इन प्रश्नोंका रहस्य मझा जीके ह्यने भी नहीं जानते । मझाजीके प्राति सुवर्णके ही है परन्तु तेरे जीजा-देह धारणका तब जब ही मझाजीके भी पूर्णरूपसे जाननेमें गरी ह्यने तात्पर्य यह कि ह्यन, मझादि देपता जो बरतते ह्यने ही जब मगवायुके अवतार-रूपको परचानने हो गये, उनको भी अव अवतार-रूपका अन्य वा तब अन्य मझाजीके ही गो गरी ही क्या है ! जीजाके समय ह्यन और मझाजीकी जो दुर्दशा हुई थी सभी जानते हैं । इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रके तब देवीकी भी गरी दुर्दशा हुई थी, इस कथाके

सन्तोंने जिस प्रकार वर्णन किया है, उसीका सारांश यहाँ दिया जाता है।

श्रीरामका सीता-विरह, शंकरकी भ्रमचूँ निष्ठा और सती-मोह।

रावणद्वारा सीताके हरे जानेपर श्रीराम सीता-विभोगसे व्याकुल हो गये। पूर्णमासा शीतल सुधांशु उन्हें श्रीराम-मध्याह्नके प्रखर सूर्य-सा प्रतीत होने लगा। सुन्दर शीतल पवनके झकोरे उन्हें ब्रजपातका धनुमथ कराने लगे। लक्ष्मणने पुष्पशण्या रचकर उन्हें उसपर सुजाया, पर वह फूलोंकी कोमल पंखड़ियाँ श्रीरामके वदनमें सूर्यकी तरह लुभने लगीं। वे न तो फूलोंकी सेजपर सो ही सके और न उसपरसे उठकर कहाँ एक स्थान-में शान्तिले बैठ सके। एक साधारण मनुष्यकी भाँति 'हा सीते' 'हा सीते' की पुकार मचाते हुए शोककुल हो वनमें इधर-उधर मटकने लगे। गुहाईवी खिलते हैं—

पूरनकाम राम सुखरासी। मनुजचरित कर भज भविनासी ॥  
पर-दुख-हरन सो कस दुख ताही। भाविषाद दिनहूँ मनभाही ॥  
हा। गुनछानि जानकी सीता। ख-सील-व्रतनेम-पुनीता ॥  
लछिमन समुदाप नहुँ भौती। पूछत चले रता तव पाती ॥  
हे संग मृग हे मपुकरसेनी। तुम्ह देखी सीता मृग-नैनी ॥

सीताके विभोगसे उनकी विचित्र दशा हो गयी, विभोगके फारव उनका संयोग-धिमन्त जाग उठा और धन्तःकरण सीतामय बन गया, यहाँतक कि वे 'सीता सीता' कहकर वृष घोर पापायोंको धाँसलान करने लगे।

श्रीरामकी यह दशा देखकर लक्ष्मणको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने मनुको समझानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सभी व्यर्थ हुए। आकाश-स्थित देवता मनुकी प्रत्येक लीलाको कीर्तन-पूर्ण दृष्टिले देख रहे थे। विश्वकण्ठक रावणका भगवान् श्रीराम कय सज्जल संहार करेंगे, वे हसीकी प्रतीका कर रहे थे। भगवान् शंकर तो धपने आरंभ कर श्रीरामके गुण-लीला-धिमन्तमें सर्वदा ही हूबे रहते थे। वे वेमण्डल दृष्टिले श्रीरामकी विचित्र लीलाएँ देख रहे थे। आर्षाङ्गिनी भवानी शापापिथी सती भी उसी दृष्टिले देख रही थी परन्तु उसकी धन्तःदृष्टिमें कुछ भन्तर उत्पन्न हो गया। श्रीरामके 'भावा-भानुष्य रूप' को वह भूल गयी। उसने भगवान् शंकरसे पूछा कि 'आप त्रिन रामको पूर्णमङ्ग मानते हैं क्या वे यही हैं?' शंकरने कहा, 'हाँ, यही मेरे पूर्णमङ्ग राम हैं।' सती बोली—'यह तो 'सीता सीता' की

पुकार मचाते हुए व्याकुलतासे वेद-पत्थरोंको भी छुतीसे लगा रहे हैं?' 'शिवजीने कहा 'तथापि यह पूर्णमङ्ग हैं।' सतीने पूछा—'क्या आप इन्हींका ध्यान करते हैं?' शिवजी बोले,—'मेरे ध्यान, शान, विज्ञान सभी कुछ यह पूर्णमङ्ग राम ही हैं।' भवानीने कहा—'तब तो आप दोनों ही-भगवान् और भक्त एकसे ही विषयी और कामी दील पड़ते हैं।' इतना कहकर वह हँस पड़ी। इसपर शिवजीने कहा, 'मेरा राम इस समय विषयी और कामीकी तरह रोता है, गिर पड़ता है, तपपता है, परन्तु तू निश्चय समझ कि यही परममङ्ग है।'

धन्य शंकरकी निष्ठा! किसी भी अवस्थामें जिसके मनमें प्रभुके प्रति किञ्चित् भी विकल्प नहीं पैदा होता, वही तो सच्चा निष्ठावान् है!

सतीको मोह हो गया था, उसने शंकरके सतिका कपट निश्चित वचन सुनकर उनसे कहा—'यदि मैं रामको छुटा दूँ तो?' शिवजी बोले, 'तब हम समझ लेंगे कि यह मङ्ग नहीं हैं।' भवानी बोली—'आप कहें तो मैं इसी क्षण रामको चकरमें डाल दूँ।' शंकरने कहा, 'वे पूर्ण सावधान हैं, तेरी हृष्टा हो तो परीक्षा कर देख।' इतना सुनते ही सतीने सीताका रूप धारण कर लिया और वह उसी घोर गयी, जहाँ श्रीरामजी विचर रहे थे। सतीजी सीताके वेपनें (हँसती हुई) श्रीरामकी धाँसोंके सामने व्यकर खड़ी हो गयी। श्रीरामने उसकी घोर विना ही ताके मुँह फेर लिया और 'हा सीते' 'हा सीते' पुकारने लगे। 'इधर देखिये, मैं धा गयी' कहकर सती फिर सामने गयी, भगवान् उसे वहीं छोड़ दूसरी ओर फिरकर पहुँचेकी भाँति वेद-पत्थरोंको धाँसलान करने लगे। वह धर धर श्रीरामके सामने गयी परन्तु राम उससे विमुक्त होकर वैसे ही 'सीते सीते' पुकारने लगे। यह देखकर लक्ष्मणने कहा—'सुता, धीसीतादेवीके सामने धा जानेपर भी आप शोक क्यों कर रहे हैं?' यह सुनकर भगवान् लक्ष्मणपर विगड़े। जब लक्ष्मणने फिर विनती की तो राम उन्हें हाँटते हुए बोले—'सौमित्र, तू भाई होकर भी मुझसे धर क्यों कर रहा है? यहाँ कहाँ सीता प्रायी है? मेरा तो धन्तःकरण उसके लिये दग्ध हो रहा है।' यह सुनकर लक्ष्मणने सोचा कि 'सीताके विरहमें रामको डन्माद हो गया है, इसीलिये सीताका नाम सुनते ही मानने दीवते हैं, धतप्य मेरा मौन रहना ही उचित है। माठा सीता आप ही समझ देंगी।'

इस क्षणमें देवता भी बड़ी बुद्धिवाले पद गने और पारंगत करने लगे कि 'राज्यके लिये पूरक लीला कौन नहीं था गयी ?' अर्थियोंको भी आश्चर्य हुआ। वहाँ तक कि महाश्वी भी विस्मित होकर यह करने लगे कि 'क्या राज्याको भयम करके लीलाभी नहीं था गयी है ?' गाराण, महाश्वी देवता भी इस रहस्यको नहीं जान गये। परन्तु पूर्वाग्रह सार्वभौमिकी, सर्वज्ञ श्रीरामने यह भेद जान लिया। अक्षयके मीन होनेवा 'लीले'। गीते ! 'गुप्ताने ह्यु श्रीरामका हाथ कृत्रिम सींगाने पकड़ लिया और कहा— 'सावधान होइये, मैं तो आरके सामने नहीं हूँ फिर स्वर्ण ही आप इस उपर 'सीता, सीता' पित्राने ह्यु क्यों बौध रहे हैं ? क्या ऐसा करते आरको अज्ञान नहीं आयी ? आप तो सदा कहा करते थे कि मैं नित्य सावधान रहता हूँ। क्या आपका यह ज्ञान स्त्री-विषयमें सार्वभौमिकता रहा। सगे भाई भक्त अक्षयके विनय करनेपर आप उसे डाँटते हैं। घोड़ी-सी देरके लिये मेरे आँसूसे चोम्बक होते ही आप इतने अक्षय कैसे हो गये ? मैं तो वनमें विपन्न आपकी यह प्रथा देख रही थी, अब मैंने देखा कि आप तो पागल ही हो रहे हैं तब मैं घोड़ी आयी।'

स पण्डितो नरधेनुः प्राठः कर्मविदां नरः ।  
अप्राठ इव कि राम । भार्या हेतोर्विमुहते ॥

'अब आप इस मोहको छोड़कर पञ्चवटीमें चलिये—' वनवासकी अक्षयमें घोड़े ही दिन शेष रह गये हैं, उन्हें विताकर हमलोग अयोध्या लौट चलेंगे।' सतीके इस वचनसे भगवान् श्रीरामने हँसते हुए कहा— 'माता, मैं आपके वरण छूता हूँ, आप मुझे मत सताइये, मैं तो भगवान् शरकरका एक हीन शालक, उनका एक अनन्य किंकर हूँ, फिर आप मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रही हैं ? भगवान् शरकरको थकेले छोड़कर मुझे संग करनेके लिये सीताका रूप धारणकर आप यहाँ क्यों आयी हैं ?'

श्रीरामके इन वचनोंको सुनते ही सती सीताके स्वरूपको त्यागकर तुल्य श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़ी और बोली कि 'भगवान् शरकरने मुझसे कह दिया था कि श्रीराम नित्य सावधान और सर्वज्ञ हैं, उनके समीप तुम्हारा कण्ठ नहीं चलेगा। अब मुझे उन वचनोंका निश्चय हो गया। मैं शिष्यकी शक्ति हूँ, मैंने धरनी अतवर्ष मायासे सीताका स्वरूप बना लिया था। मुझे महाश्वी देवता भी नहीं पहचान सके। आपका ज्ञान अगाध है, आप अगाध गति

है, आरके सामने शिष्या भी कुछ-कुछ नहीं बरगता। आप मेरे सारांश होकर भी पागलकी कौन के पदांशको अक्षयमान करने हुए क्यों मरक रहे हैं ? मैंने सीता शिष्या ह्यु और कामकी कामता संभल नहीं है। हे राम ! आप पूर्वाग्रह हैं। मुझे इस तरह निश्चय हो गया। फिर आप शिष्यदेवता न रहते हैं 'लीले लीले' गुप्ताने क्यों अगाध-अगाध पून रहे हैं, इन मुझे इसका रहस्य समझाने।' यों धरनी करने लगी श्रीरामके वरण पकड़ लिये।

अंता देता  
होना चाहिये।

इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा, 'मैं ! मेरी स्त्रीना श्रीशिवजी जानते हैं, मैं इसको इसका रहस्य बतलाऊँ। करने मुझे

धरनी बधाई नहीं करनी चाहिये। कहीं कुछ बला नहीं तो पहले ओठाके अधिकारकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। पात्र बिना रहस्यकी बात नहीं बतलायी जा सकती। मैं ओठा धुकी, विवादी, पूर्ण, बद्धक, नास्तिक, कल-कल, बुद्धि, भावता और दग्गी नहीं होने चाहिये। ह्यु लो गुणी, कामिनी-काष्ठनका त्यागी, पूर्ण परमात्मा और शिष्य सगुण मनुष्य ही इस ज्ञानरहस्यका अधिकारी हैं। वन मनमें ज्ञानका अभिमान है, इसीसे आर शिष्यकी स्वरूप विरसकारकर मुझे दुखने आयों, फिर भला, मैं आने नहीं कोई बात कैसे कहूँ ? जिसको पतिवचन, गुस्सबननातिव नहीं, उसे गोपन रहस्य नहीं बतलाना चाहिये।'

ज्ञानाभिमानके  
रक्षण।

भगवान्के इन वचनोंको सुनकर सती बहुत ही अक्षय हुई, वह नरकील कहने लगी कि 'मैं गुरुरूप पतिने स्वर्ण

उद्वलंघनकर, शंकरकी बात नहीं सुन श्रीरामगुणजोके स्वर्ण प्रायी, आग लगे मेरे इस ज्ञानाभिमानको।' यों कहकर पश्चात्तापसे रोने लगी। साधु सन्तोंके मित्रनेपर उनके पुत्र हैं, उनसे अक्षय करना, उनके गुणोंमें भी दोषोंका आरोप उनको निन्दा करना, सुखपर कुञ्ज और और शीघ्रने अक्षय ही कहना, उनपर शब्दा रत्ननेवालोंकी निन्दा अथवा उनको मूर्ख ठहराना, ये सब ज्ञानाभिमान के लक्षण हैं। सतीने फिर कहा कि 'हे राम, मैं अक्षयने प्रायी, मेरा कण्ठ आपके सामने नहीं सका, तब भी आपने मुझपर क्रोध नहीं किया। मेरा मन पलट गया है। आपके दर्शनसे मेरा

जाताभिमान बल युक्त है। छल-कपट नष्ट हो गया है। हे राम, मैं आपकी शपथ करके ऐसा कह रही हूँ।'

सतीके इन अनुतापयुक्त वचनोंसे श्रीरामका हृदय पिघल गया और वह अपना गुप्त रहस्य कहने लगे—

गुप्त-पापाण-  
आतिमगना  
रहस्य।

हे देवि भवानी! आपको दीखनेवाले यह वृक्ष-पापाण पूर्वजन्ममें ऋषि थे। इन्होंने मेरी प्राप्तिके लिये निष्काम अनुष्ठान किया था। मेरी धरण-प्राप्तिमें

इनका पूरा सन्नाह था, इससे वे सारा अभिमान त्याग-कर वृक्ष-पहाड़ बन गये हैं, कोई वृक्ष बनकर, कोई पहाड़ बनकर और कोई वृक्ष बनकर मेरे धरणोंके नीचे पड़े हैं। उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ही मैं परम प्रेमसे उनका आतिथ्यन कर रहा हूँ। वे सब मेरे निरभिमान गण हैं और मैं भक्तोंके भावका शर्मा हूँ। सीताके बहाने उन सबको ईदता हुआ बन-वन भटक रहा हूँ। भक्तोंका उदार करने और उन्हें भवान् प्रदान करनेके लिये ही मैं तैरा हूँ, कहीं गिर पड़ता हूँ, कहीं लक्ष्मणावा हूँ, पदांतर-न दीदता हूँ और वृक्षोंको हृदय लगाता हूँ। हे सती! आप यह निश्चय समझिये कि मैं एक कर्म भी न्यर्थ नहीं रखता। भगवान् सदाशिव इस सबको जानते हैं।'

परमार्थका  
रहस्य।

रख्य भावका अतिमग्न है, 'सब भूलोंमें भगवान् देलना।' यही एक स्वार्थका भी स्वार्थ और प्रधान परमार्थ है। इसके करेले जैसे न तो कर्तुप होते हैं और न उनमें कांटे रहते हैं, इसी प्रकार महावृत्तिले किया हुआ कर्म बन्धनकारक नहीं होता। धोनीके बने दूँबेको कट्टा बतानेवाला ठग जाता है। इसी प्रकार साधुओंके कर्मकी निन्दा करनेवालेका भी शपथपवन होता है ॐ। कर्म प्राकृतिक गुणोंसे होते हैं, पान्थ शानी प्रकृतिके गुणोंसे अतीव होनेके कारण कर्मसे सर्वथा निर्लेप रहते हैं। 'समस्त हरयमात्र ही मल है,' इस वृत्तिले कर्म करनेके कारण उनके कर्म ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं। वह कभी मोहमें नहीं पड़ते। सन्तोंकी महिला भगवाण है।

इन साधुओंको वृक्ष-पर्वत न समझकर आप पूर्णप्रद समझिये।' इतना कहकर श्रीरामने कृपा-दृष्टिसे सतीकी ओर देखा।

सतीकी ब्रह्म-  
समाधि।

श्रीरामके द्वारा यह उपदेश सुनते ही सती मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। मैं ही एक शक्ति हूँ, और यही एक शिव हूँ, इस बातको यह भूल गयी। 'बाह' 'कोह' 'सोह'की भावना मिट गयी। उसका चित्त चैतन्यके साथ एकरस हो गया, जिससे सारे भाव लुप्त हो गये। नामरूपका परदा फट गया। रस-द्रष्टाका भेद नष्ट हो गया, सर्वत्र मल ही स्पष्ट हो गया, निजानन्दकी लहरें उठीं और निजानन्दमें ही स्थिर हो गयीं। इसप्रकार शिव-प्रिया सतीकी समाधि लग गयी। छलनेके लिये धायी हुई सतीकी ऐसी अनुपम अवस्था हो गयी। यही सत्यगोमहिमा है, संत अपकार करनेवालेका भी उपकार करते हैं। इसप्रकार पूर्णरूपसे समाधानको प्राप्त करनेपर कुछ समयके बाद भवानीको वाद्य शान हुआ, उसे अतिलक्ष विष सच्चिदानन्दधनरूप दीखने लगा।

यह देखकर श्रीराम बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने पूछा कि 'देवि! मेरी एक बात सुनोगी?' उमाने दीक्षक श्रीरामके चरणोंपर मलक रख दिया और गर्व्य धायीसे कहा। 'देव! आपके कारण मेरा मोह नष्ट हुआ, मैं सुख-रूप हो गयी। मला, मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकती हूँ?' श्रीराम बोले, 'माता! मैं आपसे एक ही भील माँगता हूँ कृपा करके मुझे दो, वह यह कि श्रीशंकरके वचनोंको कभी भूट न समझना, और आहन्दे किसीके भी साथ छल न करना।' इसपर भवानी बोली— 'हे राम, आपके चरण-दरसनसे ही मेरी सारी दुष्ट वृत्तिर्पा दान्य हो गयी, अबसे मैं कभी श्रीशंकर-आज्ञाकी अवहेलना नहीं करूँगी। आपके वचनोंसे मेरी अविद्या भूल हो गयी है। मैं आपकी शपथ स्थावर कइती हूँ कि मेरा सात छल-कपट नष्ट हो गया है। आपके शब्दोंसे मुझे साधुभ्य-मुलकी प्राप्ति हो गयी।' इतना कहकर भवानी श्रीरामके चरण-अन्दन कर भवान्पूर्वक वैद्यासकी ओर चली गयी।

ॐ जो शानीकी निन्दा करते हैं, उनसे छल करते हैं वे उनके पापके विस्तेार होते हैं और जो पदान्त-मावसे उनको छुटि पूरा और सेवा करते हैं उनको शानीक गुण मिलता है, मुनिने इसप्रकार शानीके पाप-गुणोंके अविधारी बनावे है— (संतपत्र-मृत भाष्यदृष्टि।)

शानीमें बालनमें पाप-गुण होते ही नहीं, जो उनमें पापका आरोप करता है वह पापदा और जो गुण्यदा आरोप करता है, वह गुण्यदा भागी होता है। -सम्पादक

धीशक्तमग्न इव शरणाको देव इवे धे, गणीके बने जानेके बाद उन्हीं भगवान्के चरण पकड़कर कहा कि 'माय । ईने तो इन्हें माया मीमा समझा था, परन्तु यह तो शिष्यकायता भवानी निकली । आपने इन्हें रूप पहचाना । शपथगुण ही आप शर्मन्त और शर्मन्तपरामी हैं ।' मझा आदि देवता भी इन्हीमकार उद्भूत प्रकृत करते हुए श्रीरामके चरणोंमें सिर गथाकर अपने अपने छोडोंको चले गये । रायका संहाय नूढ हो गया, धीशक्तमग्नको शक्ति मित्री ।

धीशक्तनाथ महाराज अपने भावार्थरामायण (भारथ्यकारण्ड च० २०)में लिखते हैं-कि यह उमा-राम-संवाद शिष्यरामायणमें ही और शानी भोगा इगको जानते हैं ।

वायमीकिने शतकोटि रामायणोंकी रचना की, जिनके तीन विभागकर संकरने स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल इन तीनों लोकोंमें बाँट दिया । तीन विभाग कर देनेके बाद शेष दो अक्षर 'रा' 'म' बच रहे । दो होनेसे इनके तीन हिस्से नहीं हो सके, अतएव इनको श्रीशिवजीने अपने कण्ठमें धारण कर लिया । धीशक्तनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें रामायणोंकी एक सूची दी है, उसे क्यथाणके पाठकोंके लिये मूल मराठीमें ही हम यहाँ उपस्थित करते हैं, पाठक सहज ही रामायणोंके नाम समझ लेंगे ।

- शिव-रामायण शैव-रामायण । आगम-पंचरात्र-रामायण ।
- गुहा गुहक-रामायण । हनुमन्त-रामायण नाटक ॥
- मत्स्य-धूर्म-वराह-रामायण । कालिकाखंडीके निरूपण ।
- महाकाली-रामायण । स्कंद-रामायण प्रसिद्ध ॥
- आगति-पौलस्ती-रामायण । पद्मपुराणीके रामायण ।
- रवि-अग्नि-नरुण रामायण । ऐकोनि आपण जयगु वका ॥
- नंदिप्रामी मरत आपण । वेदे लें मरत-रामायण ।
- महामारतीके रामायण । वका आपण धीन्यास ॥
- क्रौंचद्वीपी अद्यापि जाण । क्रौंच ऋषि संगे पुराण ।
- कथा पवित्र रामायण । अति पावन अनुपम्य ॥
- विभीषणापार्षी जाण । नित्य कथा निरूपण ।
- धर्मऋषि संगे आपण । धर्म रामायण धार्मिक ॥

बेदादिने निरूपण । वेदगु ल्या ।  
 क्या शिष्य सिरान । अनि पत वीरी लेंदी ।  
 शहर वडा स्वने भावन । श्रेता मन्त्री सगल ।  
 ते शिवमहाती रामायण । क्या सिरत सिता ।  
 शरसिर स्वान वका । स्वने श्रीराम निरहं ।  
 ते शिवरामायणी क्या । शरणी देवतां सनं ।  
 स्वने श्रीराम स्वर्नरे पूर्ण । भाग्य प्रति वेद सन ।  
 ते क्या अन्न-रामायण । गेह निरूपण स्वर्नरे ।  
 त्रैलोक्येन रामायण । अर्ध कर्णें सिर ।  
 अतीकृष्ण निरूपण । आश्वयुक्त बल पौरव ।

मरानीका प्रायश्चित्त वाचाययी सती देवीने कैजल पुत्र अनुनापमहित श्रीशंकर भगवान्के कर्णें प्रणाम किया । भगवान् संस संस ही केवल धर्मकी ही मूर्ति हैं । उन्होंने उस सन सनमें कुप भी नहीं कहा । परन्तु मनमें यह सोचा कि इन्हें परम पूज्य उपास्यदेव श्रीरामके साथ पूज ही शक थायन्त अपमान करके घोर पार किया । वह इन धीसीताका—अरे प्रभु श्रीरामकी पत्नीका स्वल्प बात ही बिया तय यह मेरे लिये सीताजीके स्नान पूर्ववत्ता होले । इसके साथ ही पत्नीका सम्बन्ध कैसे रह सका है । त सोचकर शिवजी बहुत ही दुःखी और वरिष्ठ हुए एवं सती पत्नी-भावको छोड़ दिया तथा अलग रहने लगे ।

सती कीन्ह सीता कर भेवा । तिव-उर अयेउ निरद सिते ।  
 जो अब करौ सतीसन प्रीती । मिद भंगति-पय होर अती ।  
 पहि तन सतिदि मेठ मोहि नाहीं । तिव संकल्प कीन्ह मनती ।  
 सन्मुख संकर आसन दीन्ह ।

सतीको इससे मृत्यु-सदरा दुःख हुआ । उसने राम को निमित्त बनाकर अपना शरीर मका कर दिया और फिर हिमाचलके यहाँ जन्म ग्रहणकर पार्वतीके रूपमें प्रसिद्ध हुई । नवीन जन्ममें पुनः महान् तप करके शंकराजीको पतिरूपमें प्राप्त किया । ॥

इति विद्या तपो योगिनिर्गुणीभिः ।  
 वाग्मणेनार्थितो देवः प्रीयतां मे अनर्दनः ॥

• गुप्तार्थीने भी मानसमें इस प्रसंगका वडा ही अन्दर उपदेश-प्रद और रोचक वर्णन विस्तारपूर्वक किया है । लक्ष्मीके स्वर्नरे पार्वतीके विवाहलक्षका प्रसंग मानसके आलोकान्तर्गत अवश्य पढ़ना चाहिये । — लक्ष्मीवक्त्र

# श्रीरामचरित-मानसका दार्शनिक सिद्धान्त

(लेखक-श्रीमन्महाशयराजी विरह पद्य० प०)

जिहा अर्थ ऋतु बीजि सप्त, कथियउ मित्र न मित्र ।  
बन्दी सैनासाम-बद, त्रिनिहि परम प्रिय सिद्ध ॥



ए एक दोहमें गुणार्जुनीने अपना दार्शनिक सिद्धान्त स्वरूपमें उपरिष्ठ कर दिया है। गुणार्जुनी उक्त उक्त सिद्धान्तपर पहुँचे हुए थे, जहाँ पुरुष, मूर्ति, परित्यागवाद, त्रिवर्णवाद आदि सिद्धान्तोंके भेद परस्पर विरोधी न रहकर एक दूसरेके पोषक हो जाते हैं। आपने रामायणके आरम्भमें ही

कृपा करी समथ कहा है—

इन्द्रविद्योतिसंसारकरीणी हेतारविणीम् ।  
सर्वप्रियस्वकी शीतो नरोत्तमं रामपदुमान् ॥  
बन्नापावसरासीं विरहसकितं प्रहसिदिवापुरा,  
बाराबादगुनेव मतिउत्तरं रजी बयउदेध्रम ।  
बाराबादगुनेव दि मरामोधिगिरिनिर्मतो,  
बनेउरं समेशरकारणरं रामहकरीतं हरिम् ॥

'सर्वात् कर्मणि, एका और संसार करनेवाली, कष्टोपहारेवाली, सर्व अंध (सामर्थ्य कल्याण) करनेवाली श्रीरामकी विद्या सीमाको भी नष्टकार करगा हूँ ।'

'त्रिवर्णो मायाके बरामें कर्मिण विरह, ब्रह्मादि देवता तथा अमृत है, त्रिवर्णो ब्रह्ममें सर्वोके भ्रमकी भाँति सब कुछ सत्य-या कर्तनी होता है, त्रिवर्णो ब्राह्मण अज्ञानागतो करनेकी कृपा करनेवालोंके जिसे कृपाकर बौद्ध है सब अज्ञान-कारण-वत्, तस्यब्रह्ममें कर्मिण् अज्ञानिणी भी कल्पना करता हूँ ।'

इसमें त्रिविध चार्णिक कैला मुन्दर और एतद सामान्य विद्या गया है। पहले ही कर्तविक सीमाकीके सीमाके उदर, स्थिति तथा संसार करनेवाली कर दिया जानु कि अज्ञान (पुरुष) का अज्ञानकीके 'अज्ञान-कारण'—सामर्थ्य काकोष भी काण्ड करवाता। इसके बाद ही अज्ञानकीके जिसे कर भी कर दिया कि कृपाकी कल्याण

आधारसे यह असत् संसार भी रस्सीमें सर्पके भ्रमकी भाँति सत्य प्रतीत होता है।

इस विवेचनमें निर्गुण और सगुणका कैला मुन्दर मेल है। गुणार्जुनीके जिसे श्रीरामकी केवल सतुष्यरूप पुरोचम राम ही नहीं हैं, वे 'निर्गुण-स्वरूप राम' भी हैं। बयार्थमें आपके विचारानुसार तो सगुणके बयार्थ स्वरूपको पहचानना निर्गुणमें ही कठिन है। उक्त-कारणमें आप सत्य करते हैं—

निर्गुन रूप सुकठम कथि सगुन न जनि को ।  
सुगम अजय नान-भूति सुनि सुनि-भन सन हो ॥

यह समझा जैसे बनी ही कठिण है जैसे ही सहज भी है। भगवान्के नाम और रूपके विषयमें आप करते हैं—  
नामरूप दोउ रंग उपायी। अक्षय अजयि वि सगुनि छापी ॥

रामायण कैला अज्ञान अर्थ है। इतना, कोल एवं भक्तिसे अज्ञान रहस्य इसमें भर है। जानु यहाँ सगुणके रहस्यरूप कुछ नहीं करना है अतएव वह विषय नहीं सोचकर केवल दार्शनिक सिद्धान्त ही कुछ कहा जाता है—

उत्पूर्वक सोचमें श्रीरामकीको पुरुष तथा श्रीरामकी-को मूर्तिका स्वरूप मानकर, मूर्तिको संज्ञाका कारण कहा है और पुरुष पुरुषको भी नाम काण्ड करवाने हुए, संसारको कृपा—सत्य-या कर्तनी होनेका कथना है। यह एक पदकी है, त्रिवर्णो सुकठमया कारणक है।

मूर्ति और पुरुषमें क्या भेद है? वे दोनों केवल करनेमें विद्य विद्य काय करने हैं, बन्तुता इतमें कोई भेद नहीं है। बाकी एवं उगके कर्म तथा उक्त और कर्मकी कारण, इनके वे ही कारणक हैं। बाकी और कर्म-कर्म-कर्म ही दो कृष्ण कर्तनी हैं जो दिनी कथार कोर ही गयी हैं। अब सब करने काको विनीत कथा कथना कायना है, सब कर जो संकेत कथना है उतमें क्या कायना कथनाके उदर ही है। वा को कथिने कि संकेत सब कायना कथनाक है। काय अज्ञान सब दिनी कायमें कायर्ण-व करने हैं जो वा विनेव संकेतको कथना करने हैं—एत एव है, सगुण के संकेत विद्य कथिने जिसे होने हैं, वे हुए कर्तनीके कोने



धीरश्रमण इव घटनाको देण रहे ये, गरीबे बने जानेके बाद उन्होंने भगवान्के चरण पकड़ कर कहा कि 'गाय ! शीने तो हूँ माता सीता राममा था, परन्तु यह तो शिष्यकांता भवानी निकलीं । आपने हूँ गुण पहचाना । राघवगुण ही आप सर्वश और सर्वान्तर्धामी हैं ।' मन्मा चादि देयता भी इसीप्रकार उद्गार प्रकट करते हुए श्रीरामके चरणोंमें सिर भवाकर अपने अपने लोकोको चले गये । राघवका संशय दूर हो गया, धीरश्रमणको शक्ति मिली ।

धीरश्रमण महाराज अपने भावार्थरामायण (अरण्यकाण्ड अ० २०)में लिखते हैं-कि यह उमा-राम-संवाद शिष्यरामायणमें ही और जानी भोगा इसको जानते हैं ।

वाल्मीकिने शतकोटि रामायणोंकी रचना की, जिनके तीन विभागकर संकरने स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल इन तीनों लोकोंमें बाँट दिया । तीन विभाग कर देनेके बाद शेष दो अक्षर 'रा' 'म' बच रहे । दो होनेसे इनके तीन हिस्से नहीं हो सके, अतएव इनको धीरश्रमणोंने अपने कण्ठमें धारण कर लिया । धीरश्रमण महाराजने भावार्थ रामायणमें रामायणोंकी एक सूची दी है, उसे कव्यायके पाठकोंके लिये मूल मराठीमें ही हम यहाँ उपस्थित करते हैं, पाठक सहज ही रामायणोंके नाम समझ लेंगे ।

शिव-रामायण शैव-रामायण । आगम-पंचरात्र-रामायण ।

गुहा गुहक-रामायण । हनुमन्त-रामायण नाटक ॥

मत्स्य-सूक्त-वराह-रामायण । कालिकासंतीर्षे निरूपण ।

महाकाली-रामायण । स्कंद-रामायण प्रसिद्ध ॥

अगस्ति-पीलस्ती-रामायण । पद्मपुराणीके रामायण ।

रवि-अग्नि-वरुण रामायण । पेकेनि आपण जटायु वक्ता ॥

नंदिप्रामी मरत आपण । वेदे ते मरत-रामायण ।

महाभारतीके रामायण । वक्ता आपण धीन्यास ॥

कौचदीपी अद्यापि जाण । कौच ऋषि सांगे पुराण ।

कथा पवित्र रामायण । अग्नि पावन अनुपम ॥

विभीषणापार्षा जाण । निल कथा निरूपण ।

धर्मऋषि सांगे आपण । धर्म रामायण धार्मिक ॥

येहीनीने निरूपण । वेदेषु एतान् ।

कथा निश्चिन्त रिदान । अति पावन तीर्थ हरे ।

शहर बडा स्वये भागण । श्रेता मरती स्वरा ।

ते शिवरात्री रामायण । कथा सिद्ध सिद्ध ।

सारासिर स्वयं वक्ता । स्वये धीरान निरुद्ध ।

ते शिवरामायणी कथा । प्रवनी देवता स्वयं ।

स्वये धीरान स्वानंद पूर्ण । आपणा प्रति वेद अत ।

ते कथा आगम-रामायण । गेह निरूपण स्वयं ।

त्रैमिनीइत रामायण । अर्ध कथंके सिद्ध ।

अलीकिङ्क निरूपण । आश्वमेधुक्त बल श्रेता ।

मनानीया प्रापयित्त

दाशायणी सती देवीने कैलाश पुँक

अनुतापसहित श्रोतकर भगवान्के चरण

मखाम किया । भगवान् संक संक ही

केवल धर्मकी ही मूर्ति हैं । उन्होंने उस समय कर्ण

उप भी नहीं कहा । परन्तु मनमें यह सोचा कि हूँ

परम पूज्य उपास्यदेव श्रीरामके साथ दूज और तन

आपन्त अपमान करके घोर पाप किया । हा हूँ

धीसीताका—मेरे प्रभु श्रीरामकी पत्नीका हस्त्य पाप

क्रिया सब यह मेरे लिये सीताजीके हमान पुनरोत्ता होना

इसके साथ मैं पत्नीका सम्बन्ध कैसे रख सकूँ ।

सोचकर शिवजी बहुत ही दुखी और उद्विग्न हुए एवं सी

पत्नी-भावको छोड़ दिया तथा अलग रहने लगे ।

सती कीन्ह सीता कर भेता । शिव-उर मयेउ विपद निश्चि

जो अब करौ सतीसन प्रीती । मिटे मग्नि-पप होइ अती

पहि तन सतीहि नेट मोहि नाहीं । शिव संकटप कीन्ह मनन

सन्मुख संकर आसन दीन्हा ।

सतीको इससे मृत्यु-सदरा दुःख हुआ । उसने स्वयं

को निमित्त बनाकर अपना शरीर भस्म कर दिया ।

किर हिमाचलके यहाँ जन्म ग्रहणकर पार्वतीके रूप

प्रसिद्ध हुई । नवीन जन्ममें पुनः महात् साथ काके संकट

को पतिरूपमें प्राप्त किया ।

इति विद्या तपो योगिनिर्गुरीकिः ।

बाग्यशेनार्थितो देवः प्रीयतां मे नार्दनः ॥

\*गुहार्थीने श्री रामसमें इत प्रसंगका वक्ता ही एम्पर उपदेश-प्रद और रोचक वर्णन बिलापूर्वक किया है । एतदे स्वे  
लेखर हिमाचल-कथा पार्वतीके विवाहकप्रसंग नामके वाक्यान्तमें अक्षरप पढ़ना चाहिये ।—सम्पादक

# श्रीरामचरित-मानसका दार्शनिक सिद्धान्त

(छेलक-श्रीज्वालामसादनी सिरल पत्र० प०)

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कइमत्त भिन्न न भिन्न ।  
बन्दौ सीताराम-पद, जिनहि परम प्रिय सिद्ध ॥



स एक दोहेमें गुसाईंजीने अपना दार्शनिक सिद्धान्त साररूपमें उपस्थित कर दिया है। गुसाईंजी उस उच्च सिद्धान्तपर पहुँचे हुए थे, जहाँ पुरुष, प्रकृति, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि सिद्धान्तोंके भेद परस्पर विरोधी न रहकर एक दूसरेके पोषक हो जाते हैं। आपने रामायणके प्रारम्भमें ही

वन्दना करते समय कहा है—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहरिणीम् ।  
सर्वश्रेयस्करी सीतां नन्देऽहं रामबद्धमात्म् ॥  
यन्मापावशवर्ति विद्वन्किंकेन्द्रप्रदीदिवापुरा,  
मत्सम्पादमृषैव शान्ति सफलं रजौ यथाऽह्रेर्भम् ।  
यत्पादप्रवनेऽन्येव हि भवान्मोक्षेतितीर्थावता,  
नन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाह्वयमीशं हरिम् ॥

'अर्थात् उत्पत्ति, रक्षा और संहार करनेवाली, बलेश हरनेवाली, सर्व श्रेय (सम्पूर्ण कल्याण) करनेवाली श्रीरामकी प्रिया सीताको मैं नमस्कार करता हूँ।'

'जिसकी मायाके बरामें अलिख विघ्न, अज्ञादि देवता तथा धनुज हैं, जिसकी सत्तासे रस्तीमें सार्विके भ्रमकी भाँति सब कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है, जिसका करण भवसागरसे तारनेकी इच्छा करनेवालोंके लिये एकमात्र नौका है उस अशेष-कारण-पर, रामनामसे प्रसिद्ध श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इसमें विविध चारोंका कैसा सुन्दर और स्पष्ट समन्वय किया गया है। पहले तो प्रकृतिरूप सीताजीको संसारके उद्भव, स्थिति तथा संहार करनेवाली कह दिया परन्तु फिर भगवान् (पुरुष) रूप श्रीरामजीको 'अशेष-कारणपर'—सम्पूर्ण कार्योंका भी कारण बतलाया। इसके साथ ही श्रीरामजीके लिये यह भी कह दिया कि इन्हींकी सत्ताके

आधारसे यह अत्यन्त संसार भी रस्तीमें सार्विके भ्रमकी भाँति सत्य प्रतीत होता है।

इस विवेचनामें निर्गुण और सगुणका कैसा सुन्दर मेल है? गुसाईंजीके लिये श्रीरामजी केवल मनुष्यरूप पुरुषोत्तम राम ही नहीं हैं, वे 'निर्गुण-स्वरूप राम' भी हैं। यथार्थमें आपके विचारानुसार तो सगुणके यथार्थ स्वरूपको यह चरानना निर्गुणसे भी कठिन है। उत्तर-कार्यक्रमें आप स्पष्ट करते हैं—

निर्गुण रूप सुकम अति सगुण न जानै कोइ ।

सुगुण अगम नाना-चरित सुनि सुनि-जन भ्रम होइ ॥

यह समस्या जैसे बड़ी ही कठिन है वैसे ही सहज भी है। भगवान्के नाम और रूपके विषयमें आप करते हैं—

नामरूप दोउ ईस उपाधी । अत्रय अनादि तो सापुंसि साधी ॥

रामायण कैसा अत्यन्त ग्रन्थ है। दर्शन, योग एवं भक्तिके अनुपम रहस्य इसमें भर दैं। परन्तु यहाँ सगुणके रहस्यपर कुछ नहीं कहना है अतएव यह विषय यहाँ छोड़कर केवल दार्शनिक सिद्धान्तपर ही कुछ कहा जाता है—

उपर्युक्त श्लोकमें श्रीरामजीको पुरुष तथा श्रीसीताजी-को प्रकृतिका स्वरूप मानकर, प्रकृतिको संसारका कारण कहा है और पुनः पुरुषको भी परम कारण बतलाते हुए, संसारको मूला—सत्य-सा प्रतीत होनेवाला बतलाया है। यह एक परदेही है, जिगको सुलभ्यना धारणरथक है।

प्रकृति और पुरुषमें क्या भेद है? वे दोनों केवल कहनेमें भिन्न भिन्न जान पड़ते हैं, वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है। बायी एवं दायके अर्थ तथा अन्न और अन्नकी खदर, इसके वे दो उदाहरण हैं। बायी और अर्थ—कोई देसी दो पुत्रक वस्तु हैं जो छिपी प्रकार जोड़ ही गयी हैं। अन्न मन अपने भावको किम्प्रीर प्रकट करवा चाहता है, तब वह जो संकेत करता है उसमें उन्न भावका सामान्य रहता ही है। या जो कहिये कि संकेत उस भावका सामान्यरूप है। सत्य मनुष्य जब छिपी भागमें बाधित करते हैं तो वह विद्ये संकेतोंका प्रयोग करते हैं—एक टीक है, परन्तु वे संकेत जिन अर्थोंके लिये होते हैं, वे अथ पीपेसे जोड़े

ही जाते। सहस्रों वर्षोंसे पुण्य निर्दिष्ट भावोंके लिये पुण्य वेदिए संकेत घनेक बार प्रयुक्त होते-होते शम्भुका रूप गारय कर लेते हैं। त्रिमप्रकार थायीके अन्तर्गत अर्थ निरिग है उसी प्रकार प्रकृति या 'स्वभाव' पुरुषके अन्दर होता है, उससे ग्रहण नहीं होता। पुरुषके स्वभावको ही प्रकृति कहते हैं। जैसे जल और उसकी गीतकतामें कणनमात्रका भेद है, पारतयिक नहीं है। गुण और गुणी ग्रहण-ग्रहण नहीं रह सकते। जैसे बिना गुणके बिना गुणीका कोई अस्तित्व नहीं, वैसे ही गुणीके अभावाके बिना गुणका रहना भी असम्भव है-दोनोंकी स्थिति एक ही साथ होगी। विचारके सुभीतेके लिये इनका द्वैत भले ही मान लिया जाय, यथार्थमें सजा अद्वैत ही है।

फिर इस संसारका स्वरूप क्या है? गुसाईजी जल और उसकी जहरका उदाहरण देते हैं। जहर ही संसार है। पुरुषके स्वभावानुसार उसमें स्पन्दन हुआ और उससे जो स्वरूपभेदकी परिणति हुई, वही संसारका प्रकट स्वरूप है। यह स्पन्दन कैसा हुआ और स्वरूप-भेद कैसे और क्यों प्राप्त हुए? इन प्रश्नोंका उत्तर ऋग्वेदके नासदीय सूक्त (मण्डल १० सूक्त १२६) में बहुत ही स्पष्ट और सुन्दरताके साथ दिया गया है। यहाँ उस विषयकी चर्चा करनेसे खेव बहुत बढ़ जायगा। अस्तु, यहाँ संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'प्रकृति' रूप स्वभावसे उत्पन्न हुई क्रियाका परिणाम ही यह संसार है। परिणामवादका भी तो यही सिद्धान्त है।

यह स्वभाव भगवद्-स्वभाव होनेके कारण दोषी नहीं कहा जा सकता इसीलिये प्रकृतिको 'क्षेत्रहारिणी' (क्षेत्रोंको हरण करनेवाली) तथा 'सर्वभेदरक्षत्री' (सर्व भयथाय करनेवाली) कहा गया है। अत्ययकायदमें भी श्रीरामचन्द्रजीने भीजकमण्डीकी उपदेश देते समय मायाको विद्या तथा अविद्या-भेदसे दो प्रकारका कहा है। पुरुषकी प्रकृति-विद्यारूप माया उन क्रियाओंके ज्ञानका भण्डार है जिनके द्वारा पुरुषका रूपान्तर होता है। यही मन्नाके मुखसे निःसारस्वतीद्वारा प्रकाशित वेदोंका ज्ञान है। यह है, इसके सहारेसे मनुष्य राजे; राजे; पुरुष तक है। जीव अपने जिस 'अज्ञान'वश विद्याके दर्शन नहीं कर पाता, वह अज्ञान ही या अविद्यारूप दुष्ट माया है, यह अविद्या उस परमक

'स्वभाव' रूप विद्या (प्रकृति) से भिन्न है पर तो सत्-जनिग भेदने प्राप्त जीवकी अज्ञानता है।

यद्यपि विद्यारूप प्रकृतिकी क्रियामें अभावात्स पुन (परम कारण महा) में ही रूपान्तर होता है, सन्त ही जब इस रूपान्तरको भी यथावत् नहीं जानता, वह ही रूपान्तरके अन्तर्गत जो पुरुष यथार्थ नियमान् स्वरूपसे विद्यमान है उसे कैसे जान सकता है। तब कारण वह इस रूपान्तरको उपका उच्च समझा है, यही उसका 'रस्सीमें सर्पका भ्रम' है। रस्सीका अज्ञान तो है ही, परन्तु उसके यथार्थ स्वरूपको व अज्ञान अज्ञानताके अन्धकारमें उसे सर्व समझता है। यदि रस्सी सीधी रखी हुई है तो उसे सीधा सर्प, और यदि वह ठो रस्सी है तो उसे टेढ़ा सर्प प्रतीत होता है। और अज्ञान रस्सीके पास ही रस्सीका एक छोटा-सा पिण्ड रखा तो उसे उसे सर्पके पास एक ऐसा मंडक दीखने लगेगा, मानो लाने अग्नी निगलना ही चाहता है। यद्यपि दोनोंका अस्तित्व स्वरूप रस्सी एक ही है परन्तु उसके दो स्वरूप होनेसे ग्रहण दिखलायी देंगे और उनका यथार्थ भेद नहीं दीखेगा वरं अज्ञान जिस जिस प्रकारके भेदोंका ज्ञान करनेगा वे ही दिखलायी देंगे। यदि हम रस्सीके तिराके रस्सीको मंडक और सर्प न समझें, उनके सत्त्व भेदको यथार्थतः समझें यथार्थ विद्यारूप प्रकृतिको ही तो हम सहजमें ही रस्सीके यथार्थ स्वरूपक पुन जायेंगे। यही विवर्तवाद-अप्यासवाद चादि मिश्रणोंके सार है।

फिर, 'जगत् मिथ्या है, त्रिकालमें हुआ ही नहीं' ऐसे वाक्योंका क्या अर्थ है? इसका उत्तर यह है कि जल को हम जिस रूपमें देख रहे हैं वह मिथ्या है, वैसे त्रिकाल में भी नहीं हुआ। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि कोई रूपान्तर ही नहीं हुआ; रूपान्तर तो हुआ ही। भगवान् धीकृत्यन्तो भी स्पष्ट करते हैं-कि 'इस अज्ञान क्रिया आदिमें अत्यय, मध्यमें अत्यय तथा अन्तमें अत्यय स्वरूपवाली है। मायावादी भी इतना तो मानते हैं कि मायाप्रल जीव ही संसारको अपने अज्ञानसे देखता है। यहाँ मायाप्रल जीव और अत्यय अज्ञानस्वरूपका एकता तो उपस्थित होता ही है यथार्थ रूपान्तर-भेद तो होता ही परन्तु उस भेदको हम यथावत् नहीं समझते, वह ही अज्ञान है।

जल और उसकी लहरों को जीतिये। हमलोग जलको लहराते देखते हैं, उन दोनोंको हम भिन्न वस्तु नहीं समझते, वरं जानते हैं कि लहर जलका ही स्वरूप है। यदि उसमें बर्फके टुकड़े हों तो उनको भी हम जलका ही स्वरूप मानते हैं, किन्तु जो जलमें बहता हुआ कीटाणु लहर-और बर्फके टुकड़ोंको दूसरी तरह समझता है, उसे वे सब व्यापार आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं, और विविध स्वरूपकी लहरें तथा बर्फके टुकड़े उसे भिन्न भिन्न वस्तुके रूपमें दिखायी देते हैं। उसको उनका स्वरूप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंकी अवस्थाके अनुसार ही व्यक्त होगा और वह उसी रूपको यथार्थ समझेगा। यही अवस्था मनुष्यकी है। हमें हरय जिस प्रकार खोल पड़ते हैं हम उन्हें वैसा ही यथार्थ समझ लेते हैं—यह तो हमारी भूल है। परन्तु हमें जो भिन्नता दिखायी पड़ती है उसका आधार—रूपान्तर—ब्रह्मके स्वरूपमें, जलमें लहरके समान हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यही बात वाणी और अर्थके विषयमें भी घटती है। वाणियोंमें अनेक शब्दोंके अनेक अर्थ हैं, परन्तु कहनेवालेके अर्थों और समझनेवालेके अर्थोंमें भेद रह सकता है और कुछ-न-कुछ भेद तो अर्थस्वरूपोंमें रहता ही है। परन्तु यह नहीं कह सकते कि सुननेवाला जो पृथक्-पृथक् शब्दोंके पृथक् पृथक् अर्थ समझता है, वह भिन्नता निराधार है, वह भिन्नता कहनेवालेके अर्थोंकी भिन्नताके आधारपर है। इसी प्रकार जगत्की भिन्नता ब्रह्मके रूपान्तरके आधारपर है।

यहाँ यह शंका होती है कि 'ब्रह्ममें रूपान्तर कहनेसे तो उसमें विकार हो जाता है फिर उसे निर्विकार कैसे कह सकते हैं ?' इस सम्बन्धमें गुसाईंजीने 'खिन्न' शब्दका प्रयोग बड़े महत्वका किया है। यह कहते हैं कि सीवारा-मन्त्रीको 'खिन्न' परम श्रिय है। भक्तिभावसे तो भगवान् दुष्की-पर दिया करनेवाले हैं, अराधन-कारण हैं इसलिये आपको 'खिन्न' आधार हैं परन्तु दार्शनिक तत्त्वमें आप खिन्न अथवा विकारको आधार्य करनेवाले हैं। गुसाईंजी इस कठिनवासे नहीं घबराते वरं वह इसे स्वीकार करते हैं कि ऐसे विकार तो ब्रह्मके स्वभावप्रकृत होतेसे उनको परम श्रिय हैं। सब पृथिवे तो गुसाईंजीको ही क्या, जो लोग ब्रह्मको सर्वमा निर्विकार करते हैं वे भी उसमें विकार उपस्थित कर ही देते हैं। माया चाहे ब्रह्म-आधार्य चाहे जीवपर, है तो विकार ही। और यहाँ ब्रह्म-ही ब्रह्म है यहाँ माया कहाँ रहेगी ? यह ब्रह्ममें ही

विकाररूपसे रहेगा। उसे अनादि एवं अनिवचनीय कह देनेसे तो सीधा नहीं छूट सकता। ब्रह्ममें जीव-स्वरूपका प्राप्त होना ही विकार है। यदि रूपान्तर होनेको ही विकार कहा जाय तो इसमें गुसाईंजीको कोई संकोच नहीं। नहीं तो भला ब्रह्म-सत्त्वरूप ब्रह्ममें जागृका अस्तित्व ही कैसे हो सकता है ?

तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि इस रूपान्तरसे ब्रह्मके शुद्ध स्वरूपमें कोई अन्तर पद जाता हो। जल चाहे बर्फके स्वरूपमें हो, चाहे लहरके, और चाहे भाफके—वह रहता 'H<sub>2</sub>O' ही है। उसके परमाणुओंका स्वरूप वही है, वास्तवमें वह रहता जल ही है, इसलिये हम उन तीनों ही रूपोंको अवश्य एकरस कहेंगे। इस दृष्टिसे उसे निर्विकार कह सकते हैं, क्योंकि उसके मूल स्वरूपमें कभी कोई भेद नहीं होता। मनुष्य जब समय-समयपर भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्र और अलङ्कार धारण करता है तो उससे उसके स्वभाव अथवा व्यक्तित्वमें कुछ अन्तर नहीं आता। स्वर्णके अनेक अलङ्कार बनते हैं पर उनके स्वरूप-भेदसे स्वर्णमें कोई भेद नहीं होता। मिट्टीके अनेक पात्र होते हैं जो स्वरूपातुसार भिन्न-भिन्न गुणवाले होते हैं परन्तु उस भेदसे मिट्टीमें कोई भेद नहीं होता। स्वर्ण और मिट्टी जैसेके जैसे रहते हैं। इसी भावसे ब्रह्म भी निर्विकार, अपरिवर्तनशील, एकरस चादि है।

उपयुक्त विवेचनसे यह भी मालूम हो गया कि इस रूपान्तरका कारण परब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियाशक्ति है। अतएव हम कह सकते हैं कि परब्रह्मके अन्दरकी क्रियाशक्ति-प्रकृति वा उसकी माया ही संसारका कारण है, और यह भी कह सकते हैं कि परब्रह्म, जो उस शक्तिका धारण करनेवाला मायापीछे है, सम्पूर्ण कारणोंका कारण है। दोनों ही बातें ठीक हैं।

इस रूपान्तरमें इस शक्तिका सूक्ष्म स्वरूप क्या है ? उसका विकास किस प्रकार होता है ? संसार कैसे बनता है ? और उसमें अज्ञान-युक्त जीव किस प्रकार प्रकट होता है ? यह सब आश्चर्यक प्रश्न हैं और अन्वेषणके अधिपतियों हनका उत्तर भी दिया है। इस विषयमें यहाँ विस्तार-अवश्ये अधिक नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट है कि हम रूपान्तरके सिद्धान्तानुसार जीव-सम्बन्धी माया वा अज्ञान यथार्थतः अनादि नहीं है और इसी कारण इसका अन्त भी हो जाता है। रूपान्तरसे जो स्वरूपभेदको प्राप्त हुआ जीव

है वह उस रूपान्तरकी विरोधिनी क्रियाद्वारा अपने मूल—  
आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी मुक्ति हो  
जाती है। अथवा ही विद्यारूप माया अनादि और अनन्त है।  
परमज्ञके साथ ही अज्ञान स्वभाव, और उस स्वभावही  
क्रिया सदासे ही और साथ रहेगी।

तब फिर यह प्रश्न होता है कि यदि यह सिद्धान्त  
ठीक है तो महापुरुषोंने पुरुषको अकर्ता क्यों कहा है? अथवा  
संसारको व्यावहारिक सत्ताके रूपमें सत्य, परन्तु पारमार्थिक  
सत्ताके रूपमें मिथ्या क्यों माना है? मुक्तिके अनुसार  
भगवान्का स्वरूप ऐसा है कि जिसमें परस्पर विरोधी-गुणों-  
का समावेश है जो दूर और पास, सूक्ष्म और रूख, कर्ता  
और अकर्ता, निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार,  
तथा निर्विकार और सविकार है। वह विरोधी गुण केवल  
भाव-भेदसे ही बन्दे जाते हैं। हमने ऊपर देख लिया है कि  
मज्ञके स्वरूपको परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील दोनों  
ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार यहाँ भी भाव-भेद  
उपस्थित है। पुरुषको अकर्ता, तथा संसारको पारमार्थिक  
रूपसे मिथ्या कहनेका प्रयोजन, मुक्तिके लिये साधनका  
संकेत है। मुक्ति तभी प्राप्त होगी, जब रूपान्तरसे स्वरूप  
भेदको प्राप्त हुआ जीव विरोधी क्रियाद्वारा उस स्वरूप-  
भेदको नष्ट करके मज्ञरूपमें लय हो जायगा। वह विरोधी  
क्रिया रूपान्तरकी ओर न जाकर एकरसता तथा सरलता-  
की ओर अग्रसर होगी—वह चित्तको चञ्चल करनेवाले  
पथमें न जाकर चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेवाली होगी।  
परन्तु हमें फौन-से स्वरूपका ध्यान करना होगा? परिवर्तन-  
शीलका अथवा अपरिवर्तनशीलका? उस निर्विकार  
अपरिवर्तनशील एकरसस्वरूपके ध्यानमें भिन्नतायुक्त  
जगत्का अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है? एक बार अर्ध-  
बन्दूकर भाग्यस्मरण करके देखिये, यह जगत् किसप्रकार

सुप्त होता जाता है और ज्यों ज्यों आत्मा पतनी बनने  
जाने है, त्यों-ही-त्यों वह जगत् विन्दुत् होता चला जाता  
परन्तु पारमार्थसे उठकर आत्मा ज्यों ही स्वराजमें लगे  
त्यों ही आत्मा ज्यों-का-त्यों उपस्थित हो जाता है।  
यह कारण है कि पुरुषको अकर्ता कहा है, क्योंकि अज्ञान  
जीवको यदि शान्तिकी ओर ले जाना है तो स्वयं  
भी शान्ति ही होना चाहिये। और यथार्थतः आत्मा ही शान्ति  
परमज्ञमें जन प्रकृति अथवा स्वामाविक क्रिया  
क्रिया होती है तो हमने यह नहीं समझना चाहिये कि  
परमज्ञ परिमित जीवकी भाँति हृद्वा और चित्त की  
क्रिया करता है, उस आत्मगर्हीन तन्में तो यह कि  
स्वामाविक ही होती है और वह ऐसा होनेपर जो वह  
रूपसे अज्ञेय स्थित रहता है। इस अविद्य रहने  
एकरसताकी ओर लक्ष्य करनेके लिये पुरुषको  
और अकर्ता कहा है। इसीका ध्यान करनेसे मनुष्य स्वयं  
रहता और कार्य करता हुआ भी शान्ति-वाम का रूप  
है। इसीलिये गुणाद्वैती करते हैं कि 'संसारान्तर-  
पार होनेके लिये जिनके साथ ही नौकारूप हैं, त्यों  
को मैं प्रथम करता हूँ।' अथा! वैसी गुणर रहित  
करनेवाली रचना है—'बन्धावशगति विरतते' इति  
से प्रथम भगवान्का स्मरण कर तुल्य चञ्चल मते  
जगा दी, फिर उनके निज स्वरूपकी ओर 'एक-  
संकेत कर दिया। संसार-सागरसे पार होनेके लिये  
शान्ति-आधार-स्वरूपका ध्यान आवश्यक है। ऐसे  
प्रकाररूप हृदिके प्रथम करतु हूँ। केवल वनोंके  
'छे' शहारिणी 'सर्वधेयस्वती' उनकी मायाको मो  
करता हूँ। इस विद्यारूप मायाकी हृत्पासे ही अज्ञान  
समाप्त हो श दूर होकर परम कल्याण होता है।  
सीयताम-मय सब जग जाती। करी प्रणम स्पेन प्रकृति।

### रामायण सर्वोच्च महाकाव्य है

दूसरे देशोंके महाकाव्योंकी अपेक्षा भारतका रामायण महाकाव्य सर्वोच्च है। 'वल्मीक  
इस ग्रन्थमें जिन अद्भुत सद्वृत्तियोंका वर्णन किया है, उनकी ओर दृष्टि डालनेसे यह प्रतीत होता है  
अपने कालमें तो बया, परन्तु उसके बादकी अनेक शताब्दियों कीतनेपर भी धीराम जैसे स्वयं  
नरपति किसी भी राजवंशमें उत्पन्न नहीं हुए। धीराम सर्वगुण-सम्पन्न और प्रजाका हेम हन  
करनेमें अद्भुत राजा थे। 'वल्मीकिका काव्य आदिकाव्यका स्थान पाने योग्य है और सब  
परिपूर्ण है। —गोतीसिन्धो।





अपुत्रांतं, परं यदि मीमा, सिद्धिं चोदति सुखीति विधीयते ।

## रामायणमें आदर्श पातिव्रत-धर्म ।

( लेखक—श्रीयुक्त तैय्यर कासिम अली, विशारद राहिलालझरार )



मारे महान् आचार्योंने प्राचीनकालमें जो महावपुर्ण ग्रन्थ रचे थे उनमें रामायण एक अमृतपूर्ण ग्रन्थ है । इसकी रचना हुए सहस्रों वर्ष हो गये तथापि आज भी भारतवर्षमें महलोंसे लेकर भोपड़ियों-तक इसकी पूजा, पाठ और धारती होती है । यह सब इसी कारणसे है कि इस ग्रन्थमें भक्ति-भक्तिके उपदेश-रत्नोंका बाहुल्य है । इसके अन्त्येक शब्द मनोहरताके साथ गुह्यार्थके साँचेमें ढाले गये हैं और अपना अनोखा जोहर संसारमें दिखा रहे हैं ।

श्री-समाजकी पवित्रता, शक्ति और महानताके विषयमें जैसा प्रकार इस ग्रन्थमें बाला गया है वैसा दूसरे धर्म-ग्रन्थोंमें देखनेको भी नहीं मिलता । श्रीसीतानी और श्रीधनसूयाजीके संवादमें जो पतिव्रत-धर्मका वर्णन मिलता है वह जगत्के लिये अत्यन्त लाभदायक ही नहीं, मोक्ष-प्रदायक भी है । पातिव्रतके लक्षण, भेद, कर्तव्य और फल-पर रामायणमें बड़ी बारीकीसे विचार प्रकट किये गये हैं । श्री-जातिके लिये तपस्या, योग तथा सिद्धिका आधार केवल पातिव्रत-धर्म ही बतलाया गया है । जो श्री पति-सेवासे विमुक्त रहती है उसे 'अधम नारी' कहकर सम्बोधन किया और यह कहा है कि—

पति प्रतिभूल जनप जहै जाई । विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

'जो श्री अपने पतिके अनुकूल नहीं चलती वह जहाँ जाकर धन लेती है वहाँ जवानोंमें ही विधवा हो जाती है, और इसप्रकार उसे शारीरिक भयानक कष्टप्रद परिस्थितिका सामना करना पड़ता है।' जोके लिये काय, वचन और मनसे पति-धर्ममें प्रेम ही एकमात्र धर्म बतलाया गया है ।

पैके धर्म एक व्रत नेमा । काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥

इतनी उच्च आदर्शसे युक्त शिक्षा बाह्यिक, तौरत, इतान प्रकृति किसी भी ग्रन्थमें नहीं पायी जाती और न उन ग्रन्थोंमें श्री-जातिके लिये इतना सुन्दर सुरद धर्म-मार्ग ही स्थिर किया गया है । पात्रकल सभी धर्मोपलब्धी विज्ञानसे अपने धर्मकी महत्ताको सिद्ध कर अपने-अपने धर्म-ग्रन्थको

इहामी, इन्वरीय घोषित कर सावर्भौम धर्मकी 'पेटेष्ट सील' लगा रहे हैं । परन्तु रामायण-जैसी पातिव्रत-धर्मकी शिक्षा किसीमें नहीं है । रामायणने तो केवल शिक्षा ही नहीं दी, बल्कि अपने पात्रोंके द्वारा इस उच्च पातिव्रत-धर्मका आदर्श भी उपस्थित कर दिखाया है । जिससे सोनेमें सुगन्ध आ गयी है । रामायणके द्वारा सती सीता, सती सुलोचना, सती अनसूया आदिने अपना उच्चरत्न चरित्र संसारमें धिरस्थापी कर दिया है । वह धर्म और वह ग्रन्थ धन्य है जिसने मानव-जातिके कल्याणार्थ महान् पवित्रतासे युक्त इस अमर अलौकिक व्रतका आदर्श दिखला दिया ।

मैं रामायणसे इसी बातें प्रेम करता हूँ, मैंने कई स्वजातीय विवाहोंमें कन्याओंको रामायण दहेजमें देकर उनके प्रति उस महानताका सङ्केत किया है जिससे वे पातिव्रत-धर्मकी अनुगामीनी बनकर श्री-जातिकी महानतामें गर्व करें । इससे मुझे अपने समाजने कलङ्कित करनेका बीड़ा भी उठया था, पर मैंने स्पष्ट कह दिया कि रामायण हिन्दू-समाजका ही ग्रन्थ नहीं है, वह तो सारे मानव-समाजकी सम्पत्ति है ।

जब रामायण हमें इसप्रकार पतिव्रत-सरीखी गौरवान्वित शिक्षा देती है तब हम उसकी क्यों न पूजा करें ? बुरा विचारकर देखिये कि रामायणका पातिव्रत-धर्म श्रीजातिका कल्याण कर सकता है या नहीं ? भली-भाँति विचार करनेसे आप अवश्य ही इससे शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे । पुनर्विवाहसे व्यसनमय जीवनको उच्छेजना मिलती है, परन्तु पातिव्रतसे श्री-जातिमें सच्चे गहरे प्रेम और पवित्रताका सौन्दर्य उद्भूत होता है जो उन्हें इस लोकमें सुख और परलोकमें मोक्षकी प्राप्ति कराता है । उनके पतिव्रतरूप तपोव्रतसे महान् पर्वत भस्म हो सकते हैं, मृतक भी जीवित हो सकते हैं ।

रामायणके भावोंकी व्यापकतामें तल्लीन होना और उनके कार्यान्वित करना ही उसकी सच्ची पूजा है । वर्तमान समयमें पश्चिमीय संभ्यताने भारतीय आदर्शकी भयङ्करताको मिदानेमें कुछ कसर नहीं रखी, इससे हमारी नैतिक शक्ति, प्रायः सभी धार्मिक कार्योंके लिये पीछे होती जा रही है । तलाक, पुनर्विवाह तथा श्री-स्वातन्त्र्यके आन्दोलनने 'पातिव्रत-धर्म'की भावनापर कुटाराघात किया है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुरुष-समाजने इस और बड़ी उद्दत्तता



दिल्लायी है जिससे स्त्री-समाजकी आत्मामें पाश्चात्य  
सम्बन्धना धरना पूरा प्रभाव डाल रही है।

अन्तमें मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दू, मुसलमान,  
ईसाई आदि सभी धर्मावलम्बी इस 'पातिप्रत-धर्म' को

मननकर इसके प्रसारमें सहायक बननेके लिये अपनी शक्ति  
हुई शक्तियोंको सज्जिन करेंगे, जिससे मानव-शक्तिकी प्रवृत्ति

ज्योति पुनः एक बार जगत्को अपनी दीप्तिमें चमकाने  
और मानव-जीवन कृतकृत्य हो जायगा।

## आराध्य राम

जीवन-सागरसे धुनकर मैं थोड़े-से मे मोती।

लाया तेरे चरणोंमें, हँसकर क्या स्वीकृति हंती ॥

### प्रार्थना

विश्वके अगणित रागोंमें मिले जा मेरा भी यह राग।

धीन, क्लेशकाय किन्तु परिपूर्ण तुम्हारे पद-पङ्क्तोंका राग ॥

× × ×

### आग्रह

ऐ रे मालिक ! पागलपनकी घड़ियाँ तनिक बढ़ा दे।

जीवनकी घड़ियाँ चाहे तो अपनी समी घटा ले ॥

× × ×

### छवि

अबसे प्रिय ! आँसुओंमें मेरी बसा तुम्हारा वह श्रृंगार।

हृदय बन गया करुण कुसुम-से कोमल भावोंका भंडार ॥

× × ×

### जीवन-मरण

एक-एक मुस्कान तुम्हारी सौ-सौ जीवन देती।

एक-एक बंकिम भू टनको तत्क्षण ही हर लेती ॥

× × ×

### स्मृति

तेरी स्मृतिमें मरी हुई जो मादकता, मधु, प्यार।

कैसे उन्हें भुगई ? वे तो बने हुए हिय-हार ॥

× × ×

### अनन्य

उसी रूपकी उसी झलकामें मुझको तुम बहने दो।

'बयो! किसलिये! कहाँसे! कबसे!' के सबल मन उठने दो ॥

× × ×

### प्रेम-व्याला

बसी एक प्यारमें तेरे जगतीकी मदकता।

मरी हुई है, छिपी हुई है जीवनकी सारकता ॥

× × ×

### प्रेम-राज्य

तेरे प्रेम-राज्यमें मालिक ! यह कैसा विचित्र आवर्ण

प्रथम तस-अंगार-बूटि, फिर मधुर अमिय रसका बर

× × ×

### लटक

'मैं हूँ तेरा, तू है मेरा' जिस दिन अनुभव होना

नाच उठूँगा, इठलाऊँगा, स्वर्ण-सवैया होना ॥

× × ×

### प्रलौभन

जुगा रहे सुन्दर चित्रोंमें मेरे अलहड़ मनको।

पेसा कठिन प्रलौभन मालिक ! मुझ-से निर्वैत बनको ॥

× × ×

रूप-राशिकी हरित भूमिपर मेरा मन न तिहाजे।

मालिक ! मंदिर-वासना-प्याली रह-रह नहीं दिहाजे ॥

× × ×

### उलहना

हम हैं पतित, किन्तु तुमको निर्दिश, अक्षरग बन जाना।

ठीक कहनाक राम ! तुम्हीं कहदो, तुमको यह बना ॥

× × ×

### कामना

जीवनमें साधना, मरणमें तेरे पदकी आदर।

और अनुरिक्त आश्लेषित करती तेरी मुचकदर ॥

—शाक्यन कवच

# तुलसी-रामायणमें भक्त-श्रेणी

(केलक-पं० श्रीजीवनशङ्करजी वार्षिक एम० ए०)



क-शिरोंमण्डि गोस्वामी तुलसीदासजी स्मार्त वैष्णव थे और उनकी द्रव्यौकिक कृति राम-चरित-मानस भी एक भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है। जिस समय हिन्दू-जाति विष्कूल निर्जाव होकर मरणासन्न हो चुकी थी सब गोस्वामीजीने धरपनी ब्रह्मनमयी बाणीसे भक्ति-मन्त्रद्वारा ही उसको नया जीवन प्रदान किया था। ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मोक्ष आदि सभी बातोंकी चर्चा गोस्वामीजीने रामायणमें की है परन्तु सर्वोपरि साधन उनके मतानुसार भक्ति ही है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भक्ति केवल सबसे उत्कृष्ट साधन ही नहीं है बरं सब साधनों-का परम फल भी यही है—

तत्र पद-पङ्कज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर ॥

इस बातको गोस्वामीजीने अनेक बार कहा है और यही उनका दृढ विश्वास था और यही उनकी ब्रह्मव्युत्पत्ति सिद्धा है। यहाँ तक कि भगवान् रामचन्द्रजीके श्रीगुलाले यही उपदेश दिलाया गया है—

धर्म ते विरति जोग ते ग्यना। ग्यन मोक्ष-प्रद वेद बखाना ॥

जोते बेगि द्रवी मैं भाई। सो गम भगति भगत-सुखदाई ॥

यह स्पष्ट है कि किसी मार्गपर धारण किये बिना गोस्वामीजी भक्तिको ही प्रधान पद देते हैं।

गोस्वामीजीने अनेक देवी-देवताओंकी स्तुति-बन्दना की है, परन्तु उनके इष्टदेव दशकुल-कमल-दिशाकर भगवान् रामचन्द्र ही थे, जिनको वे परमेश्वरका साक्षात् धरवार मानते थे। इस विश्वासकी दृष्टा हली बातसे प्रमाणित है कि जब कभी भी उनको अपने इष्टदेवके गुणगानका धरसर मिलता है, इस बातको कहे बिना गोस्वामीजीसे रहा ही नहीं जाता—

भ्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत निनाद।

सो अज प्रेम-भगति-बस कौसल्याके गोद ॥

निर्गुण ब्रह्म ही सगुण होकर भगवान् रामचन्द्रका धरवार हुआ है। दोनों एक ही हैं—

भ्यापके भ्याप अखंड अनन्ता। अखिल अमोक्ष शक्ति भगवन्ता ॥

सोइ सच्चिदानन्दधन रामा। अज विग्यान रूप बहवामा ॥

गोस्वामीजीका यही सिद्धान्त था। उन्होंने अथर्वय ही सांख्य, वेदान्त आदि सिद्धान्तोंकी बातें भी यही रोचक रीतिले कहीं हैं। और अनेक सुक्तिर्वा ऐसी मिलती हैं जिनका धारण्य लेकर भिन्न मतावलम्बी अपने-अपने मतों-की पुष्टि कर सकते हैं। पर गोस्वामीजी निश्चयही सगुण-उपासनाके पक्षपाती थे और भक्तिके सामने मोक्षपदकी भी तुच्छ समझते थे।

गोस्वामीजीने प्रथमार्थमें ही इस बातपर इशारा कर दिया है कि उनकी रामायण “नानापुराणनिगमगम-सम्मत” है। अपना न तो कोई उनको मत स्थापित करना था न फोड़ें नया सम्प्रदाय चलाना था। वास्तवमें बात भी यही है कि उन्होंने नाना पन्थोंका सगुण-उपासनामें समन्वय कर दिया है। जैसे श्रीमद्भागवतगीतामें कर्म, ज्ञान और भक्तिका सुन्दर समन्वय कर परस्परके विरोधको शान्त किया गया है, उसी प्रकार गोस्वामीजीने भी नाना सिद्धान्तोंका एकीकरण कर एक राजमार्ग ऐसा बतवा दिया है कि सब श्रेणीके लोग उसपर चलकर परमपदकी प्राप्तिके अधिकारी बन सकते हैं। और वह राजमार्ग है भगवद्भक्ति, साकार भगवान्की उपासना।

श्रीमद्भागवतगीताका धनुकरणकर गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीका वर्णन किया है।

चतुर्विधा मज्जन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी शान्नी च मरतपेमा ॥

धर्यात् धार्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और शान्नी—ये चार प्रकारके लोग भगवान्को भजते हैं। गोस्वामीजीने क्रम बदलकर इन्हें चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन किया है। गीतामें वो सूत्ररूपसे कहा गया है, उसीको विस्तारसे रामायणमें वर्णन किया गया है।

नाम जैह जपि जगद्धि जोगी। निरति विरंच प्रपंच नियोगी ॥

ब्रह्मसुहृदि अनुभवति अनूपा। बन्धय अनामय नाम न कृपा ॥

यह ज्ञानीभक्तका लक्षण कहा है। उसके लिये गोस्वामीजी दयालु योगका साधन नहीं बताते, जिससे कि

केवल ज्ञानकी ही प्राप्ति होती है। गायन बताने हैं उच्चस्वरसे भगवान्का नाम जपना।

जो नहीं करे राम-गुण-गाना। जीह सो दादुर जेह समाना ॥

ज्ञानी-भक्तको ब्रह्म-सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु गोस्वामीजी 'केवल ज्ञान' के पक्षपाती नहीं हैं। भक्त्यारम्भ ज्ञानका ही महत्व विशेष है।

जे अरु भगत-ग्यान परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु राम करहा ॥  
सो जेह कामधेनु गृह त्यागो। सोजत आक फिरोहे पय लग्या ॥

इस भक्तिमय ज्ञानके सामने वे कैवल्य-पक्षको भी देख समझते हैं। ज्ञान भक्तिके लिये साधन है उसका फल नहीं है। वही गोस्वामीजीका सिद्धान्त है। और जैसे गीतामें भगवान्ने कहा है:—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकमक्तिर्विशिष्यते।  
प्रियंगुहि ज्ञानिनांऽत्ययमह स च मम प्रियः ॥

और चाहे ऐसे ही ज्ञानी भक्तको भगवान्ने अपना ही आत्मा बताया है। वही गोस्वामीजीका भी सिद्धान्त है। यथा—

ग्यानां प्रमुहि विसेष पियारा।

दूसरा भक्त है जिज्ञासु वा सुमुचु—

जाना चाहि गूढ़ गति जेऊ। नाम जेह जपि जानहि तेऊ ॥

इसके लिये भी बड़ी उपाय और बड़ी साधन है। नाम-जपकी शक्ति अचिन्त्य है। ब्रह्मसुखकी प्राप्ति उससे होती है तो आत्मा, जीव, प्रकृति माया इत्यादि सम्बन्धी जितनी बातें हैं उनका रहस्य भी उच्चारणसहित जपसे ज्ञात हो जाता है। अन्त्यर्त्त जिज्ञासुके लिये जो कठिन साधन बताये गये हैं उनसे गोस्वामीजीका कुछ वास्ता नहीं। जब ब्रह्मसुखकी प्राप्ति नाम-जपसे हो सकती है तो जिज्ञासुकी शक्ति कौन बड़ी बात है ?

यह तो हुई अक्षरारम्भियकी बात। अर्थाथी क्या करे ? उसको भी सिद्धियाँ चाहिये। संसारमें विजयी होनेके लिये वा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अष्ट सिद्धियाँ ही वह चाहता है। योगकी क्रियासे ये प्राप्त होती हैं और वह भी अत्यन्त कठिन और अविरल परिश्रमके बाद। अर्थाथीके लिये गोस्वामीजीका साधन मुनिये—

साष्टन नाम जपन क्यवरार। ह्योदि सिद्ध अविनादिष्ट पाप ॥

वही उपाय वही भी बताया गया है। सांसारिक सुख-समृद्धि तो क्या सिद्धियाँ तक नाम-जपके हैं।

अन्तिम भक्त है चार्त्त। भारत-हरखे नाम शक्ति है कि—

जपाहे नाम जनु भारत माते। मिटहि कुमदट ह्यो सुख  
इसप्रकार चार्त्तों मर्कोंके लिये केवल नाम प्राधार है और फिर—

कलि चिसेख नहि आन उपाड।

गीताकी भक्त-धैर्यीका अनुकरण करते हुए गोप जीने भी वे ही चार प्रकारके भक्त बने, परन्तु साधन लिये एक ही बताया है। गोस्वामीजीने नाम-साधनमें कोई फरक नहीं की। यहाँतक कि—

कहहुं नामु बड़ रामते, निज विचार-अनुसर।  
और अन्तिम उपदेश है—

रामनाम मणि दीप घष जेह देहरी द्वार।  
तुलसी मांतर बाहिरा जो चाहति दरियार ॥

रामनामको मणि कहा है, तेल, बत्ती अदि दीपक नहीं। क्योंकि जपका साधन सत्यसे सत्य है। बखेड़ा नहीं। साधन-अष्ट होनेका भी भय नहीं। जी से संकेत उच्चारणका है। और 'भीतर' 'बाहिर' 'निगुं' और 'सगुण' दोनोंका अनुभव इस बलसे ही सम्भव बताया है।

गीता और रामायणकी भक्त-धैर्यीकी समानता और उनका भेद इसप्रकार संक्षेपसे कहा गया है। रामायणमें इसका विस्तार अधिक है और उसको सांगित शैलीसे भी निरूपण किया गया है। परन्तु रामायणमें ही विलक्षणता है वह एक और भक्तका वर्णन है जो अर्थाथी चार्त्तोंसे बढ़कर है।

सकल कामना-हीन जे राम-भक्ति-रस-रंजिन।  
नाम सुभ्रम-पियूष-द्वद तिनहुं किये मन मीन ॥

ये हैं—सकल कामना-हीन। ज्ञानी भी अक्षुण्ण जालधी होता है, अतएव सत्कामी है। वे पूर्णतः निष्काम-भावमें रह रहते हैं। किसी बड़-विलेपके इनकी इच्छा नहीं। भक्ति ही जिनके लिये साधन है और भक्ति ही साधनका परमफल है। राम-भक्तिके रसमें ही। और उससे भी बढ़कर जो रामनाम है उसके सदा मधुजीवी नाई रहते हैं। इससे अमृतका साधन कि है, तो राम-भक्तिके भी राम-नामका अधिक महत्त्व मिल

हैं। ऐसे सन्त पुरुष एक वष्य भी नाम बिना जीविन नहीं रह सकते, चातक्य मनुजीके समान हैं। ये भक्त सबसे ऊँची श्रेणीके हैं और उनकी संज्ञा प्रेमीकी है। गीतामें इस दर्जेके भक्तका वर्णन नहीं, और न नामका ही ऐसा महत्व कहाँ बर्णित है।

गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीके वर्णनको उपमा, उदाहरण और शिखर कवितासे जो साहित्यिक रूप दिया है वह बड़ा मनोहर और दिलचस्प है, धन प्रत्येक श्रेणीके भक्तका उदाहरण और उपमा सुनिये और गोस्वामीजीकी उक्तियों-पर विचार कीजिये।

लक्ष्मणजी श्रीरामजीसे कहते हैं—

कमल कोक मधुकर खग नाना। हरसे सकल निहा अवताना ॥

प्रेसिद्धि प्रभु सब भगवत तुम्हारे। होइहि दृष्टे धनुष सुहारे ॥

‘कमल, कोक, मधुकर और खग’से चारों प्रकारके भक्तोंकी ओर इशारा है। ज्ञानी भक्तको कमलके सरस कहा है। जनक और सन्त-समान रामायणमें ज्ञानी भक्त बतलाये गये हैं। जनकजीका वर्णन है—

जे विरंच निरलेप उपाय। पद्य-पद्य त्रिभि जग जल जाय ॥

जैसे जलमें कमल बिना भोगे रहता है वैसे ही जनकजी संसारमें रहते हुए भी उसके प्रपञ्चसे अलग रहते हैं। श्रौद्धय पर कमल खिलते हैं। श्रीरामके दर्शनसे साधु उमाज भी वैसे ही ध्यानन्दसे खिल उठता है—

वदित उदय गिरि-मंचपर रजुबर नाल-पतग।

विकसेसंत-सरोज सब हारये लोचन भ्रंग ॥

बही सुन्दर उक्ति है।

‘आत’ भक्तकी तुलना कोकसे की है। रावणके अत्याचारसे वैकटा दुःखी होकर घबरा गये थे। गौ-रूपी घरा भी विद्वज हो गयी थी। तब भगवान् ने कहा था—

अनि टापहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुमहि कागि धरिहो नरबेसा ॥

हरिहो सकल भूमि गणधार्ई। निर्भय होहु देव-समुदाई ॥

ये ही आत-भक्त—

मय बिसोक कोक मुनि देवा। बरसहि सुमन जनावहि सेवा ॥

क्योंकि जब श्रीराम धनुष-भंगके लिये उद्यत हो गये हैं। सोना परिणयके बिना राक्षसोंका नाश कैसे होला ? इसीलिये वैकटा प्रसन्न हुए।

मधुकर स्वामी है। अपने स्वार्थ-साधनकी धुनमें गुनगुनाया करता है। रस खेनेमें ही वह खीन रहता है। अर्थात् भक्त उसीके समान होते हैं। सुग्रीव, विभीषण और जनकपुरवासी इसी श्रेणीके भक्त हैं। पुरवासियोंकी बालसा क्या है कि सीता और रामका विवाह अपनी आँखोंसे देखें—

यहि लालसा मगन सन लोगू। बर सौँवरो जानकी भोगू ॥

विभीषणने तो स्पष्ट कहा है—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित से बही ॥

अर्थात् लंकाका राज्य प्राप्त करनेकी इच्छा थी। मनका भाव समझकर श्रीरामजीने बिना माँग ही विभीषणको राजपद दे दिया। सुग्रीव तो विभीषणसे भी अधिक स्वार्थ-परायण था। राम-सुग्रीव क्या बड़ी रोचक है, विस्तार-भयसे उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जाता।

चौथे भक्त—जिज्ञासु वा मुमुक्षु खगके समान हैं। खगका अर्थ यहाँ चातकका है। चातक-सम्बन्धी प्रवाद प्रसिद्ध ही है। यह स्वातिकी ईर्ष्यके लिये तृपित दृष्टिसे मेघको देखता रहता है। धनुषके टूटनेपर सीताजीकी दशाका वर्णन गोस्वामीजीने इसप्रकार किया है—

शीघ्र मुखहि बरनिय किहि मीती। जनु चातकी पाय जल स्वाती ॥

इससे पहले यह दशा थी—

तुषित बरि सिनु जो तनु त्याग।

लक्ष्मणजीने श्रीरामको धनुष तोड़नेपर किसप्रकार देखा सो सुनिये—

रामहि लयन बिलोकत कैस। ससिहि चकोर किंसोरक जैस ॥

खगका अर्थ समष्टिसे चातकके अतिरिक्त पक्षी भी हो सकता है। लक्ष्मणजीके लिये चकोरकी उपमा उपयुक्त है।

चारों प्रकारके भक्तोंको इस रीतिसे गोस्वामीजीने साहित्यिक रूप देकर उनकी कथाको रोचक बना दिया है। अन्तिम भक्त प्रेमी है। उसको गोस्वामीजीने किस प्रकार निभाया है, यही और देलना रह गया है।

प्रेमीकी तुलना मीनसे की गयी है। ‘तिनहुँ लिये मन मीन’ पदद्वार था पुका है। दोहावर्तीमें भी गोस्वामीजीने कहा है—

मगर उरम दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।

जुकती पकहि मीनकी है सींचियो सेह ॥

केवल ज्ञानही ही प्राप्ति होगी है। साधन बनाने हैं  
वक्ष्यमाणे भगवान्का नाम करना।

जो मर्दि करे राम-गुन-गाना। जीह सो दातु मंत्र समाना ॥

शानी-भक्तको प्रथम-ज्ञानकी प्राप्ति होगी है, परन्तु  
गोस्वामीजी 'बेबल ज्ञान' के पक्षपाती नहीं हैं। भक्तगणक  
ज्ञानका ही महत्व विशेष है।

जंभ्या मन्त्र-ग्यान परिहर्हो। कंठ-ग्यान हेतु राम करहा ॥

सो जठ कामपेनु गृह स्वर्गां। सोऽत्र आद्य तिराह पच स्वर्गां ॥

हम भक्तिमय ज्ञानके गामने से कैवाण-पत्रको भी देव  
समझते हैं। ज्ञान भक्तिके लिये साधन है उगचा फल नहीं  
है। यही गोस्वामीजीका सिद्धान्त है। और जीमे गीतामें  
भगवान्ने कहा है:—

तेषां ज्ञानं निरयच्छ एकमकीर्तिरिष्यते।

प्रियांश्च ज्ञानिनोऽस्तयधर्मस्य स च मम प्रियः ॥

और चाओ ऐसे ही ज्ञानी भक्तको भगवान्ने अपना  
ही धामा बताया है। वही गोस्वामीजीका भी सिद्धान्त  
है। यथा—

ग्याने प्रमोहे विसेष पिपारा।

दूसरा भक्त है जिज्ञासु वा सुसुपु—

जाना चाहते गूढ गति जेऊ। ज्ञान जोह जपि जानते तेऊ ॥

हसके लिये भी वही उपाय और वही साधन है।  
नाम-जपकी शक्ति अचिन्त्य है। प्रहसुखकी प्राप्ति उससे  
होती है तो आत्मा, जीव, प्रकृति माया इत्यादि सम्बन्धी  
जितनी बातें हैं उनका रहस्य भी उच्चारणसहित जपसे  
ज्ञात हो जाता है। अन्यत्र जिज्ञासुके लिये जो कठिन  
साधन बताये गये हैं उनसे गोस्वामीजीका कुछ वास्ता  
नहीं। जब प्रहसुखकी प्राप्ति नाम-जपसे हो सकती है तो  
जिज्ञासुकी रुचि कौन बची बात है ?

यह तो हुई अक्षयामविषयकी बात। अर्थाथी क्या  
करे ? उसको तो सिद्धियाँ चाहिये। संसारमें विजयी होनेके  
लिये वा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अष्ट सिद्धियाँ  
ही वह चाहता है। योगकी क्रियासे ये प्राप्त होती हैं  
और वह भी अत्यन्त कठिन और अविरल परिश्रमके बाद।  
अर्थाथीके लिये गोस्वामीजीका साधन सुनिये—

सायक नाम जपत त्वय शाय। हंदि सिद्ध अनिमादिक पाप ॥

वही उपाय यहाँ भी बताया गया है। सांसारिक  
सुख-सुखदि तो क्या सिद्धियाँ तक नाम-जपके अर्थाथी हैं।

अन्तिम भक्त है धार्मी। ध्यान-रत  
शक्ति है कि—

जगदें मान जनु अरत भर्ता। मिहदें कुम्भदें  
इयच्छकार पातों भरोडे तिन देव  
आपार है और फिर—

कति विमल नदि अत उक्त

गीताकी भक्त-श्रेणीका अनुसरण करने।  
जीने भी ये ही चार प्रकारके भक्त बने, परन्तु  
लिये एक ही बताया है। गोस्वामीजीने व  
वर्धनमें कोई कथर नहीं की। वहाँ तक कि—

कहुँ नानु बड़ रानते, निर विचार-गु-

और अन्तिम उपदेश है—

रामनाम मणि दीप धर जोह देता

तुलसी मंत्र बहिरो जो चाहति

रामनामको मणि कहा है, तेज, व  
दीपक नहीं। क्योंकि जपका साधन सत्य  
बलेका नहीं। साधन-अष्ट होनेका भी म  
से संकेत उच्चारणका है। और 'म  
निगुण और सगुण दोनोंका अनुभव  
सम्भव बताया है।

गीता और रामायणकी भा  
और उनका भेद इसप्रकार संक्षेपमें  
रामायणमें इसका विस्तार अधिक है  
शैलीसे भी निरूपण किया गया है।  
विलक्षणता है वह एक और भक्त  
चारोंसे बढ़कर है।

सकल कामना-हीन जे र

नाम सुप्रेम-पियूष-द्वद तिन

ये हैं—सकल कामना-ही

जालची होता है, अतए

निकाम-भावमें हृद रहते

हृदकी इच्छा नहीं। भक्ति

भक्ति ही साधनका पराम

और उससे भी बढ़कर

सदा सच्चञ्जीकी माद

है, सो राम-भक्तिसे

धन्य है दशरथका प्रेम कि वे अपने शरीरको पिछाते हैं, क्योंकि उसको राम-विरहके प्रथम चरणमें ही धाराशायी हो जाना था। राजा दशरथका प्रथम मायाघाती शरीरने अस्तव्य कर दिया ! प्रतिज्ञा-पालन और कुल-भर्यादाकी रक्षाके लिये जब श्रीरामको वनवास दे दिया तो फिर दूसरी प्रतिज्ञा 'जिमि जल बिनु मीना' का भी तो पालन करना चाहिये। दशरथकी वही जैसी भावना है।

रामजीको वन गये सभी बहुत दिन नहीं हुए परन्तु राजाको एक-एक घड़ी मुगके समान हो रही है।

हा रघुनन्दन प्रानपिरति । तुम बिनु मियत बहुत दिन बंते ॥

धीर धन्तमें—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुनर-विरह राठ गयउ सुरधाम ॥

मञ्जुकी तरह तबप-तबपकर माय देना इसीको कहते धीर प्रेमीकी सर्वोच्च दशा भी वही है। गोस्वामीजी ते हैं—

अन-मरन-फनु दसरथ पावा । अण्ड अनेक अमल जतु छावा ॥

अंत राम-विषु-बदनु निहाता । रामविरह करि मरनु सँवौ ॥

जीवा उसीका सफल है जिसको मरना छाता है। विरह-नामें भी एक प्रकारका ध्यानन्द होता है। मज्जनीपिकार्यों-विरह-म्वथा उसके अनेक भाव-धनुभाव राजा दशरथके यमें नहीं मिले थे। वे 'सुरधाम' को सिधारे। मरते समय म राम' मुखसे एक बार भी निकल जाय तो मुक्ति हो य धीर दशरथ 'राम राम' रटते मर गये धीर फिर भी ल सुरधामके अधिकारी हुए ! इस बातमें भी भक्तिका एक रूप है। राजा दशरथको राम-दर्शन-जालसा धमी बनी

हुई है धीर यह पूरी होगी। रावण-बध हो जानेपर उनको दर्शनसे मुक्ति होगी।

गोस्वामीजीने इसप्रकार राजा दशरथका चरित्र एक चादसं प्रेमीका दिखाया है धीर इसी भावनासे उनकी वन्दना की है—

बंदौ अवध-पुत्राल सख प्रेम जेहि राम-पद ।

विरुन दानदयाल प्रिय तनु तून इन परिहरेउ ॥

इससे तुलना करने योग्य धीर कोई चरित्र रामायणमें नहीं है।

संसार तो दुःखमय सदा रहेगा। मनुष्यमें कहीं सामर्थ्य है कि घटना-पक्षकी गतिको धान ले या उसको रोक सके। एक ही उपाय है जिससे मनुष्य सुखपूर्वक संसारमें रह सकता है धीर त्रिविध तापसे अपनी रक्षा कर सकता है। वह अमोघ उपाय भगवत्-शरणागति है—

सुखी मन जहँ नीर अगावा । जिमि हरि-सरन न एको भावा ॥

शरणागतिके भावके साथ निरन्तर नाम-जप मुख्य साधन है। साधारण सांसारिक मनुष्योंके ही लिये नहीं, सर्व-जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि-गुन सुनिहि निरन्तर तेऊ ॥

धन्य है वह पुनीत देश, जहाँके निवासियोंको पवित्र-पावन भगवत्की भक्तिक उपदेश प्राप्त हो। इसके द्वारा नियुंय महाको भी सगुण बनकर प्रकट होनेके लिये बाध्य होना पक्ता है। तिनको धर्मका यह अमूल्य उपदेश प्राप्त हो उनसे सबभागी संसारमें धीर बन हो सकता है ?

हिन्दूकालिको गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसा मार्ग दिखाया है जिसपर चलकर देव-दुर्लभ पद भी घनायास ही प्राप्त हो सकता है।

## राम-नाम

ऐनेसे जिस रामनामके पाप-पुञ्ज होते हैं छार ।

जन्म-मृत्युसे रहित जीव हो जाता है भवसागर' पार ।

जिसका उलटा नाम सदा जप व्याधा हुआ महामुनि भक्त ।

जिसके मधुर रूपका चिन्तन करते सदा शैलजासक ॥

सर्व-नीरोमणि उसी नामका अमृतरूपी प्याला ।

रे मन ! च्यर्थ भटकता है क्यों, पीकर बन मतवाला ॥

—मोदीबाबू बोसरे

# श्रीशुकदेवजी और रामायण

(लेखक-श्री पी० एन० शङ्करनारायण अय्यर पी० प०, पी० एल)

१-आपकी आशानुसार, श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव-कथित रामायणके कुछ ऐसे प्रसङ्गोंका वर्णन करूँगा जो मुझे बहुत प्रिय हैं तथा जिनसे मेरे आचरण सुधर गये हैं। 'कर्मोप्यकर्तुं महनाय पुंसाय' प्रशुकी खीजाएँ मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये होती हैं। भगवान्के चरित्रने हमें कैसा सुसंस्कृत तथा जागृत किया है, इस यातको जब हम प्यक करने लगते हैं तो हमें अनुभव होने लगता है कि श्रीराम अभी विद्यमान हैं और हमें नित्य कल्याणका मार्ग दिखला रहे हैं। वर्तमान दशमें भारतको श्रीरामके नेतृत्वकी महान् आवश्यकता है।

२-श्रीशुकदेवजीने श्रीरामके मुख्य संदेशका निचोड़ इसप्रकार बतलाया है—

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्वं दण्डककण्ठैः ।

स्वपादपङ्कजं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥

(भागवत ९।११।१९)

श्रीरामचन्द्रजी दयद्वारकयके कण्ठकोसे विद्व अपने चरण-कमलोंको भकोंके हृदयमें स्थापितकर परमधामको पधार गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके वे रक्षाक घरण प्रायः मेरी आँसुओंके सामने उपस्थित हो जाते हैं और मुझे पीड़ित प्राणियोंमें घूम-घूमकर उनकी सेवा करनेके लिये प्रेरित करते हैं। जब कभी मैं भंगे पैर जखती धूममें घूमता हूँ तो प्रायः यह सोचकर कि श्रीरामचन्द्र और श्रीसीताजी भी मनुष्योंके प्रेमधरा कान्ठोंमें विचरण करते थे, मेरा हृदय अमित उत्साह और उच्चरसते भर जाता है और मैं सारे धर्मको भूख जाता हूँ।

एक बार तीर्थयात्रामें मुझे आधीरातके समय बबके बीच होकर जाना पड़ा। पहले तो मेरे मनमें कुछ भय-सा हुआ परन्तु दृग्मत् ही मुझे यह शोक वायु भा गया—

अपतः पृथुश्चैव चार्धश महाक्री ।

अपतन्तुर्लोककन्ती रक्षेत् रामराममेतौ ॥

'जागे, पीड़े तथा डरोओं और महाक्री अगवात् राम और कण्ठक दय-अपथाव किये मेरी रक्षा करें।' मेरे मनमें यह विचार हो गया कि जब भी महाक्री वार्धकोंकी रक्षाके लिये देवों राजपुत्रक वचन है, मेरे कान्ठोंमें कौं धर जाये

और मेरा हृदय हर्षसे पूर्ण हो गया। मैंने लाले उनको अपने साथ समझा तथा मैं आनन्दमें सर से ल और मुझे मार्गमें किसी भी धमका अनुभव नहीं हुआ। श्रीरामके पावन चरण और उनकी पुत्र सरपारले प्रकार देशके सब मनुष्योंको प्रेरित करे, जिनने वे हैं श्रीरामके समान ही दुःसाक्रान्त मनुष्योंमें वृत्त और रफने उनकी सेवा करें।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तपस्वित दयद्वारकय पृथ्वीपरसे नष्ट होकर जनसमुदायके हर्षसे ल गया है, जिससे सारा राष्ट्र भागवत-धर्मसे विमुख हो जाता। कुछ लोगोंके हृदय तो व्यर्थ शिक्षा, कथन स्वर्गत तथा भावजनकों प्रति उपेक्षा और अर्थिक साहाय्यसे ल गये हैं, और कुछ लोगोंके हृदयोंमें अज्ञान, असीमित अद्रिष्टता तथा पुरुषार्थको नष्ट कर देनेवाले दुष्कर्म भरे हुए हैं। धर्मका स्थान अन्धविश्वासने ले लया और धर्मके स्थानमें केवल अन्ध-बौद्धी वादों का ही स्थान है। इसी कारण भारतभूमिके रचक मनु और स्वर्गमें प्रजाको सन्तुल करनेके लिये मानो दुःख और कष्टों खली आज्ञा दे दी है। मैं समझता हूँ कि वर्तमान दुष्कर्म वन्धन राष्ट्रको उस भागवत-धर्मकी ओर खीर करनेके लिये वेतावनीस्वरूप हैं जो यज्ञकी-स्वार्थ-त्यागी-धनसस सयकी प्रेमपूर्ण सेवासे परिपूर्ण है। इसी वजहसे धर्म धर्मको भगवान् धीहृष्यने गीतामें राष्ट्रके अनुगत में मुखका प्रधान साधन बतलाया है।

श्रीमद्भागवतमें भी इसी वजहसे वार्धकों का वर्णन मनु भगवान् धीहृष्यने वसुनाके तीरपर स्थित करे हुए दिखलाकर अपने मित्रोंसे कहा है—

पदयोः नालमहाभागान्परपैदान्तीव्रिवात् ।

वज्रवर्जितापदिमन्सहस्रो वरयन्ति न ॥

प्रातरन्नम सारद्वयं देहिनामिह देहिपु ।

श्रीरौप्यैर्षिवा वाचा धेय वराचोत्तरात् ॥

(भागवत १०।१।१९-२०)

'दे मित्रो ! इन सब महाभाग वृद्धोंको देना ! जीवन केवल वरौत्पारदेही लिये है। सर्व वस्तु

धाम और हिमके प्रकोपको सहकर, ये उनसे हमारी रचा करते हैं। जहाँका जीवन सफ़ल है वो अपने माय, धन, बुद्धि और वाणीसे सदा परोपकारमें रत हैं। भगले अर्थात्में भगवान्ने यह दिखलाया है कि जिन्होंने यज्ञको संस्कार-विशेष बतलाया है वे भगवान् और सत्यसे दूर चले गये हैं और ये उनको पा नहीं सकते। इसके बाद माझण-खियोंको वापस खीटाकर उन्होंने यह दशाया है कि जीवनकी उचाति उच्च सफ़लता भगवान्के प्रत्यक्ष शरीरके समीप रहनेमें ही नहीं है, बरं तुल्यो प्राणियोंके अन्दर भगवान्के प्रेम और प्रकाशको फैलानेमें है। प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा ही राष्ट्रीय समृद्धिकी कुञ्जी है और इसीको भागवत-धर्म भी कहते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने बची ही उच्चमतासे अपने सम्पूर्ण जीवनमें इसीका दिग्दर्शन कराया है। यदि भारतीय नेता आज केवल इसी भावको जागृतकर जनतामें काम करें और राष्ट्रके हृदयमें आत्मनिर्भरता, समन्वय तथा दूसरोंकी प्रेमपूर्वक सेवाके भाव भर दें तो केवल इसीसे देशमें सुख-समृद्धि ही जाय। प्रत्येक मनुष्य जबतक यथार्थ संयम नहीं करता, यज्ञकी भावनासे स्वधर्ममें स्थित नहीं होता और श्रीरामके कष्टकविद्ध चरणोंको अपने हृदयमें पथ-प्रदीपकी भाँति प्रतिष्ठित नहीं करता, तबतक वास्तविक स्वराज्यकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

३-श्रीगुरुदेवजीके रामायणका एक दूसरा अंश अत्यन्त ही आकर्षक और चरित्र-निर्माणमें सहायक है। उसमें रावणकी मृत्युके अनन्तर लक्ष्मीका यागुपानियोंद्वारा किये हुए प्रलापका वर्णन आता है। वे इसप्रकारके महत्त्वपूर्ण शब्दोंद्वारा उसके पतनपर प्रलाप करती हैं—

हा हताः स्म वयं नाथ ! लोकरावण रावण ।  
 कं ययाच्छरणं लब्धा त्वदिदीना परार्दिता ॥  
 नैवं वेद महामाग ! भवान् कामवशं गतः ।  
 तेजोऽनुभावः सीताया येन नीतो दशानिमाय ॥  
 ह्यैषा विवदा लब्धा वयं च कुलनन्दन ।  
 देहः कृतोऽजं गृध्रप्रणामात्मा नरकहेतवे ॥

(भागवत १।१०।२६-२८)

'हे माय ! हे संसारको हलानेवाले रावण ! हमारा सर्वद्वारा हो गया ! आह ! तुमसे विहीन हो दूसरोंके द्वारा पदचिबित यह खड़ा किसी छरथ डेगी ? हे महाभाग ! तुम कामाग्र हो सीताके पतिव्रतके लेख और प्रव्रज प्रभावको

नहीं जान सके। इसीसे आज तुम्हारी यह दशा हुई। हे कुलको धानस्थित करनेवाले, इसी कारण तुम्हारी बच्चा नगरी और हम तुम्हारी रानियाँ विषया हो गयीं, और तुम्हारा शरीर गुध्रोंका भोजन बना तथा तुम्हारी आत्मा नारकी हो गयी। काम-वासनाके विप्लव इनसे यदकर श्रोत्रस्थी, यथार्थ कलापूर्ण, सुन्दर गम्भीर भाव मुझे अन्यत्र कहीं नहीं मिले।

४-श्रीगुरुदेवजीके रामचरित चित्रणका तीसरा और अत्यन्त आकर्षक भाग वह है जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञोंका वर्णन किया गया है। वहाँ उन्होंने सच्चे माझण, राजा और राज्यसम्बन्धी आदर्शोंकी विशद व्याख्या की है।

मागदलामनद्रमानं राम उत्तमकल्पकैः ।  
 स्वदेवमये देवमीत्र आचार्यबान्धवैः ॥  
 होयेऽददददिरं प्राचीं कृत्विरे दक्षिणां प्रभु ।  
 अश्वमेधे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥  
 आचार्याय ददौ दोषां यावती मूलदन्तरा ।  
 मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥  
 इत्ययं तदलङ्कारवातोभ्यामवशेषितः ।  
 तथा रामसिपि मैदेही सीमन्तन्पारशेषिता ॥  
 ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य नत्सत्यं वीषय संस्तुतम् ।  
 प्रीताः क्लिप्तियस्तस्मै प्रत्ययैर्दं बर्मापिरे ॥  
 अप्रतं नस्तवया किन्तु मगान् मुवनेभर ।  
 यतोऽन्तर्दर्मं विश्व तमो हंसि स्वरोचिषा ॥  
 नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामापाकुष्ठमेपते ।  
 उत्तमश्लोकचुर्नाय न्यस्तदम्बार्पितांश्वे ॥

(भागवत १।११।१-७)

तदनन्तर सर्वदेवमय परमदेव भगवान् रामचन्द्रजीने आचार्यद्वारा बतलायी हुई विधिसे परमात्माकी पूजाके निमित्त बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान किया। होताको पूर्व-दिराका राज्य, कृत्विक्को दक्षिणका राज्य, अश्वमेधको पश्चिमका राज्य और उन्नाताको उत्तरका राज्य दक्षिणामें दे दिया। बीचमें बची हुई पृथ्वी भी आचार्यको दे डाली। श्रीरामने सोचा कि केवल हृष्टादहित माझण ही बाल्यमें समस्त राज्यके अधिकारी होने योग्य हैं, क्योंकि स्वार्थहीन माझण जरा-सा अंश भी अपने उपयोगमें न लाकर सच्चे दूस्तीकी भाँति सबकी भलाईमें ही उसका प्रयोग करेंगे। अतः भगवान् रामचन्द्रजीने अपने शरीरके



ब्रह्मचर्याओंके अधिनिक नमी बन्धुओंका बान बन रिग ।  
 हामी प्रका महापानी मीराने मी नव कुष रे राजा । उनके  
 गीरान केन मंगन-गुष बन गया । श्रीरामचन्द्रजीका  
 देगा वागम्य और ब्रह्मात्मक देवदर प्राकृतगत्य मन्वन्  
 प्रगव हुए । उनका हाव इतिग हो गया । अमुदूर्ध्व नेत्रोंहारा  
 वे समस्त पृथ्वी श्रीरामजीको जीताने हुए करने लगे, 'हे  
 पृथ्वीरति भगवन् । अब जानने हमारे इवधमें प्रवेग करके  
 करने महापाने इमाता कृतावाग्धर हर शिपा है तब  
 देगी कौनगी बन्धु है त्रिने भारने हम लोगोंको नहीं दिया  
 है ? हमें तब कुष मित्र गया है । हमलोग देवे महापुण्यके  
 सामने गिर चुकाने हैं जो इन्द्रमार्दित निन्द्यद्राष्ट्रणको देवता  
 रामका है । हे शिपयन्त्र ! आप इन्द्रकीतिपुत्र पुत्रोंमें  
 अग्रगण्य हैं । आप यह महापुण्य है त्रिनेके चरया-कमत्र  
 बर्णोंके इवधोंमें रहते हैं जो दूसरोंको दुःख देना घोष चुके हैं ।'

इसने पता धगता है कि राजाघों और सचे प्राइण्योंमें  
 किगनी उबकोटिकी निःस्वार्थता, निष्कामता तथा प्रेमकी  
 भावना होनी चाहिये, तथा किस प्रकार दोनोंको सचके  
 कल्याणके लिये द्रष्टियोंकी भाँति परस्पर सहयोग करना  
 चाहिये । ऐसे राजा और प्राइण्योंको अपनी सम्पत्ति तो  
 केवल ज्ञान, प्रकार और भगवधिन्तन ही है । यदि  
 भारत हसी दुराको पुनः प्राप्त हो जाय तो यह कैसा सुखी  
 देश हो जायगा ? मैं समझता हूँ कि भूमिदेव होनेके कारण  
 प्राइण्योंका यह प्रथम कर्तव्य है कि वे इस पथमें अग्रसर  
 हों । यदि वे अपने इवधमें श्रीरामचन्द्रजीके चरय तथा  
 उनके यथार्थ प्राइण्य-प्रेमको धारण कर मार्गमें अग्रसर  
 होंगे तो अब भी धर्मराज्य—रामराज्यको पुनः स्थापित कर  
 सकेंगे । महाराज पृथुने श्रीमज्जागवतपुराणके चौथे स्कन्धके  
 इक्कीसवें अध्यायमें स्पष्ट समझा दिया है कि राज्यराजिका  
 उन्नव और विनाश प्रजाकी धर्मनिष्ठापर अवलम्बित है ।  
 हम स्वयं अपने भाग्यके विधाता है ।

४—ब्रह्म ! देशकी उस समय कैसी स्थिति होगी जब  
 श्रीरामचन्द्रजी धर्म या सत्याचरणहारा इस देशपर राज्य  
 करते होंगे ? इस विषयका एक सुन्दर चित्र श्रीशुकदेवजीने  
 लींचा है—

रामे राजनि धर्मके सर्वमूलसुखानदे ॥  
 नद्यो गिरयो बर्षणि द्वापदिन्तनवः ।  
 काम्पुचा आसन् प्रजाना मत्तर्षण ॥

नीत्यविरहात्पुत्रिः, कालेकम्पुचः ।  
 मृगुत्तपनिष्ठात्तन्नाशने राजन्वर्षणे ॥  
 ( भागवत १।१०।११-१२ )

जब प्राणीमात्रको पुन प्रदान करनेके लो  
 श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, उन समय वन, वी, प  
 देग, हीर और गण्डु नमी प्रेमपूर्वक प्रजाको मत्तर्षण  
 देने थे । चाधि, व्याधि, मरा, मय, खानि, खंड, हा  
 और शोक विरहित नहीं थे, परंतु कि शत्रु भी  
 और शोक विरहित नहीं थे, परंतु कि शत्रु भी  
 तामचन्द्रजी धायन करते थे तब देशकी ऐसी दृश्य  
 यह बान मृगमनिचे समझमें नहीं था सच्ची ।

अब प्रत्येक मनुष्य धाम-मनुष्ट हो हुआके इन्त  
 एत रहता है, तब देशामरमें यज्ञकी भावनाका इति  
 हो जाता है, तथा सभी जगह समन्वय और लक्ष्म  
 सहर्ष सहकारिता तथा प्रेमका प्रसार हो उठता है । ए  
 यज्ञभावना ही देशको चार्शु बनानेका मार्गक नहीं ।  
 श्रीशुकदेवजी, शूद्र, रामानुज, गौराज, कबीर और इ  
 महापुण्य देशभक्तिहीन नहीं थे, यद्यपि उनकी शि  
 नीतिक दृष्टि कृद्विधानेवाची कोई बन्धु नहीं है । वे ल  
 द्शी और सचे देशभक्त थे और उन्होंने यज्ञकी भा  
 प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक सेवा-कार्यके प्रकारसे प्रजा  
 और यही एक मार्ग है जिसके द्वारा भारत और सं  
 सची उन्नति हो सकती है ।

यह हमारे हाथकी बात है कि हम चाहे यज्ञकी भा  
 उन्नति करें या विपरीत पथ अवलम्बनकर अरि  
 जीवन चितारें । किसी प्रकारके अहमन्वयने ली  
 हम स्वार्थपरता, कपट और पारस्परिक शोइमें डूब  
 और वह मार्ग भारतीय नहीं होगा । इसने त  
 भगवायुकी रूपा नहीं होगी । किन्तु यदि हम यज्ञकी  
 भावनामें स्थित होकर निःस्वार्थ सेवाके द्वारा सबका कल  
 करनेकी चेष्टा करेंगे तो यज्ञ और धर्मके आभा अम  
 इस देशमें राज्य हो जायगा और कबि अपने सारे उन्न  
 के साथ ध्वंस हो जायगा । विष्णु और अशान्तिके ज  
 'कबि'को महाराज परीक्षितने जो कहा था, उसे सुनि  
 न अतिरथ्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण स्थेन च वर्तिते ।  
 प्रह्लादनेत्रं यत्र यजन्ति यैः यथेद्वरं सृष्टितामिह ॥  
 यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमानः इयामर्षिर्देवतां शनवन्ती ॥  
 कामानमोषान् स्थिरज्जमानां अन्तर्वेदिर्वापुर्विव्रजन्ता ॥

( भा० १।१०।११-१२ )

हे धर्मके बन्धु ! तु इस महावर्त्ममें नहीं रह सकता, क्योंकि यहाँकी प्रजा धर्म और सत्य (भीरुगुण भावान्त्रे ११ वें स्कन्धमें जिसे समदर्शन कहा है) पर अघलरूपसे चारुण्ड है। भूतमात्रकी निःस्वार्थ सेवामें अपनेकी सुखा देने-वाले सेवापट्ट लोग इसप्रकारकी सेवाओंसे समस्त सेवाके स्वामीकी पूजा करते हैं। इस महावर्त्ममें स्वर्ण भगवान्, जिनका एकमात्र कार्य अरिबोंके कष्टोंको हरण करना है और जो तन्मयतायुक्त सेवाके प्राण हैं, अपने उन यज्ञक्रिया-द्वारा आत्मविस्तृत होकर धर्मा करनेवाले सेवकोंका

कल्याण करते हैं और समस्त चराचरकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, क्योंकि वे वायुके सट्टा सबके प्राण हैं और सबके बाहर-भीतर समानरूपसे ध्यात हैं।

अतः भगवान् रामचन्द्रजीकी जीवनी सबके प्रति यज्ञरूपी भूतसेवाकी सच्ची भावनाको हमारे हृदयमें जाग्रत करे जिससे इस पवित्र भूमिपर पुनः प्रभुका साक्षात्प हो। तभी भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समृद्धिकी कुम्भी संसारको प्रदान कर अपने मिशनको पूरा करेगा।

## श्रीरामजीका शूर्पणखाके साथ व्यवहार

( लेखक:—पं० हनुमन्त्राजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, बी०ए० )



रामचरित्रके रहस्यसे धनभ्रष्ट कतिपय पुरुष रामचन्द्रजीकी लीलाओंमें दोष दिखाया करते हैं। शास्त्रीय सिद्धान्तोंके अविदित होनेसे ही ऐसे भ्रान्त पुरुषोंको शूर्पणखाके साथ भगवान्के व्यवहारमें धनीधिष्य दिखायी देता है। वे कहते हैं कि श्रीरामको शूर्पणखाकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी

रामजीके लिये शूर्पणखा परकी थी। परपत्नियोंके साथ वताव करनेके विषयमें शास्त्रसम्मत है 'मातृवत्पररेपु' अर्थात् अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त जितनी भी स्त्रियाँ हैं सबको माताके समान समको। इसी प्रकारकी एक दूसरी उक्ति है—

मातृवत् स्वभूषणं तथा दुहितृवत् ये।  
परदारो वर्तन्ते ते नराः स्वर्गपापिनः ॥

गहिये थी क्योंकि रावण विश्वविजयी था, उसके साथ सम्बन्ध में जानेसे उनको बहुत कुछ लाभ सम्भव था। सीताजीकी वेद्यमानतामें भी शूर्पणखाके साथ वैवाहिक-बन्धनमें बद्ध होनेसे कोई हानि नहीं थी, क्योंकि यहविवाद शास्त्रानु-मोदित है। स्त्रियोंको जो 'मन्तीनां काम दिग्गजा पातकी स्वाय' (रदान हन्त्रसे मित्रा है उसके अनुसार भी श्रीरामजीको शूर्पणखाके साथ प्रेम करनेमें कोई बाधा न थी और यदि उन्हें ऐसा न भी करना था तो भी उस बेचारीकी वैसी दुर्घटा करना ठीक नहीं था, कौके नाक-कान काटना निन्दित तथा सम्भताके विरुद्ध है।

अर्थात् 'सज्जन पुरुष अपनेसे बड़ी वयवाली परस्त्रियोंको माताके समान, समान वयवाली स्त्रियोंको बहिनके समान और कम वयकी स्त्रियोंको पुत्रीके समान समझते हैं।' अतएव भगवान् पर-पत्नीके साथ विवाह कैसे कर सकते थे ?

शूर्पणखा शास्त्र-बन्धकी थी और उसपर भी विवाहिता थी। शास्त्रीयोंके साथ अत्रियका विवाह करना सर्वथा अनुचित है। अतएव रामजीने उसकी धर्म प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। यदि वह अविवाहिता तथा सवर्णा भी होती तथापि श्रीरामचन्द्रजी उससे विवाह न करते, क्योंकि वे ही संसारमें एक-पत्नीव्रतकी मर्यादाको स्थापित करना चाहते थे।

ऐसी-ऐसी अनेक शंकाएँ हैं जो तमोगुणमयान पाश्चात्य सभ्यताके समर्थकोंकी जिह्वार विराजमान रहती हैं। भारतीय आदर्श क्या है ? इस बातको नहीं जाननेके कारण ही वे ऐसी शंकाएँ उठाते हैं। अस्त,

श्रीरामको रावणके द्वारा देश-भासिके समान किसी कामकी कल्पना उपहासास्पद है क्योंकि रामजीके लिये ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उन्हें प्राप्त न हो तथा जिसके प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो। वे तो पूर्ण काम हैं। श्रीरामचन्द्रजी संसारमें धार्मिक आदर्श मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए थे।  
हो जानेके

रामजीने शूर्पणखाके साथ जो व्यवहार किया वह शुद्ध था, इस बातको सिद्ध करनेके लिये नीचे कुछ पंक्तियाँ लिखी जाती हैं।

देश करती चाहिये, उनकी साम्राज्यगत सत्तापदमें प्रभु परचाय कर हम करने मुक्त निरस्त करते हैं। (अन्तर्-  
होना उचित ही है। सत्तापदकी सामान्य समीक्षा करनेके सत्तापद बड़े जाने योग्य प्रयोग निम्नलिखित हैं।)

शरणावधि

रामायणमें परिचय

क्रमसङ्ख्या	किसे किया	किसे विन्दु किया	किग उद्देश्ये किया	शार्मादिना	अन्वय	उद्देश्य
१	विश्वामित्रजी ...	राजा दशरथ ...	मन-रोग ...	राज्य	सद्व्य	उत्तर
२	सीताजी ...	श्रीरामजी ...	वन-सङ्गमन ...	भ्रान्तमें निरुद्धता	भ्रान्तमें विरुद्धता	भ्रान्तमें विरुद्धता
३	सखमणजी ...	श्रीरामजी ...	वन सङ्गमन ...	"	"	"
४	केच ...	श्रीरामजी ...	पक्ष पक्षान ...	सकल	सकल	सकल
५	भरतजी ...	श्रीरामजी ...	श्रीरामजीको वनमें छोड़ना ...	विकल	विकल	विकल
६	रामचन्द्रजी ...	वपिण्ड, मगुण्ड ...	सागरोत्थान ...	सकल	सकल	सकल
७	शम्भूक ...	पैदिक धर्म ...	देव्य प्राप्ति ...	विरुद्ध	विरुद्ध	X

यस इनका रूप सुझाया गुणिये—इसमें संपित इतिहासके साथ सत्तापदोंकी विशेषताएँ और उनके अधिष्ठान दिखाये जायेंगे।

१-श्रीविश्वामित्रका सत्तापद—

राजा होनेके कारण श्रीदशरथजीका यह कर्तव्य था कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे मुनियोंको अपनी सत्तापदमें किसी प्रकारका विघ्न न उपस्थित हो। परन्तु वृद्ध होनेके कारण श्रीदशरथजीमें इतनी शक्ति न थी कि वे लाडका, सुबाहु आदि यज्ञराजकी रावसोंको मारकर विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा कर सकें। इस बातको धोखाबलसे विश्वामित्रजी जानते थे, इसीलिये उन्होंने राजा दशरथकी उपेक्षा करके राम-सखमणको उस कार्यके लिये भेज देनेका संकल्प किया। राजा इस भर्माको नहीं जानते थे, इसलिये घानाकानी करने लगे। इसपर पण्डितजीने बीचमें पड़कर दशरथजीके हृदयमें कर्तव्य-भावनाको जागृत किया, तब कहीं दशरथजी राम-सखमणको विश्वामित्रके लिये देनेको तैयार हुए। इस सत्तापदका उद्देश्य राजनीतिक कर्तव्यका जागृत करना था, अतः इसका अधिष्ठान राजनीति था।

२-श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीका सत्तापद—

इनके सत्तापदकी कथाएँ मसिद ही हैं; इनके सत्तापदका अन्वय रामचन्द्रजीका वनवासके लिये उद्यत होनेका समय है। ये सत्तापद प्रेमपर अधिष्ठित हुए जान पड़ते हैं, किन्तु बलुतः ऐसी ही बात नहीं है। विचारनेसे मालूम होता है कि इस प्रेमका मूल सौम्य-सौकर-भावमें है। अतः सौम्य-सौकर-भाव ही इसका अधिष्ठान है।

३-केचका सत्तापद—

प्रत्येक सत्तापदके अन्वयमें इन सत्तापदका न समान ही अहितभाषोंसे सुसजित किया गया है। अतः उसमें—'मोहि राम शरि कानि दत्तव्यं उच्यते' इत्यादि पंथ देकर इन सत्तापदोंको दिव्यस्वरूप प्रदान किया। इससे गुह्यसीयानजीकी पात्र-निरीक्षणता तथा संकलनकी प्रवीणता स्पष्ट दृश्य पड़ती है। इस प्रसङ्गमें कर्णका ही भरा गया है तथा उससे सत्तापदका अन्वय स्पष्ट ही विवक्षित हो गया है। केचके सत्तापदका अधिष्ठान क्या गुहाईजीका उपयुक्त पूरक न होनेपर पूर्व में अधिष्ठान न मिलता?

इस दुविधामें महाकवि मन्मथजीके विचार रखेंगे। पूरी सहायता मिल सकती है—

व्यतिवृत्ति पदार्थान्तरः कोपि हेतुः

न खलु बहिरूपाधीन प्रीत्यः संजने ॥

अर्थात् 'प्रेम बाह्य उपाधियोंकी सहायताकी कला रसता। एक आन्तरिक शक्ति बलुओंको संचयने के लक्ष्य जा रही है।' अतः आन्तरिक इच्छा विचार कानेतर प्रेम ही सत्तापदका अधिष्ठान हम अन्वयतम प्रेम ही समझें।

४-भरतजीका सत्तापद—

भरतजीके सत्तापदका अधिष्ठान, शार्मादीना तथा रामायणमें वैसा सहरन नहीं है जैसा गुह्यमें रामचरितमानसमें है। इसी कारण उनका अधिष्ठान भावा-अन्वय ऐसा विध, अहित और मनोहर हुआ।



विश्वामित्तकौ राम-भिक्षा ।  
यदि ते धर्मदामं तु यत्न्यत्त परमं भुवि ।  
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ।



कि जितकी समता भन्त्यत्र कहीं नहीं पायी जाती । इस कथनकी सत्यता इसीसे हो जाती है कि अन्य सभी रामायणोंके रामजी 'दिनाभिभाषते' के समान हैं, पर रामचरितमानसके रामजी भरतके प्रेम-वश 'दिश्याभिभाषते' बन गये हैं और ऐसा होनेपर भी अ्यों-के-अ्यों, बल्कि बड़कर लोक-प्रिय और आदरणीय हुए हैं ।

भरतजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है ? इसका निर्णय करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि गुप्तार्जुनीके भरत-भावमें स्वामि-सेवक, पिता-पुत्र, पूज्य-पूजक इत्यादि अनेक भावोंका बहुत ही सुन्दर संगम पाया जाता है । इसप्रकारके भावोंके मिश्रणका उदाहरण हमें श्रीशुकदेवजीकी श्रीमद्भागवतमें मिलता है । वहाँ भावके परस्परानुपवेशका नाम श्रीशुकदेवजीने 'भृत्य-भाव' रक्खा है, और वह है भी अत्यन्त मामिक । तदनुसार हम भी इस सत्याग्रहका अधिष्ठान 'भृत्य-भाव' ( न कि भक्ति-भाव ) निश्चित करते हैं ।

४-श्रीरामचन्द्रजीका सत्याग्रह—

श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण समुद्रके विरोधमें यह सत्याग्रह किया था और वहाँ इस सत्याग्रहके दो चारवें परस्पर विरोधावस्थामें बन गये थे, रामचन्द्रजीके सत्याग्रहके विरोधमें समुद्रने भी सत्याग्रह किया था, अतः उस सत्याग्रहका दक्षिण भाग भगवान् रामचन्द्रका था और धाम भाग समुद्रका । अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने उसे चौदहवाँ रत्न दिखलाकर अपना सत्याग्रह सफल किया । इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ स्पष्टिहित और समष्टिहितका अधिरोध है वहाँ साम-प्रभेसे काम न चलातेपर दण्डका उपयोग करना अनुचित नहीं है । यह प्रसन्न पूर्वपिपा अधिक बलिष्ठ है अतः इसके अधिष्ठानके निर्धारणमें हमें वहाँ विन्मत्तकी आचरणकता है, पाठक धन्य करें ।

रामायण या रामायणीय क्या-प्रकण्ड श्रीरामजी और राक्षसमें त्रिस प्रकार भेद निर्देश करते हैं उसका सार समीकरणके रूपमें हमप्रकार दिखलाया जा सकता है—

- स्वदेश + स्वातन्त्र्य + स्वराज = राक्षस्य ।
- स्वदेश + स्वातन्त्र्य + स्वराज + लोकहित = श्रीरामजी हसलिये निष्कार्य—

( १ ) राक्षस + लोकहित = श्रीरामजी ( यही सभी ग्रन्थोंके रामजी हैं )

( २ ) श्रीरामजी-लोकहित = राक्षस ( यही सब ग्रन्थोंका राक्षस है )

( ३ ) श्रीरामजी—राक्षस = लोकहित ( यही रामजीका साक्ष्य है )

समीकरण ( १ ) और ( २ ) से स्पष्ट है कि दो विभिन्न धुषोंके समान रामजी और राक्षसकी मनोरथना परस्पर विरोधिनी थीं । इससे यह निश्चित होता है कि यदि दोनों एक ही समय पृथ्वीपर रहें तो लोकहितका नाश हो जायगा—

$$\text{रामजी} + \text{राक्षस} = ( \text{राक्षस} + \text{लोकहित} ) + ( \text{रामजी} - \text{लोकहित} )$$

इस समीकरणके अनुसार लोक-हितका सर्वथा प्रभाव हो जाता है । अतएव समीकरण ३ में निश्चित किया गया कि राक्षसका नाश केवल लोकहितके लिये अतिवार्य था । इसप्रकार सिद्ध हो गया कि श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान केवल 'लोकसेवा' थी ।

यदि घोडा-ना विचार विधामित्रजी और श्रीरामजीके सत्याग्रहका भेद समझनेके लिये किया जाय तो अमासक्रिक न होगा । विधामित्रजीके माँगनेपर यदि राजा दशरथ श्रीराम और लक्ष्मणको न देते, जैसा कि समुद्रने रामचन्द्रजीके साथ किया, तो विधामित्रजी भी 'शरार्पि' नहीं तो 'शयार्पि' का प्रयोग अवश्य करते । इसप्रकार दोनों सत्याग्रहोंका रूप एक-सा हो जाता, परन्तु अधिष्ठानमें श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका महत्त्व विधामित्रजीके सत्याग्रहसे बहुत अति बड़ जाता है ।

इस सत्याग्रहको खेद एक महारका मक्ष और उशया जा सकता है, कि श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रके कठोरता (पदधानज-पर) हाथ डालनेको तैयार हो जाना अन्धकार क्यों नहीं बरखा सकता ! सामान्य बुद्धिसे तो इसे सत्याग्रहका रूप न देकर अन्धकार ही ब्रह्मा उपयुक्त समझा जायगा, परन्तु विशेष विचारकर देखनेसे इस समझकी धारणाका स्पष्ट हो जाती है—'प्रभृतिमें आचार कसे ही करते हैं जो लोक-समाहक हो' इसी विचारको समुद्र लक्ष्मण 'शेष्ठाद् इति सं च वचं दिभः' 'वे वषा सं प्रकथने संःसैर मन्व्यहर्द्' 'आवश्यादित्यःपात्रं हन्सदेवविचारहर्द्' इत्यादि आचार बतलाये गये हैं । इन आचारोंका उदाहरण अन्धकार हो जाता है । प्रकृतत्वमें रामचन्द्रजीने समुद्रके सामनीतिष्य बतौर किया, उसे भी उबके साथ देगा ही,

रना उचित था किन्तु उसने उल्टे उनकी उपेक्षा की, जैसे उसका कार्य आचारको अतिक्रमण किया हुआ अत्याचार ही सिद्ध होता है। ऐसी अवस्थामें यह शक्य ही नहीं रह जाती कि रामचन्द्रजीका कार्य आचारका था या अत्याचारका। शास्त्र भी स्पष्ट कहते हैं—

धृमा शत्रुषु मित्रेषु यतीनां सैव भूषणम् ।

धृमा शत्रुषु मित्रेषु राज्ञां सैव दूषणम् ॥

१-शत्रुत्वका सत्याग्रह,

इस सत्याग्रहका वर्णन केवल वाल्मीकिजीने किया है। हाफकि भवभूतिने उसे इसप्रकार कहा है—

रं हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य ।

जीवात्वे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ॥

तात्पर्य यह कि ब्राह्मण-पुत्रके जीवनके निमित्त, शूद्रकी मुनियोंका आचार करनेवाले अत्याचारीकी हत्या करना उचित है। इस प्रसङ्गमें रामचन्द्रजीका अभीष्ट केवल मर्यादाव्यवस्थाओंकी रक्षा करना था। अतः 'शत्रुत्वके सत्याग्रहका अधिष्ठान अधर्म था', ऐसा स्पष्ट हो जाता है। ॐ

सारांश तथा निष्कर्ष

उपर्युक्त सत्याग्रहोंके अधिष्ठान और इनका निष्कर्ष तत्प्रकार समझना चाहिये—

सत्याग्रही

- १-विधामित्र
- २-माता सीता
- ३-सखमण्डली
- ४-केवट
- ५-भारतनी
- ६-श्रीरामजी
- ७-शत्रुत्व

अधिष्ठान

- राजनीति ।
- सैष्य-सैवक-भाव ।
- सैष्य-सैवक-भाव ।
- अनन्य प्रेम ।
- शुच्यभाव ।
- सौकर्यमेवा ।
- अधर्म ।

इस विराटका निष्कर्ष इमप्रकार निकाला जा सकता है—

० शत्रुत्व के अन्तर्गत अतिरिक्त विवेक का कारण था, यही प्रमदा सत्याग्रह था, परन्तु था अर्थात् अतिरिक्त—पर्वतिका, इति  
 सत्याग्रहोंके अन्तर्गत अतिरिक्त विवेक का कारण था, यही प्रमदा सत्याग्रह था, परन्तु था अर्थात् अतिरिक्त—पर्वतिका, इति  
 १. 'अत्याचार का अन्त' (० ११२६) में स्पष्ट वर्णन है। अतएव ही अत्यधिक होने। यह अत्यधिक नहीं माना जा सकता  
 है। —सत्यमेव जयते

१-केवल राजनीतिमें ही नहीं प्रयुक्त अन्य परिस्थिति में भी सत्याग्रह किये जा सकते हैं।

२- सत्याग्रह वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों स्वरूप में सकता है।

३-सत्याग्रह न्याय तथा सदाचारमूलक होना चाहिये।

४-सत्याग्रह अत्याचार (Revenge) का विरोध नहीं किञ्चित् भी लक्ष्य न होना चाहिये।

५-सत्याग्रहका लक्ष्य अत्याचारीका सुधार होना नहीं।

६-प्रेमसे प्रेम और वैरसे विरोध, यही सत्याग्रहके सम्बन्धमें प्रधान निबन्ध हैं।

७-सत्याग्रहकी परमावधि 'धर्म का सारोप होना' है। इतना आग्रह तो सत्याग्रहीमें होना ही नहीं चाहिए।

(१) सत्याग्रहके पूर्व, अत्याचारीके अत्याचारोंके उपेक्षाकी अन्तिम मर्यादा कौन-सी है ?

(२) सत्याग्रह आरम्भ करनेके बाद, अत्याचारीके अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम सीमा कौन-सी है ?

(३) 'शठं प्रति शास्त्रम्', 'कण्ठकेनैव कथ्यते' इत्यादि श्लोकोंके अर्थ अन्वय तथा प्रचार करनेका अधिकार कहा जाता है या नहीं ? हे तो कब ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? सामग्र्य अतुरोध है कि विशेषतः सत्यन उपर्युक्त श्लोकोंके समाधानद्वारा श्लोकको उपलब्ध करें।

जाँचना हो तो रामको ही जाँचो।

जग ज्ञानिये कोऊन, ज्ञानिये जो गिय ज्ञानिये जाननी  
 जेहि ज्ञानिये ज्ञानिये जरी जार, जो जगरी जेव ज्ञानिये  
 गरी देसु विचारि विनीनदी, भद्र भानु दिने इतुनयो  
 दुखी मनु दारिद-दोष-दवानक, संहर-चैति कथानी

# श्रीमद्रामायणका महत्त्व

(केलक-श्रीशारकराम विनायकजी, कनकमवन, बयोप्या)

धन्य धन्य वह मूनि जहाँ जन्मे रघुवंश ।  
 वाङ्मयी मूर्ति मुघारि अतुरित उचि छाई ॥  
 दृकसी-मुन मुचि-मति तुलात प्रकट मुखरासी ।  
 विद्वत्स भगवान् सदा निजर्जत विद्वत्सी ॥  
 शिव मन मानस ईस मादही प्रानहुँ प्रियतम ।  
 याज्ञवल्कि मुनि जेव ध्येय भावस परमोत्तम ॥  
 धन्य सौ नृकसी-वट विपाक घनि प्राधम सुन्दर ।  
 'नन्दलोक' सौ धन्य धरि तियाये नमन सुखसर ॥

— स्वामी नन्दलोकजी



एवके ग्रन्थ मध्येक भाषाकी शोभा बढ़ाते हैं और मशक़ाष्य भी सभी समुच्चय भाषाओंमें मौजूद हैं, परन्तु धार्म्यात्मिक काव्य दुर्लभ वस्तु है, क्योंकि धार्य-कला और धार्यात्म-शास्त्रका रसाभाविक सम्मिश्रण ही प्रकृत धार्म्यात्मिक काव्यकी विश्वचषता है। जो काव्य यातवमें धार्म्यात्मिक ढंगके नहीं हैं, उनके चन्द्र काव्य और धार्यात्मवादका जो सम्मिश्रण होता है, वह निरा दिखारू और कुप्रिम होता है। रसाभाविक सम्मिश्रण नहीं होता है जहाँ धार्यात्म-सारणी विचारोंका भीतरी उमङ्गये प्रादुर्भाव होता है। जिसके अन्तन्त्रये तन्पकी खोज निकालनेके श्रिये कविचक्रका जोर जल्दी है।

मघड हृदय आनन्द उठावू । उमंगेड प्रेम प्रमोद प्रवावू ॥  
 जरी गुमग कविता सौरतापी । राम विमलजस जल मरिहामी ॥

किसी धार्म्यात्मिक सिद्धान्तके श्रिये काव्य अलङ्कारके रूपमें कविताके वैरकी कल्पना नहीं है। भीतरी मरिहामी ही उसे काव्यके रूपमें प्रस्तुति होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब धार्म्यात्मिक विचार उठती पावते पञ्चपर तब सीमातक पहुँच जाते हैं, जहाँ विरोधरसात्मक मुचिके द्वारा मध्येक धार्यके काव्य ईरनेका काम बन्द हो जाना है और जहाँ मध्य, हृदय धार्यात्मवेदनके उच्चम शिकारने सर्व शक्यके रूपमें स्वर्न प्रकटित हो जाता है। इस धार्य-रसके धार्म्यात्मिक काव्य विरह-साहित्यमें केवल दो ही—

धीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस । एक संस्कृत वाङ्मयका समुच्चयल रत्न है और दूसरा हिन्दी साहित्यका मुकुटमण्यि । एक स्वयं भगवान्का श्रीमुख-वचनमात्र है और दूसरा भगवान् शंकरके हृदयमें अवतरित श्रीराम-चरितामृत है। एक भगवत्स्वरूप वेदव्यासजीद्वारा सङ्कलित और सम्रादित होकर जगत्में प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महर्षि वाल्मीकिके साक्षात् धवतार श्रीमद्भोस्वामी तुलसीदासजी-द्वारा निर्मित होकर लोकमें प्रवशात हुआ। एककी जन्मस्थली धर्मधेनू कुरुक्षेत्रकी रथमूमि है और दूसरेकी धराप्राजिता अपोभ्यापुरीमें अवस्थित श्रीतुलसी-चौरा। एककी जन्म-विधि मार्गशीर्षकी मुक्तिदा एकादशी है और दूसरेकी धोराम-नवमी। दोनों साक्षात् भगवत्-स्वरूप हैं। दोनों धारतः भी एक ही हैं। क्योंकि वैदिक भक्ति मार्गके जिस गहन सिद्धान्त- (धर्मात् ज्ञान-कर्म तथा धर्म्यत-व्यक्तके समुच्चय एवं ईश्वरमय विरहकी समकते हुए, विरागपूर्ण कर्म करते हुए निर्लेपककी प्राप्ति) की व्याख्या गीताने की है, वही मानसमें भी श्रीरामचन्द्रजी, श्रीभरतजी एवं श्रीविदेहराज जनक आदिके चरित्रोंद्वारा प्रकट किया गया है। स्वतः और धर्म्यके एकीकरणकी 'नाम-माहात्म्य' में अलीभांति दिखलाया गया है और साधु-समाजद्वारा ज्ञान-कर्म-भक्तिका समुच्चय भी प्रकट किया गया है। महर्षि मणिप्रदादिके कर्मों-द्वारा ज्ञान-कर्मका एकरूप भी दर्शाया गया है तथा धर्यास्थान कर्म-समर्पणका भाव भी दिखाया गया है। इसके धरितिरिक मानसमें त्रिविध कष्टका धर्यन भी किया गया है जैसा कि गीताने किया है और जो त्रिविध मानव धर्यियाँ गीताने रचनी गयी हैं वे ही (त्रिविध मानव-धर्यियाँ) विपरी, साधक और सिद्ध श्रीरामचरितमानस में भी रचनी गयी हैं। इन त्रिविध धर्य धर्यियोंके धरितिरिक आनुर-धर्यीणा- धर्यन भी त्रिमधकार धरनिवद् और गीताने है उसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी है। त्रिम धरकार त्रिविध भावा और उसमें धर धर्याका धर्यन गीताने किया है जरी प्रकार मानसमें भी विद्या है। मनुष्य-रूपमें ईश्वर-धर्याका धरकार धर्यधरयने गीताने ही किया है। धरनि केरोंमें धी हमकी इच्छक धरपी धरपी है, धरानु मानसमें एक विरोधका यह इच्छक की गयी है कि पुत्र, गद्या,





नन्ददासके हृदय-नयनको शोभित सौरि ।

उज्ज्वल रस उपहाय दिगो जानव सब कोरि ॥

प्राचार्य श्री स्वामी हितकरिविद्यजीका धृष्य है—

प्राण भाव अनन्य एक ही गति परिपाली ।

हृदय देवपुनि करि टेक स्तरी पै ठनी ॥

गज तत्र घनदशम सदि सब पंख पुलावे ।

अनुपम साहस विरद प्रेमपन सिद्धि दिखावे ।

नि कोकिल पूरन हते वेता जे हरिकंसहित ।

श्रीराम स्वामि करिनीदि तेह तुलसीदास प्राणक यदिय ॥

गोस्वामीजीके प्रेमी श्रीब्रह्मपुरंदरोंम लानलाना ( रहींम वि ) करते हैं—

रामचरितमानस विमल सन्तन जीवन प्राण ।

हिन्दुजानको बेद सम जननेदि प्रण्ट कुलान ॥

महाभक्ति महाभा सूरदासजी बिलसे हैं—

पवन मान मन सन्त-सिरिमानि जवनकमल तकि आनवे ।

बदन प्रसाद सदन हल-भरी हकि गुल-सन्तोह समानवे ॥

दयारोहो मन दिशि हेरत ताव-स्वरूप हत्यावे ।

कर्म बपासन हान जनित भ्रम सोराव मूक मरणवे ॥

हरिटीय गावो तेहि गुनि तनु पुनकित मानसपीर ।

गुणसमान बचन करि कोउ गुमित सिब-रगुपीर ॥

श्रीगुहाजी गुणि हो-समान अद्भुत अमल अनुप ॥

सूरदास जीवन-मल कपो दारान गुणक स्वरूप ॥

बालक्यभाष-भूषित श्रीकृष्णस्व स्वामी करते हैं—

जगजुग सिद्धु निरुप तहाँ विवि पावष एक बनि ।

वेग उषगयो पैव हटौ करि अदि सोरावि ॥

हापर रिण्य कान्त हरि रोगदि क्यर सल ॥

श्राम अदि सुविबुग तहाँ तेदि कल उवात ॥

बदि कप हूँ काचउ कटुप रिण्य हटदि निरिदिष भाउ ॥

श्रीगुणदासजी निमज षडि ज्ञान भा उर हाउ ॥

बाम हरिक लणकावजी ( जिनको क्वाजी ब्रह्मकावजी

संज्ञितेवाहोये क्युवागदरा हीर बर्गक श्रीरामचरितमानसकी

कथा सुवाती थी ) करने हैं—

सुर तव हवान करि पर है पडित कियो

कामधेनु पाता सम नेह उपजावनी ।

कियो चिन्तामनिनी माल उर सोभित

विसल कंठमें चोरे है ज्योति हलकारनी ॥

प्रमुची कहानी ते गोसाईंकी मयुर बानी

मुक-सुखदानी 'रसखानि' मनमानवी ।

खोंदकी खिजारनी-सी बंदकी कुदासनी-सी

सिताको सतावनी-सी गुषा सजुषावनी ॥

अब गोस्वामीजीके पीछेके महानुभावोंकी सम्मतिपर

पीछे बंधिये । स्वामी श्रीमद्युग्दहन सरस्वती और मधुमालाकर

गोररामों मामाजीकी बंधियाँ जति प्रसिद हैं, इसलिये

उनका उल्लेख यहाँ किया गया ।

धर्मोप्याजी बड़े स्थानके प्राचार्य श्री स्वामी रामप्रसादजी

श्रीनवगुण करते हैं—

प्राण-वृत्ति तो सारिदक रूप

मनो नम निरंत करिचहोको ।

प्राण-पुञ्ज सिराहि विरोधक

दीनदयालु निर-रस पीको ॥

पूजने अंग प्रसंग मो कल हो

प्यान चो रगुनन्दन-सीको ।

ज्यु मो रूप चो हरि कथ

प्रनउ सरूप गोसाईंकीको ॥

बंदकी रिषत सिधे पूरन गुणन मज

मानव प्रमान रागु-अंग सब टाँके ।

प्रेम रस पीने बर परम मईने कदि

ईने ई अमेर कदि मेर बहूँवाँके ॥

रवा दरसारे सरसारे प्रेम पुदे अल

दिको दूखगारे अँन कदनेके कदि ।

रत्नकीको जिन अंग कपुगो बराने बीन

वृत्ति बहूँ बँटि चो मुग्गी मँगनेके ॥

बाटीकीके गुणसिद्ध प्रकाश चिह्न, श्रीरंजनी

( कल-विद ) स्वामीकी बंधिये हैं—

कल-विद, मजद, बदि की कल-विद

करी बहूँ मेर वै कपुगने अ अँके ।

कँदरक कालो-करी दुके निन दूके कदा

निद कपुगुको निद कालो है ॥

दास आता पूरे करे संतान सब दूर करे  
 प्रभु पर पूरे करे मुजन सोदाई हे ।  
 गारि पट दग नमु उदधि अगाध मधि  
 गुणसंनिवागे मूळ तुम्ही गोसाई हे ॥

आरतन-सान पर तुम्हीके चरन हे ।  
 राम-भक्ति दायक औ ज्ञान-मान-हरन हे ॥  
 भाषामे रामचरित कियो लज्जित वरन हे ।  
 अगम अर्थ तुमकियो पट्ट वरन-वरन हे ॥  
 बाल्मीकि व्यास बाण्य यदपि पत्रिन परन हे ।  
 इतनो रस तहाँ कहाँ खुबन परन-परन हे ॥  
 देव श्रुति कि आदिकवि कि वेदरूप परन हे ।  
 जाके बरा सीध-राम-लखन तरन-तरन हे ॥

धर्माचार्योंकी सम्मतिप्राप्त ऊपर संक्षेपतः दे दी गयीं। अब  
 कुछ हिन्दीके पुराने कवियोंकी उक्तियाँ सुनिये। मुकवि  
 'प्रधान' जी कहते हैं—

जेती कृपा करी महावीरजु गोसाईंजु पै  
 तेवी न दुखारे रामजुहू सग भाईको।  
 सबै निज तत्त्व राम-ज्ञानकीको तत्त्व सार  
 एकै बार सौपि दीन्ही सबै सो कमाईको।  
 केते कवि भये केते अहँ केते होनिबाले  
 कोई न 'प्रधान' पेसी पाई प्रमुताईको।  
 वेद औ पुरानको मान राखँ तौलौ लोम  
 जौलौ न प्रमान भाखँ तुलसी चौपाईको ॥

तुलसी गोसाईंजीकी कौरति न गारि जात  
 नवो खण्ड जन्मद्वीप तन्मूसीतनाई हे ।  
 भाषत 'प्रधान' सत पूरुष औ मूरुसको  
 सबै सुखदाई जाकी ऐसी कविताई हे ।  
 मधुर बिकासी काल फौसी तमरासी हैरै  
 कामना प्रद-सी भासी साधु तन पाई हे ।  
 ऊस-सी, मधुष-सी पीधुष-सी पूषन-सी  
 देवनडी कखन-सी भूषन-सी भाई हे ॥

सोक मछिता हे इदलोक दक्षिता हे  
 परलोक रक्षिता हे सिद्धिता हे सब ठाईकी ।

प्रीतिकी चिता हे अनप्रीतिकी चिता हे  
 परप्रीति संचिता हे अचिन्ता हे कल धरती  
 मग्न 'प्रधान' दिग्-दीन दरिता हे  
 रगण्य भरिता हे सतिता हे दग्गु सर्पती  
 मुक्ति गतिता हे रामभक्ति मरिता हे  
 विषहेतु सचिता हे कविता हे वागेलरंटी  
 कविवर 'किंकर-मोविन्द' जूकी ठकि वैलिनै—  
 सारि जल सञ्चिन्त असञ्चित विसरि जल  
 करि जल भोग मन-कानन करी जल  
 तरि जल काम सारि बरि जल कोप करि  
 कर्म करिकाल तीनि कष्टक मनीर जल  
 मरि जल माग्य माल 'किंकर-मोविन्द' त्योंही  
 ज्योंही तुलसीकी कविताई पै नखीर जल  
 जरि जल दग्गु, दोष-दूषण दरि जल  
 दुरि जात दारिद दुकालहुँ विसरि जल ॥

मक्तिकी प्रसूतिका हे मुक्तिदूकी दूतिका हे  
 मक्की विमूतिका हे सुख उल्लेखिका हे ॥  
 सचा रग्गामेनका हे हिमवन्त-कन्का हे  
 कामभेनुका हे कैषो मानु रेणुका हे ॥  
 अमी-भूरिका हे मोह-तम-भूरिका हे  
 हरिपद-भूरिका हे कैषो काम पूरिका हे ॥  
 सुर-सरिता हे कै विसुद्ध चरिता हे कैषो  
 'किंकर-मोविन्द' तुलसीकी कविता हे ॥

हसी तरह कविवर 'तोष' भव्य भावनासे  
 होकर लिखते हैं—

यह शानि चतुष्फलकी सुखदानि  
 अनुपम आनि हिये तुलसी।  
 पुनि सन्तनके मन-मंगनकी  
 अति मंजुल माल लती तुलसी।  
 अरु मानुषके तरिये कहँ 'तोष'  
 मई भवसागरके पुलसी ।

सब कामन-दायक काम-दुहा  
 सम रामकथा बरनी तुलसी ॥

देखिये, कविवर 'महाराज'के कथनमें कि  
 बाक्यविकला है—



प्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामगुप्तम द्विवेदीजी जिन  
गये हैं—

जय जय श्रीगुणगीष्ठी बानी ।

रिसद विचित्र चित्र पद भंडिता मुक्ति मुक्ति बरदानी ॥

लीन्हो वेद-पुराण-शाग-मन मुनिजन टण्डित कहानी ।

ज्ञान, विराग, ब्रह्म-गुण-जननी करम गरम मय सानी ॥

उरित भई जा दिनों जगमें तबो पुषन बखानी ।

असिद्ध अपनिबंधक परि पूरित को भरा जों नदि जानी ।

प्रगटी राम-चरन-रही जई तई मूरि निमुसता मानी ।

राम-गुलाम मुनत गावत द्विय भावन सारंगपानी ॥

राम-भीक रमाको प्रगट पय पारावार

सदगुन आगारको नगनापिरात्र है ।

महामुनि हंसनिधी मानस महेश मन

बोध विधु विप्रप्रत मोह सग बाज है ॥

वेद अबतार औ सिंगार भारतीयो मन्व

भाग्यको भंडार जग-जलधि जहाज है ।

बदत गुलाम राम धर्मको षबल घाम

रामायन नाम सब ग्रन्थ सिरतात्र है ॥

साहित्याचार्य पं० श्रीभ्रम्विकादत्त व्यासजीने क्या ही  
अच्छा कहा है—

अंग्रेजी, फारसी, फरसी, जर्मनीहमें

राम-लक्ष्मणकी कहानी दरसात है ।

सब पाठसालनमें सालनके बालनमें

पोपीके अटालनमें रामही दिखात है ॥

राज-दरबारन दुकान अलमारनमें

भागकी बहारनमें हेत सोई बात है ।

मूख 'अपाठहूते रामको लिवायो नाम

तुलसी गुसाई यह तेरी करामत है ॥

रहु रे कलकी कलि कपटी कुचाली मूढ़

माण-माण नातो गदि पटक पठारोगे ।

तुलसी गोसाईजूके काव्यके कित्य सोंकादि

दोहरा दुनाही-सी बन्दुकनसों मारोगे ॥

कवि अम्बरादत्त मंगडाके सैठ हाठ करी

छंदनके छराने शब गदि गलेगे ।

बाठ चउपादनके भोग-भोगे बाहु दे

आज तेई दूठ-दूठ कटि-कटि बनेगे ॥

दूवि गवे पानीमें मरन्द अरनिन्द सग

पूछिगे अनाद दाम देह सिमुर्ग है ।

सूम गवे ऊन मरि गवे नवनत नीव

पीनी हू हठीली गवे-गवे कल कर्ष है ॥

तुन ग्यो निसरो बजासे मने हलके

अम्बरादत्त कवि मुरदाई लो कर्ष है ॥

लसिके गुसाईजूके कानकी मबुरदई

मुसाहू न्यरई मुरतोको तिवर है ॥

के डै रसरसिनकी सत रिन्हें घेरि-वेरि

जुगुति मयनिवों सो मयि-मयि हति ।

कादिके मपुताकी माखनकी गोदी तलो

मन्कूतता मिसरो है सुमन सैरि ॥

कहै कवि अम्बरादत्त गुन अलंकारके

मेवा डारि ताको पुनि अथि क सुचरि

तुलसी गुसाईजूके मानस रामानके

पक-पक आसुरपै सोऊ बरि हरी

मोह-ममताकी मद-मत्सरकी मन्दताकी

मूढ़ताकी मीचहूकी मारनी-सी दांते

पूतना पिसापी प्रेत पंगतकी पावनकी

मूत यचउ राच्छसकी जुहुन जहर-सी ।

कवि अम्बरादत्त कहै तुलसी गुसाईजूकी

कविता अपूरब अमीकी बार बली ।

परम उचचतनो पसंडिनके मंडलको

मुक्ति जुवतीको अहै मन्त्र बसोकर-सी ॥

डगर-डगर अह नगर-नगरमौहि

कहनि पतारी रामचरित अवधि ।

कहै कवि अम्बरादत्त रामहीकी लीजन सो

मरि दीनी भीर सने चहकि-पहकि ॥

सूत्रनते ब्राह्मण लो मूरखते पण्डित लो

रसना डुलाई सने जे-जे बलि-बलि ही ।

जमको भगाय पाप-पुणको मसाय आज

तुलसी गोसाई नाम कष्ट लीनी कलि ॥

धर्मोपासीके मसिद् सिय सन्त बाबा बनावदासजी लिखते हैं—

बन्दो पद तुलसी गोसाईं महाराजजीको  
कहिराज उदधि जहाज अवतार हैं ।  
जीवनपै दाया रघुनाथ निर्माण किने  
जकी मति चन्दे मवशापरते पार है ॥  
रक्ति लीनो सकल पुरान श्रुति शास्त्रवीज  
ना तो बुद्धि जात मरजाद मोक्षपार है ।  
ऐसी रीति रहस महान तीन काल गाहीं  
बनादास नदत प्रचारि बार-बार है ॥

मराठी भाषाके प्रख्यात कवि, 'केकावालि' के कर्ता श्रीमोरोपन्त 'मयूर कवि' ने एक 'धीतुलसीदासस्तव' लिखा है, उसकी नीचे उद्धृत की गयी कुछ धार्याओंसे ज्ञात होगा कि मयूरजीके अन्तःकरणमें गोस्वामीजीके विषयमें कितना आदर था—

धीराम पदान्त्र-अति तुलसीदास हा सदा गथा ॥ १ ॥  
श्रीवाल्मीकि च हाहा श्रीतुलसीदास, रामवत गाया ;  
तरिच प्रेम रसाच क्षाणी वाणी तशीच वशना या ॥ २ ॥  
बांचें सुप्रम-म्वन कवन निवविते सदा बुधा सरसे ।  
हें जों जों सेवते, तो तो सेव्यचि गमें, सुधा सरसे ॥ ६ ॥

अर्थात् तुलसीदासजी मानो धीरामचन्द्रजीके चरय-कमलका रस चूसनेवाले भ्रमर हैं । हमें उनकी निरन्तर स्तुति करनी चाहिये । राम-वश-गान करनेमें धीतुलसीदासजी मानो मूर्तिप्राप्त श्रीवाल्मीकि ही हो गये हैं । इसीलिये उनकी वाणी, जो प्रेमरसकी खानि थी, महाकवि वाल्मीकिकी वाणीके ही सखा उनके वशमें थी । उनका काव्य मानो उत्तम प्रेम-मन्दिर है, जो ज्ञानियों और पण्डितोंको निरन्तर अपनी सरसतासे शोभा और सुन्दरतासे तृप्त करता है । अर्थात् अर्ध-अर्धों इस मन्दिरका भोग किया जाय—उर्ध्वों इतके प्रेम-भक्ति-पूर्व काव्य-रसका भोग किया जाय—अर्धों-अर्धों यह अमृतकी तरह सेव्य श्राव होता है अर्थात् दीप्य-पानका-सा आनन्द मिलता है ।

इसी कारण श्रीनाभाजीके शब्दोंमें कहना पड़ता है—  
'कवि बुद्धि जीव निस्तार हिल बाव्यकि प्रसन्नी भयो ।'  
'गोवाके बाद यदि किसी ग्रन्थने देणोदारका समुचित मार्ग दिखजाया है तो इस गोस्वामीजीको रामायणही ने ।

इसमें भगवद्भक्ति और सांसारिक सदाचारकी हतनी उक्तम शिखा दी गयी है कि वह और किसी ग्रन्थमें नहीं पायी जाती।'

अन्तमें विदेशी विद्वान् डाक्टर प्रियसंनकी सम्मति सुन लीजिये—

'भारतवर्षके इतिहासमें तुलसीदासजीका गुरुत्व अमूल्य है । उनके ग्रन्थके पाण्डित्यको अलग रहने दीजिये, उनकी सर्वसाधारण ग्राहकतापर ही एषि कीजिये, जिसका पंजाबसे भागलपुर और हिमालयसे नर्मदा पर्यन्त चारों वर्णवाले आदर करते हैं, सो वास्तविक ध्यान देने योग्य है । सारे हिन्दू-समाजमें राजा, रईम, उच्च, नीच, बाल, पुत्र, पृथ सबके मुँहसे यह रामायण सुनायी देती है और सबमें समभावसे पढ़ी, सुनी और आदरणीय समझी जाती है । तीन सौ वर्षसे अधिक हुए यह रामायण धार्य भारतवासियोंके जीवन, व्यवहार और बोलचालमें सर्वथा मिलजुल गयी है । ऐसा न सोचना चाहिये कि लोग इसे केवल काव्य-रसके प्रेमसे ध्ययना आश्रयताके कारण ही देखते प्रथया पढ़ते हैं । इसे तो धर्मशास्त्रके सखा पवित्र और प्रामाणिक मानते हैं । जैसे यूरपके पादरी 'बाइबिल' को आदरणीय समझते हैं वैसे ही धार्य लोग इसकी मर्यादा मानते हैं । यह करोड़ों मनुष्योंका शास्त्र हो रहा है । पण्डित चाहे वेद और उपनिषदोंका अभ्यास करें और थोड़े बहुत अन्य जबकि पुराणोंपर अपना विश्वास जमावें, परन्तु मध्यदेशके पठित तथा अपठित दोनों श्रेणियोंके मनुष्योंका असंख्य समुदाय इसी तुलसीकृत रामायणको अपना मुख्य जीवनसंख्य समझता है । गिस्तन्देह मध्यदेशके लिये इसे सौभाग्यका बड़ा कारण समझना चाहिये कि जिसने शैव-सम्प्रदायके तान्त्रिक व्यवहारसे इस देशका रक्षण किया । इस देशके मूल रचक स्वामी रामानन्दजी हुए । जिस पठित व्यवहारसे ब्रह्म देश अष्ट गिना गया उससे उन्होंने इस देशको बचा लिया । किन्तु तुलसीदासजी ऐसै उस धर्मके रचक हुए कि पूर्वसे पश्चिम (और उत्तरसे दक्षिण) तक स्वामी रामानन्दजीके उस सद्बर्णको कैलाकर उत्तपर लोगोंका पूर्णरूपसे विश्वास करा दिया ।

'वाल्मीकिजीने भरतजीकी धर्मपरायणता, लक्ष्मणजीका भ्रातृ-स्नेह और सीताजीके पातिव्रत धर्मकी प्रशंसा की है, परन्तु गुसाईं तुलसीदासजीने उन्हें उदाहरण बनाकर दिखलाया है । कालिदासजीने अपनी मनोहारिणी कविताके केवल आधारके लिये धीरामचन्द्रजीको निरूपण किया है



मर्यादा ही थी। श्रीरामदास स्वामीने अपने एक प्रकरणोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

श्रीरामदासजीने स्वरचित कविताओंमें यह दितलयाया कि जिसप्रकार रावणका देवर्षि द्यायाचार पूर्ण था उसी प्रकार 'शौरंगवा पापी' का है, और जैसे श्रीरामजीने बुद्धानरोंकी संघराकिये सहायता प्राप्तकर उसका समूह तंहाकर धर्मरक्षा की थी, वैसे ही पुत्रपतिने भी अपने अनुषांगोंको परास्तकर धर्मकी रक्षा की और समस्त तीर्थक्षेत्रोंको निर्भय कर दिया। इस बातका वर्णन उन्होंने अपने इस पत्रमें बड़ी ही उत्तमतासे किया है जो पुत्रपतिशिवजीके पश्चात् पुत्रपति राममाजीके नाम भेजा गया था। उनका 'धानन्द-वन-सुवन' नामक काव्य 'देश-प्रेम'के वर्णनमें सुप्रसिद्ध 'वन्दे मातरम्' से कितनी प्रकार भी कम नहीं है, प्रस्तुत देशकी स्थिति बतलानेमें उससे कहीं बढ़कर है।

राजनीतिक उद्यानमें रामायणसे जो शिक्षा प्राप्त हो सकती है, महात्मा गाँधीजीके कथनानुसार यह यही है कि किसी भी हाजतमें सत्यको हृदयसे नहीं हटाना चाहिये। श्रीरामचन्द्र इस सिद्धांतके सर्वाधिक धारुण हैं। पिताके वचनका पाठन करनेके लिये उन्होंने प्रलज्जतासे रावणका त्यागकर वनके कष्ट सहना पसन्द किया। उनकी सत्य-प्रियताके प्रभावसे ही उन्हें लंगड़ी वात-जातिकी बभ्रु-पूर्ण सहायता प्राप्त हुई। सङ्कटमें धर्मशासन उनका धारुण गुण था। उन्होंने एक-पत्नी-व्रत प्रदूष किया था और सीता देवीकी अनुपरिचितिमें भी उस व्रतको बड़ी ही उत्तमतासे

निभाया तथा किसी भी परिस्थितिमें उसका त्याग नहीं किया। संघराकिको बचाया, वानरोंके जो भेद थे धर्मार्थ सम्बूध, सुमीव और बाकि धादिमें जो परस्पर मगाड़े थे, उन्हें बर्षी ही बुद्धिमानीसे निपटाकर उन सबको एक धुत्रमें बाँध दिया और फलतः उनकी सहायतासे महात् बल-सम्पन्न दुर्धर रावणका विनाश कर दिया। सहकारसे कितना बड़ा काम हो सकता है यह बात समुद्रपर सेतुकी रचनाकर ध्याने बनताको प्रत्यक्ष दिखला दी। चरित्रका प्रभाव कैसा पक्ता है यह तो श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे बखीभाँति दृष्टिगोचर होता ही है। प्रजाके सन्तोषके लिये श्रीरामचन्द्रजीने सीतादेवीरूप सर्वलका परित्याग कर दिया। सारांश, कि लोकप्रगपयमें जो गुण होने चाहिये, श्रीरामचन्द्रजीने अपने वर्तवसे उन सबको मूर्तिमान करके दिखला दिया।

रामायणमें वर्णित चरित्रोंका मनन करनेसे सत्य, संघराकिक, चरित्रबल, भावना-आपृति, ध्येय पाठन धादि गुणोंका देशके राजनीतिक उद्यानमें कितना महत्त्व है और इनको कौन-सा ध्यान प्राप्त है—यह बात भलीभाँति जानी जा सकती है। जिसप्रकार १९ वीं या १७वीं शताब्दीमें उपर्युक्त धारोंको ध्यानमें रखकर साहित्यकी रचना की गयी थी, आज भी देशोद्धारके लिये वैसे ही साहित्यके निर्मात्र करनेकी अप्पावश्यकता है। साथ ही उपर्युक्त दृष्टिसे रामायणके अध्ययन करनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है, इससे भी खूब लाभ हो सकता है।

### रामायणसे उच्च भाषाका प्रादुर्भाव

जगत्में अनेक काव्य-ग्रन्थ हैं परन्तु आचार और काव्यको कोई भी कवि इसप्रकारकी वृद्धता, मनोहरता और रसिकतासे नहीं बाँध सका। ऐसे प्रभावशाली ढंगसे धर्मका सजीव उपदेश देना एक रामायणका ही काम है। यही एक काव्य है जो हमारे हृदयोंमें सत्यके प्रेमको ऐसी उत्तमतासे उत्पन्न कर देता है, कि हम रामायणको पढ़कर कुछ-से-कुछ धन जाते हैं। हममें ऊँचे ऊँचे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, और वे सत्य गुण जो मनुष्यकी उत्कृष्टताके आभूषण हैं, हमारे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। सत्याचरण, पितृमतिक, पातिव्रत-धर्म, पति-धर्म, पिता-भ्राताका स्नेह, विनय, धैर्य, दयालुता आदि मानवगुणोंका ऐसा कौन सा चित्र है जिसके यथार्थ स्वरूपको कविने इस ग्रन्थमें अपनी जादू-भरी लेखनीसे चित्रित नहीं किया हो। रामायणके देखनेसे प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति भारतके प्राचीनतम एवं आन्तरिक भावोंसे हुई है। अतः इनसे अधःपतित अवस्थामें पड़े हुए सभी लोगोंको पुनर्जीवन प्राप्त होता है।

—म्रीकिय (रामायणके अनुवादक)



# मानसमें ज्ञान और भक्ति

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मीधरजी पाठक)



कि और ज्ञानमें कौन श्रेष्ठ है यह बताना सरल नहीं है। मायामें जिस, परमार्थ-चिन्तनसे विमुक्त, हम अल्पज मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है ? कृत-माया-दासी, संसार-त्यागी, परम सेषाधी श्रद्धि-मुनि-धाचार्यगण भी इस विषयके सिद्धान्तोंमें एकमत नहीं हैं। कोई कहते हैं ज्ञान श्रेष्ठ है तो कोई कहते हैं भक्ति श्रेष्ठ है। शास्त्र, पुराण एवं यज्ञ-यज्ञे ग्रन्थोंमें इस विषयके प्रचुर विवेचन मिलते हैं पर उनसे एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचना कठिन है। हाँ, इतना तो अवश्य ही सभीको स्वीकार करना पड़ेगा कि भक्ति और ज्ञान दोनों ही पर्यायसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है—श्रेय-स्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

यद्यपि उपर्युक्त 'भक्ति और ज्ञान'का विवेचन कठिन है तथापि इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीके मतको लेखकने जैसा समझा है, उसे कुछ युक्तियों सहित उपस्थित करनेका प्रयास किया जाता है। आशा है सहृदय पाठकगण श्रद्धा समा करेंगे।

भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने प्रधान ग्रन्थ धीराम-श्रित-मानसमें इसका एक द्रव्यन्त सुन्दर विवेचन किया है। इस विवेचनमें उन्होंने रूपक और उपमाके द्वाध्यसे इन दोनों—'भक्ति और ज्ञान'—में अन्तर दिखलाया है। यह प्रकरण उक्त ग्रन्थके उत्तरकायदमें 'ज्ञान-दीपक'के नामसे प्रसिद्ध है। पूरा प्रकरण पाठकोंको उक्त स्थलपर देवना चाहिये। यहाँपर उसके कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं—

व्यानीहि भगतिहि नहि कहु मेदा। उमय हरहि भव संभव लेदा ॥

व्यान विराम भोग विग्याना। ये सब पुरुन सुनहु हरिजाना ॥

× × ×

पुरुन रवागि सक मारि कहैं जे बिरल भक्ति धीर ।

व तु कानी जे विरव बस विमुक्त जे चर रघुवीर ॥

सो मुनि ग्यान-निधान, मृगनयनी विनु मुन निरलि ।

बिबुल होई हरिजान, मारि विष्णु माया प्रण्ट ॥

× × ×

कहु जे मरि मरिजे जया । पत्ररि यह नति बनुया ॥

कहा मरि हुनहु जनु दोउ । मरि नै बने सब कोउ ॥

पुनि रघुवीरहि मरति पियारी । माया कहु नैभी विरती ।  
भगतिहि साजुकुल रघुराया । तजे तेहि हरषी श्रीर ।

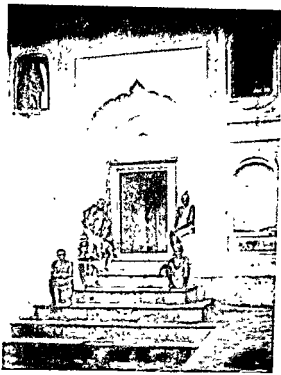
ज्ञान और भक्तिमें (इनके फलमें) अन्तर नहीं है, दोनों ही संसारसे मुक्त करते हैं; किन्तु इनके स्वरूप अन्तर है। ज्ञान-विराग आदि पुरुष है, तथा भक्ति भक्ति की है। पुरुष प्रबल होते और की प्रबल-बल होती है, इतना होनेपर भी शिष्योंमें एक ऐसी शक्ति होती है, जो यज्ञ-यज्ञे धरती एवं ज्ञानी पुरुषोंकी भी विजय करती है। परन्तु शिष्योंपर उनका कोई बल नहीं पड़ता, विराग आदि रूपी पुरुष-जातिको तो मायाकी शक्ति है किन्तु (स्त्री होनेके कारण) भक्तिको अपने बल नहीं। भक्ति भगवान्की प्यारी है, पर माया तो नर्तकीमात्र है, यह तो भगवान्की इच्छातुल्य बलवान् है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि भक्ति रूपी शब्दा अमुकूल रहते हैं, इसलिये भी माया भक्तिको अपने

तदनन्तर ज्ञानको 'दीप' की उपमा दी गयी है। उपमा है भी यथार्थ। क्योंकि दीपकी उजालीयें सब वस्तुओंको देखनेमें ही हैं; यथापि जैने अज्ञान विहीन यथास्थानस्थित सब पदार्थोंको इस दीपके प्रकाश ही देख सकते हैं, उसी प्रकार मायाके अज्ञानमें ही पदार्थों (सत्, स्व आदि)को इस ज्ञानके द्वारा ही जान कर सकते हैं, उनका बोध कर सकते हैं। किन्तु जैसे ही प्रस्तुत करनेमें घृत, कार्पास, अग्नि इत्यादि अनेक सामग्री आवश्यकता है उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें भी अनेक सामग्रीके गुणोंकी और अन्य अनेक सामग्रीके आवश्यकता है, जिनको यहाँ रूपकके द्वारा निरूपण है। तदनन्तर जैसे दीपके प्रस्तुत होनेपर भी अनेक सामग्री हैं, उसी प्रकार (शास्त्रीय) ज्ञान प्राप्त होनेपर भी अनेक सामग्रीके अभावमें ज्ञानमें अन्तर दिखलाकर अन्तमें अपने विद्वान्गणोंको इसप्रकार कहते हैं—

ग्यानके पन्थ हुपाणक चारा। परत जगत न हरि न को निर्दिष्ट पन्थ निरबहरई । सो कैप्य परत परत ज्ञानके सम्बन्धमें देया विनकार फिर कहिये कि

भक्त कहते हैं—  
कहेत ग्यान सिद्धन्त बुहारी । हुनहु मरति मरि नै हुन

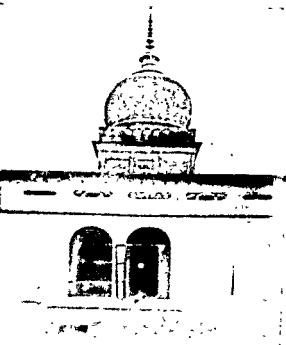




लक्ष्मणजीका मन्दिर— लक्ष्मण घाट (वाहरसे)



लक्ष्मणजीके मन्दिरकी भांकी (भीतरसे)



लक्ष्मण छिन्ना भागवेका दृश्य



लक्ष्मण छिन्ना (गिड्डा दृश्य)

भक्तिकी उपमा 'भक्ति' से ही गयी है। भक्तिको प्रकाश करनेके लिये दीपकी भाँति एतद् ह्यादि उपकार्योंकी आवश्यकता नहीं होती और न इसमें दीपकी भाँति प्रापणियोंका ही कोई भय है।

परन्तु यह भक्ति प्राप्त कैसे होगी ? क्या सुलभ उपाय—  
—भक्ति होनेपर भी इसकी प्राप्ति दीपकी छपेया सुलभ है—

सुगम उपाय प्राप्त करे। नर इतमाग्य देत मट भेरे ॥  
'देत मट भेरे' अर्थात् धर्म ही सर फोड़ते हैं। क्या गण्य है ? सुनिये—

वन पर्यंत वेद पुराणा। राम-कथा शक्तिरकर नावा ॥  
मीं सखन सुमति कुदारी। ग्यान विरसननयन उरगरी ॥  
प्रसहित खेदि जो प्राणी। पान मगति मणि सब सुखखानी ॥

ज्ञानरूपी नेत्रोंकी आवश्यकता है, अर्थात् ज्ञानकी वश्यकता तो है परन्तु नेत्ररूपसे-दीपरूपसे नहीं। घस, अंधे, दीपके उपर्युक्त सब साधनों-भङ्गमेंसे छूट जाते हैं। न करनेका यह भाव नहीं है कि भक्तिमें हीवी पत्तिकाे गुणों और अन्त्यान्य साधिकाे साधनोंको ज्ञान अनाशरयक समझकर उनकी धवदेखना की जाय। इस प्रसंगसे यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञानकी योगिता भक्तिके लिये ही है, अन्त्याकेवल ज्ञान-ज्ञानसे उर्कनप्यता नहीं हो जाती। इसको यों भी समझ जाते हैं कि बराममें जाकर फल-फूलोंके धुणोंकी धेणी, ति, भावगतभेद, संख्या ह्यादिका केवल पूर्ण ज्ञान ना और दुरती और इन सचोंपर बिना प्यान दिये ही न फल-फूलोंका गन्धास्वादन भोग करना। इनमें चकेजा। दुरता प्रकार ही अर्भाई हो सकता है, और पहले प्रकार- उपयोगितामें ह्यवे प्रकारका होना भी अपेक्षित है। स्वामीजी इसीको स्पष्ट करते हैं—

अस मगति जानि परिहरही। केवल ग्यान हेनु धम करही ॥  
ते अङ्क कामधेनु गृह त्यागो। खोक्त आक निरहि पय ठानी ॥  
मुनु खेगल हरिमगति बिहाई। अ सुख पाहहि आन उपाई ॥  
ते सब महासिद्धि विनु हरनी। पैरे पार चहत अङ्क कानी ॥

क्या ही सुन्दर सिद्धान्त-वाक्य हैं ! केवल मोरगामीजी ने नहीं, अग्नि वेदके स्वाक्याता, अष्टादश-पुराण-अथेता, उर-विभूति, स्वर्ष महर्षि स्वासजीने भी यही कहा है—

अक-मति मडिमुदस्य ते निभे  
द्विर-मति ये केरतवेर-अथेते।

तेषामसौ हेराठ पव शिष्यते  
नान्मदया स्थूलतुषावधातिनाम् ॥  
(भागवत १०।१४।४)

यहाँपर 'केवलबोधलक्षणे' बहुत ही महारके शब्द हैं—अर्थात् केवल ज्ञान लाभ करनेके लिये ही जो कष्ट उठाते हैं अथवा यों कह सकते हैं कि जो केवल ज्ञान-लाभ कर लेनेमें ही अपनी इतिकर्तव्यता समझते हैं उनके पक्षे भूमी कूटेवालोंकी भाँति केवल छेरा ही रोप रह जाता है।

सर्वादा-पुष्टोत्तम भगवान् धीरामध्वजी भी इसी सिद्धान्त-वाक्यपर अपने स्वीकृतिकी सुहर लगा देते हैं—  
ग्यान अगम प्रयूह अनेका। साधन कठिन न मननहै टका ॥  
करत कष्ट बहु पावड कोऊ। मगति-हीन प्रियभाहि न सोऊ ॥

मगति स्वतन्त्र सकळ सुखखानी।

सारांश यह कि 'ज्ञान-प्राप्ति' करनेका फल 'भक्ति' है—'ज्ञान' यदि साधन है तो 'भक्ति' फल है।

ऊपर कहा है—

जे निर्विघ्न पण्य निरबहर्ह। सो कंबल्य परम-पद उहर्ह ॥

यहाँ विप्र कौन-से हैं ?

सुनिये ?

यह सब मायाका परिवार। महा सुप्रद को नरम पाता ॥  
सित चतुरानन देखि उराहें। अरर जीव कहि लेखे माहो ॥  
'अपर जीव'में(शास्त्र)ज्ञानी भी आ जाते हैं। इसीलिये कहा है—

दुहुं-कहै काम शोष रिपु आही।

और इनसे बचनेका उपाय भक्तिद्वारा 'मगनपुत्रयागति' ही है।

ज्ञानकी अवस्थानक शयुधोंका परम भय है, भक्तिकी अवस्थामें कोई भय नहीं, क्योंकि ज्ञानियोंको तो अपने बल-का भरोसा रहता है परन्तु भक्त अपने सर्वशक्तिमान् प्रभुके भरोसेपर निर्भर और निश्चिन्त रहते हैं, भगवान् धीरामध्वजी इन दोनोंकी स्वरूप-परिस्थितिका उतम विप्र विसखाने हैं—

मोरे प्रीङ्क ठनम सम ग्यानी। बलक मृत सन दास अमानी ॥

इसीलिये भगवान्ने कहा है—

तेषां निवर्तमिषुकानां योग्येण बहाम्भन् ॥

(गीता १।११)

## मुसलमान रामभक्त

[ सिद्ध फकीर शाह जलाल-उद्दीन बसाली ]

(लेखक - श्रीमनुनामसादजी श्रीवास्तव)

( १ )



व्यक्ति जीते-जी परमात्मामें मिल जाता है उसे 'बसाली' कहते हैं। यह शब्द फारसी भाषाका है। इसकी व्याख्या कवि बलीरामजीने अत्यन्त सरल और सरस भाषामें इसप्रकार की है—

हेरा डाल दीजे उठि राह लीजे  
जिस राहमें पीवको पाये जू।  
'हम-तुम' से न्यारे हो रहिये  
निल हँसिये, खेसिये, गाइये जू ॥  
मुप मुक मीतकी चाह फँसी  
जो पै जीवते पीव न पाये जू।  
बली अन्त समय जहँ जावना है  
तहँ जीवते बयों नहीं जाइये जू ॥

श्रु रासानके शाह जलाल-उद्दीन बसाली 'सूफ़ी हुनर-परस्त' अर्थात् 'श्र'गार-निष्ठा'के भक्त थे। श्रीरामचन्द्रजीके उपासक होनेके अतिरिक्त वे उनकी अलौकिक मधुर छविपर मोहित भी थे। उनका विश्वास था कि श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुन्दर, स्वरूपवान और सुकुमार हैं। उनकी भक्ति करने तथा उनका नाम धपनेसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है। जैसा कि कवि 'खुरतर'ने 'उद्'-'रामायण'में कहा है—

को वरदे जहाँ जो कोई यह 'नाम',  
गुरुस्ताने जहँमे पाव आराम ॥  
नज़ते हर वशर इस 'नाम'से है,  
कि अद्विज काम 'सिताराम'से है ॥  
इबादतका नहीं है आजकल काम,  
फ़कत फ़ाकी है 'सिताराम'का नाम ॥

महात्मा 'बसाली' भ्रमण करते हुए पंजाबप्रान्तके मुकवान-नगरमें था निकले थे। उसी नगरमें परिदत्त देवचन्द्रजी कथा-वाचक रहते थे। वे बड़े विद्वान् और

सुयोम्य वक्ता थे। प्रतिदिन सन्ध्या समय समई मास चतुस्रेपर रामायणकी कथा बौचते थे। उनका स्वर कल कोमल और मधुर था। श्रोताओंको यह स्वर रिकते वे पद-पदायोंकी व्याख्या सुन्दर सरल और सरस शब्दों करते थे, जिससे खियाँ और छोटे छोटे-बच्चे भी आसानी समझ लेते थे। जिस रसकर वे बयान करते उसका चित्र ही खींच देते थे। इन सब सामग्रियोंसे उनकी कथा खूब जमती थी। दूर-दूरसे लोग आते और कई सौ श्रोता इकट्ठे होकर कथा सुना करते थे।

( २ )

राजा जनककी फुलवारीका प्रसंग था। निविद्यान श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत छविपर मुग्ध थे। परिदत्तजी उनकी अलौकिक छविका वर्णन इतनी सुन्दर और सरस भाषामें किया कि श्रोतागण सुनकर गन्धर्व हो गये और वेहृष्टतया उनकी छवानसे निकल गया—

किसीकी आँसुमें जादू तैरी ज़बमें है।

कुछ रात्रि बीते कथा समाप्त हुई। श्रोतागण धारती छेकर अपने-अपने घर जाने लगे। परिदत्तजी धपनी सुलक बाँधना धारम्भ किया। इसी बीचमें शाह साहेबने आकर कहा—

"परिदत्तजी! आपकी पद-पदायोंकी व्याख्या सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। कृपा करके यह बतवायें कि यह कौन-सी बहुधर्म-गौरवान्वित सुलक है और इसमें किस यूसुफ़के समान सुन्दर व्यक्तिके सौन्दर्य और आकर्षण का वर्णन है।"

"शाहसाहेब! हिमालयसे कुछ दूरीपर एक विराट नगर बसा है। उसका नाम अयोध्या है। यह सुने आपकी राजधानी है। वहाँ महाराजा दशरथ राज्य करते थे। वे बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। महाशयु रामचन्द्रजी इनके सुपुत्र थे। वे अत्यन्त सुन्दर, शूरवीर और उद्विग्न थे—

गुणसागर नगर बरबीरा। सुन्दर श्यामल गौर सरीता ॥  
यह रामायण है। इसमें उर्दूकी मंगलमय कौशल वर्णन है। कहिये! आपको उनकी कथा अन्धी तो लगती!"

“परिचरणी ! मैं कई दिनोंसे यहाँ रोज़ आकर क्या मुला हैं, क्या आनन्द आता है। मैं तो शाहजादे परबख़ आदिब हो गया हूँ। चीन व दुनियासे मुँह मोड़ नहीं देखे मुझे मुकीम हूँ।”

“शाहसाहेब ! आप क्याके बड़े प्रेमी हैं। कृपा करके हरिद्वार आया कीजिये। मैं अपने पास ही बैठा जिया करूँगा।”

“हाँ ! हाँ ! मैं तो रोज़ सबसे पहले आता हूँ और सबसे पीछे जाता हूँ। लेकिन मुझे यहाँ कोई बैठने नहीं देता। बड़े-बड़े मुन खेता हूँ। अपना, सब जाता हूँ। सब फिर आऊँगा।”

( ३ )

शाहसाहेबकी इस प्रेमवाताकी खर्चा मुसलमानोंके कानोंमें पहुँची। वे अत्यन्त मोहित हुए। सबसे सजाह करने मौजबी अन्वुआके मकानपर मजलिस जोड़ी। मजलिस मुसलमानोंको पुत्राया और शाहसाहेबको भी एकदम मँगवाया। मौजबी साहेबने बाज़ दी, हाज्जाम बर्की ब्याख्या तथा तरीकन और शरीफ़की सख़बीन की। सब बाग़ प्याज देख मुनने रहे। शाहसाहेब एक क्लिने बैठे थे। उन्होंने प्यानपक नहीं दिया। प्रेमके डमडममें वे खलने रहे—

हरिद्वार मुसलमानों

मसा दाक़ा ज़ेला।

अपनी मैं प्रेम-पथका परिच हूँ। मुझे मुसलमानोंकी क़रार करी है।

और कलमें बड़ बड़कर—

दरार में। बड़ है, मेरा बरमान है बरी,

क़ाज़र हूँ क़रार तो तुम देरुता रहूँ।

मुझमें कलमें बड़े काये।

बड़ हो क़रीब शाहसाहेबकी मोज़ हुई, परन्तु वे नहीं बने, जिसे तो हैजे जिसे। लोग उन्हें हूँने हुए कलमें कलमें। बर्की के परिचरणीके पास बैठे बड़े प्रेमने कल हुए रहे थे। वेमेंसे कलुग़ाण हो रहा था। तब-तबकी कूँने गरी की। बर्की पर रहा देखकर मुसलमानोंकी कलमें हुए कि हो व हो, परिचरणीके ही शाहसाहेबको क़ाज़र कलमें मुसलमानने क़ाज़र बना दिया है। तब

ख़ोग उनके उपर बिगड़ पड़े। मौजबी साहेबने धमका-कर कहा—

“परिचरणी ! जो कुछ हुआ सो हुआ। कलमें क्या मत बाँचो। अपना पोंधी-पत्रा पहलसे उदा खे जाओ, बरना.....”

परिचरणी बेचारे सीधे-सादे वे और मौजबी साहेब-को अन्वुी तरह जानते थे, बोले—

“अपना ! कलमें मैं क्या नहीं बाँचूँगा। आप इतमीनान रखें।”

( ४ )

दूसरे दिन कया बन्द हो गयी। बाबक़ाबद समाप्त हो चुका था। परिचरणीने शाल-काज़ इतक करके दूसरे शहरका भाग पकड़ा। शालमें शाह साहेब मिथे, उन्हींने पहचानकर कहा—

“कहाँ चले जा रहे हो ! परिचरणी ! बुरा इस दिखदारका पता तो देने जाओ।”

परिचरणीने अन्वुर्ण मैत्रिने कहा—

“शाहसाहेब ! इस समय तो जान केकर भागा जा रहा हूँ। उदरनेसे पकड़े जानेका डर है बरना मैं जानकी प्यारे प्रभुका करिब करारव मुनगा।”

शाह साहेब सिद्ध कधीर थे, उन्हींने कहा—

“परिचरणी ! बरो मज ! मैं मुझें बड़ कया (बर्की) देता हूँ। पृथ्वीपर परक हेनेमे बड़ अन्वुर्ण हो जायगा और सब ख़ोग बरकर जाय कर्दगे। धूममें बाज़ रंगे तो बड़ अपनी कयाकी मूलमें का जायगा, उमे हाथमें जिने डिखा, मुम तो मेरे दिखदारकी दिखारव मुनगे हो मुझें का किल जायका है।”

अरे, दुनिया कर्दिगने मुसलमान,

रोज़ दरदोर उद क़री दारव बरुद ।

अपनी—

दरदोर क़रार अन्वुर्ण कर मे डी ४) १ ।

दरदोर क़रारव उद क़रार क़रार क़रार ।

“अपना ! बुरा फिर तो लखका हो कि अन्वुर्णने कलमें हैजे हाथीव है।”

देकर परिचरणी उदा कलमें। पोंधी काँचका हैर कलमें। अन्वुर्णकी कलमें काँचका कर्दर कलमें करे। अन्वुर्ण-

# मुसल्मान रामभक्त

[ सिद्ध फकीर शाह जलाल-उद्दीन वसाली ]

(लेखक - श्रीमनुनामसादजी श्रीवास्तव)

( १ )



व्यक्ति बीते-जी परमात्मामें मिश्र जाता है उसे 'वसाली' कहते हैं । यह शब्द फारसी भाषाया है । इसकी व्याख्या कवि बलीरामजीने अत्यन्त सरल और सरस भाषामें इसप्रकार की है—

देरा बदन दीने उठि राह लीके  
मिस्त राहमे पीतको पारये ॥  
'हम-तुम' में न्यारे हो रहिये  
मिस्त हँसिये, सेतिये, गारये ॥  
मुप मुक मँनरी चाह कैरी  
जो वे जीवने पीर न पारये ॥  
बरी अन्त समय जई आरना है  
तई जीवने बयो नही आरये ॥

छ.शामानके शाह जलाल-उद्दीन वसाली 'गूढ़ी हुरम-चाली' अर्थात् 'अज्ञान-विहा'के अन्त थे । श्रीरामचन्द्रजीके उपासक होनेके अनिश्चित से उनकी आध्यात्मिक मयुर परिवार मोहित भी थे । उनका विधास था कि श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुन्दर, स्वरूपवान और सुकुमार हैं । उनकी भक्ति करने तथा उनका नाम करनेमें विप्रय ही हुकि मिश्रणी है । जैसा कि कवि 'सुरगर' में 'बदू'-शामाचरमें कहा है—

करे बारे उठे से बरे मह 'अजय',  
हुकमये बरिने सब अजय ॥  
बन्ते हर बरत हम 'अजय' है,  
मि बरिने बरत 'अजय' में है ॥  
हकमय बरी है अजयत बरत,  
पुत्रत बरती है 'अजय' का बरत ॥

अजय 'अजय' अजय करने हुए उपासकवर्गमें सुकाम्य-अकारके का निशाने थे । जहाँ अजयके अर्थवश उपासककी कलक-कल्पक करने थे । वे कहे

सुयोम्य वक्ता थे । प्रतिदिन सन्ध्या समय समई मा-चवतरेपर रामायणकी कथा बौचते थे । उनका स्वर अत्यन्त कोमल और मयुर था । श्रोताओंको यह श्रवण शिक्तते थे पद-पदायोंकी व्याख्या सुन्दर सरल और साम रूपमें करते थे, जिससे जियाँ और छोटे छोटे-बच्चे भी आसानी समझ लेते थे । जिस रसका वे वर्णन करते उतका अविश्र ही लीच देते थे । इन सब सामर्थियोंमें उनकी कला लक्ष जमती थी । दूर-दूरसे लोग आते और कई सा श्रोता हकड़े होकर कथा सुना करते थे ।

( २ )

शामा अजयकी कुलपारीका प्रसंग था । मिथिलावासी श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत सुविपर सुश्रु थे । परिवारमें उनकी आध्यात्मिक सुविधा बरकाम इतनी सुन्दर और सरस भाषामें किया कि श्रोतागण सुनकर गदगद हो गये और बेइच्छतापर उनकी अज्ञानता निकल गया—

श्रीरीकी अँसमें जादू तैरी ज़बाने है ।

उस रात्रि बीते कथा समाप्त हुई । श्रोतागण धारणी होकर अपने-अपने घर जाने लगे । परिवारमें भी धारणी पुनश्च बौचना आरम्भ किया । इसी बीचमें शाह सादेरने आकर कहा—

"परिवारजी ! धारणी पद-पदायोंकी व्याख्या सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । हृदा काठके वा बरकामने कि वह बीन-नी बरुअर्य-गीतवाचिक सुनकर है और इसमें किम सुनकृते गमान सुन्दर व्यक्तिने शीघ्रत और आसन्न का बरकाम है ।"

"शाहसादेर ! दिनाअजयके सुव सुगिरत सुव विराज वाग्य बना है । उनका नाम अजयना है । वह लूने अजयकी राजधानी है । वही अज्ञानता अज्ञान लान करने थे । वे बने अजयकी और अजयना थे । अज्ञानतु अज्ञानतुकी अजयके सुन्दर थे । वे अत्यन्त सुन्दर, सुन्दर और सुन्दर थे—

सुकामय अजय का बरत । सुन्दर अजय है । शीघ्र ॥

वय अज्ञानतु है । अजयमें अजयकी अज्ञानतु अज्ञानतु

! अज्ञानतु अज्ञानतु अज्ञानतु की अज्ञानतु !"

“परिदृष्टनी ! मैं कई दिनोंसे यहाँ रोज़ भ्रमर कपा सुनता हूँ, क्या भ्रमर कपा है। मैं तो शाहजादे भ्रमर का भाग्य हो गया हूँ। हीन व दुनियासे मुँह मोड़ उग्राँके कूबेमें सुधीन हूँ।”

“शाहसाहेब ! धार कपाके बड़े प्रेमी हैं। कपा कपके प्रतिदिन धारा कोत्रिये। मैं धारने पास ही बैठा लिखा बढेगा।”

“हाँ ! हाँ ! मैं तो रोज़ सबसे पहले जाता हूँ और सबसे पीछे जाता हूँ। लेकिन मुझे यहाँ कोई बैठने नहीं देता। कपे-कपे सुन जेता हूँ। धारपा, धार जाता हूँ। कब फिर पाऊँगा।”

( १ )

शाहसाहेबकी इस प्रेमवाताकी चर्चा मुसलमानोंके कानोंमें पहुँची। वे कल्पित कोपिन हुए। सबसे सजाह कपे मौजरी धारदुहाके मकानपर मद्रलिंग कोषी। मगल्य सुगजमानोंको बुझाया और शाहसाहेबको भी कपरा मँगाया। मौजरी साहेबने बाजू दी, इत्जाम कपेकी व्याख्या तथा शरीकत और शरीयतकी लखदीन की। सब लोग व्याज देख सुनने रहे। शाहसाहेब एक कियारे बैठे थे। उग्राँने व्याजक नहीं दिया। प्रेमके बमत्रमें वे बह गाने रहे—

बरीये इरम सुगजानी  
मरा दरवार जेता।  
धाराँ में प्रेम-वपक पयिक हूँ। मुझे सुगजानीकी  
पुकार नहीं है।

और कलमें बह बहकर—  
हारा भी बह है, मेरा बरमान है नहीं,  
कपल नू बरा तो मुझे देला हूँ।  
पुरसेने कलमें कबे कपे।

बाज हो जानेवा शाहसाहेबकी ओर हुई, पल्लु वे  
वे ही नहीं, मिठे तो हैंने मिठे। लोग कपे हूँने हुए  
कपने कपे। धाराँ के परिदृष्टनीके कप बड़े बड़े प्रेमी  
कपा हुए तो वे। कपेके कपुपान हो रहा था। मक-कपकी  
हुँके नहीं थी। कपकी बह रहा देखकर सुगजमानोंको  
कपे हुए कपा कि हो व हो, परिदृष्टनीके ही शाहसाहेबको  
दुपार कपे सुगजमानके कपिर कपा दिया है। कप

लोग उनके ऊपर विगड पड़े। मौजरी साहेबने धमका-  
कर कहा—

“परिदृष्टनी ! जो बुज हुआ तो हुआ। कपने कपा  
मन बाँधो। धरना पोपी-पजा बहाते बडा छे बाधो,  
वरना.....”

परिदृष्टनी बेचारे सीधे-सादे वे और मौजरी साहेब-  
को भयभी तरह जानते थे, बाँधे—

“कप्या ! कपने मैं कपा नहीं बाँधिगा। धार  
हलमीनान रकनें।”

( ४ )

दुसरे दिन कपा बन्द हो गयी। बाजकाबल समस्त  
हो चुका था। परिदृष्टनीने मान-काज इरम कपके दुसरे  
शाहरका मार्ग पकडा। शान्तेमें शाह साहेब मिठे, उग्राँने  
परधानकर कहा—

“कहाँ कबे जा रहे हो ? परिदृष्टनी ! बरा जम  
दिखदारका पता तो देने बाधो।”

परिदृष्टनीने कपुल्ये नेत्रोंमें कहा—  
“शाहसाहेब ! ह्य समक गां बाज केंकर भागा का  
रहा हूँ। इरनेसे कपने जानेका दर है वरना मैं कपको  
धाराँ मनुका कपिर करवक सुगगा।”

शाह साहेब गिर कपेः। वे, उग्राँने कहा—

“परिदृष्टनी ! बरो मन ! मैं तुम्हें बह कपा ( धरी )  
देता हूँ। दुर्धरार कपक देनेके बह कपुपरा हो कपक कपि  
सब लोग कपक भाग करेगे। पुरमें कपक सेने तो बह  
कपकी कपकी मूलमें का कपक, हने हाकमें बिने कपका,  
मुम तो मेरे दिखदारकी दिखारन सुगने ही तुम्हें का कप  
काक है।”

बरे. दुमिया कपिने सुगकप,  
हीर कपेः। उग इरम कपक ।

कपुल्ये—  
कपक कपक कपक का दे है कपे ।  
कपुल्ये कपक कप कप कप कप कपे ।

“कपक ! कप कप को कपक हो कि कपुपने कपक  
कैने हलीव है।”

कपे परिदृष्टनी कप कपे। कपे कपक है कपे ।  
कपुल्येकी कप कपक कपुल्ये कपे कपे । कपक



की खियाँ किसप्रकार मोहित होकर निझावर हुई थीं और धनुषयज्ञके समय देश देशके राजा और महाराजा किसप्रकार उनकी अतुलित छविपर बेदाम थिक गये थे। इन्हीं सब बातोंका सविस्तर वर्णन करते रहे और आनन्दमें मग्न होकर यह गाने लगे—

घरणीका भार हटने, यही राम अब बने हैं।

पापोंका धन उड़ाने धनदयाम अब बने हैं ॥

विष्णु ! यही निश्चिन्त ! यही नीलकण्ठधारी।

यही पात्रज्ज्ञ ईश्वर ! यही राम हैं मुरारी ॥

शाह साहेब मग्न हो गये, उन्होंने अपनी सिद्धियोंसे प्यारेकी कथा सुनानेवालेकी कुछ सेवा करना चाहा। और बोले—'वाह ! पविटतजी ! वाह वाह, लख सुनाया।

'अच्छा ! माँगो क्या माँगते हो ?'

पविटतजीने लख सोच विचारका तीन चीजें माँगीं—

( १ ) मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे एक पुत्र हो जाय।

( २ ) मेरी मृत्यु अनायास हो। और

( ३ ) श्रीरामजीके घरघोंमें प्रीति हो।

"अच्छा ओ, दो घरदान अभी देता हूँ। तीसरा अब केर मिलोगे और दिलदारकी बातें सुनाओगे तब दूँगा।"

यही तो अमली चीज थी। पविटतजी अपनी भूलपर पतुगते हुए कि मैंने पहले यही क्यों न माँगा, उनसे कहा, 'किर मैं आपको कहाँ पाऊँगा ?'

"यारके कूचेमें। मेरा यार तुम्हें खींचकर मेरे पास लूँगा देगा। अच्छा, अब जाओ।"

पविटत टेकचन्द्र विद्या हुए। शाह साहेब भूमने-भामते नेत्रलिखित मसलाना गीत गाते हुए यारके कूचेकी तरफ लखे—

दिलदार यार प्यार महिषोमें मेरी आ जा।

कैसे तरस रही है सूरत मुझे दिख जा ॥

( २ )

चौथों मर्याने शाह साहेब अचक-चाममें पहुँचे और अचकी अमृश्रुमें उगरे। इतने दिनकी प्रसन्न उच्छ्वसाके तब इहधाममें पहुँचनेपर उन्हें जो अमीम आनन्द प्राप्त था अमर्य वर्चस कीच कर मरुणा है ? वे उनी अगार उच्छ्वमें मग्न होकर इहदेव प्यार श्रीरामकी आराधनामें

लग गये। इतनेमें एक सज्जन वहाँसे निकले। उन्होंने शाह साहेबको अकेला देखकर कहा—

"शाह साहेब ! अकेले कैसे बैठे हो ?"

महात्मा वसालीका ध्यान भंग हो गया। उन्होंने किसी प्रकार अपनी विरह-वेदनाको रोक और क्रोधको शान्त कर कहा—

"अभीतक तो अकेला नहीं था, अपने दिलदारके साथ मज्जे उड़ा रहा था। हाँ, तुम्हारे आ जानेसे अलबत्ता ध्यान टूट गया और मैं अकेला हो गया।"

यह उपदेश-भरे वचन सुनकर वह अत्यन्त छवित हुआ। हाथ जोड़कर चमा माँगने लगा और प्रणामका राजा गया।

( ६ )

अनन्तर महात्मा वसालीने इहधामकी परिक्रमा करनेका विचार किया। भगवत्-भक्तोंको यह कार्य कितना सुखदा होता है, सो तो कोई भक्त ही जानता है। आश्चर्यसे शैकीनोंको इसका क्या पता ? मौजाना रुम सारेबने फरमाया है—

न मन वेहूदा गिरदे कूच, वा बाज़ार मी गरदम।

मज्जो आनाकी दोरम' पये दीदार मी गरदम।

अर्थात् मैं यों ही असम्भ्यकी भाँति गलियों और बाज़ारोंमें नहीं घूमता, मुझे प्रेमका घसका खग गया है, मैं प्रियवत प्रभुको खोजता फिरता हूँ।

एक दूसरे सन्तका कथन है—

ओं जमीने कि निदाने केफ पाये तु कुअद।

सप्तदा सिद्धदेव साहेब नजरा मुआरिद दूर ॥

अर्थात्—

परम सुहावन तब पर अंकित भूमि।

सदा रहेये सज्जन प्रेमी भूमि ॥

( ताली )

अर्थात् प्रभुपद-अंकित भूमिची मरिमाका क्या क्या है ! वह तो भगवत्-भक्तोंकी सदा वन्दनीया है।

यही सब सोचने और यह करने हुए—

वेहें-सिंहरामे बंदिदे कडिरो इंगि केन नरी है।

—यान्त्रपूर्वक अयोध्याकीकी गलियोंमें निराने कते हुए दिनों अयोध्याकीमें मन्दिर छोड़े ही वे वरन्त उरके श्री

हनुका प्रवेश होना एक असम्भव बात थी। इधर मियतमके दीवारकी जालसा, उधर पुजारियोंकी दुत्कार। इन दोनों प्रतिहन्दी स्थितियोंके संघर्षमें विरही महामाजीके हृदयमें दर्शन-जाभकी ज्वाला झौर भी खोरसे धपक उठी। उन्हें बड़ा दुःख हुआ, परन्तु नियम है जो जिसकी याद करता है वह भी उसकी याद करता है। कहा भी है—

तुलसी कमलन जल बसे, रवि शशी बसे अकारा।  
जो जाके मनमें बसे, सो ताहींके पास ॥

शौर भी—

मिसको हम चाहे न चाहे क्या मजाल।  
दिलसे लेकिन उसको चाहा चाहिये ॥

शौर भी—

असर है जजब-उल्फतमें तो खिचकर आही जावेंगे।  
हमें परवाह नहीं, इसकी, अगर वह तनके बैठे हैं ॥

छन्तमें जब उनकी बेचैनी बहुत बढ़ गयी तब वह माकाशवाणी हुई—

'प्रे बसाली, कवद था ! मैं तुमसे मिलनेके लिये तप रहा हूँ।'

इस माकाशवाणीके सुनते ही महात्मा बसालीका शरीर पुनःकृत हो गया। छानन्दके मारे उनके नेत्रोंसे धीरे धुलक पड़े। उनकी ज्वानसे धरवस निकल पवा—

ये कि दर देच जानदारी जा बुल अजब मदअम कि हरजाई ॥  
सर्व रहित सब उर पुर वाली।

(७)

छानन्दर महात्मा बसाली भीसरपूजीके किनारे गये। विमल वर शरिको देखकर प्रेमसे परिपूर्ण हो गये। जब शौर पलकी उन्हें सुधि नहीं रही। शुद्धी पहने हुए ही बीच पारमें हुए पड़े। घाटरर जोग स्नान-ध्यान कर रहे थे, वह देख उन्हें घात्रयें हुआ। सर्वोंने जाना कि शाह साहेब हूब गये। कई मनुष्य छटपट हुए पड़े। स्वर्गहारघाट छपमनघाट आदि सब ध्यान बाजे परन्तु उनका पता न लगा। आयाजका महीना था। सरपूजी बड़े वेगसे वह रही थीं। सब जोग निराश होकर बैठ रहे। छन्तमें एक पहरेके पधार से उलारघाटपर निकले। उनका सम्पूर्ण शरीर भीगा था, परन्तु शुद्धी सूखी थी—

एत बदरिया खबर ननुदप इरक।

रिशय दलकुशां न गरददु नम ॥

शर्याव

प्रेम पगा जो बूढ़ई सरिता मीहि ।

एकहु तग मुदड़िको मीजे नौहि ॥

—बिनायक

शाह साहेब किनारे खड़े होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने उस समयके हरयका वषन हसप्रकार किया है—

दोश रपतम नसूय हम्मामे ।

दीदम आशा इके दिखारामे ॥

चातुके दिहजरे व नेबाके ।

नातुके महपके गुल अन्दामे ॥

सरो कद या सनन नूप ।

सरकेशे खूँ सुरे बहुद कामे ॥

तुन्द खीमे व मरदुम आतुरे ।

मस्त चदमे न सागिरे आशामे ॥

गाह दर बहस हीला परदाजे ।

गाह दर इत्म इदवा अल्लामे ॥

आशिकारा हमी नमूद अयाँ ।

ऊ शजो जुल्फ जुको इल्लामे ॥

खूँ मटा दीद रूप कद तलवीद ।

तानवजैद ज़कय अन्यामे ॥

मुजदैमर जुना शुदम किन मौर ।

नमन अज़ होश दरगहे नामे ॥

मी नदानम कि अन्दौँ हौरत ।

व 'बसाली' क दाद पैगामे ॥

कि नचदमामे दिह मुवी जुज़ दोस्त ।

हर ये बीनी बदाँ कि मजहर ओस्त ॥

शर्याव

गपउ काहमे सरिता तीर । देखउ सुखद एक मति धीर ॥

चतुर मनोहर बीर निशंक । दाश-मुस कौमल सरंगअंक ॥

सुपर उठामि सुबलित गगन । बय किशोर गति गत्र सुखदाग ॥

भितवत चोख मुमुद्वि बर बाँके । नयन भरित मद मपुरस छाके ॥

कबहुँ छमियुत भाव जनारि । कबहुँ कशाप कय दरलाने ॥

प्रेमिन कंह अस परे लखाई । मुस छवि वैदिक धर्म सुहाई ॥

मेचक कच क्वचित्त घुपशारे । जनु इस्लाम धर्म छदि थारे ॥

मम दिशि लक्षि मूँ बंध रँमोरठ। छनि प्रसाद जनु देन हँकोरठ ॥  
 चकित यकित चित मयठँ अंधेता। गुण गुण बिसती धर्मरू-सेता ॥  
 यहि जाने सिद्धि छिन मोहि जोही। को संदेश जतायठ मोही ॥  
 प्रियतम प्रमु तजि आन, जनि देखिय रिमकी चखनि।  
 जो देखिय मतिमान, तामु प्रकाशहि जानिये ॥

महात्मा बसाली कुछ दिन स्वर्गद्वार और मण्डि-यवैत पर रहे। फिर वे प्रमोद-वनको चले आये और यहाँ रहने लगे।

( ८ )

पण्डित टेकचन्दजी शाह साहेबको खोजते हुए झपोप्याजीमें आये, परन्तु वे नहीं मिले। तब उन्होंने इस झमिप्रायसे कि क्याति होते ही जहाँ होंगे, आ जायेंगे, रामायणकी कथा रचिना आरम्भ कर दिया। कथा खूब जमती थी। सहस्रों मनुष्य इकट्ठे होते थे। एक दिन जब कथा समाप्त हो चुकी और हवन होनेके उपरान्त पूजा चढ़ चुकी, तब पण्डितजीने उदास होकर कहा—

‘रंग पीले पड़ गये जिनके लिये।

वे शाहजी आये न दम भर के लिये ॥’

इसी बीचमें शाहसाहेब भी आ पहुँचे। व्यासासन छू जानेके भयसे उन्होंने दूरसेही पाँच दाने सबके पुस्तक-पर फेंक दिये। दाने चमकदार थे। पारवर्तियोंने धीनकर पण्डितजीको दिये। यथार्थमें वे सोनेके थे। यह देखकर खोग धंग रह गये। पण्डितजीने व्यासासनसे उतरकर झमिवादन किया और अपने धानेका कारण कह सुनाया। शाहसाहेबने कहा—

“अच्छा ! यहाँसे निपटकर प्रमोद-वनमें बेरके वृषके नीचे आओ !”

यह कहकर शाह साहेब चले गये। पण्डितजीने पोपी-पत्रा बाँध, ओताछोंसे विदा हो प्रमोद-वनकी राह ली। कुछ ओताछोंने पीछा किया परन्तु उन्होंने यह कहकर कि, उनके साथ रहनेसे शाहसाहेबके दर्शन नहीं मिलेंगे, उन्हें छोटा दिया, इसपर भी एक व्यक्ति चुपके-चुपके पीछे चलता ही गया। पण्डितजीने प्रमोदवनमें पहुँच, बेरके वृषके नीचे खोज की, परन्तु शाहसाहेब नहीं मिले तब वे यहाँ टहर गये परन्तु दूसरा व्यक्ति जो पीछे-पीछे आया था, निराश होकर खौट गया। उसके आते ही शाहसाहेब बेरके वृषके नीचे प्रकट हुए। पण्डितजीने हाथ जोड़कर विनती की और कहा—

“शाहसाहेब ! आपकी कृपासे पुत्र-रत्न हो निव गया, अब मेरा इच्छित तीसरा वरदान दीजिये।”

“अच्छा ! जो कुछ कल कयामें पाया है, उसे सब करके रातको इसी स्थानपर आ आओ परन्तु आनी तरह किसी चीरको अपने साथमें मत जाना।”

( ९ )

पण्डितजीने उसी दिन सब कुछ दान कर दिया। सँग होते ही भिलारी बनकर शाहसाहेबके आग्रहमें पहुँचे और विनती की—

“मैं आपका सेवक हाजिर हूँ।”

महात्मा बसाली उस समय नेत्र मूँदे हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष रूपराशिका भस्मी आनन्द सूट रहे थे। उनकी उस समयकी अवस्थाका वर्णन करते हुए किसी कविने कहा है—

तुझमें फना हूँ और तुझमें फना रहूँ।

आजय तू नज़र तो तुझे देखता रहूँ ॥’

महात्माजीने आँसे मूँदे ही मूँदे कहा—

“हाँ ! आ गये ? अच्छा, कहे ?”

मामुकीमाने क्य दिख दोरेम।

रहू व दुनिया बदी नमी आरेम ॥

मुळ मुलानेम कज कजा व कदर।

ओफतादा जुदा ज़ मुळजारेम ॥

मुर्गे शासे दरस्त लाहू तेम।

गोहरे दुँरे गज हसरारेम ॥

शाहसाहेब कहते जाते थे और पण्डितजी दुरता जाते थे। अन्तमें शाह साहेबने कहा—

“अच्छा ! अब बली चलनाह हो जा।”

पण्डितजीने कहा—

“मैं आपका सेवक टेकचन्द हूँ।”

“हाँ ! हाँ ! अच्छा, बजीराम हो जा।”

अब पण्डित टेकचन्दजी भी उनकी तरह मल हो गये। उनका नाम ‘बजीराम’ पड़ा। मामुकीमां ‘की तीन हीं पाकर वे चारसी और चरबीके मूँदे विद्वान् हो गये। उनका बरबरा हुआ ‘दीवाने-बजीराम’ अब भी आदरकी रहिते देला जाता है। महात्मा बसाली प्रमोदवनमें रहते थे और पण्डित बजीरामजी मण्डिद्वार विचरते थे। राजिको जब बभी

दोनों मिल जाते थे सब 'बुध बन आरौ जो मिल बैठे दीवाने दो'  
बाजी कदावत चरितार्थ होती थी।

कुछ दिन पश्चात् महात्मा वसालीने जीवनयात्रा समाप्त  
कर साकेतवास किया, उनकी समाधि उसी बरके नीचे  
प्रबलक मौजूद है।

(१०)

'मासुकीमा' नामकी प्रसिद्ध पुस्तिका महात्मा वसाली-  
हकी निर्माय की हुई है। आधीरात्रिके समय यह  
कविता घनावास ही उनके मुँहसे निकल गयी थी।  
दूसरे ही दिन खलनऊके कीलकालकी मञ्जलिसमें पीरजादा  
नकीशाहने इसे गाकर सुनाया। लोगोंने बहुत पसन्द किया।  
सब जगह प्रचार हो गया, यहाँतक कि वह मंकतबोंमें जारी  
हो गयी और पाठशाळाओंमें अब भी पढ़ायी जाती है।

एक दिन मौलाना नजीर, शाह सादेबसे मिलने  
गये। उन्होंने बड़े प्रेमसे यह कविता सुनायी। शाह-  
सादेबने कहा, मैंने तो किसीकी इसे लिखाया तक नहीं!  
आपको कैसे प्राप्त हुई? मौलाना सादेबने खलनऊ  
कीलकालकी मञ्जलिसमें सुनकर याद कर छेनेका सम्पूर्ण  
वृत्तान्त कह सुनाया, शाह सादेबको बड़ा आश्चर्य हुआ।  
अपने मियतमका रहस्य समझकर वे चुप हो रहे।

एक दिन जनकपुरमें स्वामी जानकीवरदरशजीके मुखले  
घनावास ही यह पद्य निकल गये थे—

चित ले गयो चुत्ताय जुलूमोंमें टटा ॥

हम जानी दे इपासिनु है,

तब उनसे मई प्रीति मर्या ॥

सिद्दी जनको हुस उपभावत

करत नये नये अरब कला ॥

प्रीतिरता । प्रीतम बेदरदी

छोड़ि हने चित गयो चर्या ॥

उन्होंने यह पद्य कियोंको लिखाया भी नहीं था। परन्तु  
अब वे शकोप्याजीमें आये तो वहाँ भी यही पद्य लोगोंको  
पाने सुना। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी बगदायजोसे छौटने समय मार्गमें  
शोरीबाघजीके मन्दिरमें रुक गये। प्रयागमें खीर भी मिथी  
थी। उसे पाकर वे अचम्भ प्रसन्न हुए। जी चाहा कि कुछ  
खीर मिथी ही पाते परन्तु संकोचके कारण मीठा नहीं

सके। रात्रिको श्रीगोपीनाथजी।स्वयं भयङ्गरेसे खीर लेकर  
उनके पास लाये। वे अल्पन्त जमित हुए। अपनी जिह्वाको  
पिढार देने लगे। अनन्तर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

“जीवनधन ! इतना कष्ट क्यों उठाया ?”

भगवान्ने कहा, “क्या तुमने नहीं सुना है भगवान्  
भीकृष्णजीने अर्जुनसे क्या कहा था —

हम भक्तनके । भक्त हमारे ।

सुन अर्जुन । परतिष्ठा मेरी

यह व्रत टरत न टोर ।

हम भक्तनके । भक्त हमारे ।

इतना कह वे अन्तर्धान हो गये ।

माधवेन्द्रपुरीजी प्रतिष्ठाके भयसे रात्रिको वहाँसे  
भाग खड़े हुए। भोर होते ही वे दस कोसपर निकल आये।  
वहाँ गाँववालोंको यह कहते सुना कि गोपीनाथजीने रातको  
खीर चुत्ताकर माधवेन्द्रपुरीजीको पवाई। उन्हें बड़ा आश्चर्य  
हुआ। बंगालियोंमें कहावत है—

प्रतिष्ठार मये पुरीजाय पाठ्याया ।

पुरी प्रतिष्ठा अले जाय गेन्द्रादा ॥

अर्थात् जिस प्रतिष्ठाके भयसे माधवेन्द्रपुरीजी भागे यह  
प्रतिष्ठा उनके घागे घागे दौड़ी ।

मातःकाळ मन्दिर सुखा । भगवान्के बछोंपर खीर  
देखकर सबको आश्चर्य हुआ। भगवान्ने खीरकी थोरी थोरी  
उस थोरीका कारण प्रकट कर दिया। उसी समयमे उनका  
'खीरचौर' नाम पड़ा।

महात्माओंके चरित्रमें ऐसी ही विचित्रितार्थ होती हैं।  
मियतम प्रसुके इन रहस्योंको बड़ी समझ सक्ता है जो इन  
रहस्योंकी बातें जानता है।

पन्थ है महात्मा बगदाई, भारतको खीर घारके  
ब्रह्मीक प्रेमको । उस धवनकाळमें भी भारतने भगवान्  
श्रीरामचन्द्रजीकी विमल भक्तिप्र भासादान करके हिन्दुओंकी  
धार्तें खोज हीं। बाद् हरिबन्धनने टांक ही क्या है—

हम मुसलमान हरिबन्धन पर

केरिय रिशुन करिय ॥

बोडो मरु खीर उरके प्यारे भगवान् गिवाहर  
रामचन्द्रजीको कर ।

# श्रीरामचरितमानस-महिमा

( नैपाठ—भाष्येननसादरो पाठेय )

१  
जय 'रामचरितमानस' पवित्र,  
जय शान्ति-सप्ता, जय धर्म-मित्र ।  
जय कलिमें अनुपम मुक्ति-पन्थ,  
नव कोटि जनोका एक ग्रन्थ ॥

२  
जय नीति-निलय, जय पुण्यपद्म,  
जय सत्य-सिन्धु जय शील सद्म ।  
जय भव्य भक्ति-साधन-विवेक,  
नव कोटि जनोका ग्रन्थ एक ॥

३  
जय जय अति उच्च समाज-नीति,  
जय जय जग-वन्दित राज-नीति ।  
जय विश्व-प्रेम-रत धर्म-नीति,  
जय दुरु-द्वलन-व्रत कर्म-नीति ॥

४  
जय स्वाभिमान स्वाधीन नीति,  
जय पूर्व ख्याति प्राचीन-नीति ।  
जय जयति स्वतन्त्र स्वराज नीति,  
जय प्रजा-सन्त्र-विधि राज-नीति ॥

५  
जय जय स्वदेश अनुराग-नीति,  
जय सत्य हेतु तन-त्याग-नीति ।  
जय विषय-विकार-विराग नीति,  
जय चारों वर्ण विभाग नीति ॥

६  
जय पितृ-भक्ति आदर्श नीति,  
जय ध्याग-शक्ति-उत्कर्ष नीति ।  
जय भ्रातृ-प्रेम घर हर्ष नीति,  
जय पावन भारतवर्ष नीति ॥

जय प्रजा प्रेम सुख शान्ति नीति,  
जय राज-भक्ति शुचि दान्ति नीति ।  
जय ब्रह्मचर्य बल-कान्ति नीति,  
जय हरण मूर्खता-भ्रान्ति नीति ॥

७  
जय पत्नीव्रत सत्कार्य-नीति,  
जय जय पातिव्रत आर्य-नीति ।  
जय शुभ शिक्षा आचार्य नीति,  
गो-द्विज-सेवा अनिवार्य नीति ॥

८  
जय दुराचार संहार-शक्ति,  
जय सदाचार उद्धार शक्ति ।  
जय पर-पीड़न-उच्छेद शक्ति,  
जय हिंसकरि-पुरुष-भेद-शक्ति ॥

९  
जय जय स्वदेश-लक्ष्मी-भ्रमत्व,  
आत्माभिमान रक्षा समत्व ।  
जय खल प्रचण्ड-बल-नाश तत्व,  
जय स्वाधीनता 'सुराज' सत्व ॥

१०  
कवि-कुल-गुरु तुलसीदास धन्य,  
नव-रसमय वाच्य विलास धन्य ।  
घर घर घर पुण्य प्रकाश धन्य,  
भय रोग शोक अघ-नाश धन्य ॥

११  
हिन्दी कवि-कविता-कीर्ति-केतु,  
जय सत्य-शील-सद्धर्म-सेतु ।  
जय भारत प्रतिभा मूर्तिमान,  
जय आर्य धर्म-प्रतिभा प्रधान ॥

१२  
जय रामराज्य महिमा महान,  
जातीय उच्चताका विधान ।  
जय आर्य भूमिका दिव्य गान,  
जय आर्य-विजय-हर्षाभिमान ॥

१३  
जय जय रामायण गुण ललाम,  
जय भ्रान्त हृदय विधाम धाम ।  
जय माया-भूषण सुधा-भाण्ड,  
जय राम कथानृत सप्त काण्ड ॥

१४  
जय पूज्य गुसाई यशोदे,  
जय रामचरण-रत दिव्य नेद ।  
जय महावीर पूजा प्रमान,  
जय जाति देश गौरव महान ॥

१५  
रचते जिसका पूजा-विधान,  
नर नारि वृद्ध बालक सुजान ।  
पाते नैतिक शिक्षा पवित्र,  
उन्नत करते हैं निज चरित्र ॥

१६  
अति शुभकर है जिसका प्रभाव,  
मिटते जिससे सब भेद-भाव ।  
गाते जिसमें एकतादर्श,  
बाईस कोटि हिन्दू सहर्ष ॥

१७  
पावन होता जिससे स्वभाव,  
रहता न सौख्यका फिर भाव ।  
कहते जय जय श्रीरामराज,  
बाईस कोटि हिन्दू समाज ॥

१८

जय सरल सुबोध सुपाठ्य काव्य,  
जय हिन्दू धर्म अकाट्य काव्य ।  
जय प्रेम-पुण्य शुचि-देश्य यज्ञ,  
नव कोटि जनोका ग्रन्थ-रत्न ॥

२०

जय देश देश विख्यात काव्य,  
जय द्योपान्तर प्रख्यात काव्य ।  
जय विद्यप्रेम-प्रियता-प्रयत्न,  
नव कोटि जनोका ग्रन्थ-रत्न ॥

## तुलसीदाससे

(लेखक—श्रीमोहनलालजी महतो 'विद्योगी')

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा

तूने छुआ बना अनन्तका मानस-रूप-किनारा ।

अव्यापक-सा व्यापक मन है जिसके निकट बेचारा ।

जिसकी नेक मुस्कराहटपर थिरकें रवि, शशि, तारा ॥

जिसने कई तुच्छ डेगोसे नाप दिया जग सारा ।

'स्वयंप्रकाशः स्वयंभू' कह श्रुतिने जिसे पुकारा ॥

जिसे सोजने जाकर इस मनने अपनापन हारा ।

उस निर्गुणपर तूने जाकर अपना तन-मन चारा ॥

है तुलसी, तेरे मानसका शासक तेरा प्यारा ।

सवरी, गीध खोजता चलता बन-बन राम हमारा ॥

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा ॥

## रामावतारका महत्त्व

(लेखक—सामीजी श्रीबिबेकानन्दजी)



घटन-घटना पटीयसी अस्तक्यं-नाटक-गटी  
महाशक्ति महामायाके खिलासस्वरूप  
अनन्तकोटि महाशक्तियोंसे एक महाशक्तके  
मर्त्यलोकमें कम करनेकी स्वाधीनता-  
प्राप्त मनुष्य जब उस प्रकृति-भावाके  
ऊर्ध्वगतिशील प्रवाहके प्रतिबुद्ध अर्थात्

धर्मके प्रतिबुद्ध कर्म करने लगते हैं, तब धर्मकी ग्लानि हो  
जाती है और अधर्मका धम्युत्थान हो उठता है। ऐसी  
अवस्थामें सगुरुओंकी रक्षा, पापियोंके विनाश और धर्मकी  
रक्षण करना करनेके लिये भगवद्भारकी धरणा अन्य शक्तियों  
जगत्प्रदनी भगवतीके अवतारकी धारणयुक्त होती है।  
भगवान् और भगवतीमें अन्वेष है। मायोपहित चैतन्य-  
भगवान् और ब्रह्ममयो जगद्गता भगवती हैं। अपने बनाये  
हूए कान्ठमें कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोंके  
कारणों सब धरणाकारण अपने लिये ही हैं।

करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमें जगद्भ्याका प्रादुर्भाव  
भगवद्भार-नामसे अभिहित होता है। चेतन निराप  
है, जगद्भ्याके आश्रय बिना साक्षात्-मूर्तिमें भगवद्भाव  
असम्भव है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेका स्वभाव जगद्भ्या  
ही है। चेतनके आश्रय बिना माया कुछ कार्य न  
कर सकती। इसीकारण मायाके कार्यका आरोप चेतन  
करके शक्तियोंमें भगवान्का साहाय्य वर्यन दिया गया  
सो युक्तियुक्त ही है। जगद्भ्याके ब्रह्ममयी नाममें ।  
दोनों भावोंका समावेश हो जाना है। शक्ति-उपासक  
भगवद्भारताओंके साथ काजी-तारा भादि शक्तियोंका सम्बन्ध  
बतलाते हैं उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जा  
है। हमारे शक्तियोंमें कहीं मतभेद नहीं है, जो मनने  
प्रतीत होता है, वह दार्शनिक-ज्ञानके अभावका ।  
कुछ है।

सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है। इस क्षेत्रमें श्रीरामके गुणानुवाद रूपसे हम उन महारोंका विद्विग्ध प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेंगे।

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिष्यामें धारण्य सुभीता होता है। श्रीरामको सदाशुओंका राजाना कहा जाय तो भी धारण्य नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सद्-शिष्या प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सद्-शिष्याके लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मयादा-पुरोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बाललीला और विद्याभ्यास अनुबन्धीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरुभक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी, जिसके प्रतापसे वे सब विद्याधर्मोंमें निपुण हो सके थे। विद्यामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-शुद्धपासे ही वे यज्ञ और अतिबला विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अथ शस्त्रकी विद्यामें पारङ्गत हो सके थे। विद्यामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारणही धर्मशास्त्रकी शिष्या पौराणिक-कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-सङ्कटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिष्या स्त्री-वधरूप तादृक-वधके रूपसे प्राप्त कर धार्मिकमात्रके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। चरित्र बालकोंके लिये बालकपनसे ही निर्भीकता, वीरता और पापियोंको समुचित दण्ड देनेकी प्रकृति होना आवश्यक है। इसको श्रीरामने विद्यामित्रजीके साथ जाकर, वीरतापूर्वक सुबाहुको मारकर और मारीचको दण्ड देकर कार्यतः बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस मारगिभक्त-अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रत्येक मनुष्यको इसीप्रकार गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही यथाधिकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आश्रमोंके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-वस्तुसे छुटकर मुक्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाश्रम छूट जाता है यथवा गृहस्थाश्रम धारण करनेकी प्रकृति नहीं होती, यह विभीषिका मात्र है। यथार्थ प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और

आवरणका ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विदेह जनक हैं।

जनकपुरकी कुम्भवारीमें जिस समय सीताजीने श्रीरामके दर्शन हुए थे, उस समय श्रीरामने कहा था कि 'जिसने सपनेमें भी पर-स्त्रीको प्रेमदृष्टिसे नहीं देखा, उसने सीतापर दृष्टि पड़ते ही उसका मन क्यों आकर्षित हुआ। इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने 'मातृ-परदारोपे' का अभ्यास बालकपनसे ही कर रखा था। इस आदर्शको ग्रहण करनेमें किस मनुष्यका मतभेद हो सकता है? यह तो सर्वव्याप्तिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही त्याग नहीं किया, बरिन् बनवासम कठिन मत पावन करके जगत्को पितृभक्तिकी पराकाष्ठा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कीर्तनसे कहा था, कि 'पिता-माताकी परस्पर विरुद्ध आश्रायोंके पावन करते समय पिताकी आज्ञा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुआ करती है।' ऐसे धर्म-सङ्कटके समय अपने कर्तव्य निश्चयकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने श्रेयकी अपेक्षा वीरका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है। क्योंकि पुत्र-सन्तानमें वीर्य-प्राधान्य होनेके कारण पुत्र-शक्तिकी ही अर्थात् पिताकी ही प्रधानता हुआ करती है।

श्रीरामने आदर्श आत्-प्रेम अपने तीनों भाइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ बतलाया है, एक बहुत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श आत्-प्रेम अनुसरण रहा है।

सहधर्मिणीके साथ पतिका क्या कर्तव्य है सो सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। बनवास जाते समय सब प्रकारकी बनावसकी बातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्यतिका ही आदर्श दिखलाया था और बनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें हनुपुत्र व्यन्तको दण्ड दिया, दुर्गवसाके बरु-माक लक्ष्मणसे कूटबाये, स-सैन्य सरद्वेष्य-शिरितारके अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्वेगके लिये ही राज्य-कुञ्जका विजित किया। आदर्श गृहस्थधर्मोंकी कार्यतः निरूपण करनेके लिये अन्तमें सीताकी अनिर्गता की और आदर्श प्रजा-वत्सलता, जो राजाके लिये पुत्र-धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही

श्रीरामने सीताका 'अयोध्यामें' परित्याग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय, श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे प्रकटीत हुए थे।

चित्रकूटमें भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियोंकी सभामेंके एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधर्मका आदर्श प्रतिपादन किया और उसके अनुसार कार्य किया, वह एक आर्ष रूप था। ऐसे धर्मसङ्कटके समय हस प्रकार नियंत्रण करना एक आदर्श नरपतिका ही कार्य था, जिसको श्रीरामने बहुत रीतिसे निभाया।

पञ्चवटीमें सीताको रावणसे छुड़ानेकी चेष्टा करते हुए वन दशरथके मित्र जटायुका दाह-संस्कार श्रीरामने स्वयं किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महत्त्वको अधिक उजागर बगानेवाला है। प्रत्येक मनुष्यको महान्स्वप्ने महान् होनेपर भी ऐसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये, इससे उसका महत्त्व हो बढ़ता है।

अध्यात्म-वर्षत पर सुमीवसे सख्य करनेके श्रीरामने अपने सत्यपक्षको अन्तिम समयतक कैसा निभाया सो तो एक दिव्य रूप है। श्रीराम सुमीवके प्रेममें उन्मत्त नहीं थे। वे स्वयं भी मैत्री-धर्मका पाठन करते थे और सुमीवसे भी मैत्री-धर्म पाठन करानेमें मुटि नहीं करते थे। सीताकी खबर जानेके आशोक बननेमें जब सुमीवने कुपु विवर्ण किया, तब अध्यात्मको उसके पास भेजकर अपने कहलवाया था—

सन्धे सिंह रात्रेन्द्र ! सा बर्हितपमन्ववाः ।

न स सद्वृत्तः पन्था येन नारी हतौ गतः ॥

हे रात्रेन्द्र सुमीव ! अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहो, बाजिके मार्गक अवलम्बन न करो, वह मार्ग तुम्हारे लिये समुचित नहीं है जिन मार्गसे बाजि मारा जाकर गया है।

समुद्र-मंथन विभीषणके आनेपर राजधर्म और सुद-धर्मके बराबरी होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी सम्मति नहीं दी; परन्तु श्रीरामने शत्रुका आता होनेपर भी आना यह परम प्रसिद्ध मत बतलाने हुए उन्को काजब देकर शरकागत-वसलताकी पराकाष्ठा बतला दी की कि 'काजब काजब हो मेरे शत्रु होना है और मैं काजबकी हूँ' ऐसा कहना ही उसको मैं सख्य प्राचीमात्रसे तिर्यक कर देना हूँ, यह मेरा मत है।'

अनके धर्मोंका सङ्कट उपस्थित होनेपर ठीक ठीक नियंत्रण करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें कहीं भी उस स्वरूपसे उनकी प्युति नहीं हुई है। रामायणके पढ़नेसे पद-पदपर यह धरय प्रत्येक विचारवात् व्यक्ति देख सकता है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपलक्ष्यसे श्रीरामके चरित्रमें कई जगह अपीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परन्तु बाल्यमें यह अपीरता नहीं है क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई धर्म्यका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि कैसे भी कष्टकाल समय आवे, अन्तर्दृष्टिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्दृष्टि ही धर्मका नियंत्रण कर लेगी।

बाल्मीकीय-रामायणके उत्तरकाण्डमें कथा है कि एक दिन श्रीराम किसीसे एकान्तमें बातचीत कर रहे थे। कोई आये नहीं, इसके लिये लक्ष्मणको पर्युदारके रूपमें खड़ा कर दिया था और कहा था कि जबतक मेरी आज्ञा न हो कोई न आवे, यदि आया तो दण्ड दिया जायगा। इसी बीचमें दुर्वासाने आकर लक्ष्मणसे कहा कि, 'अन्तर जाकर श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दे दो।' लक्ष्मणने अपने दण्डकी परवा न करके दुर्वासके शापसे शापको बचानेके लिये श्रीरामको इतिला कर दी। उसने सोचा कि दुर्वासकी अप्रसन्नताकी अपेक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विरोध भयानक नहीं होगी। श्रीरामने आज्ञा उल्लङ्घन करनेके अपराधमें लक्ष्मणको अयोध्यासे खले जानेको कहा। राजधर्मके अनुसार चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो, अपराध करनेपर वह दण्डनीय होता है। राजधर्मके सामने प्रायःप्रतिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुपु भी पाधा नहीं की। इस कथानकने श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपाठन करना सिद्ध होता है।

इस खेलमें श्रीरामके साधारण व्यवहारोंकी ही समालोचना की गयी है। उनकी अयतारविषयक महत्ताओंको नहीं जिला गया। इस प्रकार जिनका भी विचार किया जायगा, विचारवात् व्यक्ति समझ सकेगे कि श्रीरामावतारकी महत्ता अनुजनीय है और उनमें मनुष्यत्वकी शिक्षा बहुत प्रमाथमें मिल सकती है।

बोको मर्यादा-पुरपोषम श्रीरामकी धर !







चरण-पादुका-पूजन ।



प्राथम्यमें ही देखिये, गोसाईंजी श्रीरघुनाथजीको अमरवतीके साथ और श्रीजनकनन्दिनीको सखियोंके साथ महाराजा जनकजी पुण्यवाटिकामें भेजते हैं। पर स्वतन्त्रतासे—  
 श्लेषवाचरितासे सैर करनेके लिये नहीं, किन्तु—'समय मानि गुरु भावयु पारं'—रघुनाथजीको अपने गुरुवर्य महर्षि विरवामित्रकी आज्ञा द्वारा उनके उपासना कर्मके लिये पुण्य जानेकी, और जानकीजीको—'गिरिजा पूजन जननि पठारं'—अपनी मातृमीकी आज्ञानुसार श्रीगिरिजाकी पूजाके लिये। देखिये तो कैसा मर्यादापूर्वक दोनोंके एकत्र गमनका सुभवसर उपरिपठ किया गया है। यहाँपर कविको शृङ्गार-रसका उद्दीपन विभाव-वर्णन करना अभीष्ट है क्योंकि जनकपुर समुद्रिवाली नगर है, वहाँ अनेक पुण्यवाटिकाएँ हैं, पर रघुनाथजी महाराज-कुमार हैं, फिर महाराज जनकके सम्मान्य प्रतिधि हैं, वे अल्पत्र वर्षों जाने छगे, उनके योग्य तो राजकीय पुण्योद्यान ही है। धतः गोस्वामीजी उस पुण्योद्यानका उद्दीपनात्मक वर्णन इस प्रकार करते हैं—

मूप बागु नर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोमाई ॥  
 श्रीरघुनाथजी आकर पुण्योद्यानको देखते हैं, कैसे पुण्योद्यान-को । अहाँ अखिल विश्वको प्रसूय्य करनेवाली वसन्त ऋतु स्वयं प्रजोभित हो रही है। कालिदासजी 'कुमारसंगम' में पुण्यपन्था कामदेवको धीराइरको लुभानेके लिये भेजते हैं। और—

तरिनुतु नने संयमिनां मुनीनां तपः समाधिः प्रतिफलवतीं।  
 सद्ब्रह्मयोगिनैरभिमानभूतमाश्रमाभावाय मधुर्विजृम्भे ॥  
 इस पद्यसे वे वसन्तके उद्दीपनका यज्ञ ही उत्कर्षक वर्णन प्रारम्भ करते हैं, परन्तु शृङ्गारी कवि कालिदास-द्वारा यहाँ वसन्तके प्रभावसे ही प्रभावित प्राकृतिक पन-शोभा विषमोद्दिनी बनायी गयी है। पर यहाँ महाराजा तुलसीदासजीने 'जहँ बसंत रितु रही लोमाई' कहकर उस वर्णनको सचमुच शिथिल बना दिया है। अहाँ वसन्त ऋतु स्वयं प्रजोभित हो रही है उसकी उत्कर्षता अधिक हो सकती है, या जहाँ वसन्त ऋतु द्वारा उत्कर्ष किया जाता है उसकी ?

इसका अनुभव विश्व पाठक स्वयं कर सकते हैं। कालिदासजीके वर्णनमें उपर्युक्त पद्यके आगे वसन्तसे प्रभावित पशु-पक्षी आदि तककी शृङ्गार-प्रेषाओंका वर्णन किया जानेसे रसाभास माना गया है पर रामचरितमानसमें उपर्युक्त चौपाईके आगे यह वर्णन है—

उठे बिटप मनोहर नाता। बरन बरन बर बेकि निताना ॥  
 नव पल्लव फल सुमन सुहाप। निज संपति सुर-रुख ठजाप ॥  
 चातक कोकिल कीर खडोरा। कूजत निर्हेग नटत कल मोरा ॥  
 मध्य बाग सख सोह सुहावा। मनिसेपान विचित्र बनवा ॥  
 निमल सन्निह सरसिज बहुरंग। जल-खग कूजत गूजत मृंगा ॥

जिस पुण्योद्यानमें नवीन पल्लव, फल और फूलोंसे सुशोभित अनेक प्रकारके मनोहर वृक्ष लगे हैं, उनपर विद्वानरूपसे कविकाएँ धार्या हुई हैं। चातक-चकोर, कीर-कोकिल आदि पक्षीगण अपने अपने चेतोहारी शब्दोंसे उसे सुललित कर रहे हैं। मयूराण्य मनहरण शृष्यमें निमग्न हैं। बागके मध्यभागमें मयियोंके सोपानवाला निर्मल सखिलसे परिपूर्ण सरोवर है, उसपर नाना रंगके प्रकृत कमल, जल-पक्षियोंकी मधुर-ध्वनि और शृङ्ग-पुञ्जाका मत्त गुञ्जार हो रहा है। अहाँ! परम श्रेणीकी परम रमणीयताका कैसा पवित्र वर्णन है। पर गोसाईंजीको अपने किये हुए इस वर्णनसे भी सन्तोष नहीं हुआ। वे अपनी असमर्थता दिखाते हुए संश्लिप्त—

बाग-तडाग ॐ निलोकि प्रमु हरोषे नन्धुसमेत ।  
 परम रम्य थाराम पदं ओ रावर्हि सुख देत ॥

—यही कहते हैं। पर इसमें सभी कुछ कह दिया है। जिस बागको देखनेसे जोकामिराम श्रीरामको—अखिल विश्वके स्वयं सुखनिधान श्रीरामको सुख प्राप्त हो, उसकी परम रम्यताका यही पर्याप्त वर्णन है।

अच्छा, अब देखिये, छात्रग्वन-विभाव-वर्णनमें 'किस चातुर्यसे धीराम-सीताका काकतालीय एकत्र होना और परस्पर पूर्वानुराग प्रदर्शित कराया गया है। श्रीरघुनाथजी

ॐ 'बाग-तडाग' के सम्बन्धमें रामायणके प्रसिद्ध अन्वेषणकारी रायबहादुर लाला सीतारामजी अपने एक लेखमें लिखते हैं—  
 'साधारण पाठकगण इसका अर्थ यह करते हैं कि उस स्थानपर एक बाग और एक तडाग (तलाव) था। परन्तु उभय स्थानका नाम ही यह है और तुलसीदासजीने उसके दर्शन किये थे। इसीसे उसी नामसे उसका उल्लेख करते हैं। यह स्थान जनकपुरसे दस मील है और दरभंगा जिलेके देवी पट्टी थानेमें फुलहरके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ यह बाग था जिसमें जनकके पुत्रारी पूजा करनेके लिये फूल तोड़ा करते थे। यहाँ लाठके किनारे गिरिजाका एक मन्दिर बना हुआ है और कहा जाता है कि विवाहसे पहले श्रीसीताजीने गिरिजादेी यहाँ पूजा की थी, मन्दिर पुराना है और इसके भीतर तीन फुट ऊँची गिरिजाकी पाषाण-मूर्ति है।'—सम्पादक



होकर हृदयमें केवल उसका अनुभवमात्र ही कर सके हैं। परममें सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीद्वारा संसारकी सारी उपमायोग्य सुन्दर सामग्रियोंको एकत्र देखनेके लिये—यह जाँच करनेके लिये कि मेंद्वारा रचित संसारकी सारी सुन्दरता एकत्र होनेपर कैसी होगी, पार्वतीजीके प्रकट करनेकी उद्येशा की गयी है। किन्तु चौपाईमें सीताजीको प्रकट करनेकी उद्येशामें ब्रह्माजीद्वारा अपनी सारी रचनाका चतुर्थ विरवको एकत्र दिखाना है। निम्न यह कि कालिदासकी उद्येशामें एकत्र सौन्दर्यकी जाँच करनेके लिये प्रथम प्रयास है, और गोसाईंजीकी उद्येशामें उसी एकत्र सौन्दर्यकी परिपाक-अवस्थाका महामाजीद्वारा विरवमें दिखाना है। शिल्पकारके प्रथम प्रयासकी रचनामें और धम्पस्त होजानेपर सिद्ध-हस्तकी रचनामें जो भेद रहता है, वही यहाँ इन दोनों उद्येशाओंमें है। अर्थात्, आगे देखिये—

सुंदरता कहैं सुंदर करई। छनिगृह दीपशिखा जनु बरई ॥

इसमें सीताजीको सुन्दरतारूपी परकी दीप-शिखा—दीपककी ज्योतिकी उपमा दी गयी है। कालिदासजीने भी रघुवंशमें हनुमतिके स्वयंवर-प्रसङ्गमें दीप-शिखाकी उपमा वर्णन की है—

संचारीणी दीपशिखेत रात्रौ यं वं व्यतीयाव पतिवरा सा ।

नन्दमनार्यट इव प्रपेदे विवर्णमानं स स भूमिपलः ॥

इसका भाव यह है कि स्वयंवरा हनुमतिके जिस जिस राजाके सम्मुख होकर फिर उसे छोड़कर आगे बढ़ती थी, उस उस राजाकी ठीक वही अवस्था होती जाती थी, जिस प्रकार चखती हुई दीप-शिखा—हाथमें ली हुई जाखटेनकी रोशनी, आगे बढ़नेसे राजमार्ग—बाजारकी पीछे छोड़ी हुई हूकमें प्रकाश-रहित-गतप्रभा होती जाती है। इस दीप-शिखाकी उपमाके वर्णनद्वारा संस्कृत-साहित्यमें कालिदासका इतना गौरव है कि कालिदास-नामके अन्य कवियोंसे विभक्त करनेके लिये रघुवंशदि प्रयोक्तो 'दीपशिखा कालिदास'के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त है। वस्तुतः उपमाकी कल्पना यही ही विचित्र और मनोहारी है, तथापि जब हम इसके साथ गोसाईंजीद्वारा दी गयी 'दीप-शिखा' की उपमाकी तुलना करते हैं तो विवशतया कहनेको बाध्य होना पड़ता है कि कालिदासकी 'दीप-शिखा' सुवर्ण है तो गोसाईंजीकी 'दीप-शिखा' अक्षर ही कुन्द है। कालिदासजीने हनुमतिको दीप-शिखाकी समता केवल उसकेद्वारा एक-राजाओंके गत-प्रथ होनेमात्रके लिये दी है, किन्तु

गोसाईंजीने सीताजीको विश्वकी सुन्दरतारूप वस्तुका स्पष्ट प्रदर्शन करानेवाली दीप-शिखाकी उपमा दी है। अर्थात् संसारमें जहाँ-कहाँ भी सुन्दरता कही जाती है वह अन्धकारावृत होनेके कारण केवल कथनमात्र है—वस्तुतः नहीं, यदि अन्धकारमें कोई वस्तु उपलब्ध हो सकती हो तो सुन्दरता भी अन्यत्र उपलब्ध हो सकती है। देदीप्यमान अखिल सुन्दरताका साक्षात् दर्शन तो श्रीसीताजीमें ही उपलब्ध हो सकता है। श्रीशुनायजी भगवती सीताके अकथनीय विचित्र लावण्यपर मनोमुग्ध होकर उनकी उपमाके लिये खोज करने लगें, पर जब बहुत खोज करनेपर भी उनके सादर्य योग्य उपमा कहीं नहीं मिल सकी तो उन्हें विवशतया यही कहना पड़ा कि—

केहि प्यतरौ विदेहकुमारी। सन उपमा किय रहे जुठारी ॥

उपमा देने-योग्य जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उनको कवियोंने साधारण स्त्री-जनोंको देकर, जूँटी कर दिया है। फिर वे निर्माल्य उपमाएँ विदेह-कुमारीके योग्य किस प्रकार हो सकती हैं? इससे अधिक कहनेके लिये वहाँ समय ही कहीं था, पर आगे अक्षर मिलनेपर जब रंगभूमिमें सीताजी पदार्पण करती हैं, तो गोसाईंजीने अपनी उक्तिमें इसकी—

गिरा मुखरतनुअरध भवानी।रति अति दुस्तिव अतनु पति जानी ॥

विष बारनी बंधु प्रिय जेही।कहिय रमासम किमि बेदेही ॥

—इस वर्णनसे और भी स्पष्टता कर दी है। सुन्दरतामें सर्वोपरि विश्वविख्यात सरस्वती, पार्वती, रति और धीलक्ष्मी हैं, फिर भी सीताजीके साथ इनकी तुलना नहीं दी जा सकती। सरस्वतीची मुखरा हैं—अधिक बोलती हैं, सीताजी परिमितभाषिणी हैं, जो जुलाहनाघोंके लिये केवल शोभा-प्रद ही नहीं, परमापरयक भी हैं। पार्वतीजीमें द्वादशी सुन्दरता है, आधा अर्द्ध भगवान् शङ्करका और आधा गिरिजाका है। कामाहना रति तो देवारी अपने परिके अलग—अलगरहित होनेके सन्तःपसे दुःखिनी है और लक्ष्मीकी भी अपने प्रिय बन्धु विष और वायुकी सहोदरा हैं, अक्षरय ही उनके निवासस्थानमें प्रमत्ता होनेका यही कारण है। यही नहीं—

जौ छत्रि मुखा-पयोमिपि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई ॥

सोना रतु मंदक सिंगारु। मयद पानि-पंकज निर मारु ॥

एहि निधि उपरै टण्डि जर सुंदरता-मुख-मूठ।

उदपि सहोचसनेउ कवि कहई हीय सन वृठ ॥

यदि देवी रामायणीने उग्ररूप धरणीकी हों, तो भी श्रीगणेशकी गाय उग्रकी उग्रता देवेने कविको संकोच है, क्योंकि उग्रता तो उग्ररूप का ही ज्ञानी है, किन्तु यहाँ तो भाव यह है कि उग्र श्रीगणेशकी भी निःशङ्क सामग्रा यहाँ ही जा सकती, फिर भी शङ्का रह जाती है कि वे श्रीगणेशकी सामग्राके योग्य हैं या नहीं। देविये तो श्रीगणेशकी भक्ति का प्रकृत कारण है। गोसावईकी यह हृद्य भक्ति उग्रताकी कारण न बनने तो सम्भव बनती—'इति परमो विदेह-नृपती । एव वन्या बर्ह रते मुकुटी ॥' यह उक्ति कवि-रचना-शिल्प कायुक्तिकमें ही रहस्य हो जाती।

काविसाहित्ये भी सुप्रसन्नहारा शकुन्तलाके सौन्दर्यका वर्णन कराया है—

चित्ते विदेहय धीरुद्रियसारावधोगा

रूपोद्भवेन मनसा विविना इता नु ।

शौरव सुदिरयरा प्रसिमति सा मे

पातुर्विमुक्तमनुषिन्त्य रूप्य तस्याः ॥

( अभिज्ञान साकुन्तल दिवाकर )

शौर राजा उदरबाके द्वारा उर्वरीका सौन्दर्य का वर्णन इसप्रकार है—

अस्याः सगैविवी प्रजापतिरमृत चन्द्रो नु कान्तिप्रदः

श्रुत्तरेकरतः स्वयं नु मयनो मासे नु पुण्याकरः ।

वेदायासजडः कथं नु विषयव्यानुत्तकौतुहली

निर्मातुं प्रमथेन्मनोहरामिदं रूपं पुराणं मुनिः ॥

( विक्रमोर्वशीय )

दोनों ही वर्णन अर्थात् हैं। पिछले वर्णनकी और गोसावईकीके वर्णनकी तो एक ही शैली है तथापि गोसावईकीद्वारा वर्णित सौन्दर्य-सामग्रीकी समता विषयमोर्वशीयमें वर्णित सामग्री नहीं कर सकती, यही नहीं जब कि काविसाहित्य अपनी वर्णित सामग्रियोंद्वारा उर्वरीकी रचनाकी उत्कृष्टता सूचित की है, तब गोसावईजीने इनसे कहीं अधिक सामग्रियोंद्वारा की हुई रचनाको भी निराङ्क श्रीसीताजीकी तुलना देने योग्य नहीं माना है।

अपचा, भागे विलिये—

सितसोमाहिय बरनि प्रभु आपनि दसा विचार ।

सुधि-मन अनुजसन बचन समय-अनुत्तरी ॥

श्रीवाजीकी शोभाका इत्यर्थमें अनुभव करनेके

वधात् प्रभु रघुनाथजीने अपनी देवी प्रेम विह्वल रूपसे विचार किया—क्या विचार किया ? यही कि मैंने कब सम्पन्न है, वे मेरे अनुग्रह हैं, पत्नी के सुविधन हैं—दुःख-पिता हैं, ('सुधिमन' यह विशेषण यहाँ रघुनाथजीके सम्बन्धमें देया उद्युक्त नहीं हो सकता, देया उद्युक्तिकें सम्बन्धमें। रघुनाथजीके जिये तो यहाँ गोसावईजीने 'अनु' सर्वनामके प्रयोगही में सभी कुछ सूचित कर दिया है) तथापि समयके अनुग्रह—शोकविषाके कारणके विदेह-नृपती का उग्ररूप प्रयोगकीय सम्बन्धमें श्रीरघुनाथजी की उग्रता जनकजनना यह सोई। अनुग्रह जेहि कारन हैई ॥ पूजन गौरि सखी ते आई। कत प्रकृत गिरह पुनर्वत् ॥ नाम विरोधि अर्थात्कि सोमा। सहज पुनीत मोर मन सोमा ॥ सो रानु कारन जल विपत्ता। परकहिं मुमग अंग सुन प्रता ॥ रघुबेसिंहकर सहज सुमाऊ। मन दुपय पशु बौन काऊ ॥ मोहि अज्ञेसय प्रतीत मनकेरी। केहि सपनेहुं पतनी नहेरी ॥

अह ! कैते पवित्र, स्पष्ट और मर्यादासूचक कल्प है ! काविसाहित्यो दुष्प्रसन्नहारा शकुन्तलाके विषयमें कहाते हैं—

अंशदाय ध्रुवपरिग्रहप्रमा

यदार्यनस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां रि सन्देहयैरनु ननुपु

प्रमागमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥

यहाँतक तो सामानता है, पर इसके भागे—

चतुष्पादां दृष्टि रघुशक्ति नहुशो वैषणुमती ।

रहस्याह्वयमीव स्वनसि मुहु कर्णान्तिककरः ।

करी व्यापुनृत्याः पितसि रक्षितैस्वमपरां,

नयं तलान्तेवानुपुकर हतासवं खडु हनी ॥

( य० शाकुन्तल वि० अ० )

इसमें और इसके भागे काविसाहित्ये इस श्रुतार्थक वर्णनकी अधिक विस्तृत और स्पष्ट किया है। इसमें मर्यादा पचा नहीं की गयी है। परन्तु गोसावईजीके—

करत बतकही अनुजसन मन सियरूप नुमान ।

मुह-सरोज-मकरद-छवि करै गुण्य ह्व पान ॥

चित्तवति अकित नहुँ दिशि शक्ति। कहुँ गप नृपकिसोर मन-पौ जहुँ बिरोध मुग-सावक-नैनी। जनु तहुँ करिस कमरक्षित-कैनी। क्या अंत तक सक्षिण दशाये। स्वामल गौर किलोर मुहायं।

देखि रूप देखन ललचाने । हरेषे जनु निज निधि पहिचाने ॥  
 बड़े नयन रघुपाते-छवि देखे । पलकान्हिहू परिहरां निमेषे ॥  
 अषिषे संनेह देह भई मोरी । सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी ॥  
 होचनमग रामहिं उर आनी । दान्हि पलक-कपाट सयानी ॥  
 जबसिप साखिन्हू प्रेमबस जानी। काहि न सकहिं कछु मन मुसुकानी॥

रत्नामवनते प्रगट भये तेहि अवसर दोउ माइ ।

निकसे जनु जुग बिमल विभु जलद-पटल निहगाइ ॥

इस मधुर वर्णनमें देखिये, कैसा मर्यादाचित श्रृंगार वर्णन किया गया है। इसके प्रत्येक शब्दमें बड़े ही माधुर्य-पूर्य भाव गभित हैं। यही वर्णों, इसके आगे श्रीरघुनाथजीकी रूप-माधुरीपर सीताजीकी प्रेम-विह्वल अवस्थाका भी बड़ा बहुत और चमत्कारिक वर्णन है। खेद है कि विद्वान्-भयसे हम उसकी स्पष्टता करनेमें असमर्थ हैं। सीताजीकी भाव्य दृशा देखकर—

परबस सखिन्ह लकी जब सीता । भय गहच सब कहहिं समीता ॥

सखियां परस्पर कहने लगतीं, बड़ी देर हो गयी। सभीत इसीजिये कि माताजी विद्वग्बका कारण पूछेंगी तो हम क्या कहेंगी। पर इसपर भी जब सीताजीकी प्रेम-समाधि नहीं छूट सकी तो—

पुनि आउब पाहि बिरिषी काली। अस कहि मन विहँसी एक आली ॥

गूढ गिरासुनि सिय सकुचानी। मयेउ बिलंब मातुमय मानी ॥

घोर बड़ि धीर राम उर आने । फिरी अपनयी पितुबस जाने ॥

एक सखी जब यह कहकर कि 'कल इसी समय फिर भावेंगे' मन ही-मन हँसी, तब सीताजी सखीकी इस गूढ़ वाणीको-व्यङ्ग्योक्तिको सुनकर लजित हो गयीं। सखीकी इस व्यङ्ग्योक्तिके वाच्यार्थमें तो एक साधारण परिहास है, किन्तु व्यङ्ग्यार्थमें 'तुम्हारी इस प्रेम-विधवा पुराकी मैं मजीमकार समझ रही हूँ, पर अब विद्वग्ब करना उचित नहीं और मैंने धरने यह वाक्य 'पुनि आउब पाँह बिरिषी काली' शब्दकारको सुनाते हुए इसीजिये कहे हैं कि वे भी कल इसी समय भावें। यह बोधगम्य-वैशिष्ट्य व्यङ्ग्य है क्योंकि यहाँ बोधगम्य (वियके प्रति कहा जाय) सीताजी हैं। और श्रीरघुनाथजी— जो यह वाक्य सुन रहे हैं, उनके प्रति सखीके इस वाक्यमें यह व्यङ्ग्य सूचन है कि 'हम अपनी सखी श्रीसीताके साथ कब फिर इसी समय यहाँ आवेंगी, आप भी जानेकी कृपा करें।' इसजिये यह अन्य-संक्षिप्य-वैशिष्ट्य व्यङ्ग्य भी यहाँ है। और सीताजीके लजित होनेका यही कारण है।

लजित सीताजी सखीकी इस गूढोक्तिको सुनकर भ्रमगया लौटीं अवरय, पर केवल देहमात्रसे, मनसे नहीं। इसी भावको कवि वर्णन करते हैं—

देखन मिस मूग विहग तक फिहू नहोरि नहोरि ।

निराखे निरखि रघुबोरछवि नाठे प्रीति न घोरि ॥

अहा ! कैसी मधुर कोमल और कान्त-पदावलीद्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है। कालिदास भी शकुन्तलाकी ठीक इसी अवस्थाका वर्णन करते हैं—

दर्माङ्कुरण शरण. छत इसकाण्डे

तन्वो स्थिता कतिचिदेव पदानि गन्वा ।

आसाङ्घिनुत्तवदना च विमोचयन्ती

शाहासु वत्कलमसकमापि दुग्गणाम् ॥

( अ० शकुन्तल दि० )

यह वर्णन भी बड़ा रसावह है। पर श्रृंगारी कवि कालिदास शकुन्तलाकी इस चेष्टाका वर्णन उसपर धनुसक राजा दुष्यन्तद्वारा कराते हैं। किन्तु गोसाईंजी सीताजीके विषयमें स्वयंवरके प्रथम श्रीरघुनाथजीद्वारा ऐसा वर्णन कराना उचित नहीं समझकर कविकी ईसियतसे स्वयं ही करते हैं, यही उनके श्रृंगार-वर्णनकी विशेषता है।

मिय पाठक ! रामचरितमानसके श्रृंगार-वर्णनकी विशेषताका यह दिग्दर्शनमात्र है। इसप्रकारके विशेषताघोतक और भी बहुतसे उदाहरण हैं और उनकी स्पष्टताके लिये इस उद्देश्यके लेखकी लेखनी बड़ी लाजाबियत है—बह इस मुग्धा-भोतमे विरत होना नहीं चाहती, और न आप ही श्रीरामचरितावृतमे गूढ हो सकते हैं और न यह प्रसङ्ग ही समाप्त हो सका है, जो उजु लिखा गया है, उसका विवेचन भी अन्यन्त संप्रति किया गया है—अपराध है, किन्तु 'कल्याण' के विशेषाङ्गकी सखी विषय-सूची और उनपर लेखोंका बाहुल्य स्थानमें रसकर इस लेखको भ्रमगया यहाँ समाप्त किया जाता है।

## रामायणमें रस

होमरके काव्यमें जो रस है, रामायणमें उससे कहीं विशेष है। —बेचर



# रामचरितमानसकी कतिपय विशेषताएँ

(लेखक—पं० श्रीब्रह्मप्राथमसादजी चतुर्वेदी 'मान्त' और श्रीमुरलीधरजी दीक्षित 'अन्य')

आनन्द-कानन द्वाहिम्न तुलसीजह्मस्तकः ।  
कविता-मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता ॥



स्वामीशुलसीदासजीका रामचरितमानस अपने दिव्य और अलौकिक गुणोंके कारण मानव-समाजके मानस-मन्दिरोंमें मन-मोहनी मन्त्र-भूषिकी भाँति पूजा जा रहा है और अनन्त कालतक इसी प्रकार भक्ति-पुष्पाञ्जलि पाता रहेगा । इस अलौकिक ग्रन्थ महासागरमें अनेक प्रकाशमान गुण-रत्न भरे पड़े हैं जिन्हें प्रेमी पाठक अपनी अपनी शक्तिके अनुसार हृद्यकी लगाकर निकाल लेते हैं । ईश्वरकी कृपा और विद्वानोंके सस्त्रहृत्से हमें भी कतिपय गुण-रत्न प्राप्त हुए हैं । उनमें कुछ हम 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके मनोविनोदार्थ भेंट करते हैं ।

( १ )

सोपान आरम्भ—

गोस्वामीजीने सब सोपानोंका आरम्भ दोहे या सौर्यसे किया है; पर सुन्दर-काव्यका आरम्भ चौपाईसे ही कर दिया है । यथा—

बाल-काण्डः—

अदि मुनिरत सिंधि हेम गननायक करि-वर-भदन ।

करी अनुग्रह सोर मुन्दिरासि मुम-गुन-सदन ॥ (सो०)

अयोध्या-काण्डः—

श्रीगुरु-भवन-सरोवर-रत्न निरु-मन-मुकुटमुधारि ।

बानी रघुबार-विमल-जस बो दापक पद चारि ॥ (दो०)

अरण्य-काण्डः—

अना रामगुन गूढ ईरित मुनि बतहि विरिति ।

चरहि कोइ विमूढ जे हरि-विमुख न बरमति ॥ (सो०)

किष्किंधा-काण्डः—

अन कदि अनि अवनस्तनि अवरनिबर ।

सैन-भरनि से कही देख कसन ॥ (सो०)

सुन्दर-काण्डः—

जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति मार ॥ (सो०)

लङ्का-काण्डः—

एव निमेष परमान जुग बरव कल्प सर चंद ।

मजसि न मन तेहि राम कहँ कलु जासु कोदंद ॥ (सो०)

उत्तर-काण्डः—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुररोग ।

जहँ तेहँ सोचहि नारि नर कसतनु रामविभोग ॥ (सो०)

पाठक, सुन्दर-काण्डका चौपाईसे ही आरम्भ क्यों किया गया ? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि मानस-सोपानोंके आरम्भ और अन्य सभी स्थलोंमें लिखे हुए दोहे सौर्ये विभ्रामके लिये हैं । सुन्दर-काव्य आरम्भ करनेके पहले विभ्राम खेना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि गोस्वामी जैसे परम भक्त अपने हृदय-वैभवं श्रीरामचन्द्रजीके धर्म-शीला, पति-प्राणा सीतादेवीके विरहमें व्याप्त होकर विभ्राम नहीं खे सकते । इस बातकी पुष्टिमें बेलर्न कहते हैं । 'रामकान कोन्हें बिना मोहि कहाँ विभ्राम ?' (हनुमान्जीका कथन)

कोई कोई विनोदी पाठक चौपाईसे आरम्भ करनेके यह कारण बतलाते हैं कि सुन्दर-काव्यमें श्रीरामचन्द्रजीके सारा कार्य चौपायों (रीज बानरों)ने ही किया है । अतएव चौपायोंके कारण यह काण्ड चौपाईसे ही आरम्भ कर उचित है ।

( २ )

धनुनामै—

'बंदी गुर-पद-कंज कपसिषु नरहच हरि ।'

'बंदी मुनि पद-कंज रानावन जेहि निरभंभ ॥'

'मुनि मन बचन कर्म रघुनायक । चारन-अमल बंदी तब लख ॥'

'अनकमुना जगप्रति जनकी । अतीतय विव कसन-विचकी ॥'

हाके उम-बद-अमल मनती । जगु कपा निरपन की लयी ॥'

'बंदी अलिमन-बद-अमल ॥ सीतल मुनन मल-मुक-दल ॥'

'रिपु-भदन-बद-अमल मनती । गुर-करीब मल-अमल ॥'

'रघुपति-चरन-उपासक जेते। खन मृग सुर नर असुर सोमेते ॥  
'बंदी पदसरोज सब केरे। जे बिनु कान रातके चेरै ॥'  
'प्रनवौ प्रथम भरतके चरना। जासु नेम व्रत जाइ न बरना ॥'  
'बंदी विधि-पद-रेनु। भवसागर जेहि कीन्ह जहँ ॥'

उपर्युक्त पंक्तियोंमें वन्दना करते समय गोस्वामीजी सबसे चरणोंको कमलकी उपमा देते हैं; परन्तु भरतकी वन्दनामें 'प्रनवौ प्रथम भरतके चरना' और विधाताकी वन्दनामें 'बंदी विधि-पद-रेनु' लिखकर ही रह जाते हैं। भ्रातृ-भक्त वेपार भरत और वयोवृद्ध प्रव्रजाने गोस्वामीजीका क्या धराराध किया था जो उन्होंने उनके चरणोंको कमलकी उपमासे वञ्चित रखना? पाठको! इसमें एक रहस्य है। यात यह है कि 'प्रनवौ प्रथम भरतके चरना। जासु नेम-व्रत जाइ न बरना ॥' इसके ध्यागे गोस्वामीजीने लिखा है 'राम-चरन-पंकज मन जाइ। उग्रुष मधुप इव तनय न पाइ ॥' अर्थात् जिसका मन लोभी मधुपके समान रामके चरण-कमलोंका पास नहीं छोड़ता। लोभी मधुपके सद्य रामके चरणारविन्दोंमें भरतकी यह भ्रतारुति ही उन्हें कमलकी उपमासे वञ्चित रखनेका कारण है। यदि भरतके चरणोंको कमलकी उपमा दे दी जाती तो उनका मनरूपी भौरा कदाचित् उनके ही चरण-कमलोंमें लुप्त हो जाता, क्योंकि भरतको तो कमल चाहिये। जब उसे अपने पास ही कमल मिल जाता तब वह दूरस्थ रामके चरण-कमलोंमें भटकने क्यों जाता? इस तरह कवितामें दूषण उत्पन्न हो जाता।

विधाताके चरणोंको कमलकी उपमासे वञ्चित रखनेका कारण यह है कि प्रव्रजानी कमलसे उत्पन्न हैं अर्थात् कमल उनका जनक है। अतएव उनके चरणोंको कमल (उनके पिता) से उपमा देना कितना असंगत झाल होता? अन्य है, गोस्वामीजी धापकी इस सूत्र-दर्शिताको!

(३)

मराभाजीकी उपमाएँ भी बड़ी मजेदार हैं। धापने श्रीरामचन्द्रजीको चकोर बनाया है।

अस रुदि गिरि चित्तप तेहि ओरा। सिम-मुस-ससि मप नयन चकोरा ॥

जब रामजी चकोर हुए तब उनका विवाह भी चकोरीसे होना क्वचित्त है, अतएव गोस्वामीजी सीताजीके विषयमें लिखते हैं—

अधिक सनेह देह भर भोरी, सरद-ससिहिं जनु चित्तय चकोरी।

चकोर-चकोरीके विवाहमें समझी भी चकोर होना चाहिये। जीजिये ये भी चकोर बने बैठे हैं—

द्वारयजी:—

जानिसि मोर स्वभाव बरोह। मन तव आनन-चन्द्र चकोर ॥

जनकजी—

सहज विराम रूप मन मोरा। यकित हेत मिमि चन्द्र-चकोरा ॥

दुलहा-दुलहिन चकोर-चकोरी, समझी भी चकोर, तब क्या दुलहाजीके चिर-धनुगामी लक्ष्मणजी चकोर नहीं होंगे? क्यों नहीं, वे भी चकोर हैं—

रामहिं लणग मिलोहहि कैसे। सतिहिं चकोर-सिसोर जैसे ॥

सब तो चकोर हो गये फिर बराती ही क्यों रहें? लीजिये—

राम-चन्द्र-मुस-चन्द्र-छभि लोचन चाह चकोर।

करत पान सादर सकळ प्रेम-प्रमोद न मोर ॥

विवाहका योग मिलानेवाले राजर्षि विरवामिप्रजी भी चकोर-पदसे वञ्चित नहीं रहे। देखिये—

नल-सिख निरख रापके सोभा। जनु चकोर पूरनससि रोमा ॥

बलिहारी है, इस चकोर-विवाहकी! निःसन्देह इस चकोर-विवाहमें आनन्द-सिन्धु उमक पड़ा होगा! सच्चे भक्त प्रेमी पाठक तो इस प्रसंगमें धब भी चकोर बन जाते हैं।

बनमें जाते हुए चकोर-चकोरी—राम-सीता—सया चकोर बन्यु लक्ष्मणजीको देरकर दर्राकी भी तत्काल चकोर बन गये। अग्रहत्याभ्रममें मुनि-मपडकी भी चकोर बन गयी!

मुनि-समुह महुँ बैडे, सनमुस सखी ओर।

सरद-रन्डु तनु चित्तव, मानहु निरर चकोर ॥

मार्गमें नर-नारि गय भी चकोर हो गये—

मुदित नारिनर देखहि सोमा। रूप अनूप नयन मन रोमा ॥

पकट सन सोहहि कहुँ ओरा। रामचंद्र मुस-चंद्र-चकोरा ॥

(४)

गोस्वामीजीने सभी उपमाओंका प्रयोग बड़े विचारसे किया है। कहीं एक उपमा, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार-चार उपमाओंका समुदाय है। इस प्रकार न्यूनाधिक उपमाएँ देनेका क्या कारण है? अहा! उपमाओंकी

न्यूनाधिकतापर विचार करने ही इन्द्र गुण हो जाता है—  
कपिकी खेतनी चूम खेनेको पिता चम्रज हो उठगा है।  
उदाहरण स्वरूप, उपमाओंके दो-चार मगूने देखिये।

[ क ]

सुनि मृदुवचन भूपदिम सोहू। ससिकर सुअत विकल जिमि कोहू ॥  
गयेठ सहमि नहि कहु कहि आवा। जनु सञ्चान बन सपेटेउ लावा ॥  
विबरन मयेठ निपट नरपाहू। दामिनि हनेठ मनहुँ तद ताहू ॥

उपयुक्त पंक्तियोंमें, दशरथजीकी दशका चित्रण तीन  
उपमाओंद्वारा किया गया है। क्या एक उपमासे काम  
नहीं चल सकता था? यहाँ तीन उपमाएँ देनेका क्या  
कारण है?—गोस्वामीजी तीन प्रकारका शोक दिखलाना चाहते  
हैं, इसीलिये तीन उपमाएँ दी गयी हैं। पहली—

सुनि मृदुवचन भूपदिम सोहू। ससिकर सुअत विकल जिमि कोहू ॥

इसमें मानसिक शोक दर्शाया है। दूसरी—

गयेठ सहमि नहि कहु कहि आवा। जनु सञ्चान बन सपेटेउ लावा ॥

इससे वाचनिक शोक प्रकट होता है। तीसरी—

विबरन मयेठ निपट नरपाहू। दामिनि हनेठ मनहुँ तद ताहू ॥

इससे शारीरिक वेदना व्यक्त होती है।

शोककी संख्याके अनुसार उपमाओंकी संख्या तो है  
ही, विशेषता यह है कि महाराज दशरथजीको शोक उत्पन्न  
हुआ है कैकेयीकी बाणीद्वारा (सुनि मृदुवचन) और  
वाणीका तत्त्व है आकार, इसलिये उपमाएँ भी आकारस्थ  
ही हैं। यथा—प्रथम पंक्तिमें शशिकर, द्वितीय पंक्तिमें सञ्चान  
(बाज) और तृतीय पंक्तिमें दामिनि।

शोककी व्यापकता जल, यज्ञ और आकाशमें बतलानेके  
-लिये गोस्वामीजीने दशरथजीके उपमान जल-धर, यज्ञ-धर  
और नम-धर ही दिये हैं। यथा—(१) कोकू-जलधर  
(२) लावा-नमधर (३) तरु-तालू-यज्ञधर—अर्थात्  
कैकेयीकी बाणीसे जल, स्थल और आकाश सभी शोक-  
पूर्ण हो गया था। कमाज है!

[ ख ]

चित्रकूटाधरमें भरतको ससैन्य आते हुए देख  
लक्ष्मणजीका इन्द्र धीर-रससे उड़नेके लगता है और वह  
रामचन्द्रजीसे कहते हैं—

भिम करि निकर दके मृगरात्रु। लेह लंपटि ज्वा रिमि बात्रु ॥  
तेसदि भरतहि सनभनेता। सानुत्र निदरि निपठो खेता ॥

उपयुक्त वर्णनमें दो उपमाएँ दी हैं। (१) अतिरिक्त  
दके मृगरात्रु (२) लम्बा भिमि बात्रु।

दोनों उपमाओंमें पहली उपमा भरत तथा दूसरी शत्रुके  
लिये है। करि (हाथी) से मृग-रात्रु (मिर्ह) झोटा होता है,  
इसी प्रकार भरतसे लक्ष्मण भी छोटे थे। इससे प्रथम उपमाकी  
सायंकता सिद्ध होती है। दूसरी उपमामें यह दिखलाया  
गया है कि विमरप्रकार लजवाने बात्रु बड़ा होता है उसी प्रकार  
शत्रुप्रभे लक्ष्मण भी बड़े थे। अतः दूसरी उपमाका भी शक्ति  
प्रयोग किया गया है। सूची यह कि पहली उपमामें करि-निकर  
( हाथियोंके समूह ) के समान भरत भी 'सैन-सनेता' थे।  
दूसरी उपमामें झकेला लवा है, क्योंकि शत्रुके साथ  
भी किसी सहायक शब्दका उल्लेख नहीं है।

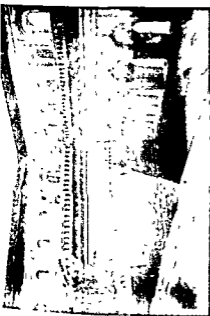
भरतको करि (हाथी) की उपमा देना सर्वथा उपयुक्त  
है, क्योंकि इस प्रसंगमें लक्ष्मणजी भरतको रात्रु-भ्रम-  
समक रहे हैं और हाथी मतवाला होता ही है। शत्रुको  
उनकी लज्जताके कारण लवाकी उपमा देना भी सर्वथा  
उचित है।

[ ग ]

गिरा अरय जल नीकि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।  
बंदी सीतारामपद जिन्हहि परम प्रिय किन्न ॥

इस दोहेमें भीसीता-रामजीकी अभिन्नता दो उपमाओंके  
द्वारा प्रदर्शित की गयी है। अभिन्नता तो एक  
उपमासे भी प्रकट हो सकती थी। फिर दो उपमाएँ  
देनेका क्या कारण है? विचार करने पर हमें तो निम्न-  
लिखित कारण जान पड़ा है।

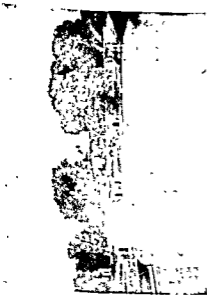
पहली उपमा 'गिरा-अरय' में गोस्वामीजीने शत्रु  
सीतादेवीका और उनके परचाव श्रीरामचन्द्रजीका नाम  
उपमानके रूपमें लिखा है। अतएव उपमानोंके इस क्रमके  
अनुसार उपमेयोंका क्रम सीता-राम हुआ। रामचन्द्रजीका  
नाम पीछे होनेसे कहीं वह रट न हो जायँ इसलिये  
दूसरी उपमामें गोस्वामीजीने उपमानोंका क्रम बदल दिया  
अर्थात् पहले श्रीरामजीका पश्चात् सीतादेवीके नामका  
उपमानके रूपमें उल्लेख किया। यथा—'जल-नीधि'। इस  
प्रकार दूसरी उपमा देकर गोस्वामीजी केवल इस दोहेमें ही



मूल कुण्ड — जनाना घाट

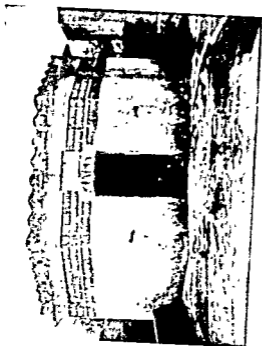


मूल कुण्ड



मूल कुण्ड

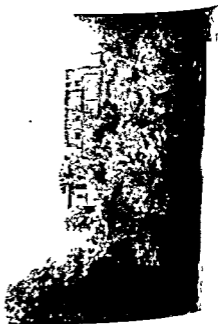
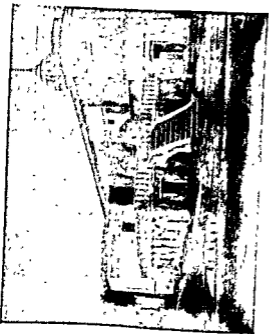




गोल्यामी तुलसीदासजीको कुटी



तुलसी चौक



नहीं बच गये प्रत्युत उन्होंने अपने युगल चाराध्योंकी एककृपा और भी प्रदर्शित कर दी। धन्य भक्तप्रवर !

इसके इतिरिक्त इन उपमाओंमें एक विशेषता और भी है। वह यह कि दोनों उपमाओंमें सीतादेवीके उपमान श्रीलिंग तथा श्रीरामजीके पुल्लिंग हैं। उपमानोंमें परस्पर बैसा अभिन्न प्रेम है उससे वे भीसीता-रामजीके उपमान बननेके सर्वथा योग्य हैं।

(५)

मानसके कतिपय प्रेमी पाठकोंने कदाचित् इस बातपर ध्यान न दिया होगा कि वन-वासके आरम्भ, मध्य और अन्तमें मिलनेवाले महर्षियोंसे श्रीरामचन्द्रजीने कौन-कौनसे प्रश्न किये और उनसे उन्हीं विशेष प्रश्नोंके करनेका क्या कारण है? यथा—

वन-वासके आरम्भमें महर्षि भरद्वाजसे मिलनेपर मंगलाष्टक कहते हैं—

राम सप्रेम कहेउ मुनि-पार्षी। नाथ कहिय हम केहि मग जाही॥

पाठक! उक्त श्रुति-वचसे मारों ही पूछनेका क्या कारण है? इनसे अन्य प्रश्न क्यों नहीं किया?

इसके दो कारण हैं—

(१) भरद्वाज-श्रुतिके आश्रमसे ही श्रीरामजी वनमें प्रवेश करते हैं; अतएव प्रवेश करनेके पहले हो मार्ग ज्ञान सेना आवश्यक है।

(२) जो जिस विषयका ज्ञाता होता है, उससे बड़ी बात पूछी जाती है। भरद्वाजजीके विषयमें गोस्वामीजी दाक्षकायडमें विल भाये हैं—

भरद्वाज मुनि बसहि प्रयाग। त्रिनदि राम-पद अति अनुराग॥

उपस सन दम-दवा-निधान। परमारथ-पथ-परम-सुजाना॥

यहाँ चौथे चरणपर ध्यान दीजिये। इससे स्पष्ट है कि भरद्वाजजी परमारथ-पथके रखने ज्ञाता थे और परमारथके विषये ही मंगलाष्टके अवतार धारण किया था। यथा—

जब जब होइ धरम के हानी। बाढ़दि असुर अधम बलिमान्नी॥

तब तब करि प्रभु मनुज सतीरा। हृदिहि हृत्प्रतिबि सज्जन पीरा॥

सारों यह कि श्रीरामजी राक्षसोंका बध करने केपारं परमारथके पथपर चञ्चलकीके विषये अवतीर्थ हुए

थे। 'अतएव परमारथ-पथ परम सुजाना' होनेके कारण ही उन्होंने भरद्वाजजीसे उपयुक्त प्रश्न किया।

वनवासके मध्यमें आदिकवि चारमीकिजीसे भेंट हुई है और उनसे श्रीरामजीने निम्नलिखित प्रश्न किया है—

अल जिय जान कहिय सोइ ठाँऊ। सिय सौमित्र-सहित जहँ जाऊँ॥

तहँ रचि कचिर परन-तुन-साहा। बात करौ कलु काल कृपाहा॥

पाठक इन महर्षिजीसे निवास-स्थान पूछनेका कारण भी बड़ा गूढ़ और मनोमुग्धकारी है। बात यह है कि महर्षि चारमीकि श्रीरामचन्द्रजीके निवास-स्थानके निर्माण करनेमें सबसे अधिक कुशल शिल्पी समझे गये हैं। गोस्वामीजीने वन्दनामें कहा है—

वंदौ मुनि-पद-कंज 'रामायण' त्रिन निरमयेउ।'

रामायणका अर्थ (राम + अरण्य) रामजीका निवास-स्थान है। चारमीकिजीसे श्रीरामजीका निवास-सम्बन्धी इस प्रश्नके करनेका अभिप्राय कितना गूढ़ रहस्यमय और युक्ति-युक्त है।

वनवासके अन्तमें अगस्त्य ऋषिसे भेंट हुई। उनसे श्रीरामजी कहते हैं—

अन सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौ 'मुनि प्रोही'॥

अगस्त्यजीसे राक्षसोंके मारनेकी युक्ति क्यों पूछी?

एक बार दुष्टकारणमें दो राक्षस-धनुषीोंने वध उपद्रव मचाया था, उनमेंसे एक प्राण्य-नेत्र धरण्य पर ऋषियोंको निमन्त्रण दे आता और अपने छोटे भाईका मांस पकाकर निमन्त्रित ऋषियोंको खिला देता था। भोजनोपरान्त ज्यों ही वह अपने भाईको पुकारता त्यों ही वह ऋषियोंका पेट फाड़कर निकल आता। इसप्रकार एक ही दिनमें अनेक ऋषि मारे जाते। निदान एक दिन अगस्त्यऋषिको भी निमन्त्रण दिया गया। भोजनोपरान्त सदा ही भाँति उस राक्षसने अपने भाईको पुकारा। महर्षि अगस्त्य उसका दुःख समझ गये और डकार डेकर पेटपर हाथ फेरते हुए बोले—'तुम्हारा भाई हमारे पेटसे सदेह नहीं निकल सकता, इज्जत होकर ही निकलेगा।' इसप्रकार उस 'मुनि-प्रोही' मायावी राक्षसका नाश कर अगस्त्यजीने अनेक ऋषियोंको सुरक्षित रखा किया। (चारमीकीय रामायण चारण्यक, ६६)

उपयुक्त कथाके समान ही श्रीरामजीके सामने भी स्थिति उत्पन्न है। उन्हें भी 'मनि-प्रोहि'का बध करना



‘जनकपुरमें दोनों भाईं भ्रमण कर रहे हैं। चारों ओर भ्रानन्द छा रहा है। यहाँ लिखा है—

सुमन ध्रुव सरसीरह लेखन ।

केवल कमल है, रंग नहीं ।

जनकपुरकी खियाँ परस्पर भगवान्‌के रूपका वणन कर रही हैं—‘श्याम गात्र, कल कंज-बिलोचन ॥’

रंग-भूमिमें दोनों भाईं ध्या गये, भ्रानन्द-ही-भ्रानन्द है । गोस्वामीजी लिखते हैं—

सरद चंद्र निन्दक मुख नीके । नीरज नयन भावते जीके ॥

विवाह हो रहा है—

सरद विमल विजु-बदन सुहावन । नयन नवल राजीव लज्जानन ॥

ध्रुवया नयी है, अतएव राजीव भी नये ही जजित हो रहे हैं ।

समुद्राखमें अहाँ भ्रानन्दका समुद्र ही हिलोरेँ मार रहा है, गोस्वामीजी लिखते हैं—

नयन कमल, कल कुंडल नाना । बदन सकल सौन्दर्य-निधाना ॥

पणिक-वेष्ट-आरती सीता, राम, लक्ष्मण मार्गमें जा रहे हैं । मार्गमें स्थित पुर-नर-नारी उन्हेँ देखकर भ्रानन्दमें मग्न हो रहे हैं—

स्वामल गौर कितोर वर, सुंदर सुखमा पेन ।

सरद सर्वरी-नाय मुख, सरद सरोरुह-नैन ॥

चौदह वर्षकी ध्रुवधि समासकर भगवान्‌ अयोध्या-पुरीको और आये । अहाँ ! इस भ्रानन्दी तो कोई सीमा ही नहीं है । विद्याल सद्युदसे भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती । अयोध्या भ्रानन्दसे परिष्कारित है । साथ भरतजी भगवान्‌से मिल रहे हैं ! अहाँ !

ये मुनि नहिँ उठत उठाए । बल कर कृप-सिंधु ठर लाए ॥

स्वामल गौर राम भये ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

( ० )

गोस्वामीजीने कहीं कोई शब्द लिख दिया है तो उसका पूरा पूरा निर्वाह भी किया है । उनके शब्द साधारण कविताकी भाँति वाक्य, तुकान्त वा मात्रा-पूर्वके लिये नहीं हैं । वे सर्वथा सार्थक हैं । यथा—

(७) भरतजी कहते हैं—

आपनि दारुण दीनता, सर्वहिँ कहौँ समुहाय ।

निन देखे खुबीर-पद, जियकी जरनि न जाय ॥

पाठक, ‘जियकी जरनि’ पर ध्यान दीजिये । भरतजी कहते हैं—‘धीरधुवीर-पद’ बिना देखे ‘जियकी जरनि’ न जायगी ।

चित्रकूटाश्रममें श्रीरामजीको दूरसे भरतने देखा । देखकर तो ‘जियकी जरनि’ जानी ही चाहिये । जीजिये गोस्वामीजी वहाँ लिखते हैं—

कर कमलन धनु-सायक फेरता । जियकी जरनि हरत हँसि हेरत ॥

‘जियकी जरनि न जाय’ यह पद पहले लिखकर गोस्वामीजीने इसका कितना ध्यान रखा है । मानसकी समस्त रचना इसी प्रकार है । ध्यान-पूर्वक देखनेसे एवियाँ नजर आती हैं और मन मुग्ध हो जाता है !

(ख) राजर्षि विधामित्र श्रीराम-अश्रमएको दरपयजीसे माँगकर अपने साथ लेकर चलने लगे । पहाँ गोस्वामीजीने निम्नलिखित सोरठा कहा है—

पुरुष-सिंह दौड बीर, हरपि चले मुनि-भय-हरण ।

कृप-सिंधु मति-धीर अलिल निस्व-कारण-करण ॥

पाठक, साधारण दृष्टिसे इस सोरठमें बहुत-से शब्द केवल वाक्य-पूर्वके अर्थ लिखे हुए-से ध्यान पड़ते हैं । पर नहीं, एक-एक शब्दपर ध्यान देनेसे सभी शब्द सार्थक ज्ञात होंगे । बिलार-भयसे हम केवल ‘पुरुष-सिंह’, ‘हरपि चले’, ‘मुनि-भय-हरण’, ‘कृपासिंधु’, और ‘मति-धीर’, इन्हीं शब्दोंकी सार्थकता सिद्ध करते हैं ।

(१) पुरुष-सिंह—आगे धबकर श्रीरामचन्द्रजी ताड़का, सुबाहु आदिका बध करेंगे, इसी आशयसे यहाँ इस शब्दका प्रयोग किया गया है । इस ‘पुरुष-सिंह’ का निर्वाह भी गोस्वामीजीने कितनी सुन्दरताके साथ किया है ! ध्यान दीजिये, सोरठसे विदित होता है कि श्रीराम-अश्रमए पुरुष-सिंह बनकर धरसे निकले हैं । इसके धनतर ध्रुव जनकके भेजे हुए दूतोंके मुखसे इन ‘पुरुष-सिंह’ के रूपमें निकलनेवाले बीरोंका समाचार मुनिये ।

दरपयजीके यह पदनेपर कि—

भैया कहहु कुसल दौड बारे । तुम नीके नित्र नयन निहारो ॥

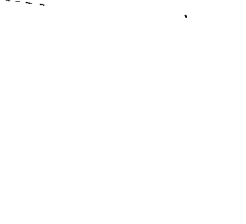
हल उठार देते हैं—

पठन जेन न तवय तउलो । वरु-सिंधु सिद्धि कर गीरलो ॥









रामायतारमें रघुवंशके गुणोंका पूर्ण विकाश ।

रघुवंशमें कहा गया है—

सामाय संमृताभ्यां सत्याय मितभषिणाम् ।

यदासे भिजयी पूर्णा प्रजायै गृहमेषिणाम् ॥

शैशोवऽम्भस्तनिद्यानां यौवने विष्वैषिणाम् ।

बर्द्धरूपे मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुरयानम् ॥

अर्थात् 'रघुवंशी ल्याग या परोपकारके लिये ही प्रेरवर्ष रखते थे । सत्यकी रक्षाके लिये कम बोलते थे । कमनीय कीर्तिके लिये ही विजयकी कांक्षा करते थे । सन्ततिके लिये ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे । बाल्यकालमें विद्याभ्यास करते थे । केवल यौवनावस्थामें ही धर्मसे अविच्छेद विषयोंका सेवन करते थे । बृद्ध होनेपर मुनिव्रत धारण करते और धन्तमें योगके द्वारा शरीरका परिष्कार कर देते थे ।' भगवान् श्रीराममें इन दिव्य गुणोंका पूरा विकास था । इसीका कुल दिग्दर्शन भीषे कराया जाता है ।

त्याग

महाराज दशरथके द्वारा श्रीरामराधाभिक्षेकका निश्चय किये जानेपर सम्पूर्ण अयोध्यामें परमोत्सव हो रहा है । भानुदत्ताचारकी उपास्य तरङ्गोंकी सुमूल ध्वनि पूर्विकामके सागर-तरङ्ग-वर्धनके तुल्य है । घर-घर मञ्ज-व्याहारी बँट रही हैं । सभी लोग अभिक्षेकका उत्सव देखनेके लिये सम्प्राहित हैं । ऐसी स्थितिमें बर्द्ध एक ही भवन ऐसा है जहाँ शान्तिका साम्राज्य छाया है, किन्ती प्रकारका व्यर्थ बोझाह नहीं है, उपवासमत-सहित स्तुतिपाठ और जप जारी है । यह वह आलय है जहाँ रामजुमार श्रीरामचन्द्रजी रामकृष्णजी श्रीजनकान्दिनोमीके साथ दिव्य-भारते कठिन तप-शासनके गुणर भारको ग्रहण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये मार्गनामें प्रवृत्त हैं । इसी अवनसरमें माता हैकेवीके प्रासादने पुजाहट जाती है और श्रीराम सकाल बारा उदयित होकर अपने पृथ्वीय धर्मोत्सा पिताको शोक-विषय स्थितिमें भूमिपर पड़े देखते हैं और वितप्रताके साथ माता हैकेवीने पिताके शोकका कारण पूछते हैं । हैकेवी यह कह देती है कि 'महाराजने पूर्वकालमें मुझे दो वरदान देनेके लिये प्रविष्टा की थी, आज मैंने उसकी पूर्तिके लिये एक क्षणें मुझसे राधाभिक्षेकके लिये संगृहीत सामर्थियोंके द्वारा बलवत्ता प्राप्त-विभूषित होकर राष्ट्रसिंहारवाक्य देना और दूसरोंसे मुझसे और-बलवत्ता-अदा-धारणपूर्वक

मुनिव्रतसे चौदह वर्षके लिये वनमें वास करना माँगा है । मैंने महाराजसे ये दोनों वरदान स्वीकृत कराया लिये हैं और उनकी यही आज्ञा है ।'

एक राज्यसुखामिकायी विविध आशयधोंसे सुक अधिकारप्राप्त युवकके लिये यह आज्ञा महात् भयानक द्रव्य-सम्पत् है परन्तु श्रीभगवान् रामचन्द्रका परम शान्त स्थिर और सुसमाहित वदन-कमलपर जिसको राज्यभिक्षेकके भावी सुखकी आशा हर्षोत्कृष्ट नहीं कर सकी थी, इस आज्ञाको सुनकर भी क्रिडित भी चोम, शोक और बड़ेगकी दिखवाटी रेखा भी नहीं खिंची । श्रीभगवान्ने परम प्रसन्नभावसे समता और धीरताके साथ अनायास ही कहा कि 'माता, सहर्ष आज्ञाका पालन किया जायगा ।'

बाल्यकालमें महान्चर्यव्रत पालनके समय श्रीभगवान्ने गुरु वशिष्ठके द्वारा नामरूपात्मक प्राकृतिक संसारकी असावता और अर्थभंगुरता एवं धारमाकी ही सन्निधानरूपता रूप दिव्यज्ञानको प्राप्त कर लिया था । ये वैराग्य और त्यागकी उस उच्चतम सीमापर पहुँचे हुए थे कि आज राष्ट्रसिंहासनके बन्धुके वनवासकी आकस्मिक आज्ञा, राष्ट्रभोगके त्यागमें भिषाटनकी विपत्ति उनके लिये प्रशान्त और प्रसन्न चित्तको तनिक भी विचलित और दुःखित नहीं कर सकी । भगवान्ने 'समत्वं योग उच्यते' को परिहार्य कर दिखाया । इस समत्वका मानसमें क्या ही यथार्थ वर्णन है ।

प्रकृतां यो न स्ताऽभियेष्टः

तथा न मग्नी वनवाग्दुःखतः ।

मुसामनुत्रं

श्रीरघुनन्दनस्य

सदस्ये न मन्त्रुरमज्जलदन् ॥

सत्य

श्रीभगवान् आदर्श मान्-विभू-भक्त तो थे ही, साथ ही धार आदर्श सत्यवादी थे, धारने हैं-सी-अज्ञातमें भी कभी असत्य भाषण नहीं किया । 'एमे-दिनी-अभाते' की उक्ति खोकरनिद है । असत्य तो बुर रहा, भगवान्ने कभी कटुभाषण भी नहीं किया—

न शक्ति रामः परचरिणि मरिगुम् ।

सत्यके सम्बन्धमें भगवान्ने स्वर्ष कहा है कि 'हे गीता ! मैं मुनिवोंके समीप को प्रविष्टा कर चुका हूँ उगे कीने-की कभी भंग नहीं कर सकता, क्योंकि मरुमे मन्त्र ही मंग रह है । मैं मुझसे, अन्ध-धर और आदर्शकी परिष्कार



अपने दृष्टदेवकी भक्तिके कारण जो अन्य दृष्टदेवके अनुयायीके साथ विवाद करते हैं और उनके निरुद्ध पतजाते हैं ऐसे लोगोंको जो पाप लगता है वही पाप सुम्को हो, यदि मैं कार्य श्रीरामके वनवासका कारण होऊँ ।

### राम-राज्य

धार्मिक रामायणके शालकाय्य और रामचरित-मानसके उत्तराध्यायमें राम-राज्यके सुवसुधा विस्तृत वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि सब लोग परम सुखी थे। रोग, शोक, आतङ्क, भ्रकावस्थ, विपत्ति आदि बाधाएँ किसीको नहीं होती थीं। सब अपने अपने धर्ममें रत थे, 'यथा राजा एव प्रजा ।'

यही इस राम-राज्यकी उल्लेखताका कारण था। सिद्धान्त यह है कि अधिपति अथवा नायकके आचरण और भावोंका उत्तम अथवा दुष्ट प्रभाव आश्रितोंपर अवश्य पड़ता है। अतएव देशके स्वामी, आमके अधिपति, घरके माखिक, मृत्योंके प्रभु, समाजके नेता, धर्मके आचार्य, राजकोंके शिष्य, आमके पुरोहित और न्यायालयके शासक आदिके उत्तम आचरण और व्यवहारसे उनके आश्रित और सम्बन्धी उत्तम तथा निरुद्ध आचरण और व्यवहारसे निरुद्ध होंगे। समाजके हानि-जामके जिये हुएपर बहुत बड़ा दायित्व है। भगवान् श्रीरामचन्द्र इस दायित्व सम्पादनके परम आदर्श हैं। अतएव हम सबको श्रीराम-राज्यका आदर्श अपने सामने रखना चाहिये ॥

## सबसे बड़ा राम-नाम

( श्लोक—भीर्भुत के० वीर अत्रा )

एक पदार्थमें भूमचदल सबसे बड़ी वस्तु है, परन्तु दिग्दर्शनकाके अनुनाम शेषनाम इससे भी बड़े हैं क्योंकि उन्होंने इसको अपने फनोपर उठा रक्खा है।

शेषनामसे बड़े शंकर हैं क्योंकि वह शेषजीको अपने हाथ का गज्जेमें कूट्य या हाररूपसे धारण किये रहते हैं।

शंकराजीसे भी बड़ा कैलास पहाड़ है क्योंकि शिवजी वसतः निवास करते हैं।

कैलाससे बड़ा रावण है, क्योंकि उसने दिग्बिम्बके समस्त महान् कैलासको अपने बाहुबलसे लुप्त कर दिया था।

रावणसे बड़े बाजि हैं क्योंकि उसके पुत्र अंगदने शिष्ट अक्षयामे ही रावणको जिज्ञानेकी भाँति पकनेमें बाँध

रक्खा था, और स्वयं वाली उसे पूर्वमें छटकाये घूमा करते थे। दूसरी कथामें यह भी कहा है कि रावणको बाजिने महीनों अपनी कान्ठमें रक्खा था।

बाजिसे अधिक प्रतापी रामका बड़ वाय्य है, त्रिपने बाजिका संहार किया।

वाय्यसे बड़े महाराज राम हैं, जो उस वाय्यको धारण करते हैं।

रामसे भी अधिक शक्तिमान् प्रतापी और महान् श्रीराम-नाम है क्योंकि उसके वरमें राम हैं जो एक नियम और निष्ठापूर्वक श्रीराम-नामका धर करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् श्रीराम सदा सेवककी भाँति निवास करने हैं। इसीसे श्रीराम-नामका महान् समस्त कीजिये।

## रामायण

चार पाट भव-ताप-हरण, निर्मल-जल सर है ?

लिये अमृत-भण्डार, कही क्या अजर अमर है ?

मरा बिन्दुमें सिन्धु, भकि क्या हरिको प्यारी ?

विविध ज्ञानका स्रोत, कृष्णकी गीता प्यारी ?

जग-जीव-मात्र-कल्याण-रत, पत्र सुलभि 'कल्याण' हत ?

नहिं भकि-अमर-गीता प्रभृति, रामायण तुलसी-रचित ॥

रामचन्द्रमिह 'नवुर' धम० ६०, ६५, ६८, ७०, ७५, ७८

० पवित्र श्रीवतानीशंकरजीकी आशा और वचनेनुसार लिखित ।



यहाँपर महर्षिने सीताके विषयाप होनेकी बात कहकर 'मेरे शब्दोंको मानकर' अर्थात् मैं कहता हूँ इसलिये इससे एतेहभाव रखो-ऐसा कहा है। सीताके विषयमें वहाँ यदि कित्तीको कुछ शंका थी तो महर्षिने उसको अपनी जिम्मेवारीपर विरवास दिखाया। आश्रमवांसी की-पुरुषोंका महर्षिके पचसोंपर विरवास होना स्वाभाविक ही है, इसीलिये उन्होंने मान लिया। परन्तु अयोध्या या राम-राज्यकी समस्त प्रजाके विरवास सम्पादन करनेका क्या उपाय था ? सीताके सम्बन्धमें शंका उपस्थित करना अन्याय था, अपराध था और ऐसा करनेवालेको श्रीराम दण्ड दे सकते थे परन्तु उन्होंने दूरदर्शितासे अपने अधिकारका उपयोग नहीं किया। महर्षिके हाथमें तो यह अधिकार होना सम्भव नहीं था। सुतरां सीताकी सचरित्रताका लोगोंको विरवास दिलानेके लिये उनके चरित्र-प्रसार करनेका विचार ही महर्षिके मनमें आया। महर्षिका उद्देश्य सीताकी सचरित्रता बतलाना था परन्तु सीताका चरित्र रामपर अवलम्बित था और रामने सीताका त्याग कर दिया था। महर्षिके मनमें रामके प्रति अत्यन्त आदर था। अतः उन्हें कुछ काञ्चतक रामचरित्रका ही ध्यान लगा रहा। वेदोंकी दृष्टिकोणसे उनकी दृष्टिमें भी अतएव उन्होंने वैसी ही रचना करके धीरामचरित्र-वर्णनका विचार किया। महर्षिकी ये बातें रामायणमें या अन्य किसी ग्रन्थमें स्पष्ट रूपसे नहीं लिखी हैं परन्तु ये हतनी सहज हैं कि कोई भी अनुमानसे इनकी सत्यताको मान लेगा। इसप्रकार जब महर्षि रामचरित्र-वर्णनके विचारमें रत थे, तब एक दिन बारदगुनि उनके आश्रममें आ पहुँचे। महर्षिने उनसे पूछा—

कौण्डिन्यन्तु सत्प्रभं तेषां गुणज्ञानं कथं दीर्घवान् ।

(भा० रा० १।१।१२)

महर्षि-वर्णित गुणोंका संग्रह तो बहुत बड़ा है, इस समय हमें उससे कोई प्रयोजन नहीं है। महर्षिके पूछनेका तात्पर्य यह है कि अमुक-अमुक गुणोंसे कुछ पुस्तक इस समय पृथ्वीपर मौजूद हैं ? प्रश्न असत्य है। उन्होंने इस प्रश्नमें न तो बरों रामका नाम लिया है और न उनका कुछ अस्पष्टरूपसे ही उल्लेख किया है। इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने संक्षेपमें रामचरित्र सुनाया। नारदके चले जानेपर महर्षि स्नान करनेके लिये तमसा-तीरपर गये। उसी समय कौटिल्य-वधकी कटा हुई और महर्षिके मुखसे शापके निमित्त श्लोकमयी कावी निकली। कहा नहीं होगा कि रामचरित्रमें मन लगा

रहनेके कारण ही महर्षिने नारदजीसे उपर्युक्त प्रश्न किया था। महर्षिके मनमें रामचरित्रके दृष्ट्योवद करनेकी कल्पना थी, हमने यह अनुमान कौटिल्य-वधके लिये ध्यायको दिये गये दृष्ट्योवद शापसे किया है। सीताकी दयनीय दशा देखकर महर्षिका अन्तःकरण जैसे प्रवित हो रहा था, उनकी वैसी ही दशा कौटिल्य-वधपर शोक करती हुई कौटिल्यको देखकर हुई। हमने उपर्युक्त श्लोकसे ही उनके मनमें दृष्ट्योवदनाके लिये संकल्प होना अनुमान किया है। यद्यपि रामायणमें यही कहा गया है कि यह श्लोक उनके मुखसे सहज ही निकल गया था और ऐसा होना वस्तु-स्थितिके अनुसार सम्भव ही है। परन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि दृष्ट्योवदनाकी शोर उनकी जो प्रवृत्ति बढ़ रही थी, यह उसीका परिणाम था, यह बात भी उतनी ही सम्भव है।

इसके बाद महर्षिने बालकायदके पाँचवें सर्गसे पुत्र-कायदतक रामायणकी रचनाकर वह काव्य खव-जुगको पढ़ाया। बालकायदके प्रस्तावनारूपमें प्रारम्भके ओ चार सर्ग हैं वे महर्षिने ग्रन्थ-पूर्तिके समय लिखे थे, यह स्पष्ट है। बीचमें बहुत-से स्थानोंपर पीछेसे मिलाया हुआ प्रचिस भाग है, उसका विवेचन हम 'रामायण-समालोचना' नामक मराठी ग्रन्थके एक स्वतन्त्र प्रकरणमें कर चुके हैं। कहनेका मतलब यह कि जो मूल काव्य था वही महर्षिने खव-जुगको पढ़ाया। इसके बाद यह प्रश्न सामने आया कि इस काव्यका प्रचार कैसे हो ? खवण्यासुरको मारनेके बाद जब नारद वर्षके उपरान्त, शत्रुघ्नी जीटकर अयोध्या जाते समय पुनः महर्षिके आश्रममें रुहरे, तब उन्होंने खव-जुगके द्वारा अपने सैनिकों सहित रामायणका गान सुना, जिससे उन सचको बड़ा ही आनन्द हुआ। दूसरे शब्दोंमें हम बोल सकते हैं कि इसप्रकार यहाँ महर्षिके काव्यकी प्रथमावृत्ति एक ही साथ बिक गयी और उन्हें दूसरी आवृत्ति निकालनेके लिये अधिक उत्साह मिला।

सीताके विषयाप आचरणकी कथा लोगोंमें उसके चरित्र-प्रचार द्वारा विलुप्त करनेके उद्देश्यसे ही महर्षिने रामायणकी रचना की थी, हमारे इस अनुमानकी सत्यता रामायणकी रचनापर मूक दृष्टिसे विचार करनेवालोंके ध्यानमें दृष्टान्त आ जायगी। रामचरित्रपर विशेष प्रचार करनेवाला भाग है अयोध्याकायद। रामके पराक्रमका वर्णन पुत्रकायदमें है। सीताके बर्णन चरित्रका सीता-वर्णन ही प्रारम्भ होता है और यह कथा अरव्यकायदमें है। यह कथा महर्षिने पूरे





वही अनुभव है। शिवाजी महाराजके समय समर्थ रामदास-स्वामीने महाराष्ट्रमें जो जागृति उत्पन्न की थी, उसका अधिक भेद स्वामीजीके उस शिष्य-सम्प्रदायको है जो 'मनका शोक' गाते हुए भावोंका प्रचार करते थे। इतिहासज्ञ इस बातको मानते हैं। उन्होंने भयवा उनके पहले और पीछेके महाराष्ट्रीय धार्मिकी-सम्प्रदायने इसप्रकार धूम-धूमकर भजन गाते हुए लोगोंमें धर्मजागृतिका कार्य बड़ी उत्तमतासे किया। इस समय भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि गोरपा-प्रचारक गण बाजारोंमें धूम धूमकर भजन गाते हुए जागृतिका कार्य करते हैं। महर्षिको योजना भी इसी प्रकारकी थी। उस समय ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने श्रीरामका चरित्र भाँसों देखा था और रामके प्रति उन लोगोंके मनमें प्रेम तथा आदरका भाव भी पूर्णरूपसे था। अयोध्याकायष्टक गान सुनते ही इस प्रेम और आदरका बूना बढ़ जाना कौन बड़ी बात है ?

अयोध्याकायष्टक वह कथाभाग ऋग्वेदके हिसाबसे प्रारम्भमें आया है और छव-कुशके मुलसे श्रोताओंको सबसे पहले वही सुननेको मिलता था। श्राँयों देखी बात वैसी की वैसी सुननेके कारण लोगोंके हृदयोंमें यह विश्वास जमना स्वाभाविक है कि काव्यकी कथामें कहीं भी सत्यका अचलाप नहीं किया गया है। यह विश्वास आगेके कथाभागपर सत्यता और विश्वसनीयताकी छाप जगानेमें विशेष उपयोगी होता है, इसका अनुभव उस समय हो चुका है अब कि मधुपुरीने जोटते समय शत्रुज्य भागमें महर्षिके आश्रममें ठहरे थे। शत्रुज्यने अपने साथी सैनिकों सहित छव-कुशके मुलसे रामायणका गान सुना, शत्रुज्य केवल एक ही रात वहाँ ठहरे, इतने योद्धे समयमें छव-कुशने उन्हें कुछ ही सर्ग सुनाये होंगे। परन्तु गान सुनते ही शत्रुज्यके नेत्रोंसे आँसू रहने लगे और शरीरकी सुधि जाती रही। (वा० ७। ७। १०) इससे स्पष्ट ही पता चलता है कि छव-कुशके द्वारा गाया जानेवाला कथाभाग अयोध्याकायष्टक ही था। इन गानके सुननेपर सैनिकोंकी जो दशा हुई थी, उसका वर्णन करनेसे अयोध्याकायष्टक-सम्बन्धी हमारा अनुमान और भी दृढ़ हो जाता है। यह वर्णन इसप्रकार है—

पदानुगाथ ये राहस्तां हस्ता गीतिसम्पदनम् ॥  
अथानुगाथ दीनाथ ह्यार्थनिधि शत्रुवन् ॥  
परपरं च ये तत्र सैनिकाः संबन्धिरे ॥

किमिदं क्व च वार्तामः किमेतत्संप्रदर्शनम् ॥  
अर्थो यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदे पुनः ॥  
श्रुणुमः किमिदं स्वप्नो गीतकन्धमनुसृतम् ॥  
( वा० रा० ७। ७। ११। ८-२१ )

'शत्रुज्यके साथी लोग गान सुनते ही सिर मुकाकर दीनसे बन गये और 'आश्चर्य'आश्चर्य' पुकारते हुए परस्पर कहने लगे कि 'अरे यह क्या है ? हमलोग कहीं हैं, स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं ? जो बात हमने पहले भाँसों देखी थी वही सुन रहे हैं। क्या यह स्वप्नमें तो नहीं सुन रहे हैं।' रामायणगान सुननेपर उस समय साधारण जनताकी कैसी दशा होती थी, इसकी कल्पना करानेके लिये यहाँ पूरे शोक उद्धृत किये गये हैं। अन्तिम श्लोकमें सैनिकोंका यह उद्गार कि 'हमने जो बातें अपनी भाँसों देखी थी ठीक वही आज सुननेको मिल रही हैं' वही ही महत्त्वका है। रामायणी-कथाका यह भाग जिसमें रामवन-गमनसे लेकर अयोध्या जोट आनेतकका वर्णन है अर्थात् आरण्यकाण्डसे सुन्दकाण्ड-तकका वर्णन, अयोध्याके नागरिकोंमें किसीकी भाँसों देखी घटना प्रायः नहीं है। उनका देखा हुआ कथाभाग तो बाळ और अयोध्याकाण्डमें ही है। इससे भी यह स्पष्ट है कि छव-कुशने जो गान किया था उसका अयोध्याकाण्ड होना ही अधिक सम्भव है।

इसी प्रकार अयोध्यामें भी छव-कुशने अयोध्याकायष्टक गान किया होगा और उसे सुनकर लोगोंकी ऐसी ही दशा हुई होगी। राम-वन-वासके बादकी कथाएँ लोगोंको बीच-बीचमें हृष्ट-उत्थरसे सुनायी पवती थीं। अयोध्याकायष्टकी कथा लोगोंकी जानी हुई थी। सब लोगोंने उन्ने ठीक सिखसिखेवार सुना सब उनका, आगेको कथाके लिये भी इसी प्रकार ऐसा अनुमान होना कि वह भी ऐसी ही सत्य और सुन्दर होगी, और उसके आननेके लिये जिज्ञासा बढ़ना स्वाभाविक था। अतएव किसीने कथा सुननेके लिये, किसीने सत्यान्वेषणके लिये और किसीने सीताका रूपवाद सिद्ध करनेके लिये ही अगला कथाभाग गानेके निमित्त छव-कुशको बहुत ही संग किया होगा। किसीने कहा होगा कि 'जब रावण सीताके पास आया तब वह क्या बरती थी ?' 'वह उसे कैसे खे गया ? हमें वह क्या सुनाओ ?' 'दूमरेने क्या होगा—'रावणने सीताको कहीं रक्ता था ?' 'उसमें और सीतामें क्या बात' हुई ? यह सुनाओ !' मत्तखर पर कि, उस समय ऐसे चिन्तने प्रचल गये होंगे और गानके लिये







'ममता-रत' से कही जायगी, तो ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति व्यर्थ होगी, यथा—

'ममतारत सन ग्यान करानी ।'

'ऊसर बीज बप फल यथा ।'

समुस्त बने न—समझते नहीं बनता । भाव यह कि निगुंघ मझ और गुणमयी मायाके संयोग-वियोगका इसमें बर्णन है । निगुंघ मझ ज्ञेय नहीं है, जाना नहीं जा सकता है जो ज्ञेय हो, स्वयं प्रकाश कैसे जाना जाय ? और प्रकाश ही मझ है, अतएव वह नहीं जाना जा सकता, यथा—

अपेक्षन तुप देखनहारे । विधि-हरि संसु नचावनहारे ।।

वेठ न जानहि मर्म तुम्हारा । और तुमहि को जाननिहारा ।।

माया भी नहीं जानी जा सकती । यह तो अघटन-घटनापटोपत्ती है, जो हो न सके उसीको कर दिखाना मायाका काम है । यथा—

ओ माया सब जगदि नचावा । जासु चरित ठसि कहु न पावा ।।

और संयोग-वियोग मझमें बनता नहीं, यथा—'तपनेइ योग-वियोग न जाके' अतएव यदि समझते बने तभी धार्य है ।

न जत बलानी—बलानते भी नहीं बनता । भाव यह कि उसको कहनेके लिये उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते, यथा—

केसर कदि न जाय का कहिये ।

देखत तव रचना विचित्र अति समुक्ति मनहि मन रहिये ।।

सुन मीतपर चित्र रंग नहि निनु कर रिखा चित्तरे ।

घोर मिटइ न मरइ मीत दुख पादप यह तन हेरे ।।

कोठ कह सत्य सूठ कह कोऊ युगल प्रबल करि मानै ।

तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम तब आपन पहिचानै ।।

(विनव०५०)

पान्थु वेदान्तके भाष्योंको गुरु-मुखद्वारा सुनते-सुनते प्रबुध हो सकता है, यथा—

'निनु गुव होर कि ग्यान ।'

'अनुभवगम्य मरहि जेहि सत्ता ।'

इम चौराहसे 'नित्यानित्य-वस्तु विवेक' रूपी प्रथम साधन बनजाया गया ।

३५

२—ईश्वर अंस जीव अविनासी ।

चेतन अमल सहज मुखरासी ॥

अर्थ—चेतन अमल सहज मुखराशि जीव ईश्वरका अंश है ।

ईश्वर—ईश्वर और मझमें अवस्थानेदानत्र है, वस्तुभेद नहीं है । मझकी कोई अवस्था न होनेके कारण, जाम्र, स्वप्न और सुषुप्तिकी अपेक्षा उसे तुरीय (चौथा) कहते हैं, और उस अपेक्षाको भी छोड़कर उसे तुरीयातीत या केवल तुरीय कहते हैं । यथा—'तुरीयेभ्य केवलम्' वही मझ जब जगत्के प्रकाशकरूप अर्थात् मायापतिके रूपसे देखे जाते हैं, ईश्वर कहलाते हैं । यथा—

जगत प्रकाश्य प्रकासक रामु । मायावीस ग्यानगुनधामु ॥

अंस—उस मायापति ईश्वरका अंश । कहनेका भाव यह कि मझ और मायाको खेकर ही सब प्रपञ्च है । पूर्ण मझका सखट नहीं होता । यथा—'वर्षाणि एकं अलण्ड अनन्ता ।'

फिर भी मजिन-सत्त्वा-माया (अज्ञान) द्वारा उसके अंशकी कल्पना होती है, जिसे कृतस्थ या साधी कहते हैं । साधी कृतस्थ भी मझ ही है, यथा—'ब्रह्मतिपार प्रसु सप उरकासी' परन्तु जैसे महाकारण और घटाकारणमें कल्पित भेद है, वैसे ही यहाँ भी कल्पित भेद है । यथा—'गुण भेद ज्यपि कृतमाया ।' अभिप्राय यह कि ज्ञान-विद्याका आश्रय साधी कृतस्थ है, और मूला-विद्याका आश्रय साधी मझ है । प्रत्येक भ्रमिकमें ज्ञान-विद्या भिन्न भिन्न है, और समष्टि-भूता मूला-विद्या एक ही है । ज्ञान-विद्याके भेदसे उसके साधी-कृतस्थमें भेद माना जाता है । इसीलिये गोस्वामीजीने 'राम' से मझ, ईश्वर और कृतस्थ तीनोंका महण किया है, क्योंकि एक ही तीन भाँतिसे प्रकाशित होता है ।

जीव—मजिन-सत्त्वा-मायामें जब मझका प्रतिविम्ब पड़ता है, तो सत्त्वके माजिन्यसे अमल प्रतिविम्ब हो जाते हैं, और उन प्रतिविम्बोंकी वह मजिन-सत्त्वा-माया ही देह हो जाती है । वही देह कारण्यगरीर कहलाते हैं और उनके अभिमानी बीव प्राण कहलाते हैं । मजिन-सत्त्वा-माया, ज्ञान-विद्या, अज्ञान, अहंकार, कारण्यगरीर और नामरूपामिका ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । गोस्वामीजीने जोबकी मीले पानीसे उपमा दी है । यथा—

मूमि परत भा डारव पनी । मिति जीवहि माया रूपानी ॥

परवत जीव स्ववत मगन्ता । जीव अनेक एक श्रीकन्ता ॥



गिरता है, चौकनेसे चौकता है निदान जलसे बँध जाता है। उसी प्रकार जीव भी मायासे बँध-सा गया। परन्तु जड़का उदाहरण देनेसे किसीको जीवके प्रति जड़का सम्यक् न हो तथा यह गड़बड़ न हो कि अज्ञान तो कोई रस्सी नहीं है जिससे कोई बाँधा जा सके, इसलिये कहा है कि—

‘बँधौ कीर मर्कटकी नाई’

कीरकी नाई—सुगोकी भाँति बँध गया। भाव यह कि बहेलिया दो तिलियाँ गाढ़कर उनके सिरेपर एक तीसरी तिली बाँध देता है, और उस तीसरी तिलीमें बाँसकी मूली पहिना देता है, नीचे दाने रख देता है। सुगोका स्वभाव जैसेपर बैठनेका होता है। अतएव जब वह नलीपर बैठकर दाना लेनेके लिये झुकता है, नली धूम जाती है, सुगो उलटा लटकने लगता है। अज्ञानसे भयवश उसे चौकता नहीं, अन्तमें बहेलिया घाकर उसे पकड़ लेता है। विचार करनेसे यहाँ सुगोको अज्ञानके सिवा कोई दूसरा बन्धन नहीं है।

किसी महात्माने सुगोकी यह दुर्दशा देखकर एक सुगो पाका और उसे लगे पड़ाने—‘देखो! सुगो! दानोंका लोभ करके नलीपर न बैठना, और यदि बैठना तो उसके पूरनेपर निश्च होकर उसे छोड़ देना।’ जब सुगो पकड़कर पचिद्व हो गया तो उसे छोड़ दिया। उस सुगोका वाक्य सुनकर दूसरे सुगो भी वैले ही बोलने लगे। महात्मा बड़े मसख हुए कि सभी सुगोका भय निवृत्त हो गया। परन्तु उनके आशयका कोई ठिकाना नहीं रहा, जब कि उन्होंने एक सुगोको उसीप्रकार उलटा लटके हुए यह पढ़ते पाया कि ‘देखो सुगो! दानोंका लोभ न करना’ इत्यादि। व्यवहार-कालमें (शाचक ज्ञानी) पचिद्वतोंकी भी स्थिति मूखों-सी देखी जाती है। अतएव पचिद्वतोंका अज्ञान-बन्धन दिखलानेके लिये ‘कीरकी नाई’ कहा।

मर्कटकी नाई—बानर भी ऐसे ही बँधता है, उसके हाथ बानेकारक घेदवाली कुदिया दानोंसे भरकर जमीनमें गाढ़ हो जाती है। बानर उसमें हाथ बाँधकर मूलीमें दाने पकड़ लेता है। जब मूली उसमेंसे नहीं निकलती तब बँध जाता है। सोमसे, अज्ञानसे मूली नहीं झोँकता। अतः यह भी अज्ञानसे ही बँधा है। यह मूख होनेसे ‘सुगो पचिद्वत’की भाँति मोच-शाचका पाउ करते हुए बद्ध नहीं है। मूखका बन्धन दिखलानेके लिये ‘मर्कटकी नाई’ कहा।

इसी तरह जीव अज्ञान-बन्धनसे बँधा हुआ है, हजार प्रयत्न करनेपर भी नहीं छूटता।

४—जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई।  
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

अर्थ—जड़ चेतनमें गाँठ पड़ गयी, यह यद्यपि झूठी है पर छूटना कठिन है।

जड़ चेतनहिं—जड़-चेतन दोनों विरुद्ध स्वभाववाले पदार्थ हैं। एक अन्धकार है, तो दूसरा प्रकार है। एक विषय है, तो दूसरा विषयी है। एक मिथ्या है, तो दूसरा सत्य है। इन दोनोंमेंसे एकका दूसरोंमें अण्पास (अम) होना, अथवा एकके धर्मका दूसरोंमें अण्पास होना मिथ्या है। यथा—

छिति जठ पावक गगन समीरा। पंचरश्मि यह अधम सररीरा ॥  
प्रगत सांतनु तब आगे सोआ। जीव नित्य तँ केहि रुगि रोआ ॥

अभिय परि गई—गाँठ पड़ गयी अर्थात् तादात्म्य हो गया।

जड़में चेतनका अण्पास होने लगा और चेतनमें जड़का। इस गाँठको किसीने बाँधा नहीं है। अनादिकालसे पकी हुई है। शिष्यको समझानेमें सुभातेके लिये ‘पड़ गयी’ कहा। कारणशरीरमें जो चेतनका अण्पास हुआ वही प्रतियोग्य है, वही गाँठ है। यथा—

रजत सीप महँ भास जिमि, जया भातुकर बारि।

जदपि मृषा तिरुँ काळमहँ, अम न सकर कोउ टारि ॥

एहि निधि जग हरि आश्रित रहई ॥

जदपि मृषा—यद्यपि गाँठ झूठी है, अममात्र है। मायाके साथ अस्मत्कृत्यका सम्बन्ध कैसा? घटाकारका जलसे सम्बन्ध केवल अमसे सिद्ध है। यथा—

जदपि असत्य देत दुस अहई।

छूत कठिनई—छूटना कठिन है। किसीका इटाया यह अण्पास नहीं इटाया। क्या छोक्का क्या बेदका, सब व्यवहार इसी अण्पासपर टिका है। यथा—

‘कर्म कि होइ सरूपहिं पीन्डे ॥’

५—तबते जीव भयउ संसारी।  
ग्रन्थि न छूट न होइ सुपारी ॥

अर्थ—जयसे जीव संसारों हो गया, तबमें न तो गाँठ छूटती है और न यह सुखी ही होता है।





मोहान्धकारको मिटा देना है। परन्तु अभी विद्-जड़-अन्धिय  
रतो हुई है। विज्ञानरूपिणी बुद्धि इस प्रकार अन्धिय-भेदन  
कर सकती है। यदि अन्धिय-भेदन हो गया तो अज्ञान  
सहाके लिये मिट गया, और सद्बलस्वरूप कैवल्यकी प्राप्ति  
हुई। यही परमपद है। इसी बातको दीपकके रूपकमें  
सुब्रह्मण्यके लिये विद्यदरूपमें बखान किया जायगा।

तबहुं रुदाचित्—भाव यह कि ईशके ऐसा संयोग कर  
देनेपर भी कार्य-सिद्धिमें बहुत सन्देह है। क्योंकि साधन  
बहुत कठिन है और संसारी जीव रोगी हैं। रोगीकी क्या  
सामर्थ्य ओ कठिन साधनका सामना कर सके। यथा—

मोह सकल न्यायिनकर मूला, तेहिते पुनि उपरै बहु सुखा ॥  
यदि निधि सकल जीव जग रोगी। सोक हर्षमप प्रीति विवोगी ॥

एक न्यायिनकर नर मरु, ए असाध्य बहु न्यायि ।  
सन्तत पीठहिं जीव कहै, सो किमि रहइ समाधि ॥  
और दूसरी बात यह है कि 'ब्रह्मतोपासित-ज्ञान'  
विसर्गमें भक्तिकी सहायता नहीं है, सिद्ध नहीं होता, यथा—

के ग्यानमान विमल तव भयहरनि मगति न आरती ।  
ते पाए मुरदुर्लभ पदादधि परत हम देखत हरी ॥  
सो—यह विद् ( अस्ति, भाति, प्रिय ) और जड़  
( नामरूप ) भी गौड ।

विद्यारह—अर्थात् वह गौड सुब्रह्मे । अस्ति ( सत् )  
भाति ( चित् ) और प्रिय ( आनन्द ) ये तीन अंग मझके  
और नाम और रूप, दो अंग मायाके, इन्हीं पाँचोंने उल्लस-  
कर प्रपञ्चकी गौड बना रखी है, और इन्हींके उल्लसनपर  
उल्लसन पड़नेसे संसार बना हुआ है, सो सुब्रह्म जाय ।  
अर्थात् तीन अंग मझके प्रथक् और ( नाम-रूप ) दो अंग  
मायाके प्रथक् हो जायें । गौडके अँधेरेमें होनेके कारण  
प्रकाशके लिये दीपका संकल्प हुआ। दीपके साधनमें,  
टहरनेमें, ऐसा विग्रह बाहुल्य है कि संयोग घनुपुल होनेपर  
भी कहना पडा कि कदाचित् ही वह सुब्रह्म सके। यथा—

साधन मोह-पास क्यों रूटे ।

बाहिर कोटि उपाय करिय अभिन्नतर अन्धिय न रूटे ॥  
घृत-पूरण कराइ अन्तरगत सति प्रतिबिम्ब दिखावे ।  
ईधन अग्नि लगाइ करपसत औटे नास न पावे ॥  
तरुकेष्टरमेंह नसि बिहंग तरु कटे भी न अँटे ।  
साधन करि अनिचार करहिं मन सुद होइ कहु कैसे ।  
अन्तर मलिन विषय मन अति तनु पावन करी हमारे ।  
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीक दिविधि विधि मोरे ॥  
तुलसिदास हरि-गुरु-कृपा विनु विमल विवेक न होई ।  
विनु विवेक संसार-घोर-निधि पार छि पावे कोई ॥

## रघुवर भजो

भवहु मन रघुवर दीनदयाल ॥टेका॥

बोलो परण-सरोज न भविही,

किरिही भ्रमत विहाल ।

मुचिरत ही तुम नाम सगाधिप

नसिहै भव-दुस-ज्याल ॥१॥

बक-निरिन्ह मुसदायक धनवत्

इयामल गात रसाल ॥

दो वदन पर विन्वु-विनिन्दित

बन्दन माल विसाल ॥२॥

शीतमुकुट शोभित श्रुति कुण्डल

धनुपर दशमुरा फाल ॥

पर धामांग जनक-तनया-छवि

नयनन्ह करत निहाल ॥३॥

वेर करत निशिपर गन तारधो

को जस निबन्धन फाल ॥

“धीमन” जाहि भजे भय भाजन

दुरादायक जग-जाल ॥४॥

—



कल्याण.





# संक्षिप्त रामचरित माला

## बालकाण्डम्

- १-श्रीमद्विष्णु-कुल-दीपक। राम
- २-प्रितजन-कल्पक-सीता-राम
- ३-राक्षस-कुल-बल-शिक्षक राम
- ४-भकावन-सुविचक्षण राम
- ५-मायातीत-गुणाश्रित राम
- ६-सरत्रैकगुणाधिष्ठित राम
- ७-यशेश्वरहित-पूजित राम
- ८-कर-धृतधर्मविराजित राम
- ९-नरसुरवर-दत्ताभय राम
- १०-याचातीत-गुणोज्ज्वल राम
- ११-पूत-मानवरुपाश्रित राम
- १२-नेत-विधि-शङ्कर-माधव राम
- १३-कौसल्यावर-नन्दन राम
- १४-दशरथतोषण-कारण राम
- १५-कौशिकलम्भाखिलशर राम
- १६-घोरासुरयोपान्तक राम
- १७-विश्वामित्र-सहायक राम
- १८-मारोचस्मयवारक राम
- १९-चैतन्यद-यदु-यद-नख राम
- २०-गीतम-हृदयानन्दन राम
- २१-जनक-ताप-फल-रूपक राम
- २२-खण्डित-भग्न-शरासन राम
- २३-क्षोणी-सनया-संगत राम
- २४-निर्मित-भार्गव-कुलमणिराम
- २५-साकेतपुरी-भूषण राम
- २६-सीता-हृत्पञ्जर-शुक राम

## अयोध्याकाण्डम्

- २७-केकय-सनया-वञ्चित राम
- २८-पिशाक्षा-परिपालक राम
- २९-सीता-सूक्ष्मण-सेवित राम
- ३०-पूत-ताप-सन्धेपाश्रित राम
- ३१-परम-सुहृद्-गुह-पूजित राम
- ३२-भास्कर-मुदावह राम
- ३३-चित्रकूटतट-नियसित राम
- ३४-कैकेयितनपार्षित राम
- ३५-अचलसमीहित-पादुक राम
- ३६-हृत्-पैतृक-भव-राघव राम

## अरण्यकाण्डम्

- ३७-भीषण-कानन-विहरण राम
- ३८-कर-विराध-विदारक राम
- ३९-मुनि-जनगण-दत्ताभय राम
- ४०-राकाचन्द्र-निमानन राम
- ४१-दिव्य-महामुनि-संभुत राम
- ४२-कुम्भज-दत्त-महायुध राम
- ४३-पुण्य-सुतीक्ष्णाभ्यर्चित राम
- ४४-परिचित-गृध्रकुलाधिप राम
- ४५-पञ्चयत्रीतट-संस्थित राम
- ४६-हृत्-शूर्पणखा-नासिक राम
- ४७-हृत्-खरदूषण-दानव राम
- ४८-माया-हरिणोद्भूत राम
- ४९-दारित-भारीचासुर राम
- ५०-दैत्येश्वर-हृत्-भूसुत राम
- ५१-द्वारान्येषण-सत्पर राम
- ५२-गृध्राधिप-संबोधित राम
- ५३-गन्धक-बन्धोन्मथक राम
- ५४-शबरी-दत्त-फलाशन राम
- ५५-पंपालोक-दुःखित राम
- ५६-पवनात्मज-संपूजित राम

## किष्किन्धाकाण्डम्

- ५७-रविज-निषेदित-निज-कवचराम
- ५८-प्रासावनिजा-भूषण राम
- ५९-लीलोक्षिता-सुरतनु राम
- ६०-खण्डित-सप्त-महीरह राम
- ६१-यकाशुगनि-हृत्तेन्द्रज राम
- ६२-अभियुक्तार्कतनुभव राम
- ६३-गिरिधर्यन्तर-संस्थित राम
- ६४-यानर-सेना-परिवृत राम
- ६५-सीतालोक-सत्पर राम
- ६६-प्रेषित-यानर-नायक राम
- ६७-गृध्र-सुबोधित-यानर राम

## सुन्दरकाण्डम्

- ६८-जलनिधि-लङ्कनपदु-भट्टराम
- ६९-लङ्कान्तक-समुपासित राम
- ७०-सीतानन्दकरार्चित राम
- ७१-मारुतसुत-दत्तोर्मिक राम

- ७२-विश्रावित-निजनामक राम
- ७३-दूषित-रावण-विक्रम राम
- ७४-भस्मीकृत-लङ्कपुर राम
- ७५-प्राप्त-सती-चूडामणि राम
- ७६-जलनिधि-धेला-वासक राम

## युद्धकाण्डम्

- ७७-शरणाक्रान्त-विभीषण राम
- ७८-शयनीकृत-दर्भोत्कर राम
- ७९-जलनिधि-गर्व-निवारकराम
- ८०-वारिधि-बन्धन-कौशल राम
- ८१-विफोटक-परितोषक राम
- ८२-विपुल-सूचेलालगत राम
- ८३-अहिपाशोत्कर-पीडित राम
- ८४-खण्डित-फणि-शर-बन्धनराम
- ८५-घटकर्णासुर-विदलन राम
- ८६-नाशित-मूल-बलोत्कर राम
- ८७-रावण-कण्ठ-विलुण्टक राम
- ८८-अभियुक्तार्कित-सोदर राम
- ८९-सीतालोक-कौतुक राम
- ९०-शुचि-परिशोधित-सीताराम
- ९१-ब्रह्म-न्द्रादि-समीडित राम
- ९२-दशरथ-दर्शन-भोदित राम
- ९३-मृत-यानर-संजीवक राम
- ९४-पुष्पक-यानाधिष्ठित राम
- ९५-प्रकटित-पाप-विमोचक राम
- ९६-विरचित-पशुपति-पूजनराम
- ९७-भारद्वाजाचितपद राम
- ९८-मरतोत्कण्ठा-पूरक राम
- ९९-जनयित्री-हर्षप्रद राम
- १००-नरयानर-दितिआवृत राम
- १०१-अभियुक्तोत्सव-हर्षित राम
- १०२-कदनामुद्रितवीक्षण  
उत्तरकाण्डम्
- १०३-संजीवित-विश्रामक राम
- १०४-स्मरणक-सु-नुष्टात्मक राम
- १०५-अपवाद-भयैकार्दित राम
- १०६-आजड-भोक्षप्रद-यदु राम
- १०७-एक-शिलानगरालय राम
- १०८-योगीन्द्र-जसुपूजित राम

## राज्य

( लेखक-श्री. वि. वि. तालमी पुन )

कहा वैदेहीने—“हे माघ,  
भभी तक घातों मारें साथ  
भोगते थे तुम राम-सुख-भोग,  
व्ययलगा भेट रही यह योग।

बड़ेके लिए बड़ा ही दण्ड,  
प्रजाकी घाती सदा भयण्ड।  
तदपि निश्चिन्त रहो तुम नित्य,  
यहां राहित्य नहीं, साहित्य।

रहेगा साधु भरतका मन्त्र,  
यरास्वी लक्ष्मणका बल-तन्त्र।  
तुम्हारे लघु देवरका धाम,  
मातृ वारित्य-हेतु है राम।”

मित्र-सा करके, तुमको यात्र,  
राज्य देने हैं कोसलराज।  
तुम्हें रचना है यह अधिकार।  
“दिये, पर राज्य भोग या मार।”

“नाथ, यह राज-विधान पुनीत,  
किन्तु लघु देवरको ही जीत।  
हुआ जिनके अर्घान नृप-नोह-  
सचिव-सेनापति युत सस्नेह!!”

## विवाहके समय सीताकी अवस्था

( लेखक-पण्डित श्री. जे. नारायण विद्याभूषण )

१-उन आनेके समय अयोध्यामें रहकर सास-ससुरकी सेवा करने और राजा भरतकी आज्ञामें रहनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी जब सीताको समझा रहे थे तब सीताने रामकी इन बातोंपर कुछ भी ध्यान न दे उनसे स्पष्ट कहा था कि स्वामीके प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है इस बातको पहलेसे ही मैं खूब जानती हूँ। आपके साथ मुझे किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, कैसे बर्तना चाहिये-इस बातकी शिषा मुझे अपने माता-पितासे पर्याप्त मिल चुकी है।

२-श्रीराम जब किसी प्रकार भी सीताको साथ ले जानेके लिये राजी नहीं हुए तब सीताने और भी ओरसे कहा कि मैं अपने नैहरमें प्राणियोंके द्वारा इस बातकी पहलेसे ही सुन चुकी हूँ कि मेरे भाग्यमें वनवास लिखा है। जिस दिन मैंने उन सब विद्वानोंसे यह बात सुनी थी उसी दिनसे

मेरा भी मन वनवासके लिये उल्लासित हो रहा है।

उपरोक्त दोनों अवतरणोंमेंसे एकसे यह पता लगता है कि विवाहसे पूर्व ही सीताके माता-पिताने उसको पत्नीक कर्त्तव्य भलीभाँति सिखा दिया था और दूसरेमें विवाहके पूर्व ही उपोत्तिषियोंके द्वारा सीता अपने भाग्यमें वनवास होना सुन चुकी थी। वनवास अवश्य होगा इसके लिये सीताने अपने मनको भलीभाँति तैयार कर रक्खा था। विवाहके बाद न तो सीता कभी नैहरगयी और न सीताको पालनेवाली माता ही अयोध्या आयी। अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सीताको माता-पिताके द्वारा पत्नीके कर्त्तव्यकी शिषा नैहरमें ही मिल चुकी थी।

† “अथपि च महाप्राज्ञ माझगानां मया सुतम् ।

पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तुम्यं किल मे वने ॥

लक्ष्मणयो दिवातिथ्यः सुत्वाहं वचनं गृहे ।

वनवासकृतोत्सवो नित्यमेव महावत् ॥”

( भा० २। २९। ८-९ )

• “अनुशिष्टसि मात्रा च पित्रा च विविधाभयम् ।

नासि संप्रति बन्धुयो वृत्तितन्त्रं मया मया ॥”

( भा० २। २०। १० )

श्रोतियोंके द्वारा वनवास-सम्पन्धी भविष्यहायी भी विवाहके पहले ही हुई थी। 'पुरा पितृदे' की उक्ति ही स्पष्ट प्रमाण है। जब रामायणकी कुछ और उक्तिवाँ देखिये—

१-राम लक्ष्मणको लेकर विधामित्रजी जनकपुरीमें पहुँचे, उस समय दोनों माइयोंके अनुपम रूप-लावण्य और यौवनते उल्लसित, सुसंगठित शरीरको देखकर जनकने आश्चर्यके साथ मुनिले पूछा—'हे मुनिवर ! ये दोनों नवयुवक कुमार—जिनकी चाल हापी और सिंहके समान, जिनका बल देवनाओंके समान और जिनका रूप अरिक्तीकुमारके सरल है—किसके सुपुत्र हैं ?

यहाँ राजा जनक श्रीराम-लक्ष्मणको 'समुपस्थित यौवन' शब्दों में नवयुवक कहते हैं, सुतराँ विवाहके समय इन दोनों माइयोंके वय और शारीरिक बलका भी थोड़ा पता लगा जाता है। जनककी यह उक्ति धनुष-भङ्गके पूर्वकी ही है।

४-यज्ञमें विग्रह करनेवाले रावणके अनुचर मारीच और सुबाहु नामक कठोर राक्षसोंका वध करनेके लिये जब विधामित्र श्रीराम-लक्ष्मणको लेने दशरथके यहाँ आते हैं, तो रावणके नामसे ही भयभीत होकर दशरथ कहते हैं—'मेरे इस कमलजनन रामकी अवस्था अभी केवल पन्द्रह वर्षकी ही है, इस वयमें यह राक्षसोंके साथ कैसे युद्ध करेंगे ?' इस प्रश्नसे यह पता लगता है कि इस समय रामकी अवस्था पन्द्रह वर्षकी थी। अनेक जगह धूमने और राक्षसोंसे युद्ध करनेके बाद श्रीराम जनकपुरमें जाते हैं और पिछे धनुषको छोड़कर जब जानकीका पाणिग्रहण करते हैं, तब राम-लक्ष्मण अवरय ही यौवन-सम्पन्न हैं।

२-विरधामित्र जनकसे कहते हैं कि 'ये दोनों राजकुमार आपके यहाँ सुमुखसिद्ध धनुषको देखना चाहते हैं। इसके उत्तरमें जनकजी बहुत-सी बातें कहनेके बाद धनुषकी प्राप्ति,

१ 'पुनस्तं परिपन्च प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ।  
 इमौ कुमारौ भद्रं ते देवमुत्पराक्रमौ ॥  
 गर्जतिहृत्ती वीरते शार्ङ्ग-वृषभोपमौ ।  
 अश्विनाश्वि रूपेण समुपस्थित-यौवनौ ॥  
 ..... इत्य पुनौ महामुने ! ॥

( वा० १ । ५० । १७-१९ )

३ 'कन-नोद्वरुणो मे रामो राजीशोचनः ।  
 न युद्ध योग्यात्मस्य परवामि सह राक्षसैः ॥'

( वा० १ । २० । १२ )

सीताकी उत्पत्ति, सीताके ब्याहके लिये धनुष-मंगका प्रथम प्रयत्ति अनेक प्रकारकी चर्चा करते हुए करते हैं 'इत्यकार जब मेरी अनोपनिजा कन्या सीता 'वर्द्धमाना' प्राप्तयौवना हुई तब बहुत-से राजा इसका पाणिग्रहण करनेकी आशासे आये, पर सबको असफल होना पड़ा। कारण, शिव-धनुषको कोई भी उठा नहीं सका।'

मूल श्लोकमें 'वर्द्धमाना' शब्द है, टीकाकारोंमेंसे किसीने इसका अर्थ 'यौवनसम्पन्ना' किया है तो किसीने 'प्राप्तयौवना'। इससे यह पता लगता है कि विवाहसे पूर्व सीताके शरीरमें यौवनका सूर्यपात हो गया था। अतएव 'समुपस्थित यौवन' रामके साथ जब सीताका विवाह हुआ तब वह भी 'वर्द्धमाना' अर्थात् 'प्राप्तयौवना' थी।

१-राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ क्रमसे सीता, उर्मिला, माण्डवी और सुतीकीर्तिका विवाह हो गया। महाराज दशरथ पुत्र और पुत्र-वधुओंके साथ अयोध्या लौट आये। राजमहलोंमें महोत्सव हो रहा है। अनेक प्रकारके झो-आचार, मंगलिक कार्योंके बाद सीता आदि चारों बहिनें अपने-अपने पतियोंके साथ निर्जनमें मुदित मनसे आनन्द-प्रमोद करती हैं।

मूल श्लोकमें 'रेमिरे' शब्द है, इसका अर्थ रमण करना होता है। इससे सीता आदि चारों बहिनोंकी व्यवस्थाका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राम-लक्ष्मण तो 'प्राप्तयौवन' थे ही, यह बात जनकजी कह ही चुके हैं।

७-वनवासरके समय अत्रिके शाश्रममें धनश्याजीके साथ सीताकी पातिव्रत-धर्मकी बातें हो रही थीं, तब सीताजी बहती है कि—'विवाहके समय मेरी माताने अत्रिके समुल्ल मुम्को जो उपदेश दिया था, उसे मैं किमित्र भूली नहीं हूँ। उन

३ 'भूतलादुल्लितां तं तु वर्द्धमानां प्रमाणाश्रमम् ।

वरयामास्तृणाल राजानो मुनिपुत्रम् ।  
 तेषां त्रिहातमानानां शेषं वनुराष्टमम् ।  
 न शेकुप्रांहे तस्य वनुरस्तोत्तेजसि वा ॥  
 प्रत्याक्यादा मृणवतः × × ×'

( वा० १ । २२ । १५, १८, १९, २० )

४ 'अश्विनाश्विनाश्वि रूपेण सप्तो राजकुमारः ।  
 रेमिरे मुदिताः सर्वा मर्म्मिः सहिदा ररः ॥'

( वा० १ । २० । १२-१४ )



उपदेशोंको मीने अपने हृदयमें रख छोड़ा है, माताने कहा था कि स्त्रीके लिये पति-सेवासे बचकर और कोई भी तप नहीं है।'

पतिके प्रति पत्नीका क्या कर्तव्य है, इसके सम्बन्धमें सीताकी माताने उसे विवाहके समय धार्मिक सामने उपदेश दिया था। अतएव यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उस समय सीतानीकी उन्नत इत्समकारका उपदेश ग्रहण करने-योग्य अवसर हो गयी थी।

—बातों-दो-बातोंमें सीताने धनसूयासे कहा कि 'पिताने जब मेरी 'पति-संयोग-सुखम' धवस्था देखी तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। जैसे दरिद्रको धन-नारा होनेपर विषाद होता है मेरे पिताको भी वैसा ही हुआ।'

इस प्रसङ्गमें 'पति-संयोग सुखम' शब्द आता है, किन्ती-किन्ती टीकाकारने इस पदकी व्याख्यामें 'विवाह-योग्य-वयस्य' लिखाकर धरना पिष्ट सुझाया है किन्तु सीताने इसके बाद जो कुछ कहा है उसने यह पता लगता है कि सीताके लिये कन्या-श्राव-प्रीतिजनककी धरनेको बहुत ही दुःखी और धरमाश्रित समझने थे। सीता मानो उस समय अत्यन्त धरपत्नीया सी हो गयी थी।

बादपर 'पति-संयोग-सुखम' पदका अर्थार्थ धर्य करनेके लिये सामान्यका ही आशय खेना होगा। 'भूमिरे।' तथा- 'वे पतिसेके साथ निर्वन्धमें कामोद-ममोद करने लगी' यह अर्थ विवाहके हीक बादका है और विवाहके पूर्वकी धरणा 'पति-संयोग-सुखम' थी, जिसको देवदत्त पिताके विष्णुकी सीमा नहीं रही। अतएव इसका अर्थ यह ही कर लेना है कि, 'बर्तमाना' कर्मीके साथ 'मातृपौत्र' उत्तिका विवाह हुआ।

इस तरह 'मातृपौत्र' शब्द जब 'बर्तमाना' सीताके अर्थ विचार करते हैं, इस समय उनकी धरणा प्रायः योंही करती है। वस्तु सीताकी क्या धरणा है !

१. मातृपौत्रके अर्थ धरणा लक्ष्मणकी है।  
२. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।  
३. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

(१० १ ११६१०-२)

१०-११६१०-२

विष्णुकी धरणाः ४

(१० १ ११६१० ६)

उपयुक्त भाषाओं स्वयंको सरल सीधा अर्थ करनेसे तो वही प्रतीत होता है कि विवाहके समय सीताकी धरणा रामसे सम्भवतः दो एक वर्ष छोटी होगी। ऐसा नहीं मानें हैं तो रामायणके उपयुक्त स्वयंकी व्याख्या करना कठिन हो जाता है। यह तो हुई विवाहके समय सीताके उन्नत बात, किन्तु रामायणमें ही दूसरे स्वयंपर सीता करने ही मुझे अपने उन्नत कुछ और ही बतलाती है, उसे धरनेतक यह स्वीकार करना पड़ता है कि विवाहके समय वा ५ वर्षकी दुःखमुँही लक्ष्मी थी।

परिभाषाके रूपमें जब रावण सीताका हाथ धरने आता है तब सीता संसार-त्यागी माझय प्रतिधि, वा ५ करनेसे शायद कुछ होकर शरार से देगा, इस आशयसे धरणा परिषय देखी हुई कदती है कि 'मेरे मित्रिभारिणी जनककी कन्या, श्रीरामचन्द्रजीकी धरणीकी सीता हूँ। मैंने बारह वर्षतक वृषावृद्ध बंसी भीरामके धरमें विद्यामन्त्र मनुष्यके उपयुक्त सभी सुख भोग लिये हैं, अब मेरे कोई भी शायत शेष नहीं है। मेरे महातेजस्वी स्वामी रामकी धरणा इस समय पत्नीतक वर्षकी और मेरी अठारहवीं थी।'

बारह वर्षतक समुद्रालमें रहनेके बाद तोरवें वर्षके अगले ही रामके राज्याभिषेकका प्रस्ताव हुआ और तब तब उपयुक्तों और अक्षय्यको साथ लेकर बतमें आ गये। (बा० ४। ४०। ५-७)

इस अर्थाने यही पता लगता है कि जब सीता बतमें आती थी तब समय उसकी उन्नत आठार वर्षकी थी, विवाहके बाद बारह वर्ष बाद समुद्रालमें लगी, तब तब रहने हैं वः वर्ष। पर क्या सीताका विवाह वः वर्षकी उन्नतमें हुआ था ? क्या वा वर्षकी धरणा का विवाहको विवाहके समय ही धरने लगीके धरणाका अर्थ विवाह था और उन्नत अर्थमात्रको सीताने अपने इतने ही रूप लया था ? क्या इस वः वर्षकी विवाह का विवाहको ही

१. मातृपौत्रके अर्थ धरणा लक्ष्मणकी है।

२. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

३. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

४. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

५. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

६. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

७. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

८. मातृपौत्रके अर्थ धरणा के अर्थ धरणा है।

(१० १ ११६१०, १, १, १०)

'वर्तमाना' या 'प्राप्तयौवना' भ्रानकर राजपि जनक विवाहकी किन्तासे व्याकुल हो अपने चारों ओर झँपेरा देखने लगे थे ? क्या छः वर्षकी लक्ष्मीके लियेही उसका 'पति-संयोग-सुलभ' समय समककर पिता सीरध्वज उसके विवाहके लिये व्याकुल हो उठे थे ? और फिर क्या यही श्रवण बालिकापुत्र समुदाय पहुँचकर अपने-अपने पतियोंके साथ निर्जनमें धामोद-प्रमोद करने लगी थीं ? इन सबका क्या उधर है ?

एक विवाह और है। रामने सोलह वर्षकी 'प्राप्त-यौवन' अवस्थामें सीतासे विवाह किया। यह बात ऊपर कही जा चुकी है, इसके बाद जब राम वन जाते हैं तो सीता उनकी उम्र पचीस वर्ष बतलाती है। यह शब्द भी रामायणके ही हैं। किसी किसी ग्रन्थमें शब्दके प्रति कहे हुए सीताके शब्दोंमें 'मती मशोतेन वयना पञ्चविंशकः' की जगह 'सप्तविंशकः' पाठान्तर है। वन-गमनके समय कौसल्याने रोते-रोते रामसे कहा है 'हि स्थुनन्दन, दसवें वर्षमें तुम्हारा उपनयन हुआ था, तबसे मैंने सतरह वर्ष इसी आशामें बिताये थे।' इससे भी रामकी अवस्था उस समय पूरे सत्ताईस वर्षकी सिद्ध होती है।

इस वर्षान्तसे पाठक कुछ अनुमान कर सकेंगे कि विवाहके समय सीताकी अवस्था कितनी थी ? उपर्युक्त स्थलोंके अतिरिक्त रामायणमें छोटी-मोटी ऐसी कई बातें और मिलती हैं जिनसे यह भलीभाँति प्रमाणित होता है कि अष्टमी तरह ज्ञान-यौवन-सम्पन्ना होनेपर ही सीताका विवाह हुआ था। अन्य रामायणोंमें देखिये—

अध्यात्मरामायणके आदिकाण्डके छठे अध्यायमें कहा है कि मियिलाकी राजसभामें श्रीरामचन्द्रने हैंसते हुए शिव-धनुषको तोड़ डाला। राजा जनक और सारा रत्नवास भ्रानन्दसे विह्वल हो गया। सीता सोनेकी माळा हाथमें लिये मुकुटुराती हुई धीरे-धीरे रामके समीप धायी और रामके गलेमें माळा पहनाकर मानो वह एकदम प्रेमसागरमें डूब गयीं। मूक वर्षानका चमत्कार देखिये—

सीता स्वर्णवर्षी माळो गृहीत्वा दक्षिण करे ।  
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वमरणभूयिता ॥  
मुकाहारे कर्णपदैः कृष्णकित्तनूपुराः ।  
दुर्दुहपरिसंबीता नखान्तम्याजितस्तनी ॥  
रामस्योपरि निक्षिप्य हस्यमाना मुदं ययौ ।

यहाँ 'स्मितवक्त्रा' और 'हस्यमाना मुदं ययौ' इन दोनों विशेषणोंसे सीताकी विवाह-कालीन अवस्थाका प्रयास आभास मिलता है। छः वर्षकी बालिकाके लिये ऐसी

उत्कर्षा कभी नहीं कही जा सकती। फिर यदि इनको भी छोड़ दिया जाय अथवा कानूनके दावपेंचसे इनका दूसरा धर्म करनेकी स्थिति चेष्टा की जाय तो 'नखान्तम्याजितस्तनी' विशेषणके द्वारा तो समीको यह मानना होगा कि विवाहके समय सीता 'प्राप्तयौवना' थी और उसकी अवस्था वाल्मीकि-रामायणके अनुसार अवश्य ही 'पति-संयोग-सुलभ' हो चुकी थी, इस प्रसंगको पढ़कर कोई भी संस्कृतका विद्वान यह नहीं कह सकता कि उस समय सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी।

और देखिये, श्रीराम प्रकृति चारों भाई अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ शयोध्या लौट धाये। राजमहलमें बनी पूज्याम है। सबके साथ मिलने-जुलनेके बाद 'देवप्रतिम राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न अपने-अपने महलोंमें अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ धामोद-प्रमोद करने लगे। जैसे वैकुण्ठमें लक्ष्मीके साथ विष्णुका समय सुखसे बीतता है वैसे ही माता-पिताके आदरसे श्रीरामसीताका समय भी बड़े भ्रानन्दसे बीतने लगा।' अध्यात्मरामायणमें व्यासजीकी यह उक्ति वाल्मीकिजीकी उक्तिसे बिल्कुल मिलती-जुलती है हाँ, अध्यात्मरामायणमें सीताको विवाहसे पूर्व ही 'वैभवे' 'देविरे मुदिता रवः' एवं 'पति संयोग-सुलभं वयः' इन सब युक्तियोंसे सीताका वय यौवनोन्नत ही सिद्ध होता है।

कल्कि-पुराण तृतीयोऽंशके तीसरे अध्यायमें जिला है कि मियिलाके स्वयंवर-समारोहमें जब अगवान् श्रीरामचन्द्र धनुष तोड़नेको लड़े हुए, सब जनकने उनके प्रति आदर दिखलाया और जानकीनेभी झँसोंसे उनकी पूजा की—

स मूष परिपुत्रितो जनकनैश्चिरंरिचित्रः ।  
कराहकठिनं वतुः करसरोरुदे संहितम् ॥  
यहाँ यह देखा जाता है कि रामका उत्साह बढ़ानेके लिये सीताने नृदाश-यात किया, इससे सीताकी उग्रता पूरा पता न लगनेपर भी यह तो समझा ही जा सकता है

१ रामचन्द्रमण्डुमभरता देवसम्पिताः ।  
स्वां स्वां भार्यानुदाश रेनिरे स्व-नमन्दिरे ॥  
माञ्जुवर्ण्यो संहृष्टो रामः सीतासमन्विताः ।  
रेने वैकुण्ठधरने जिया सह पना रतिः ॥



# श्रीरामचरितमानस-पात्र-परिचय

(लेखक—श्रीमन्नानाप्रसादजी कानोबिया)

**अहमदन**—रावणका मामा और उसका सेनापति था, ब्रह्माके युद्धमें महावीर हनुमान्जीद्वारा मारा गया था। इसके मसल और पूजाघ दो भाई थे, पिताका नाम सुमाली और माताका नाम केतुमाली था। दो बहनें थीं—रावणकी माता केकली और दूसरी कुम्भीनसी।

**अपत्य**—महर्षि मिश्रावरुणके पुत्र थे, इनका पहला नाम मान था। विन्ध्यपर्वतके अहङ्कारको पूर्ण करनेके कारण इनका नाम अगस्त्य पड़ा। महर्षि बध्या धारिष्यके यज्ञमें एक बार निमन्त्रित होकर गये थे, वहाँ उर्वराको देखकर उनका रेतःपात हो गया था, उस रेतका जो भाग कुम्भमें पड़ा, उससे इनकी उत्पत्ति हुई, इसीलिये इन्हें कुम्भज भी कहते हैं। वृषासुरके मरनेके परचान् कालकेयादि राक्षस समुद्रमें जा दिपे और वहाँसे निकलकर मुनियोंको प्राप्त देने लगे। इन्होंने देवताओंके आग्रहसे समुद्र पानकर उन राक्षसोंका नाश करा दिया था। छापने ही राजा मनुष्यको शाप देकर इन्द्रत्वसे स्थूल करके सूर्योनिर्गम भेज दिया था। इनकी पतिव्रता पत्नीका नाम जोषामुद्रा था। भगवान् राम वनवासके समय इनके आश्रममें गये थे।

**अहद**—वानरराज वालिके पुत्र थे। श्रीरामचन्द्रजीने वालिके मारकर सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठाया और अहदको पुत्रराज बनाया था। अहदकी माताका नाम तारा था। धार रामचन्द्रजीके दूत बनकर रावणको सभामें गये थे और वहाँ अपना पद रोपा था, जिसे कोई नहीं हटा सका था। सुभीवकी सेनाके साथ लड़ामें जाकर, इन्होंने अपनी वीरताका परिचय दिया था। एक दिन युद्धमें अहदने इन्द्रजीवको भी हराया था।

**अज**—धनोष्णाके सूर्यवंशी राजा रघुके पुत्र थे। विदर्भ राजकी कन्या इन्दुमतीने स्वयंवर-प्रथाके अनुसार अजको अपना पति बनाया था। विवाहोपरान्त जब इन्दुमतीको लेकर वे जा रहे थे तो राहमें स्वयंवरमें विक्रममनोरथ राजाओंने बलपूर्वक इन्दुमतीको छीनना चाहा। युद्ध होने लगा और अन्तमें सबको सम्भोहन-मन्त्रसे अचेतकर आप इन्दुमतीको छेड़ करपीछा गये।

**अश्वयकुमार**—मग्योदरीके गर्भसे रावणका पुत्र था। यह मेघनादसे छोटा था। श्रीसीताजीके खोजनेके लिये जब हनुमान्जी लड़ा गये थे और रावणके प्रसोदननका नाश करना प्रारम्भ किया था, उसी अवसरपर रावणने अश्वयकुमारको हनुमान्को पकड़नेके लिये भेजा था। वहीं यह हनुमान्जीके द्वारा मारा गया था।

**अञ्जनी**—केसरी वानरराजकी पत्नी थी। इसीके गर्भसे श्रीहनुमान्जीका जन्म हुआ था। पूर्व जन्ममें यह पञ्जिष्ठरथजा नाग्री अप्सरा थी। शापवश वानरी होकर सुमेरु पर्वतपर रहती थी।

**अत्रि**—ब्रह्माके मानस पुत्र हैं, सप्तर्षियोंमें इनकी भी गणना होती है, कर्दम प्रजापतिकी कन्या धनसूया इनकी स्त्री थी। श्रीदत्तात्रय, महर्षि छर्वाला और चन्द्रमा इनके पुत्र हैं। ये दस प्रजापतियोंमें एक प्रजापति भी माने जाते हैं। ये धर्मशास्त्र-प्रवर्तक हुए हैं, इनका बनाया धर्मशास्त्र अत्रिंहिताके नामसे प्रचलित है। भगवान् रामचन्द्रजी इनके आश्रममें गये थे।

**अनसूया**—कर्दम प्रजापतिकी कन्या और महर्षि अत्रिकी सती साध्वी पत्नी थीं। इनकी माताका नाम प्रसूति था। अत्रि-ऋषिके आश्रममें जब वनवासके अवसरपर श्रीरामचन्द्रजी गये थे तो अनसूयाने श्रीसीताजीको पातिव्रत-धर्मकी महत्तापर उपदेश दिया था।

**अरुन्धती**—कर्दम प्रजापतिकी कन्या थी और बशिष्ठ मुनिकी व्याही गयी थी।

**अरुन्धत्या**—महर्षि गौतमकी पत्नी थीं। इनके पिताका नाम वृद्धाक्ष था। ये अत्यन्त रूपवती थीं इसीलिये देवराज इन्द्रने गौतम ऋषिका रूप धारणकर इनका धर्म नष्ट किया था। गौतमने शाप देकर अरुन्धत्याको पापाय बना दिया था। श्रीरामचन्द्रजीके धरत्य-स्पर्शसे अरुन्धत्याकी पापायत्वसे मुक्ति हुई थी।

**अर्मिला**—सीरध्वज जनककी कन्या थी, इनका विवाह लक्ष्मणजीके साथ हुआ था।

कपिल—कर्म-श्रमिके पुत्र थे । इनकी माता देवहृती थी । ये सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तक हैं । इन्हींके शापसे सगर राजाके साठ हजार पुत्र भंग हो गये थे ।

कबन्ध—कश्यप और उनकी स्त्री दनुसे इसकी उत्पत्ति हुई थी, यह पूर्वजन्ममें गन्धर्व था । एक बार स्थूलशिरा श्रपि इसके गानपर अग्रसख हुए, तब इसने हँस दिया था । इसीसे श्रपिने इसे राक्षस होनेका शाप दे दिया । ब्रह्माकी तपस्या पर इसने दीर्घायु होनेका वर मास किया था । वरके गर्वसे यह सदा इन्द्रका अपमान किया करता था, इन्द्रने क्रुद्ध होकर इसके ऊपर वज्रप्रहार किया और इसके उर, मुख और मल्लकको तोड़ दिया, पुनः इसके विनय करनेपर इसकी भुजाओंको योजनपरिमित दीर्घ कर दिया और इसके पेटके अन्दर तीक्ष्ण दौतयुक्त सिंह बना दिया था, तबसे यह दण्डकारण्यमें रहने लगा और सिंह ध्यानादिको पकड़-पकड़कर खाने लगा । जब श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें आये तो इसकी भुजाओंको काटकर इसे मुक्त कर दिया । विनय करनेपर स्थूलशिराने ही यह वरदान भी दे दिया था कि श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बाहें काटी जानेपर पुन मुक्त हो जाओगे ।

कश्यप—ब्रह्माके मानस-पुत्र हैं । यह एक प्रसिद्ध श्रपि हो गये हैं । दक्षप्रजापतिकी तरह कन्यारूपे इन्हें स्वीारी गयी थी, जिनसे सब जगत्की उत्पत्ति मानी जाती है  
काकमुनिपिंड—राम-भक्त वापस थे । इनके पिता अक्षयुसादेवोंके बाहन चन्द्र नाम काक और माता हंसिनी थी । काकमुनिपिंडजी इन्कीस भाई थे, जिनमें समी भर गये, केवल यही चिरजीवी हुए । पूर्व जन्ममें यह अयोध्यावासी शूद्र थे । एक बार शहरकी पूजा करते समय इनके गुरु आ गये और इन्होंने उनका सम्कार नहीं किया अतः ये शिव-शापसे सप हो गये, पुनः शिव तथा गुरुकी कृपासे सगुरुरूप रामके उपासक ब्राह्मण हुए, तत्परवात् ब्राम्हण-श्रपिके शापसे इन्हें काक-भोगि प्राप्त हुई ।

काशनेत्रि—बह राक्षसका कन्या एक राक्षस था । मेघनादके लक्ष्मणाक्षके मूर्चिग होनेपर श्रीहनुमान्जी जब लक्ष्मण-सूत्र खानेके लिये गये थे, उसी समय राक्षसने भी काशनेत्रिको निष्कार भेजा था कि वह हनुमान्जीको शान्तेरमें स्वर्णदण्डक रोक रखे । वह करत मुनिके नेत्रमें ब्रह्माक्ष और काशिकाने बुद्ध आकाका आक्रमण बना रखा । हनुमान्जी जब वीने ब्रह्माक्षमें गये और

वहाँ मकरी-अप्सरारके द्वारा सब भेद जानकर काशनेत्रिके पूर्वमें लपेटकर पृथ्वीपर पटक दिया । इसप्रकार काशनेत्रिके मृत्यु हुई ।

कुम्भकर्ण—महामोक्षी, महाकाय, राक्षस राक्षस कर्ण भाई था । इसके पिता विभवा मुनि और माता कैलाशी थी । इसकी स्त्री (बलिनी दौहित्री) वृत्रजात्रा थी । इन्होंने अति उग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया था सन्म धन्तमें सरस्वतीकी प्रेरणासे वर माँगते समय वः मल सोनेके लिये और एक दिन भोजनके लिये जलाने का माँगा था । यह महा पराक्रमी था, युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारा गया ।

कुबेर—शैब्य लोकपाल हैं । धनके देवता हैं । अक्षयुती इनकी राजधानी है । यह राक्षसके सौतेले भाई हैं, सबे लंकामें रहते थे । इनके एक भाई, तीन पैर और ब्रह्म दौत होनेके कारण कुबेर नाम पड़ा । इनके पिता विष्णु मुनि और माता भरद्वाजकी कन्या देवर्षिनी थी । वे वप-जातिके अश्वर हैं ।

कुश—श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र थे । इनकी माता जानकीजीने इन्हें श्रीवाल्मीकि-मुनिके आश्रममें प्रत्यक्ष किया था, यहाँ इनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा हुई थी श्रीरामजीके अरवमेघ-यज्ञके अग्रसरपर कुश और इनके कर्ण भाई खाने वाल्मीकीय रामायणका गानकर सारी लकाके मन्त्र-मुग्ध कर दिया था । इन्हें कुशावती भगतीकर सम्प दिया गया था । श्रीरामचन्द्रजीके वैकुण्ठ जानेपर ज्योत्स्नाकी अधिष्ठात्री देवी कुशके शयनागारमें उपस्थित हुई थी और अयोध्याकी दुर्बला बहकर इनसे कुशावती दोषका अयोध्या जानेका निवेदन किया था, अतः वह अयोध्या लौट आये और यहाँ राज्य करने लगे ।

केसरी—वानरराज थे, इनकी स्त्री अश्रुवाके गर्भमें हनुमान्जीका जन्म हुआ था ।

केहरि—एक वानर था ।

केदरी—राक्षस, कुम्भकर्ण और विभीषणकी भ्राता थी । इनके पिता सुमात्री और माता केनुमात्री बानाक्षमें लक्ष्मी थे, कुबेरको लंकामें देखकर ईर्ष्यायुक्त इन्होंने अपनी लका केकरीको विभवा-मुनिके प्रति हम बरतनेके अर्थ लक्ष्मी पा कि हमसे कुबेरने भी अधिक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो ।





केकेयी—केकेय-येणके राजाकी कन्या अत्यन्त सुन्दरी और सुदिमती थी। राजा दशरथको ब्याही गयी थी। भरतजी हस्तीके पुत्र थे। इसने एक बार राजाकी बुद्धिमें एकाग्र हो कर प्राप्त किये थे उन्होंने बरोंसे इसने अपनी दासी मन्थराकी अत्युमतिसे धीरामचन्द्रजीको बनवास और भरतको राज्यभियेके राजासे माँगा था।

कौसल्या—दक्षिण कौसलराजकी कन्या थीं। राजा दशरथकी सबसे बड़ी रानी थीं। इन्होंने गर्भसे विष्णुभगवान् रामचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए थे। जब रावणको मालूम हुआ कि कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले रामसे मैं माता जार्जोगा तब उसने बालिका कौसल्याको हरण करके एक सन्तुर्कमें बन्दकर वह सन्तुर्क रावण नामक मन्त्रीको दे दी। भवितव्यकी रक्षाके लिये ब्रह्महाने रावणका रूप धारणकर उस मन्त्रीसे सन्तुर्क माँगकर वनमें छोड़ दी, पर सुमन्तको भिजी और उसने कौसल्याको राजा दशरथके प्राण लिया।

सर—रावणका सौतेला भाई था। सुमाली राक्षसकी कन्या राव्या इसकी माता थी, पिता विधवा मुनि थे। रावणने इसे जनस्थानका भान्ताधीश बनाया था। इसके साथ शीतल इज्जत सेना थी। जन्ममयजीने जब शूर्पणखाके प्राक कान काट लिये थे तब इसने धीराम-जन्मव्यसे युद्ध किया था और रामजी द्वारा मारा गया था।

गणेश—(गणपतिजी) धीमहादेवके पुत्र हैं, इनकी माता पार्वती हैं। विष्णुके घरसे इनकी अग्रपूजा होती है। ये श्रीरामनामकी महिमाको भलीभाँति जाननेवाले और मर्यादारथको लिखित करनेवाले हैं।

रघु—पिता करण और माता विन्तासे प्राणका जन्म हुआ। प्राण परिवार हैं। विष्णु भगवान्के वाहन हैं। श्रीरामचन्द्रजी जब मेघनादके द्वारा भागपाससे बंधे गये थे, तो गरुडने ही उन्हें उस पायले मुक्त किया था।

रघु—विरामित्रके पिय शिष्य थे। स्वयं एक प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं। इन्होंने अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये पत्ता छोड़ दिया था। विरामित्रजीने रघु को ८०० स्वाम-कर्म छोड़े इनके लिये, जिन्हें प्राप्त करनेमें इनको दारुण कष्ट सहना पड़ा था किन्तु अन्तमें ये दक्षिणा सुख गुरु-द्वयसे हुए हुए।

गुरुक—निषादराज, शङ्खेपुरका अर्णव राजा था। राजा दशरथसे इसकी मित्रता थी, यह रामका भक्त था। इसने वनवासमें धीरामको बहुत सेवा की थी। पूर्व जन्ममें यह व्याध था। शङ्करकी कृपासे इसे रामनेवाका अवसर प्राप्त हुआ था।

गैन्द—धीरामचन्द्रजीका सेवक एक यक्ष बानर था।

गीतम—एक ऋषि थे, इन्होंने पत्नी भद्रहत्या की। इनका न्यायदर्शन प्रसिद्ध है, ये धार्मिकिकी विद्याके प्रथम प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने अपने न्यायदर्शनमें प्रमाय-प्रमेय आदि सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति बतलायी है। इन्होंने केवल दश ही दिनोंमें इस दर्शनका प्रथमन किया था।

जटायु—सूर्यके सारथी अरुण और माता रघेनीके गर्भसे जटायु उत्पन्न हुआ था। यह शूद्र पक्षी था। राजा दशरथका परम मित्र था। सीतादरुण करके छे जाते समय रावणको इसने रोका था और वृद्ध होनेपर भी उससे युद्ध किया था, अन्तमें रावणके अज्ञातसे घायल हो गिर पड़ा था, जब धीरामचन्द्रजी सीताकी खोजमें अरण्यको साथ लिये हुए धाये और जटायुको इस दृष्टांमें देखा तो बहुत ब्याकुल हुए। धीरामजीकी गोदमें सिर रखे हुए जटायु परमधामको प्राप्त हुआ।

जमदग्नि—महर्षि ऋषीकके पुत्र थे। राजा प्रजेनजित्की पुत्री वैशुकाके साथ इनका विवाह हुआ था, इनके पाँच पुत्र हुए, सबसे छोटे परशुराम थे।

जयन्त—देवराज इन्द्रका पुत्र था। इसने काकरुण धारणकर अपनी सौंभने श्रीरामचन्द्रजीको घायल कर दिया था और जब धीरामचन्द्रजीने इसके ऊपर बाण बघाया था तब यह तीनों लोकोंमें प्राण बचानेके लिये भागा किन्तु किसीने इसे आश्रय नहीं दिया। अन्तमें हारकर धीरामजीके-शरणमें गया, रामचन्द्रजीने इसके प्राण तो बरों लिये पर एक धाँस जोड़ दी।

जम्बरू—अज्ञानाथ थे, महाकके पुत्र थे। यह महाबली थे और सुदीकके सेनागति होकर रघुने धीरामचन्द्रकी सहायता की थी। राम-वन्दनमें इनकी भी कागी प्रसिद्धि है।

ताक—मुच्यं प्रामक दक्षकी पुत्री थी। (मन्त्र और करण-देवके राम) गुरुको ब्याही गयी थी। अर्न्त और मुच्यं इसके पुत्र थे। जब अमृत-मुक्तिके क्षणमें गुरु मारा





कि पूर्वजन्ममें यह दासीपुत्र थे, इनकी माता श्रियोंकी सेवा करती थी, वाक्यका लसे ही इन्हें श्रिय-उपदेश और प्रसाद प्राप्त होता रहा। जब इनकी माता सत्य-युतसे मर गयी तो इन्होंने श्रियोंकी आज्ञा से तपस्या की और शरीर स्वाम करनेके बाद ब्रह्माके मानस पुत्र और महा-भगवत्पुत्र हुए।

पनस—(१) रामद्वजका एक बानर। (२) विभीषणके चार मन्त्रियोंमेंसे एक।

परशुराम—पिता जमदग्नि और माता रेशुकासे इनकी उत्पत्ति हुई थी। विष्णुके दश अवतारोंमें एक यह भी हैं। राजा कार्तवीर्य सद्रसाजुन एक बार जमदग्निके आश्रममें आये थे, वहाँ कामधेनुको देख प्रलुब्ध हो उसे हरणकर ले गये। तब परशुरामजी कामधेनुको जाने गये और कार्तवीर्य-को युद्धमें मार उसे घीन लाये। इसके प्रतिकारमें कार्तवीर्य-के पुत्रोंने जमदग्निको मार डाला तब परशुरामजीने २१ बार शूचीको निःश्रिय कर दिया। घनुष-यज्ञके अवसरपर जनक-पुरमें इन्होंने भीरामचन्द्रजीको विष्णुका घनुष चढ़ानेके लिये दिया और उसके चढ़ाते ही घाव श्रयन्त विस्मित हो भीरामकी स्तुतिकर धर्ममें तप करने चले गये।

पार्वी—पिता हिमाञ्जय और माता मैनासे पार्वीका जन्म हुआ, इनका विवाह शिवजीसे हुआ। इनकी शिवजीके प्रति श्रयन्ता भावदर्य है। गणेश और स्वामि कार्तिकेय इनके दो पुत्र थे।

प्रहस—रावणका सेनापति था। यह रावणके सामने अपनी बीरताकी डींग हाँका करता था। युद्धमें मारा गया।

पुलस्त्य—ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। रावणके पितामह थे। इनकी राखना सप्तर्षियोंमें होती है।

बलि—यह देवराज इन्द्र, और ब्रह्माके प्रभुसे उत्पन्न एक बानरसे उत्पन्न हुआ था। यह किष्किन्धाका राजा था इसके ब्रह्माका वरदान था कि युद्धमें प्रति इन्द्रकी आज्ञा बल हर लेगा। सुमीव इसका सद्योदर भाई था, उसके साथ बरीति करनेके कारण रामजीद्वारा मारा गया।

भरद्वाज—भरद्वाज-श्रियके पिता बृहस्पति, माता अमला थी। प्रयागमें इनका आश्रम था, दुष्यन्त-पुत्र राजा भरतने इन्हें पाया था।

भरत—शरणापके पुत्र थे, इनकी माता कैकेयी और मामा सुबाजि थे, इनकी पत्नी मायवती थी। इनकी राम-भक्ति अनेक लिये परम भावदर्य है।

भनुप्रताप—कारमीरके निकटके क्य-देशका राजा था। इसका पिता सत्यकेतु, भाई श्रिमिर्दन और मन्त्री धर्महवि था। इसने राजा कालकेतुका राज्य हरण किया था। प्रतिहिंसाके विचारसे काङ्क्रेतु छुल करके राजाके यहाँ रहा और छुलसे याज्ञवोंकी नरमांस भोजन कराया, तब ब्राह्मणोंने प्रतापभानुको शाप दिया कि तू राचल-योनिमें जन्म ले। इसी कारण यह रावण होकर उत्पन्न हुआ।

भृगु—इनकी उत्पत्ति ब्रह्मासे हुई थी। यह महादेवके दत्तकपुत्र थे। इन्होंने परीशार्थ विष्णु भगवान्के हृदयमें जात मारी थी।

मत्स्य—श्रयण्यूक पर्वतपर रहनेवाले एक श्रिय थे, शबरीको भक्तिका उपदेश इन्होंने प्राप्त हुआ था।

मनु—ब्रह्माके पुत्र और मनुष्य-जातिके आदि पुरुष हैं, इनकी छौं शतरूपा है, यही दशरथ हुए थे।

मन्थरा—महारानी कैकेयीकी दासी थी, इसीकी सम्मतिसे कैकेयीने रामके लिये घनवासका वरदान माँगा था। मन्थरा कैकेयीके साथ कंकय-देशसे आयी थी।

मन्दोदरी—पिता मयदानव और माता हैमा अश्वरासे मन्दोदरीका जन्म हुआ था। यह रावणकी धर्मशीला पत्नी थी। मेघनाद और अशयकुमार इसके दो पुत्र थे। यह मसिद्ध पतिव्रता है।

माण्डवी—राजा जनकके भाई कुशकेतुकी कन्या-भरतकी ब्याही थी, इसके लक्ष और पुष्कर दो पुत्र थे।

मारीच—तादका राचलीका पुत्र था। इसका पिता मुन्दयच था। विधामित्रकी यशरवाके समय रामजीके बाणसे यह समुद्रके किनारे जा गिरा था, पुनः रावणकी प्रेरणासे कण्टकसूक्ष्म रूप-भारण्यकर सीताहरणका कारण बना और भीरामजीद्वारा मारा गया।

मेघनाद—(इन्द्रजीत)—रावणका पुत्र था, इसकी माता मन्दोदरी थी। सागरी सुबोधना इसकी छीं थी। एक समय इन्द्रने युद्धमें रावणको बाँध लिया था, फिर मेघनादने इन्द्रसे युद्धकर पिताको छुड़ाया और इन्द्रको बाँधकर लाया था। इसको वर था कि यह बारह बरतक निद्रा, मारीको स्वागकर केवल कष्ट भ्रष्टन करनेवालेके हाथसे मारा जायगा। अतः इसको युद्धमें लक्ष्मणजीने मार डारा।

मैनामती—हिमवानकी पत्नी और पार्वतीकी दासी थी।

राम—रामद्वजका एक बानर था।

शुभ्र—अयोध्याके प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा थे। इन्हींके नामसे रघुवंश चला। ये बड़े प्रतापी और शूरवीर थे, इन्होंने इन्द्रको हराया था, इनके पिता दशरथ और पुत्र भरत थे।

राम—प्रसिद्ध महापुरुषके शरामी कौसल्याके गर्भसे अवधमें अवतीर्थ हुए थे। आपके पिता दशरथ, पुत्र जब और कुश, भाई भरत, सप्तमण्य और शत्रुघ्न तथा पत्नी जनकानन्दिनी धीसीताजी थीं।

रावण—विधवा मुनिका पुत्र था। इसकी माता कैकसी, श्री मन्दोदरी थी। इसने उल्कट तपस्याके बलसे ब्रह्मा और शिवसे धनके परदान प्राप्त किये थे। एक परदानके द्वारा इसकी शत्रु नर और धानरके अतिरिक्त किसीसे भी नहीं हो सकती थी। रामजीने इसको मारा। एवं जन्ममें यह जब नामक विष्णुका द्वारपाल था, दूसरे जन्ममें भानुवताप राजा भी यही था। कुबेरके पुष्पक-विमानपर बैठकर रावण जब आकाशमार्गसे जाता हुआ कैलाशके निकट आया तब नन्दीधरने इसे कैलाश पार करनेसे मना किया। नन्दीधरकी धानर जैसी-मुखाहृति देखकर यह हँस दिया। इसपर उसने शाप दिया कि जायो, धानरोंके द्वारा ही तुम्हारा नाश होगा।

रेणुका—यह राजा प्रसेनजितकी कन्या थी। जमदग्निकी पत्नी थी। परशुरामावतार इन्होंने गर्भसे हुआ।

लव—श्रीरामके छोटे पुत्र थे। इनकी माता सीता थीं। वाल्मीकिके आश्रममें इनका जन्म हुआ था, ये उत्तर कोसलके अन्तर्गत अवलीपुरीके राजा थे।

लवणाशुर—मधुराजस और रावणकी मौसी कुंभीनसीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई थी। पितृप्रदत्त शूलके प्रभावसे, यह दानव, देव और मनुष्य सबसे भजेव था। इसने राजा मान्धाताको मारा था। यह अश्विपौर बड़ा अत्याचार करता था। श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको भेजकर इसका विनाश कराया।

लवण—श्रीरामके भाई सप्तमण्य शेरके अवतार थे। इनके पिता दशरथ, माता मुमित्रा, पत्नी उर्मिला, पुत्र अश्वत्थ और विश्वकेतु थे। श्रीरामकी सेवामें इन्होंने उनके साथ किया था। ये अनन्य राम-सेवक थे।

शेरघ्न—एक प्रख्यात जमर अति है। आप काक-  
- - - गुण हैं।

रंजिनी—भूबोक्कासिनी राक्षसी लंकामें लकीने इन्होंने हनुमान्की सीताको खोजने जब लंकामें पुगे थे तब राक्षसीने उन्हें रोका था और हनुमान्जीने इसे एक पुर मारा था।

वशिष्ठ—ब्रह्माके आससे उत्पन्न हुए थे, कर्तव्यकी कन्या अरुन्धतीसे इनका विवाह हुआ था। ये सर्वज्ञ एक हैं, रघुवंशके कुलगुरु हैं। प्रसिद्ध पाराशर अति, एवं पुत्रवधू अरुण-शरणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

वसुदेव—आदिकवि थे। इन्होंने रामायणके पूर्ण दिव्य दृष्टिसे रामायणकी रचना की थी। जब श्रीरामजी सीताको निर्वासित किया था तो उसे इन्होंने आश्रय मिला था। यह पहले हस्तु थे, भगवद्गीता में तथा राम-नाम जपके प्रभावसे परममठ हो गये।

विभीषण—रावणका भाई था, इसके पिता निरर, माता कैकसी, पत्नी (शैलुप-गन्धर्वकी कन्या) सरमा दे, श्रीरामका शरणागत भक्त था। रावणके मरनेके बाद इसका राजा हुआ।

विराट—एक विद्याधर था, जो दुर्वासके शास्त्रे लक्ष्मणको प्राप्त होकर विप्रकूटके दक्षिण वनमें रहता श्रीरामके हाथ मारा गया था।

विभ्रवा—रावणकादि सीनों भाई, खर, दूर्योधन। कुबेरका पिता था, यह पुलस्तकका पुत्र था, इसकी पत्नी अश्वकन्या श्रुती, श्री देवशर्पिणी, कैकसी, राजा मांजिनी थीं।

विश्वामित्र—(कौशिक-गार्धितमण्य)-कन्यकुम्भके पुत्रोंके गार्धि राजाके पुत्र थे। इन्होंने अश्विपंचमें उत्पन्न होकर अपने तपोबलसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। इन उत्पत्तिके विषयमें ऐसा वर्णन है कि गार्धिराजकी सप्तपत्नी अश्वीक-अपिको ग्याही थी, गार्धिराज अश्वीकके कोई सन्तान न था इसलिये अश्वीकने बचपके दो भाग किये। एकके साथ ब्राह्मण-मन्त्र और दूसरेके साथ अश्वि-सन्तानका आशीर्वाद था। दोनों बच अश्वीकने अपनी पत्नीको देकर ब्राह्मणराजा बनने के लिये तथा दूसरा बच गार्धिराजकी स्त्रीको लाने के लिये कहा। गार्धिराजकी स्त्रीने सोचा कि कर्तव्य सप्तपत्नीका बच अधिक भेद होगा क्योंकि उसके लक्ष्मण

तैयार किया है, इसलिये छलसे उसने उसके चरको, अपने ब्रिये से लिया और अपना उसे दे दिया। कन्नडरूप गाधिराज-पत्नीके विश्वामित्र (जो आगे चलकर माहाय्य हुए) और सत्यवतीके जन्मदिन हुए, जो माहाय्य होते हुए भी पात्र-गुणसे युक्त थे।

शत्रुघ्न—महाकाके चारों हाथसे उत्पन्न हुई थी। स्वामभुव मनुकी पत्नी थी। श्रीनारायणको पुत्ररूपसे प्राप्त करनेके लिये इसने बड़ी तपस्या की थी और यही कौसल्यारूपमें प्रवर्तित हुई थी।

शत्रुघ्न—श्रीकृष्णजीके छोटे भाई थे, इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, जो धृतिकीर्ति, पुत्र सुबाहु और भूपकेशु थे। यह श्रीभरतजीके धनन्य भक्त थे। मनु नामक राक्षसको मारकर मथुरापुरीको इन्होंने ही बसाया था।

शरभ—राम-सेनाका एक यूथपति वानर था।

शरभंग—एक ऋषि थे। दक्षिणारव्यमें रहते थे, श्रीरामके राम भक्त थे। इन्होंने श्रीरामका दर्शनकर अपना शरीर त्याग किया था।

शरती—एक भीड़-कन्या (या एक तपस्विनी) थी। मत्त-ऋषिसे इसने ज्ञानोपदेश प्राप्त किया था। यह तपस्विनी भगवान् रामके दर्शनार्थ वनमें तपस्या करती थी, इसने श्रीरामके आनेपर उनकी यथोचित सेवा की और उन्हें बन्धन भोजन कराया था।

शरान्ता—राजा दशरथकी कन्या थी। इसको राजाने अपने मित्र कन्नडचिराज जोमपादको पोष्यपुत्रिकाके रूपमें दिया था। पीछे यह महर्षि ऋष्यशृङ्गके साथ ब्याही गयी थी।

शुभ्र—रावणका एक दूत था।

शुद्धी—ऋष्यशृङ्ग प्रसिद्ध तपस्वी थे। शमीक अथवा विभावहक ऋषिके पुत्र थे, इनकी ही शरान्ता थी। राजा दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञका सम्राट्ण करनेके लिये इनकी अयोध्या बुलाया था। इनके भार्गवीर्वादसे राजाको चार पुत्र हुए।

शुक्तिर्षि—साकन्यके राजा कुशम्बजीक कन्या थी। शत्रुघ्नको ब्याही रापी थी, इसके सुबाहु और भूपकेशु दो पुत्र थे।

सगर—सूर्यवंशी राजा धातुके पुत्र थे। इनके दो रानिर्वा-र्यो—सुमति और कैशिकी। कैशिकीसे असमञ्जस, और

सुमतिसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। सगर बड़े प्रतापी राजा हुए हैं, इन्होंने अनेक यज्ञ किये। एक बार इन्द्र ईश्वरवास इनके यज्ञार्थको चुराकर कपिल-मुनिके आश्रममें बाँध बाधे। सगरके साठ हजार पुत्र उस आश्रमको खोजते हुए कपिलके आश्रममें पहुँचे और घोर समझकर उनके ज्ञात मारी। मुनिकाध्यान भङ्ग हुआ और उन्होंने शाप देकर सबको भस्म कर दिया। पीछे इसी वंशमें भगीरथ उत्पन्न हुए जो तपस्या करके गंगाजीको लाये और उनका उद्धार किया।

सती—दश प्रजापतिकी कन्या शिवको ब्याही गयी थी। किसी समय शिवजीसे दशप्रजापतिकी अनबन हो गयी, इसलिये उन्होंने अपने यज्ञमें शिवको धामन्त्रित नहीं किया। सती शिवकी आज्ञा विना ही उस यज्ञमें गयी और यहाँ दशके मुँहसे शिवकी निन्दा सुनकर क्रोधित हो योगाम्रिसे देहको भस्म कर दिया। जब यह समाचार शिवको मिला तो उन्होंने जोरसे अपनी जटा पृथ्वीपर पटक दी जिससे धीरभद्र उत्पन्न हुआ, उसके साथ अन्य शिवगणोंने जाकर दशके यज्ञको विध्वंस कर दिया और दशका सिर काटकर हवन कर दिया।

समपती—जटायुका बड़ा भाई था। इसके पिता भरथ्य थे। दोनों भाई एक बार सूर्यको जीतनेकी इच्छासे उड़े। सूर्यके तेजसे जटायुके पंख जलने लगे। उस समय समपतीने अपने पंखोंसे उसकी रक्षा की। इसकारण अपने छोटे भाईकी सहायता करते वह स्वयं विन्ध्य-पर्वतपर धा गिरा और निराकर मुनिसे इसकी शुश्रूषा की। जब सीताको खोजनेके लिये वानर दक्षिण-समुद्रकी ओर जा रहे थे तब उनकी इससे भेंट हुई थी और इसने अपनी दूरदृष्टिसे सीताका पता बतलाया था।

सहस्रबाहु—(सहस्राहुन, ईहयराज या कार्तवीर्य) इसके पिता कृतवीर्य, माता पद्मवती थी। इसकी धी लक्ष्मणसे इसे १०० पुत्र हुए, जिनमें ३३५ को परशुरामजीने मार बाटा। यह नर्मदा-नदीके तीरे ईहय देशका राजा था। माहिष्मर्ति इसकी राजधानी थी, एक बार छट्टेधर रावणको हराकर इसने बन्दी कर लिया था। जिये पुलस्त्य मुनिने सुझाया। जन्मदिन-मुनिको मारनेके अपराधमें यह परशुरामजीद्वारा मारा गया।

साण्य—रावणका एक मन्त्री था, जो रामचन्द्रजीके सेवामें एक बार भेड़ खेने गया था।

स्वयंप्रभा—द्विप गन्धर्वकी कन्या तथा ईमाकी सखी थी। विष्णु भगवान्के दुर्योधन गुणोंमें रहकर तपस्या करती थी। हनुमान्जीको रीताकी खोजमें जाते समय व्यास ऋषी, सब जन्तु पीनेके लिये वे इसकी गुणोंमें गये थे और इससे उनकी भेंट हुई थी।

रीता—( जानकी, उर्विका, जनकनन्दिनी, भूमिजा ) इनके पिता जनक थे। मिथिलामें एक बार एककाल पड़ा था तब राजाने पृथिके लिये स्वयं इल चलाया था, उस समय भूमिसे जानकी उत्पन्न हुई। इनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी प्रसिद्ध ही हैं। वे साक्षात् जगज्जननी माया थीं, इन्होंने अपने आचरणोंसे पातिप्रतका महान् आदर्श दिखलाया है।

सुकेतु—ताड़का राक्षसीका पिता था।

सिंहिका—राहुकी माता थी, यह पातालवासिनी राक्षसी समुद्रमें रहती थी। उसके जीवोंकी परवाइसे ही उन्हें पकड़ लेनेकी शक्ति रखती थी। लड़ा जाते समय हनुमान्जीने इसे मारा था।

सुतीक्ष्ण—अगस्त्य-मुनिके शिष्य थे। यह प्रसिद्ध रामोपासक थे। इनकी प्रेमात्मिक आदर्श थी।

सुभ्रीव—इनके पिता सूर्य थे और माता मङ्गलाके भ्रातृसे उत्पन्न एक वानरी थी। श्रीरामचन्द्रजीके मित्र थे। बाकिके भारे जानेपर किष्किन्धाके राजा बनाये गये थे।

सुबाहु—ताड़काके साथ रहनेवाला एक राक्षस था, कोई इसे ताड़काका पुत्र यतजाते हैं। विधामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामजीने इसे मारा था।

सुमन्त—महाराजा दशरथके मन्त्री थे।

सुरसा—स्वर्गलोकवासिनी एक राक्षसी थी। हनुमान्जीको लड़ा जाते समय परीचाके लिये इसने उनको रोका था। अन्तमें प्रसन्न हो हनुमान्जीको आशीर्वाद दिया था।

सुवेचना—बासुकी पुत्री और मेघनादकी पत्नी थी, यह बड़ी पतिव्रता थी।

सुपेन—एक वैद्य वानर था। इसने अश्वत्थामकी मूर्खता दूर करनेमें सहायता की थी।

सूर्पेण्डा—राक्षसी छोटी बहन थी। इसके पिता विभवा थे बासुकीके अनुसार यह राक्षस कुम्भकरवासे छोटी और त्रिभीरवासे बड़ी थी, कैकयीकी पुत्री थी, कोई कहते हैं कि ... राधा है और सहोदर भाई स्वर्ग। विष्णुमिहने

स्थाही गयी थी, इसके पतिको राक्षसे मूढ़ने मार कर था, विधवा होनेपर इसने पञ्चवटीमें श्रीराम अश्वत्थसे नाथ प्रस्ताव किया था। फलस्वरूप इसके नाक और आँसु काट लिये गये थे।

हनुमान्—इनके पिता केसरी और माता प्रज्जला थी। यह पवनके पुत्र प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध रामभक्त हैं। पूर्वमें मित्र और मन्त्री थे। यह महावीर थे। श्रीरामके गाने बजाने पर इन्होंने उनकी सेवा की थी। इनके पुत्रका नाम मलय था। यह शंकरके भवतार माने जाते हैं। ये बड़े बौर, व्याकृतके पवित्र और वेदज्ञ हैं।

हरिश्चन्द्र—सूर्यवंशी राजा सत्यव्रतके पुत्र थे। इन शौन्या और पुत्र रोहिताश था। विधामित्रने इनके ६ परीचा की थी। सत्यपालनके लिये इन्होंने अपना विधामित्रको दे दिया था और स्वयं रानी सखितिका तथा अपने कष्ट सहने परन्तु सत्यका पावन किया। इस सत्यवादी विरला ही मिलता है।

हेमा—विश्वकर्माकी कन्या थी। वृषिचक्रके दिव्य शरहती थी। यह मन्दोदरीकी माता थी।

### रामायणकी ओर अधिक आकर्षण

रामायणमें गंगाकी उपत्यकासे दक्षिण में विस्तृत राक्षसोंके प्रदेशमें हिन्दू-धर्मके प्रसार वर्णन पाया जाता है। महाभारतके उपर आन्धापालन तथा कर्त्तव्यपथका निर्देश करते और उनकी प्रति के निमित्त सब प्रकारके आत्त बलिदान अथवा त्यागपर जोर देते हैं। परन्तु उनकी अपेक्षा रामायणमें कहीं अधिक सहानुभूति तथा सहृदयतासे कौटुम्बिक जीवनके आनन्द सुद्ध होते देखते हैं। पुत्र-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, वायव्य-प्रेम तथा अपने सम्बन्धियों और पदोत्तियोंके प्रति शुद्ध निःस्वार्थ प्रेमके ऊपर उसमें अधिक जोर दिया गया है। तुलसीदास प्रभृति अन्य हिन्दू कवियोंके द्वारा रामायणका सजीव चित्रण होने कारण जनता उसकी ओर अधिकाधिक आकर्षण हुई है।

—नेचसन ( विरकोरपरीत )

## आदि कवि वाल्मीकि

( लेखक—पं० श्रीरामचरितजी उपाध्याय )

( १ )

सत्काव्य-संस्कृतिके चतुर,  
अचतुर्वेदन विधि आप हैं।  
रस-रूपमें नवरत्नके,  
यसुधा-सुधानिधि आप हैं ॥

( २ )

सत्काव्य-कल्पद्रुम-गहनके,  
आप अनुपम मूल हैं।  
सत्काव्य-रस-मकरन्दके तो,  
आप विकसित फूल हैं ॥

( ३ )

प्रत्यक्ष यजुष्यायी प्रणय हैं,  
आप काव्याभ्यायके।  
हैं आ गीतमरूप ही,  
सत्काव्यरूपी न्यायके ॥

( ४ )

ध्यासादि चले आपके हैं,  
धारके शुभ आप ही।  
जगत्का जनक जगदीश हैं,  
श्वर-जनक श्वर यही ॥

( ५ )

हैं कौन-सी ऐसी प्रभा,  
जिसमें न रयिका घोल है।  
हैं कौन कृति जिसमें न प्रभुकी,  
उक्ति भोत-भोत है ॥

( ६ )

उच्छिष्ट जो हरका गरल,  
उमसे हुए विगंधर सभी।  
जो भाव उठे आपके,  
उमसे हुए कविघर सभी ॥

( ११ )

सत्पात्र-गुणको कवि लिखे,  
यह आपका आदेश है।  
शिली यहाँ जाता नहीं,  
जो बनघरोंका देश है ॥

( ७ )

जो आपसे प्रतिभा-प्रभावित,  
भाव हो पाया नहीं।  
वह दूसरे कविके हृदयमें,  
आज तक आया नहीं ॥

( ८ )

नृपके चरितका चित्र चित्रित,  
आपने जैसा किया।  
श्रेलोक्यमें किस दूसरने-  
आज तक घँसा किया ?

( ९ )

जब आपने पुस्तक लिखी,  
तब राम प्रकटित थे नहीं।  
ऐसा चरित-लेखक अपर,  
भूपर हुआ है क्या कहीं ?

( १० )

अमरावतीसे भी प्रयत्न,  
साकेतको किसने किया ?  
यह आपहीका काम था,  
राक्षस बना द्विजको दिया ॥

( ११ )

धीराम-चरितावलि मुने!  
यदि आप लिख देने नहीं।  
सगद्द है, तो रामके यों,  
नाम हम लेने नहीं ॥

( १२ )

प्रतिपल बदलता जो सदा,  
विधिने रचा उस लोकको।  
पर आपने कैसा बनाया,  
धन्य अघ्यय श्लोकको ॥

( १० )

उसको त्रिदिवमें भी सुधा-  
मिल जायगी जाकर कभी।  
जिसने सुधा पारं, तुन्दार-  
काव्यकी पावर कनी ॥

( १३ )

पंथके प्रदर्शक आप यदि,  
संसारमें आते नहीं।  
तो काव्य-काननके पथिक,  
हम बन कभी पाते नहीं ॥

( १४ )

हैं ईशां भी कवि किन्तु उससे,  
अत्यधिक तुम बढ़ गये।  
यह आदिकविके मञ्जतक-  
पहुँचा नहीं, तुम चढ़ गये ॥

( १५ )

कवि आप ही हैं, अन्य भी अथ-  
काव्यकी करते रहें।  
नर्तक गिरिजा हैं, नाच करके-  
भूत भी मरते रहें ॥

( १६ )

काव्याग्धिपर हृद् सेतु बाँधा,  
आपने ही पद्यमय।  
अथ पार करते हैं उसे,  
बलहीन भी होकर अभय ॥

( १७ )

कवियुग्द वन्दित भाज भी हैं,  
आपके ही कृत्यसे।  
समता न कर सकता यदपि यह,  
आपके लघुभृत्यसे ॥

( १८ )

हैं रामने ही भारका पारा,  
राम-यरा भी भाग्ये।  
निर्मुक्त दोनेनि किया,  
संसारको प्रयतारणे ॥

# भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया

(लेखक—मेहता पं० भीरुजारासजी शर्मा)



पुष्करणीय गोस्वामी तुलसीदासजीका जगद्गुरु 'रामायणमानस' परम उत्कृष्ट ग्रन्थ होनेपर भी यह इतिहासकी गणनामें आने योग्य नहीं है। यह धारणमें एक महाकाव्य है। उसमें यदिया दंगसे यथायोग्य समय और स्थानोंपर सभी रसोंका समावेश किया जानेपर भी यह भक्तिरसमयान है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको अवतार-भवतारी ही नहीं, परमह्य, परमात्मा, सर्वेश्वर मानकर उसकी ध्यते इतितक रचना की गयी है। कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार महात्मा सूरदासजीने गोस्वामीजीसे कहा कि—'आप जिन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी उपासना करते हैं वेतो भगवान्के अंशवतार हैं किन्तु मेरे धाराध्य देव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ध्यानन्दकन्द अवतारी हैं।' वास्तवमें गीतगोविन्दमें कवि-कुल-कमल-दिवाकर जयदेवकी और श्रीमद्भागवतमें वेदव्याख्याता भगवान् वेदव्यासकी गवाही भी उनके इस कथनका प्रतिपादन करती है। जो कुछ भी हो, गोस्वामीजी आश्चर्यचकित होकर कहने लगे—'हैं, मेरे हृदय भगवान् श्रीरामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं? मैं तो अबतक राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र समझकर ही उनकी धाराधना करता था। अब—जब कि आप उन्हें अवतार मानते हैं तो उससे द्विगुण चतुर्गुण रूपसे उनकी उपासना करूँगा।' यह गोस्वामीजीकी धनन्य भक्तिका हार्दिक उद्गार मात्र है किन्तु 'रामायण-मानस' के राम हैं तो वैसे ही वैसे ऊपर कहे गये हैं।

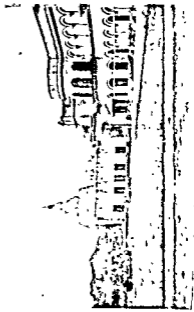
जिस तरह उक्त कहावत प्रसिद्ध है उसी प्रकार कहा जाता है कि—एक बार सद्यः अकबरने इन दोनों महाभागोंकी करामातके परीक्षणकी इच्छासे जहाँपर वे उपस्थित थे, वहाँ एक मन्त्र हाथी बुझवा दिया। हाथीके धरदोंका शब्द सुनते ही महात्मा सूरदासजी वहाँसे भगे, किन्तु गोस्वामीजी अचल हिमाचलकी भाँति उससे मग भी न हुए। बादशाहने सूरदासजीको बुझाकर इसका कारण पूछा। यह कहने लगे—'मेरा हृदय स्वाज्ञेका जोकरा सात वर्षका बालक है। विशालकाय हाथीको देखकर नहीं डर न पाव। कतः मैं, बसे अक्षर भाग

निकला।' तब बादशाह बोले—'फिर तुलसीदासजी क्यों नहीं भगे?' अक्षरमें महात्माजीने कहा—'वह भावने मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रके उपासक हैं। उस कल 'मानस' में मेघनाद-वधकी रचना कर रहे थे। आते थे तो कैसे भागते?' दोनोंका भाव दोनोंके हृदयम रह है। दोनों कहावतें और महात्मा सूरदासजीके इस दंकेकी चोट प्रकाशित कर रहे हैं कि गोस्वामीजीने तिरस्कार नहीं किया।

इन उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीकी रचना इतिहास नहीं। इस दृष्टांमें जो सज्जन 'मानस' के इतिहास मानकर विविध तर्क करते हैं वे भ्रूते हैं। गोस्वामीजीने 'रामायण-मानस' की रचना बाल्मीकीर रामायण, हनुमन्काण्ड, अनेक्य-राघव प्रभृति अनेक इतिहास पुराण और काव्य-ग्रन्थोंके आधारपर की है। उसमें अनेक भाग विशेषकर वाल्मीकीय रामायणसे लिया हुआ है, अन्य भाग प्रायः भागवतके हैं। 'मानस' में अनेक काव्यका अतुल्य भागवतके दशमस्कन्धके अतुल्य भाग है और उत्तरकाण्डका कविचर्म भागवतके अनेक अंशों-का-न्यों भाषान्तर है। राजसराज विभीषण अनेक रावणसे तिरस्कृत होकर वाल्मीकिके अनुसार अनेक भगवान्से लड़ाका राज्य पानेकी लाजसासे गया था। वह भक्तिके नामसे उसके मुलसे एक भी शब्द नहीं कहा गया। गोस्वामीजीने अक्षरके अक्षरगमनके प्रसङ्गको अनेक अक्षर विभीषणके हृदयमें प्रवेश करा दिया और इससे गोस्वामीजीकी कृपासे राज्यकोलुप विभीषण अनेक विभीषण बना दिया गया। इतना ही क्यों, अनेक अक्षरविषयकी रचनाके आधारपर राजाके अक्षरोंमें जो कही दिलाया गया था, वही थोड़े बहुत हेर-फेरके साथ अनेक अक्षरजनकसमामें धनुषभङ्गके समय था बिराज है। अनेक अक्षरजितना अक्षर भागवतसे लिया है, वही लक्ष्मीके अक्षर लिया है और कहीं कहीं तो 'मानस' में वह अक्षर वेदव्यासजीसे भी बाजी मार ले गये हैं। वही अक्षरके अक्षरोंके भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराते समय वेदव्यासजीके 'धीमां करो मूर्तिमान्' इस पदका उद्धृत कर एक समय अक्षरविषय श्रीकृष्णकी माता, माता, शरी, अक्षर



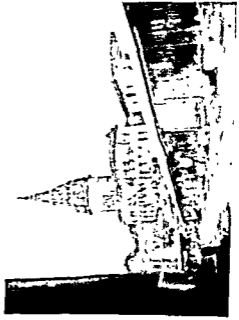
सर्गोदर घाट



दुबुआ राजमहल—पीरी मन्दिर धीनिगो निगरर ताध



भांभी महुगुरुदहन



मन्दिर राजमहल





इत्यादिको मानो पञ्चशायकका शिकार बना दिया था। गोस्वामीजीको इतना संश्लेष-इतना धनर्ष पसन्द न थाया, उन्होंने इसीलिये जनक-सभामें बैठी हुई महिलाओंके विषयमें-‘बाकी रही मानना जैसा। मनु मृत देखी तिन तैसी।’ इस चौपाईके द्वारा उन रमणीरत्नोंका हार्दिक भाव दिखजाकर केवल उनके साथ न्याय ही नहीं किया बल्कि उनको बौध्दवादसे भी बचा दिया। भगवतमें ही क्यों, संस्कृतके वाचस्पत्ययामोंमें-काम्योंमें किसी महिलाके नख-सिलका वर्णन करते हुए उसके सभी धंगोंका-उल्लेख किया गया है। परन्तु गोस्वामीजीको अगमनती जानकीके विषयमें या किसी भी रमणीके विषयमें ऐसा लिखना लज्जास्पद मर्यादाविरोध मान्य हुआ था। उन्होंने जहाँ-जहाँ भगवतीके नख-सिलका वर्णन करनेकी आवश्यकता समझी, वहाँ-वहाँ नये-नये ढंगसे और ऐसे ढंगसे काम किया जिसका उनके पूर्ववर्ती किसी कविने कभी स्वप्नमें भी खयाल न किया होगा। यहाँ तक कि ‘सोना परन चोच इति भाग’ का उल्लेख करते हुए उस श्लोकको स्पष्ट बचा दिया, जिसका प्रयोग बाल्मीकिजीने सुले शब्दोंमें किया था।

इस तरह इन उदाहरणोंद्वारा यही दिखजा देना है कि काव्य और इतिहासमें बहुत भारी अन्तर हुआ करता है। ‘रामायण-मानस’ जैसे ऐतिहासिक काव्य अथवा ही इतिहासोंके आधारपर लिखे गये हैं, किन्तु इतिहास-लेखनमें जहाँ व्यक्ति-समाजका याथावत्-रूप ही चित्रण किया जाता है वहाँ काव्यमें उसके प्रधान भाग, अथवा पात्रोंका चित्र सुधारकर दिखजाया जाता है। पात्रके दोषोंको छिपाना और गुणोंको प्रकट करना ही कविका धर्म है। परिणाम यह होता है कि प्रायः इतिहासमें प्रधान पात्रका जो उच्छृंखल गृह्य है वही काव्यमें कहीं कहीं दोषकी संकेत जाया जा सकता है। भगवान् रामचन्द्रजीके दाम चरित्रका एक उच्छृंखल गृह्य शायद इसी सिद्धान्तके अन्तर्गत गोस्वामीजीके लेखनीद्वारा ‘मानस’ में स्थान पायेका बन्धुकारो नहीं समझा गया। घटना राम-रावण-समरकी है।

भाव-विषय-बन्धु सम्बन्धके मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित होकर केवल भरतीका दिखानेके लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र महात्मा मनुष्यकी तरह घबड़ाकर अथवा रोये और पड़ाये थे। अथवा ही उन्होंने इन्द्रकी दुर्बलता दिखानेमें क्लेश कर दिया था किन्तु अब वही सम्बन्ध

रावणके बाणोंसे वेहोरा हुए तब भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तमने एक सर्वे आहतक न भरी। इसका एक कारण था। उस समय रोने, घबड़ाने और पड़तानेका अवकाश था, इसलिये रोये-धोये, किन्तु इस समयकी दशा बिल्कुल निराकी थी। इस समय परम पराक्रमी, विचित्रजयी राक्षसराज रावण भीसों हाथोंसे एक साथ सैकड़ोंकी संख्यामें वायु खड़ा-खड़ाकर पानती सेनाका संहार कर रहा था। इतना ही नहीं, इस भूम-धामसे आक्रमण करते हुए भगवान् रामचन्द्रकी ओर वह बढ़ा खड़ा भा रहा था। अपने अभिमत पानरोंकी-उन पानरोंकी जिन्होंने भगवान्की सेवामें आत्मबलि करनेका इष्ट संकल्प किया था-घोर विपत्तिके समय रक्षा करनेसे मन हटाकर यदि वह एक मिनटके लिये भी ठहरते, भाईकी सेवा-शुभ्रवा अथवा चिकित्साका प्रबन्ध करनेमें लग जाते तो उनके विमल चरित्रमें कर्तव्यशून्यताका काजा टीका लगाकर उन्हें स्वर्गीयनका शिकार बनानेमें इतिहास-लेखक कदापि भ्राना-कानी-रियायत न करते। इधर रावणकी शक्तिसे लक्ष्मण मूर्च्छित हुए थे और उधर वीरकेशरी हनुमान्की छातसे राक्षसराज रावण। रावणको सचेत और युद्धके लिये सज्ज देखकर हनुमान्जीके परामर्शसे उन्हींके कन्धेपर सवार हो रामचन्द्रजी रावणका मुकाबला करनेके लिये धागे बड़े। इस तरह आगुहईकी उपेक्षा भले ही कहेजाये परन्तु भगवान्ने अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये प्रायश्चित्त भाईको-‘विष्णोभोगमनी-मांस्यमात्मानं प्रत्यनुरमन्-’के आधारपर छोड़ दिया। उनको एक बार कर्तव्यके धनुरोधसे अन्वयन तपस्वी शम्भूकका बंध करना पड़ा था, दूसरी बार प्रायश्चित्त-इन्द्रवैशरी जानकीका त्याग करना पड़ा था और तीसरी बार अपने अभिमत भाईको मूर्च्छित अवस्थामें शृणु-शाय्याके निकट छोड़ना पड़ा।

इस तरह अथवा ही वह कञ्जेपर पत्थर रसकर परम प्रहारी शत्रुसे युद्धमें मुठभेड़ करनेकी सज्ज हुए, परन्तु इसप्रकारका कर्तव्य पालन करते समय यदि वह भाईको मूल जाते तो एक ओरसे इतर कर्तव्य-शून्यता उठार दूसरी ओरसे भा चढ़ती। उन्होंने उक्त वाक्यद्वारा अपने पिय बन्धुको उनके अथवा होनेकी याद दिलायी। उन्होंने भाईकी सेवा-शुभ्रवाका, उनकी रक्षा-चिकित्साका भार अथवा अथवा, पानरराज सुमीर और राक्षसराज विभीषणपर डोहा। इत्यन्तसे सब तरह तैयार होकर

भागवान्ने अपने शत्रुको खलकारा । वह कहने लगे—  
'तूने मेरा अप्रिय करनेमें कमी नहीं की है । यदि आज तू  
इन्द्र, भारकर, महा, वैधानर या शत्रुकी शरणमें भी  
चला जाय, यदि आज वहाँ विराटमें भागकर बचना  
चाहे तो भी मेरे हाथसे बचकर नहीं निकल सकता । आज  
पेशक अपनी शक्तिसे तूने लक्ष्मणको तारित किया है  
किन्तु मैं इस दुःखकी शान्तिके लिये तुम्हें पुनः और  
पौत्रोत्सहित मारे बिना न छोडूँगा । जिन बापोंसे मैंने  
जनस्थानमें चौबह सहस्र राक्षसोंका संहार किया था  
उन्हींसे तुम्हें मारूँगा ।' इसके अनन्तर राम और रावणका  
घोर संग्राम हुआ । वही युद्ध, जिसके लिये कदा कदा है—  
'रामरावणयुद्धं रामरावणयोर्वि' । सत्यम् यह कि इनको  
भिदन्त एक निराले ढंगकी थी । वह ऐसा संग्राम था जैसा  
संसारके इतिहासमें दूसरा—'न भूतो न भविष्यति' । इस  
भीषण संग्राममें रावण घबड़ा उठा । वही रावण विचलित  
हो उठा जो सचमुच विश्वविजयी कद्वानेकी चमत्ता रखता  
था । रामके बापोंकी मारसे व्याकुल रावणका धनुष हाथसे  
गिर पड़ा । उसका सूर्यप्रतिभ क्रीट स्वयं-स्वयं  
हो गया ।

आजकलकी कूटनीतिके अनुसार ऐसे घबड़ाये हुए  
शत्रुको यदि भागवान् रामचन्द्र उसी समय दबोच लेते तो  
कोई भी उन्हें डरा कहनेवाला न था । सम्भव है कि  
घबड़ाये हुए शत्रुपर दया दिलानेवाले श्रीरामपर आजके युद्धपटु  
वीर कायरता या बुद्धिहीनताका कड़क लगावें किन्तु  
उनके उदार हृदयमें यदि इसप्रकारकी कूटनीतिके स्थान होता  
तो वह कदापि मर्यादा-पुरुषोत्तम कद्वानेके अधिकारी न  
होंते । वे वास्तवमें भागवान्के भवतार थे । उन्हें भवतार  
लेकर संसारके इतिहासमें सर्वोत्तम आदर्श, नर-रत्नका एक  
उत्कृष्ट आदर्श लक्ष्य करना अभीष्ट था । वे चाहते थे कि  
उनकी उपमाके वही उपमेय हों । वस, उन्होंने वही कार्य  
किया जो उनके सरश महापुरुषको करना चाहिये था ।  
उन्होंने घबड़ाये हुए कर्तव्यरूप्य और अपनी प्रायमियाको  
उनकी धनुषस्थितिमें बखर्पूँक सुरा से जानेवाले बीच  
शत्रुको समाधासक देने हुए सम्बोधन किया—'वद्यपि  
तूने आज बड़ा भीम कर्म करके तुम्हें आतुरीन कर  
दिया है, तू मेरी धनुषस्थितिमें मेरी गृधिणीको बखर्पूँक  
पकड़ जाया था, इसलिये मैंने आज ही प्रतिज्ञा की थी कि  
मैं आज तेरा बच करके तुम्हें सदाके लिये बरागापी  
कर दारूँगा । किन्तु तू मेरे बापोंकी मारसे व्याकुल है, तू

बचते-बचते बच गया है इसलिये अब तुमपर शर कर्  
मैं उचित नहीं समझता । वा, लड़ाने पड़ा जा । त्रि  
तू तीयर होकर मुझसे युद्ध करनेके लिये सामने आ  
तब देखूँगा कि तुम्हें कितना शौर्य है ।'

प्रबल शत्रुसे इस तरह उदारताका-दयाका व्यवहार रा  
रावण मागा हुआ लड़ाने पहुँचा और तब इव भरत  
रामचन्द्रको प्रियवन्धु लक्ष्मणकी धिक्रिया करने-ने  
भारोभयता प्रदान करनेका अवसर मिला ।

रामबापोंके भयसे पीड़ित और स्पष्ट रावणने वरी  
लड़ाने आकर शरण ली, तथापि उसकी दया उस समय ही  
ही थी जैसी पराक्रमी शार्ङ्गका तमाचा साकर मत्तमें  
अथवा गरुडके पंजोंसे छूटे हुए सर्पकी होती है । वह बाल्य  
महालक्षके सरश भ्रमोच राम-शरोंकी मारको कारणसे मृत  
हो उठा था । वह राक्षसोंकी सभामें सुवर्ण-मितालन  
आसीन होकर सोचने लगा । समास्यक वही, सिंहासन वी,  
किन्तु विश्वविजयी रावण आज पराजित, व्याकुल ही  
भयभीत था । उसे आज वह राजसभा, वह द्य,  
वह वैभव—सब खानेको दौड़ते थे । इस समय उसे ही  
इसके बदले फूलकी भोंपड़ी मिलती तो गनीमत थी ।  
सचमुच ही उसे माता पृथ्वी मारने दे देती तो उन्हें  
समाधानमें ही सन्तोष था । वह जिन रामका, एक सल  
मनुष्य समझकर निरादर करता था, जिन्हें एक सल  
तुष्प्रातितुष्प मानकर उनकी प्रिय पत्नीको हार खारा था,  
हार पर हार और राक्षसोंका विनाशपर विनाश होने  
जिनके लिये उसने—'जिज मुन वल मे वैर बरता । मे  
उतर जो रिपु चदि मारा ॥' का प्रयोग किया उन्हीं रामने  
आगे आज उसे हार खानी पड़ी । उनकी हारने-ने  
उन्हींकी दयासे प्राय बचाकर समर-भूमिमेंसे भाग कर  
पड़ा । रावण-सरश अभिमानीके लिये इससे बाहर बचने  
कीन-सी बात हो सकती है । भागवान् रामकी उस हृदय  
यदि वह अन्ववादर्पक भास करनेकी चमत्ता रख  
तो अचरय ही उसे सन्तोष होता । उसने अपनी काने  
पक्षपाते हुए कहा—'मैंने माताका, गृधिणीका, और मेरी  
उपदेश न मानकर बहूँ, डरा किया । मैंने आज  
बत्सीडीको पाकर रामके प्रकाशको टुकराया । मैंने आज  
करके बड़े बड़ा बरदान पाया । उत बरदानके जोमे  
सुरेन्द्रचक्रको तुम्हें समझता था । हाव । हाव । मैंने  
मौलने समय मनुष्य-व्यतिको तुम्हें समझकर वरी

भूल की। क्या धरणा होता जो उस समय में मनुष्य-जातिसे भी अपनी अव्ययता माँग लेता। धाम राजा भगवत्पदा कथन सत्य हुआ। बालकमें तपस्विनी वेदवती, पार्वती, नन्दीधर, रमा और बरुण-कन्याके साथ सच्चे हो गये। निश्चय, भव निश्चय हो गया कि वही वेदवती महामाया सीताके रूपमें मेरा नारा करनेको अवतरित हुई है। जिस रावणके भानो इन्द्रादि देवता काँपते हैं, जिसका नाम लेते ही त्रिजोकी सिहर उठती है उसी रावणको धाम एक तुल्य मनुष्यके आगेसे, उससे प्राय-भिन्ना प्राप्तकर भाग भाना पदा।<sup>१</sup> वास्तवीकिय रामायणमें इस विषयमें जो कुछ बिसा है यह उसका धक्किल भाषान्तर नहीं है। भाव उसके है और भाषा मेरी है।

इसप्रकार विज्ञाप करते हुए रावणने भगवान् रामचन्द्रके क्रमोप धायोंका शिकार बननेके लिये भाई कुम्भकर्णको जगाया। इसके बाद जो कुछ घटनाएँ हुईं उनका उल्लेख गोस्वामीजीके 'रामायण-मानस' में है, किन्तु सहसा समझमें नहीं आता कि यह ऐसे भाववचक प्रसङ्गको—जिसका उल्लेख करनेमें शत्रुप दया दिवानेमें उनके हृदयकी कीर्ति होती थी—क्यों छोड़ गये। अवरय ही उन्होंने चौबीस हजार वास्तवीकिय रामायणको मानस-जैसी छोटी पुस्तिकामें रखकर गायरमें सागर भरनेका सराहनीय उपक्रम किया है और इसलिये इनके स्थलोंकी धन्यान्वय कथाएँ धन्य भी कहीं पडा देनी और कहीं विचकुल छोड़ देनी पड़ी हैं, किन्तु मर यह उठता है कि भगवान् रामचन्द्रके चरित्रकी उत्कृष्टता बर्न करेवाली यह कथा क्यों छोड़ दी गयी? 'माधुरी' की पूर्ण संख्या २१में 'रावणका पश्चात्ताप' शीर्षक नोट येते समय भी इसका कारण मेरे ध्यानमें नहीं आया था। किन्तु भव निश्चय हो गया कि जो कारण अधमेव-यशका प्रसङ्ग छोड़ देनेमें था, जो कारण शम्भूके वधकी कथाका उल्लेख न करनेका था, वही कारण इस समय था उपस्थित हुआ। अवरय ही अधमेव-यशका उल्लेख न करनेमें इतिहासका एक कारणक चर्चा छूट गया किन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ कि 'मानस' काव्य है इतिहास नहीं और काव्यके लिये कारणक होता है कि उसके प्रधान पात्र समल दोषोंसे बचाये जायें। अधमेव-यशका वधमें करनेसे पूर्व अगमननी सीताका त्याग दिखाना पड़ता था, बच-बुचके हाथसे राम-सेवाका पराजित होना दिखाना पड़ता था और ऐसा करण उन्हें बलिब था। उन्हें पसन्द न था। इसी तरह शम्भू-वध सुगधमेंके अनुसार कर्वाँअवधमेंकी रचाके लिये

जनताके मनोरञ्जनार्थ—उसकी हृच्छाको देखकर किया गया था किन्तु 'मानस' जिस समयकी रचना है उस समय यह बात पसन्द की जाने योग्य न थी। ऐसा ही कारण इस समय था उपस्थित हुआ, अवरय ही इस प्रसङ्गका उल्लेख न करनेसे भगवान् रामचन्द्रजीकी विमल और आदर्श कीर्तिका आवरणक चर्चा छूट गया किन्तु इसे 'मानस' में बरलकर गोस्वामीजीने उस आचरपसे अपने हृदयको बधा लिया जो मूर्च्छितावस्थामें प्राण-प्रिय भाईको, अपने प्राथित भाईको, ज्येष्ठ शत्रुके लिये अपनी सर्वस्व त्याग-कर साथ चले जानेवाले भाईको सित्तके हुए छोड़कर युद्धमें प्रयुक्त होनेपर किया जाता। उन्हें भगवान् श्रीरामकी नीति-निपुणता दिखानेकी अपेक्षा अधुष्य भ्रातृस्नेह दिखाना हृद था। किन्तु इतिहासकी दृष्टिसे, चरित्रकी आदर्शताका विप्लान करते हुए ये तीनों ही घटनाएँ भगवान्के उत्कृष्ट प्रजारजन, नीति-परायणता और कर्तव्य-पालनके ज्वलन्त उदाहरण हैं। ये ऐसे आदर्श हैं जैसे संसारके इतिहासमें दूसरे नहीं मिल सकते।

### रामायण नैसर्गिक काव्य है

रामायण केवल एक साधारण कहानी नहीं है। यह हृदय-तलसे विनिर्गत हुआ एक नैसर्गिक काव्य है, जिसकी प्रत्येक घटनाकी अधिकांश भारतीय सत्य मानते हैं तथा उसमें उनका पूर्ण विश्वास है। यद्यपि इसकी रचना हुए बहुत काल थीत गया तथापि आर्यावर्तके सन्तानमें यह उसी रूपसे वर्तमान है, जैसा कि पचास पीढ़ी पूर्व उसके पूर्वजोंके हृदयमें उसे स्थान प्राप्त था। श्रीरामचन्द्रजीने अपने जन्मस्थानसे लेकर लङ्का-तक, विजयपूर्ण प्रस्थानके समय जिन-जिन मार्गोंसे होकर भ्रमण किया था उनका भव भी धार्मिक यात्री पदराः अनुसरण करते हैं। फरोड़ों मनुष्योंका यह हृदय-विश्वास है कि केवल श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेनेसे ही आरम-रक्षा तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। अतः जिन्हें भारतीय जनताके धिययमें पूर्ण आनकारी प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, उनके लिये यह प्रमथ अत्यन्त उपयोगी है।

—भोग्य (१८७८-७९ ई. १९०० ई.)

# गोस्वामीजी और महिला-समाज

(लेखक—पं० श्री. बगवन्नाथदासजी अनुपेदी)



पर कुछ दिनोंके भोग गोस्वामी  
पुत्रसीदासजीपर यह आचेप करने  
कगे हैं कि वह महिला-समाजके  
निष्पक्ष थे और उसके लिये विप  
उगछा करते थे । गोस्वामीजीको  
जीवनभरमें कभी झीका सुत्र प्राप्त

महीं हुआ, इसीसे यह झियोंके विरोधी बन उगईं लज्जी-कटी  
मुनाने लगे । मासिकपत्रोंमें इस विषयके खम्बे-चौड़े खेस  
भी निकल चुके हैं । उनमें श्रीरामचरितमानसकी कुछ  
पंक्तियाँ उद्धृत कर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया  
है कि गोस्वामीजी झियोंके शत्रु थे । पर मेरी समझसे  
ऐसी बात नहीं है ।

यों तो जितने भक्त और त्यागी हुए हैं मायः सबने ही  
कामिनी-काञ्चनको सख दुःखोंका मूल बताया और उनके  
रयागका उपदेश किया है । फिर केवल गोस्वामीजीपर ही  
यह आचेप क्यों ? इसके लिये 'रामचरितमानस' की  
जिग पंक्तियोंके सहारे उनपर आचेप किया जाता है यह  
भी मुक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि वे पंक्तियाँ गोस्वामीजीकी  
बनायी होनेपर भी दूसरोंके मुँहसे कहलायी गयी हैं ।  
इसलिये यह उनकी ठिक नहीं हो सकती । कविकी उक्तियाँ—  
सिद्धान्त वही हो सकता है जो वह स्वयं कहता है । जैसे—

रामनाम मनि दीप चष, जीह देहरी द्वार ।

तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥

कामिहि नारि विचारि जिमि, लोमिहि त्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरन्तर, त्रिय उगहु मोहि राम ॥

रामनाम मन्-भेजन्, हरन धोर त्रय सूळ ।

सो दयालु मोहि तोहिपर, रहे सदा अनुकूल ॥

जो यह दूसरोंके मुँहसे कहलाता है वह उसकी ठिक  
नहीं हो सकती । जो पात्र जैसा होता है उसके मुँहसे वैसी  
ही ठिक कटायी जाती है । धर्म्यया होनेसे कविकी  
मिन्दा होती है, पर आचेप करनेवाले यह बातें क्यों  
? उन्हें तो गोस्वामीजीपर आचेपकर पादिह्य  
है । अलु-

'मानगरामायण' की जिन पंक्तियोंके साथ  
गोस्वामीजीपर आचेप होता है अब एक-एक कर उलट  
ही विचार करता हूँ । छाया है कि पाठक गोस्वामीजीके  
पत्रमें ही निरर्थक करेंगे । मुनिये—

कवने अक्सर का मयठ, गनेउं नारि-विस्वात ।

जोग सिद्ध पठ समय जिमि, जतिहि मदिना नत ॥

'गनेउं नारि विस्वात' बस यही इसमें आचेपका काव  
है पर इससे गोस्वामीजीपर आचेप नहीं हो सकता क्योंकि  
यह महाराजा दुर्योधकी ठिक है और उस समयकी है न  
कैकेयीने कहा था—

सुनहु प्राणपति भावन जीका । देहु एक बर मतहि टीका ॥

मोंगउं दूसर बर कर जेरे । पुरवहु नाय मनोरथ सेरे ॥

तापस बेर विदोष उदसली । चौदह बर्ष राम बनवली ॥

'चौदह बर्ष राम बनवली' वाक्य राजा दुर्योध  
वाण-सा खगा, इसपर बड़ प्रश्नाचार्य कर करते हैं 'क्यों  
नारि विस्वात' अर्थात् इस रानी कैकेयीका विवाहसभ  
कैस गया । इसका संकेत कैकेयीकी भोर है, सारे शास्त्री-  
समाजकी भोर नहीं, क्योंकि वह कैकेयीका ही विस्वात करने  
कैस थे और किसिका नहीं । इसलिये गोस्वामीजीपर आचेप  
स्पर्ष है ।

अब दूसरा दोहा लीजिये—

काह न पावक जेरि सके, कान समुद्र समाय ।

का न करै मखल प्रबल, केहि जग काल न साय ॥

यहाँ भी वही हाज है । श्रीरामचन्द्रजी जब ल  
जानेको तैयार हो गये तब अयोध्यावासी आपसमें तुल  
हो बातचीत करते हैं । कोई कैकेयीको सब कब  
मूल बताकर गालियाँ देता है, कोई मान्यको दोष देता है  
मतलब यह कि सब ही अपनी-अपनी समझके अनुसार  
कुल-न-कुल करते हैं । उन्हीं तुलसी अयोध्यावासियोंकी ब  
है कि—'कान न करै मखल प्रबल' अर्थात् झिपों क्या न  
कर सकती हैं, मतलब, सब कुछ कर सकती हैं  
पुत्रसीदासजीने तो अयोध्याकी जनताका भाव प्रक  
किया है, फिर उनपर आचेप क्यों ?

इसी प्रकार—

सब कहें कि नारी स्वभाज । सब विधि भगम अगाध दुराज ॥  
निव्र प्रीतिदिग्द बरक गहि जाई । जनि न जाई नारि-गति भाई ॥

यह भी जनताकी उक्ति है, गोस्वामीजीकी नहीं ।

विषिटु न नारि-हृदय गति जानी । सकल कष्ट अथ अवगुन खानी ॥

यह भारतजीकी उक्ति है । गनिहाजसे आनेपर जब उन्होंने पिताका मरण और राम, अचमय, सीताका वन-गमन सुना तब वह शोकसे व्याकुल हो गये । जब मालूम हुआ कि इन धनियोंकी जड़ रानी कैदेयी ही है, तब तो यह हठबुद्धि हो माताको फटकारने लगे । माताको फटकारते-फटकारते नारी-समाजतकको फटकार डाला । मोचमें पैया होता ही है । धातकज भी किसीसे जड़ाई होने ही तो एकडे धरराधरर उसके सारे खानदान और कतिमरको माखिया सुननी पवती हैं । दो विभिन्न भाविके खोगोंमें ध्यना होनेपर दोनों एक दूसरेकी जातिको

भी निरुद्ध बता देते हैं । इसी तरह भारतजीने मातापर गुस्सा होनेके कारण सारी छियोंको कपटिन, पापिन और भ्रवगुणोंकी खानितक कह दिया । इस स्वाभाविक वर्णनके हेतु गोस्वामीजीपर आक्षेप न कर उनकी प्रशंसा करनी चाहिये ।

ढोल गवौर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़नाके अधिचारी ॥

यह उक्ति भी समुद्रकी है । श्रीरामचन्द्रजीने जब धनुष चढ़ाया तब समुद्र 'विश्व रूप भायो तत्रि माना' उसी समयकी यह उक्ति है । गोस्वामीजी यहाँ भी बच गये ।

विलार-भयसे और अधिक न ज़िझ यह खेल यहाँ समाप्त फाला हैं । पर इतना और भी निवेदन करता हूँ कि यदि तुलसीदासजी छियोंके निन्दक होते तो कौनक्या, सुमिया, सीता, धनसूया, तारा, मन्दोदरी आदिसे धरणी धरणी अपदेशमय बातें न कहजाते । मेरी समझसे गोस्वामीजी मदिखा-समाजका जितना आदर करते थे, उतना हाथध आक्षेप करनेवाले भी न करते होंगे ।

## कैसे आज्ञाएं प्राप्त करें

बताओ कैसे आज्ञाएं प्राप्त करें ?

१  
गकि-दीप टिम टिम उदोत है,  
मन पैटा अहान-योत है,  
नवरी-सा न प्रेम स्रोत है,  
शंकाका व्यापार ;  
हृदय-देशमें मचा वासनाओका हाहाकार ।  
बताओ कैसे आज्ञाएं प्राप्त करें ?

२  
लिपटा विषम मांहमें यह तन,  
कहता हूँ कुछ करता कुछ मन,  
तुम्ही बताओ रपुकुल-नन्दन ।  
कैसे हाथ पसार  
गहूँ चरण, मागूँ किस मुखसे क्षमा-भीत कर्णार ।  
बताओ कैसे आज्ञाएं प्राप्त करें ?

३  
न हनुमत-सी स्वामि-भक्ति है,  
न लक्ष्मण-सी त्याग-शक्ति है,  
सात्विक तुलसी-सम न भक्ति है,  
कह दो कौन प्रकार ;  
गिरे, चरण-रेजमें कर डालूँ जन्म सकल भर्णार ।  
बताओ कैसे आज्ञाएं प्राप्त करें ?





भगवान श्रीराम और काकभुसुंडि ।  
'चलते भागि तब पूष देखावहि' ।





दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
पौष शुक्ल ४	श्रीबिभीषणजीका श्रीरामजीसे मित्राप ।	वनवासका १४ वाँ वर्ष	फाल्गुण कृष्ण ४	लिये सम्मानन । श्रीरामका रावणके मुकुटोंको नीचे गिरा देना ।
पौष शुक्ल ८ से १२ तक	सेतु-निर्माण ।	"	फाल्गुण कृष्ण ६ से १४ तक	कुम्भकण्ठका युद्धके लिये धाना धौर उसका श्रीरामचन्द्रजी-द्वारा वध ।
पौष शुक्ल १४	सेनालहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र पार करना ।	"	फाल्गुण शुक्ल ४ तक	महोदर, त्रिशिरा तथा अन्य रावणके सेनापतियोंका युद्धमें मारा जाना ।
माघ कृष्ण ३ से १० तक	लङ्कापुरीका घेरा जाना ।	"	फा० शुक्ल २ से ७ तक	शक्तिवाय वध ।
माघ कृष्ण ११	रावणके शुक एवं सारण्य नामक दूतोंका श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना ।	"	फा० शु० मने १२	पुरुभ, निडुम, जहू तथा अन्य राक्षसोंका वध ।
माघ कृष्ण १२	लङ्काके मुख्य-द्वारका श्वरोधकर सेनाका स्थापित कर देना ।	"	फा० शु० १३ से चैत्र कृष्ण १ तक	मकर, श्वर तथा अन्य दोदाष्टोंका वध ।
माघ कृष्ण ३०	श्रीरामका माया-मन्त्रक रचकर रावणद्वारा भगवती सीताको धोला देनेका प्रयत्न ।	"	चैत्र कृष्ण २	मेघनादका युद्धके लिये धाना । श्रीहनुमान्जीका द्रोणगिरि जलना और धायल वानरोंका धाराम होना ।
माघ शुक्ल १	सन्धि (शिष्टाई)के लिये धरुदका रावणके पास जाना ।	"	चै० कृ० ८ से १३	६ दिनोंतक धनयोर युद्ध ।
" ७-८	धनयोर युद्ध ।	"	चैत्र शुक्ल ११	मातङ्गिका युद्ध-रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित होना ।
" ११	अकम्पनका वध ।	"	चै० शु० १२ से १	१८ दिनोंतक श्रीराम रावणका घोर युद्ध ।
" १३	भ्रंगद्वारा वज्रदंष्ट्रका वध ।	"	वैशाख कृ० १४	रावणका वध ।
" १४	भीमद्वारा महलका वध ।	"	" ३०	श्रीसीता-राम-मित्राप ।
फाल्गुण कृष्ण २	मन्धोदरीका रावणको, श्रीरामचन्द्रजीके साथ सन्धि करनेके	"	वैशाख शुक्ल ३	

### तुलसी

तुलसीरुत राम-कथा जगमें, नर-नारिन तारनकू पुल-सी ।  
 पुलसी भयसागर पारन कूं, पादि के मन गौठ गईं तुल-सी ॥  
 तुल-सी गठरी गईं पापनकी, धुल-सी गईं औ जनता हलसी ।  
 हलसी जनता, हलसी बसुधा, हलसी हलसी, जनि के तुलसी ॥

ॐ भगवन्निहारी गणेश '५११२'

# वनगमन और रावणवधकी तियायौं ०

(वेमक-१० श्रीरामचन्द्रजीके दिन)

(१) श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ होगी ?

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ ?

(३) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको वनवासमें प्रवेशकीये ?

(४) उनके वनवासके चौदह वर्षकी पूर्ति किस भाँति हुई ?

उपर्युक्त विषयोंमें बरार बहुत मनभेद है, इस सम्बन्धमें हम अपने विचार सम्मत् प्रकाश करते हैं।

(१) भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ हुई ?

यह सब जानते हैं कि जिस दिन रामचन्द्रजीका रावणामिरेक उत्तराय था, उसी दिन उनको चौदह वर्षके लिये वनवास-यात्रा करनी पड़ी। इसलिये अभिषेक-तिथिके निर्णय-के साथ ही उनकी वन-यात्रा-तिथिका भी निर्णय हो जाता है। अब देखना चाहिये कि उनका अभिषेक किस दिन था ? वाल्मीकीय रामायणमें अभिषेकके मास और नक्षत्रका तो उल्लेख है, पर पक्ष और तिथिका कुछ निर्देश नहीं। न हो, किन्तु मास और नक्षत्र ही पक्ष और तिथिका पता बता देते हैं। महाराज दशरथ अभिषेकसे पहले दिन रामचन्द्रजीको बुलाकर कह रहे हैं कि—

‘इस समय वैश्रवा सुन्दर और पुष्य मास है, जिसमें सब वन खंगल फूल गये हैं। आज पुष्यसे पहले नक्षत्र पुनर्वसुपर चन्द्रमा आया है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि कल निश्रय पुष्य (नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका) योग है, तुम पुष्यनक्षत्रमें कल अपना अभिषेक करा लो। मेरा धन्तःकरण मानो मुझसे शीघ्रता करा रहा है।’ (वा० रा० २। ३। ४ पं २। ४। २१-२२)

महाराज दशरथके कथनसे स्पष्ट हो गया कि वैश्र-मासके पुष्य-नक्षत्रमें अभिषेक होनेवाला था, इससे पक्ष और तिथिका

भी निश्चय आगये आता हो जाता है, क्योंकि ज्योतिषी रावणके अगुगार पुष्य-नक्षत्र वैश्र-मासके शुक्लपक्षमें ही पड़ है, सो भी केवल नगरी दशमी और पृथ्वी हर रोज तिथियोंके भीतर ही। नगरी रिखा होनेसे रावणके लिये बर्जित है। पृथ्वीका जन्मतिथि होनेसे रावणके लिये कुछ विशेषता नहीं रहती। इसलिये अर्थात्-जन्मके यह मित्र हो जाता है कि वैश्र मासके शुक्ल-पक्षमें पुष्य पूर्णातिथि दशमी रावणामिरेकके लिये निश्चय हुई। कैकेयीकी इच्छामें रावणामिरेक रुक गया और तीसरी दिन वन आना पड़ा। यद्यपि वैश्र-मास रावणके लिये अशुभ है तथा कि मुद्रांशुकाके जिला है—

‘नानिरेकः शुभो वाप्यो नृपे वैश्रवसिनाके ।  
न मूढे प्रमुढे च रिष्णौ रिक्तानु रक्षितु ॥  
(कवेय)

उत्तरायण मैत्रेन्द्र-पातु-चन्द्र-कोटुतु ।  
सपुत्रधीमय-वीष्णुतु कुर्वाण्यभिषेचनम् ॥  
(हरदा)

अर्थात् ‘वैश्रवस्यके समय, वैश्रमास, अशुभनाश, तिथि और मंगलवारमें किसीके भठमें, अथवातमें भी रावण अभिषेक अशुभ कहा गया है। तीनों उक्त, अतुल अ्येष्टा, रोहिणी, सुगरीय, हस्त, अवय, अश्विनी, पुष्य और रेवती इन नक्षत्रोंमें राजाका अभिषेक करना बर्जित फिर भी महाराज दशरथने बर्जित वैश्रमासमें ही रावणामिरेक कर डालनेके लिये शीघ्रता की। इतनी शीघ्रता की कि ‘कोसल-साम्राज्यकी भविष्य सुवर्षाकीके लिये मिथिलाधिपति नृपति सीरध्वज जनकको और अलक शालिनी तरुणा रानी कैकेयीके तेजस्वी पिता प्रबल समर्थकेक राजाको भी बुला नहीं सके। और कह दिया कि कोई बात नहीं, अभिषेकके प्रिय संवादको वे पीठे डूब लेंगे (वा० रा० २। १। ४)।

• श्रीरामके वन जाने और लङ्काविजयके पश्चात् पुनः ज्योतिषी लौटनेकी तिथिोंके सम्बन्धमें कल्याणमें पहले बने विमर्शका एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुका है। तिथिपत्र सम्बन्धी दो अन्य लेख इस लेखमें छपे हैं अथवा राजकी अवलोकनायें उस लेखका आबन्धक अंग यहाँ उद्धृत किया जाता है। —सम्पादक

यद्यपि रामाकी मृत्यु आदि राजनैतिक संकटके समय भयेके सुहृत्के लिये सारा विवेचनकी आवश्यकता नहीं थी, परन्तु महाराज दरारने सुहृत्के विशेष आलोचनकी बात कर इतनी धरा क्यों की ? इसके उत्तर रामायणमें नैवे ही श्रीरामचन्द्रजीके सामने इसप्रकार दे रहे हैं—

‘ये पुत्र राघव ! और भी एक बात है कि आज मैंने अग्रिम स्वम देले हैं । (आकाशमें) निर्घात शब्द हो हैं और बदांसे महानाद काती हुई उलकाएँ पड़ रही हैं जल बला रहे हैं कि मेरे मधुप्रपर हे राम ! शुक्र, मञ्जल राहु दारुण भइ ध्राये हुए हैं । ऐसे विभितों (उल्पातों) प्रादुर्भाव होनेपर प्रायः राजाकी मृत्यु होती है और (ई) घोर निपट आती है । अतः जबतक किसी तरह का विच मोहित नहीं होता है, उससे पहले ही (तुम जा) अभियेक करा लो क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि स्थिर रहती । इस तरहके कायोंमें बहुत विग्र भा पड़ते जबतक मरत राजधानीसे यादर हैं, सभतक ही मेरी कतिमें तुम्हारे अभियेकके लिये (अच्छा) अवसर है । ठीक है कि तुम्हारे भाई भरत (अवतक) सव-पुरुषोंके वरणमें स्थिर हैं । किन्तु मेरी सम्मतिमें मनुष्योंके वित्त व पुत्रस नहीं रहते । (वा०रा०ब०)

यह हो सकता है कि रामायण-युगके किसी सुहृत्-वर्गमें राज्याभियेकके लिये शायद चैत्र-मास वर्जित न हो पर भी ठीक है कि श्रीराम-राज्याभियेकका सुहृत् ई दुर्बल्य दैवगतिके सामने पराजित हो गया, भी ऊपरके अवतरणसे यह सो मानना ही पड़ेगा कोरपलेचरने राज्याभियेकके सब अङ्गोंपर सन्तोष-अनक से विचार नहीं किया और न करना चाहा । श्री-चन्द्रजीके समग्र सर्गक-हृदय शब्द रूपतिने जो हृदयकार मष्ट किया और जो सारनेग दिलाया, उससे तो यही त होता है कि उन्हें बढ़िया सुहृत्की आवश्यकता नहीं अभियेकके लिये बहुत भारी सैयारीकी लालसा भी थी । लालसा थी तो एकमात्र यही कि किसी तरहसे धरती-ले-जल्दी से एक बार जो कल्पनाभिराम श्रीरामको संरके प्रधान और विरप्रतिष्ठित राजसहासनपर नैतिक देवका नेत्रोंकी सफल कर लें । वे इतने तर क्यों हुए ? भाइस होता है कि अयोध्याके साम्राज्य जो विपत्ति आनेवाली थी, उसके विषादकी धाराने के इन्द्रको बेर दिया था । उससे समुद्रगम्भीर वे

राजपि’ इतने विह्वल और चञ्चल हो गये कि आकाराकी तरह निष्कलंक लोकगवन महात्मागी राजकुमार भरतजी पर भी अक्षय्य सन्देह कर बैठे । शेक्सपीयरद्वारा कवियत कलिनायक हैमलेटका ज्ञान-नार्म उन्माद और किंग लीयरका परिणामानुकूल पागलपन भी पदा है, पर श्रेतायुगके ऋषि-प्रशंसित देव-वन्दित उस उपय-श्लोक अमर नरपतिके मनकी प्रकृत धनवस्थाका चित्र बढ़ा ही मर्मरपर्यं है । जो हो, ऐसी दरामें जो कुछ होना या वह हो गया । भगवत्-संकेतसे घटनापक्ष धूम गया । अभियेक-दिन निर्वासन दिनमें परिवर्त हो गया । अयोध्यावासियोंके धानन्दका सूर्य उदय होते ही अस्त हो गया । वह दिन श्रीरामचरितके ग्रामोपोनमें ऐसा दबल रेकर्ड है जिसके एक तरफ रामाभियेकके धानन्दकी भैरवीका आलाप पूर्ण होनेसे पहले ही दूसरी ओर रामचन-यात्राकी सोहनीका शोक-संगीत शुरू हो जाता है । जो हो, धार्यजातिके इतिहास-प्रांगणमें आज भी वह दिन एक ऐसे उच्च गोपुरकी तरह दृष्टायमान है, जिसकी एक दिशापर ‘सत्यसंध दशरथ और रामाभियेक’ और दूसरीपर ‘पितृभक्त श्रीराम और उनकी वन-यात्रा’ अद्वित है एवम् मस्तकपर लिखा है—

### ‘चैत्र शुक्ला १० पुष्यनक्षत्र’

श्रीरामचन्द्रजीके वन-गमनकी तिथिका निर्वाण हो गया । इसके बाद यह निश्चय करना है कि—

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ ? रावणवधतक भगवान्की लीलाओंके समय या तिथिका क्रम इसप्रकार है—

चित्रशुद्ध १— यात्रा-दिनसे छठे दिन, अर्थात् चैत्र-शुक्ला १२ को रामचन्द्रजी चित्रशुद्ध पहुँचे ।  
 अत्रि, शरमंग, मुतीवण आदि ऋषियोंके आश्रम धारममें ही कर चुके थे ।

उक्त संवत्सत्सय मुनीनामाश्रमेषु वै ।  
 रमलक्षानुकन्धेन ययुः संकसरा दश ॥

(रा० रा० १।११)

सुतीक्ष्ण-आश्रममें पुनर्गमन ३—घनवासके ग्यारहवें वर्षके आश्रममें श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें दूसरी बार आये और वहाँपर अनुमान दश मासतक अर्थात् वर्षाकालकी समाप्ति तक रहे ।

सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवात्रगाम ह ।  
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमिन्दमः ॥  
(रा० ३।११।२८-२९)

अगस्त्याश्रम ४—ग्यारहवें वर्षके ग्यारहवें महीनेमें कार्तिक मासमें श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्य मुनिके आश्रममें पहुँचे ।

पश्चिम्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः ।  
हंसकारण्डवाकीर्णाश्रकवाकोपशोभिताः ॥  
(रा० ३।११।४०)

वारहवें वर्षके ग्रीष्मकालतक वहाँपर रहे ।

पञ्चवटी और सीताहरण ५—वारहवें वर्षकी वर्षा ऋतुके आरम्भमें भगवान् श्रीराम पञ्चवटीमें आये, जटायुसे मिले ।

'मयुरनादिता रम्याः' 'दृश्यन्ते गिरयाः सौम्याः' ।  
(रा० ३।१५।१३।१४)

यह वर्ष उनका वहाँपर समाप्त हो गया । तेरहवें वर्षके मार्गशीर्ष मासतकका समय भी वहाँपर निर्विक्रतासे व्यतीत हो गया ।

यसतस्तस्य तु सुखं रावतस्य महद्गमनः ।  
शरद्व्यपामे ह्यमन्तःशत्रुरिष्टः प्रवर्ततः ॥  
(रा० ३।१२।११)

शृण्वन्नाके कर्ण-नासिका-क्षेदनके अनन्तर जन-स्यानके चौदह सहर राक्षसोंका घब हो होनेपर तेरहवें वर्षके तीसरे महीने अर्थात् शिशिर ऋतुके अन्तिम मास आश्विनके आद्यपक्षमें शरदण्ये सीताजीका अपहरण किया ।

कुनमापचक्षयप्रा पादपानत्यवर्तत ।  
कर्णिकारान्तरीकांश्च च्छेत्वाश्च मदीरेथणा ॥  
(रा० ३।४२।३०।३१)

६—मीनाश्वेत्पक्षके समय कक्ष्य-वध परमारोत्तर और धीर शब्दी-उद्धारके बाद अनुमान तेरहवें वर्षके वर्षा-पक्ष ( अगस्त्य ऋतुके अन्तिम ) अश्वि मासमें भगवान् अमन्तः परमारोत्तर और कक्ष्यवध वर्षापर पहुँच रावणपुत्र सुतीक्ष्णसे मिले ।

गन्धवान् सुरमिर्मसौ जातपुष्पकद्रुमः ।  
(रा० ४।१।१०)

नालिकवध और प्रसवण पर्वत

७—तेरहवें वर्षके साठवें ( अगस्त्य ) मासमें बालिका यच हुआ । पराशर ऋषयसे लेकर पौष कृष्ण ऋतुके चौदहवें वर्षके आरम्भतक श्रीरामचन्द्रजी प्रसवण या माक्यवान् पर्वतपर रहे ।

पूर्वोऽयं वर्षिको मासः श्रावणः सकलामनः ।  
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वर्षिकसंज्ञिताः ॥  
कार्तिके समनुप्राप्तं त्वं रावणवधे यतः ।  
(रा० ४।२६।१३-१६)

लंकाप्रवेश और सीतासंवाद

८—चौदहवें वर्षके प्रथम मास मार्ग की शुक्ला ११ को महावीर इन्द्रमातृका की पुत्से । अगले दिन शारदीय की श्रीजानकीजीसे संवाद हुआ ।

हिमन्यपामेन च शीततरिर्मरम्युरियतो नैकसहस्रतनः ।  
(रा० ५।५।११)

सेना-प्रयाण

९—पौष कृष्ण ऋतुमें उषा-काण्ड नक्षत्रमें मन्षाह्निके समय ।

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरुचये ।  
मुक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्ते मय्यं दिवाकरः ॥  
उत्तराश्विनी क्षम  
(रा० ६।४।१६)

सुवेल शिखरपर आरोहण

१०—पौष शुक्ला चतुर्विंशती या पौर्व-नक्षत्रको सेनाके अग्रभागको निरूपण करने पर पहुँचा स्वर्णसुवेल पर्वतपर चले ।

ततोऽस्तपगमत् सूर्यः सन्ध्याया प्रतिरक्तिः ।  
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च निरास समनिरासि ॥  
(रा० ६।२८।१८)

श्रीरामचन्द्रजीकी समाप्त सेना एक मासमें एक सेनापति के कालक पहुँच सकी ।

( म० भा० ३।२८१।५० )

सेना-निरास और दूत-सन्देश

११—दूत शोभो काण्वीमें जाकर हुए जो अमावस्यातकके १३ दिन व्यतीत हो गये ।

वानर-राष्ट्रगोके सम्य मुद	१२—चतुर्दश वर्षके चतुर्थमास (माघ) की शुक्ला प्रतिपदसे भाद्रपदकी अमावस्यातक, छंकासे बाहर वानर और सेना-भङ्गियोंसे आश्रत राजसौकी साधारण सेनाके खयद युद्ध होते रहे।	( २६ ) नरान्तक-वध ( २६ ) महोदर-वध ( २७ ) महापारथ-वध ( २८ ) मेघनादकृत प्रह्लाद-प्रयोग ( २९ ) संजवनी धामयन ( ३० ) दुग्ध-निदुग्ध-वध	शाशिन कृ० ४, " ६, " ९, " ७, " ८, " ९, " ९, दिनमें { रात्रिके { समय " १३, " १४,
------------------------------	---	---	---

इन युद्धोंमें छः महीने निकल गये।

अन्ते सुमहान् काल शमानस्य महाबल।

सुबुधस्तं न जानीषे मम राम-कृतं ममम् ॥

( १०६।६२।१३ )

उक्त युद्धोंमें प्रमुख थोडा और सेनापतियोंमें भाग  
नहीं लिया। आगे इन लोगोंके जो युद्ध हुए उनके विवरण  
भीचे दिये जाते हैं।

सेनाका संकुल-  
मुद तथा प्रमुख  
वीरोंका दन्द्रयुद्ध  
१३—भाद्र शुक्ला प्रतिपदाको स्वयं  
रावणद्वारा प्रेषित प्रधान सेनाका  
वानरोंके साथ संकुल युद्ध हुआ, इसी  
दिन दोनों ओरके प्रमुख वीरोंका सबसे  
बड़ा इन-युद्ध हुआ।

निर्याणं सर्वैस्तेन्यानां द्रुतमाहापयतया।

( १०६।४२।३२ )

राक्षसी वानराणां च दन्द्रयुद्धमवर्तत।

( १०६।४३।४३ )

मेघनादका  
नामघात  
१४—भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाकी  
रात्रिके समय।

अदस्यो भिरितान् बाणान् मुनोऽकाशमिसितिमान्।

रामं च हरमणं चैव धीरैर्नागमयैः शरिः ॥

( १०६।४४।३७-३८ )

( १६ ) पूषा-वध	भाद्र शुक्ला २,
( १७ ) वज्रसू-वध	" " ३,
( १८ ) अकान्त-वध	" " ४,
( १९ ) प्रह्ला-वध	" " ६,
( २० ) रावणका पराजय तथा पलायन	" " ९,
( २१ ) दुग्धकर्षण-वध	" " ८,
( २२ ) दुग्धकर्षण-वध	" " १२,
( २३ ) अत्रिहाय-वध	आरिवन कृप्य— १,
( २४ ) अत्रिहाय-वध	" " २,
( २५ ) देवान्यक-वध	" " ३,

( ३१ ) मकराष्ट्र	}	" { रात्रिके { समय
( ३२ ) माया सीता		
( ३३ ) मेघनाद वध		" १३,
( ३४ ) मूल सेना-वध		" १४,

( ३५ ) रावण-निर्याण—आरिवन कृप्या अमावस्या।

अमृत्याने त्वनदीत कृष्णपद्म-चतुर्दशीम्।

इत्या निर्याणममावस्यां विजयाय बहैर्वृतः ॥

( १०६।९२।६४ )

( ३६ ) रावण-वध—आरिवन शुक्ला मघमी।

म्यतीते सप्तमे रात्रे नवम्यां रावणं ततः।

रामेण घातयामास महामाया अग्नमयी ॥

( काण्डपुराण )

( ३७ ) विजयोत्सव—आरिवन शुक्ला पृथमी।

ततस्तु ध्रुवणेनाप्य दशम्या ऋषिदंडां शुभाम्।

विगुण्य चक्रे शान्त्वयै बल-नीराजनं हरिः ॥

( काण्डपुराण )

धीरामचरित्रके साधारण और असाधारण सैतिल  
अंशोंकी सूची और उनका पचासव्य समय प्रायः  
भीवालमीकीय रामायणके आधारपर कर दिया गया  
है। कहीं केवल चतुर्दश, कहीं चतुर्दश और मारा दोनोंका और  
कहींपर मघपके आश्रयमें पच और तिथिका भी निम्न हो  
गया है। किन्तु रामायणकारोंका प्रधान घटना रावण-वधके  
समयका स्पष्टतया उल्लेख रामायणमें नहीं नहीं किया  
गया। अतः उनके निर्याणके दिने महाभारत और पुराणोंकी  
ही ओर अन्वेषणकी दृष्टि दी जाती है, क्योंकि पुराणकारोंके  
सबसे बड़े कोश नहीं हैं। रावण-वधके उक्त अन्वेषणकारानुस  
अंशको 'काण्डपुराण' अर्थात् अत्रि कर देता है कि काण्डिन  
शुद्धा ३ को अगवात् रामचन्द्रजीने रावणका वध किया  
और अगच्छे दिन देवताओंने सेनामें रोहता की। मन्मथः  
अवनीधो रावण हेरते मरा और टोच समय अगवनी दुर्गाकी  
अदनी पूजामें अर्पण हो गया, हमने दृष्टमीके दिव देवी-

विगतनेके अनन्तर देवताओंमें वित्रयोग मनाया । वही कारण है कि नवमी तिथि दुर्गा-पूजाकी प्रधान तिथि मानी गयी और दशमीका नाम 'वित्रता' हो गया । यद्यपि रावणका वध आश्विन शुक्ल ६ को हुआ, परन्तु वित्रयोगव दशमीके दिन मनाये जानेसे जनताधारणने रावण-वधका वही दिन मात्र त्रिया और आज भी सारे हिन्दुस्थानकी लोहारों रामश्रीचामोंमें दशहरके दिवस ही शकल-वध होगा है । रावण-वधके दिन रामचन्द्रजीके वनवासके बारह दिन खेर रह गये थे ।

धध देवता आदिसे—

( ४ ) श्रीरामचन्द्रजी किंग मागकी किंग तिथिको वनवासमें अयोप्यामें खीरे !

रामायणमें खिरता है कि—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां रत्नमन्नाप्रतः ।

भरद्वाजाप्रमे प्राप्य वरन्दे नियतो मुनिम् ॥

( रा० ६ । ११४ । १ )

अर्थात् 'नियमपरायण रामचन्द्रजीने चौदहवें वर्ष पूरा होते ही पञ्चमीके दिन भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मुनि ( भरद्वाज ) को प्रणाम किया' यहाँपर केवल तिथिका ही निर्देश है, मास और पक्षका नहीं । पर धय यह सिद्ध हो गया कि आश्विन शुक्ल १०को शकलका निघन हो चुका था, तब साय ही यह भी निश्चय हो गया कि रामचन्द्रजी जिस पञ्चमीको भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचे यह कार्तिककृष्ण २ ही थी । कार्तिक कृष्ण ६ को वनवासके चौदह वर्ष पूरे होते थे, इसलिये उस दिन भ्रातृ-भक्त भरतजीके पास रामचन्द्रजीका पहुँच जाना अतीव आवश्यक था ।

उनके निश्चित समयपर वहाँ पर्यन्त नहीं देनेसे महान् अनर्थकी धारंका थी क्योंकि उदग्रत भरतजी वित्रवृष्टमें रामचन्द्रजीसे कह चुके थे कि—

चतुर्दशे दि । सम्पूर्ण वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥

न द्रश्यामि यदि त्वान्तु प्रवेश्यामि हुताशनम् ।

( रा० २ । ११२ । २५-२६ )

अर्थात् 'हे रघुभद्र ! जिस दिन चौदह वर्ष पूरे होंगे उस दिन यदि आँसुको नहीं देख पाऊँगा तो मैं भीममें प्रवेश कर आऊँगा ।' इसी तीव्र प्रतिज्ञाके प्रभावसे कार्तिक कृष्ण ६को महावीरजीने राम-मेघके घातक महात्मा भरतके पास उपस्थित होकर कहा कि—

'भूमिं पुण्ययोगेन श्रेयं तानं द्रष्टुमर्ति ॥'

'कह पुण्य नक्षत्रके समय निना करके सब रामचन्द्रजीको देन सज्जे' इस मन्देशके अनुरूप कार्तिक कृष्ण ६ को पुण्य नक्षत्रके योगमें भगवान् रामचन्द्रजी भरतजीने मित्राज हुआ और उमी दिन सब भाँति रामारोहके साथ अयोप्यामें प्रवेश किया । कार्तिक कृष्ण गतमीको मन्नाहाराज पुण्य नक्षत्रमें ही चौराते गुरीच काकके पञ्चान् स्वर्गिन श्रीराम-रामभिरके पुत्र सुगन्धर्व हुआ । यह विषय ध्यान देनेका है कि रामचन्द्रजी अभिषेक पहले भी पुण्य नक्षत्रमें ही होनेका था और धय दूसरी बार भी उमी नक्षत्रमें हुआ । मातृल रोज है कि कार्तिक कृष्ण ६ को मन्नाहाराज और कार्तिक कृष्ण ७ को पूर्वाह्णमें पुण्य नक्षत्र था । तमी यह हो सका कि भारत-मित्राज और अभिषेक बीसे मद्रवपूर्व दोनों धर्मा पृथ ही नक्षत्रमें हो सके । श्रीगणभिरकेके उच्छ्रव सिद्धसिद्धा बहुत दिनोंतक रहा, जिसमें खाल छोड़े, वतों ही घेनु, ली वृष और वीस कठोर सुवर्णसुन्दर तथा कितने यद्गुरुय वक्ष-धामरय माक्षसोंको दानमें दिये गये । ( रा० ६ । ११० । ७२-७५ ) चारों ओरके उपोषण और प्रथित राजा आशीर्वाद, यथाई एवं मंत्र देनेके लिये उसमें सम्मिलित हुए । सुग्रीव, विभीषण आदि सुहृद्वर्गके प्रेम-परवर हो फाकगुन मातलक राम-राजधानी अयोप्यामें अभिषेक-आतिथ्यका रसास्वादन करते रहे । अभिषेकके उपलक्ष्यमें रोशनी भी अवरय हुई, पर कितनी हुई और कितने दिन रही, इस विषयका स्पष्टीकरण महर्षि वाल्मीकिजी अयोप्याकाण्डके अन्तिम सर्गमें नहीं किया । काक, संघेपके लिये यहाँपर गव्ये स्त्रोकोंमें ही भरत-मित्राज और अभिषेकोत्सवका वर्णन समाप्त कर दिया गया है । हाँ, अयोप्याकाण्डमें रामभिरकेके आयोजनका वर्णन करते समय आदिकवि लिखते हैं कि—

प्रकादीकरणार्थं च निशामनसंकवा ।

दीपवृक्षांतया चक्रुरनुरध्यासु सर्वतः ॥

( रा० २ । ११८ )

'रात्रिके आनेसे पहले रोशनीके लिये अयोप्याके सब गली-कूचोंमें दीप-वृक्ष ( काड़ ) बनाये गये । परन्तु है'

\* तलः प्रभाते विमले सुहृत्संमिति प्रभुः ।

वसिष्ठः पुण्ययोगेन आहूणः परिचारिकः ॥

दुर्घटनासे उस दिनकी तैयारी क्यों-की-स्यों रह गयी !  
 रोशनीके अर्ध-शीपकोंको कौन पूछे, जब अयोध्यावासियोंके  
 प्राय-मन्दिरके दीपक ही धनमें चले गये । जो हो,  
 श्रीरामभिक्षेके प्रथम सुहृत्पर भरपेट रोशनी करनेका चाव  
 अयोध्यावासियोंके मनमें ही रह गया । अग्निपेकके दूसरे  
 सुहृत्पर उन लोगोंने रोशनी करनेमें पड़की चारकी कसर  
 भी निक्काह ढाळी होगी, इसमें सन्देह नहीं । उपवासके  
 आखण्ड प्रती पुरुष कितने खोरसे भोजन करता है ? अथवा  
 जब बाँध टूटनेपर कैसे बेगसे बहता है ? जब देवताकी  
 मन्दीर-पूजाके उपचारमें भी कितने ही दीपक प्रज्वलित  
 किये जाते हैं, सब प्रकृति-पुञ्जके परमाचार्य साक्षात् देव और  
 संसारविजयी रावणके विजेता प्रभु रामचन्द्रके विजय-  
 घोषित अग्निपेकके प्रथम सप्ताहमें प्रकाश—रोशनीका जो  
 अकारण आयोजन हुआ होगा, उसका अनुमान लगाना  
 कठिन है और यह प्रत्यक्ष है कि वर्तमान दीपावलिमें उसकी  
 अतिविशेष है ।

कार्तिक कृष्ण पक्षके दिन श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्या-  
 गेयमान लेनेपर यह सन्देह उपस्थित होता है कि जब चैत्र  
 शुक्ल दशमीको वनवासका आरम्भ हुआ तो कार्तिक कृष्ण  
 पक्षकी वनवासके चतुर्दश वर्षकी पूर्ति किस तरह हुई ?  
 चौदह वर्षमें पाँच महीने और उधिस दिनकी न्यूनता न रह  
 गयी है ? निस्तसन्देह, उक्त सन्देहके शौचिल्यमें कोई आधार  
 नहीं हो सकती । पापघर्षाकी धनयात्रा और अज्ञातचर्षाके  
 अन्तमें भी यही समस्या सामने आयी थी । विराट-नगरके  
 गो-अपहरण-युद्धमें बृहन्नवा वेपथरी संख्यसन्ध अर्जुनको  
 अचान लेनेपर औरवराह दुर्योधनने हो-हहा मचाया था कि  
 पापघर्षाके तेरह वर्षोंकी पूर्तिमें अभी पाँच महीने और कई  
 दिनोंकी श्रुति है, इसलिये प्रतिज्ञात समयसे पहले प्रकट  
 हो जानेके कारण इन्हें फिर वनचर्षा और अज्ञातवासकी  
 मापकिक कानी पड़ेगी, उस समय परम धर्मज्ञ पितृमह  
 श्रीमन्महीने यह व्यवस्था ही थी कि—

पथमें जबसे बनें ही मासानुपचीयतः ।

एषामन्वदिदा मासाः पथ च द्वादशशय्याः ॥

प्रचोदशानां वरुणामिति मे वीयते मतिः ।

● ● ● ● ●

सर्वं यथावचरितं यद्भदोभिः प्रतिश्रुतम् ।  
 सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकीविदाः ।  
 येषां युधिष्ठिरो राजा कथं धर्मोपराध्नुयुः ॥

( महाभारत ४ । २१ । ३-६ )

‘अर्थात् हर पाँचवें वर्षमें दो महीने बढ़ते हैं । ( इस  
 हिसाबसे ) इन पापघर्षाके ( तेरह वर्षोंमें तो धार्मिक )  
 पाँच मास बारह दिन अधिक हो चुके । मेरी यह सम्मति है  
 कि इन्होंने जो जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, वे सब यथावत् पूरी  
 कर दीं । सभी ( पापघर्षा ) महात्मा हैं और सभी धर्म तथा  
 धर्मराजके वेत्ता हैं । जिनका युधिष्ठिर ( जैसा सत्यवादी )  
 राजा है, वे धर्म ( विषय ) में कैसे अपराधी हो सकते हैं ?

भीष्मजीकी उक्त ज्योतिष-शास्त्रानुकूल व्यवस्थासे यह  
 सिद्ध है कि एतादृश विषयोंमें ३२४ दिनोंके तिथियुद्ध चान्द्र  
 वर्षोंका ही उपयोग होता है और ३६६ दिनोंवाले सौर वर्षोंके  
 अधिक मास मिलाकर उनकी पूर्ति की जाती है । अतः  
 चान्द्रवर्षकी पूर्तिके लिये सौर वर्षके अधिक मासकी गणना  
 न्यायसंगत है और उससे धर्मकी कोई हानि भी नहीं होती ।  
 ऐसी दशमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी  
 अधिक मासगणनाकी उपेक्षा कैसे कर सकते थे ? और  
 न्यायनिष्ठ रामदरिंनोस्तुक्त रामगत-प्राण भरतजी भी अधिक  
 मासोंको-गिने बिना क्योंकर रह सकते थे ? अथवा ही  
 दोनों खोरसे समय-संगतिपर पूर्ण विवेचना की गयी है ।  
 चौदह वर्षोंमें पाँच मास और उधिस दिन अधिक मासोंकी  
 गणनासे बढ़ जाते हैं—यही सोचकर श्रीरामचन्द्रजी कार्तिक  
 कृष्ण पक्षको ही दरिंनोस्तुक्त और प्रतीचमाय भरतसे  
 जा मिले । कार्तिक कृष्ण पक्षमें पाँच मास और उधिस  
 दिन जोड़ देनेसे वनवासके चौदह वर्षोंकी यथावत् पूर्ति हो  
 जाती है । गणित-शास्त्रका जो अपरिहार्य सिद्धान्त उदरराज  
 दुर्योधन जैसे हठी राज्य-कामुक्ते बिना आपत्तिके स्वीकार  
 कर लिया, उसे न्याय और त्यागके प्रथम शिक्षक कौसल-  
 राजकुमार महोदर भगवान् रामचन्द्र और भरत किण  
 भाँति त्याग सकते थे ?

उक्त सिद्धान्तसे चतुर्दश वर्षकी पूर्तिके समाधान हो  
 गया । साथ ही यह भी निर्णीत हो गया कि दशहरा  
 श्रीराम-विजयका स्मृति-दिवस है और कार्तिक मासमें ही  
 विजय-वैश्वन्ती-महिषदह पुष्पक-विमानारूढ़ श्रीराम अयोध्या-  
 में लौटे थे । इसीलिये दीपावलिका उत्सव मनाया जाता है ।



## राम-नाम

(लेखक-पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल-एल०बी०, एम० आर० ए० एम०)

कल्याणानां निधानं कर्मलममथनं पावनं पावनानां,  
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परिपदंप्राप्तये प्रस्थितस्य ।  
विश्रामस्थानमेकं कनिबरवचसां जीवनं सज्जनानां  
भीत्रं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

( हनुमत्नाटक )

राम नाम मणि दीप घर, जीह देहरी द्वार ।  
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥

—तुलसी

राम राम कहते रहो जब लन घटमें प्रान ।

—कबीर



था है कि एक बार एक सज्जन सरयू अथवा गङ्गापार करके गोरवामी तुलसीदासजीके पास उपदेश सुनने आये । झौटते समय देर हो गयी, नदीमें पूर आ गया और पासमें नाव भी न थी । उस सज्जनने कुछ ध्यप्रता दिखायी । इसपर गोस्वामीजीने कहा—'भाई ! जो भवसागर पार करा देते हैं उनके लिये यह नदी पार करा देना कौन बड़ी बात है ! तुम उन्हीं रामजीका नाम लेकर नदीको पों ही पैदल पार कर जाओ ।' उन सज्जनने वैसा ही किया और नदीके पानीमें उतरकर आगे बढ़ने लगे । कुछ दूर जानेपर जब यह गोते खाने लगे तो उन्होंने गोस्वामीजीको अपनी सहायताके लिये पुकारना शुरू किया । यह देख गोस्वामीजीने चिन्ताकर कहा—'भाई ! जो कि तुलसीदासके राम हमें पार करें और ऐसा कहते हुए पार हो जाओ ।' उन्होंने वैसा ही किया और वह सचमुच ही पार हो गये ।

क्या उन सज्जनके राम और थे और गोस्वामीजीके और ? अथवा, बात वैसी ही है । श्लोक अनुष्यके राम अक्षय अक्षय हैं । अपोप्याटे ऐतिहासिक राजा रामचन्द्रजी सम्भव है एक ही व्यक्ति रहे हों परन्तु उनका वर्णन सचने एक-सा नहीं किया है । काशमीकीय रामायणमें वे मर्त्यादा-पुस्तोत्तम बने गये हैं तो अण्णामरामायणमें विष्णुके कल्पतरु । मन्वन्तिने उन्हें लोकोत्तर पुरुष भावा है तो तुलसीदासजीने आकाश परब्रह्म परमात्मा । ऐसी

विभिन्नताका कारण स्पष्ट है । ये महापुरुष कोरा इतिहास तो खिलने बैठे ही नहीं थे । इनका उदरैय तो एक प्रकार चरित अथवा भगवत्-चरितका वर्णन करना था । इतिहासकी चौधेरी कोठरीमें दूँदते दूँदते उन्हें श्रीरामचरितसो भूमिका मिल गयी । फिर क्या था, जिसकी वहाँतक पहुँच हुई उसने वहाँतक इस चरितद्वारा भगवद्भावकी अभिव्यक्ति प्रयत्न किया । कुछ लोग इस चरितमें सन्चरितमनुष्यकी ही कल्पना कर पाये, कुछ लोकोत्तर पुरुषतक बढ़ गये, किसी-किसीने मर्त्यादा-पुस्तोत्तमकी सीमा छू ली, किसीने विष्णु अवतारकी भाँकी देख ली और गोस्वामी तुलसीदासजीके समान कुछ महात्माओंने इस चरितमें सत्त्व परमात्माहीका आभिर्भाव देखा । ऐसी स्थितिमें कैसे जा सकता है कि सबके राम एक ही समान थे और 'राम' शब्दका अर्थ एक-सा ही समझा जा ।

नदी पार करनेवाले सज्जन रामका जो अर्थ समझे उससे कई दूँदें बढ़कर अर्थ तुलसीदासजीके राममें बढ़ यदि वह सज्जन रामसे बेबल अयोध्यावासी । अथवा साचेतल्लोकवासी रामका ही अर्थ लेते होंगे । तुलसीदासजीके रामका अर्थ था—रोम-रोममें और रामानु परमात्माके रमा हुआ अक्षय्य चैतन्य, जो विष्णुका ही भी विरव-नियन्ता है । एक ही रख शाक-व्यथिताका वह पैसेका, सामान्य जीहरीद्वारा धार सौका और सचे कर्णों द्वारा धार अरब याँ इससे भी अधिक दामोंका मतलब जा सकता है । ठीक वही हाज इस 'राम-नाम' का है । कौन इससे अयोध्यावासी रामका अर्थ ले सकते हैं, कौन विष्णु अवतारका अर्थ ले सकते हैं और कौन इसे एकदम सत्त्व परमात्माका ही नाम मान सकते हैं । हाथे अर्थमें जो मिनना गहरा गोला खगायेगा वह उनका ही अधिक बल पावेगा ।

कैष्यबलोग 'राम'का अर्थ शरीरी अथवा अण्णामी समझते हैं । कबीर मानक सतीके मन्त्र रामका अर्थ अण्णामी परमात्मा ही मानते हैं । यह अण्णामी अण्णामी समझकी अण्णामी नाम तो एक ही है । मिन अनुष्यके मन्त्रमें परब्रह्मकी अण्णामी वैनी-वैनी विष्णुका और परितक होनी जावानी, वह अण्णामी

रामके धर्मकी विराजता भी वैसे-ही-सीने अनुभव करता था जायगा। नामी (नामके धर्म) बढ़ते गये परन्तु नाम धर्मों-का-स्यों रहा। इसीलिये नामकी महिमा बहुत बढ़ी-बढ़ी है।

सामान्य जगत्में हम रूपकी (वस्तुकी) प्रधानता पाते हैं, नामकी नहीं। प्यास बुझानेके लिये हमें तो वह तरल पदार्थ अन्न ही चाहिये। उसका नाम रटते रहनेसे प्यास नहीं बुझ सकती। महाराज तो नामधारी व्यक्तिका देख पढ़ता है न कि उसके नामका। परन्तु अध्यात्म-जगत्में कुछ उलटा ही खेल है। बात यह है कि अध्यात्म-जगत्के पदार्थोंका (महत्, ध्यात्मा, शक्ति आदिका) हम ध्यान तो कर नहीं पाते, वे प्राणव्य विषय तो ही नहीं, इसलिये उन्हें ग्रहण करनेमें हमें नामका सहारा लेना पड़ता है और इन्हीं कारण उस क्षेत्रमें नामकी प्रधानता हो जाती है। अध्यात्म-जगत्की वस्तुओंके लिये नामका सहारा बड़ा मजबूत होता है। शब्द और धर्मका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है; यदि एक मिखा तो दूसरा भी मिखा ही समझिये। यह नाम कैसा है जो रूपको न रोक रखे और वह रूप कैसा है जो किमी नामसे व्यक्त न किया जा सके!

शिव नाममें रूपका (धर्मका) जितना अधिक समावेश होगा, वह उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा। सामान्य मामोंसे माराट्टके नाम अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और भगवान्के सहज (या असंख्य) नामोंमें भी यह राम-नाम इसी कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है। शङ्करजीका 'सहस्रनाम तत्सुख्यं' कावा भाष्य प्रायः प्रायः नाम-श्रेणीको विदित होगा। इसी दृष्टिये विचार करनेपर यह भी विदित हो जायगा कि नदी पार करनेवाले उस सञ्चनके रामनाममें और तुलसीदासजीके रामनाममें क्या अन्तर था!

हम राम-नाममें ऐसी हीन-सी विशेषता है जिसके कारण पर दूसरे नामोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक धर्म-साधकी-बाधा माना जाता है। इसका उत्तर कई प्रकारसे दिया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि यह 'ॐ' से मिखा-तुलना नाम है और जहाँ 'ॐ' केवल निर्गुण चरमा अधिक-से-अधिक निराकार महत्का धोतक माना गया है वहीं राम शब्द निर्गुण और सगुण तथा निराकार और साकार दोनोंका प्रकाशक है। दूसरी बात यह है कि इस नाममें रमणीयता (रम्यतावाली) प्रोत्साहन भरी हुई है इसलिए अर्थको यह नाम विशेष शिव है। रमा

और रामा-दोनों ही दीर्घ स्वरान्त शब्द हैं, क्योंकि दोनोंकी रमणीयता विकारशील है। केवल राम शब्द ही ऐसा है जिसमें प्रथमके विकार अन्तमें आकर छप हो जाते हैं। तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो अक्षर अपने शरीरके षट्चक्रमें विद्यमान है और जो बालकमें अक्षर और अमित शक्तिशाली बने हुए है उनमें 'र' अति-वीर्य माना गया है। जो आगकी तासीर है वही इस वीर्य-मन्त्रकी है। अग्नि केवल भस्म करनेवाली ही नहीं है, उष्ण-शक्ति प्रकट करनेवाली भी है। इसी प्रकार यह वीर्यमन्त्र न केवल पापोंको भस्म करता है वरं निर्बंधोंमें प्रबल ध्यात्मबलका सञ्चार भी करता है। वीर्यमन्त्रका सम्यक् जप करनेसे तन्निहित शक्तिका आविर्भाव हो जाना अचरपरम्भावी है। इसी तरह रामनामका ठीक-ठीक जप करते रहनेसे यह हो नहीं सकता कि यह नाम अपना फल न दिखावे।

मुझे रामनाम कह देना ही उस मन्त्रका सम्यक् जप नहीं है। यह तो वैलरी बाथीका जप हुआ। अपनी बाथी जितनी गहराईसे उठेगी, उसका फल भी उतना ही उत्तम होगा। वैलरीसे मध्यमा बाथी अंश है, उससे भी परयन्ती बाथी अंश है और परयन्तीसे भी बढ़कर पराबाथी है—जो मूलाधारमें मूँजा भरती है। उस बाथीसे यदि हम नामका जप हो तो फिर क्या कहना है! यह तो हुई परकी बात। अब दूसरी बात यह है कि यदि नाम-जपके समय धर्मकी ओर कुछ लक्ष्य ही न रखता गया तो फिर तोते धरना मामोफोनकी तरह नाम-रटने बालविक्रम कामकी घाटा कैसे की जा सकती है! मात्रा अँगुलियोंपर घूमे, भीम मुसमें घूमे और मन दूरों विद्याधर्मों घूमे; हमें धर्मकी जप नहीं कर सकते।

## भक्त-भावना

[ राम-नामकी महत्ता ]

भूयोंके प्रगुणका प्रसार क्या होगा, जब मनमें सगई प्रभुता है गुण-नामकी, 'सत्सिद्धेन्द्र' दाम, दंड, भेद, कीविगतक्या है, प्रथम है अक्षर सिद्धि जब रूप 'राम'की। श्रेय कर देगा प्रीतिपथ बना शिरोध-अथ शिव है वीर्य घुम-अन-दीनानदी। सदा पाउकोही बने न बला-नी टेंगे, जब ध्यानमें हमारे है महत्ता रामनामकी।  
— श्री-रामचन्द्र —

# रामलीलामें सुधार

( लेखक - श्रीगुरु राव बहादुर जी कर्मगोसा, एम. ए., एच. एच. सी. )



न महाराष्ट्रमें रचनीय साक्षात्कीकृत 'दुःखी भारत' (Unhappy India) नामी पुस्तक का अन्वयण किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि 'मदर-इण्डिया' (Mother India) की बदनाम रचयित्री मिस मेयो (Miss Mayo) का हमारे प्रति एक आक्षेप यह भी है

कि भारतीय जनताका साहित्यिक रचिये कोई सरसम्बन्ध नहीं है। इस अन्वयण का उत्तर देते हुए आचार्य थॉमसन (Thomson) ने जो इंग्लैण्डके किसी विरवविद्यालयमें बंगभाषाके अध्यापक हैं, यह कहा है कि 'न जाने मिस महोदयाका भारतके किस भागसे परिचय है।' आचार्य महोदयने यह भी कहा है कि प्रत्येक शीत-कालके आरम्भमें उत्तरीय भारतमें दो सप्ताहों तक 'रामलीला' का उत्सव ऐसे समारोहके साथ मनाया जाता है कि आम-आममें खुशीकी लहर-सी दौड़ जाती है। एर्नेस्ट-वुड (Earnest Wood) साहेबने भी 'मदर-इण्डिया' का उत्तर देते हुए तुलसीकृत रामायणका उल्लेख कर यह कहा है कि लैटिन (Latin) और ग्रीक (Greek) महाकाव्योंके साथ तुलनामें भी रामायण (Compares more than favourably) का पक्ष भारी रहता है। सर जार्ज ग्रियर्सन (Sir George Grierson) ने सत्य ही कहा है 'यदि उस प्रभावपर विचार किया जावे जो महाकवि तुलसीदासने स्वरचित रामायण-द्वारा उत्पन्न किया है, तो निःसन्देह वह एशिया महाद्वीपके उन छः सुने हुए प्रसिद्ध रचयिताओंमेंसे एक सिद्ध होते हैं जिनका प्रभाव कौंचोंसे लेकर शाही महलोंतक एक-सा है।'

यूनान (Greece) में भी नाटकीय खेल जनताके शिष्य-का एक विशेष साधन समझा जाता था। सम्प्रति इंग्लैण्डके सबसे बड़े दार्शनिक बर्नार्ड-शा (Bernard Shaw) का भी कथन है कि कहानी और विशेषतः नाटक सार्वजनिक शिष्यके दो बहुत बड़े साधन हैं, अन्यथा जो लोग सूक्ष्म दार्शनिक बातें समझनेकी योग्यता नहीं रखते, उनके लिये मूर्ति-पूजा और कठिनियोंके अतिरिक्त कोई दूसरा साधन शेष ही नहीं रहता।

अब देखना यह है कि आजकल सुशिक्षित भारतीयोंकी

क्या दशा है? हमारा अधिग्रहण विशेषतः सुशिक्षित हिन्दुओं से है। उनका एक अङ्ग तो अपनी अस्मिन्मत्त दार्शनिकताके अधिमानमें रामलीला और तत्त्वगन्धी रचनोंको पुरानी धट्टिने देवता है। दूसरा अङ्ग कृत्रिम सद्गानुभूतिमें डूब गया है, पर उत्सवमें इसमें अधिक मत खेना उचित नहीं समझना। उसका विचार है कि न अध्ययन्या ही जनताके लिये पर्याप्त है। उसे यह मत नहीं है कि जब बर्नार्ड-शा प्रकृति दिग्गज लेखक क शताब्दिके विचारानुसार नाटककी रचनामें संकष्ट हैं जब तुलसीकृत रामायणके शिरोतर्कीय नाटकीय सं प्रभावसे हिन्दू लोग धर्म भी जेम्स (James) जैरे सि की रायमें The Sober (गम्भीर) की उपाधि व अधिकारी हैं तो कोई कारण नहीं दीखता कि इन योग ध्यान उत्तर न दें और इस शिष्य-विधिको अधिका उपयोगी बनानेका प्रयत्न न करें।

हमारी उपेक्षाका प्रभाव बहुत बुरा पड़ रहा है। सुशिक्षितोंका यह कर्तव्य है कि नाटकको उसके ठीक आदर्शपर सुस्थिर रखनेका प्रयत्न करें वहाँ हमने बहूँकार्य अर्थशिक्षित लोगोंके हाथोंमें ही दे रक्खा है।

परिणाम क्या हुआ है ?

( १ ) मूर्तियोंके श्रृंखलमें समय और स्थानका क्या ज्ञान नहीं होता। श्रीरामचन्द्रजी हैं तो बनवासकी दश पर पाँचोंमें घुंघरू, शिरपर जगमगाता हुआ मुकुट, ना छटकन हत्यारि बराबर दीख पड़ते हैं। भगवान् बनते। रूपको देखकर हमारी मूखतापर अचरय ही हैंसते हैंगे। श्रृंखलसे त्याग और वैराग्यका ज्ञान तो मूखकर भी ब जाता। समारम्भमें रावणसे युद्ध करते हुए जहाँ माया तुलसीदासने लूके घटकोंसे श्रीरामचन्द्रजीके शरीर अलङ्कृत किया है, वहाँ आज रामलीलामें राम श्रृंखलमें अनेक विद्यावती रंगीकी ही भरमार रहती है ऐसी दशामें दर्शकोंपर वीर-रसका प्रभाव कैसे पण लख है? होना तो यह चाहिये कि बनवासकी दशामें महाराज वेद-भूषा मुनियोंकी-सी हो, सुलपर उन्नतित लकी प्रसन्नतासे जितेन्द्रियताके भावोंका प्रस्तुरय हो, उन्हें

प्रत्येक गति एवं सङ्केतसे स्वागत तथा वैराग्य हसप्रकार प्रकट होते हैं कि हम सभी प्रभावित होकर सत्यपर धरना लग-मन-धन निष्ठावर करनेके लिये प्रस्तुत हो जायें। फिर पुस्तकके अन्त एवं अन्त तो ऐसे होने चाहिये कि धीर-तल सूर्यमान् होकर दर्शकोंके सामने नाचने लगें और अपने प्रभावद्वारा उनके मन-सममें धीरत्वका सञ्चार कर दें।

(२) तुलसीदासकी पवित्र पदावलिओं अथवा राजा पुराणार्जुन या लखित जैसे कवियोंकी सुन्दर रचनाओंमें शीर्षकी या अन्य वाजारू पदोंकी मिलावट होती आ रही है।

एक बार मैंने एक ऐसा गान सुना, जिसमें यह बात थी कि महारानी दमिला चिककी आइसे हाथोंको हिलाकर लक्ष्मणजीको धीरामके साथ बन जानेसे मना कर रही थीं। बाद, यह कितने दिग्गोरपनकी बात है, पर लाचारी है। प्रत्येक कवि या तुलसीमें तो इतनी योग्यता नहीं हो सकती कि वह पुनीत भावनाओंको पूर्णतः व्यक्त कर सके। आपकी नींदकी पसन्द है तो आप कृपया अपनी इस पसन्दको अपने अन्तरके लिये रख छोड़ें। रामलीलाके पवित्र विषयपर अन्तरपर रामायणके साथ ऐसे गानोंकी मिलावट तो जनताके लिये विप ही है। अस्तु!

गत वर्षकी घटना है कि जब मेरे घरके अपने रामलीलाके बहुत दिनों बाद अपनी बालोचित गितिले चतुर्मुखका खेल खेलते थे तो चाहे धीर बात के भले ही भूख जावें पर उस 'टिबी-सी-सी' एप्युको कभी नहीं भूखते थे जिसे किसी अचूक तुलसीने पराशरामजीके प्रति लक्ष्मणजीके मुखसे कहलाया था, बारह पर कि धुरी बालोंका अचूकतया सुन्दर ही होता है। वहाँ रामायणमें पराशराम और लक्ष्मणका यह रोचक संवाद, जिने पराशर रोस्तपितरके 'जुलियस सीज़र' (Julius Caesar) बाबू कैसियस (Cassius) और ब्रुस (Brutus) की पारस्परिक बातों बाबूके खेल जान पड़ती है और वहाँ यह 'टिबी सी-सी' की वेहूदी थाव। यदि ऐसा ही होगा रहा तो किसी दिन लक्ष्मण-जीने योद्धाकी एका गली-दुर्घोमें फिरनेवाले बालकोंकी-सी हुए बिना न रहेगी।

(१) गति, इतिहास तथा बालोचित पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। बहुतों तो बाबूको अपनी पार्ट (Part) भी नहीं बार होता को एक लुकी हुई कानिसे पना जाता है, को बहुत भार प्रतीत होता है।

अतः सुनिश्चित देश-भेदियोंसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे तनिक इस धोर भी ध्यान देनेकी कृपा करें। चाहे वह रामको 'अवतार' मानें अथवा 'मर्यादापुरुषोत्तम', पर सब मिलाकर यह कोशिश अवरय करें कि वह पुनीत पाठ, जिसने हमें शताब्दियोंसे ठीक-ठीक मार्गपर कायम कर रखा है, विस्तृत न हो जाय, अन्यथा कुछ दिनों बाद किसी दूसरी मिस मेयोके आरसेपोंके उत्तरके लिये भी हमारे पास कुछ बाकी न रहेगा।

तुम्हारी बात उमानेके स्वरू रह जाय।  
जो गैर हैं उन्हें हँसनेकी आरजू रह जाय ॥  
(चक्रवर्त)

देलिये, अभी २७ मार्च सन् ३० के 'लीडर' में, १४ वें पृष्ठपर 'राष्ट्रीय नाटक' शीर्षक एक लेख छपा है। लार्ड लिटनके समापनत्वमें कोई सभा हुई थी। उसमें ब्रिटेन (Britain) के अग्र-विख्यात नाटककार बर्नाड-शा महोदयने नाटकके प्रति राज्यके कर्न्यपर जोर देते हुए यों कहा था—

On the continent the theatre is recognised as an instrument of culture which the Government must provide, yet in this country official recognition should not be obtained without strict regard For commercial considerations, it is to do the best work in the best way—it must not go in for the horrible policy of giving to the public what the public likes.....that national theatre should have a very liberal endowment.....People would go to the national theatre as they go the church. अपना 'यूरोपीय महाद्वीपमें नाटक एक विद्याका साधन माना गया है जिसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे होना चाहिये। परन्तु हम देशमें उसे सरकारी स्वीकृति नहीं मिला सक्ती।..... अन्तर्गत अन्तर्गत खानका कुछ भी लपका न करने हुए हम सर्वोत्तम कर्णको सर्वोत्तम रीतिमें ही करना चाहिये, अतः अन्तर्गत नीतिको कदाचित न अन्तर्गत चाहिये कि आर्थिक हकिके अन्तर्गत हो अन्तर्गत-प्रदानकी योजना हो, अतः राष्ट्रीय नाटकमें बहुत बड़ी अर्थित निधि होनी चाहिये।.....जो उस नाटकमें अर्थी (पवित्र) आधनाये जावेंगे वे गिरजे जाते हैं।'

यही मिस लीना-ऐशवेल (Miss Lena Ashwell) ने भी कहा है कि—The function of the national theatre should be to satisfy the hunger of our people for the poetry and beauty of our language. अर्थात् 'राष्ट्रीय नाटकका कार्य, हमारे देशवासियोंकी भाषाके काव्य एवं सौन्दर्यके समग्र्य रसनेवाली छपाको निवृत्त करना है।' हम यहाँ अपनी ओरसे केवल इतना ही कहेंगे कि हमारे पूर्वजोंने रामजीलाको प्रचलित करनेमें इन्हीं सब बातोंपर

भ्रान दिया था। उसी विषयपर हमारा भी भ्रान प्रकट होना चाहिये। प्रम्नु !

मेरी विशेष प्रार्थना है कि जो सबन इस लेखके यह कम-से-कम इमे देने लोपांतक अवसर पहुँचा दें रामजीलाके कार्यकर्ता हों। 'आचारः प्रथमो धर्मः' उक्तिपर विचार करते हुए यह प्रश्न हमारे जीवन और मरण प्रश्न है, धनः उषेवा और उदासीनता छोड़कर हमें प्रमको इष्ट करना ही होगा।

### रामायणमें सगुण ईश्वर

"रामचरित-मानस (रामचरितका सरोवर) तुलसीदास रामायणके नामसे अधिक प्रसिद्ध है। कविकी सर्वश्रेष्ठ कृति यही ग्रन्थ है और समयके अनुसार यही पहला ग्रन्थ है जो सन् १५७३ ई०में जय कविकी अयसा ४३ वर्षकी थी, आरम्भ हुआ था। इसीपर कविकी ख्याति निर्भर है। इसे नौ कठों मनुष्योंका बाइबिल कहते हैं और वस्तुतः उत्तरीभारतके प्रत्येक हिन्दूको इसका जितना ज्ञान है उतना मध्य कक्षाके अंगरेज किसानको बाइबिलका भी नहीं है। भारतका एक भी हिन्दू, राजा या कुटी विपत्ती ऐसा न होगा जो इसके प्रचलित दोहोंको न जानता हो या जिसकी बातचीतमें इसका रंग न हो। भारतीय मुसलमानोंकी भाषामें भी इसकी उपमाएँ घुस गयी हैं और उनके बहुतसे मामूली मुहावरोंका, यद्यपि वे यह नहीं जानते, पहले पहल इसी ग्रन्थमें प्रयोग हुआ है।

परमेश्वरके अवतार रूपमें रामचन्द्रका चरित इस ग्रन्थमें वर्णित है। इसका विषय यही है जो वाल्मीकिके प्रसिद्ध रामायणका है। पर तुलसीदासका ग्रन्थ उसका किसी प्रकार अनुवाद नहीं है। उसी घटनापर नयी कथा रची गयी है पर घटनाओंके वर्णन तथा महत्त्वके विवरणोंमें मिश्रता है। ग्रन्थकर्ता स्वयं लिखते हैं कि उन्होंने यह चरित अनेक ग्रन्थोंसे लिया है। उनमेंसे वाल्मीकिकी कृतिको छोड़कर मुख्य मुख्य ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' (ब्रह्माण्ड पुराणका एक खण्ड) 'भुसुण्डि रामायण' 'घसिष्ठ संहिता' और 'जयदेवकृत' 'प्रसन्नराघव' हैं।"

×

×

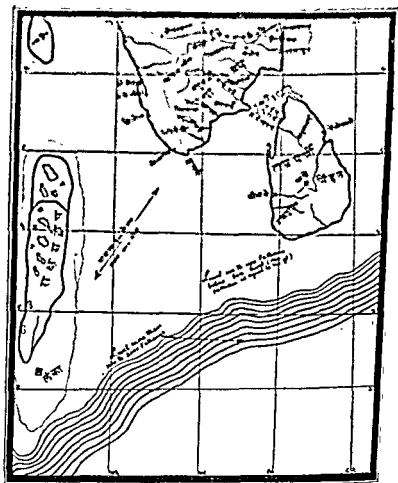
×

×

"तुलसीदासने यह भी शिक्षा दी है कि ईश्वर शरीरधारी है। उपनिषद्के नियुग्ण ब्रह्मकी मानने हुए जो सभी गुणोंसे हीन है तथा जिसके बारेमें केवल यही कहा जा सकता है कि यह 'यह नहीं है, यह नहीं है'। इन्होंने यही निश्चय किया कि ऐसे पुरुषका विचार मनुष्योंके मत्पिप्पकी शक्तिके बाहर है और केवल उसी ईश्वरका पूजन हो सकता है जो नियुग्णसे सगुण हो गया हो।"



समागणकारीन लंका



मानचित्रकार श्री वी०एच०वडेर ।





भोजनके समय परोसनेका कार्य कर रहे थे, आज तुम्हारी यह दशा है..... । ॥

महाभारतकार महर्षि व्यासके इन अवतरणोंसे 'सिंहल' और 'खड्गा' दो भिन्न-भिन्न राज्य सिद्ध होते हैं ।

३-भारकण्डेय पुराण-कूर्मविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंकी सूची इसप्रकार मिलती है:-

'खड्गा' कालाजिनाश्रव दैरिका निकटास्तथा ।

दक्षिणाः कौरुपा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः ॥

ऋषमाः 'सिंहला'श्चैव तथा कार्थानिवासिनः ।

( २६ । २० )

इन देशोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये कूर्मसे दक्षिण दिशामें अवस्थित हैं । इस सूचीसे भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'खड्गा' और 'सिंहल' दो भिन्न भिन्न देश हैं ।

४-श्रीमद्भागवत-पार्श्वसे स्कन्धमें जम्बूद्वीपके आठों उपद्वीपोंके नाम इसप्रकार दिये गये हैं ।

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपानष्टौ उपदिशन्ति । तद्यथा-  
स्वर्णप्रस्थदक्षिणदक्षिण आनवर्त्तनी रमणको मन्दरहरिणः पाष्यजम्बुः  
'सिंहलो' 'खड्गेति' ॥ ( २ । १९ । २९-३० )

हे राजन् ! जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं, उनके नाम—स्वर्णप्रस्थ, दक्षिणदक्षिण, आनवर्त्तन, रमणक, मन्दर-हरिण, पाष्यजम्बु, 'सिंहल' और 'खड्गा' हैं । यहाँ यह स्पष्ट है कि सातवाँ उपद्वीप 'सिंहल' और आठवाँ 'खड्गा' था ।

( ६ ) महाभारतके अथर्वशिखासंहिताके कूर्मविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंके नामोंका इसप्रकार वर्णन पाया जाता है—

रुद्राकटाश्रिनः सौरिकीणः कार्थामठचीपटन-वेर्यायक  
सिंहला ऋषमाः । ( अ० १४ । ११ )

ॐ प्रेषयामास राजेन्द्र वैरुत्पाय महारामने ।  
( विष्णुसहस्रनाम श्रीनिन्दनस्यः ॥ ( अ० अ० ३११०४ )  
वचनवन् महीपालान् शरुतेजो भवार्द्रितान् ।  
सपञ्चालान् सतीरुद्रान् सचोच श्राविद्वान्शकान् ॥  
सायराजूरुकाक्षैव वे च प्राञ्जलिकामिनः ।  
विष्णुसहस्रनाम स्यैव च खड्गा निवासिनः ॥  
( अ० अ० ५१ । २२-२३ )

इस प्रसंगमें यह मतजाया गया है कि इन वर्णन गणना बायेंसे दाहिने ओर होनी चाहिये । अतः सिंहल और खड्गा दो द्वीप एक दूसरेसे दूर प्रपक्-प्रपक् वे भी रूपम-देश इनके मध्यमें था ।

( १ ) उपर्युक्त उद्धरणोंके अतिरिक्त संस्कृत-ग्रन्थों और काव्योंमें भी ऐसे बहुत स्थल मिलते हैं, जहाँ 'सिंहल' (सीलोन) और 'खड्गा'को संघंया भिन्न-भिन्न देश कहा गया है । कम-से-कम इतना तो निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि अथर्वक संस्कृत-ग्रन्थोंमेंसे ऐसा एक भी प्रमाण नहीं किया गया है जिससे यह सिद्ध होता हो कि कर्ल सीलोन ही प्राचीन खड्गा है । और यह भी स्पष्ट स्पष्ट कि शायद ऐसा प्रमाथ संस्कृत-ग्रन्थोंमें सिद्ध ही नहीं है हम अपने सिद्धान्तके समर्थनमें यहाँ श्री राजशेखर यादवरायाण नामक संस्कृत-शास्त्रकारके एक शब्द उद्धृत हैं । राजशेखर कवि ईसाकी नवीं शताब्दीमें हुए हैं । कहा जाता है कि उन्होंने समस्त भारतका भ्रमण किया था, और भौगोलिक वर्णनमें जो कुछ उन्होंने लिखा है उसपर विश्वास करना संघंया निरापद है । उनके वादबान्धवके ही शब्दोंमें खड्गेश्वर रावणके विनोदार्थ 'सीता-स्वर्णव' का अभिनयका विवरण प्राप्त होता है । सीताके पवित्रत्वके दृष्ट्यासे एकत्रित अन्यान्य राजाओंके साथ विरहविषी राजशेखर भी उस अभिनयमें एक पात्र हैं । तब ही अर्त्तनापूर्ण शब्दोंमें कह रहा है—

रायण-सिंहलपठे, किमिदं संदिष्टे ! न च हनेतोऽं  
वीर-जत-निर्वाहः । १

इस आशयानसे स्पष्ट हो जाता है कि सिंहल राजशेखर और खड्गाधिपति रावण दो व्यक्ति थे तथा खड्गा और 'सिंहल' निजप ही दो भिन्न देश थे ।

पुनः इसी वादबान्धवके शब्दोंमें खड्गाके कर्ल विमानपर अवरोधना करते समय अलग्नात् भीतम कर्लकी लीको पहले 'खड्गा' और पुनःपुनिका एवं परिकर्ल और आगे बढ़नेके बाद सीताजीके देना दृष्टनेन मियुनके समाप भीत-सा भूकण्ड दलिनोचर हो ता । कैटे हुए विभीषणने 'सिंहल'का वर्णन किया है । तथा सीता-मन्दि-भक्तानात् वैद्वयनवात् । पुनरेव उदेदवः ।

**विभीषण—**

परशमंत्रे जलविपरिक्षं मण्डलं 'सिंहलानाम्' ।

विनोतंसं मणिमयमुवा रोहणेनाचलेन ॥

दूर्वाकाण्डच्छविषु चतुरं मण्डनं यद्वधूनाम् ।

गणधाम्मो भवति गलितं रक्ततां शुक्तिगर्मम् ॥

यह श्रान देने योग्य बात है कि यहाँ विभीषणने 'सिंहल' के विषयमें वर्णन करते हुए लड्डाका कहाँ नाम भी नहीं दिया। बाह्यमें लड्डाको सो वे सब पीछे छोड़ आये हैं और उलका परिचय भी धीसीताजीको पहले दिया था हुआ है।

वरपुंगु शोकसे यह भी स्पष्ट होता है कि 'सिंहल' बर्षादीप 'लड्डा' से छोटा या और कविये अपना अभिप्राय व्यक्त किया है कि लड्डा सिंहलसे दक्षिण-पश्चिम (वेकल्प) में स्थित थी।

**लड्डा कहाँ थी ?**

यहाँ तक तो यह बतजाया गया कि 'सीञ्जोन' और 'लड्डा' के एक होनेकी धारणा गिनाधार है। अब यह निश्चय करना है कि लड्डाकी वास्तविक स्थिति कहाँ थी ? यह पढ़ने का भा सुझा है कि भारतकी दक्षिणी सीमासे लड्डा १०० (सौ) योजनकी दूरीपर थी। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौड़ाई पचास योजन थी। यह परिमाण्य 'मिहल' द्वीपके जिये कमी लागू नहीं हो सकता। 'भारतवर्षीय भूचर्च' के रचयिता मो० एस० बी० दीक्षित महोदयका कथन है कि 'सीञ्जोन ही लड्डा है।' परन्तु रामायण-काल में सौ योजनकी दूरीका प्रश्न सम्मुख आते ही दीक्षित महोदय भी लड्डामें पड़ जाते हैं और इस तरह उनका निर्वच भी सन्दिग्ध ही रह जाता है।

धीरुत्तमजी सीताकी सोजमें लड्डा आते समय जिस लाली गवे से उत्तर विचार करनेसे पूर्व यह देखा है कि सीञ्जोन और लड्डाकी दूरीको सिद्ध करनेबाधा अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध होगा है या नहीं।

**लड्डा भूमध्यरेखा पर अवस्थित थी।**

१. वायुपुराणके मुपनश्रियासप्रकरणके अद्वितीयसर्वेक्षणमें अर्द्धद्वीपके चारों ओर फैले हुए, कश्, वम, मलय, लं, कूट और वाह इन द्वीपोंका वर्णन आता है। इसी वर्णनके १० से १० श्लोकमें मलयके वर्णनमें कहा गया

है कि 'इस द्वीपमें सुवर्णकी अनेक खाने हैं और यहाँके वासी विभिन्न प्रकारके श्वेच्छ हैं। यहाँ मलय नामका एक विशाल पर्वत है जिसमें चाँदीकी भी खानें हैं। इस पर्वत-पर प्रत्येक पर्वके अग्रसरपर स्वर्गीय धानान्द्र प्राप्त होता है। इसी द्वीपमें प्रख्यात त्रिभूट पर्वत भी है। यह पर्वत बहुत विलूत है और इसमें अनेक अत्यन्त रमणीक उपत्यकाएँ तथा मनोहर शिखर हैं, इसी पर्वतके उत्संगमें लड्डाकी विशाल पुरी बसी हुई है। इस पुरीमें इच्छिन रूपधारी, यक्षगर्हित, देव-शयु महात्मा राक्षस रहते हैं। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौड़ाई तीस योजन है। और इसके पूर्वमें 'गोक्य' नामक पवित्र स्थानमें एक विशाल शिव मन्दिर है।'

इस वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि अर्द्धद्वीप इन उपद्वीपोंमेंसे तीसरे अर्थात् मलयद्वीपमें त्रिभूट-पर्वतपर लड्डा नगरी बसी थी। यह मलयद्वीप भारतीय महासागरमें स्थित प्रायुक्तिक 'मालदिव' द्वीपसूत्र (Maldive Islands) के भूतत्तिक कोई अन्य नहीं है। यह 'मालदिव' द्वीपसूत्र भूमध्यरेखापर अवस्थित है। यह स्मरण रखना चाहिये कि 'गोक्य' नामक पर्वतका जो यहाँ उल्लेख आया है वह भारतवर्षके पश्चिमीघाटपर कर्वाट जिलेमें स्थित पवित्र स्थान प्रायुक्तिक गोक्यनामसे भिन्न है।

• तथैव मलयद्वीपेवैव सुवर्णम् ।

मणिरत्नाकरं स्वर्गनाकरं कनकस्य च ॥

आकरं चन्दनानाथं मनुद्राणां तवावरम् ।

नानान्ये-रुगणाकीर्णं नदीपरंमण्डितम् ॥

× × ×

तथा त्रिभूटनिक्ये नानाभाद्रिभूषिने ।

× × ×

तस्य दूतन्ते रभ्ये हेमप्रच्छरगेरणा ।

निर्दुर्लभसमीचित्रा इर्मनासादभाषिणी ॥

राजयोजनविशीर्णा त्रिगाराधामसोडना ।

नित्यममूर्तिता रमणीया लड्डा नाम महापुरी ॥

सा कामहरिणो ल्याने राजमाता महायमनाम् ।

आवासे वरदूतनां लङ्कानेवविदिशम् ॥

मनुद्राणाकमन्वाभा कनक्या सा महापुरी ।

तस्य द्वीपस्य द्वे द्वे द्वे द्वे अदन्तरीपेः ।

गोहर्षनामैवदस्य संकरल्लभं यदम् ॥

(वायुपुराण ४८।१०-१०)



काग है कि भारतका दक्षिणी कन्याकुमारी अन्तरीय ही रह गयान है, क्योंकि इसीके समीप महेन्द्र-पर्वत समुद्रमें अन्तर्हित हुआ है और सुमीवने जो दक्षिण-भारतके भूगोळका निर्धारण कराया है उससे भी यह पता चलता है कि राजपूषा निवासस्थान राजसद्वीप इस पर्वत क्षेत्रीसे पश्चिम था।

लंकाका स्थान।

एव कथनके समर्थनमें कुछ ऐसे प्रमाण पेश किये जा सकते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अंका समुद्रमें विखीन हो गयी थी। जिस स्थान पर इस समय मालदिव द्वीप-समूह है। प्राचीन काव्यमें यही राजसद्वीप था। इसका विस्तार भूमध्यरेखासे १००० इंचर अक्षांश तथा १०० दक्षिण अक्षांश के तथा ३३ से ६६ के पूरु देशान्तर बीच विस्तृत था। यह सम्भव है कि जिस समय यह द्वीप अस्तित्व में था, उस समय यहाँ के निवासी भागकर प्राचीन साध्वीप (साध्वर्षादि) में

धाकर बस गये होंगे, इसी प्रदेशका नाम पीपेसे सिहलद्वीप अथवा सीलोन पद गया होगा।

भूगर्भविद् परिदत्तोंकी यह धारणा है कि ईसाके चार हजार वर्ष पूर्व भारतीय महासागरमें लेमोरिया (Lemuria) नामक एक महाद्वीप था। यह भारतभरकी दक्षिण दिशामें अफ्रिकाके दक्षिण भागसे छेकर पूरुकी ओर दक्षिण अमेरिका तक विस्तृत था। काळगतिसे यह महाद्वीप अस्तित्व में हो गया और वर्तमान समयके मालदिव (Maldives), सायचेल्विस (Seychellis), रोद्रिगस (Rodrigues), शैगोस (Shagos), मारिशस, (Mauritius) मैडागास्कर (Madagaster), जावा, सुमात्रा, बोर्नियो (Borneo), एसेन्शन (Ascension), फाल्कलैण्ड (Falkland), ग्राहम् (Graham), और पश्चिमी अंटार्क्टिका (West Antarctica) प्रभृति उसी प्राचीन विशाल महाद्वीपके पर्वत-शिखर तथा उच्चभूमि भाग मात्र हैं। मलयद्वीप अथवा मालदिव ही आज उस स्थानपर वर्तमान है जहाँ प्राचीनकाव्यमें राजपूषा राजसद्वीप था, जिसकी राजधानी अंका थी। ●

## तुलसी-चन्दना

जयति जयति तुलसिदास हिन्दी हितकारी।

प्रगटे मुवि मार हरन, विमल राम चरित रचन।

धनि धनि संसार सरन, असरन दुःख टारी ॥

कविता नभके दिनेस, माया-कैरव निनेस,

कवि-सुरगनमें गनेस, छलित कटाधारी ॥

रामायण अति प्रपान, नरल कमल दत्त समान,

परम अर्थ नकि ज्ञान, मोक्ष देनहारी ॥

विद्या पीदूष रान, बेबिद-जन करत पान,

पाप पुन्चको हानान, निमिष तारहारी ॥

धनि धनि श्रीतुलसिदास, भेटो भव कन्द प्राग।

मधुर नरण गहत आस, मछन मुतकरारी ॥

—देवेन्द्रचन्द्र वर्मा

० केषल एव समयमें वर्ष १९११ में 'The Mythic Society's Journal' के अंत 'The Indian Historical Quarterly' नामक वर्षीय अर्धे विचार प्रकाशक पत्र निकले हैं।

१० श्री विद्ये १९१६ में प्रकाशित 'The Indian Historical Quarterly' की अक्टूबर १९१६ की संख्या में १०

१० के अंत में 'The Indian Historical Quarterly' की अक्टूबर १९१६ की संख्या में १० के अंत में

## रामायणके रचयिता

कौन देना जन्म इस साहित्यको !  
 नन् बहाता कौन काव्यामन्दा ?  
 मानता जिसको सभी संसार है—  
 लघु-सहोदर पूर्ण-ग्रहणन्दा ॥ १ ॥

सृष्टि भाती इष्टिमें कुछ और ही—  
 भादि-कवि वाल्मीकि जो होते नहीं ।  
 प्राकृतिक-सौन्दर्यमें घाचालता—  
 —बीजको जो घे भला,घोते नहीं ॥ २ ॥

लेखिये भ्रूत महत्ता-सत्यता—  
 सन्तजन-उपदेश-बलकी, भक्तिकी ।  
 और महिमा देयिये फिर रामके—  
 ठीक उलटे नामकी भी शक्तिकी ॥ ३ ॥

ध्यापसे पाल्मीकिने ग्रहर्षि घन—  
 रम्य-रामायण-सुधाकी सृष्टि की—  
 मानयोंके चित्तमें जिसने महा—  
 शान्तिकी, आनन्दकी है सृष्टि की ॥ ४ ॥

पापियोंका और कुटिलोंका कमी—  
 रोग आवागमनका मिटता नहीं ।  
 कर कृपा, कलिकालमें आते न तो—  
 भक्त 'तुलसी' रूपमें घे जो कहीं ॥ ५ ॥

देववाणी-सम यनाता कौन जन—  
 मातृभाषा-नागरीको, यत्नसे !  
 जो न होते प्रगट 'हुलसी'खानसे—  
 दिव्य, 'तुलसीदास' जैसे, रत्नसे ॥ ६ ॥

कान्त-कविता-कामिनीके कान्त हैं,  
 जो सभी साहित्यके मर्मज्ञ हैं ।  
 विश्व हैं परिपूर्ण जो नृपनीतिके—  
 और जो घेदज्ञ हैं, धर्मज्ञ हैं ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ-रामायण-सदृश संसारमें—  
 राजपथकी है न कोई दर्शिनी ।  
 ज्ञानकी, हरि-भक्तिकी, शुभ-कर्मकी—  
 दूसरी ऐसी न कोई धर्षिणी ॥ ८ ॥

नीतिका यह दिव्य-आदि निधान है,  
 गेह है यह ईश-गुण-गण-गीतिका ।  
 स्रोत श्रेता-रीतिका भी है यही—  
 और है यह काल भवकी मीतिका ॥ ९ ॥

मानता संसार यह सारा इसे—  
 सत्यता-शुचिना-महत्तागार ।  
 श्रेष्ठगम-उपदेश-शास्त्राका इसे—  
 और यह कहता महा-भगदर ।  
 ध्या-चिन्तामणि यही कलिकालमें,  
 करनियासी कलातक यह अन्य ।  
 श्रेष्ठ धर्मशास्त्र है पहला यही—  
 सब पुराणोंका यही मूर्धन्य ।  
 प्रेमसे जो नित्य इसका पाठ कर—  
 मानता उपदेश भी है सर्वपा—  
 भापही मिट जायगी उसकी महा—  
 दुःखदा-आवागमन-जाता व्यथा ।  
 मक-कुल-रूपी कुमुद-विधुकी यही—  
 चाँदनीकी है मनोज्ञी सम्पदा—  
 जो खिलाकर मञ्जु मानस-कमलको—  
 जानती घटना न, पर बढ़ना सदा ।  
 काल-चैरीको महा-कलिकालमें—  
 जालमें यह डालनेका दाव है ।  
 और यह संसाररूपी सिन्धुके—  
 पार पानेको अनश्वर-नाव है ।  
 हार है यह-परिडतोंके कण्ठका,  
 सर्व-लौकिक-धर्मका यह सार है ।  
 कष्ट-पातक नष्ट करने हेतु यह—  
 एक, मानवमात्रका, हथियार है ।  
 जो पुरातन-पुरख ही साक्षात् हैं—  
 श्रेष्ठ मर्यादापुरुषके रूपमें—  
 है उन्हींका चारु-जीवनचरित यह—  
 सुगमतम-सोपान-सम भवकूपमें ।  
 देहधारी-मुक्ति है जङ्गम यही—  
 जानकीपति-भक्तिकी यह मूर्ति है ।  
 शक्ति है मनमोहिनी यह काव्यकी—  
 और 'तुलसी'की मलौकिक-स्फूर्ति ।  
 धन्य है कविराज ! तुमको धन्य है,  
 और कविता भी तुम्हारी धन्य है ।  
 'श्रेण' हो तुम, शिष्य मैं हूँ 'पकलव्य'—  
 काव्यगुरु मेरा न कोई अन्य है ।

# श्रीराम-नामकी महिमा

(लेखक—आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वै० दर्शनदीर्घ भागवतरस)

श्रीराम नाम रघुवरके । हेतु कृत्वाणु मानु हितकरके ॥  
 श्रीराम-नामकी महिमाके सम्बन्धमें गोस्वामी  
 श्रीवृत्तीशरसजीके उपयुक्त वचन हैं । चौपाईका अक्षरार्थ है  
 कि 'कृत्वाणु (अग्नि) भातु (सूर्य) हिमकर (चन्द्रमा) इन  
 तीनोंके हेतुरूप जो 'राम' नाम है—उसकी मैं बन्दवा करता  
 हूँ ।' भातुओंके सत्यगते इसका जो कुछ अर्थ मुझे ज्ञात  
 हुआ है उसे मैं प्रेमी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ ।  
 प्रथम अर्थ तो यह है कि, 'राम' इस पदमें तीन  
 अक्षरोंका समावेश देखनेमें आता है । जैसे र-घ-म, ये तीनों  
 अक्षर क्रमसे चौपाईमें कथित—कृत्वाणु-भातु-हिमकर—  
 तीनों देवताओंके बीज हैं । सुतरां 'राम' नाम तीनों देवताओंका  
 आरम्भ है यदि उक्त तीनों शब्दोंका अर्थ न करके केवल कृत्वाणु  
 आदि शब्दोंका ही व्यवहार किया जाय तथापि उक्त शब्दोंमें  
 अक्षरोंके र-घ-म अक्षरोंका प्राकृत्य हीलता है । वहाँ  
 जोई देगा सम्यक् कर सकते हैं कि, कृ—में अ धाती  
 र वहाँ आता है, इसके उत्तरमें व्याकरणका सिद्धान्त  
 यह देना ही पर्याप्त होगा । व्याकरणमें—अ-र-का एक ही  
 अक्षर माना है अतः अ-के स्थानमें—र-बद्ध देनेसे कोई  
 दोषोपपत्ति नहीं होती । सुतरां यह निश्चय होता है कि, र-  
 म-तीनों अक्षरोंके एकत्रित होनेपर 'राम' शब्द हो जाता  
 है और इसी नामके कारण तीनों शब्दोंकी प्रधानता भी हो  
 जाती है । अन्वया कृत्वाणु-भातु-हिमकर तीनों निरर्थक  
 हो जायेंगे । सुतरां 'राम' नाम ही कृत्वाणु आदि शब्दोंकी  
 प्रकृति हेतु सम्यक् गया ।  
 दूसरा अर्थ यह भी होता है कि, 'अग्नि' शब्दरूपसे  
 अग्निशक्तिको परिपक्व करता हुआ आग्निशक्तिकी शरीरका पोषण  
 करता है । सूर्यके प्रकार और तारने मुख और आरोग्यताका  
 कारण होता है । 'चन्द्रमा' बलस्थितियोंका पोषण करता  
 हुआ आग्निशक्तिको सहायका पहुँचता है,  
 अन्वयके हीय देवता ही  
 अग्निशक्तिको

'राम' नाम है, रामरूप अक्षरके प्रकारसे ही ये तीनों प्रकाशित  
 हैं । श्रुति कहती है—

'तमेवमान्दमनुमाति सर्वे तस्य माता सर्वमिदं विमाति'  
 इसी प्रकार गीतामें भगवान्के वचन है ।—  
 यदादित्यगतं तेजो जगद्रासत्यतेऽस्मिन् ।  
 यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्मि मामकम् ।  
 (गीता १५। १२)

अर्थात् सूर्य, चन्द्र, अग्निमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण  
 जगत्को प्रकाशित कर रहा है, श्रीभगवान् कहते हैं कि वह  
 सब मेरा ही तेज है ।

तीसरा अर्थ यह है कि, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा इन तीनोंका  
 प्रधान कारणरूप जो 'राम' नाम है यह तीन कुञ्जोंको  
 उत्कर्ष करनेवाला है । देखिये, अग्निबंधमें श्रीपरशुराम प्रकट  
 हुए । सूर्यबंधमें दशरथकुमार श्रीश्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए ।  
 चन्द्रबंधमें श्रीबजरामजी प्रकट हुए । सुतरां तीनों  
 कुञ्जोंको श्रीरामनामसे ही प्रतिष्ठि हुईं ।

चौथा अर्थ यह है कि, व्यवहारमें भी शरीरमें देला  
 जाता है कि, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमासे ही स्वास्थ्य अर्जित  
 रहता है । मनुष्य-शरीरमें हृत्का, पिंगला, सुषुम्ना अर्थात् चन्द्र,  
 सूर्य, अग्नि, ये तीन आदिपौ हैं, इन तीनों आदिपौसे जब  
 तक प्राणवायुका सञ्चार होता रहता है तभी तक मनुष्य  
 जीता है और तभी तक उसका स्वास्थ्य टोक रहता है ।  
 जिस समय इनकी शक्तिका अभाव हो जायगा, रक्षास्थमें  
 स्वामी अर्थात् हो जायगी । स्वास्थ्यकी शरीरमें शरीर दुर्बल  
 हो जाता है, उस समय लोग कहते हैं कि, इसके शरीरका  
 'राम'

सिद्धान्त यह है कि, राम  
 यदि राम नामको  
 अतः राम-नाम ही सब  
 शरीर भी 'राम-नाम ही सब'  
 विराम  
 बचिन है ।

# 'र' और 'म' की रमणीयता ।

(अंक १० श्री. सुवर्णमयी की 'पुस्तक')

एक छत्र, एक मुकुटमणि, सब बरनने जेग ।  
'गुनगी' रगुबर नामके बरन विराकर दोग ॥



एषममे ये दोनों बर्ष बर्षमात्रामे उग्रह है ।  
यही कारण है कि ये बर्ष जिन शब्दोंके  
मस्ताकार रेफ या अनुस्वाररूपमें विराजमान  
हो जाते हैं, वे शब्द अपने धर्मका विशेष मूल्य  
बूटाने लगते हैं और एक धनोष्ठी घटा  
दिखा देते हैं । अपने इस कथनको विशेष  
स्पष्ट करनेके लिये हम यहाँ कतिपय उदाहरण

देकर पाठकोंका मनोरंजन करनेका प्रयत्न करते हैं । यथा सागर,  
आगर, नागर, कर्मी, गमी, धर्माधर्म आदिसे यदि 'र' बर्ष  
निकाल दिया जाय तो शेष सांग, आग, भाग, कमी, गमी,  
और धर्माधर्म शब्द बनकर दुर्गतिमें पड़ जाते हैं । इसी प्रकार  
यदि कामना, मछली, मसाळा, मुकुट, मुल्लू आदि शब्दोंसे  
रामजीका 'म' निकल जाय तो काना, छली, साला, कुन्द  
और उल्लू आदि हो-शब्दार्थ प्रायः हास्यास्पदकी गतिको  
प्राप्त हो जाते हैं । और यदि 'र' और 'म' दोनों किसी  
शब्दमेंसे निकल जायें तो फिर कहना ही क्या ? जैसे  
'विश्राम' मेंसे 'राम' अवश्य हूँ जाते हैं तो जो शब्द  
यच रहता है वह 'विप' ही रह जाता है । रसोईमें यदि  
'रामरस' न हो तो 'रसोई' का स्वाद क्या ही है ? ऐसे  
ही इस नर-तनमें 'रामरस' न रहे तो यह नर-तन नितान्त  
निरर्थक है । 'रसना' रामरस न रहनेसे रस-हीन ही है ; नयन  
नय-हीन है यदि वे चन्तसुखें होकर अपने 'राम' की छवि  
नहीं मिरखते, श्रोत—श्रोत नहीं जो श्रुति-कथा सुनकर  
'राम' मय नहीं हो जाते—वे कान 'कान' नहीं कहे जा  
सकते जो 'कान्द'-कथाके हसुक-मिष्ठक नहीं हैं । एक  
'अज्ञात' कविने भी 'र' 'म' की महानता प्रदर्शित करते  
हुए कहा है—

कोऊ बनावत ऊँच अटा, धनघोर घटा लुगि तनु कनातें ।  
तामसी कोउ तमाम रभै, बहु भूषन मौन लमाकी जमातें ॥  
बन्द मुषा मक्को यह स्याल, महाविकराल घनी उत्पातें ।  
एक 'र' कार 'म' कार बिना सु विकार सबे संसारकी बातें ॥  
हम यहाँ 'र' 'म' बर्षोंका केवल शाब्दिक चमत्कार

ही नहीं प्रकट कर रहे हैं । विविध बर्षोंके उदाहरण  
अमेरिका, यूरोप, आदिके वैज्ञानिकोंने करीबे चलने  
पूर करनेका भी आविष्कार किया है । उन वैज्ञानिकों  
कहना है कि कुछ बर्ष या शब्द ऐसे हैं जिनके प्रयोग  
(कम्पन) से शरीरके विविध भीतरी भागोंपर बल पड़ता  
है और परिणामतः उस भागकी अस्वस्थता उत्पन्न  
जाती है । एक अमेरिकन पत्रमें एक रोगीने अपना अनु  
प्रकाशित कराया है । उसका कहना है कि मैं बहुत  
मन्दागि (Dyspepsia) आदि उदा-सन्धी रोगों  
पीड़ित था । अनेक औषधोपचार किये, पर श्लिष्ट  
नहीं हुआ । एक दिन मैंने एक बच्चेको पत्रलेख  
शब्द बार-बार लिखाते सुना । उसी बच्चे से मैंने पूछा  
तो जिस समय बाबक इन बर्षोंका उच्चारण करता  
उस समय उसके पेटके ऊपरका पर्दा संकुचित हो  
और फैलता था, बस, मैं समझ गया कि इन बर्षों  
उच्चारणसे अथवा पेटके भीतरी अङ्गोंपर प्रभाव पड़ता  
है । अनुसंधान करने पर पेटके अङ्गोंके अपनेकी क्रिया  
जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे स्वास्थ्यमें अ  
परिवर्तन स्पष्ट दिखायी पड़ने लगा । और मेरे  
साथके 'सर्वनमस्कार' पर एक उच्चतम पुस्तक लिखी है  
उसमें भी उन्होंने वेद-अन्तोंके वैज्ञानिक प्रभावोंकी वि  
व्याख्या की है । अजैवके अशिवदत्तजी शब्दोंके  
अप-विधि नामक पुस्तकमें भी 'शोश्च' शब्दके अप-वि  
धियोंके अनुभवोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि 'र' शब्द  
के नियमित अप-विधि कई अनुभवोंका शारीरिक और नैतिक  
उत्थान हुआ । अतः यदि भारतीय वैज्ञानिक 'शब्द' शब्दोंके  
Vibrations 'कम्पन' का वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो  
निरसन्देह उनपर हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके उद्देश्य  
रहस्य प्रकट हो जायगा ।

अब हम स्वयं 'राम'-आपके अपने अनुभवोंके  
वतखाते हैं । एक पत्रिय जो कच्छकी बीमारीने पीता  
था, जब कई औषधोपचारसे बीरोग नहीं हुए तो  
उसके कानमें अस्वतन्वनि, किरपान और कम्पन किये  
राम, अक्षय और महावीरजीके मुद्रका बर्षन था, तब  
स्वयं सुनाये जिसका परिणाम यह हुआ कि तब

असह्य कक बाहर निकल पड़ा और ये स्वस्थ हो गये । दूसरे श्रावण ओ 'राम' शब्दसे विना करते थे, एक बार उदर-शूलसे ग्रहणत बेचैन हो गये । वैद्योपचार असफल होनेपर एक मन्त्रानन्दीने उन्हें सलाह दी कि वे जोरसे 'राम राम' कहें, उन्होंने तिनोद-वश ऐसा ही किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका शूल न जाने कहाँ छू हो गया । अब यहाँ एक प्रसिद्ध इतिहास आकरनेमें हमें जो अनुभव हुआ वह भी सुनिये—

एक बार हम जबबपुर जिलान्तर्गत सिहोरा ग्राममें थे । एक दिन राम-अप करनेकी इतनी धुन समाई कि हमें आत्मविस्मृति-सी हो गयी । उस दिन यात्रा भी करनी नहीं; परन्तु 'राम-अप' कई व्यवधान पक्षनेपर भी उषो-कान्यो करी रहा । सन्ध्याको घर छोड़नेपर क्या दिखायी पड़ा कि श्रीरामजी महाराज अपने प्रिय यन्त्रुधों और गुरु-जन सहित हमारे द्वारपर ही खड़े हैं । हमारे शरीरमें उस समय रोमाञ्च हो आया । तदनन्तर हमने सावधान होकर दोषाह दूरकर की और अपने अहोभाग्य माने । जो प्रसन्नता हमें उस दिन हुई, कदाचित् ही वह जीवनमें ध्य

सम्भव हो । यथार्थ बात यह थी कि हमारे गृहके प्रमुखने राम-जोलाके पात्रोंको सादर आमन्त्रित किया था, जिसका हमें स्वप्नमें भी भान नहीं था । तो भी हमारे लिये उन पात्रोंके दर्शनमें ही अपने 'राम' की प्रतिमूर्ति भवक बढी, जिसे हमने केवल अपने राम-जापका ही प्रतिफल समझा ।

विकारोंके तीव्रतम उत्कर्षमें राम-अप हमें अत्यन्त शान्ति-प्रद होता है । इसकी कई अवसरोंपर परीचा कर ली गयी है । अतएव जिनपर 'राम' नामकी महत्ता प्रकट हो जाती है ऐसे मन्त्रानन्दी अपने वातावरणको ही 'राममय' बना सकते हैं । अपने स्वजन-परिवारके नाम भी 'राम' से रहित नहीं रहते । कई व्यापारी 'राम' नामको फलदायक समझकर वस्तुओंको तौलते समय 'राम एक' 'राम दो' कहकर गिनती खगाते हैं । यहाँतक कि धोयी जब कपड़े धोने लगता है तो यकान धाड़ि मिटानेके लिये 'राम-सियाराम' कहता है । उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि 'राम' शब्दके आपसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबकी प्राप्ति सरलतासे ही हो जाती है । गोस्वामी तुलसीदासजी सच कह गये हैं:—  
बहि कलि-कर्म न मगति-विबेकु । राम-नाम अवलम्बन एक ॥

## तुलसी-स्मृति

कितनी उज्वल विमल विभा है, गोस्वामीजीकी अम्लान—  
शुक्रपक्षके धवल गगनमें, सतत दक्षिती यह सुतिमान ।  
परम ज्योतिसे विद्युद् पड़े ये कर्मी, यँहों परं ये मतिमान,  
भूल जगतके तुमल तिमिरमें भटक रहे थे उनके प्रान;  
मायाकी अज्ञान-निसामें जब स्वरूपका रहा न ध्यान—  
प्रकट हुई तब कालनागिनी-मायासे मणि-ज्योति महान ।  
अहो सुल गये यहाँ अचानक, हियके दिव्य नयन, दो फान—  
निसिल सृष्टिमें उन्हें हो गया, सियारामकी छबिका ज्ञान ।  
उसी अतुल छबिके क्रीतनमें विश्वप्रेमके गाकर गान—  
अपना पिबेदा छोड़ हुए वे सियाराममें अन्तर्धान ।

× × × ×  
पिबेदेमें यह सुग्गा भी तो रटता है नित सीताराम—  
कि भी तो हा इसे न मिलती—शान्ति, मुक्ति औ पावन धाम ।  
सोलो, सोलो, अन्तर्यामिन् ! मेरे भी ये हृत्त फयाट—  
शुक्रपक्षकी उज्वलतामें : मैं भी देखूँ रूप विराट ।

—श्रीशान्तिप्रिय द्विवेदी

● वरुणर प्रसिद्ध रामयक वाचनार्चार्थ सं० • किष्किगम्बरजी पत्रकारने मुझसे कहा था कि जोर-जोरसे कब्ये करते टम-म टम करनेसे स्वर चम्क जाता है । वनक देता अनुभव है । —सन्पादक





भाषात्मिक ग्रन्थोंमें धारमीकीय रामायणसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। महात्मा तुलसीदासजी तथा श्रीकीर्तिदासजीने रामायणकी घटनाओंका उल्लेख भक्ति और ध्यानसे प्रेरित होकर किया है, जिसका प्रभाव अन्य धर्मावलम्बी मनुष्योंपर भी पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ मुसलमान-कवियोंने भी रामायणपर रचना की है।

अतः मिश्र-मिश्र कवियोंद्वारा रामायणमें बहुत रूपान्तर हो गया है। सर्वप्रथम हमें इस कथाका उल्लेख 'बौद्धजातक'में मिलता है। इस ग्रन्थके अनुसार, राजा दशरथ काशोक (अयोध्याके नहीं) राजा हैं। उनके रामपवित्र और लक्ष्मणकुमार दो बच्चे तथा सीता नामकी एक कन्या है। इन बच्चोंकी माताके मरनेपर राजा दशरथ एक स्थिरचित्त पुत्रकी प्राप्तिमद्वय करते हैं, जिसके गर्भसे भरतकुमार जन्म लेते हैं। प्रसङ्गवश एक दिन यह रानी अपने पुत्रकी पुत्राव बनानेके लिये राजासे कहती है, राजा मुझे ही कोषित हो उठते हैं और कहते हैं—'हे दुष्टा की! तुमने ऐसा करनेका साहस कैसे हुआ जब मेरे अन्य दो बच्चे अस्तिष्ठककी भाँति दीव्यमान हो रहे हैं।' अन्तमें राजा कथन्त दुखी होकर दोनों बच्चोंको वृद्धागारमें डुवाते हैं और उनसे कहते हैं कि 'हे पुत्रो! तुमलोग इस राज्यको छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारी ईश्वरिणी माता तुम्हारा वध कर सकेगी।' परचाह दोनों राजकुमार और राजकुमारी उधर दिशामें दिग्मालकी और दस वर्षकी अवधि पर्वत करने चले जाते हैं क्योंकि ज्योतिषियोंके कथनानुसार राजाकी मृत्युके शेष दस वर्ष ही बच रहे हैं। किन्तु पुत्र-विभोगके कारण राजा दो ही वर्षमें मर जाते हैं और उसके सब निवासी भरतकुमारके साथ, उनकी बहिन तथा माँपोंके सौदागनेके लिये जाते हैं। राजाकी मृत्युका समाचार ज्ञेते ही उनसे कहा जाता है, रामपवित्र तो सीतुर रहनेके कारण नहीं रोते हैं, किन्तु लक्ष्मणकुमार और सीता कथन्त धीर हो उठते हैं। अब रामपवित्र किनी प्रकार भी राज्यानीमें जाना नहीं चाहते और अतिनिश्चित रूप अपनी कुछ निमित्त चरखपादुकाको लेते हैं। सब लोग निराश होकर खौट जाते हैं और परीपर रामपवित्रकी चरखपादुकाको रख देते हैं। वे

चरखपादुका घेतन हैं और अक्षतक कार्यं न्यायपूर्वक सम्पादित होता है—युग वैठी रहती हैं, किन्तु अन्याय होते ही वे एक दूसरेपर धापात करने लगती हैं। बनवासका समय बीतनेपर रामपवित्र राजा बनाये जाते हैं और जनकदुहित (सीता) के साथ विवाह कर लेते हैं। ७

उपर्युक्त कथाके औचित्यपर अपनी सम्मति प्रदान करनेका भार मैं पाठकोंके ऊपर ही छोड़ देता हूँ किन्तु बौद्धजनश्रुतिके अनुसार इस कहानीको स्वयं बुद्ध भगवान्ने कहा था और उन्होंने यह भी कहा था कि पूर्वजन्ममें विपद्में भी प्रशान्तचेता रामपवित्र ही ही था।

कवि काबिदासकृत रघुवंशमें भी रामायणके सरस भाविते अन्ततक रघुजन्मके आचार और धर्मोंके विकासका वर्णन मिलता है और उनकी पराकाष्ठा श्रीरामके जीवनमें हो जाती है। रामचन्द्रके उपाख्यानसे पूर्व रघुवंशमें एक महान् राज्यनिर्माणाका प्रसंग दिखाया जाता है और पश्चात् अपनेवाजे राजाओंके वर्णनमें उसी राज्यकी अक्षय्यस्य दशाका विवरण हो जाता है। कविने सबसे अधिक स्थान अर्थात् २१ राजाओंके वृत्तान्तसे पूर्व रघुवंशका जगमग एक तिहाई भाग श्रीरामके चरित्र-चित्रणमें ही समाप्त कर दिया है। वहाँ तक कि महाराजा रघु जिनके नामसे काव्यका नामकरण हुआ है, उन्हें भी उतना स्थान नहीं दिया है। महारानी सीताके चरित्र-चित्रणमें कविकी कक्षा पराकाष्ठाको पहुँच जाती है। श्रीलक्ष्मणजीसे उस अज्ञात स्थानमें बनवासकी बात सुन सीताजी मूर्च्छित हो जाती हैं और घेतना जाम करनेपर कहती हैं कि 'जब पति स्वयं राजगद्दीपर विराजमान हो उस समय उसके सन्तानकी माताके लिये क्या भिचुकीका जीवन बिताना उचित है? मेरी अति-परीचाके पश्चात् भी मेरा त्याग करना क्या ठीक है? अथवा कदाचित् यह मेरा दुर्भाग्य है? फिर भी, सिद्धपालन धादि मातृत्वसे अक्षर पाते ही मैं पश्चात्ति महत्कर पति कठिन तपस्या कहूँगी जिससे अन्तान्तरमें उन्हें पतित रूपमें प्राप्त कहूँ और मेरा तथा उनकी फिर कभी वियोग न हो।'।

साहं तपः सूर्यनिवृत्ति-

कथं प्रलौढचरितुं यदिये ।

● इस कथासे प्रतीत होता है कि या तो इसका लेखक श्रीरासनीकियामणसे अपरिचित था, अथवा तो जानबूझकर अपने राजकीय अल्पम और अनगंठ कथना की है। पाठकोंको सबसे यह मालूम हो जायगा कि हमारे जीवनम एतिहासके दिग् इतने योगेने विद्वत्पत्रे जनकाके सामने रखा है।—सम्पादक-

मुयाः यदेवं जनान्तरेषु  
त्वमेव मर्ता न च विप्रयोगः ॥

महाकवि भवभूति जिन्होंने पूर्णरूपेण कालिदासको पाषाणभट्टसे मिला दिया है, अपने पूर्व लेखकोंसे आगे बढ़ना चाहते हैं, जो महारानी सीताके चरित्रको और भी सुन्दर बनानेके लिये भगवान् रामकी और कुछ अपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं और उन्हें कम सम्मान प्रदान करते हैं, क्योंकि उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे सीताजीके विषयमें 'अपि स्वदेहात्' इत्यादि वचन कहलाये हैं। किन्तु भवभूति उन्हें उत्कर्ष प्रदान करते हैं और उनके मुखसे—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'

—कहला देते हैं। यदि वास्तवमें देखा जाय तो भवभूति-कृत 'उत्तर-रामचरित' केवल एकाङ्क अभिनय है। इसके प्रमाङ्क-

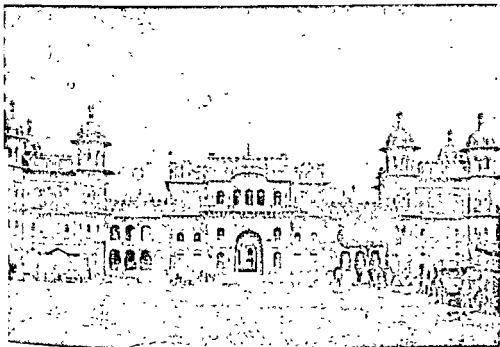
### अमर-काव्य

प्रत्येक मनुष्यके दो रूप होते हैं—पहले रूपमें सन्तों और योगियोंके गुण होते हैं और दूसरे पेसी वृत्तियाँ होती हैं जो मनुष्यको घृणित और दूषित बनाती हैं। श्रीरामचन्द्रजी प्रथम स्वर्गने अवतार थे और रावण दूसरे स्वरूपका था। इससे शिक्षा मिलती है कि हम लोग सभी स्वर्गनाग अपने जीवनको दैवी या आसुरी बना सकते हैं। हम स्वयं ही अपने मधिष्यके निर्माता हैं। साधारण लोगोंमें सद्बृत्तियोंकी अपेक्षा असद्बृत्तियाँ ही अधिक प्रकट हुआ करती हैं। अतः नते इस कारण अनुभव करके श्रीकृष्ण भगवान्से यह उपाय बतलानेके लिये प्रार्थना की थी जिसके द्वारा कामना की व्यासकिसे विक्षिप्त-चित्त पुरुष योगकी स्थितिको प्राप्त हो सकता है। भगवान् कृष्णने 'यद्द ही ज्ञाने श्लोकोंमें ऐसे विभिन्न साधन बतलाये हैं, जिनसे मन घशीभूत किया जा सकता है—'मुझमें लगाकर सब काम करते रहो—'मप्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।' ऐसा न कर सकी तो कर्ममें लगे रहो, जो कुछ करो सो मेरे लिये करो 'मत्कर्मपरमो भय' मर्दयमपि कर्माणि।' यह न तो ही तो कर्मफलकी आशा छोड़ दो 'सर्वकर्म फलत्यागं कुरु।' इस तरह अनेक प्रकारसे महत्कारण प्राप्त करने तथा योगियोंकी परमावस्थातक पहुँचनेका रहस्य भगवान्ने समझाया।

यह उपदेश श्रीरामचन्द्रजीके आचरण और उपदेशका प्रतिफलरूप है। × × ×

हम यह सकते हैं कि जैसी भावप्रकाशनकी सरल और समलक्ष्य शैली, उच्च विचार तथा पद्मकानेवाली घटनाओंमें युक्त रचना वाल्मीकिकी है उससे बहुतकर रचना साहित्य शास्त्रमें हो सकती। यही कारण है कि यह काव्य बृहद-मुषा, मञ्जन-दुर्जन, मालिक-नालिक सबके प्रकट हो चुका है। प्रज्ञाने टीक ही पढ़ा या कि जयनक चन्द्र-सूर्य चमकते रहेंगे और जयनक सतारागा अस्तित्व रहेगा तबतक यह काव्य जीवित रहेगा। —स्वर्गीय बहिम् दी० लो० योर्गिरी कवर।

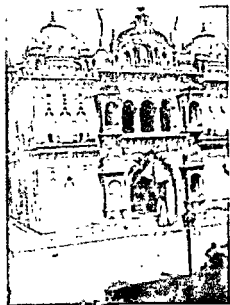
में ही उपक्रम और अवसान उपस्थित कर दिये गये हैं। श्रीरामचन्द्रजी अभी-अभी अपनेको सीताके समक रखे हैं और तत्पश्चात् सीता-वियोगका प्रसङ्ग उभरता हो जाता है। उत्तर-रामचरितके अन्य अष्ट हज़ार पंक्ति तथा पुनः संयोगका समाप्तन करते हैं क्योंकि साहित्यमें दुःखान्त नाटकका स्थान नहीं है। इसके अन्तर्गत हो जाता है कि भवभूतिने काव्यकी एकता नहीं दिया है, जिसका संस्कृतके अन्य नाटकोंमें पूरा किया गया है। उत्तररामचरितके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ अङ्कोंमें त्रिन-त्रिन घटनाओंका आभास है वे एक ही दिन घटित होती हैं और सातों अङ्कोंमें घटना कुछ दिन बाद होती है किन्तु प्रथम एवं द्वितीय अङ्कके मध्य बारह वर्षका अन्तर पड़ जाता है।



श्रीजानकीजीका नालन्दा मन्दिर



श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका सिंहासन



श्रीजानकी मन्दिरके धाम इतमाहनजक मन्दिरका पूर्ण दृश्य



# राम-नाम-माहात्म्य

(लेखक—शामीजी श्रीश्रीविम्वानन्दजी पुरी)



गवतादि भक्ति-ग्रन्थोंमें नवधा भक्तिके विषयमें विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। उनमें स्मरण-भक्ति एक अत्यन्त है। इस स्मरण-भक्तिका विषय प्रभुका नाम-स्मरण है। प्रभु अनन्त अपार हैं। इसलिये उनके नाम

भी अनन्त अपार हैं। उन अनन्त अपार नामोंके प्रत्येक नाम ही प्रभुका वाचक और आपकोंके लिये असीम सिद्धिदायक है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु उनमें राम-नामकी हृदय और ही महिमा है। भगवान् रामचन्द्र और उनके नामकी तर्पण महिमा सामान्य मनुष्योंकी सो बात ही क्या है, देवतागण भी अणु ही तरह नहीं जानते। स्वयं श्रुति तथा भगवान् रामचन्द्रजीके और उनके पावन नामके शेषमें कहती है:—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।

राम एव परं तपं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥

(रामरहस्योपनिषद्)

भगवान् रामचन्द्रजी परमवद्वस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी राम तपस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी श्रेष्ठ तप हैं और रामचन्द्रजी तपान् तारक मन्त्र हैं।

तपन्ते शोभिन्तेऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनासी परं ब्रह्माभिधीयते ॥

(रामतापिन्युपनिषद्)

किस अनन्त नित्यानन्द चिदात्म परमद्वयमें योगी लोग या सम्यक् करते हैं वही परमवद्व रामायणादि ग्रन्थोंमें ज्ञानात्मके कथन किये गये हैं।

महाराजापत्य और अगस्त्यसंहितामें भगवान् शिवजीने स्वयंकी विशेषता बतलाते हुए कहा है—हे देवी पार्वति! मैं सब वेद, शास्त्र, मुनि और श्रेष्ठ देवता भी प्रति महान् प्रभुका प्रभाव नहीं जानते हैं, अद्भुत राम-नामका अर्थ महान् और रामचन्द्र ही तपस्क रूपसे जानते हैं और उन्हींकी श्रुति में भी किञ्चित् ज्ञानता है। हे पार्वति! समस्त तपसा और समस्त मन्त्रोंका लय करनेसे जो पुण्य लाभ

होता है उससे कोटिगुण अधिक पुण्य-लाभ केवलमात्र रामनामसे होता है।

अब प्रश्न यह है कि वेदोंमें 'ॐ' मन्त्रकी बहुत ही प्रशंसा की गयी है, वहाँ कहा गया है कि 'ॐ' साक्षात् पर-ब्रह्मस्वरूप है और वही मन्त्रोंका राजा है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी गीतामें 'ॐ' के विषयमें कहते हैं—

ॐ इत्येकारं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति तत्रन्देहं स याति पराम् गतिम् ॥

(८।१३)

इसीप्रकार भगवान् पतञ्जलिने भी योगसूत्रमें 'तप्य वाचकः प्रथमः' कहकर इसकी महिमा गायी है।

उपयुक्त श्रुति, स्मृति तथा अन्य अनेकानेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि 'ॐ' से अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र समस्त मन्त्रशास्त्रोंमें दूसरा नहीं है, फिर राम-नाम सब मन्त्रोंसे विशेषतः 'ॐ' से भी बढ़कर किस प्रकार हुआ?

इसका उत्तर यह है कि श्रुतः 'ॐ' और 'रामनाम'में फलकी दृष्टिसे कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही परमात्माके नाम हैं और दोनोंका ही फल समान है। परन्तु एक प्रकारसे रामनामकी ही ॐकारसे अधिक विशेषता बतलायी जा सकती है, वह यह है कि—

ॐकारके उच्चारणका अधिकार आपामर सर्वसाधारणको नहीं है किन्तु रामनामका उच्चारण उच्च-नीच, विद्वान्-अविद्वान्, साधु-असाधु, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, पारी-पुण्यात्मा सभी मनुष्य, सब समय समान-भावसे कर सकते हैं। इस बातको हम एक दृष्टान्तके द्वारा समझते हैं—

किसी देशके एक स्वामी हैं, उनका नाम नटवर्षासिंहजी है। वे उस देशके राजा हैं अतः उनके नामके साथ 'महाराजा' भी जोड़ा जाता है। उनके पूर्वजोंकी उपाधि 'महाराजा' थी इसलिये उनको भी महाराजा कहते हैं। वे बड़े शूरवीर हैं, इसलिये उन्हें बहादुर भी कहा जाता है। सरकारसे उनको के०सी०पू०घाई०की पदवी प्राप्त हुई है अतः उनके नामके साथ वह भी जोड़ देनी चाहिये। अब उनका पूरा नाम देगा

हुवा 'महात्मा महात्मा श्रीरामचन्द्रजी शरणं प्राप्ते' के अर्थ 'महात्मा'। इस नाममें उनका सम्पूर्ण देवता, और मन्त्र या करने में भी जो विश्वास है, जो उक्तकोरिचे मनुष्य हैं वे ही इसका उच्चारण कर सकते हैं। वास्तु जो अधिभार है, साक्षात् प्राणीय अन्तर्गत है, या मूल-अर्थीके योग हैं वे उक्त नामका न तो वर्ण मानने हैं और न उच्चारण ही कर सकते हैं। वे लोग तो केवल 'महात्मा शरणं' इत्ये महात्मात्वा—महात्मात्वा शरणं ही अन्तर्गत नाम मानते हैं और महात्मा शरणं भी उक्तही महात्मात्वा प्रत्यय रहने हैं।

इसी प्रकार 'ॐ' परमात्माका महान् मान्यपूर्ण एवं देवपूर्ण नाम होनेपर भी साक्षात् अर्थीके मनुष्य उक्तका न तो महान् मान्यते हैं और न उक्त-उक्त उच्चारण ही कर सकते हैं। इसीप्रति साक्षकारोंने उक्त 'ॐ' के ही साक्षात् संज्ञा 'राम' इन दो अक्षरोंसे परमात्माको सम्बोधित किया है, जिससे साक्षात्साक्षात् उक्तको उपयोगमें ले सकते हैं। 'राम' शब्दका अर्थ 'रमते योगिने वसन्त' योगीश्रोग गितमें रमण करते, देगा परमात्मा परमज्ञ है।

(१) एक हिसाबसे 'राम' ॐ से भी सम्मान्य है क्योंकि 'राम' इन दोनों अक्षरोंको अक्षर सदा अपने मूलक पर धारण किये रहता है। अक्षरके उच्चभागमें जो अर्धचन्द्राकार चिह्न है सो 'रकार' का ही चिह्न है। वह ऊपर कैसे गया? 'जलुभिकान्वायेन रेफलोभंगमनश्' इसी संकल्प कदावतके अनुसार। और जो अक्षरके ऊपर बिन्दु है सो 'मकार' का चिह्न है। 'मोऽनुस्वारः' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार 'मकार' का रूप अनुस्वार हुआ है। अब यदि धारण पूर्ण कि 'राम' शब्दमें जो अक्षर था वह कहाँ गया? इसका उत्तर यह है कि 'आकार' अक्षर का ही एक भेद है 'अकारत्यादरा भेदाः।' राममें जो आकार है वह केवल उच्चारणके लिये ही है, इसके अतिरिक्त उससे कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, पाणिनि महाराजने यही ही है कि 'अकार उच्चारणार्थः' इति।

(२) 'राम' इस मन्त्रमें अक्षरका सार आनेसे जिस वर्णके साथ राम यह महामन्त्र अर्थात् ७ नाद बिन्दु लग जाता है वही वर्ण एक बहुत मन्त्र-शक्तिवाला बन जाता है। इस विषयमें तुलसीदासजी कहते हैं—

एक छत्र इक मुकुटमणि सब वर्णनपर जोय ।  
तुलसी रघुनर नामके वर्ण विराजत दोय ॥

इसी अर्थमें (वृत्तीय), ई (वर्तनी), ई (वर्णनीय), ई (वस्तुनीय), ई (वस्तुनीय), ई (वस्तुनीय) इत्यादि विभिन्न वर्णके उक्त 'राम' वे दो ही विराजमान हुए हैं, यही वर्ण महान् शक्तिवाले बन बन गया है और उन ही मन्त्रोंके आ करनेसे सब वर्णों के साथ अन्तर्गत हो जाते हैं।

प्राणीमात्रके नाममें 'राम' यह दो अक्षर मानामें सूत्रकी तरह प्रोक्त है।

'राम' शब्द प्राणीमात्रके नामका भी हो है, परं औरमात्रके नाममें वे दो अक्षर 'राम' पते होते हैं। किसी भी व्यक्ति, जिनका भी बड़ा मन हो, सो मन्त्रमें इनमें दो ही अक्षर बाकी रह जाते हैं, और सब मन्त्र उक्त जाते हैं। इस विषयको गणितकी सहायता से किना जाया है। प्रत्येक पुराणको संस्कारमें धर्म, धर्म, धर्म ही मोक्ष के चार प्रकारके पुराणार्थ-साधन करते रहते हैं, जिनमें प्रत्येक नामके अक्षरोंको पहले चार गुणा करना होता है, पुराणार्थ पञ्चमूर्तियोंकी सहायतासे होते हैं इत्यदि सो गुणनकालके साथ पाँच और जोड़ देना चाहिये। अन्तमें पुराणको पुराणार्थ-साधन करते हुए शीतोष्ण, सुखदुःख, सुखियासा आदि इन्हें भी सहन करने पड़ते हैं इत्यदि सो योग्यकालको फिर दोसे गुणा करना चाहिये। अब उस पुराणकालको भगवत् वाक्यानुसार अष्टांग-महति 'भूभार'के साथ सं मनोमुदरेन च। अक्षर इतने वे निर प्रकृतिके द्वारा विभाग करनेसे अक्षर ही चेतनस्वरूप 'राम' वे दो अक्षरोंका पुराण ही अक्षरों रहेगा। उदाहरणार्थ कि पुराणका नाम 'देवदत्त' है, इस नाममें ४ अक्षर हैं, जिनमें ४ से गुणा करनेसे १६ होते हैं, उसके साथ २ जोड़ लेंगे १८ होते हैं, १८ को दुगुणा करनेसे ३६ होते हैं, फिर उस ३६ को ८ से विभाग करनेसे बाकी ४ रहते हैं और वे दो अक्षर ही 'राम' शब्द हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण नामोंका प्राण 'राम' को ही सम्मन्ता चाहिये—

जीव सर्वदा 'राम' ये दो अक्षर उपता रहता है।  
जीव जो श्वास-प्रश्वास होता है वह अक्षरित नाम 'राम' नामका ही अक्षर करता है, ऐसा सम्मन्ता चाहिये।  
रकारेण बहियंति मकारेण विद्वेत् पुनः ।  
राम रामेति सच्छब्दो जीवो जपति सर्वदा ॥  
रकार उच्चारण करता हुआ जीव प्राण-वायुको लेता है।

और मकार उच्चारण करता हुआ प्राणको अन्दर प्रवेश करता है। इसप्रकार जीव अर्थात् 'राम' इन दोनों शक्तियों ही बनता रहता है।

रामसे राम-नामका महत्त्व अधिक है।

एक कविने कहा है—

राम स्वतोऽधिकं नाम इति मन्यामहे वयम् ।

तस्मैका ठीरोऽप्योष्या नाम्नातु भुवनत्रयम् ॥

हे राम ! आपने आपके नामकी महिमा अधिक मालूम करनी है, क्योंकि आपने तो केवल एक अयोध्याका ही उच्चारण किया है और आपका नाम तो स्वर्ग, मर्त्य और अज्ञान इव तीनों भुवनोंका उद्धार कर रहा है।

राम नाम सर्व्य पापनाशक है।

मरणस्य परमं त्वैव महतो हे राम नाम्नःश्रितौ,

राक्षारं वदतो जनस्य सफलं नियतिं पापं हृदः ।

मूलसन्निवृत्तिं रोषनविधासते मकारस्ततो,

विद्यते तव राम नाम वस्तु श्रीराममृत्यस्य मे ॥

हे रामचन्द्रजी ! पृथ्वीमें आपके महान् नामका क्या भारी महत्त्व है, 'रा' कहते ही मनुष्यके हृदयस्थित समस्त पाप निकल जाते हैं, फिर वे अन्दर प्रवेश नहीं करने पाते, क्योंकि 'म' कहता हुआ मूल अन्ध हो जाता है। ऐसा पवित्र नाम मुझ अश्रीरामचन्द्रजीके दासकी उद्धारकरा तथा निवारक है।

इन्द्रियन्तु दुरितं पद्मसुन्दरं व्रजम् ।

सर्वं ददति निःशेषं तुरगचरनिदानतः ॥

कैसे पदारको भी जैसे अग्नि विस्फुलक हूँक देती है, वैसे ही रामनाम भी विष, पक्ष, माग, अन्ध और सर्व शक्तियोंके समस्त शक्तियोंको निःशेषतया नाश कर देता है।

कविने राम-नाम ही एकमात्र आश्रय है

रामोऽर्हन्मृतमरणेन तदा स्वान्मुक्तिमुपैति कन्तु ।

कहीदुःखे दन्तानामरामान्मन्त्रवचने कन्तु कथिकारः ॥

तब हम दोनों कर्तव्योंके आश्रय करवा करवा हुआ अपनी दुर्घटियोंका प्राप्त होता है। कवियुगमें हूय राम-नामके उद्धारके अतिविश्व और किन्हीं की साधनमें अपनाया मनुष्योंके अन्तर्गत ही होती है।

कही नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।

कविने रामनामसे अतिरिक्त गति नहीं है।

राम-नाम सर्वं भय तथा सन्तापहारी है

भक्तान् प्रहाद पिता शिरस्यकशियुके प्रति कहेते हैं—

रामनाम वपतां वुतो मयं सर्वतापशमनैकमेवम् ।

पश्य तात मम गावसतिषी पावकोऽपि सतिरान्येऽप्युना ॥

रामनाम अपनेवालेको भय कहाँ ! सर्व-ताप शमन करनेवाला एकमात्र धीरशि राम नाम है। हे पिता ! देखो, मेरे शरीरके समीप अग्नि भी धर सख-सी शीतल हो गयी है।

राम-नाम उल्टा जपनेसे भी मुक्ति

उठता नाम अथ जग जाता। बल्कीके मये ब्रह्मसन्ताना ॥

घोर पापी दस्यु रणारक महर्षियोंकी कृपा प्राप्त करके भी जब उनके दिने हुए रामनामका उच्चारण करनेमें असमर्थ हो गया, तब महर्षियोंने एक सून ब्रह्मकी ओर इशारा करके उससे कहा कि 'देख रणारक ! वह सामने जो पृथ शीतला है वह कैसा है ?' रणारकने कहा—'मता' है, तब महर्षियोंने कहा, 'अप्या ! तुम बराबर हमी रणारक कर दिया करो।' रणारक उस उल्टे 'राम' शब्दका उच्चारण करते करते अज्ञानरूप बने किशोर्कि तथा साधारण ब्रह्मस्वरूप बनगये। यह राम-नामकी महिमा है।

राम-नामका प्रभाव

एक समय ब्रह्माजी सब देवनाभोंमें बोले कि परसे किमकी पूजा होनी चाहिये। यह सुनकर सब देवना आराममें बचने लगे। तब ब्रह्माजीने कहा कि 'आज कोसोंमेंसे जो सबसे परसे लारी पृथ्वीकी अद्विष्टता करके मेरे लय आयेगे वही प्रथम-पूज्य होंगे। यह मुख सब देवना करने करने आरामोंपर वह पृथ्वी-अद्विष्टताके दिने निकले, हममें अद्विष्टताकी सबसे पीछे रह गये, एक तो उनका अति स्पष्ट और दूसरे कारण भी क्या। वह अज्ञान आत्मक मोक्षकर बहुत आशुच हो गये। हमनेमें आराम की लगे और उनकी यह हान देकर छोड़े-गालेकी ! क्या अचरार्थे नहीं हैं आरामों एक उपाय बनता देना है। क्या दूसरेपर 'राम' नाम शिवका अपनी अद्विष्टता करके ब्रह्माजीके लय करे आये, आरामों अज्ञान कर होनी और आराम लयमें बड़े दृष्टि होते।' अद्विष्टताके देना ही किना और ब्रह्माजीके लयकायक आत्मिक विचारकर अद्विष्टताके



ही सर्व-प्रथम पूज्य ठहराया। इसीसे गो० तुलसीदासजी कहते हैं—

महिमा जासु जान गनराज । प्रथम पूजियत नाम-प्रमाज ॥

(२) समुद्र-मन्थनके समय कालकूट नामक जहर निकला जिससे सब देव-दानव जलने लगे, तब सब मिलकर भगवान् शंकरकी शरण गये और बोले—‘हे भगवन् ! हम सब भस्म हुए जा रहे हैं, कृपा करके इस भयानक विपत्ते हमें बचाइये।’ दयालु शंकरजी राम-नामका उच्चारणकर उस भयंकर कालकूट-विषको पी गये और राम-नामके प्रभावसे वह विष अमृत हो गया, जिससे शिवजी सदाके लिये अमर हो गये। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है—

नाम प्रभाव जान सिव नीके । कालकूट फल दीन्ह अमीके ॥

(३) एक समय शंकर भगवान् ने पार्वतीजीको भोजनका समय हो जानेसे भोजनके लिये बुलाया, पार्वतीजी कहने लगीं कि मैंने अभी तक विष्णुसहस्रनामका पाठ नहीं किया है, आप भोजन कीजिये, मैं पाठ करके भोजन कर लूंगी। तब शिवजीने कहा—

राम रामेति रामेति रामे रामे मनोरमे ।

सहस्रनाम तत्तुल्यं रामं नाम बरानने ॥

राम-नामके माहात्म्यको सुनकर पार्वतीने रामका नाम लेकर भोजन कर लिया।

(४) सेतु-बन्धनके समय वानर नीलने राम-नामकी शक्तिसे पत्थरोंको जोड़कर सेतु-बन्धन किया था और समुद्र-पर पत्थर तैराये थे और इसी नामकी महिमाको कथामें सुनकर श्यामिनी धनुना-पार हो गयी थी। राम-नामकी

महिमा गायी जाय तो कल्पान्तमें भी पूरी नहीं होती। संचेपसे थोड़े-से शब्द और लिखकर मन्वच समाप्त करा।

तुलसीदासजी कहते हैं—

माव कुमाव अनस आलसहू । नाम जप्त मंगल दिती रसू

इसीलिये पुरुष आपसमें मिलनेपर करते हैं ‘ज राम’। स्त्रियाँ भी आपसमें मिलनेपर करती हैं ‘ज राम’। किसीका कोई कष्ट सुना जाय तो सुँदरे लिखते हैं ‘राम राम।’ जीभ बिना कटसे पुकारती है ‘ज राम।’ सुँदके पीछे बोलते हैं ‘राम राम।’ अर्थात् तन्त्रमें एक श्लोक है—

शिने शवे न सवारो मेवत् प्रेतस्य कल्पिद् ।

अतस्तदाहर्षन्ते रामनाम जपो नत् ॥

सुँदमें कोई प्रेत घुस न जाय, इसलिये तन्त्र जप करना चाहिये। प्रेतसाधन-तन्त्रमें भी कहा है—

‘शतसाधनवेलायां रामनाम विवर्धेद् ।’

शतसाधन करनेके समय रामनाम शरीर किता भाग है। क्योंकि इस नामको सुनकर प्रेत, भूत, रिशाब, शक्ति, शक्तिनी, महाराजस आदि भग जाने हैं। निरुध रोगी जीव भग जाते हैं, इसी कारण खोक शक्को वे जो थयथा दाह करते समय ‘राम नाम सत्य है’ देना शक्य है। इसी संसर्ग-दोषसे विनाह आदि राम कारमें राम नाम सत्य है’ धर्मगल-सूचक माना जाना है परन्तु रामनाम राम-नाम सदा सत्य एवं पवित्र है, इसमें कोई भी तमोर क है। भगवान् के नाममें जो कोई विद्वेप वा धारण को उसको धवरयमेव नरककी प्राप्ति होगी।

## रामकथा सुरलोक नसेनी

दैन दुखीन अनाथनको कलपद्रुम हे कलिनै सुत देनी ।

पापन-मुञ्च पतारनको पर-नारि प्रवाह अयाह त्रिवेनी ॥

काम मदादिक काननको षनु जारि उजारत पायक पैनी ।

‘श्रीत्रिय’ सोच बूया सच है, जब रामकथा सुरलोक नसेनी ॥

## वालिवधका औचित्य

(लेखक—श्रीजनकमुत्ताराण शंतितासहायजी सावन्त बी०ए०, एल.एल०बी०, सम्पादक 'मानतापिपुष')

धर्महेतु अवतरहेडु गोसाईं । मारेडु मोहिं व्याधकी नाईं ॥

वालिवधके विषयमें उपयुक्त चौपाईंको लेकर कुछ समालोचकोंने इसे आलोचनाका विषय बना लिया है और परमव्य परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें इसको एक धब्बा माना है ।

इस विषयमें तीन प्रकारसे विचार किया जाना आवश्यक है । (१) भगवान् रामचन्द्रजीको नियुक्त निराकार आदि विशेषगुण परमव्य परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम मानकर; क्योंकि रामायणके सभी रचयिताओंने उनको अवतार मानकर ही चरित्र-चित्रण किया है । (२) राजनीतिकी दृष्टिसे, जिसमें अवतारसे कोई सम्बन्ध नहीं भी रख सकते हैं और (३) शरणागत-व्यसलता एवं सत्यसन्धताकी दृष्टिसे । उपासक लोग तो श्रीभगवान्के 'विद्यत ध्योद' होनेमें शरणागत-व्यसलताको ही मुख्य कारण मानते हैं और यह बात भी उन्हींके विचारोंसे सहजानुभूति रखता है । इसीसे इसको सचके अन्तमें रखता है ।

धन प्रयत्न दृष्टिसे विचार प्रकट किया जाता है । जो लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको अवतार मानते हैं (उनकी उपासना करते हों या नहीं, इससे हमें सरोकार नहीं) उनसे मेरा यह प्रश्न है कि 'क्या आप भगवान्के सारे कार्योंमें दृष्ट रहते हैं, क्या भगवान्के जितने चमत्कार वचन-वचन प्रकट होते हैं और जो पूर्वसे ही विस्रायी दे रहे हैं, आपने उन सबको समझ लिया है ? क्या पञ्चवक्त्रे बनी हुई यह पुत्र बुद्धि उस सर्वशक्तिमान्के कार्योंके कारण समझने-सोचनेमें समर्थ हुई है ? गर्भमें क्या कर्णों बजटा रहता है ? यह संसार क्यों रचा गया ? अमुक वृक्षके पत्तोंमें ऐसे किण्व क्यों हैं और अमुकमें दूसरे प्रकारके क्यों हैं ? नागगण कितने हैं, कहाँ तक हैं ? पक्षे हुए हुए या बीज ? इत्यादि इत्यादि जिसकी अमृत कभी है, जो—

विनु बर चरत सुनइ विनु काना । विनु कर कर्म करइ तिथि नाता  
कत सब मँडि करैकिक करनी । महिमा जसु जय नहिं बरनी ॥

क्या उसको समझनेमें आप अपनेको समर्थ पाते हैं ? क्या आपने पूर्णक प्रश्नोंके उत्तर कभी सोचे और कुछ

निश्चय किया है ? धात्र जो एक Theory निकलती है कुछ वर्ष बाद वह पलट जाती है, जिसे लोग धात्र एक यातका ठीक उत्तर समझते हैं उसीको कुछ दिन बाद वे ही लोग गलत मानते हैं । क्या यह यात ठीक नहीं है ? ऐसी हालतमें दासकी पुत्र-बुद्धिमें तो यही घाता है कि भगवान्के कार्यमें सन्देह करना उचित नहीं । उनके कार्य समयानुसृत और बहुत ही ठीक होते हैं, वे सदा शपदा ही करते हैं । उनके सब कार्य यदि हमारी समझमें आ जायें तो उनका सर्वशक्तिमत्ता गुण ही कहाँ रह गया ? अन्य मतावलम्बियोंने भी यही मत प्रकट किया है—

हरकि आमद इमारत नी साल्त ।

रतौ मंजिक नदीगे परदाल्त ॥

धर्याँ जो धापा, उसने एक नयी इमारत खरी की, पर चला गया और मंजिक दूसरोंके लिये खाली कर गया । तात्पर्य कि जो धाता है अपनी अन्न खड़ाता है और चला जाता है, कोई पार न पा सका ।

यही ईसात्मसीहका शूलीपर चढ़ना, जिसको ईसाई कुछ वर्ष पूर्व कमजोरी और अपने मतपर एक धब्बा समझते थे, धात्र अपने लिये एक बड़े भारी गौरव और बख्त चामी मुक्ति (Salvation) का कारण समझते हैं ।

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सायान् परमेश्वर और मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार हैं, तब उनके चरित्रपर सन्देह कैसा ? उनका कोई भी चरित्र ऐसा नहीं हो सकता जो मर्यादा-पुरुषोत्तमत्वपर धब्बा डाल सके ।

जब यहाँ कुछ महापुरुषोंके विचार उद्धृत किये जाते हैं जिन्होंने इस चरित्रको धर्या मानकर उसकी वधार्पना यतापी है, अथवा लोगोंकी हम शंकाका समाधान किया है—

पं० रामचन्द्र शुद्ध ( अक्षरता हिन्दू-विश्वविद्यालय )  
कहते हैं—'शामके चरित्रकी इस उज्ज्वलताके बीच एक धब्बा भी दिनायी देगा है । यह है काजिको नियन्त्रण मारना । काजिकी और तुच्छगी-इश्वरी दोनोंने हम धर्यावर कुछ सन्देह रंग पोतनेका प्रयत्न किया है । पर हमारे देखनेमें तो यह धब्बा ही सन्पूर्ण रामचरित्रको बच धार्यते

अनुरूप एक कारनामात्र समझे जानेगे बचाना है। यदि एक यह पन्था न होता तो रामजी कोई बाग मनुष्यकी-नी न खगती और वे मनुष्योंके बीच बचपार खेकर भी मनुष्योंके कामके न होंगे। उनका चरित्र भी उपरोक्त महात्माओंकी केवल महात्म्यक पुत्रकर बागोंका संग्रह होता, यह मानव-जीवनकी वितत् अभिव्यक्ति रूचिग करने-वाले संवद काम्यका विषय न होता। यह धर्म्या भी रूचिग करता है कि ईश्वरानगर राम हमारे बीच हमारे भाई-बन्धु बनकर ध्याये ये और हमारे ही समान सुख-दुःख भोगकर खड़े गये। ये ईश्वरता दिखाने नहीं ध्याये ये। भूल-भूक या घुटिसे सत्यता रहित मनुष्यता कड़ी हो सकती है? इसी एक धरमेके कारण हम उन्हें मानव-जीवनसे तदस्य नहीं समझते—तदस्य क्या, कुपु भी हटे हुए नहीं समझते।'

धीमावपशूकर जामशारी कहते हैं—'वाञ्छिष्य इस कायककी एक और विशेषता है। विशेषता कहनेका कारण यह है कि वाञ्छिष्यके सम्बन्धमें धीरामजीपर कपटका दोष लगाया जाता है। चाञ्चकल तो विचारकी यह एक परिपाटी-सी हो गयी है। उसके मूलमें 'विटप शोट' और 'व्याधकी नाई' ये पद आचारमूल दिसवाये जाते हैं। आचपे ठीक है या नहीं, इसका अब थोड़ा विचार करें।

'कपटका दोष सबसे प्रथम वालिने ही लगाया या और यह उस समय लगाया या जब यह पूरा पराक्त और मरणोन्मुख होनेके कारण विपकुल ही क्रोधमें मरा या। यहाँ मुख्य देखना यह है कि वाञ्छि मरता जाता था तो भी उसका अहंकार क्यों-का-क्यों जीता ही जाता था। इसका प्रमाण हम वालि-निघन-वर्णनके पहले छन्दमेंके 'मोहि जानि अत्रि अभिमानवस' इन वालिके ही शब्दोंसे लेते हैं। इस अभिमानके बश होकर ही 'धर्मरेतु अवतरेण गोसाईं । मारेणु मोहि व्याधकी नाई ॥' वालिने यह प्रथम किया।

अभिमानी प्रकृतिकी 'गुणाः परं न कुर्वन्ति ततो निन्दा प्रवर्तते।' यह स्वभावसिद्ध प्रकृति रहती है। क्या हमारे लिये भी वालिकी दृष्टिसे देखना ठीक होगा?

'आचपेई दो पदोंमेंसे एक 'तहशोट' है। सभी संदिताएँ एक मतसे यही प्रतिपादन करती हैं। इसलिये इसके सम्बन्धमें किसीको भी फरक करनेका हक नहीं, पर केवल

एक हीगी बातपर विरुद्ध निर्मा रहकर कलत्राते भारतीय करना सुविचारका लक्षण नहीं कहा जा सकता।

दूसरा पद—'व्याधकी नाई' है। यद्यपि यह न निर्णयनाका दूरक है। क्योंकि व्याधकर्म अत्रल ही निर्णयनाका होता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह सत्य काटये ही मरा रहता है। हमलिये व्याधकर्मों यथासंभव्यन्य लेना होगा।

आचपे करनेवाले पदके लोग व्याध करनेके बलवत् लिया करते हैं। हमारे मतसे त्रियम्बदहाके सम्बन्धमें लि विषयका प्रकाश न करना अप्याश्रयक रहता है, तत्र त्रियम्बदहाके सम्बन्धमें उस विषयका आपदापन नर किन्तों ज्ञान भूकरकिया जाता है, तभी यह किया कपट करवाती।

'इस व्याख्यानुसार, अपनेको जानबूझकर विषय, यदि रामजीने वालिपर बाण चलाया होता, तो बस कपटका अपराध अथवा ही प्रमादित हो सकता। एतु मूल ग्रन्थ ही स्पष्ट कहता है कि यद्यपि वालि नैतनमें का हुआ ग्रन्थक सामने खड़ा था तो भी रामजीने परत ग्रन्थ आता दोक । त्रि क्रममें नहीं मारेते होत । मूल कहकर तुरन्त ही 'कर परत सुमीन सरप' की 'मैली कंत सुमनके माका । पठवा पुनि बर देर विनावा ।' प्रकारसे सुमीनको फिर भेजा। इस वर्णनसे यह सीधेसिध लिख होता है कि अपनेको विषयाना तो दूर ही रहा, यहाँ और वालिकी ही दृष्टि अपनी और खींचनेका विरक प्रपन्न रामजीने जान-बूझकर किया; कारण रहे कि 'पहचान नहीं सका' यह केवल औरचारिक विमित बतकी हुए प्रत्यक्ष पक्षपात बतलानेके लिये और वालिकी ही उस तरह खींचनेके लिये श्रीरामजीने सुभीतको पुष्पक पहनायी थी।

'आचपे करनेवालोंका अब ऐसा भी दूरतिका लय होगा कि वालिने रामजीके किसी भी कार्यकी ओर, सुधीके गलेकी माळाकी ओर भी—दृष्टिसे न किया। न एक तो यह कहना ही तस्युक्तिक नहीं है, क्योंकि कभी कुपु भाईलें मूँदकर नौद अथवा समाधिमें तो बर ही था रहा था और दूसरे यदि वालिने देला ही नहीं था देलके परवा न की, तो यह किसका दोष है? साधकन उसीका दोष है।

हम सब बातोंका हस्तप्रकार विचार करनेपर रामजीके ऊपर लगाया जानेवाला कपटका भाषेव हमारे मतसे अनुचितक सिद्ध होता है ।'

### राजनीतिकी दृष्टिसे विचार

किसी बातकी ठीक समालोचना और जाँच तभी हो सकती है जब समालोचक अपनेको उस समयमें पहुँचा दे जिस समयको वह घटना है, जो समालोचनाका विषय है । वही समाज-मुधार-सम्बन्धी बातें जो एक शताब्दिके पूर्व हुआसे देखी जाती थीं, आज उचित समझी जाती हैं । वही मनुष्योंका बेषना, गुलाम बनाना, जाजविवाह आदि जो पहले भाषे समझे जाते थे आज घुरे समझे जाते हैं । ऐसे ही आज संसारमें भाषेके सामने अनेक उदाहरण हैं, समझ लीजिये । जो बात पहलेके समयमें नीतियुक्त समझी जाती थी, उसीको आज धनीति कहा जाता है । इस स्थितिमें क्या हम अपनेको सबे समालोचक कह सकते हैं यदि हम उस समयकी घटनाकी संपूर्णता वतमानकालकी नीतिले जाँचें ? मेरी समझमें तो कदापि नहीं ।

हमको चालिवधपर आलोचना करनेके लिये प्रेतायुगकी नीतिका अवलम्बन करना पड़ेगा । उस समयकी नीति कल्याण, वारमीक आदिमें भी इस प्रसंगपर ही हुई है और मनुस्मृतिका प्रमाण भी दिया गया है । क्या वारमीकीये कि० सं० १८—

वेदेउत्कारणं पदय वदयं तं मया हतः ।  
 भानुर्वीर्ये भाषायां त्यक्त्वा कर्म सनतनम् ॥  
 अस्य तं परमाणस्य सुधीस्य मरुत्तमनः ।  
 उभायां व्यंते कामप्रस्तुपायां पापकर्मद्वयम् ॥  
 न च ते मरिचे वापं सुविबोद्धं बुलेष्टतः ।  
 औसो मृगिणी वपि मायां कल्पनुसस्य कः ॥  
 इच्छते नतः कामाहस्य दप्यो वकः स्तुतः ।  
 पात्रस्तु महीपश्ये वयं त्वादेवार्थिनः ॥

( १८-१९ । ११-१३ )

'हमने वरुणका त्याग किया, सोते आरुंके कीलेत्री बसकी कर्मको त्यागी की बना किया । इसके लिये प्रायश्चित्त ही लिये है.....' वही बात गोस्वामीजीने भी कही है—  
 मनुस्मृतिमें लिखा है—  
 मनुस्मृतिमें लिखा है—  
 मनुस्मृतिमें लिखा है—

वाङ्मिकी धीरामचन्द्रजीका ईश्वरावतार होना भ्रमगत है । वह जानता है कि सुभीवसे उनकी मित्रता हो गयी है और वे उसकी रक्षामें तत्पर हैं । ताराने वाङ्मिकी समझाया है और मार्यना की कि सुभीवसे मेज कर लो, वरुणोचकर उसे सुवराज बना दो, अन्यथा तुम्हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है— 'वन्द्या गतिरिदंति ते' (वा०ग०४।१।२८) । पर उसने अभिमानवश उसका कर्ण न माना और यही कदा कि वे धर्मरुद्ध हैं, पाप कर्ण करेंगे, वा (मानसके कथनानुसार) वे समझी हैं एवं 'मे करणं मेरि मरिदि ती पुनि रोउं सनाथ । प्रभुने वाङ्मिकी पहली बार नहीं मारा । उसको बहुत मौका दिया कि वह सँभल जाय, सुभीवसे शत्रुभाज छोड़ दे, इससे मेज कर ले, पर वह नहीं मानता । दूसरी बार आना चिह्न देखकर फिर भी भयवान्ने उसे होशियार दिया कि सुभीव मेरे आश्रित हो जा चुका है यह जानकर भी— मम मुज वज आश्रित देरि गनी—उसने धीरामचन्द्रजीके पुरोपायकी अवहेलना की, उनका अत्यन्त अपमान किया, उनके मित्रके प्राय खेनेपर हल गया, तब उन्होंने मित्रको शत्रुपायसे बचानेके लिये उसे मारा । इसमें 'विद्य कोट'से मारनेमें क्या दोष हुआ ?

यदि इसमें अन्वय होना तो रामकी कदापि वह न कह सकते कि विपकर मारनेके विषयमें न मुझे पश्चात्ताप है न किसी प्रकारका दुःख—

न मे तत्र मनस्तापे न मनुर्हिरिषुतव ।  
 (वा०ग०४।८।१८)

जो धीरामजीसे इसका उत्तर माँग रहा है कि 'वर्षे देव अरुणेंगे गोलाई । मरेड मीरि व्याचकी मरि म' वह उत्तर पाकर स्वयं कहता है कि मैं निरतल हो गया, आरुने अपर्ण नहीं किया, क्या—

न दोषं तारे दप्यो कर्नेऽपिगनिधयः ॥  
 प्रतुवाथ ततो रामं प्राश्नित्तेरेवतः ।  
 वरुत्तमव नरमेड तलपैर व संतः ॥  
 (वा०ग०४।८।१९ २० )

अर्थात् उल्ल मनुचर हमने धर्मको निरुध्न करकर राषकको दोष नहीं दिया और हाथ खोदकर लोका कि चारने को करा वह ठीक है हममें लभेद नहीं ।

अब स्वयं वाङ्मिकी की वद रहा है तब, हमको आज धीरामके चरित्रपर होशियार करनेका क्या हक है ?

अथवा यह आश्चर्यकी नीति भी खीजिये। क्या जो रामा किमी राजासे मित्रता है वह उनकी सहायता छोड़ देता है? क्या आत्र छाई (Trenches) आदिमें जान-बूझकर छिपकर शत्रुपर एवं रात-बिना छिपकर पक़ायक पोसा देकर, छुड़करके स्वयंदा छद्माईमें आपन्न नहीं माने जा रहे हैं? शत्रुको जिस तरह हो सके मारना यही आश्चर्यकी नीति है। इस नीतिके सामने तो रामजी उत्तरदायित्वमें सवंपा युक्त हैं। आश्चर्य तो छद्माईमें घर्म और अभर्मका बड़ी विचार हो नहीं है।

पक्षि मेरी समझमें तो अथ बाबि स्वयं अपनेको निहतर मानता है तब हमको उसके उत्तरके अनुसन्धानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती? तथापि खोगोंकी शङ्काओंके समाधान और तरह भी हो सकते हैं—

१-श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ हैं। यह त्रैलोक्य जानता है कि 'राम' दो पक्षन कभी नहीं कहेते, जो पक्षन उनके मुखसे एकवार निकला, वह कदापि असत्य नहीं किया जा सकता। वे मित्र सुभीवका दुःख सुनकर प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'अनु सुभाव मारिहौ बालिहि एकहि वान।' और यह भी कि 'मया बचन मय मृषा न होई। व्याघ्र भयसे नहीं छिपता। मुख कारण यह होता है कि कहीं शिकार उसे देखकर हाथसे जाता न रहे। यहाँ 'विटप-भोट' से इसलिये मारा कि—यदि कहीं बाबि हमको देखकर भाग गया अथवा छिप गया, (अथवा, शरणामें आ पड़ा—यह बात आगे जिल्लीगयी है) तो प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। सुभीवकी स्त्री और राज्य कैसे मिलेगा? पुनः, यदि सामने आकर खड़े होते तो बहुत सम्भव था कि वह सेना आदिको सहायताके लिये जाता। तो यह आपत्ति भाती कि मारना तो एक बाबिको ही था, पर, उसके साथ मारी जाती सारी सेना भी। अतएव रहे कि यहाँ छिपनेमें कपटका छेरा नहीं क्योंकि यदि ऐसा होता तो प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके बाद बाबिके शरणागत होने-पर श्रीराम यह कैसे कहते कि 'अबल कर्ते तन राखु प्राना।'

२-बाबि बीसे चाहता था कि मेरा वध भगवान्के हाथसे हो, यथा—'तत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन्वामाणोऽपि तारया' मानसमेंके 'जो कदापि मोहि मारिहहि तो पुनि से भी अचित होती है। सामने जानेपर भजा अभिजाया कैसे एव' होती? भगवान् 'उन्होंने बसकी अभिजाया इसप्रकार पूर्ण की।

३-यद्यपि भगवान् सच कुछ करनेमें समर्थ हैं, उन्हें हथामे कोई बर या शत्रु बाधक नहीं हो सकता। तथापि यह उनका मर्यादागुणोत्तम अङ्गतर है। 'मानस-मर्ष'ण एवं और भी कुछ सम्मनोंका मत है कि बाबिके लिख बरदान था कि जो तेरे सम्मुख खड़ेको भागेय तब आधा बज तुम्हको मित्र आपणा। प्रभु सबकी मर्यादा हैं, इसीसे तो रावचरके लिये नर-शरीर पतब ति नहीं तो जो आश्चर्यकी नीति है क्या वह बिना अज्ञता ही रावचको मार नहीं सकता था? अत्रयभार सकता था पर देवताओंकी मर्यादा, उनकी प्रतिष्ठा जाती रही। न पर और शत्रु कोई चीज न रह जाते। इतनीबि श्रीरामचन्द्रने भी प्रजाका मान रक्खा और अपनेकी बचप बँधवा लिया—

जौ न त्रयसर मानिहौ महिना निरे अजर।

अतएव भोटसे मारकर बरकी मर्यादा रखी।

४-पं० शिवराज शूद्र लिखते हैं कि 'बृद्धी का मारनेका कारण बाबिको अकेला पाना था। अर्थात् तब स्थलके उस अंशमें बाबि सुभीवसे युद्ध करते खड़ा हो फिर वेगके साथ सुभीवकी ओर दौड़ता था। अतएव जो स्थानका अल्प बृद्धकी भोटसे किया गया था कि किन्हीं मूलसे भी सुभीवके वायु न जगे; क्योंकि उस स्थल बाबि अकेला था। यही कारण बृद्धकी भोटमें खड़े होने है। खोग कहते हैं कि बाबि सम्मुख युद्ध करनेवाले तो योद्धाका आधा बज हर खेता था; पर रामचन्द्रने तो यह ऐसा नहीं कर सकता था। क्योंकि समुद्रका हात था यह ऐसा नहीं कर सकता था। क्योंकि समुद्रका हात था जैसे एक घड़ेमें भरा नहीं जा सकता; बैसे ही बाबिकी दृष्टि रूपी पात्रमें भुवनेरवरका अर्धबज भी नहीं समा सकता। अस्तु यह शङ्का निर्मूल है।

शरणागत-चत्सलता एवं सत्यसन्धता

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें उबका एवं देवर्षी की परमश्रेष्ठ सबसे अधिक उनके शरणागत-चत्सलता एवं प्रकट होता है। इसी गुणने अर्धोंको रिया रक्खा है। अतः सर्वत्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने देवर्षीको विजया है। पर विभीषणजीकी शरणागतिके समय जब एक और देवर्षी को छोड़ सुभीव, आश्रयान, अत्रय आदि सर्वोंने उनके शरणामें न रखनेका मत दिया, तब सुभीवकी प्रभुने अर्ध प्रकासे समझाया और अश्रुतोत्पन्ना उर्ध्व बर करवा



परा विक्रम सिद्धि शरके लागे । पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे ॥

× × × । सुगठ जनम मना प्रभु भिन्दा ॥

तब श्रीराम धाड़िको कैसे मारते ? और न मारते तो मित्रका काम कैसे होगा ? एवं सत्यसन्धता कहाँ रह जाती ? शरणमें भाये हुए सुग्रीवको छोड़ देते तो मझबूटमरमें भान उनकी शरणमें कौन विधास करता ? वीर्य उनकी शरणमात्र लेनेसे अपने कल्याणका विधास और निश्रय कब कर सकता ? सामने भानेपर वे शीख कैसे छोड़ते ? इसीलिये उसे 'विटप-घोट'से मारा ।

इसपर यह कहा जा सकता है कि धाड़ि भक्त था तो पहले ही शरणमें क्यों न आया, जब ताराने उसको समझाया था ? इसका कारण यह श्राव होता है कि सुग्रीवने जाकर उसे लजकारा था । भला ऐसा कौन भववान् पराक्रमी योद्धा होगा जो शत्रुकी लजकारपर उलटे उसके सामने हाथ जोड़े ?—'शाली रिपुबल सदै न पात ।'

छिपकर भी मित्रके शत्रुको मारनेमें कोई दोष नहीं । मान भी लिया जाय, तो भी यह कानून ही और है और शरणागत-वत्सलताका कानून उन सारे सांसारिक कानूनोंसे निराळा है । यह तो नियमका अपवाद (Exception to the Rule) है यह तो भगवान्का निजका कानून है । अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रभु मझबूटदेवत्व धाड़ि गुणोंको भी ताकपर रख देते हैं, उनको यह भी परवा नहीं कि हमको कोई बुरा कहेगा । इसीपर गोस्वामीजीने विनयमें कहा है—

पेसे राम दीन हितकारी ।

प्रियनिरही सुग्रीव सखा लखि हरयो नाकि सहि गारी ।

और दोहावलीमें भी कहते हैं—

कहा विभीषन है मिलेउ कहा विगारी नाकि ।

तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आये पाकि ॥

नाकि बली बलसाकि दकि सखा कीन्ह कपिराज ।

तुलसी रामकुपालको बिरद गरीबनिवाज ॥

बंधु-बधूत कहि किमो बचन निरुत्तर नाकि ।

तुलसी प्रभु सुग्रीवकी चितइ न कळू कुचाकि ॥

हमी विनयमें बा० बा० स० १० भी प्रभावमें लिखा जा सकता है । वहाँ जब महारानीजीने शरणसे शरणमें कि शरणने रापसोंके बघकी प्रतिज्ञा की है, पर सेते शरण है कि भाग विना अपराधके उनका बघ न करें, उस सब प्रभुने यह उत्तर दिया—

रथकस्त्रं सह भ्रात्रा तत्राया हि वनं वने ।

मया चैतद्बन्धुः श्रुत्वा कारुण्येन परिपलनम् ॥

ऋणीणां दण्डकारण्ये संश्रुल जनकवने ।

संश्रुल च न शश्यामि जीवमानः प्रप्रियवन् ॥

मुनीनामन्यथाकर्तुं स्वमिदं हि मे सदा ।

अप्यहं जीवितं जह्मांतां वा सैते सकलमगन् ॥

न तु प्रेतितो संश्रुल ब्राह्मणेभ्यो विनेष्टः ।

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपलनम् ॥

(१६-१९)

धर्मात् 'दण्डकारण्यके ऋषि सेते शरक म सुम्से बोले कि आप ही हमारे नाथ हैं, आप ही एकमात्र रक्षक हैं । यह सुनकर मैंने रापस-बघकी प्रतिज्ञा की । अब उस प्रतिज्ञाको मैं नहीं छोड़ सकता, तब ही सदा प्रिय है । मैं प्राय छोड़ सकता हूँ, तुम्हें लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ पर प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता ऐसा ही प्रभुने सुन्दरकायडमें सुग्रीवसे कहा है—'तब सरनागत भय हारी ।'

शापर्यं कि सत्यसन्धता, प्रतिज्ञापा, साधुनि तथा दुष्टसंहारके तब और भगवान्की शरणागत-बन्धुत्व जो नहीं जानते वे ही प्रभुपर अन्यायका अपवाद लगायेंगे । कविके शब्दोंमें ईशरावतार-परित रूपे में जिन्हें देख-सुनकर—

जइ मोहिहि गुण होहि सुखारी ।

आधुनिक समाजोच्चको काहिये कि वे सदाशिव सद्भावनासे ही ईशरावतार-परित्रापर विचार करते उठाया करें, तभी उसके रहस्य उनकी समझमें आ सकेंगे ।

● भाष 'मानसपीयूष' नामक श्रीरामचरितमानसकी एक इहय टीका निघातनेका बडा ही सराहनीय और सर्वत्र प्रशंसित कर रहे है । अथक 'मानस' पर जितनी टीकाएँ निकली है प्रायः उन सबका सार और अपकाशित टीकाओंका सारान्वय रूप से ही इस ग्रन्थको उत्तर पढ़ना चाहिये । इसमें काशीनिवासी प्रसिद्ध रामायणी सा० पं० रामकुमारजीय शूट टोप १९११ रही है, इसके सिवा भीष्मदेव पाटकजी, महाराज श्रीरामचरणदासजी, पाण्डेय रामचन्द्रजी, संवत्सिद्धी शशी चंदा, कृष्ण

## पतितोद्धारक तुलसी

आसर अमोघ अरु अतुल अनोरो चोले ,

छन्दके प्रबन्ध आछे अछत विषारे हैं ।

दावे कान मेस राव-रंकनके अंकनपे ,

लेसपद करिके गुसाईंजू उचारे हैं ॥

जन्महु हैं मन्महु हैं आगम निगमहु हैं ,

कलिकी कराल चाल नासिबे दुषारे हैं ।

गाय 'प्रेम' मानसकीं अधम उषारे जेते ,

तुलसीने तारे तेते नभमें न तारे हैं ॥१॥

पापी व्यभिचारी भारी कपटी कुचाली मूढ ,

औगुनकी खान , पढ़ि सौंची गति धारे हैं ।

चुगुल चवाइ चोर चपल चलाक चित्त ,

चाव चौगुनेसो राम-नामाहि उचारे हैं ॥

जेते गये चले पढ़ि मानस-तोषानपर ,

धोय मल मानस की मुझिहि सुषारे हैं ।

धन्य तेरी कृति 'प्रेम' तुलसी गुसाईं इत ,

तेते जीव तारे जेते नभमें न तारे हैं ॥२॥

—प्रेमनारायण विद्याठी 'प्रेम' ।

नाथीजी, बाबा हरिहरप्रसादजी, पं० शिवलालजी पाठक, पं० गणपति उपाध्यायजी, रणवहादुरसिंहजी, कैलासजी, बाबा विदासजी, बाबा खुनायदासजी आदिकी टीकाओंसे तथा ना० प्रचारिणी समाजी ग्रन्थालयसे, विनायकी टीका, वीर कविजी लक्ष्मीपूजन टीका, बाबू इयामसुन्दरदासजीकी टीका, पं० सुभाकरजी द्विवेदी, पं० सुर्यप्रसाद मिश्र, 'तुलसी' 'माधुरी' आदिके जहाँ छन्दरमण मिलता है, उनका संग्रह रहता है। इनके सिवा पृ० पं० श्रीरामवृत्तभास्करजी महाराज, रामायणी बाबा श्री-मणवन्धनदासजी, बाबा श्रीमानकीदासजी रामायणी श्लोकिकी कथाएँ सुनकर लेखकने कई वर्षोंतक जो नोट लिख लिये थे वे भी रहे हैं। यथावश्यक शब्दोंके अर्थ और कन्नड़ी व्युत्पत्ति देकर फिर सरल अक्षरार्थ किया जाता है। प्रमाणसहित कथाएँ दी जाती हैं। श्रीरामदासजी गौड़ और लाला भगवानन्दानन्दकी विचार भी रहते हैं। कठिन समस्याओंकी मीमांसा की जाती है। रामाजके लिये मन्मोंके लोक जो चौपारथीसे मिलते हैं, दिये जाते हैं। जहाँ तहाँ विनादासपर चौपारथीका सुलासा किया जाता है। प्राचीन पाठान्तर्गत विचार रहता है। इस टीकामें प्रायः रूपमें औरह आना भाग अप्रकाशित टीकाओंका रहता है।

असक चार काण्ड समाप्त हो चुके हैं। बालकाण्डके लगभग २२७५ और अयोध्याकाण्डके १५२५ पृष्ठ हैं। रामायण-मिथोंको सारमन्त्रसे सम्पादक 'मानस-पीयूष' अयोध्याके पनेसे पत्र-व्यवहार कर प्रकाशित पुस्तकें खरीदनी चाहिये और प्रकाशित होनेवाले भागोंके लिये ग्राहक बन जाना चाहिये।

बाबू दीनलालदासजी अपने सब कार्योंको छोड़कर केवल इसी पवित्र रामसेवामें लग रहे हैं। मेरी समझसे इन्हें इस कार्यमें कुछ कठ उठाना पड़ता है, और पाया हो रहा है, जो पुस्तकें विकनेसे ही काम हो सकता है, रामायण-प्रेमियोंको यह परम उपयोगी कर्तव्य समझकर राम-सेवामें सहयोग देना चाहिये। —सम्पादक



# तुलसीकृत रामायणकी समीक्षा

(लेखक—रैवेण्ड एडविन प्रीम्स, मेन्बर्न, इंग्लैण्ड)



श्री-भाषाके महाकवियोंकी रचनाओं-  
पर समाजोपनामक दृष्टिसे कुछ  
लिखना एक विदेशीके लिये दुस्साहस-  
मात्र होगा। किन्तु मेरे-जैसे व्यक्तिका  
मिसले हिन्दी-भाषाके सर्वोत्कृष्ट महा-  
कवि गुसाईं गुलसीदासजीकी  
रामायणका सीमाव्यय वाच्यो अध्ययन  
किया है, उनके चरणोंमें धराश्रमि उपस्थित करना  
कदाचित् चम्य हो सकता है।

गुलसीदासजीने बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें कोई  
ऐसा नहीं है जो सामान्य दृष्टिसे देखा जा सके। किन्तु  
हिन्दीके विद्वान् गुसाईंजीके नामसे प्रसिद्ध सभी ग्रन्थोंको  
उनकी छति नहीं मानते। सम्भव है कि कुछ निम्नश्रेणीकी  
रचनाएँ जिनमें गुसाईंजीका नाम है, वस्तुतः उनकी छति  
न हो, अतएव महाकविके दोष दिखलानेके विचारसे उनको  
प्रमाथ्यरूपसे उपस्थित नहीं किया जा सकता।

उनके समस्त ग्रन्थोंमें रामायण या रामचरितमानसका  
स्थान सबसे ऊँचा है। मुझे सरण है कि हिन्दीके एक  
विद्वान् इस निष्कर्षको स्वीकार करनेमें ध्यानाकानी करते थे  
क्योंकि उनके विचारसे वह स्थान विनयपत्रिकाको प्रदान  
किया जाना चाहिये। निस्सन्देह विनयपत्रिकामें कुछ ऐसी  
विशेषताएँ हैं जो रामचरितमानसमें उतनी नहीं पायी  
जाती, किन्तु विनयपत्रिका केवल थोड़े-से संस्कृत पुरुषोंके  
लिये ही विशिष्ट घरोहर बनी रह जाती है। रामायणको और  
रामायणके गुणोंको समझनेवाले ऐसे बहुतेरे सज्जन मिलेंगे  
जो विनयपत्रिकाके विवाद-अस्त पदोंका विवेचन तो दूर  
रहा उनको समझनेतककी भी चमता नहीं रखते।

श्रीरामचरितमानसकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह  
है कि वह सब श्रेणियोंके लोगोंको-यहाँतक कि जो लोग  
पढ़ना नहीं जानते, केवल सुन सकते हैं, उनको भी समान  
रूपसे प्रिय है। इससे एक भोजाभाला प्रामीय जितना  
आनन्दित होता है, विद्वान् भी उतना ही आनन्द पाता है।

क्या बड़ी ही सुन्दरताके साथ कही गयी है,

जिगसे पाठकका मन धारिये अन्ततक कहीं नहीं उरत  
धमकारकी अधिष्ठा, कथनाकी प्रवृत्ता, भावके  
सजीवता, मधुर ध्वनि तथा भाव प्रकाशनकी सुन्दरता ही  
उपादेयताके कारण यह सबको मन्त्रमुग्ध कर देती है। कल्प  
है कि इसकी उत्तमता सब जगह एकसी नहीं हो, पर  
लेखकको हम कहीं विषयान्तरमें जाते नहीं देखते (किन्तु  
कुछ वास्तविक मुकवि भोंकमें धाकर कर बैठते हैं)। यहाँ  
यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्टरूपमें हमारे सामने बसित है।  
अथ सम्भवतः यह प्रश्न उठता है कि दुर्बलतर  
रामायणमें कौन-से ऐसे गुण हैं जिनसे उसने हिन्दी-भाषाके  
सर्वोच्च पद प्राप्त किया है ?

लेखक सझोचके साथ इस प्रश्नका संक्षिप्त उत्तर  
चेष्टा करता है।

(१) महाकविका मन प्रतिपाद्य विषयमें उतनी  
उसने अपने आपको मुला दिया है। उसका प्रश्न का  
प्रवीणता प्रदर्शित करना नहीं है, वह श्रीरामचरित  
महानता और साधुताकी और ही पाठकोंका ध्यान आकर्षित  
करता है। श्रीरामके प्रति उसकी भक्ति (अथवा राम  
रामभक्ति) उसके समस्त पद्योंमें स्वभावसे ही परिपूर्ण है।  
उसकी रचनाएँ अपने प्रभु और भगवान्के अत्यन्त  
परिपूर्ण हैं। वह कीर्ति कमानेके लिये रचना नहीं करता  
उसका एकमात्र लक्ष्य श्रीसीता-रामकी विमल कीर्ति  
स्थापना करना है।

(२) इस लक्ष्यको सम्मुख रखकर कवि प्रथममें  
इस बातपर दृष्टि रखता है, जिसमें उसकी भाषा सरल और  
सबके समझने योग्य हो। वह अपनी विद्वत्ता, प्रौढता  
और रचना-कौशलकी प्रशंसाके लिये पाठकोंको तिर-  
करनेकी इच्छा नहीं करता, वह तो पाठकोंको अपनी ही  
समझाना चाहता है। निम्नलिखित पद बना ही श्रेष्ठ  
है जिसमें कविने इस विषयकी विवेचना की है जो  
जिसमें साधारण 'भाषा' शब्दका प्रयोग कर कवि  
अभिलाषा व्यक्त की है—

भाषा मनिठ मोर भक्ति मोरी। हंसिबे जोग हंसि ब्रवीं कौरी।  
प्रभु पद प्रीति न सासुसि नीकी। किन्हादि कथा सुनि रहिनी की।  
हरि-हर-पद-रति भक्ति न कुरतकी। तिन्ह कहैं मधुर कथा सुनकी।

विस्मयैव रामचरितमानसमें बहुतसे ऐसे स्थल हैं जिनके समझनेमें विदेशी पाठकोंको कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, पर सम्भवतः उनमें कुछ स्थल ऐसे भी हैं जो प्रत्येक भारतीय पाठकके लिये भी सुगम नहीं हैं, किन्तु इस छिटपुटका कारण केवल विषयकी गम्भीरता है। कविने इस प्रकारकी रचना अपना पायिदण्य और गाम्भीर्य दिखलानेके लिये नहीं की है। इस कान्यकी एक बड़ी विशेषता भाषाकी सरलता है। कवि अपनी रचना साधारण जनताके समझने योग्य बनाना चाहता है। उसका उद्देश्य तुलसीदासको विख्यात करना नहीं है, वह तो अपने रामको शोकप्रिय बनाना चाहता है।

(३) एक विशेषता यह है कि इसमें बिना पाषाण विभिन्न वृत्तान्तोंका समावेश है। छन्द-योजना भी बहुत ही सुन्दर है। यद्यपि कहीं कहीं चौपाइयों और दोहोंके क्रममें कुछ भेद है परन्तु अधिकांशमें चार चौपाइयोंके बाद एक दोहोका क्रम रखा गया है, बीच-बीचमें सौरठोंका प्रयोग करके क्रममें परिवर्तन किया गया है, जिससे रचना और भी रचिकर हो गयी है। पाठकोंके मनोरंजनार्थ अनेक प्रकारके छन्दोंका भी समावेश किया गया है, जिनसे कान्यका सौन्दर्य विशेष बढ़ गया है। कहीं कहीं तो विषय और भाषाकी उत्कृष्टताके कारण वे बहुत ही प्रभावोत्पादक हो गये हैं। उदाहरणार्थ इस छन्दको देखिये, जिसका आरम्भ इसप्रकार है—

अप-अप सुरनायक जन-सुख-दायक प्रनतपाल भगवंता ।

यह बालकायदमें है। अन्यान्य स्थलोंपर ये छन्द सुन्दरकी भीषणता और भयानक योद्धाओंके शृणोन्मुख संग्रामके शैत्य-विनाशसे परिपूर्ण हो रहे हैं। लज्जाकायदमें इसके उदाहरण अधिक मिलते हैं।

गुसाईजीने रामायणके पदोंकी रूढ़िके लिये आवश्यकता-सुधार शब्दोंके स्वरूपोंको बदलकर, बहुत-से अन्यान्य शब्दोंको अपनाकर रचनामें एक और नवीनता खा दी है। शब्दोंको अप्रयुक्त स्थानपर रखने, उनको घटाने-बढ़ाने तथा काटने-कटनेकी गोस्वामीजीमें ऐसी विचित्र शक्ति थी कि उनके देना करनेपर भी प्रयुक्त शब्द सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। मैंने एक 'ऐसा' शब्दके रामायणमें ११ भिन्न रूप देखे हैं। इसी प्रकारकी विभिन्नता सर्वनाम, शब्द और कान्य पदोंमें भी पायी जाती है। स्थान-स्थानपर

धनुमासोंकी छटा दीख पड़ती है। कदाचित् उपर्युक्त छन्दमें यह एक पंक्ति अनुमासका सर्वोत्तम उदाहरण है—

जो भव-भय-भंजन जन-मन-रंजन गंजन निप्रति बरुधा।

कवि शब्दों और पदोंके प्रयोगमें, विषय-प्रतिपादनके लिये छन्दोंकी गतिमें अपनी विशेष रुचिका प्रदर्शन करता है और भाव तथा रसोंके द्वारा अत्यधिक विभिन्नताकी छटा दिखाता है। रामायणमें उल्लिखित विषयों तथा उनके प्रकाशनके लिये प्रयोग किये गये रसोंकी सूची बना लेना प्रायः असम्भव है। पात्रोंके चरित्र-चित्रणकी शैली नाटकोंकी भाँति है। यह सत्य है कि पाश्चात्य मनोवृत्तिके लिये रामायणके बहुत-से स्थल कुछ दुर्बोध या छिप प्रतीत होते हैं तथा जिस भाषा और रसके द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की गयी है उसमें कुछ प्रतिमात्रा दीख पड़ती है, परन्तु इससे रामायणके भिन्न-भिन्न पात्रोंके सजीव चरित्र-चित्रणके प्रति पाठकोंकी श्रद्धा कम नहीं हो सकती।

गुसाई तुलसीदासजीने सरल शान्त वर्णनमें, गार्हस्थ्य सुख-दुःखोंके चित्रणमें (हा ! दोना कैकेयी), युद्धके आघात-प्रतिघातके वर्णनमें, सन्तान और माता-पिताके, भाई-भाई और पति-पत्नीके पारस्परिक मृदुल सम्बन्धके चर्चित करनेमें एक-सी ऊर्जाबलता दिखायी है। सुदीर्घ वनवासकी यात्रासे पूर्व राम-सीताका जो वातावरण है वह तो कदाचित् सम्पूर्ण रामायणमें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रसंग है। जिस शरत्तासे राम-चन्द्रजी वनके कष्टमय जीवनका चित्र खींचकर सीताको दुःखोंसे बचने और घरपर सबकी देखभालमें सुख-पूर्वक रहनेका उपदेश करते हैं, उसी वीरताके साथ सीताजी भी प्रत्येक दशममें पतिके साथ रहकर उसके बड़े-से-बड़े कष्टोंमें समान रूपसे भागीदार बनना चाहती है। वह यह नहीं दिखलाना चाहती कि कठिन कार्योंका विनय-पूर्वक करना केवल कर्तव्य या भक्तिवश है, वह तो अपना दावा इससे कहीं भावपूर्ण शब्दोंमें पेश करती है, वह कहती है कि प्रभुके साथ वनकी कठिनाइयाँ भोगना मेरे लिये स्वर्ग-सदृश है और उनके अलग रहनेमें यह राजमासाद भी नरक-गुण्य है।

(४) तुलसीदासजीके हास्य-विनोदपर तो एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है। साहित्य तथा जीवन दोनोंमें विनोदकी बड़ी आवश्यकता है। जीवनके किसी विज्ञानमें विनोदका अभाव एक बड़ा दोष समझा जाता है। प्रायः हास्योत्पादक पद्य तत्काल मनमें जाग उठते हैं, उदाहरणार्थ,

परशुरामकी गर्जना तथा उनके श्लोकके उत्तरमें लक्ष्मणका विनोदपूर्ण उत्तर । अथवा शूर्यवत्ताकी लक्ष्मणको वरष करनेकी चेष्टा और उसके उत्तरमें लक्ष्मणका श्लेषपूर्ण हास्य देखने योग्य है । लक्ष्मणमें राजप्रासादमें हनुमान् और उनकी पत्नीकी कथा हास्यरससे परिपूर्ण है । इसीप्रकार बालकाण्डमें शिवके बहुसंख्यक विचित्र गायोंका वर्णन है । लक्ष्मणकाण्डसे भी ऐसे बहुतरे अंश उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें विकट तथा मीठ हास्यरसका समावेश है । कहीं-कहीं तो यह हास्य-विनोद अर्मरस्पर्शी—व्यङ्ग-गर्भित हो गया है । क्या मैं निम्नलिखित पद्य इसके एक स्पष्ट चित्रके रूपमें रख सकता हूँ ?

समरथ कहूँ नहिँ दोष गोसाईं ।

यद्यपि कुछ सज्जन इसमें व्यङ्ग न मानकर इसका शब्दशः अनुवाद करना ही उचित समझते हैं ।

अन्य विषयोंकी भाँति कान्यमें भी लोगोंकी अभिरुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है । कुछ पाठकोंको कवि विहारोलाहको रचना विशेष प्रिय मालूम होती है । शब्दयोजनामें वे अवरय ही बड़े प्रवीण हैं, किन्तु उनकी सतसईमें इसके अतिरिक्त कौन-से गुण रह जाते हैं ? कुछ दूसरे लोगोंको सूरदासकी कविता बड़ी मनोहर प्रतीत होती है । निश्चय ही न तो कोई भी मनुष्य उनकी साहित्य-सुन्दरता तथा मनोरमताको लक्षुता प्रदान कर सकता है और न उनके पदोंके माधुर्यमें ही सन्देह कर सकता है । इस विषयपर हमें 'मेकाले' की निर्दोष अंग्रेजीके ऊपर कालाँइलके ये उद्गार

स्मरण हो आते हैं—'हे कान्तिमयी सरिते ! बहो बहो' (Flow on thou shining river) । सूरदासके पूर्वों और फलोंसे भरपूर एक ऊँचे प्रकारपर लिख है क्या नीचेकी समतल भूमि उनकी अभिरानता बही सकती । यद्यपि उनका स्थान बहुत ऊँचा है तथापि शब्दों गह्रोंमें भी मनोहरता होती है । महान्मा कवीरजीमें श्रृंगगी एक महानता है । सम्भवतः कोई भी कवि श्रृंगमशब्दोंमें इतने ऊँचे भाव नहीं भर सकता । ही कथनकी शक्ति तथा रूखे श्लोकपूर्ण पदोंके प्रयोगमें न कोई समानता नहीं कर सकता । उनके पदोंमें श्रृंगम्यावहारिक सिद्धान्त फूट-फूट कर मरे हैं । किन्तु सुबकीरजी और कवीरजीमें इतनी समानता नहीं कि इनकी तुलना की जा सके ।

हिन्दी-साहित्यको अनेक कवियोंने समृद्धिराजो रूप है, किन्तु तुलसीदासका स्थान निश्चय ही उन सबमें ऊँच है । अन्य कवियोंमें तुलसीदासजीकी अपेक्षा कोई श्रेष्ठ गुण मजे ही हो परन्तु तुलसीदासजीमें तो अनेक उच्च श्रेष्ठ महान् गुणोंका समन्वय है । उनकी रामायणमें जैसे शैल और विनयपूर्ण भावोंका प्रवाह दीप्त पड़ता है ! वस्तुतः केवल प्रशंसाके ही पात्र नहीं, प्रेमके भी हैं और या न उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी-साहित्यमें ऐसी कोई भी उल्लेख नहीं जिसका राजप्रासादसे जोकर एक निर्धनकी कुलियाँ इतना अधिक प्रसार हो ।

## राम

रामही चराचरोमें व्याप्त है अलखण्ड ब्रह्म ,

रामका गुणानुवाद, पुण्यका आगार है ।

रामसे सनी महान है सुखी जहान चीच ,

रामके लिये सदा प्रणाम बार बार है ॥

रामसे जुदा कभी हुआ नहीं किसीका चित ,

रामकी कथा सुधा-त्रिवेणिकाकी धार है ।

राममें रमे मुनी, मुनीस्वरोके मानसोंमें ,

राम 'विष्णु' सर्वथा त्रिलोकका आधार है ॥

गंगाविष्णु वाग्देव, विष्णुभूषण 'राम'

# रामायण संसारका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है

(लेखक—डाक्टर भी एच० डब्ल्यू० नी० मोरेनो, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रेसिडेण्ट 'पेंगलो इण्डियन लीग')



संसारको सभी मानते हैं कि रामायण संसारमें सबसे पुराना महाकाव्य है; किन्तु यह सर्वोत्कृष्ट और आदिकव्य है—इसे बहुत कम लोग जानते हैं। ऐतिहासिक कालके अख्योद्यममें तबे जानेपर भी यह ग्रन्थ सर्वथा अद्वितीय हुआ है। यद्यपि यूनान, रोम, इटली, इंग्लैण्ड, फारस तथा अन्य देशोंमें भी महाकाव्योंके लिखनेवाले समय समयपर आविर्भूत होते रहे हैं किन्तु सांस्कृतिक सौन्दर्य तथा सर्वांगीय पूर्ण होनेके कारण रामायणको वह गौरव-पुत्र महान् पद सदा प्राप्त रहेगा जिसका अतिक्रमण अथवा प्रतिस्पर्धा कोई नहीं कर सकता।

भारतके नामसे प्रसिद्ध थे और ( रामायणमें ) दक्षिणदेशके शासक हैं। महारानी सीताका अपहरण करनेवाला रावण छद्मका शक्तिशाली राजा है। यद्यपि उसकी सारी कामनाएँ पारश्विक हैं तथापि राज्य-वैभवमें वह किसी भी भारतीय नरेशसे कम नहीं है।

इस महाकाव्यका कथानक सर्वतोभावेन हृद्यप्राणी है। अंग्रेजी भाषाका प्रसिद्ध कवि पोप ऐसा नहीं कर सका है, उससे हास्य-वीर-रस-पूर्ण काव्य 'दि रेप थाव् दि लॉक' (The rape of the lock) में सुन्दरी बेखियदाके एक बेशपासके ऊपर ही सारा बखेड़ा मचता है। रामायणमें लक्ष्मण तथा महारानी सीताके सहित श्रीरामजीका भारतके दक्षिणी प्रदेशमें पर्यटन, मार्गमें ऐतिहासिक विभूतियोंसे मिलाप, भयानक छद्मायिराजका पराभव, विजय प्राप्त कर अपने राज्यमें लौटना और वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक पुत्र काज तक राज्य करना आदि घटनाओंका वर्णन है।

रामायणमें महाकाव्यके लिये आवश्यक सभी नियमोंका पावन किया गया है। यद्यपि दूसरे महाकवियोंने भी उन नियमोंकी अवहेलना नहीं की है तथापि हिमालयस्य उच्च शिखरको मूर्ति यह उन सबसे आगे बढ़ा हुआ है। जो रामायणकी महत्ताको हृद्यज्ञान करना चाहते हैं उन पुरुषोंके लिये महाकाव्यके नियमोंका विरलेषण अधिक उपादेय होगा।

रामायणकी भाषा चम्पार-पूर्ण है तथा संस्कृतके श्लोक-प्रवाहके कारण इस काव्यकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। महाकवि वर्जिल (Virgil) के एनिडकी (Aenid) मूर्ति ग्रीक अथवा लैटिन महाकाव्योंमें चम्पारपूर्ण वर्णनके लिये पदपदी (Hexameter) का उपयोग किया जाता है। मिल्टनने (Milton) भी सीमित पञ्चपदीया (Pentameter) प्रयोग किया है किन्तु रामायणमें इतसे कहीं अधिक चम्पारिक दुर्गोंका प्रवाह है। इसीलिये इतमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि काव्य भी श्रीगुजरीदासजीके रामायणको भी जियमें बागमीकीय रामायणकी भाषाकी छाया बर्तमान है, गाँवोंमें लोग शान्तमात्रसे जगतातर कितनी रातों सुनने हैं और मरहटके नीचे आसनपर बैठे हुए विद्वान् एरिडन श्रीरामके पराक्रमपूर्ण कथनोंका सुन्दर वर्णन करते रहते हैं।

भारतके समान महाकाव्यमें भी तीन महान् नियमों (सिद्धान्तों) का समावेश होना आवश्यक है—( १ ) विषयकी महानता—आर्याण्ड इतिहास तथा पुराणोंके महान् करिब विषय, ( २ ) सर्वांगीय चम्पारपूर्ण विषय ( ३ ) भाषाकी उत्कृष्टता। अब देखना है कि रामायण कहीं तक इन नियमोंको पूरा करता है। भगवान् राम स्वयं एक महान् सभ्य हैं, उनका जन्म एक ऐसे महान् राजवंशमें होता है जिसकी सीमा देवताओं तक पहुँची हुई है। अनुप उन्हें ईश्वरका अवतार मानते हैं। उनकी पतिव्रता की महारानी सीताजी उसी प्रचारके दूसरे महान् राजवंशमें जन्म लेती हैं और अपनी उच्च स्थितिके अनुप, अनुकरणीय पुरुषोंके विभूति इस महाकाव्यकी भाषिका हैं। भाषान् श्रीरामके भाषा लक्ष्मणमें भी वे सारे सुन्दर गुण बर्तमान हैं जो एक राजकुमारके लिये आवश्यक हैं। दक्षिणके आदि विशापी बावणोंके आकारवाले पुरुष, श्रीरामदाजी देवताओंके अवतार हैं जो एक बार अनुप शक्तिके कभीचर

कारणके काव्य-सिद्धान्तके अनुसार किंगी ग्रन्थकी महाकाव्यकी शैलीमें जानेके लिये तीन और नियमोंका पावन आवश्यक है। वे हैं—काव्य, एतान तथा विषयकी दृढ़ता, महाकाव्यकी विधाओंका समुदाय एक ही काव्यमें होना आदिये। इतिहासकी मूर्ति हृद्यका विस्तार एक काव्यमें

दुररे काजगत नहीं था सकता। उदाहरणार्थ रोमका  
 भाग्यदत्त तथा हज़रतवका निकोरिवन-काज है। रामायणमें,  
 श्रीरामजीके वनवास तथा बेचन उगी अन्वयमें किये गये  
 पराक्रमके घोड़े-ने समयको पुनः काजकी पकनाका अन्वय  
 निर्वाह हुआ है। शेर्गारपरके भायेजो (Othello) नामक  
 नाटकमें भी काजकी पकनाकी रक्षा हुई है, डीक बेनेरियन  
 खोगोंके साहस्य हीपर भाकमय करनेके पूर्व—भायेजो  
 (Othello) अपनी सेनाके साथ प्रस्थान करनेके लिये  
 विचार करते समय ही मलिनहदूप आहूगोकी (Iago)  
 भूतताका शिकार बन जाता है। डीक नाटकमें भी  
 काजकी पकनापर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है।  
 सर्पार्द जिने समयमें काजविक शोकरपवसापी कापीकी  
 (Tragedy) समाप्ति होती है उतने ही समयमें नाटकका  
 अभिनय भी समाप्त होता है। सग्राद् हेनरी पद्यम  
 (King Henry V.) नामक नाटकमें काज एवं स्थानकी  
 पकनाका घतिक्रमण हो जाता है और यही कारण है कि  
 शोक्सपियर काज तथा स्थानकी पकनाकी कमीको पूरा करनेके  
 लिये सामूहिकगान (Chorus) उपरिपत करता है।  
 रामायणमें स्थानकी पकनाका अन्वय तरह निर्वाह किया गया  
 है। इस महाकाव्यकी सारी खीजाई भारतवर्ष तथा छद्माके  
 मैदानोंमें होती हैं। सग्राद् हेनरी पद्यम नाटकमें स्थान,  
 इंगलैण्डके फ्रान्स तथा फ्रान्सके इंगलैण्ड परिवर्तित होता  
 रहता है, किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है—सामूहिक गानसे  
 यह सौम्य बन जाता है। रामायणमें क्रियाकी पकनाका भी  
 पालन होता है, समस्त क्रियाओंका सम्बन्ध केवल  
 श्रीरामचन्द्रजीके वनवास तथा उनके जौटनेके सिवा और किसी  
 बातसे नहीं है। जौटनेके बाद श्रीरामचन्द्रजी और महारानी  
 सीताकी क्या दशा हुई? वनमें किसप्रकार महर्षि वाल्मीकिने  
 खब और सुन—इन दोनों दुसरोका पालन-पोषण  
 किया? किसप्रकार वे अपने राज्यमें पुनः जौटकर आये?  
 इन सब विषयोंका वर्णन रामायणमें है। महाकवि होमर रचित  
 महाकाव्य इलियड (Iliad) की समाप्ति, पाट्रोक्लस  
 (Patroclus) के हत्यारे हेक्टरके (Hector) मारनेके  
 कारण पचलिज्के क्रोध-शमनमें, हो जाती है। इसप्रकार  
 यह दुःखान्त वर्य पूर्ण हो जाता है, क्योंकि पचलिज्के  
 क्रोधसे निकलकर दुःखके अन्त खोत फूट पड़ते हैं और वह  
 उन्हींके गीत गाता है और कुछ नहीं कहता, तथा स्वतः  
 सम्भातार्थ स्वतः-क्रिया-सम्बन्धी खेल  
 (games) की समाप्तिमें महाकाव्यका अन्वयान  
 खकपीके घोड़ेकी कहानी,

दृश्यनगरका पतन तथा दाह. इनियाम (Aeneas)।  
 एचियोज (Anchises) को सहायता देना तथा उसके  
 देनामोंकी रक्षादि—अन्वय, यूनानी दन्तकालमें  
 गयी है।

संगारके महाकाव्योंके साथ तुलना करनेमें एत  
 वही सुन्दरताके साथ उपरिपत किया जा सकता है। महा  
 विचारमें 'इलियड' को रामायणके समाने रख लेंगे।  
 परन्तु बहुत-से स्पञ्जोरर वह प्रतिभाहीन हो जाता है, न  
 रचनारीची तथा विचारोंकी मनोरहताके कारण अन्तर्गत  
 विषय होती है। इन दोनों महाकाव्योंमें उरुण्ड एवं  
 पकनामोंका अनुसरण किया गया है और दोनों स्वतन्त्र  
 अन्वय विशेष अन्वय रखते हैं, किन्तु अन्वय विषय है  
 तथा सुन्दर वर्योंके विषयके कारण एक अन्वय रूप  
 प्राप्त करता है। स्वयं महाकवि वर्जिन स्वोकर अन्वय  
 कि एनिए केवल इलियडकी प्रतिष्ठाया है। किन्तु एवं  
 इलियडके समान भाषा और भाव विकसित नहीं हो लें  
 हैं, क्योंकि इसमें ऐसी कोई बात नहीं, जिसे होलैंडर  
 उपमाओंके सामने रख सकें जो संसारमें अन्वय अन्वय  
 हो चुकी हैं। महाकवि डायटे (Dante) के काव्योंमें स्थान  
 तथा वर्णनकी रमणीयताका अभाव नहीं है। उसके अन्वय  
 इनफर्नो (Inferno) परगेटोरियो (Purgatorio) व  
 पैरेडाइज (Paradise) नामक अन्वयोंमें ऐसा सुन्दर विषय  
 है कि जिसकी प्रतिबिम्बि भाषुनिक कलाविद् उपरिपत न  
 कर सकता। किन्तु कमी-कमी डायटेके विचारोंपर रचना  
 परदा पड़ जाता है, यही कारण है कि वह अन्वय कि  
 अन्वयोंसे पृथक् करता है उन्हें नरकमें पहुँचा देता है कि  
 इनफर्नोमें रिमिनीकी (Rimini) कैन्सिकाके (Francesca)  
 एक सुन्दर उपाख्यानके विमित वह कितने ही विदेशीय  
 भावोंकी सृष्टि करता है। चमत्कारिक वर्णनके लिये कई  
 उपादान मिलनके 'पैरेडाइज' लक्ष्यमें हैं, किन्तु अन्वय  
 वर्णन करते समय वह उसीको खगमग काव्यिक अन्वय  
 रूपमें ला देता है। इस काव्यके निर्दिष्ट नायक, सुन्दर  
 पुत्रका ध्यकित्त अन्वयत चीय और नियम हो जाता है कि  
 हम ईसाई-धर्म-अन्वयकी कथाके कारण अन्वयकी सृष्टि दे लें  
 हैं, मिलनकी रचनाके कारण नहीं। मनुष्यकी प्रथम अन्वय  
 गीत गावेवाले नेत्रहीन प्योरिटन (Puritan) महाकवि  
 मिलनके भाव-प्रकाशकी पेशखता, अन्वय-प्रवाह तथा अन्वय  
 की प्रचुरतामें कोई कमी नहीं आती। फिरीसीके शासक  
 फारसके राजाओंका इतिहास है—जिसमें अन्वयकी  
 रसतमका विशेष वर्णन है, किन्तु यह काव्य केवल बया नहीं

इसका तथा युद्ध और सन्धिके विवरणोंसे भरा हुआ है, जेनके पढ़नेसे मन ऊब जाता है। फिर भी इनके मध्यमें सोहरावकी एक भावपूर्ण कहानी है। रूसतमका प्रज्जवेजान (Azerbaijan) देशनियसिनी अपनी पत्नी ताहमीना (Tabeminah) के साथ केवल एक रात्रिके लिये शयन भगा, तदनन्तर उसकी भ्रष्टानतामें सोहरावका जन्म जेना तथा उसी सोहरावका संयोगवश अपने पिताके द्वारा मारा गया था। रोमाञ्चकारी घटनाओंसे भरी हुई इस कल्पनामीकी एक प्रेमका कोई न होगा जिसकी आँखें सजब न हो सकें। वास्तवमें, जैसा कि स्वयं कवि फिरदौसी कहता है कि यदि शाहनामा-जैसे महाकाव्यकी रचना न हुई होती तो इस्लाम एक प्रामीय धीर ही रह जाता और उसके गानकी गायना केवल प्रामीय भाओंकी जिद्दापर रह जाती। फिरदौसीने केवल इस पूर्वी देशके महान् धीरके चरित्रको ही अद्विष्ट नहीं किया बल्कि दिलको हिजा देने-वालों सोहरावकी कहानीको हमारे लिये रख छोड़ा, जो शाय भी फारसके प्रासाद एवं अन्तःपुरमें रहनेवालेके रूपको प्रगणित करता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी, महारानी सीता, श्रीकमण्डवी, महावीर हनुमानजी तथा रावणका चरित्र भी पूरे अध्यायमें समयके अगम प्रवाहमें सर्वदा सजीवरूपसे उभान रहेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दूजनसृष्टिमें अश्विनी, शकुन्तला तथा दमयन्ती-जैसी पतिव्रता कियौं का जाती हैं किन्तु धर्मभाष्या सीताके सामने सभी निष्प्रम का जाती हैं, जिसे देवता भी प्रशंसा करते हैं और अपनी आज्ञादि अर्पित करते हैं। सत्यप्रतिष्ठ सुचिष्टि, भीष्म तथा महाद्वेके चरित्र भी प्राप्त होते हैं किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत तथा कञ्चुहीन जीवन, एवं राजकीय गुण और उनके साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती।

रामायणका सार क्या है? परेहाइज् धारके छत्र अर्थात् एवं इजिप्ट काव्यमें वर्णित साधारण चरित्रोंकी प्रेक्षा उसकी महान किस प्रकार सार्थक होती है? ग्रीक चरित्रोंमें वर्णित श्रीरामायण चरित्रोंको तो केवल अनेकास (Menelaus) दन्दी कन्याके लिये ही अपने शिविरमें रखा था है, इसी और ओडिसस (Odysseus) एक कल्पना कमी पुराण है जो आञ्चल्य सभ्य पुराणोंके सम्मुख एक इबाका पात्र धरता है। अजायस भी (Ajax)

केवल शक्तिमें भीमके समान है, इसके सिवा उसमें और कोई गुण नहीं है। इसके विपरीत श्रीरामचन्द्रजी उस मूल सिद्धान्तको सिखजाते हैं जो चराचरका आधार है क्योंकि परमात्माका प्रथम विधान 'अनुशासन' है। यदि आज सीताजी होतीं तो उनके सामने हमारी बहनें—पादे वे प्राच्य देशकी हों या पश्चात्य देशकी हों, जन्मासे नतशिर हो जातीं। श्रीरामचन्द्रजी धर्म और भक्तिसे शोचप्रोत हैं, उनके भाव उस प्रकारके बहुत ही कम भाई हमारे देखनेमें आते हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे केवल सरल और सर्वप्रिय जोनैथन (Jonathan) और डेविड (David) की धमर कहानी कुछ अधिक अच्छी है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें रामायणमें धीर भी महत्त्वपूर्ण विषय प्राप्त होते हैं। कुछ भाव्यकारोंका विचार है कि सीता-शब्दका अर्थ हलके द्वारा बनायी गयी गहरी रेखा है। इसी आधारपर वे कहते हैं कि रामायणमें आञ्चलिक अंगसे आर्योंकी विभिन्न क्रियाओंका वर्णन है। उदाहरणार्थ किसप्रकार आर्योंने धूमने-फिरनेवाजी अंगुली आतियोंको खेती करना सिखवाया तथा शास्त्रानुसृत जीवनके धाम बतलाये, जिनका उन्होंने धरने आदि स्थान मध्य पृथिवीमें प्रयोग किया था। यदि इस महाकाव्यका यह महान अर्थ हो तो भी उसकी उपादेयता बढ़ जाती है। इसकी वास्तविक कथाकी गम्भीरता और मनोहर वर्णनके अतिरिक्त इसमें धीर भी अधिक गूढ़ तत्व भरा है जो विद्वान्पूर्व अध्येत्यके लिये बहुत ही विस्तृत क्षेत्र उपस्थित करता है।

वासमीकि भले ही बाकू रहे हों किन्तु वह सुगौठक चमकनेवाले उस रत्नकी भाँति हैं, जिसके समीप पहुँचना सम्भव है किन्तु जिसकी समता तथा प्रतिबन्धक कला असम्भव है। रामायणकी कथा उन इतान्तोंसे भरी है जिसका आज् राजमहलसे लेकर गाँवों और बंगलोंकी ओपरिविषातक एक-सा देखा हुआ है। यद्यपि महाभारतकी भाँति इसमें कथानियोंका तर्ता नहीं दीस पड़ता और इसमें श्रीमद्भागवतीकी भाँति केवल तत्त्वपूर्ण अर्थ भी नहीं है तथापि महाकाव्यकी दृष्टिसे यह सर्वदाके लिये गरुडचक्र और आदिकाव्य है। यद्यपि रामायणको श्रीमद्भागवतीने नहीं जिला और न महर्षि व्यासकी विद्वत् बुद्धिसे इतना प्रकार हुआ तथापि इस धामने किन्तु ही बंध कार्यों की कले कार्योंके किन्तु रामायण अर्थों-की-र्यों ही अचलित रहती।



वृत्तियों गुरही हुई करती हैं सुन्दर हास ।  
 उनमें होता है विशद स्वर्ण-माल-विकास ॥  
 किन सु-शब्दोंमें करें उस कान्यका गुण-गान ।  
 उन महाकविका करें किस मूर्ति हंम सम्मान ॥ ११९ ॥  
 शुद्ध सम्यग्ज्ञानमय वे सूर्य से निर्धार ।  
 दिव्य कन्तश्चरणमें था प्रेम-वारी अपार ॥  
 हस्तगत ब्रह्माण्ड हृदिगत ब्रह्म था साकार ।  
 रौन पा सकता है उनके विमल यशका पार ॥ १२० ॥

महाकवि मुनिराज ये, ये भकराज महान् ।  
 सदय परठपकाररत गतमान वे विद्वान् ॥  
 कलि-उदयमें विकल भारत-पेतेके आधार ।  
 हरि-अनुग्रह-विग्रही परमार्थके अवतार ॥ १२१ ॥  
 रम्य रामचरित्रमानस रचित कर अमिराम ।  
 स्वामि तुलसीदासजीने कर दिया वह काम ॥  
 सकल विषये जो हमारा होगया दिल-हेतु ।  
 साकेतका सोपान त्यों संसार-सागर-सेतु ॥ १२२ ॥

शास्त्रके पद बन्दि निरैकविकोपद 'विन्दु' उमादि षट् ।  
 शब्द 'भक्त' अर्थ अलंकृत त्यों रस-रीति निनाहि रहै ॥  
 भूत प्रभूत मये होदहै अत्रहूँ सरि बागवगादि अहै ।  
 केते कवी कविताहि कहै तुलसीसौं तुलै कवि ताहि कहै ॥

—'मोविन्दु' ब्रजवारी

## रामायणके कुल राजनीतिक सिद्धान्त और शासन-संस्थाएँ

( लेखक—श्रीयुक्त बी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम०ए० )



चीन हिन्दूशासनके भाषों और शासन-संस्थाओंके पुनर्निर्माणके लिये महाकाव्य महाभारतके समान रामायण भी ज्ञातम्य विषयोंकी एक खान है । यद्यपि इस दृष्टिसे रामायणका अध्ययन स्वतन्त्ररूपसे किया जाना आवश्यक था तथापि संघर्षक इस विषयमें, हृष्य-उषर कुछ भाषोंके और संस्थाओंके साधारण संकेत किये जानेके इतिहास, चिनीने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया । प्रोफेसर जैकोबी तथा प्रो० एम० डेवी-सदर प्रसिद्ध विद्वानोंने रामायणपर जो इतन निरूपण किये हैं, जिनका उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक होगा । जैकोबी महाशयका Das Ramayana (Bon-1893) और डेवी महाशयका Pour L'histoire du Ramayana (Journal Asiatique, 1918) इन दोनों विषयोंमें भी रामायणका चीन राजनीतिक तथा शासन-संस्थाओंके विषयमें कुछ भी प्रकाश नहीं लाया गया है । जैकोबी महाशयको पुस्तक-प्रत्ययन करते समय जो कुछ सामग्री मिश्र लकी, उससे उन्होंने बर्तमान समयका विषयन बाह्य निर्दिष्ट किया है । उन्होंने

रामायणका काल अधिक-से-अधिक ईसापूर्व एवं पूर्वार्धकी शताब्दी और कम-से-कम ईसापूर्व एवं दूसरी शताब्दी निर्धारित किया है । प्रो० ए० ए० मैकडोनेल्डकी सामग्रीमें रामायणका मुख्य भाग ईसापूर्व एवं पूर्वार्धकी शताब्दीके पूर्व प्रणीत हो चुका था । 'दशरथजातक' नामक बौद्धग्रन्थमें यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणीय कथाके कुछ भागमें जातकका छेत्ताक परिचित था । वेबरकी यह धारणा कि, इस कथामें यूनानी संस्कृतका प्रभाव है, विस्तृत निर्मूल है । ऐसी दृष्टामें यह कल्पना दुर्लभगत है कि जातकोंकी रचनाके पूर्व भी भारतीय जनता इन महाकाव्यके अधिकार भागोंमें परिचित थी । यह तो सर्वसम्मत है कि रामायणका सङ्गठन भी ईसापूर्व दूसरी शताब्दीके लगभग या उसके पूर्व ही हो चुका था । यदि हम इस धारणाको भी स्वीकार करें तो रामायण ईसापूर्व के बहुत ही पूर्वार्धकी रचना सिद्ध होगी है । अतः हममें इतिहास विद्या प्राचीन हैं इतिहासके वे प्राण तथा विद्याओंके विषये अध्ययन उपयोगी हैं । रामायण धर्म, कर्म और काम इन विषयोंकी प्राप्तिका उद्देश्य है । (बा०ग० १. २. १११-११४) हममें सामाजिक पद्धति बर्तमानधर्मके अनुसार स्वीकृत की गयी है । इन पद्धतिका स्तर स्वधर्म पर गिर रहा है और



यही सभी प्राचीन प्रगथोंका प्रधान विषय रहा है। स्वधर्मका प्रतिपाद है कि प्रत्येक पुरुष-की अपने कर्णम्यका पालन करें। यद्यपि महाभारतमें राजधर्मको सब धर्मोंमें श्रेष्ठ बतलाया है, किन्तु रामायण इसपर जतना जोर नहीं देती। यह धर्म और अधर्मका भेद निश्चित करती है—

स्वयं श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

राजधर्म अहं अपने अधर्म धर्मसंदिग्धम्  
(वा० रा० २।१०९।२०)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणके प्रयोजन राजधर्मके भौतिक सिद्धान्तको माननेके लिये तैयार है, पर वे इसीको प्रधान धर्मके रूपमें नहीं मानते। रामायणमें राजधर्म यही बतलाया गया है जिसका राजर्षि लोग पालन करते हैं। इस दृष्टिसे रामायणमें एक महान् नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी सिद्धान्त निहित है।

रामायणमें वर्णित राजनीतिक परिस्थितियोंसे यह स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि उस समय वस्तुतः सम्पूर्ण भारत अयोध्या-सम्राट्के अधिपत्यमें था। श्रीरामचन्द्रजीकी गति दृष्टिमें कन्याकुमारीतक निर्वासन थी। दूसरे राज्योंके शासक और सामन्तगण या तो हृषवाकुवंशीय राजाके सहकारी थे या उनके अधीनस्थ थे। दण्डकारण्यमें वहाँ कहीं रामचन्द्रजी गये, वहाँ उनका स्वागत किया गया। उनका आतिथ्य करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मधारी महारथः ।

पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥

पुनः जब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे मैत्री करके उसके भाई वालिका वध किया, और जब वालिने उनके कर्मको अन्याययुक्त बतलाया, तब रामचन्द्रजी भद्रसे बोल उठे—

इस्वाहूनां इयं मूमिः सशैलजनकानना ।

(वा० रा० ४।१८।१६)

'किष्किन्ध्याप्रदेश, हृषवाकु साम्राज्यका एक भाग है और उस साम्राज्यके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे मुझे दुराधारियों और अधर्मियोंके नाश करनेके अधिकार प्राप्त है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारतका सारा प्रदेश अयोध्या-सम्राट्के अधीन था।

शासनप्रणालीका स्वरूप एक राजतन्त्र (Monarchy)

। शासनतन्त्रके प्रति प्रजाओं वैश्व-भावनका प्रसार था।

अर्थात् राजा प्रजाको अपनी सन्तान मानकर शासन करता और लोकप्रिय होता था, एवं इसके लिये प्रजा भी 'पूष' राजमत्क होती थी। इतना हेरेन कि राज्यप्रणाली निरङ्कुश नहीं थी, यह नियन्त्रित राजतन्त्रक प्रणाली थी। नियन्त्रण 'मन्त्रिपरिषद्'के द्वारा होता था जिसका प्रधान सदस्य पुरोहित होता था। साथ ही 'पौर' और 'जानपद' आदि अन्यान्य समितिवाँ भी होते थे। इन सबसे बढकर कुछ ऐसे बौद्धिक विद्वान थे, जिन्हें सत्कार करना राजाका धर्म समझा जाता था।

राजकीय राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार विद्वान् किये जानेपर राजाको अराजकता (Anarchy) और क्रान्ति (Revolution) का सामना करना पड़ता था। 'पौर' और 'जानपद' सभ्य कुछ अर्द्धराजनीतिक संस्कारों की रीति, जिनके प्रतिनिधि देशके शासनमें मुख्य भाग लेते थे (वा० रा० २।१२०।१६) श्रीरामचन्द्रजीके युवराजपदकी शोभाके समय ये सब प्रतिनिधि उपस्थित थे। राजा इतने देहावसानके उपरान्त जब भरतजी रामचन्द्रजीसे उसके प्रतिशर पुनर्विचार करानेके लिये अर्थात् उन्हें बौद्धिक शक्ति लिये प्रार्थना करने चित्रकूट गये थे, उस समय भी उपस्थित थे (वा० रा० २।८३।१२, ८३।१३)। राजा की शक्त के अनन्तर पुरोहित महर्षि बरिष्ठीयों के भरतको राजधानीमें शीघ्र बुलानेके लिये दूत भेजे थे। रामायणमें आदिसे अनन्तरक पुरोहितका स्थान ही मान्य है और वह कौटिल्यके इस कथनको स्पष्ट प्रमाणित करता है कि जो राज्य एक योग्य पुरोहितके अनुभवता में होता है वह सदा उन्नत होता है, उसकी कमी बरती नहीं होती। युवराजनिर्वाचनके प्रश्नपर विचार किए जाने वाले लोगोंमें 'पौर' और 'जानपद'के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। (वा० रा० २।२।१६-२०) इस प्रकार इन संस्कारोंके महत्त्वके अधिकार प्राप्त थे और वे राजनीतिक कार्य निष्पन्न करती थीं।

एक राजतन्त्र-शासन प्रायः वैश्व-भावनके स्वर्ण है। बहुधा पुत्र ही पिताका उत्तराधिकारी होता था। किन्तुकेवल में राजकुमारको युवराजकी पदवी दी जाती थी। (वा० रा० २।३।१६) राजकुमारोंको प्रांतीय शासक (Provincial Governors) बनाकर भेजनेकी प्रथा थी। जहाँ दो पुत्र उत्तराधिकारी और पुष्पखावतीके शासक बनते थे दो शत्रुओंके दो पुत्र मयुरा और विदिराके शासक बने थे दो

ब्रह्मण्यके दोनों पुत्रोंको उत्तर और दक्षिण कोसल पर शासनका अधिकार प्राप्त था (वा० रा० ७।१०।११; १०।११-११; १०।११; १०।११)। यहाँ हमें प्रान्तीय शासनप्रणालीका ज्ञान मिलता है, प्रान्तीय शासनप्रणालीका हेतु यही था कि श्रीरामचन्द्रजीका साम्राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था।

त्रिपुर-राजाओंद्वारा किये जानेवाले राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञोंका कृतान्त भी रामायणमें है। राजा अश्वमेधने पुत्रलामके लिये और रामचन्द्रजीने विरव-विजयके लिये अश्वमेधका अनुष्ठान किया था (वा० रा० ७।२४।२)। रामायणमें प्रसिद्ध सर्वप्रिय 'कच्चिद् सर्ग' के अन्वयनसे हमें रामचन्द्रजीन प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तोंका पता लगता है (वा० रा० २।१००)। दो श्लोकोंमें भाव और व्ययके बदलाने के सम्बन्धमें उल्लेख मिलता है। व्ययकी सूचीमें अग्नि, संस्कार, ब्राह्मण्य, योग्य अतिथि, योद्धा तथा अग्नि-सम्बन्धी व्ययका समावेश पाया जाता है।

रामायणमें सैनिक संगठन और शासन-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। उस समय एक विशेष रथमन्त्री (War Minister) होता था जिसका काम अपने और युद्धके बलाबलका ज्ञान रखना तथा तदनुसार राजाको सलाह प्रदान करना होता था (१।१४।२२)। रथ-परिषदें (War Councils) भी होती थीं जो युद्ध छिड़नेके पूर्व

जुलायी जाती थीं, जिनमें कार्यक्रम बनाये जाते थे। रावणने जब सुना कि रामचन्द्रजी समुद्र पार कर लड्डा आ गये हैं तब उसने अपने 'रथ-परिषद्'की सभा बुलायी थी। राजदूतोंका संघ (Institution of Ambassadors) सैनिक नीतिका एक प्रधान अंग था। धर्मशास्त्रका विधान हन सबसे प्रधान दीखता है। रावणसे कहा जाता है कि दूतका षण नहीं किया जा सकता, इस बातसे पता लगता है कि सदाचार ही सब कार्योंका आधार था (वा० रा० १।०२।१२-१२)। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंकी चतुरंगिणी सेना होती थी। सैन्य-सम्बन्धन तथा शिविरस्थापन वैज्ञानिक ढंगसे होते थे। यहाँ रथ, शस्त्रोंके प्रयोग तथा रथ-नीतिके विषयमें विचार नहीं करना है। एक उल्लेखनीय बात यह होती थी कि शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके बाद उसीको बर्दाके सिंहासनपर करव राजाके रूपमें प्रतिष्ठित कर देते थे। और यदि शत्रु-राजा युद्धमें मारा जाता तो उसी प्रकार उसके वधार्थ उत्तराधिकारीको सिंहासनारूढ़ किया जाता था। उदाहरणार्थ लड्डाविजयके पश्चात् विभीषणको राजतिलक दिया गया था। रामायणमें राजनीतिक संस्थाओंका जो वर्णन मिलता है, उसका यह संक्षिप्त सार है। धारा है कि कोई विद्वान् सज्जन रामायणका विशेष और विस्तृत अध्ययनकर तत्रत उपयोगी सामग्रियोंको प्रकाशमें खानेका प्रयत्न करेंगे।

## सुबेल पहाड़पर श्रीरामजीकी भाँकी

सैल संग एक सुन्दर देली।  
जति उतंग सम सुभ्र वितेखी ॥  
तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये।  
लखिमन रवि निज हाय हसाये ॥  
तापर रुचिर मुडुल मुगछाला।  
तेहि आसन आसीन हूपाला ॥  
प्रभु हत सति कर्पास उछंगा।  
धाम दहिन दिसि चाप-निपंगा ॥

दुहँ कर कमल सुधारत धाना।  
कहँ लंकेस मंत्र लागि काना ॥  
षडभागी अंगद हनुमाना।  
धरन-कमल चाँपत विपि नाना ॥  
प्रभु पाछे लखिमन धीरासन।  
कटि निपंग कर धान सरासन ॥  
एहिविधि कलनासील गुनधाम राम आसीन।  
ते नर धन्य जे प्यान एहि, रहत सदा सबलीन ॥

# यूरोपके सामान्य पाठकोंके लिये रामायणका स्वरूप ।

(लेखक—मीरुा एन० जी० दा० टर्नटन, एम० ए०, बेरिन, इन्डिया)



इ कहा जा सकता है कि इन अग्रान्त, अग्रहार-प्रधान युगमें, जहाँ उच्च शिक्षाके लिये ग्रीकका अध्ययन भी अपरिहार्य नहीं समझा जाता, जहाँ रामायणको—सो भी अनुवादके रूपमें—पढ़नेके लिये कोई अग्रसर है ? जहाँ आज बहुत थोड़े-से ग्रीक छात्र इजिप्ट और थोडिसेका अध्ययन करते हैं वहाँ संस्कृतके पवित्रतों तथा पौराणिक पाठकोंके अतिरिक्त रामायण पढ़नेका सचा शौक किसे होगा ?

उपयुक्त धारणा उठायी जा सकती है परन्तु वस्तु-स्थितिपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि भारतके प्राचीन महाकाव्यकी कथाओंके अध्ययनके लिये यूरोपमें कुछ सार्व-जनिक रुचि वर्तमान है। यद्यपि इंग्लैण्डमें ग्रीकिय और दत्त महाशयके धारमीकि-रामायणके तथा ग्रीस महाशयकृत तुलसीकृत रामायणके अनुवादको बहुत कम लोग देखते हैं, किन्तु बहुत-सी दूसरी ऐसी पुस्तकें हैं जो कुछ-न-कुछ सार्वजनिक रुचिके अनुकूल हैं और जिनके द्वारा श्रीराम-सीताके आख्यानसे अधिकांश पाठक परिचित हो गये हैं और कुछ लोगोंने कथागर्भित भावों और आदर्शोंका भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। उन ग्रन्थोंमेंसे उदाहरणके लिये हम भगिनी निवेदिता और ए० के० कुमार स्वामीकृत 'मीथ्स आफ दी हिन्दूज़ ऐण्ड बुद्धिस्ट्स' (Myths of the Hindus and Buddhists) का उल्लेख करेंगे जिसको अबनीन्द्रनाथ ठाकुरने बहुत ही मनोहर चित्रोंसे सुसोभित कर दिया है।

यद्यपि एक यूरोपियनसे उस नैसर्गिक और सरल अदानुक्त दृष्टिसे रामायणको देखनेकी आशा नहीं की जा सकती, जिससे उसे एक हिन्दू देखता है। दूसरे शब्दोंमें इसीको यों कह सकते हैं—जैसे हिन्दू बाइबलकी कहानियोंको पाठवमें उस दृष्टिसे भी नहीं देख सकता, जिस दृष्टिसे उन्हें एक स्वतन्त्र विचारका यूरोपियन देखता है, वैसे ही यूरोपियन लोगोंके भाव रामायणके प्रति हो सकते हैं। तथापि समझदार यूरोपियन रामायणीय कथाको अत्यन्त आदरसे देखेंगे, क्योंकि महाभारतकी भाँति यह भी

तो भावोंके उसी शौर्यप्रधान युगका आनाप है, कि युगमें यूरोपमें इजिप्ट और थोडिसेकी छवि हुई तो मानव-मस्तिष्क अथ भी अर्थव्य और अविन्य अविन्य ग्रन्थोंका अध्ययन कर सकता है, परन्तु आरिस्तोकी सधमपकारी रचनाओंकी समानता हमने नहीं हो सकती। अतएव जो मनुष्य 'विश्व-संस्कृति या संसारकी सर्व-भावनाओं और क्रियाओंको सम्यक् प्रकारमें जानना चाहता है, उसे रामायणसे परिचय अग्रतर प्राप्त करना होगा।

रामायणका अध्ययन कभी निष्फल नहीं होगा। इसके पढ़नेवाले उसमें आजकलके दैनिक कार्य-गुञ्जलमें अत्यन्त पुराणोंके मन्त्रिकसे जहाँ अधिक स्वतन्त्र और अनिश्चित रूपसे प्रवाहित आधुनिकी कल्पनाओंको पावेंगे तो साथ ही उन महान् एवं निरद्वन्द्व शौर्यपूर्ण कथोंके देखेंगे जो केवल अर्ध-भाव-युक्त जगत्में ही सम्भव हैं। इस धारणामें निस्सन्देह, श्रीराम और सीताका चरित सुदृश्य है और केवल उनको जाननेके लिये ही रामायणका अन्वय उपादेय हो जाता है।

किन्तु हमारे सामान्य पाठक इससे अन्वय विधि रुचिकर वस्तु भी प्राप्त कर सकते हैं। तुलनात्मक साहित्यके विद्यार्थी, जो होमरसे अभिज्ञ हैं, रामायण पढ़ते वरत उसकी तुलना होमरके इजिप्टके साथ करेंगे और उन्हें प्रतिपाद्य विषय तथा काव्यरचनाकी समीक्षा करेंगे। तब तो वे इस भारतीय महाकाव्यके आकार-प्रकारको तब संभवतः अचित हो जायेंगे, क्योंकि ऐसी प्रचुर साहित्यिक दृष्टव्य ग्रन्थ यूरोपकी अपेक्षा भारतमें ही अधिक पाये जाते हैं। फिर वे रामायणके उन रचना, काव्य कथाश्रोत-सम्बन्धी अनेक मनोरम प्रसंगोंका वर्णन तब जिनकी तुलना उस सरस प्रभावशीलते की जा सकती है। 'Homeric Problem' के नामसे प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त जातीय मनोविज्ञानके विचारार्थ ग्रीक और भारतके इन महाकाव्योंमें चित्रित कालक्रम विभिन्न स्वरूपोंकी तुलनामें क्या रस मिलेगा। इसे अनुभव होगा कि इन दोनोंमें यदि एक समकालिकताकी सम्भावना प्रभावित है तो दूसरा अत्यन्तमहत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

भारी प्रकृति समृद्ध और चपल है। धरतय ही इस वर्णन-  
 मायुरांका ड्रुम भाग उसे अतिशयोक्ति या अत्युक्तिके रूपमें  
 कामासित होगा क्योंकि उसकी रुधि प्राचीन ग्रीक मर्यादा-  
 व्यवस्थित यूरोपीय धनधुतिके द्वारा निर्मित हुई है। किन्तु  
 रामायणमें कनका-समुद्रि और सरसता पाठकोंको चकित कर  
 देगी क्योंकि यूरोपके उच्चतम साहित्यमें इसकी उपात्ता उसे  
 प्राप्त नहीं हो सकती। यह अपने प्राथमिक और प्रतिदिनके  
 जीवनसे होमरकी कथा-मूमिको जितना दूर पाता है उससे  
 भी अधिक दूर यह चैत्र, उन्हें दोख पड़ेगा, जिसमें

रामायणकी कथा प्रवाहित होती है। किन्तु इस दृश्यामें भी  
 उसे विशिष्ट चित्रण प्राप्त होगा।

अब हम सदाब ही इस निष्कर्षपर पहुँच सकते हैं कि  
 सहानुभूति तथा आन्तर्दृष्टिसे अध्ययन करनेवाले समकक्षर  
 यूरोपियन पाठकके लिये, चाहे वह हिन्दी या संस्कृत न भी  
 जानता हो, रामायणमें नैतिक और बौद्धिक दोनों प्रकारकी  
 सरस और बहुमूल्य सामग्री है। हजारों वर्ष पूर्व रचित  
 किसी विशिष्ट साहित्यके विषयमें और क्या कहा जा  
 सकता है ?

## महाकाव्योंमें राक्षस

( लेखक-मीरुत एस० एन० तारुणीकर एम० ए०, प्राध्यापिकाज्जहार )



कथकाइसे ही हमारे हृदयमें राक्षसका  
 एक भयानक चित्र लिखा हुआ है—  
 विशाल शरीर, अश्रिके सदृश बड़ी-बड़ी  
 आँखें, भयानक दाँते, तथा ऐसे ही  
 दूसरे भय-उत्पन्न करनेवाले उपादानसे  
 मुक्त एक प्राणी मानो मनुष्यको खाने-  
 के लिये ही खपक रहा है। रामायण  
 तथा महाभारत दोनों महाकाव्योंमें राक्षसोंके उदाहरण  
 मिलते हैं। वेद परी है कि रामायणमें राक्षसोंके आवास और  
 प्राणित प्रदेश मिलते हैं किन्तु महाभारतमें कहीं कहीं  
 समझरस राक्षसोंका उल्लेख का जाता है।

रामायणमें सबसे पहले हमें राक्षसका वर्णन मिलता  
 है, जो एक बड़की कन्या थी और मुन्द्रमे बराही गयी थी,  
 मारीच उगका पुत्र था। ताक्षक, मारीच, मुखाडू और हृषी  
 चक्रके अन्य राक्षसोंको भगवान् रामचन्द्रजी अपने बायोंमे  
 कार राखते हैं। वहीं हमें राक्षसोंकी भाषाका वर्णन  
 मिलता है। हमारे किन्तु साहित्यमें राक्षसोंकी उस भाषा-  
 विविधता उल्लेख है जिसके द्वारा वे मुन्द्र-से-मुन्द्र तथा  
 विष्णु-से-विष्णु मानवरूप, एवं अन्य प्राणियोंके रूप भी  
 लब्ध कर सकते थे, और इनमें स्वेच्छानुसार धरतय होनेकी  
 शक्ति थी थी। एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे  
 स्वानुसारके बड़े शिरोधी थे और अज्ञानियोंको कष्ट दे  
 कर और कर्त्तवी बरतकर अवशित और भ्रष्ट कर देते थे।

आगे चक्रकर धरतयकायडमें भी इन सख-जनोंका  
 उल्लेख है। शूद्रपारी विराध राक्षस, जिसने दोनों भाइयोंको,  
 राम-जन्मका जोर भाग जानेकी चेष्टा की थी, मारा  
 जाता है। उसके दोनों हाथ तखवारसे काट लिये जाते हैं  
 और वह एक गर्भमें गाड़ दिया जाता है। उसके विषयमें  
 यह वर्णन मिलता है कि यह मनुष्य-भण्डी या और सिंह,  
 बाघ, भेड़िया तथा हरियोंका शिकारकर उन्हें अपने शूद्रमें  
 टंग लेता था।

इसके बाद पञ्चरतीके धामधममें शूर्पणखाका कथाकथा  
 मिलता है जहाँ भीरामचन्द्रजी राक्षस हर, उसके सेवारति  
 दूषण तथा राक्षसोंकी बौद्ध सद्वर्ती शक्ति-शक्तिनी सेवाका  
 नाशकर विषय प्राप्त करते हैं। वह सेवा सब प्रकारके  
 अघोंसे सुसज्जित थी। खरका रथ शूर्पणके मुख्य आभूषण  
 था और उसमें नागा प्रभारके घनुन, बाघ, तखवार तथा  
 शक्तिवी वर्तमान थीं। वहीं एक ही परचरर बहुन-से विविध  
 शब्दाओंका वर्णन है। पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये निम्न  
 शब्दोंका उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है।

- मुनीः परिपिः दूः मुनीरैरुच परदरैः।
- रुद्रेभके रथयेभ आरुमनेः ततोः ॥
- नकिभिः र्दिरैरैरिभौषेक वन्दुः ॥
- दरमिनुनैः र्दिरैः (देवैः) ॥

अपार्ण सुत्र, पट्टि, तीक्ष्ण शूल, बरणी, लज्जवार, चक्र, धमकीले तोमर शपर रखे थे। शक्ति, भयानक परिध, धनेक धनुष, गदा, मूषक और बर्षाको जो देखनेमें भयानक थे, राक्षस जिये हुए थे।

उरको प्राणमहींमें अपराङ्गुन होने लगे किन्तु उसने उनकी उपेक्षा की और रथाङ्गयमें पहुँचकर अपनी समस्त सेनाके साथ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर आक्रमण कर दिया। पक्षि भगवान् अवेले ही लड़ रहे थे, तथापि अन्तमें उन्होंने उसकी सारी महती सेनाको मारकर विजय प्राप्त की।

उपर्युक्त वर्णनसे कीर्ति ऐसी पात नहीं जात होती जिसके द्वारा यह अनुमान किया जा सके कि राक्षसजोग युद्धकालमें किसी प्रकार पिघड़े हुए थे और सम्पूर्ण रामायण पढ़नेपर ही हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं। पानरोंके उस प्रदेशको छोड़कर जिनमें हमें क्रमशः (आधुनिक धारणाके अनुसार) किसी प्रकारकी सम्पत्ताका विकास नहीं मिलता, हमें आगे चलकर फिर राक्षसोंके महान् प्रदेश और उनके नित्यके कर्मोंका परिचय मिलता है। राजधानी जंकाकी स्थिति तथा उसके चारों ओरकी किलेबन्दीको देख हमें आश्चर्यसे शक्ति हो जाना पड़ता है। पश्चात् जब श्रीहनुमानजी मनोहर चन्द्र-ज्योत्स्नासे पूर्ण लज्जामें प्रवेश करते हैं और प्रसुप्त लङ्का-नगरीको देखते हैं, उस समयका जैसा वर्णन है वैसे उस समयके किसी भी अत्यन्त सम्य नगरके जिये सकत हो सकता है। और फिर हमें वहाँ सभी भोग-विजासकी सामग्रियोंसे पूर्ण सुप्त अन्तःपुरका वर्णन मिलता है। युद्धकायडके अध्ययन करनेसे राक्षसोंकी बुद्धिकी प्रखरताका परिचय मिलता है; वे 'युद्ध-परिपद्'में वाद-विवादके पश्चात् युद्ध-विषयक प्रश्नोंका निर्णयकर व्यूह-रचना करके युद्ध करते थे। अन्ततः हमें यह सोचकर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि ऐसी सर्वतोभावेन उन्नत जाति वानरोंके शिखा और शृण्णोंके आक्रमणसे कैसे पराजित हुईं ?

महाभारतकी ओर देखनेसे हमें ज्ञात होता है कि राक्षसजोग उस समय प्राणिक शासनसे शक्ति हो गये थे और संश्रुत होकर धन-धन जीवन व्यतीत करते थे। दिग्भ्य सया क्रिमिर जङ्गलोंमें रहते थे। केवल बकासुरके अधीन ही एक समस्त नगर था। प्रायः इन सभी राक्षसोंको भीमने अपने पराक्रमसे मार डाला था। इसप्रकार यह विदित होता है कि महाभारतकालके राक्षसोंमें

रामायणकालीन राक्षसोंकी सम्पत्ताका ह्रास हो चुका था; उनकी जाति-अपमान हो चुकी थी, दुष्ट बने थे, वे सब प्रकारकी विचित्रोंसे श्राव करनेसे सचन बनमें जिये रहते थे।

जब हम इसी बातको सामने रखकर वेद तथा साहित्यकी ओर देखते हैं तो हमें राक्षसोंकी दशा नहीं मिलती, वहाँ उन्हें पौराणिक प्राणी माना है। यहाँ शत्रु समझा गया है और मायाद्वारा विभिन्न धारण करनेकी उनकी शक्ति भी स्वीकार की गई। अनुप्य उन राक्षसोंसे युद्ध करनेकी समता नहीं। क्योंकि वे पार्थिव शरीरमें आते ही नहीं हैं। अन्ततः हमें राक्षसोंके उपद्रव तथा उनके शमनके लिये देवता आवाहनका उल्लेख मिलता है। क्रमशः उन्हें एक भाग भी मिलने लगा, और इसीके अनुसार संहितामें (३-१४, १४, २१) निम्नलिखित और एक सम्मानार्थं दुष्ट यज्ञोंके विधान मिलते हैं। तदनन्तर यज्ञोंमें भी प्राचीन वैदिक प्रमाणका अनुसरण किया है और गृहस्थोंको इन प्रतिद्वन्द्व शक्तियों (Host influences) (राक्षसों) के शमनके लिये मति-मति शिखा दी गयी है।

श्रीमद्भगवद्गीताने, जो महाभारतका एक भाग राक्षसोंकी उपासनाका राजस्वरूप माना है, रामायणमें (३।३०।१२) भी रामचन्द्रजी कहते हैं। मुनिवोंने भी खर राक्षससे डरकर उसके सम्मानार्थं यज्ञ किया था।

उपर्युक्त विवेचनका सारांश यह है कि रामायणकालके राक्षसजोग पूर्ण समुन्नत थे और यज्ञमें सम्मानपूर्ण रूप प्राप्त करनेके लिये उन्होंने पुरोहितोंको भीषा रित्ताया था अन्ततः पृथ्वीसे इस जातिके उठ जानेके बाद रामायणकालमें इन दुष्टोंका यज्ञ तत्र उल्लेख मिलता है। वैदिक साहित्य राक्षसोंकी यथायथ सत्ताके विषयमें कुछ नहीं कहता वहाँ केवल पौराणिक प्राणी मानता है।

किन्तु यदि यह सिद्धान्त स्वीकृत किया जाय तो वेदों और महाकाव्योंके सापेक्ष कालगणनाके प्रयत्न में पुनः विचार करना पड़ेगा। यहाँपर केवल प्राच्य-विचारदोंकी गवेषणाके निमित्त यह विषय प्रस्तुत किया गया है।

# आदर्श पुरुष श्रीराम

(लेखक-श्री भार्गो जी० रस० तारापुरवाला बी०ए०, पी०एच० डी०, वार-४८-का)



मायकमें मुझे सबसे अधिक प्रभावोत्पादक श्रीरामजीका तत्त्वपूर्ण मनुष्यत्व मालूम होता है। यद्यपि उन्हें कबोको मनुष्य मानवरूपमें श्रवतरित साक्षात् भगवान् मानते हैं तथापि मनुष्यरूपमें वे जैसे प्रतिभासित हुए हैं वैसे ईश्वररूपमें नहीं।

किन्तु धारमीकिके राम पूर्ण मानव हैं। सम्पूर्ण विद्यासमें हम उन्हें कहीं भी मनुष्येतर रूपमें नहीं देखते। यही रहस्य है कि वे हिन्दू-बहिन्दू सभीके हृदयोंको आकर्षित करते हैं। हम शिशुरूपमें, बालकरूपमें, प्रेमी-रूपमें, वीररूपमें, और प्रजाका शासन करते हुए भरपति-रूपमें—प्रत्येक दशामें उनकी उज्ज्वल आदर्श मानवताकी सामान्यता ज्योति देख पाते हैं। वे प्रत्येक चरणमें आदर्श हैं किन्तु वे सभी अगह हमी जोगोंमेंसे एक। हम जितने ऊँचे आदर्श मनुष्यकी कल्पना कर सकते हैं उन्हें वैसे ही पाते हैं। सम्पूर्ण कथामें हमें वे कहीं भी देवता या ईश्वरके रूपमें नहीं देखते और कहीं भी वे अपने साथी वीरोंसे प्रयुक्त नहीं होते। वे मनुष्योंमें एक मनुष्य हैं और मनुष्यकी तरह ही काम करते हैं, सोचते हैं और अनुभव करते हैं।

उत्तर ही उनका कर्मजोत हमजोगोंके कर्मजोतसे सर्वथा प्रयुक्त है, पर दोनोंके कर्म हैं एक ही प्रकारके। उनके भाव हैं वैसे ही, उनके शब्द प्रेमपूर्ण हैं, उनके कर्म किसी भी मनुष्यसे अधिक त्यागमय हैं। पर जीवनभर वे इसी अत्यन्त सत्य रहते हैं, जिससे हमें अनुभव होता है कि वे हमारे ही निज-जन थे। और हम भी चाहें तो वहीके समान अनुभव कर सकते हैं, बोध सकते हैं और कर्म कर सकते हैं।

यह एक प्रेमी मनुष्यकी भाँति प्रेम करते हैं और जिताओंके सामने अपने हृदयके अत्यन्त गम्भीर भावोंको प्रकट कर रहा देते हैं। यह युगल-जोड़ी हमारे जिये आदर्श

है। इसप्रकार नितान्त मनुष्य होते हुए वे यथार्थ सार्प और हिन्दू हैं। यद्यपि भवभूतिने उत्तररामचरितमें इन दोनोंके आदर्श मनुष्यत्वका गुण-गान बड़ी सद्बद्धताके साथ किया है परन्तु वह क्या निःसन्देह धारमीकिके ही ली गयी है। धारमीकिक या तुलसीदासकी रामायणमें हमें जैसी मनोहर प्रेम-कथा पढ़नेको मिलती है वैसे संसारमें कहीं नहीं मिलती। इनमें भावोंका चमत्कारिक उद्गम, कफराता तथा नाटकीय बाह्य चमक-दमक नहीं है। यहाँ हम प्रेमके प्रवादको बहुत ही विस्तृत और गम्भीर देखते हैं। वह इतना गम्भीर है कि धरातलपर कहीं उसका एक तरंग-विषेप भी दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रणयकी हमारी यह प्राचीन विधि हमें सिखाती है कि यद्यपि प्रेम प्रथम दर्शनसे ही उत्पन्न होता है तथापि विवाह हो जानेके बाद भी अनुरजनका अभाव नहीं हो जाता। वस्तुतः यह यहीसे आरम्भ होता है। श्रीसीता-रामकी कथामें हमें दाम्पत्य-प्रेमका बड़ा ही उन्नत प्रकार देख पड़ता है। और क्यों-क्यों समय भीतरते है स्वयं-स्वयं यह अलौकिक प्रेमभाव गम्भीरतर होता जाता है। हम इन दोनोंमें सर्वत्र ही पारस्परिक समादरका भाव पाते हैं और वह केवल बाह्य प्रदर्शन नहीं! उनका प्रेम इतना गम्भीर और पवित्र है कि सार्वजनिक प्रदर्शनमें वह कभी भाही नहीं सकता, इसीजिये वह समस्त 'नारी-जातिका सर्वस्व' हो रहा है और उसमें उनके जीवनका अधिकांश भाग खोत-प्रोत है।

हम वर्तमान युगके जीव आश्चर्यान्वित होकर कहते हैं कि इसप्रकारके महात् प्रेमका अन्त ऐसा शोकार्णवसायी नहीं होना चाहिये था। भीतली शताब्दीकी सृष्टि-दृष्टिके कारण ही हम श्रीरामको सीताके वनवास या अग्नि-परीक्षाके जिये दोषी ठहराते हैं। यदि श्रीराम राजा न होते और अपनी प्रजाको सन्तानवत् न समझते तो उनकी प्रेम-कथा दूसरे ही प्रकारसे लिखी जाती। सीताका जीवन तो केवल प्रेमके जिये ही था, उनके जीवन-धारणमें अन्य कोई हेतु ही नहीं था, परन्तु श्रीरामको दूसरे भी कर्म करते थे, उन्हें केवल सीताकी ही नहीं सारी प्रजाकी चिन्ता थी। शासक और राजा होनेके कारण वह दुष्प्र-से-दुष्प्र-अपवादसे भी कचना चाहते थे। यद्यपि उनका हृदय-



मुकुल और दो हाथवाले रावणका वर्णन प्रायः सर्वत्र है। (दूमादजी जब रावणके शत्रुभयनमें रात्रिके समय क्षिप्रकर हुँके, तब उन्होंने उसे सोया हुआ पाया। उसके दोनों हाथोंमें सोनेके भ्राम्णपथ थे। दोनों कंधोंपर हनुके अश्वत्थके चिह्न थे। पाँच कर्णोंके सर्पोंकी तरह उसके दोनों हाथ शुभ बिक्रीनेपर पड़े थे, इत्यादि, (२११०११२-१३)। हनी तरह, गधपर बैठे हुए रावणपर सुभीचने जब आक्रमण किया, तब 'रावण उठा और उसने अपने दोनों हाथोंसे उसे उठाकर पृथ्वीपर दे मारा। फिर सुभीचने भी उसी तरह उठकर रावणको दोनों हाथोंसे उठाकर मरवा दिया (११४०१३३)। रावणके मर जानेपर शोककुल विभीषण उसका वर्णन करता है—'पहूँची भादि भूषणोंसे युक्त गुम्हारे दोनों लग्ने हाथ भूमिपर निक्षेप पड़े हुए हैं।' (१११०१३३) इससे स्पष्ट है कि, रावणके दो ही हाथ थे।

हनुजिह्वाक वध होनेपर रावणके क्रोधका इसप्रकार वर्णन किया गया है—'दृशासुरके मुखसे त्रिसप्रकार अग्नि और पुष्पांवाहर निकलता था, उसी प्रकार लौभाई देते हुए रावणके मुखसे (वक्रान्द्र) खपटें और पुष्पां निकल रहा था। उसकी दोनों लाज झालें (नेत्रे) अधिक लाज हो गयीं और उन झालोंसे (नेत्राभ्याम्) दोपकके जलते हुए तेजकी हौंकी तरह झालू करने लगे, (१। २२। १८-२२)। हनु सीता रावणसे कहती है—

'हे भर्तार्य रावण ! मुझे देखते हुए तेरे ये क्रूर और निष्कार दोनों नेत्र (नयने) क्यों नहीं पृथ्वीपर गिर पड़ते ? तब धर्मोत्तमा (राम) की पत्नी और दशरथकी पुत्रवधुके साथ इसप्रकारकी बातें करते हुए तेरी जिह्वा (एक ही जिह्वा) क्यों नहीं गल जाती ?' (२। २२। १८-२३)। 'सीताकी बातें सुनकर राक्षसाधिपति रावण दोनों झालें (नयने) काकर उसकी घोर देखने लगा। उसके दो हाथ मन्दराचलके दो उच्च शिखरोंकी तरह बीच पड़ते थे। बाल-सूर्यके समान दो सुन्दर कुण्डल उसके कानोंमें थे और पुण्डित दो धयोका त्रिपुण्ड्रकार पर्यंतपर शोभा पाते हैं उसी प्रकार वे

(कुण्डल) सुसोभित हो रहे थे (२। २२। २३-२८)।' रावणको अपसक्तुन जान पड़ने लगे, उस समयके वर्णनमें लिखा है—'उसकी बाईं झाल (एक ही) और बाईं भुजा (एक ही) फड़कने लगी। उसका चेहरा (एक ही) उतर गया और स्वर धीमा हो गया (१। २२। १४६)।'

रावण जब युद्धके लिये उपस्थित होता है तब राम उससे कहते हैं—'तेजस्वी कुण्डलोंसे युक्त तेरा सिर (गिरः) मेरे बाणोंसे उड़ जाय और उस भूलि-धूसरित सिरको रापसगण घसीटकर खे जायें (६। १०३। २०)।' रावणको भयुभ चिह्न बीच पड़ने लगे, उसका वर्णन इसप्रकार है—'रावणका मुख देखकर मुखसे धाग उगलते और भयुभ शब्द करते हुए सियार भाग रहे थे (६। १०६। २८)।' रावणके दंत होनेपर उसकी छियाँ विस्फोट करने लगीं। 'एकको तो उसका शव देखते ही मूर्छा आ गयी। दूसरीने उसका सिर गोदमें उठा लिया। तीसरी कहती है, राजन् ! धापका मुखकमल (एक ही) सुकुमार था, और हनुन्दर थीं, नासिका उत्तम थी, मुखकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी। तेज सूर्यके समान था। दोनों होठ लाल थे और दोनों नेत्र चन्द्रज्वल थे। नाना प्रकारकी मालाधर्मोंसे धापका मुख (वक्त्र) घञ्जुत हो रहा था और उसीसे हँस-हँसकर धाप बातें करते थे। वह मुख इस समय रामके बाणोंसे क्षिप्र-मित्र हो गया है। उसकी वह शोभा नहीं रही। धूल उड़नेसे तो मुख पड़ुत रच हो गया है और उससे मेद-मज्जा बह रही है।' (६। ११०। ६-१०; ६। १११। ३४-३८) इन अवतरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, सोते, लागते, कुंड होते, युद्ध करते और मृत अवस्थामें भी रावणके एक ही मुख, दो झालें, दो कान और दो ही हाथ थे।<sup>१</sup> इसमें सन्देह नहीं कि, वह बड़ा बलवान्, हट-पुट और अश्वन्त काळा था। हनुमान्जीने उसकी मुसावस्थाके वर्णनमें कहा है कि,—'गोरालामें उत्तम गौधर्मोंके बीच बैसै मोटा-जाग साईं सोया हो, बैसै ही धनेक सुन्दरी छियाँके बीच, वह पहा हुआ था' (२। १११। ११)।

● रावणके जन्मसमयके वर्णनमें कहा है कि 'दशमीवः प्रत्योज्यं दशमीवो भविष्यति' अर्थात् दश मल्लकाला होनेसे उसका जन्म दशमीव रक्खा गया। जब शर्णगला अपने भाई रावणके पास गयी है उस समयके वर्णनमें यह स्पष्ट कहा गया है—'रिचहुंके दशमीव दर्शनोपरिच्छदम्।' अर्थात् रावणके बीच भुजा और दश मल्लक थे। इसीप्रकार वाल्मीकीय रामायणके अन्तमें भी रावणके दश मल्लक और बीच हाथ होनेका सुके चर्चामें वर्णन आता है। अन्तमें कितने मुख और हाथ थे, वे अज्ञान् जानें।



रावणकी तरह कुम्भकर्णका भी रामायणमें एकाध स्थानमें विचित्र विकराल वर्णन किया गया है। किरा है—

घनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुद्भूतः ।

रीद्रः शकटचक्रायो महापर्वतसज्जिनः ॥

(१।१५.१७७)

अर्थात् 'कुम्भकर्ण' सौ घनुष चौड़ा और छः सौ घनुष लम्बा था। उसकी धाँसिं गाड़ीके पहियेके समान थीं। यह महापर्वतके सदृश और उग्र था। अतिकाव नामक राक्षसका भी इसी तरहका रूप बताया गया है। उसे देखकर 'सप्त यन्द्र हर गये और यह जानकर कि, यही कुम्भकर्ण' है, आपसमें चिपकने लगे (१।७०।७)। इसी तरह एक बार 'काले पहाड़के समान विभीषणको देखकर और उसे इन्द्रजित जानकर यन्द्र डर गये और भागने लगे थे (१।४१।३२)।'

इस विवेचनसे पता चल सकता है कि, राक्षसोंके सम्बन्धमें लोगोंकी यही धारणा थी कि, वे बड़े विकराल और उग्र होते थे। अब भी वही धारणा है और कवि तथा चित्रकार उनके स्वरूपका इसी भावनाके अनुसार चित्रण करते हैं। परन्तु यात ऐसी नहीं है। राक्षस भी मनुष्योंकी तरह हुआ करते थे। स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने युद्धके समय वातराजको धाँसा दी थी कि,—'कोई धानर मनुष्यके रूपमें युद्ध न करे। अपनी सेनामें केवल मैं, लक्ष्मण, विभीषण और उसके अलग, अलग, हर और सम्पाति नामक चार मन्त्री— जो माजी नामक राक्षसके पुत्र हैं,—ये सात ही मनुष्यरूपमें रहें। इस व्यवस्थासे शात हो सकेगा कि, अपने दलके कौन हैं और शत्रु दलके कौन?' (१।३७।३३-३५, ७।१।४५)

सोती हुई मन्दोदरीका हनुमान्ने वर्णन किया है कि, 'उसका वर्ण गौर था और उसने बहुसंख्ये अलङ्कार धारण कर रखे थे। (५।१०।१) उसे देखकर हनुमान्को सन्देह हुआ कि, ये ही तो सीता माता नहीं हैं (५।१०।२३)।' अन्ततः मन्दोदरी राक्षसी होनेपर भी उसका स्वरूप मानुषी-जैसा ही था। अशोक-वनमें सीताको ढराने जो राक्षसियाँ आयी थीं, उनका क्या भीषण वर्णन है। (कोउ मुखरान विपुल मत्त शोक)। ऐसा वर्णन तो ही, किन्तु यह भी बताया वनमेंसे किसी-किसीके मुख बाघ, भैंस, बकरी, -1, हाथी, बेंद, घोड़ा आदि जानवरों सदृश थे, ५।१२)। आदि (१।२१।१२) अयोध्या

(१।१२।१२-१३) और शूर्पणखा (१।१०।१-११) के विनि तथा मयोपायक वर्णन तो मूल ग्रन्थमें ही देखने योग्य हैं परन्तु ये वर्णन आधिकारिक रस-नियतिकी प्रतिमान हैं।

राक्षसोंके रूपकी उग्र कल्पना लोगोंने बनने की और कृतियोंसे ही कर ली है। रावण (गजना करवाला), कुम्भकर्ण, (जिसके कान घड़ोंके समान हों), विभीषण (अशुभ), त्रिशिरा (तीन मस्तकवाला), हर (गद्दा), हुष (गुस्सा) आदि नाम भयानक हैं। परन्तु नामोंसे ही हर करनेका कारण नहीं है।

विद्यापते यथा मूर्खो जन्मान्बध विनाकरः ।

रक्ष्मीपते दरिद्रश्च त्रयस्ते नाम फारकाः ॥

यह सुभाषित प्रसिद्ध ही है। स्वयं राम सीतासे अपने नामकी व्युत्पत्ति कही है कि—'मैंने राम अर्थ है—शत्रुओंसे हाहाकार करानेवाला। पश्चिमोक्त रावण है, तथापि मुझे पराक्रमी दृशमीव बने (१।४८।२; ५।२३।२)।' राक्षसोंकी कृतियाँ बड़ी भयानक थीं। आदि मनुष्य-भक्ष्य करती थी (१।२१।१७)। बर्तककारणमें तपस्वी ब्राह्मणोंको मार लाता था (१।१८।२)। नरमांस-रावणका आहार था (१।३१।२३), इसीके विनिहरणकर उनका सतीत्व नष्ट करना, रावणने अपने स्वधर्म कहा है (५।२७।५)। तो भी राक्षसोंमें कुछ सीमा भी थी। यह बात मारीच, शूर्पणखा, कम्ब, त्रिशिर, मन्दोदरी आदिके नीति-वचनोंसे स्पष्ट हो जाती है। राम उन्मत्त, हिंसक, अत्याचारी और क्रूरिचारी होते थे, अपने लोगोंने उनके रूपोंकी उग्र कल्पना कर ली है।

राक्षस नर-मांस-भक्षक और हिंस थे सही, किन्तु भी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी। 'रावणकी माता कैकी ही नामक राक्षसकी कन्या थी। उसका विवाह पुत्रस्वयं अर्पिते हुआ था। इसी लोभीसे रावणपति तीव्र दुःख, जो ब्राह्मण थे (७।१।२३)।' हनुमान्ने हनुमान्ने मर्त्याना करते हुए कहा था,—'मूर्खताके दुष्फलें रावण उल्लङ्घन हुआ है (१।२१।१२)।' इससे सिद्ध है कि, राम वर्णव्यवस्था थी, परन्तु वे आसुरी प्रकृतिके होनेसे राक्षस-विधिते आदे जिस जाति या वर्णकी लीने लिप्त होते थे। हनुमान्ने रावणके अन्तःपुरमें राक्षसी ली देखीं, वे रामपि, ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और राजा कन्याएँ थीं (१।१।१८-१९)। अन्ततः राक्षसोंका मनुष्य शरीर-सम्बन्ध भी होता था।



## रामायणके वानर-ऋक्ष



हृषि वाशमीकि रचित रामायणका अध्ययन करने-पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि रामायण-पर्यन्त अध्व-वानर आजकलकेसे पशु बन्दर-रीझ कदापि नहीं थे। वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंके अधिकारी थे। विद्या, बुद्धि, ज्ञान, कला, देवार्थ, सम्पत्ति, राज्य, भोग, बल, चातुर्य, राजनीति

आदि गुणोंमें किसी भी मानव-जातिसे कम नहीं थे। श्रीरामके प्रति भक्त्यर श्रीहनुमान्जीके ये वाक्य विख्यात ही हैं—

देहदृश्यातु दासोऽहं जीवदृश्या त्वदंशकम् ।

वस्तुतस्तु तदेवाहं इति मे निश्चिता मतिः ॥

‘शरीर-दृष्टिसे मैं आपका दास हूँ, जीव-दृष्टिसे आपका अंश हूँ और वास्तवमें मेरे एवं आपके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, यह मेरा निश्चित मत है।’ क्या पशु बन्दर-जातिका कोई प्राणी इसप्रकारके विचार कर सकता है या वाणी बोल सकता है? संक्षिप्तरूपसे वानर-ऋक्ष-जातिके कुछ गुणोंका दिग्दर्शन कराया जाता है—

### विद्या

जब श्रीहनुमान्जी महाराज अध्वयुक्त-पर्वतसे उतरकर तापस-वेपमें भगवान् श्रीरामके समीप आकर अपने अर्थ-गम्भीर मधुर मनोहर शब्दोंसे रामको प्रसन्न कर लेते हैं तब श्रीराम—सर्वविद्यानिष्णात् राम—साक्षात् सच्चिदानन्दधन राम—अपने भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—‘सौमित्रि! तुम सुग्रीवके मन्त्री हनुमान्से स्नेहयुक्त सम्भाषण करो, यह हनुमान् वाक्यके रहस्यको जाननेवाला चतुर और महाबली है। यह शत्रुघ्नोका दमन करनेमें समर्थ है। इसके भाषणसे मालूम होता है इसने वेदोंका पूर्ण अभ्यास किया है क्योंकि ऋक्ष, पशु और सामवेदको न जाननेवाला कोई भी ऐसा उत्तम और स्पष्ट भाषण नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यह व्याकरणका भी पूरा पवित्र प्रतीत होता है, क्योंकि इतने अल्प भाषणमें इसके मुँहसे न तो एक भी अशुद्ध शब्द निकला और न शब्दोंके उच्चारणमें कहीं इसके अक्षरोंमें ही कोई विचार थापा।’ (वा० रा० ४।७) हनुमान्जीका और रावणसे जो बार्तालाप हुआ, उसमें भी उनके वेदज्ञ होनेका पता चलता है। कदा

जाता है श्रीहनुमान्जी संगीत-कलामें भी बड़े निपुण थे। पुरुषोंकी जो बात ही कया, वानर-चिर्या भी पूर्ण विदुषी थीं। बालिके मरनेपर विज्ञाप करती हुई तारा भीरामसे स्मृति-स्मृतिके प्रमाण देकर खीका पतिले अग्नेद्वय सिद्ध करती है। (वा० रा० ३।२४।३७-३८)

### धर्म ज्ञान

प्रायःघातक राम-वाक्यसे मरणासन्न बालिजब श्रीरामके उलाहना देता है, तब श्रीराम धर्म-त्यागके कारण कष्ट औचित्य सिद्ध करते हुए कहते हैं—‘हे बालि! तू अपने निन्दित चरित्रके कारण विपरीतगामी हो गया है। तुने राजधर्मका त्याग कर दिया है, जो पुरुष अपनी पुत्री, बहिन, या छोटे भाईकी खीके साथ कामबन्ध होकर ध्वनित करता है वह बध करने योग्य ही है। मैंने अशाराज्य भारतके धर्मशासनकी नीतिके अनुसार तुम्हें मारकर अशुद्ध ही बना है, अन्यथा तुम्हें अपने पापोंके लिये धर्मशास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता।’ इसके बाद श्रीरामजी मृगयुक्त खोकोका प्रमाण देते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वानर-जातिके लोग धर्मशास्त्रसे परिचित थे-और धर्म-पालनके लिये तप थे, तथा धर्म-विच्छेद कार्य करनेपर दण्डके पात्र समझे जाते थे। पशु-बन्दरोंके लिये श्रीराम कभी ऐसा नहीं कर सकते।

### धार्मिक-संस्कार ।

वानर-जातिमें सभी संस्कार वैदिक विधिके अनुसार होते थे। उदाहरणार्थ बालिकी मृत्युके अनन्तर जग और्ध्ववैदिक संस्कारका विवरण पढ़िये—

सुग्रीव और अंगद एक सुन्दर पालकीपर बालिके शरीर रखकर श्मशानमें ले जाते हैं, शवपर खोंकी बर्तों को न रद्दी है, नदीके तीरपर शिविका उतारी जाती है, पुने काशी चिता बनाकर उसपर शव रखा जाता है, फिर शोकाश्रम कर पितृकी चिताके अक्षय्य मद्रिण्या करता है, तपन शास्त्र-विधिके अनुसार अग्नि-संस्कार किया जाता है। पुने अनन्तर वानर पवित्र नदीतटपर स्नान करते हैं और पुने तारा तथा अंगद बालिको जयाशक्ति प्रदान करते हैं। क्या पशु बन्दरोंमें ऐसी क्रिया सम्भव है? और देखिये—

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे सुग्रीव श्मशानके दिने किञ्चिद्व्याजगरीमें प्रवेश करता है, उस समयका कर्त्तव्य



## रामायणके वानर-ऋच



हर्षिं वाद्यमीकि रचित रामायणका अध्ययन करने-पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि रामायण-परिचित ऋच-वानर आनन्द-कालके-से पशु बन्ध-रीड कदापि नहीं थे। ये अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंके अधिकारी थे। विद्या, बुद्धि, ज्ञान, कला, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, राज्य, भोग, बल, चातुर्य, राजनीति

आदि गुणोंमें किसी भी मानव-जातिसे कम नहीं थे। श्रीरामके प्रति भक्तवर श्रीहनुमान्जीके ये वाक्य विख्यात ही हैं—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकम् ।

वस्तुतस्तु तदेवाहं इति मे निश्चिता मतिः ॥

'शरीर-दृष्टिसे मैं आपका दास हूँ, जीव-दृष्टिसे आपका अंश हूँ और वास्तवमें मेरे एवं आपके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, यह मेरा निश्चित मत है ।' क्या पशु बन्ध-धातिका कोई प्राणी इसप्रकारके विचार कर सकता है या वाणी बोल सकता है? संचिसरूपसे वानर-ऋच-जातिके कुछ गुणोंका दिग्दर्शन कराया जाता है—

### विद्या

जब श्रीहनुमान्जी महाराज ऋचमूक-पर्यंतसे उतरकर तापस-वेपमें भगवान् श्रीरामके समीप आकर अपने अर्थ-गम्भीर मधुर मनोहर शब्दोंसे रामको प्रसन्न कर लेते हैं तब श्रीराम—सर्वविद्यानिष्ठाव राम—साक्षात् सच्चिदानन्दपन राम—अपने भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—'सौमित्रि! तुम सुमीवके मन्त्री हनुमान्से स्नेहयुक्त, सम्भाषण करो, यह हनुमान् वाक्यके रहस्यको जाननेवाला चतुर और महाबली है। यह शत्रुघ्नका दमन करनेमें समर्थ है। इसके भाषणसे मालूम होता है इसने वेदोंका पूर्ण अध्ययन किया है क्योंकि ऋच, यज्ञ और सामवेदको न जाननेवाला कोई भी ऐसा उत्तम और स्पष्ट भाषण नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यह व्याकरणका भी पूरा परिचित प्रतीत होता है, क्योंकि इतने अल्पे भाषणमें इसके मुँहसे न तो एक भी अशुद्ध शब्द निकला और न शब्दोंके उच्चारणमें कहीं इसके अङ्गोंमें ही कोई विचार आया।' (पा० रा० ४।४) हनुमान्जीका सीता और राक्षसे जो वातांजाप हुआ, उसमें भी उनके पूर्ण ठिठित और वेदज्ञ होनेका पता चलता है। कहा

जाता है श्रीहनुमान्जी संगीत-कलाओं में बड़े विद्वान् पुरुषोंकी तो बात ही क्या, वानर-किर्तियों में पूर्ण विद्वान्। यालिके मरनेपर विद्याप करती हुई तारा श्रीरामसे बुद्धि-स्मृतिके प्रमाण देकर खीका पतितसे अनेक सिद्ध भली। (पा० रा० ३।२४।३०-३८)

### धर्म ज्ञान

प्रायःधातक राम-वाक्यसे मर्यादासत्र बाह्यजब मोक्ष उदाहना देता है, तब श्रीराम धर्म-त्यागके कारण सब अधीचिप्य सिद्ध करते हुए कहते हैं—'हे बाबु! इ इतं निम्नित चरित्रके कारण विपरीतगामी हो गया है। से राजधर्मका त्याग कर दिया है, जो पुरुष अपनी पुत्र, पति, या छोटे भाईकी खीके साथ कामका होकर रहता करता है वह यथ करने योग्य ही है। मैंने महाराज अपने धर्मशासनकी नीतिके अनुसार तुम्हें मारकर अपना ही सिद्ध है, अन्यथा तुम्हें अपने पापोंके लिये धर्मशासनके अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता।' इसके बाद श्रीरामजी हनुमान्जीको स्तोकोंका प्रमाण देते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वानर-जाति लोग धर्मशासनसे परिचित थे और धर्म-पालनके लिये तब थे, तथा धर्म-विरुद्ध कार्य करनेपर व्यवहारे पाप समझे थे। पशु-बन्धनोंके लिये श्रीराम कभी ऐसा नहीं कर लगे।

### धार्मिक-संस्कार ।

वानर-जातिमें सभी संस्कार वैदिक विधिसे अनुष्ठान होते थे। उदाहरणार्थ बाबिकी शत्रुके अन्तना होने शौर्ष्वेदिक संस्कारका विवरण पढ़िये—

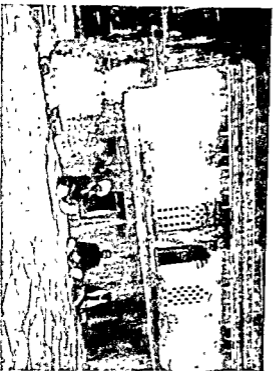
सुमीव और अंगद एक सुन्दर पाककीपर बाबिके लगे रहकर रमराममें खे जाते हैं, शत्रुपर रसोंकी लगी को ब रही है, नदीके तीरपर शिविका उतारी जाती है, सूने करके चिता बनाकर उसपर शत्रु रक्ता जाता है, फिर शौकपुत्र बना पिताकी चिताके अग्रसम्य प्रदक्षिणा करता है, तब शत्रु-शब्द-विधिके अनुसार अग्नि-संस्कार चिता आता है। इतने अनन्तर वानर पवित्र नदीतटपर स्नान करने हैं और तुम्हें तारा तथा अंगद बाबिको अजात्रिक प्रदान करने हैं। क्या पशु बन्धनोंमें ऐसी क्रिया सम्भव है? और किने—

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे सुमीव राजाजिकेकी कि किञ्चिन्वा-भगरीमें प्रवेश करता है, उस समयक लगे





( १ ) पणकुली मंदिर



( २ ) परिक्रमार्थ तुलसीदासजीका मन्दिर



( ३ ) जानकी कुण्ड ( ४ ) तुलसीदासजीका मन्दिर रामध

है—सुभीके राध्याभियेकके लिये वानरोंने शीघ्रतासे ये बलुपूर्वमेगवायीं थीं, सुबर्षांकडूत रवेत छत्र, सोनेके ढाँडीवाले शो चर्चर, सब प्रकारके रत्न, सकल प्रकारके बीज और भौषणियाँ, सशर वृषाँके प्ररोह, सुगन्धित पुष्प, सफेद कपड़े, रवेत चन्दन, सुगन्धयुक्त कमल, अनेक प्रकारके सुगन्धित-द्रव्य अथवा सुवर्ष, मोहूँ, मधु, घृत, दही, व्याघ्रचर्म, बहुमूल्य ज्वेलकी जोड़ी। इसके बाद राजाके शरीरमें लेपन करनेके लिये गोरोचनादि सुगन्धित पदार्थोंको लेकर सोखह रूपसी कुमारीकाएँ आर्या। उत्तम आहार्योंकी भोजन कराया गया और चन्द रत्न तथा वस्त्र देकर प्रसन्न किया गया। फिर मन्त्रज्ञाता अविज्ञाने कुण्डमें अग्निकी विधिबद्ध स्थापना कर हवन किया, तदनन्तर सुन्दर सुवर्ष-सिंहासनपर बैठाकर चारों दिशाओंके तीर्थोंके तथा विविध समुद्रोंके निर्मल जलसे सुवर्षायात्राद्वारा सुभीवका अभियेक किया गया। यहाँ विधिपूर्वक अंगदको भी सुवराज-पद दिया गया। ( बा० रा० ३१२ ) क्या ऐसी विधि पर्यु-बन्दरोंमें कभी सम्भव है ?

### ऐश्वर्य-विलास

किष्किन्धा-नगरीकी अवरथाका किञ्चित् वर्णन पढ़नेपर वानरोंके ऐश्वर्यका कुछ अनुमान लग जाता है। जिस समय सुभीवको चेतावनी देनेके लिये श्रीलक्ष्मणजी सुभीवकी नगरीमें गये, उस समय उन्होंने देखा—

अनेक रत्नोंसे छापी हुई उस दिव्य नगरीमें जगद-काह पुण्डित हृष लग रहे थे। ऐंकी-ऐंकी छत्रोंवाले रत्नज्वित विशाल भवनोंसे नगरी खषाकष भरती थी, अनेक घरके साय बगीचा था, जिसमें फल-पुष्प-समन्वित हृष धरो थे। विन्ध्यापल और सुमेरु-जैसे ऐंके ऐंके महलोंसे नगरी शोभित हो रही थी। आगे चलकर श्रीलक्ष्मणजीने सुषाराज अत्रद, सैन्द, द्विविद, गवय, गवाच, गज, विष्णुभाजी, सर्पांच, इन्मान, सुबाहु, नख, नील, कान्तवात् आदि श्रेष्ठ बुद्धिमान् वानरोंके रमणीय और सुन्दर महल देखे। ये सब महल सफेद बादल-जैसे, सुगन्धित पदार्थों और पुष्पमालाओंसे सजाये हुए, धन चान्द्रादि ऐश्वर्य और हमली-नखोंसे सुशोभित थे। वानरराज सुभीवका राजमहल तो रवेत स्पष्टिक-मयिकी बड़ी-बड़ी सिंहाओंका बना हुआ था, सामने दिव्य पुष्प फल और शीतल पाषाणवाली बगीचा था, दिव्य पुष्प और सोनेके ढोरोंसे महल सजाया हुआ था। अत्यन्त बलवाले वानर एक चारय किये दरवाजेपर पहरा दे रहे थे। श्रीलक्ष्मणजीने

महलके अन्दर जाकर एकके बाद एक सात द्योदियाँ पार कीं, यहाँ उन्होंने भक्ति-भक्तिके रथ और विमान आदि सवारियाँ और विद्वाने योग्य बहुमूल्य आसनोंका ढेर देखा। अन्तःपुरमें सोने और चाँदीके बहुत-से बड़े-बड़े पर्णोंपर धमूल्य बिल्लौने बिड़े थे। अन्दर सुन्दर स्वरमें गाना-बजाना हो रहा था, अन्तःपुरमें सुन्दर आकृतिवाली उत्तम कुलमें उत्पन्न अनेक लियौं थीं जो उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सजी हुईं सुगन्धित फूलोंके हार गूँथ रही थीं। इसके बाद उन्होंने सुभीवके उत्तम महलों-करहोंसे सजे हुए अगणित नौकरोंको अनेक प्रकारके कार्योंमें लगे देखा। ( बा० रा० ३१३ ) इसके वानरोंके ऐश्वर्य और विज्ञासका चन्द्राजा लगाइये !

### कला-कौशल

वानर जाति कलाकीशलमें खूब बढी-बढी थी। विशेष प्रमाण न देकर दो एक प्रमाण ही दिये जाते हैं। देखिये—

पालिका शव रमशान जे आनेके समय जिस पालकी-पर रक्त्वा गया था, उसका वर्णन इसप्रकार है—दिव्य रथ-जैसी पालकी अत्यन्त शोभायमान थी, उसके मध्यभागमें उत्तम मद्रासन बनाया हुआ था। चारों ओर अनेक प्रकारके पची और धूपोंके प्राकृतिक चित्र चित्रित थे। पालकीके अन्दर आनेके दरवाजे बहुत ही सुखरूप थे, हवाके आने-आनेके लिये सुन्दर आबियाँ रखी हुई थीं। निपुण शिल्पकारोंद्वारा निर्मित यह सुन्दर शिविका बहुत ही बढी और मजबूत थी, देखनेमें देवताओंके विमान जैसी थी। उसके अन्दर नानाप्रकारके काठके पहाड़ बनाये हुए थे। इसके अतिरिक्त अन्व बहुत-सी कारीगरीकी गयी थी। यह पालकी उत्तम सोनेके हारों, रंगविरंगे पुष्पों और जाल चन्दनसे सजायी हुई थी। शिविकापर भक्ति-भक्तिके सुगन्धित फूल बिलराये हुए थे और प्रमाणचर्चान सूर्य-सदृश कान्तिवाली कमलकी माळाओंसे यह शोभित हो रही थी। ( बा० रा० ३१४ )

यह तो सुर्दोंको डरानेकी पालकीका वर्णन है। अन्य बलुओंकी कारीगरीका भी हमने अनुमान कर लीजिये।

हमके अतिरिक्त नखकी अन्वचर्चामें वानरोंद्वारा समुद्रपर सी योजनमें विशाल पुख बनाया तो प्रसिद्ध ही है। बाष्मकीय शमाचयने पनालगता है कि पुख चर्चनेमें वानरोंने यन्त्री ( अरीयों ) द्वारा भी काम किया था,



जिज्ञा है कि हाथी-जैसी बड़ी-बड़ी शिखाओं और पर्वत-शिखरोंको धानरजोग उपावकर यन्त्रद्वारा समुद्रतक खाने थे\*। सेतु कहीं बाँका टेढ़ा न हो जाय इसलिये धानरजोग सूतसे नाप-नापकर परधर रखते थे। इसलिये कई धान हाथोंमें घोरी लिये खड़े रहते थे †। इससे रामायणमें 'कला-कौशल' का भी पता लगता है।

इसके अतिरिक्त, सुग्रीवका विशाल भौगोलिक ज्ञान उस समय प्रकट होता है जब यह सीताकी खोजमें जानेवाले धानरोंके सामने भूगोलका विलुप्त वर्णन करता है। रणमें धानरोंकी श्रुता और युद्ध-निपुण्यता तो प्रसिद्ध ही है। सुग्रीवकी राजनीति और रणनीति-पटुताका यही एक प्रमाण है कि श्रीरामने उसे अपना मन्त्री और सेनापति बनाया था। भगवद्गीता और परमार्थज्ञानके विषयमें श्रीहनुमान् परम प्रसिद्ध हैं ही। ऋषराज जाम्बवान्की रणनीति, बुद्धिकुशलता, जिसने हनुमान्जीको बसका धरम्य कराया था, सभीपर विदित है।

इन थोड़ेसे उदाहरणोंसे पता लगता है कि रामायणके ऋष-धानर साधारण पशु शीशु-बन्दर नहीं थे। यह कोई विवेक-बुद्धि-सम्पन्न अनाम्य मानव-जाति थी। जो आज नष्ट या कहीं रूपान्तरित हो गयी है। सम्भव है इनके पूँछ रही हो, क्योंकि रामायणमें पूँछका वर्णन प्रायः मिश्रता है। पूँछके द्वारा श्रीहनुमान्जीका लङ्का-वदन प्रसिद्ध है। यह भी हो सकता है कि ये उस समयकी अथनी जातिकी सम्प्रदायके अनुसार कपड़ेकी पूँछ-सी बनाये रखते हों। कुछ सुसज्जमान-जातियोंमें और राजपूतानेमें आज भी, और कहीं-कहीं अब भी है, कि बियाँ अथनी शौटीको उनकी धाटीसे गूँघर इतनी खम्बी बना खेती थी जो पीठमें पैरोंतक बढकती रहती थी। अण्डपुरके नागे पूँछ-सी बनाये रखते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ विरोध कदा नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वेदाध्ययन, यज्ञ-याग, धान-पुष्प, ज्ञान-विज्ञान, ईश्वर-भक्ति, राज्य-सञ्चालन, गाणध-कारण, कला-कौशल आदि कार्योंको करनेवाली जाति पशु-जाति नहीं हो सकती। सम्भव है इस मानव-

जातिका नाम 'धानर' रहा हो। धानर पशु भी होते हैं, र बिये जोग इन्हें पशु मानने लगे हों। या यह भी सकता है कि इनके रूप-रङ्गमें बन्दर-जातिये कुछ समान पायी जाती हो, इनमेंसे कुछ लोगोंकी शकमें बनने सी भयावनी और क्रूरप हों, यद्यपि इनके देहोत्पत्ति होनेका भी उल्लेख मिलता है। श्रीरामको सेनामें लं चाले धानर देवताओंकी सन्तान थे। इनकी अनेक प्रकारमें जिज्ञा है कि जिस देवताका जैसा रूप, वेष्ट व पल या उसके अंशसे ही जैसे ही रूप, वेष्ट और वरान पुत्र उत्पन्न हुए, तथापि कुछ लोग बद्धसूत होंगे, इन कल भी तो मनुष्योंमें ऐसे बहुत-से भयावनी शकमें ली देखे जाते हैं जिनके चेहरेकी ओर देखते ही डर लगता है। धानरी बियाँके तो सुन्दरी होनेका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सम्भव है यह जाति कूद-कौदने और वनमें रहनेवा होनेके कारण कल-मूल खानेमें अग्रगण्य होनेसे वनों-राहोंके लोग मजाकसे इन्हें बन्दर कल्पे लगे हों, जो कुछ दिनों पहले कूद-कौदनेमें निपुण पीतवर्ण जातिके रूसी लोग 'पीत-बन्दर' (Yellow Monkeys) का कर पुकारा करते थे। रूसी-भालू (Russian Bear) और मिटिश-सिंह (British Lion) नाम धानर की प्रचलित हैं। भारतकी अतिविल अन्त कलमेंके अथ भी बन्दर कहती है। पर इन चीनोंमेंसे कोई भी जाति पशु नहीं है। राजपूतानेके अगारबाजोंमें एक जातिके 'भूल' कहते हैं। इसीप्रकार इनके बिये भी लगता है। ऐसे ही 'ऋषधान' \* पर्वतर निवास करनेके कारण एक जाति ऋष कहाने लगी, जिसमें जागृणात् ये।

इस विवरणसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि रामायणमें वर्णित धानर-ऋष पशु नहीं थे। जन-धाम्य और ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न मानव-जातिके ही लोग थे, जिनके रान-साधन और धान्य-विचारमें आर्यजातिये कई भागोंमें अन्तर था ही जिनके बर्थाकार भी आर्यजातिये प्रपञ्च थे, जैसे आज ही चीनी और जापानियोंका कद चीना और ईरानियोंका है। फिर ये भाग्यवान् ऋष-धानर तो सब देश-धाम्यमें पाँच थे जो सविदाकन्दुवन भागवान् श्रीरामकी अनेक सम्मिलित होनेके बिये अथनीय हुए थे। उनकी अनेक संघिष्ठ विवरण अत्राकर अत्र समाप्त करना ॥

\* इतिहासकाराः धानरान् महावन्तः ।

पर्वतान् मनुष्यवन्तः कनैः परिवर्तन्त च ॥

(रा०७०० २। २२। ५२)

† इत्यन्तरे बहुविधि (रा०७००२। २२। १२)

\* नन्दे ऋषधनः मन्वन्तान्पुः मरुतः ।  
(रा०७००। १२। १)

महाजीके कदनेसे देवताओंने अप्सरामाँ, गन्धर्वियों, वरुण्यमाँ, नागकन्यामाँ, अरुणकन्यामाँ, विद्याधरियों, किरणियों और वानरियोंके द्वारा सब प्रकारकी माया जानने-बाणे, शूरवीर, वायु सट्टा गतिवाले, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, पराक्रमी, शत्रुविजयी, साम-शानादि, नीतिनिपुण, दृढशरीरी, अष्टाक्ष-शयोगमें पंडु, सापाय देव-सट्टा पुत्र उत्पन्न किये । महाजीसे 'जाग्रवान्', इन्द्रसे 'वाशि', सूर्यसे 'सुग्रीव', इन्द्रागिसे 'तार', कुबेरसे 'गन्धमादन', विश्वकर्मासे 'नल',

अग्निसे 'नील', अरिबनीकुमारोंसे 'मैन्द' और 'द्विविद', वरुणसे 'सुपेय', पर्वन्त्यसे 'शरभ' और वायुसे 'हनूमान' हुए, तथा अन्यान्य देवताओं, महर्षियों, गरुडों, यज्ञों, किम्पुह्यों, सिद्धों, विद्याधरों और नागोंने भी हजारों पुत्र उत्पन्न किये । देवोंके भाट-चारणोंने भी सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये । इन सबकी उत्पत्ति मुख्यतः अप्सरार, विद्याधरी और नागकन्यामाँसे हुईं ॥ ( वा० रा० ११२० )

—रामायण-प्रेमी

## रामायण और महाभारत

### एक तुलना

( लेखक—डा० श्रीमहलदेवजी शाही, एम० ए०, डी० फिल० )



राजी संस्कृतिके इतिहासमें साहित्यिक दृष्टिसे 'इतिहास' और 'पुराण' का महात्त्व कितनी दूसरे ग्रन्थसे कम नहीं है । इधर कुछ दिनोंसे अनेक पाश्चात्य विद्वानोंकी देखा-देखी तथा अन्य कारणोंसे 'इतिहास' और 'पुराण'कुछ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखे जाने लगे थे ।

परन्तु यह प्रसन्नताकी बात है कि अब न केवल भारतीय किन्तु पाश्चात्य विद्वानोंके भी इन विचारोंमें परिवर्तन हो गया है । अब वैदिक साहित्यकी तरह इनकी ओर भी विद्वानोंका ध्यान जाने लगा है । हमारे भारतवर्षमें तो अति प्राचीन कालसे ही इनका गौरव समझा जाता था । यहाँ तक कि इतिहासको 'पद्मम वेद' माना जाता था—'इतिहासः पद्मो वेदानां वेदः ।' कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र' में कहा है—'सायकण्वद्वेदेऽस्यवसवी । अथर्ववेदेऽस्यवसती च ।' अथर्व वेद सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद यह त्रयी और अथर्ववेद तथा इतिहासवेद ये वेद हैं । महात्त्वग्रन्थोंमें अनेक अर्थसे इतिहास और पुराणका वर्धन है । पातञ्जल-महाभाष्यमें

कहा है—'अतरो वेदाः... इतिहासः पुण्यन्... ।' अतुर्ना विद्याधरोंमें भी 'पुराण' को गिनाया गया है । इसप्रकार भारतवर्षमें अथर्वयनास्थापनकी प्रत्येक प्रथाओंमें इतिहास और पुराणका समावेश था ।

इतिहास और पुराणके साहित्यमें रामायण और महाभारतका—जिनका समावेश प्रायः इतिहासमें ही किया जाता है—स्थान बहुत ऊँचा है । इन दोनों ग्रन्थोंके अपेक्षित निर्माणकालके विषयमें अनेक मत हैं । यहाँ हम उस भगवत्में न पढ़कर इन दोनोंकी संक्षेपमें एक-दो दृष्टियोंसे तुलना करना चाहते हैं । साधारणतया यही समझा जाता है कि दोनों ग्रन्थ बिरबुल एक ही प्रकारकथा कोटिके हैं । परन्तु यहाँ हम इन दोनोंकी तुलनामें कुछ उन्हीं बातोंको दिखाना चाहते हैं जिनमें इन दोनोंका भेद है ।

(१) रामायण और महाभारतमें एक मौखिक भेद, जिसकी ओर प्रायः बहुत कम ध्यान जाता है, यह है कि महाभारतको 'वैयासिकी संहिता' कहा जाता है । उद्धारकर्त्ता, इसके पर्वोंके अन्तमें समाप्तिपत्रक वाचयमें यह लिखा

● यह श्रेष्ठ सर्वको इच्छिते लिखा गया है । बाल्यमें क्या बात भी, छो भगवान् ही जाने । जर साध्यां श्रीदन्व्यान्वी वराणस्यो मेरुण और साधवणसे लिखित रामचरितमानसने श्रीरामके साथी वानर-कर्मियों बन्दर-भाण्ड बटलाया है उस युग शरीरों हुए बन्दर-का कुछ भी चिन्ता नष्टा ही है, बाल्यमें भगवान्को एक अनन्त और अक्षर है । बन्दर-भाण्ड छो भैरव्य माती है, कर्णों से वह दृग्-वाच्योंको अज्ञाते अपिच विद्वान्, कालसे भी अपिच बहानी, इन्द्रसे भी अपिच देवसंगण्ड, इन्द्रागिसे भी अपिच बुद्धिमान् और निचकमाँसे भी अपिच कलाकुशल बना सकने है ।—केशव

लिखा है कि हाथी-जैसी बर्फी-बर्फी शिखारों और पर्वत-शिखरोंको बानरलोग उपावकर पन्त्रद्वारा समुद्रतक जाते थे। सेतु कहीं बाँका टेढ़ा न हो जाय इसलिये बानरगण सूतसे नाप-नापकर पत्थर रखते थे। इसलिये कई बानर हाथोंमें चोरी लिये खड़े रहते थे † । इससे रामायणमें 'कञ्जा-कौशल' का भी पता लगता है।

इसके अतिरिक्त, सुग्रीवका विशाल भौगोलिक ज्ञान उस समय प्रकट होता है जब वह सीताकी खोजमें जानेवाले बानरोंके सामने भूगोलका विलुप्त वर्णन करता है। रणमें बानरोंकी शूरता और युद्ध-निपुण्यता तो प्रसिद्ध ही है। सुग्रीवकी राजनीति और रणनीति-पटुताका यही एक प्रमाण है कि श्रीरामने उसे अपना मन्त्री और सेनापति बनाया था। भगवद्गीता और परमार्पशास्त्रके विषयमें श्रीहनुमान् परम प्रसिद्ध हैं ही। अक्षराज जाम्बवान्की रणनीति, बुद्धिकुशलता, जिसने हनुमान्जीको ब्रह्मका स्वरूप कराया था, सभीपर विदित है।

इन धोरेसे उदाहरणोंसे पता लगता है कि रामायणके अक्ष-बानर साधारण पशु शीत-वन्दर नहीं थे। यह कोई विवेक-बुद्धि-सम्पन्न अर्थात् मानव-जाति थी। जो आज नष्ट या कहीं रूपान्तरित हो गयी है। सम्भव है इनके पूंछ रही हो, क्योंकि रामायणमें पूंछका वर्णन प्रायः मिथ्या है। पूंछके द्वारा श्रीहनुमान्जीका खड्गा-दहन प्रसिद्ध है। यह भी हो सकता है कि ये उस समयकी अपनी जातिकी सम्पत्ताके अनुसार करवेकी पूंछ-सी बनाये रखते हों। कुछ सुलभमान-जातियोंमें और राजपूतानेमें चाण्डी, और कहीं-कहीं अण्डी भी है, कि जिनका अपनी छोटीको टनकी छाटीसे गूँथकर इतनी खम्बी बना लेती थी जो पीठमें पीठतक बरकती रहती थी। अण्डीके नागे पूंछ-सी बनाये रखते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ विरोध कदा नहीं जा सकता, परन्तु इतना स्वरूप कदा जा सकता है कि वेदाध्ययन, पशु-याग, शान्त्युपव, ज्ञान-विज्ञान, ईश्वर-भक्ति, राज्य-सम्बन्धन, गायन-वादन, कला-कौशल आदि कार्योंकी करनेवाली जाति पशु जाति नहीं हो सकती। सम्भव है इस मानव-

जातिका नाम 'वानर' रहा हो। बानर पशु भी होते हैं, जिसके लिये लोग इन्हें पशु मानने लगे हों। या यह भी हो सकता है कि इनके रूप-रङ्गमें बन्दर-जातिसे कुछ अन्तर पायी जाती हो, इनमेंसे कुछ लोगोंकी शक्ल कर्णोंसे सी भयावनी और कुरूप हों, यद्यपि इनके देहमें इतने होनेका भी उल्लेख मिथ्या है। श्रीरामकी सेवनेवाले वाले बानर देवताओंकी सन्तान थे। इनकी रङ्गोंमें प्रकरणमें लिखा है कि जिस देवताका जैसा रूप, वे ही पशु या उसके अंशसे ही वैसे ही रूप, बेष और शस्त्र पुत्र उत्पन्न हुए, तथापि कुछ लोग बर्दाश्त होने, एक काल भी तो मनुष्योंमें ऐसे बहुतसे भयावनी टपकने लगे देखे जाते हैं जिनके चेहरेकी ओर देखते ही डर लगता है। बानरी जिनके तो सुन्दरी होनेका स्वरूप उल्लेख है। सम्भव है यह जाति कृन्द-कौन्दने और बनने लगे होनेके कारण काल-मूलक खानेमें अल्प होने लगे शहरोंके लोग मनुष्योंमें इन्हें बन्दर बनने लगे हों। कुछ दिनों पहले कृन्द-कौन्दने निपुण पीठपर चढ़ा कर लोह लोह लोग 'पीत-वन्दर' (Yellow Monk) के पुत्रका करते थे। रूसी-भारत (Russian) और ब्रिटिश-सिंह (British Lion) का प्रचलित है। भारतकी अतिशय अज्ञानता के अर्थ भी बन्दर कहते हैं। पर इन तीनोंमें से पशु नहीं है। राजपूतानेके अगस्त्यजी 'मूत' कहते हैं। इसी प्रकार इनके लिये ऐसे ही 'अक्षवान' \* पर्वतराज निपुण एक जाति अक्ष कहाने लगी, जिनमें

इस विवरणसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि बानर-अक्ष पशु नहीं थे। परन्तु सम्भव मानव-जातिके ही लोग थे। साधारण-विचारमें कार्य-प्रणालि में जिनके बर्बाकार भी कार्य-प्रणालि थीनी और साधनियोंका रूप।

फिर वे साम्प्रदायिक अर्थ से जो साधन-सम्पत्ति होनेके लिये संघिष्ठ विषयक हैं।

\* इतिहासकारोंका नाम: वाचस्पत्यु मन्त्रालयः ।  
 रङ्गं च सद्रूपं च कन्दैः परिशुद्धं च ॥  
 (२००० १। २१। ५९)  
 † इतिहासकारोंके मतः (२००२। २१। १९)

ये श्लोक स्पष्टतया उपनिषदादिके झुन्दोंसे मिलते-  
हवने हैं। पान्दु नीचे लिखे श्लोक महाभारतके ही होकर  
रामायणके जैसे ही हैं—

आदिशर्व १८६ । २—

कपेन वीर्येण कुलेन चैव  
शक्तिन विद्वेन च वीर्येण ।  
समिद्धदर्शो मदवेगमिन्ना  
मत्ता मया हैमवता गजेन्द्राः ॥

आदिशर्व १८६ । १२—

हैमवतः पार्थाः पुत्रुबाहवसे  
वीरो यमौ चैव महानुभावो ।  
१) शौचरीश्रेयस हठा स्म संते  
कन्दर्पबाणोमिहता बहुवुः ॥

(१) रामायण और महाभारतमें क्या भारी भेद भावोंकी  
जाने हैं। इस दृष्टिये विचार करनेमें सबसे पहली बात जो  
मनमें आनी है यह है कि वहाँ रामायण आदर्शकी दृष्टि  
(Idealistic point of view) से लिखी गयी है, वहाँ  
महाभारत वास्तविक घटनात्मक दृष्टि (Realistic point  
of view) से लिखी गयी प्रतीत होती है। इस भेदका  
कारण कुछ ही रहा हो, हमारा उससे यहाँ कोई सम्बन्ध  
नहीं है। हमें यहाँ परी दिलजबाना है कि यह भेद दोनों  
ग्रन्थोंमें सर्वमान्य है। पहले रामायणको खीजिये। रामायण-  
में सारी कथामें उसके मुख्य पात्रोंका चरित्र आदर्शकी  
दृष्टिये ही लिखा गया है। बाजि-बध जैसी एक ही घटनाओं-  
में ब्रह्मचर्य, जो कुछ-कुछ मनमें लटकती हैं, प्रायः सारे  
ग्रन्थमें वही प्रथम बराबर लिखा गया है कि उसके मायक-  
रूपको सर्वत्र विद्विष्य दिग्गजाया जावे और उसके विषयको  
सर्वत्र मान्य ।

महाभारतमें यह बात नहीं है। उसकी कथा ऐसी  
ही ऐसी जैसी भावों किमी चरमोच्छको सामने रखकर  
लिखी गयी है। इसके औरत और वाचक्य होयों चरमों कल्पे  
होयों का है, रामायणमें प्राण-दंडको आदर्श रचना है,  
महाभारतका भाग काकर आदर्शोत्तर है। शौचरीके  
दृष्टिये, कुलीकी औरत कथामें कर्तवी कथानि, सर्व  
दृष्टिये, कुलीकी कथामें कर्तवी कथानि, श्रेय, धर्म  
के अर्थक कथानि का दृष्टये कथ-दृष्टिये कथकथेक

यतों हमारी दृष्टिकी पुष्टि करती है। शौचरीके औरतकथी  
ही बात खीजिये। भीष्म, द्रोण-जैसे वीर और धर्मोभा एक  
श्रीके प्रति भरी सभामें किये गये घोर अपमानको धुरधार सह  
छेते हैं। शायद आश्रकजका एक साधारण सप्याम्ही भी  
ऐसा नहीं कर सकता। वह अपने जीवन-दानमें भी एक  
श्रीकी रक्षा करेगा।

इस भेदके मूलमें भी वास्तवमें उपयुक्त पहला भेद ही  
है। रामायण वास्तवमें राम-कथन है। यह एक व्यक्तिके  
ही गुणगान करनेके लिये लिखी गयी है। रामको छोड़कर  
इसके और पात्रोंमें उतनी सजीवता तथा व्यक्तिगत रोचकता  
नहीं है। और तो और, कथमय-जैसे विरिष्ट पात्रके  
विषयमें ही अधिक सजीवता नहीं दिखजायी देगी। उनके  
जीवनकी घटनाएँ, उनका व्यक्तिगत जीवन सब कुछ  
अन्धकारमें डूबा है। उर्मिजा-जैसी औरत या मुमिया-  
जैसी माता मानों कभी मुग्तसे बोलती ही नहीं।

इसके विरुद्ध महाभारत किमी एक व्यक्तिकी गुणगान  
नहीं है। उसमें यह कथना भी मुश्किल हो जाता है कि  
उसका सर्वप्रधान पात्र कौन है। उसके चनेकानेक पात्र,  
भीष्म, कुन्ती, गान्धारी, ध्याम, कृष्ण, युधिष्ठिर, दुर्वाचन,  
कथ' आदि विस्तृत सजीव मान्य होने हैं। इस उनके  
जीवनकी घटनाओंके साथ-साथ उनके मनके भावोंकी भी  
स्थान स्थानपर प्रकट देखने हैं। यहाँक कि उन सबका  
पुष्क-पुष्क जीवनचरित्र बिलग का सकता है।

(२) रामायण और महाभारतमें एक भेद यह भी है।  
संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंमें महाभारतके पात्रोंका चरित्र  
उपलब्ध मिश्रता है उतना रामायणके पात्रोंका नहीं।  
वैदिक-संहिताओं तथा ब्राह्मणोंकमें विचित्ररीरोंके पुत्र  
धनराष्ट्र का परीक्षितके पुत्र जनमेजय कादिका सर्वत्र मिश्रता  
है। रामायणके विरिष्ट पात्रोंका उपलब्ध देखे प्राचीन  
ग्रन्थोंमें नहीं गयी मिश्रता। कथि-किमी कथापात्रोंकी ही  
खीजिये; उसमें कानुरेव, कर्तुव, युधिष्ठिर कादि  
महाभारतीय नामोंका ही उपलब्ध है, पर रामायणके पात्रका  
कोई उपलब्ध नहीं मिश्रता।

पर देना सर्वत्र होता है कि समस्तके गुणमेंके साथ  
साथ महाभारतके सुपरकेमें रामायणका भाग कथना



## मानसकी महत्ता

( ले०-विद्यार्थी श्रीमहेन्द्रप्रसादजी मिश्र 'रतिकेश' )

घर वीरता खीरकी कायरताकी फलोलिनी माँहि बहा चुके थे ।  
 करिके करतव्य-पिताकर दाह अर्घोंकी नदीमें नहा चुके थे ॥  
 न रच्यो हुतो 'मानस'जी 'तुलसी' तौहीं पापते धर्म गहा चुके थे ।  
 कुलकी मरजाद मिट्टा चुके थे अह कूर कपूत कहा चुके थे ॥१॥

हरि-भक्ति-पयोनिधि भकनमण्डली कैसेके आजुलों ह्यौ बहती ।  
 रहती उफनानी सुभायपत्री सरि कैसेके लोकनमें महती ॥  
 पति-प्रेमकी माधवी-मञ्जु-लता केहिपै कहा आस्रयकी लहती ।  
 न भयो हुतो जी 'तुलसी' तौ कहा 'हुलसी' हुलसी-हुलसी रहती ॥२॥

तुम सूकियेते सुबचाय लियो स्रुति-सास्त्र-सरोरुहके बनकी ।  
 तुम कालके गालते वारि लियो ध्रुव-धर्मके कर्मके मीननकी ॥  
 इतते उतते चुनि 'मानस'में तुम राम चरित्र-कनूकन की ।  
 'तुलसी' तुम भाँझरी नैयामें आइयो दीनी नहीं जलकी-तनकी ॥३॥

जय आर्यताकी तरनी की चह्यौ जु अनार्यता-अभ्युधि लीलियेकी ।  
 हरिकी हरिता की रहीम-रहीमता आहयो पतालमें कीलियेकी ॥  
 फलमाकी भुजगिनि ओऽम-जरा पर चाह्यो गप्ल उगीलियेकी ।  
 रच्यो ता छनमें 'तुलसी' तुमने यह 'चक्र' मिचिलिये-खीलियेकी ॥४॥

चहकाय दियो 'तुलसी' तुमने चिरी-आतमाकी-तपनारतकी ।  
 उफनाय दियो 'तुलसी' तुमने रसकी नदी धोर-नृपारतकी ॥  
 विकसाय दियो 'तुलसी' तुमने उरकी कलिका इस-आरतकी ।  
 पनपाय दियो 'तुलसी' तुमने सुचि-सम्यता-चहरी भारतकी ॥५॥

कुडुकाय दियो रमनीयताकी पिकी 'मानस'की सुरभीमेंह प्यारी ।  
 प्रगटायके 'मानस'की नमसी उमड़ाय दियो रस निर्भरी-न्यारी ॥  
 निज 'मानस' की रवि-रस्मिनते विगसाय दियो भली-भाव कियारी ।  
 करि 'मानस' की सुधा-वृष्टि-धनी लहराय दियो कथिता-कुलरायी ॥६॥

लहि 'सूर'की ओप-अनोखी कियो स्वविकास-प्रकासकी 'चन्द्र' ने न्यारे ।  
 उनने निज जोतिकी जालिनते बगरायो हजारन ह्यौपि 'सितारे' ॥  
 'पदवीजन'-जीगनोंकी न रही गनना तिनते जो भयो अधिकारे ।  
 पर धन्य हो 'मानस' के 'तुलसी' तुम 'सूर' की आँसुकी खोलनिहारे ॥७॥

कियो घोर मरुस्थलमें 'तुलसी' तुम नन्दन-कानन बर विकास ।  
 कियो घोर प्रलंकी विमावरीमें 'तुलसी' तुम पुनोकी चन्द्र-प्रकास ॥  
 कियो विध्यकी छातीपै तू 'तुलसी' निज मानसकेर अनोखी मिटास ।  
 कियो सागर गागरमें 'तुलसी' कियो राममें रायनकेर उजास ॥८॥

'धलमीकि' ने बीज बयो जेहिकी तेहिमें कियो अ'कुर 'कालियदास' ।  
 'भवभूति' विभूति-मर्ग करिके कवि 'सूर' कीं सौंपि चर्यो हरि-पास ॥  
 उनने तेहि सौंचि कियो दल-भूषित पयित पुष्पनते अनपास ।  
 कथिताकी लताकी प्रफुल्ल कियो 'तुलसी' तुमने ही जु परो विकास ॥९॥

# वालमीकीय रामायणसे अथतारवादकी सिद्धि

( ७२ उद्धरण और १३० श्लोक )

( लेखक—गार्हपत्याचार्य ६० श्रीरपुर मिश्रूबामनी शास्त्री, काभन-नेराम-जीव, शास्त्री, एम० ए०, एम० आ० ए० )

ममोऽस्तु रामाय सःशरमगाय देरिमे च तस्मि जनकप्रमताय ।

ममोऽस्तु श्रेष्ठप्रवमानकेभ्यो ममोऽस्तु चन्द्रार्कमहदग्नेभ्यः ॥

( अष्टाकाण्ड सर्ग १३ श्लोक ३० )

जिन लोगोंने भादिकवि भीवाल्मीकिज्ज रामायणको नहीं पना है उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनकी बुद्धिमें यह बात बैडा ही गयी है कि वालमीकिजी न तो भीरामचन्द्रजी-को विष्णुका अवतार मानते हैं और न अवतार-वादके अनुयायी ही हैं। ऐसे भूले-भटके लोगोंके हितार्थ तथा भीमद् वालमीकि-मुनि-प्रणीत धीरपुत्रपरितमं भीरामायतारके भक्तोंकी भद्राके संरक्षणार्थ, एवं तद्द्वारा स्वकीय अन्तःकरणकी शुद्धिके प्रयोजनसे यह खेल बिसा जाता है। इसमें यह सिद्ध किया जायेगा कि वा० रामायणके रचयिताने अवतारवादको अत्यन्त स्पष्टरूपसे माना है और उनकी दृष्टिमें राम साक्षात् विष्णुके अवतार ही थे।

अवतारवादका सिद्धान्त श्रीकृष्णभगवाद्के निम्नोद्धृत गीतोक्त धर्चनोंपर निर्भर है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

प्रवृत्ताणाम् साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

( भीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४ श्लोक ७-८ )

— कि 'जब-जब प्राणियोंके अभ्युदय और निःश्रेयस्कके साधन कर्थाश्रमादिरूप धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है तब-तब मैं मायाद्वारा अपने आपको उत्पन्न करता हूँ और सन्मार्गमें स्थित जनोंके परिरेषण तथा पापकारियोंके उन्मूलन एवं धर्मके सम्यक् स्थापनके प्रयोजनोंसे मैं प्रत्येक युगमें प्रकट होता हूँ ।'

इस सिद्धान्तके अनुसार धार्यजाति प्रचीनकालसे यह मानती चली आ रही है कि जगत्का परिपालन करनेवाले सर्वव्यापक विष्णु भगवाद् धासुरी सम्पत्तिका उच्चेद और वैवी सम्पत्तिका प्रसार करनेके लिये तत्पुरुष समर्थ उपस्थित

होनेपर स्वयं तत्पुरुष हीरद्वारा अवतार लेते हैं।

अवतारोंकी संख्या दश वा, चौबीस वा अथव मानी गयी है।

प्रस्तुत श्रेष्ठमें वामन, कृष्ण (कन्ठ); वराह, श्रीकृष्ण इत्यादि अवतारोंका स्पष्ट उल्लेख वा० रामायणके श्लोकों द्वारा करते भीरामायणारका विशद वर्णन करनेवाले श्लोकों संभव किया जायेगा।

विचित्र अवतारोंका प्रासङ्गिक वर्णन

(१) वामनायतार—

अथ विष्णुर्भद्रोक्त्वा अदित्यां सनत्रापठ ।

वामनं रूपनारयणं वैरोचनिमुपागतम् ॥१२॥

श्रीन् पदान् यमिच्छित्वा प्रक्षिप्तुश्च मेदिनीम् ।

आश्रम्य शोकहोकरमा सर्वलोकहिते रतः ॥२॥

महेन्द्राय पुनः प्रादास्त्रियम् बलिमेवम् ॥

त्रैलोक्यं स महोत्तमायैकं शक्रवशं पुनः ॥२१॥

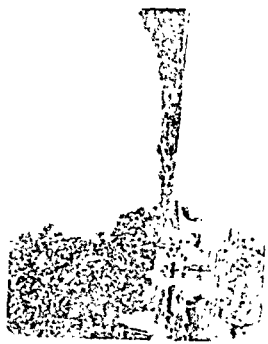
तेनैव पूर्वमाक्रान्त आश्रमः भ्रमनाशनः ।

मयापि भवत्या तस्यैव वामनस्योपभुङ्क्वते ॥२२॥

( वाककाण्ड सर्ग ११ )

[ वाककाण्ड और मिथिलागमनकी कथाओंके अर्थमें सिद्धाधमद्वयं की कथा है जिसमें विद्यामित्रजी रामजीके कहते हैं कि ] तब (अर्थात् देवकार्यमें निरुक्त होनेके पश्चात्) महातेजस्वी विष्णु अदितिमें उत्पन्न हुए और वामनरूप धार करके विरोचन-पुत्र (बलि)के पास आये ॥१२॥ तत्पश्चात् हीन पद (शुचि) माँगकर और [समस्त] श्रुतिकोंके प्रतिभ (दान) रूपसे प्राप्त करके, [उन तीन पदोंमें सत्र] श्लोकोंके आक्रान्त करके, सब लोकोंके हितमें रमण करनेवाले लोकाल्मा महातेजस्वी [वामनरूपधारी विष्णुभगवाद्] ने [अपने] बलसे बलिका नियमन (बन्धन) करके, महेश्वरको पुनः देहाला, (एवं) त्रैलोक्यको पुनर्बार स्वयंके वशमें कर दिया ॥२०-२१॥ उन्हीं (वामनभगवाद्) से [एवं] अन्को दूर करनेवाला आश्रम पहले आक्रान्त (अधिष्ठित) वा। उन्हीं वामनके भक्तिते मैं भी (हस्तका) [उपभोग] भोग हूँ ॥२२॥

11



— vascular (2) leafy sample (1)





वामनावतारका वर्णन वा ० रामायणके अने स्थलोंमें भी मिलता है। यथा—

१—बालकाण्ड सर्ग २६—

इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः ।  
 वर्षीण सुवहूनीह तथा युगशतानि च ॥२॥  
 तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहात्मताः ।  
 एव पूर्वोप्रभो राम वामनस्य महात्मनः ॥३॥  
 सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपः ।  
 पत्नीस्मन्नेव काले तु राजा वैरोचनिर्बलिः ॥४॥  
 निर्बल्य दैवतगणान् सेन्द्रान् सहमरुदगणान् ।  
 कनयामास तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विद्युतः ॥५॥  
 यज्ञं चकार सुमहानसुरेन्द्रो महाबलः ।  
 बलेस्तु यज्ञमानस्य देवाः साग्निपुरोगमाः ।  
 समाम्य स्वयं चैव विष्णुमुत्तुरिहाश्रमे ॥६॥  
 नरिर्वैरोचनिर्विष्णो यज्ञे यज्ञमुत्तमम् ।  
 अस्मादश्वेतं तस्मिन् स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥७॥  
 ये चैनमभिवर्तन्ते याचितार इतस्ततः ।  
 यच्च यज्ञ यथावच्च सर्वं तैम्यः प्रयच्छति ॥८॥  
 स त्वं सुरहितार्थीय मायायोगमुपाश्रितः ।  
 वामनत्वं गतो विष्णो कुच कल्याणमुत्तमम् ॥९॥

ये श्लोक पूर्वोद्धृत श्लोकोंके ऊपर उसी सर्गमें वामनावतारकी आवश्यकता और आवश्यकता विद्युत् वर्णन करते हैं। इनके आगे (श्लोक १०-१२में) विष्णु भगवान् किस प्रकारसे ऊपर और कर्त्तिके पुत्ररूपसे इन्द्रके छोटे भाई बनकर वामनके रूपमें उतपन्न हुए इसका वर्णन है। तदनन्तर श्लोक १६-२२ की कथा है जो अर्थसमेत ऊपर दी जा चुकी है।

२-प्रारम्भसे ले महाप्राज्ञ मैथिली जनकामश्राम् ।  
 यथा विष्णुर्माहाबाहुर्बलिं मर्त्या महाहिमात् ॥ (१।६।१।२४)  
 ३-जानमि वारणहोकार विष्णोर्देविक्रमानरिः ।  
 देवानुरमिमर्दाथ ह्यनुवश्य विमन्यन् ॥ (४।५।८।१३)  
 ४-मया वैरोचने यज्ञे प्रमविष्णुः सनातनः ।  
 इन्द्रोऽप्यशतः पूर्वं क्रममाणोऽविक्रमः ॥ (५।२।५।१५)  
 ५-निरण्य इरसः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षते ।  
 विक्रमस्त महादेवं विष्णुशीलं विक्रमानिव ॥ (५।६।१।१०)  
 ६-प्रद्युष विरिजताभापि ते वीक्ष्यते समन्ततः ।  
 विन्देदन्ते हतोःसार्धं, माराचपनिद प्रजाः ॥ (५।११।७।२)

७-प्रविष्पति हि मे रूपे ह्रनमानस्य सागरम् ।  
 विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा शान्त् विक्रमानिव ॥ (५।६।७।२५)  
 ८-तदुत्तरुपमतिःसंक्षिप्त्य हनुमान् प्रवृत्तौ स्थितः ।  
 श्रित्कामानिव विक्रम्य बलिनीयैर्हरो हरिः ॥ (५।११।२।१०)  
 ९-अपनेष्पति मां मर्ता त्वत्तः दीप्रमरिन्दमः ।  
 असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिमिरिव कर्मः ॥ (५।११।२।८)  
 १०-विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्माहायशाः ।  
 सत्यवादी मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा ॥ (१।६।४।२९)  
 ११-तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ।  
 क्रममाणमिवाकारो पुरा नारायणं यथा ॥ (६।११।२)  
 १२-त्वया लोकास्त्रयः कान्ताः पुरा कैर्बिक्रमैर्मिमिः ।  
 महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम् ॥ (६।११।३।३७)

(२)—कपिलाचतार [ बालकाण्ड सर्ग ४० ]

यस्वये वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः ।  
 महिषी माधवस्यैषा स एव मगवान् प्रभुः ॥२॥  
 कपिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम् ।  
 तस्य कोपमिना दग्धा मविष्पिन्डि नृपात्मजाः ॥३॥  
 ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबलाः ।  
 ददशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ॥२५॥

श्रुत्वा तदचनं तेषां कपिलो रघुनन्दन ।  
 रोषेण महाविष्टो हुंकारमकरोत्तदा ॥२५॥  
 ततस्तेनाऽप्रमेयेण कपिलेन महद्गमना ।  
 भस्माराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगतात्मजाः ॥३०॥

[पितामह देवताओंसे भविष्यत् कथा करते हैं कि] जिन धीमान् वासुदेव माधव (अर्थात् सर्वव्यापक और अक्षयीपति विष्णु भगवान्) की यह सनत्त वसुधरा (शुक्ली) महिषी (रानी) है वे ही प्रभु (सर्वशक्तिमान्) भगवान्, करिबका रूप धारण करते निष्प (अर्थात् रक्षाभाषिक योगवक्त्रों) श्रुतिविकी धारण करते हैं। उनके शोषावजयने शशा (सगर) के पुत्र भस्म हो जावेंगे ॥ २-३ ॥

[विषामित्र भीरामजीसे करते हैं कि] इन सब महा-शरीरधारी, भयानक वेगवाले, महाबली, राजगुर्जने बर्दा [जाकर] करिब [रूपधारी] सनातन वासुदेव (अर्थात् विष्णु भगवान्) को देला ३२२४

हे काकुत्स्थवंशोत्पन्न रघुनन्दन (राम), तब इन [सगर-पुत्रों]का धर बचन मुनकर करिबने बर्दे शोषके आयेटमें

घाकर 'हु' कर (शब्द) किया। तब उन अग्नेय (अर्घ्य भन, वाची इत्यादि इन्द्रियों परे एवं प्रणवादि प्रमाणोंके अक्षरपर) अग्निप्र महाग्ना (अर्घ्य परमाग्ना) के द्वारा सभी सागरगुण रागके डेर (अर्घ्य भन) कर दिये गये ॥ १६-१० ॥

३—यमठ (कच्छरा) घतार [बालकागड सर्ग ४२]

[विधामित्र मुनि रामर्षीसे गङ्गाघतरण और सागरारण्य की कथा कहकर गङ्गा पार करके उत्तरीरस्थित विशाला-मगरीके राजवंशके सम्बन्धमें पूर्व-वृत्तान्त बर्णन करते हैं]—

पूर्वं वत्पुगे राम दिनेः पुत्रः महाव्रतः।

गदितेश महाभाग वीरवन्तः सुधार्मिकः ॥१५॥

ततस्तेषां नरन्याम मुद्रिरासीन्महप्रदानम्।

अमरा विवराश्विन कथं स्यान्तो निरामयः ॥१६॥

पहले कृत (सत्य) पुगमें महाव्रती वैश्यों और परम धार्मिक देवताओंने सोचा कि हम किस प्रकारसे जरा-भरण्य-रहित हों ॥१५-१६॥

तेषां चिन्तयतां तत्र मुद्रिरासीद्विपथिताम्।

धीरीदमयन् इत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै ॥१७॥

ततो निश्चित्य मयन् योस्त्रं इत्वा च वासुकिम्।

मन्यान् मन्दरं इत्वा ममन्युरमितीरतः ॥१८॥

उन्होंने विचारते हुए यह मत स्थिर किया कि हम समुद्र मयकर उसमें [से] रसको प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ तब [समुद्रके] मथनेका निश्चय करके, और वासुकि (नाग) की मन्यनरञ्जु (जिसे भाषामें डैडिरो वा गेरुबी कहते हैं) एवं मन्दर (पर्वत) को मथानी बनाकर उन अपरिमित बलवालोंने [समुद्रको] मथा ॥१८॥

[तब वासुकि सर्पके शिर महाविषको उगलने लगे, जिससे सब जगत् दग्ध होने लगा। तब तो देवलोग शंकर महादेवजीके पास शरणकी इच्छासे आकर 'त्राहि-त्राहि' पुकारे और स्तुति करने लगे। देवताओंकी स्तुतिको सुनकर देवदेवेश्वर प्रभु (महादेवजी) प्रकट हो गये तब शङ्ख-चक्र-धर हरि (विष्णु भगवान्)ने शूलधारी रुद्रसे सुस्वराकर कहा कि देवताओंके मथनेपर जो बस्तु पहले प्राप्त हुई वह हे सुरधेष्ठ, आपका [भाग] है, अतः आप इस विषको अग्रगण्यरूपसे ग्रहण करें। यह कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और शिवजीने देवताओंका भय देखकर

और शाङ्खर भगवान्का शरण सुनकर बोर शत्रु विषको समुद्रके समान ग्रहण किया। देवताओंके डैडिरो भी बलने बने। देवताओंने फिर मथा प्र किया। तब तो मथानीरूप मन्त्रराज्य पताचने प्र हो गया अतः देवोंने गन्धर्वों समेत पर्वतके उदारको मधुगूरन (भगवान् विष्णु) की स्तुति की। (१९-२१)

इति मुन्ना इरीकेशः कानठं कनकस्थितः ॥२५॥

पर्वतं पृष्ठः इत्वा दिग्मे तनोदधौ हरिः।

परांशं तु लोकप्रना इन्देनाग्रम्य केशः ॥२६॥

देवानां सम्पन्नः रिपता मनन्य पुष्पतनः ॥२७॥

यह [स्तुति] सुनकर इरीकेश हरि (विष्णु भगवान्) ने कश्यपका रूप धारण किया और पर्वतको पीठपर ऊपरी समुद्रमें शयन किया। फिर पर्वतके अग्रभागमें खोकाग्ना पुरुषोत्तम केशधने इत्यसे यामकर देवोंके मन्त्र स्थित होकर मथना प्रारम्भ किया ॥२६-२७॥ छत्र रखी पश्चात् [इस समुद्रमन्यनसे] घन्वन्तरि (वैद्य) शंको अम्भाराष्ट्र और उनकी असंख्य परिचारिकार्य, बलशोक्य (सुरा), उष्वैःअवाः नामक हथ, कौट्यम तब और अन्य निकले (२१-२६) ॥

(४)—विष्णुका 'मोहिनी' (मायातनु) को धारण करना—

[बालकागड सर्ग ४२—(श्लोक ४०-४१)] इत बलने लिये वैश्योंने देवताओंसे त्रिजोकोको बँपानेवाजा महाशय युद्ध किया। सभी अक्षुर राक्षसोंसे मिलकर युद्ध (भोर) हो गये।]

यदा ह्ययं गतं सर्वं तदा विष्णुर्नर्दाकः।

अमृतं सोऽदहत् तूर्णं मायात्मात्सया मोहिनीम् ॥४२॥

ये गतामिनुस्तं विष्णुमयारं पुरुषोत्तमम्।

संविष्टास्ते तदा युद्धे विष्णुना प्रमतिष्णुना ॥४३॥

तब सब कुछ चयको प्राप्त हो गया तबसे महाशयवा विष्णु (भगवान्) मोहिनी (अर्घ्य काम और मोहके उत्पन्न करनेवाली) माया [के शरीर]को धारण करने लगे ही उस अमृतको जे गये ॥४२॥ जो कोई [सुर वा द्रुव] अविनाशी पुरुषोत्तम विष्णुके सामने [अमृतमयके इच्छासे] गये वे सब महासामर्थ्यवान् विष्णुके द्वारा उरने पीस बलने गये ॥४३॥

विषतामोने वैश्योंको बुरी मार मारा । इसप्रकारसे  
एव, वैश्योंका नारा करके, राज्य पाकर मुदित हो, ऋषि-  
चार्यों समेत ढोकोंका शासन करने लगे (४४-४६) ]

५-परशुरामावतार [बालकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक  
११-२४]-रामायतारके प्रसङ्गमें देखिये ।

६-धराहावतार [अयोध्याकाण्ड सर्ग ११०]-  
स वपाहलातो भूला प्रोजहार वसुधराम् ॥ ३ ॥  
तत्र उस [त्रिमूर्ति विराटके विष्वक्वामक षंश] ने धराह  
दोष वसुधरा (पृथिवी) का उद्धार किया ॥ ३ ॥  
[अध्याय ११।२४ श्रीरामायतारके प्रसङ्गमें एवं युद्धकायक  
१०।११ आर्पणवमें देखिये ।]

७-कृष्णायतार [बाल० ४०।२, अरण्य०  
३१।२३]-कपिल और रामके अवतारोंके प्रसङ्गमें  
तथा युद्धकाण्ड ११७।१५ आर्पणवमें देखिये ।

८-विष्णुका ह्यप्रीय-हनन—  
तत्र पञ्चजनं हत्वा ह्यप्रीये च दानवम् ।  
आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुद्गरोत्तमः ॥ (४।४२।२१६)  
यहाँ [अर्थात् उस चक्रवान् नामक पर्वतमें] पञ्चजन  
और ह्यप्रीय दानवको मारकर पुद्गरोत्तम (विष्णु भगवान्)  
ने बहसि [विषकर्म-निमित्त सहचारोंवाला] चक्र और  
शङ्ख छे किया ॥२१६॥

९-श्रीरामायतारका विशद वर्णन—  
यत्र ह्यम श्रीरामायतारके सूचक और विविध स्थलोंसे  
संप्रतिष्ठायः समस्त रामायण-वाक्योंका समावेश यहाँ  
एतारके क्रमसे करते हैं ।

१-(बालकाण्ड सर्ग १५)-  
उठो देशः सगन्धर्वोः सिद्धाश्च परमर्षयः ।  
मत्प्रतिप्रदार्थं वै समवेता यथाविधि ॥ ४ ॥  
उप समेत यथान्यायं तस्मिन्सदासि देवताः ।  
अनुत्तोऽप्यतारं ब्रह्मणे बचनं महत् ॥ ५ ॥  
मन्त्रसकप्रसादेन रावणो नाम राघवः ।  
सर्वान् नो बाधो वीर्याच्छिवुं तं न शकुम् ॥ ६ ॥  
अपीन् ब्रह्मण् सगन्धर्वान् ब्राह्मणान्मुनिंस्तदा ।  
अतिशान्तिं दुर्षते बरदानेन मोदितः ॥ ७ ॥

तन्महजो भयं तस्माद् राजसाद् घोरदर्शनात् ।  
वधार्थं तस्य मगधनुपायं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥  
पवनमुकः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् ।  
हन्तायं विदितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥ २२ ॥  
तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् ।  
अवध्योऽस्मीति वायुका तथैर्युक्तं च तन्मया ॥ २३ ॥  
नाऽकीर्तयदवज्ञानात् तद्रथो मानुषांस्तदा ।  
तस्मात्स मानुषाद्बन्धो मृत्युर्नाऽन्योऽस्य विद्यते ॥ २४ ॥  
पतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।  
देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽमनंस्तदा ॥ २५ ॥

पतस्मिन्नन्दरे विष्णुवधयतो महाशुक्तिः ।  
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा बगत्पतिः ॥ २६ ॥  
वैनतेयं समाकृष्ट मास्करस्तोषदं यथा ।  
वषट्कारककेयूरो बन्धमानः सुरोत्तमैः ॥ २७ ॥  
ब्रह्मणा च समाग्ल्य तत्र तथैव समाहितः ।  
तमह्वन् सुराः सर्वे समभिष्ट्य संनताः ॥ २८ ॥

तां नियोजयामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।  
रातो ददारमस्य त्वमयोप्याविष्टोर्विमो ॥ २९ ॥  
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमोत्तरतः ।  
अस्य मार्यासु तिसृषु हीम्रीहीतुंयमानु च ॥ ३० ॥  
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ इत्वाऽऽज्जाननं चतुर्भिष्यम् ।  
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रबुद्धं लोकेऽप्यकम् ॥ ३१ ॥  
अवध्यं दैवतविष्णो समरे बहि रावणम् ।  
स हि देवान् सगन्धर्वान् सिद्धांश्च ऋषिसत्तमान् ॥ ३२ ॥  
राक्षसो रावणो मूर्खो वीरैरेकेण बाधते ।  
ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाकारस्तथा ॥ ३३ ॥  
कीदन्तो नन्दनवने रौद्रेण विनियतितः ।  
वधार्थं वधमायतास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥ ३४ ॥  
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्तान् शरणं गताः ।  
त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंज ॥ ३५ ॥  
वधाय देवताभूणां नृणां लोके मनः पुष्टं ।  
एवं श्रुत्वस्तु देवेशो विष्णुभिदशगुणः ॥ ३६ ॥  
पिशाङ्गपुरोगांस्तान् सर्वैर्गोचनमसृजः ।  
अब्रवीत् विदशान् सर्वान् सनेदन् चर्नं हितात् ॥ ३७ ॥  
मयं स्तत्रा मयं वो दिशायं मुधि रावणम् ।  
सुपुत्रपैत्रं सामदयं सन्निवृत्तैर्दिवन्वरेण ॥ ३८ ॥



शौभो, अनायो, मन्त्रियों और भाई-बन्धुओंके समेत  
पुढमें मारकर ग्यारह सहस्र वर्षोंतक इस पृथिवीको पावन  
कराया हुआ मनुष्यलोकमें निवास करेगा ॥ २८-३० ॥

इसप्रकार आत्मवान् विष्णुदेवने देवोंको घर देकर  
मनुष्यलोकमें अपनी [ योग्य ] जन्मभूमिका विचार किया।  
वदन्तर [उन] कमलपत्र-जैसे मयनोंवाले [विष्णु भगवान्]  
ने अपने आपको चार प्रकारका करके राजा दशरथको उस  
समय [अपना] पिता [बनाना] चाहा। तब हृद और  
असुराओंके गणों समेत देवों, अश्वियों और गन्धोर्वने  
सिम्बरूप स्तुतियोंसे मधुसूदन (भगवान् विष्णु) को प्रसन्न  
किया ॥ ३०-३२ ॥—

उस उदत्त, उग्र तेजवाले, महाभिमानी, हृन्मयान्,  
[त्रिलोकीको] रजानेवाले, तपस्वियोंके भयदायक,  
साधुओं और तपस्वियोंके उस प्रसिद्ध राक्षसरूप कष्टकको  
[समूल] उन्मूलन करो ॥ ३३ ॥ हे देवप्रेष्ठ (उपेन्द्र),  
उस [त्रिलोकीको] रजानेवाले, उग्र पौरुषवाले राक्षसको  
मेरा और वाग्धियों समेत मारकर ही शिरकाजके बिधे  
सम्पाररहित [होते हुए तुम अपने द्वारा] रक्षा किये गये  
पाने [वैकुण्ठनामक] स्वर्गलोकमें [जो रागादि] दोष  
[कर] कर्मों [मलों] से रहित [है] थाशो ॥ ३४ ॥  
२—(पालकाण्ड सर्ग १६)—

तयो नामाणो विष्णुर्निमुक्तः सुरसत्तमैः ।  
बनजपि सुरानेवं श्रवणं बचनमवनीत् ॥ १ ॥  
उपायः को बधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः ।  
यमदं तं समास्थाय निद्वन्द्यामृषिच्छष्टकम् ॥ २ ॥  
परमुक्तः सुराः सर्वे प्रत्यूजुर्विष्णुमन्वयम् ।  
मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संतुगे ॥ ३ ॥  
स हि त्वे तपस्वीर्नि दीर्घकाशमरिन्दगः ।  
वेन तुष्टोऽपदद्वन्दा लोकहन्त्येकपूर्वजः ॥ ४ ॥  
संज्ञः प्रदती तस्मै राक्षसाय नरं प्रभुः ।  
नलादिबन्धो मूढेभ्यो भयं नात्यथ मानुषात् ॥ ५ ॥  
अरुजताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः ।  
एते पिशाचदात् तस्याद् वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥  
अगारुषी लोकंश्रीन् सिंघदधापुपुच्छसि वि ।  
दत्तात् तस्य बधो ददौ मानुषेभ्यः परंउप ॥ ७ ॥  
इनेउत्तचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुराजवान् ।  
पितरं शेषनामात् तदा दत्तारवं नृपम् ॥ ८ ॥

स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तरिम्न काके महासुप्तिः ।  
अयजत् पुत्रियामिष्टिं पुत्रेभुररिसूदनः ॥ ९ ॥  
स कृत्वा निदचयं विष्णुरामान्य च पितामहम् ।  
अन्तर्धाने गतो दैवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ १० ॥

ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् ।  
प्रादुर्भूतं महदभूतं महावीर्यं महाबलम् ॥ ११ ॥  
दिव्यपायससंपूर्णां पार्श्वीं पत्नीमिव प्रियाम् ।  
प्रगृह्य निपुलां दोर्ग्यां स्वपे मायामधीमिव ॥ १२ ॥  
समवेद्यात्रवीदनात्मनिदं दशरथं नृपम् ।  
प्राजापत्यं नरं सिद्धिं मामिहाम्भ्यामन्नं नृप ॥ १३ ॥  
एदं तु नृपसाईरुह पायसं देवनिर्मितम् ।  
प्रजाकरं गृह्णाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ॥ १४ ॥  
भायिणात्मनुरूपाणामश्नन्ति प्रियच्छ वै ।  
तासु त्वं हस्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप ॥ १५ ॥  
सोऽन्तःपुरं प्रतिद्वेष्य कौस्तुभामिदमजनीत् ।  
पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमामनः ॥ १६ ॥  
कौस्तुभयै नरपतिः पायसाय ददौ तदा ।  
अर्धादर्थं ददौ चापि सुमित्रायै नरापिकः ॥ १७ ॥  
कैकेयै चाऽवशिष्टार्थं ददौ पुत्रार्थंभारणात् ।  
प्रददौ चाऽवशिष्टार्थं पायसस्वामृतोपमम् ॥ १८ ॥  
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुत्रेव महामतिः ।  
यत्वं तासां ददौ राजा मायाणां पायसं पुषद् ॥ १९ ॥  
ततस्तु ताः प्रादप्य तमुत्तमसिधेयं  
महीपतेदत्तमपायसं पुषद् ।  
हुताशनदिल्लसमानजेजसे-  
अधिरण्यमर्मान् प्रतिपिरे उरः ॥ २० ॥  
तब अष्ट देवोंसे नियुक्त (प्रापित वा प्राप्त) हुए  
मायाय विष्णु (भगवान्) [राक्षसके बधके उपायको]  
जानते हुए भी देवताओंसे [उनके अधिनीतपन और अज्ञा  
सुधानेके अधिनायके, अज्ञकी नाई] इसप्रकार मजुर बचन  
बोले ॥ १॥ हे देवताओ, उस राक्षसके अधिपतिके बधमें  
कीवत्ता उपाय है त्रियम्बा काभय क्षेत्र मैं उस अधियोंके  
कष्टकको मारूँ ॥ २॥  
येसे अरे गये सब देवता ओगोंने अधिनायी (अधिपति)  
विष्णु (भगवान्) को उपाय दिया कि तुम मायकरूपको  
भारण्य करके पुढमें राक्षसको मारो ॥ ३ ॥ क्योंकि

उस शत्रु-दमनकारी [ रावण ] ने वीर्यकाष्ठतक कठिन तप किया था जिससे लोकोके पूर्वज [ तप्या ] खोकलष्टा महाजी प्रसन्न हुए ॥१॥ सन्नुष्ट [ होकर ] प्रभु ( महाजी ) ने उस राक्षसको मनुष्यसे भिन्न भन्व्य नाना प्रकारके प्राणियोंसे भय न होनेका वर दिया ॥१॥ क्योंकि वरदानमें उसने पहले ही मनुष्योंको तुच्छ कहा था । इसप्रकार उन पितामह ( महाजी ) से [ पाये हुए ], वरदानसे गर्वित [ हुआ वह ] तीन लोकोको पीड़ित कर रहा है और क्षियोंको भी उठवा लेता है । इस कारणसे हे शत्रुको तपानेवाले ( भगवान् ), उसका वध मनुष्योंसे [ होना ] निश्चित है ॥१-७॥

धामवान् विष्णुने देवोंके इस धचनको सुनकर राजा दशरथको उस समय पिता [ बनाना ] चाहा ॥२॥ उस समय ( जब भगवान् की धयतार खेनेकी हृष्टा हुई तब ) उन महाप्रकाशयुक्त और शत्रुओंका नाश करनेवाले अपुत्र राजा ( दशरथ ) ने भी पुत्र-प्राप्तिकी हृष्टा करते हुए पुत्रेष्टिका यजन किया ॥३॥ यह विष्णु ( भगवान् ) [ ययतारविपयक ] निधय करके और पितामह ( महाजी ) को धामन्त्रितकर ( धर्मान् में चबता हूँ ऐसा कहकर ) देवों [ और ] महर्षियोंसे प्रीति होते हुए धन्तर्धान हो गये ॥३-७॥

तब ( धर्मान् विष्णुके धन्तर्धानके धनन्तर ही ) यजमान ( दशरथ ) के [ यज्ञसम्बन्धी ] धनितसे अतुल्य प्रभावाका ( धर्मान् विजयी हृत्पादिके समान जिसके तेजके सामने धार्त्त न टहर सके ऐसा ध्याज्यव्यमान ) महापख-धीर्पवाका विराज प्राची प्रकट हुआ [ यह विराज प्राची 'रको विष्णुर्दृष्टम्' के अनुसार स्वयं विष्णु ही थे जो धन्तर्हित होकर धरने तेजसे समग्र पापमको धिये हुए होमाग्निसे प्रकट हुए, क्योंकि भगवान् का तेज धारण करनेकी शक्ति धन्तर्हित नहीं है—तीकाकार भीरामकृत तिजकन्याख्या ] ॥३॥.....'रिम्ब पावस ( धीर ) से पूर्ण विराज मायामयी पात्रोंको, मायो दिवा धर्माको, दोनों बाहुधर्मि स्वयं धरय करके ॥३॥ राजा दशरथको देखकर वह बाण्य बोला कि हे राजन्, तुम मुझे नहीं जाना हुआ प्रजागिका [ मेरा हुआ—धन्तर्हित ( प्रजागिका ) विष्णुने धरय हुआ—धर्मान् विष्णुकृत ] पुत्र्य जानो ॥३॥ हे राजन्, तुम हय धन्व ( धरय ) [ और ] धारोन्व-धर्त्तक [ लया ] देव ( धन्तर्हित ) हाण विम्बि [ धर्त्त ] इना ( सन्तर्हित ) के देवके धन्वको धरय करो ॥३॥ [ और धरत्त ] धनुष्य ( धन्व ) धर्माको हे देव कि वे

सा हैं । उनमें तुम पुत्रोंको प्राप्त करोगे जिनके त्रिो राजन् ! यज्ञ कर रहे हो ॥२-७॥

वह ( राजा ) धन्तर्हितके बाहर धीपयते हे व बोले कि यह धरनेको पुत्र देनेवाका पावप हो ॥३॥ सधनन्तर राजाने धाया पायस कौसल्याको दे दिया । कौ सुमित्राको भी राजाने [ शोच ] धायेनेके धाया ( धर्मान् पूर्ण पायसका धर्मान् ) दे दिया और कैकेयीको धरित ( धर्मान् ) का धाया ( धर्मान् सभका धरित ) धु प्रयोजनके कारणसे दिया और पुनः क्लामति ( लय ) सुमित्राको [ कैकेयीकी धरिषा नहीं होने ( ) और कौसल्या धरिषा छोटी होनेका ] विचार करके पायसका धरय-धरिषाधर्त्त ( धन्व धर्मान् ) का कैकेयीसे धाया हुआ धर्मान् समस्तका धरिषाका जो धर रहा था ) दे रहा इसप्रकार राजाने उन धर्मान्को धरय धरय [ विष्णुके पायसके दिया । [ कालिदास ( धनुष्य सर्ग १० ) के ३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१-१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९-१३०-१३१-१३२-१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८-१४९-१५०-१५१-१५२-१५३-१५४-१५५-१५६-१५७-१५८-१५९-१६०-१६१-१६२-१६३-१६४-१६५-१६६-१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४-१७५-१७६-१७७-१७८-१७९-१८०-१८१-१८२-१८३-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८-१८९-१९०-१९१-१९२-१९३-१९४-१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३-२०४-२०५-२०६-२०७-२०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१००० ]

३-( बालकाण्ड सर्ग १३ )-

पुत्रं तु मे प्रियो राजस्य भद्रम् ।  
 क्वाच देवतः ततो वरं दृष्ट्वा तदा ॥ १ ॥  
 मधुकन्याय शोच्यते ततो मे प्रियम् ।  
 प्रियो महाबन्धुर्हितः सुहृत्सु वनवर्त्तनम् ॥ २ ॥  
 महाविराज सुवीर्य सुहृत्सु वनवर्त्तनम् ॥ ३ ॥  
 महाबन्धु सुहृत्सु वनवर्त्तनम् ॥ ४ ॥

मकरसु च मुखासु गन्धर्वीणां तनुषु च ।  
 वज्रपद्मगङ्गानासु ऋद्धिविद्याधरीषु च ॥ ५ ॥  
 किरीटीणां च मानेसु वानरीणां तनुषु च ॥  
 सूत्र्यं हरिरूपेण पुत्रांस्तुत्यपराक्रमान् ॥ ६ ॥  
 ते तपोव्रता भगवता तत्रस्त्रियुग शसनम् ।  
 जनवामासुरेवं ते पुत्रान् वानररूपिणः ॥ ८ ॥  
 ऋषयश्च महत्प्रमानः सिद्धविद्याधरोरगाः ।  
 चारण्याश्च सुतान् वीरान् समुजुर्नभारिणः ॥ ९ ॥  
 ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशश्रीवन्धवाः ॥ १७ ॥  
 अग्रमेवका वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः ।  
 ते ग्राचलसंक्रान्ता वपुष्पन्तो महाबलाः ॥ १८ ॥  
 ऋषवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवमीनशिरे ।  
 तस्य देवस्य सद्रूपं देवो मथ पराक्रमः ॥ १९ ॥  
 अजायत सर्वे तेन तस्य तस्य पृथक् पृथक् ॥

विष्णुके उस महात्मा राजाका पुत्रत्व प्राप्त करनेपर  
 स्वयम् भगवान् ( ब्रह्माजी ) सब देवताओंसे यह बोले  
 ॥ १ ॥ [ हे देवो ! तुम लोग ] सब प्रतिज्ञावाले, वीर और  
 हम सबका हित चाहनेवाले विष्णु ( भगवान् ) के—बली,  
 हृष्णाशुमार रूप धारण करनेवाले, मायांके जाननेवाले, धर,  
 वेगमें धातुके समान वेगवाले, नीति धाननेवाले, बुद्धिशाळी  
 और विष्णुसदृश पराक्रमी—सहायकोंके उत्पन्न करो ॥ २-३ ॥  
 .....सुख च्यवताराधोमै, गन्धर्व-क्षियोंके शरीरोंमें, यचों  
 और नागोंकी कन्याओंमें, ऋषों और विद्याधरोंकी क्षियोंमें,  
 और किन्नरियोंके शरीरोंमें तथा वानरियोंके शरीरोंमें [ तुम  
 लोग अपने अपने ] समान पराक्रमवाले पुत्रोंको वानररूपसे  
 ..... उत्पन्न करो ॥ २-६ ॥ भगवान् ( ब्रह्माजी ) से  
 देवा कहे गये उन [ देव ] लोगोंने उस शसन ( धाशा ) को  
 धारण करके हल ( धागे कहे हुए ) प्रकारसे वानररूपी  
 पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ ऋषियों, महात्माओं, सिद्धों,  
 विद्याधरों, नागों और चारण्योंने वनमें विचरनेवाले वीर  
 पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ .....पेसे अपनेकों सहस्र  
 [ वानर ] सृष्टे गये [ जो ] रावणके वधमें उद्यत [ होंगे ]  
 ॥ १० ॥ वे अनित बबवाले, वीर, विक्रमशाळी, हृष्णाशुमार  
 रूप धारण करनेवाले, हस्ती तथा पर्यंतके सदृश [ आकार-  
 वाले ], सुन्दर, महाबली, ऋच, वानर. वीर गोपुच्छ  
 ( गोआहू-आतिके बन्दर ) शीघ्र ही उत्पन्न हुए । जिस  
 [ जिस ] देवका जो रूप, वेच और जो पराक्रम है उसीके  
 सुख पृथक् पृथक् उस उस [ के पुत्र ] का [ भी रूपान्ति ]  
 उत्पन्न हुआ ॥ १८-२० ॥ .....

४—( बालकाण्ड सर्ग १८ )—

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः ।  
 तत्रश्च द्वादशे मासे चैत्रे नामिके तिथौ ॥ ८ ॥  
 नक्षत्रेऽदितिदेवले स्वीचसंस्थेषु पञ्चसु ।  
 ग्रहेषु कर्कटे लग्ने नाकपताविन्दुना सह ॥ ९ ॥  
 प्रोद्यमाने जगत्पायं सर्वलोकनमस्कृतम् ।  
 कौस्तल्याऽजनयद्दामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ १० ॥  
 विष्णोरर्चं महाभागं पुत्रमैश्वरानुनन्दनम् ।  
 लोहितार्धं महाबाहुं रकोर्धं दुन्दुभिस्वनम् ॥ ११ ॥  
 कौस्तल्या सुशुभे तेन पुत्रेणाऽमितेजसा ।  
 यथा वरेण देवानामादितिर्वैश्रवाणिना ॥ १२ ॥  
 भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।  
 साहाद्विष्णोश्चतुर्मांसैः सर्वैः समुदितोगुणैः ॥ १३ ॥  
 अथ लक्ष्मणसुशुभौ सुमित्राऽजनयत् सुतौ ।  
 वीरौ सर्वोत्तकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥ १४ ॥  
 पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसवधीः ।  
 साप्यं जातौ तु सौमित्रौ कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥ १५ ॥

सब यज्ञके समाप्त होनेपर षः ऋतु व्यतीत हो गये ।  
 उस समय बारहवें मासमें, चैत्र [ शुक्ल ] नवमी तिथिको,  
 अदिति देवतावाले ( पुनर्वसु ) नक्षत्रमें, पाँच ग्रहों ( सूर्य, मंगल,  
 शनि, बृहस्पति और शुक्र ) के ऊँची राशियों ( क्रमशः मेष,  
 मकर, तुला, कर्क और मीन ) में स्थित होनेपर, तथा  
 चन्द्रमासहित बृहस्पतिके कर्कट लग्नोदयमें वर्तमान होते  
 हुए—कौस्तल्याने विष्णु अर्चणोंसे संयुक्त, जगत्के नाय,  
 सब लोकोंसे नमस्कृत ( धयवा—सर्वलोकरूप धरान्  
 विराटरूप और नमस्कार किये गये—इससे यह स्थित होता  
 है कि रामके प्रकट होनेके समय माताने उनके विराट् रूपका  
 द्दाम किया और उससे विस्मित होकर नमस्कार किया  
 था जिससे तत्काल ही भगवान्ने बाहकका रूप धारण  
 कर लिया—तिलककल्याण्य । इसी भावको गोरगामी  
 तुलसीदासजीने—

“अथ प्रगट् कृपाला दीनदयाला कौस्तल्याहितकारी,  
 हर्षित महतारी मुनिमनहारी अदमुत्तरूप निहारी ॥”  
 “कह दुहुँकर जोरी अस्तुति ठोरी केहि निधि करौ अनन्ता ॥”  
 “सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना हूइ बलक सुरमूपा ॥”  
 —हृष्याक्षि सुन्दरोंमें दर्शाया है ।, विष्णुके अर्चों, स,  
 महाभाग, रचनेवाँवाले, ऋषी भुजाओंवाले, आच धाँठों-



पात्रे, पुत्र्युमिके समान शब्दवाले, इषाङ्ग-शंशको धानरिक्त कनेयाले पुत्र रामको जना ॥ ८-११ ॥ उन अमित तेज-पात्रे पुत्रसे कौसल्या ऐमी शोभिग हुई जैवे देवनागमें भेद्य इन्द्रसे अदिति ॥ १२ ॥ सत्य पराक्रमवाला धीर साचाप विष्णुके सब गुणोंसे युक्त अतुर्पांश भरत नाम [ पुत्र ] कैकेयीमें उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ तदनन्तर सुमित्राने विष्णुके अर्पांशसे संयुक्त, धीर धीर सत्य अर्क्षोंमें कुशल लक्ष्मण धीर शत्रुघ्न [ नामक दो ] पुत्रोंको जना ॥ १४ ॥ निर्मल बुद्धियाले भरत पुत्र ( नक्षत्र ) धीर मीन जन्ममें उत्पन्न हुए । तथा सुमित्राके दोनों ( यमज ) पुत्र सार्य ( अर्पांश धारलेया नक्षत्र ) में तथा कई-लक्षमें सूर्य ( धी उच्च स्थिति ) के समय उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

[ इसप्रकार पाशुमीक-रामायणमें जन्म-पत्रका विराद वर्णन होना इस बातका सूचक है कि उस प्राचीनकालमें भी फलित ज्योतिषका माहात्म्य ऐसा ही सत्य माना जाता था जैसा वर्तमान कालमें है । तिलकव्याख्याकार श्रीराम वर्माने 'विष्णोरर्धम्' का अर्थ यह किया है कि विष्णु भगवान् तो शङ्ख, चक्र और अनन्तसे विशिष्ट हैं परन्तु राममें शङ्ख-चक्रादिका अभाव होनेसे विष्णुके कुछ कम भाषे राम थे, (पहले भी अर्णोंके मतसे तिलककार कौसल्याके भागमें भाषे हुए पायसको  $\frac{2}{3}$  यथा चुके हैं) । इसीप्रकार भरतके सम्बन्धमें 'अतुर्भांग' का अर्थ भाषे पायसके अतुर्भांग न्यून अर्थात् समस्त चरके  $\frac{2}{3}$  के अनुसार 'अतुर्भूते भागश्चतुर्भांगः' किया है । तथा सुमित्राके पुत्रोंके सम्बन्धमें 'विष्णोरर्धसम्पत्ति' का अर्थ 'रामके एक भागसे युक्त' करते हुए दोनोंमेंसे मध्येके 'पायसका अष्टमांश' होनेका समर्थन किया है । परन्तु यदि श्रींषा-तानीके द्वारा ही राम और भरत विष्णुके  $\frac{2}{3}$ ,  $\frac{2}{3}$  तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न  $\frac{1}{2}$ ,  $\frac{1}{2}$  अंशवतार सिद्ध किये जा सकते हैं—तो इसकी अपेक्षा अधिक सरलतासे पूर्व कथनानुसार राम तो  $\frac{2}{3}$  धीर लक्ष्मण  $\frac{1}{2}$  तथा भरत, शत्रुघ्न मध्येके  $\frac{1}{2}$  अंशवतार यहाँ भी सिद्ध होते हैं । यथा 'विष्णोरर्धम्' का अर्थ रामके सम्बन्धमें स्पष्ट  $\frac{1}{2}$  अंश है । भरतके सम्बन्धमें 'साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भांगः' का अर्थ होगा साक्षाद्विष्णु ( अर्थात् राम,  $\frac{1}{2}$  ) का अतुर्भांग ( अर्थात्  $\frac{1}{2}$  ) । एवं लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सम्बन्धमें 'विष्णोरर्धसम्पत्ति' के अर्थमें 'अर्ध' शब्दकी आवृत्ति करके विष्णु ( राम ) के भाषे ( अर्थात् समस्तके  $\frac{1}{2}$  ) लक्ष्मण और 'तदर्थ' ( उससे

भाषे अर्थात् समस्तके  $\frac{1}{2}$  ) शत्रुघ्न । सर्वथा शर्लकी रामायणमें सिद्ध है कि चारों माई विष्णुके ( न्यून चार रूपोंमें ) अवतार थे । ]

५—(बालकाण्ड सर्ग २६)—

[ इस लेखमें सर्वप्रथम नामनावतारके सम्बन्धमें इ सर्गके जो श्लोक ( २-४ धीर १३-२२ ) उद्धृत किये चुके हैं उनके अन्तमें विधामित्रमी रामने कह चुके हैं । इस सिद्धाभ्रममें पहले नामनावतारवारी विष्णु उक्त करके सिद्ध हो चुके थे उसीमें आनकड में रत्ना हैं अर्थात् यह सिद्धाभ्रम प्रथम विष्णु भगवान् ( धानन ) धीर अनन्तर उनकी मन्त्रिये मेरा है । उसीके भाषे अर्ध— ]

एनमाश्रममायान्ति राष्ट्रसा विप्रचारिणः ।  
अत्र ते पुरुषव्याप्त दन्तव्या दुष्टचारिणः ॥२१॥  
अथ गच्छामहे राम सिद्धाश्रममुत्तमम् ।  
तदाश्रमपदं तत्र तवाऽप्येवमुद यथा मम ॥२२॥

इस आश्रममें [ यज्ञ- ] विप्रकारी राष्ट्र छोटे हैं । हे पुरुषोत्तम ! यहाँ उन दुराचारियोंको भारतना कष्टिरे ॥२१॥ [ कारण यह है कि ] हे राम ! आज हम उस सर्वशुभ्र का को चल रहे हैं, यह आश्रम जैसे मेरा है वैसे ही है हा तुम्हारा भी है ॥ २२ ॥

[ इसपर तिलककारने भी उचित ही खिला है कि—'हे तदेतदाश्रमपदं यथा मम स्वभूतं तथा तथापि निष्पन्नव्यापि गूढोऽभिसन्धिः ।' अर्थात् हे तात ! इस आश्रम स्थानमें ही ममता मेरी है वैसे ही तुम्हारी भी है ; क्योंकि तुम उन विष्णुके अवतार हो जिन्होंने नामरूपसे इस आश्रम अपनाया था—यह गुणार्थ है । ]

[ यदि यह कहा जाय कि अयोध्याके राष्ट्रके अर्ध होनेसे ही सिद्धाभ्रममें रामकी भी ममता विधामित्रको ही थी जिससे उसे अपवित्र करनेवाले राष्ट्रसोंका विनाश कर रामके जिये आवरणक था । तो उत्तर यह है कि अर्धता होनेसे दशरथ भले ही इस सुहृदकी सिद्धाभ्रमके ही स्वामी हो सकते हैं परन्तु राम को अभी तक सुनाई नहीं हुए थे और जो वनवासकी अवस्थामें बाबित्तव रूपी समस्त अवसरोंपर सदा यही कहा करते थे कि राम ही पृथिवी भरतकी है और मैं केवल उनके चारोंमें अर्ध

शोक दुःखों का शासन और शिष्टों का रक्षण करता हूँ, वे किसी सुस्थिते प्रभोतक सिद्धाभमके 'स्वामी' नहीं ठहर सकते। अतः विष्वक्वतारके ही सम्बन्धसे विरवामित्रके वाचककी सप्रति वच सकती है, अन्यथा नहीं।]

[यह कथा असंगत वा प्रक्षिप्त भी नहीं हो सकती, क्योंकि यह पिछले सर्ग २८ के निम्नलिखित प्ररनका उत्तरमात्र है—

सर्व मे शीत भगवन् कस्याभ्रमपद् स्विदम् ।  
सप्रप्राता यत्र ते पापा ब्रह्मणा दुष्टधारिणः ॥२०॥

हेभगवन्! मुझसे सब कहो कि यह आभ्रमरयान किसका है (और वह कौन स्पष्ट है) जहाँ वे वेदविनाशक द्वाराधारी पानी आते हैं ॥२०॥]

६—(वाल्मीकाण्ड सर्ग ७६)—

तेजोर्मितवीर्यत्पाम्नामदग्न्वो जडीकृतः ।

रामं कमलपत्राहं मन्दमन्दमुवाच ह ॥१२॥

अङ्गयं बहुहन्दारं जानामि त्वां सुरेन्द्रवरम् ।

चतुर्गण्डस्य परामर्शात् स्वस्ति तेषु परन्तप ॥१३॥

एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः ।

त्वामप्रतिमङ्गलार्थमप्रतिब्रह्मवाहने ॥१४॥

न चेवं तव काकुत्स्थ ऋषिः भवितुमर्हति ।

त्वा त्रैलोक्यमयिन यदहं विमुक्षीकृतः ॥१५॥

एवं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।

लङ्काः प्रदक्षिणीश्वरव जगामात्मगतिं प्रभुः ॥१६॥

[अपने वैष्णव] तेजों [के राममें जाकर प्रविष्ट होने]के

कारण शीघ्ररहित हो जानेसे जड़समान हुए जमदग्नि-पुत्र

(दाशरथी), कमलपत्र-सदृश नेत्रोंवाले रामसे धीरे-धीरे बोले

॥१२॥.....हे शत्रुघ्नोको तपानेवाले (विष्णुरूप राम),

इस चतुर्गण्डे परामर्श (ग्रहण, आकर्षण, हृत्पादि) के

कारणसे तुममें, सच न हो सकनेवाले, (आदि और अन्तसे

रहित), तथा मनु (नामक राक्षस) को मारनेवाले, एवं

सुबोके पाप स्वामी (अर्थात् साक्षात् विष्णु भगवान् ही)

मान गया हूँ। तुमहें स्वस्ति (मङ्गलकी प्राप्ति) हो ॥१३॥

चतुर्गण्डे कर्म करनेवाले, एवं सुदमें प्रतियोगिद्वाराहित

मुझको से सब आये हुए वैषण्य देख रहे हैं ॥१३॥

हे कङ्कणवर्णोत्तम (राम), और जो त्रिलोकीके नाथ

होते हुए तुमने मुझे अरुणत कर दिया, यह तुम्हारे लिये

कोई लक्ष्मीकी यात नहीं होनी चाहिये [तिलककारकी व्याख्याके अनुसार—इससे परशुरामने अपनेको भगवान्का अंश होना और रामजीका पूर्ण भगवदवतार होना सूचित किया। भाव यह है कि अपनेसे भिन्न द्वारा अशक्त किये जानेमें लज्जा होती है न कि अपने भाप मायाके द्वारा वैसा हो जानेमें। इस स्पवहारका प्रयोजन यह प्रतीत होता है कि दया करके दशरथादिके प्रति स्वरूपका बोधन हो तथा राममें पूर्ण तेज आ जावे। क्योंकि यदि विष्णुका तेज किसी अंशमें भी अन्यत्र (बिखरा) रहता तो रावणका वध दुष्कर होता। इसीलिये (मूलमें) एवं ही कहा जा चुका है कि रावणका वध चाहनेवाले देव-गन्धर्वादि लोग देखने आये थे ] ॥१२॥  
.....तत्र जमदग्नि-सुत [परशु-] राम प्रभु [स्वयं भी] प्रपूजित होते हुए दशरथ-पुत्र रामकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थानको चले गये ॥२४॥

[ यहाँ श्लोक १२ में यदि रामके विष्णु होने और परशुरामके भगवदंश होने, और इसी कारणसे परशुराम (रूप भगवान्के अंश) का पराजय पूर्ण भगवान्की जज्ञाका हेतु होनेमें रामायणकारका अभिप्राय न माना जावेगा तो यह वाक्य ही असंगत हो जावेगा क्योंकि दूसरेके कारण दूसरेको लज्जा होना बिल्कुल उल्टी बात है। अतः श्लोक १२ के अभिप्रायसे और श्लोक २४ में आये हुए 'प्रभु' पदसे परशुरामका अंशावतार होना सूचित होता है। और परशुराम मादग्न्व होकर भी अत्रिय रामकी प्रदक्षिणा करते हैं इससे भी भीरामजी विष्णुके अवतार सिद्ध होते हैं। ]

७—(अयोध्याकाण्ड सर्ग १)—

सर्व एव तु तस्यैवाभ्रवतारः पुरुषर्षभा ।

स्वशरीरार्थिनिर्वृत्ताभ्रवतार इव नाहवः ॥१॥

तेषामपि महततेजा रामो रतिकरः पितुः ।

स्वयममूरिन भूतानां नभून् गुणवत्तरः ॥६॥

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थीभिः ।

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनतनः ॥७॥

[भीरामके यौवराज्याभिरपेककी भूमिकासे अयोध्याकाण्ड-का प्रारम्भ करते हुए, और तत्सम्बन्धमें भरत और शत्रुघ्नके अपने मातुल (मामा) भरवपतिके यहाँ जाकर धृद पिताका स्मरण करने, और पिताके पुत्रोंका स्मरण करनेकी सूचना देकर, भीरामायणकार लिखते हैं कि—]

उन (राजा दशरथ) को पुरुषोंमें श्रेष्ठ सब चारों ही [पुत्र] ऐसे प्रिय थे जैसे [विष्णुको] अपने शरीरसे निकली हुई चारों भुजाएँ ॥६॥ उन (चारों) में भी महावेज्रवी राम पिताको [विशेष] भ्रानन्ददायक (अत्यन्त अभिमत) और [सब] प्राणियोंके मध्यमें स्वयम्भू (महाजी) के समान अधिक गुणवान् थे ॥६॥ क्योंकि वे वर्षपूर्वक रावणका वध चाहनेवाले देवोंसे प्रार्थित हुए सनातन विष्णु [ थे जो ] मनुष्यजोकेमें जन्मे थे ॥७॥

८—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४)

चिरस्य सजु काकुत्स्थ पदमाय्यहमुपागतम् ।

श्रुतं तव मया चैव विवासानकारणम् ॥२१॥

[ प्रयागमें भरद्वाज मुनि रामसे कहते हैं कि— ] हे काकुत्स्थ ! मैं निश्चयही तुम्हें बहुत कालके पश्चात् [मेरे] समीप आया हुआ देख रहा हूँ और मैं तुम्हारे अकारण विवासान (घरसे निकाल दिये जानेकी बातों) को सुन चुका हूँ ॥२१॥

[ तिलककारने 'बहुत कालके पश्चात् आया हुआ देखने'के दो अर्थ निकाले हैं (१) कदाचित् राम पहले भी प्रयागमें भरद्वाजका दर्शन कर चुके थे (२) अथवा पूर्वकल्पके रामावतारमें उनका प्रयागागमन भनमें रखते हुए भरद्वाजने ऐसा कहा हो । हमारी दृष्टिमें धारमिकी रामायणकारको रामका इस जन्ममें कभी पहले प्रयाग आकर भरद्वाजमुनिके दर्शन करना अभीष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि रामायण वा किसी अन्य ग्रन्थमें ऐसे पूर्व आगमनका कोई प्रयोजन अथवा सङ्केतमात्र भी नहीं मिल रहा है । अतः रामायणकारने 'सूर्याचन्द्रमसौ भाता यथा पूर्वमकल्पयत्' के सिद्धान्तानुसार पूर्वकल्पसम्बन्धी रामावतारके प्रयागागमनको चिरजीवी भरद्वाजमुनिके मुखसे स्वीकार कराया है वही पक्ष रोप रह जाता है । अतः यह प्रसङ्ग भी रामायणकारके माने हुए अवतारवादका पोषक है । ]

९—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ११०)—

इयं लोकसमुत्पत्तिं लोकनाय निबोधमे ॥२१॥

[ जाबाबिके बचनोंसे रामको कुछ हुआ जानकर वसिष्ठजी रामको समझाते हैं— ] हे लोकोंके नाय ! इस जगदुत्पत्तिको तुम्हसे समझो [ यहाँ 'लोकनाय' का अर्थ 'प्रजा-जनोंके स्वामी' वा 'राजा' नहीं हो सकता क्योंकि (१) दशरथके मर जानेपर पिता-माताके आदेशानुसार राजा तो भरत होते, न कि राम, (२) 'लोक-समुत्पत्तिम्' पदमें 'लोक' का अर्थ 'भूमिः (पृथ्वी)' है वही 'लोकनाय' में भी इस

लिये होना चाहिये कि जो 'लोकोंका नाय है उसे लोककी उत्पत्ति जाननी चाहिये' (३) तिलक्याण्यकी भी लिखा है—'लोकनायैत्यनेन लोकनायकावतारं भवति कि 'लोक-नाय' पदसे जगदुत्पत्ति (विष्णु) का अवतार सूचित करते हैं ] ॥२॥

१०—(अरण्यकाण्ड सर्ग २७)—

सुरप्रिथिरसा तेन मृत्युलोमाद् प्रसदितः ॥६॥

[ सूर रामसे खड्गे का रहा था । परन्तु त्रिशिरसे विभीषणके समान ही राक्षसोंके स्वभावसे विपरीत भावना या आकर खरसे कहा कि तुम न जाओ किन्तु मुझे लोको यदि तुम्हसे राम मारे गये तो वर्षपूर्वक जनस्थान (सकल) को खीट जाना, परन्तु यदि मैं मारा गया तो वर्षपूर्वक रामसे खड्गे जाना । इस प्रकार ]—

उस त्रिशिराने [ अन्तकालमें भगवत्कालके वर्षान्तक उन्हींके हाथसे ] मृत्यु पानेके क्षोभसे खरको प्रसन्न कर लिया [ और खरसे आज्ञा पाकर घोड़ोंवाले सुन्तल त्रिशिरा युद्धमें श्रीरामजीके अभिमुख गया ] ॥१०॥ [सर्गके श्लोक १० में रामके लिये 'अप्रमेयाणां' शिरोधार भी दिया गया है । ]

११—(अरण्यकाण्ड सर्ग ३१)—

[ अकम्पन नामक राक्षसने लङ्कामें जाकर राक्षस जनस्थानस्थित खरादि राक्षसोंके रामहाता मारे जाने की अपने वचन देनेकी बातों कही जिसपर राक्षसने अन्तकाली आकर राम-अभयको मार डालनेका निश्चय किया । अकम्पनी निम्नलिखित शब्दोंमें यह बात असम्भव बतलायी और रामके मृत्युका एकमात्र उपाय सीताहरण और लक्ष्मण-दुःख बतलाकर रावणको सीतापहरणके लिये प्रेरित किया ]—

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महावशाः ।

आपगमास्तु पूर्णया वेनं परिरेच्छते ॥२१॥

सताराप्रहनध्वजं नमश्चायवत्सदयेत् ।

असी रामस्तु सीदन्ती श्रीमान्मृत्युदोन्महीत् ॥२२॥

मित्रवा वेतो समुद्रस्य दोहानद्राववेदिम् ।

वेगं वापि समुद्रस्य वापु वा निषेच्छते ॥२३॥

संहरत वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महावशाः ।

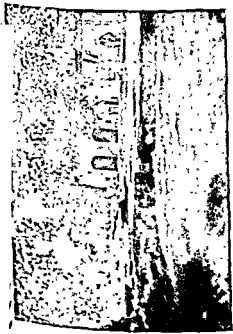
शक्तः श्रेष्ठः स पुनः सप्तं पुनरपि व्रतः ॥२४॥

न हि रामो दशप्रियं शक्नोति मेतुं रणे तथा ।

रक्षसां वपि रोकेन स्वर्गः कथमेतत् ॥२५॥



मीनाका रमोई



भारत मन्दि





काशी (विश्व)



काशी (विश्व)



न तं नश्यद् मन्ये सर्वैरेवासुरैरपि ।

कथं तस्य बधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥२८॥

महायशवाले राम कुपित होनेपर [ यगके समान संहारमें प्रवृत्त होते हुए किसीके भी ] विक्रमसे [ मन्नादि-इत्यादी ] रोके नहीं जा सकते । किन्तु वे बाध-धर्या करके पूर्व नदीका वेग रोक सकते हैं [ इससे कृष्य-यज्ञभद्रके अवतारको सूचित किया ] ॥ २३ ॥ यह श्री-संयुक्त राम वाराणसी, प्रहो और नषयों समेत आकाशको भी ध्वस्त (ध्वं) कर सकते हैं [ जैसा त्रिविक्रम (वामन) अवतारमें किया था, तथा जलमें डूबनेसे ] कश्याख्याको प्राप्त होती हुई शूचीका भी उद्धरण कर सकते हैं [ जैसा यज्ञवराहा-वतारमें किया था ] ॥ २४ ॥ विष्णु (व्यापक भगवान् राम) समुद्रको वेडा (मर्बादा) को तोड़-फोड़कर [ सत्र ] लोको-को हथो सकते हैं [ जैसा प्रलयकालमें करते हैं ] धपवा धपने कायों समुद्रके वेगको [ इससे समुद्रपर सेतु बांधनेका सामर्थ्य दिखाया है ] वा, वायु [ इत्यादि पञ्चभूतों ] को उड़ा सकते हैं ॥ २५ ॥ अथवा महायशवाले वह भेष्ट पुरुष अपने विक्रमसे लोकोका संहार करके फिरसे प्रजाओंका सृजन करनेको भी समर्थ हैं [ यहाँ—'पुनः' और 'अपि'—'फिर भी'—हून शब्दोंसे सर्वगुधि और संहारके व्यापार करनेके अर्थोंन बतलाये हैं ] इससे यह व्यङ्ग्य होता है कि वे अग्रेकी स्थिति और संहारके कर्ता हैं । अकल्पन राक्षसको भी देखा जान भगवान्हीकी कृपासे था ॥ २६ ॥ हे इणमीव ! तुम वा राक्षसोंका समूह भी रामको रथमें नहीं धीत सकते जैसे पापी लोग स्वर्गको नहीं [ पा सकते ] ॥ २७ ॥ सब देवासुर [ मिलकर ] भी उनका वध नहीं कर सकते [ ऐसा ] मैं मानता हूँ [ अर्थात् दुग्दारे पुत्रद्वारा जोते हुए हृन् भी यदि दुग्दारा साहाय्य करे तो भी रामको नहीं जीत सकते ] उनके वधका [ केवल ] यह ( अग्रे कहा हुआ ) उपाय है इसलिये मेरे [ मुख ] से [ तुम ] एकामन होकर सुनो ॥ २८ ॥

१२—(अरण्यकाण्ड सर्ग ६४)—

[ जैसा भाग्य अकल्पन राक्षसके धार्य (सर्ग ३१ को २३-२९) का है वैसे स्वर्ग श्रीरामजी अपने विषयमें करते हैं— ]

यथा जरा यथा मृत्युर्यथा काले यथा विधिः ।

नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वमृतेषु लक्ष्मण ॥

तथाऽहं को वसंतुको न निवासोऽस्म्यक्षयम् ॥ ७५ ॥

४८

पुरेय मे आरुदतीमनिन्दितां

दिशन्ति सीतां यदि नाथ मैथिलीम् ।

सन्देह-गन्धर्व-मनुष्य-पक्षगं

जगत् सरोजं परिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥

हे लक्ष्मण ! जैसे जरा (युवाया), मृत्यु, काल, विधि (भाग्य), सभी प्राणियोंमें कभी रोके नहीं जा सकते वैसे ही मैं भी मोघसंयुक्त हुआ निःसन्देह रोका नहीं जा सकता ॥ ७६ ॥ यदि मैथिली सीताको पहले जैसी सुन्दर नहीं लौटाने हैं तो मैं देखों, गन्धर्वों, मनुष्यों, नागों और पर्वतों-समेत जगत्को नाश करनेको तैयार हूँ [ यह मानुषदेव धरके जोलाभात् क्रोधका प्रकाशन है सही, किन्तु अपने विषयमें असम्भव बात बोलनेकी आशा रामसे नहीं की जा सकती । अतः जगत्का नाश करनेके सामर्थ्यसे वे अवश्य भगवदवतार करके ही रामायणकारको इष्ट हैं ] ॥ ७६ ॥

१३—(अरण्यकाण्ड सर्ग ६६)—

[ सीताहरणपर शोकाकुल हुए रामको प्रजयाग्निके समान लोकोके विनाशके लिये उद्युक्त, और जैसे कभी पहले नहीं देखे गये थे वैसे संक्रुद्ध होकर, युगागतकालमें शिवजीके समान, सर्व जगत्को भस्म करनेके लिये सन्नद्ध बेलकर लक्ष्मणका तो लोकविनाशके भयसे मुक्त सूझने लगा । लक्ष्मणने विनयपूर्वक रामसे प्रकृतिस्थ होनेकी प्रार्थना करने और बहुत कुछ समझानेके पश्चात् यह निवेदन किया कि पहले हमलोग सर्व लोकोको तबतक उड़ें जबतक सीता-उपहारीका पता न लगे । फिर भी यदि साम् (शान्त उपाय) से देवता लोग सीताको न फेरेंगे तो समयात्रयार लोकायके लिये शरसम्भान कीजियेगा (सर्ग ६४) । (सर्ग ६६) इतनेपर भी जब राम प्रकृतिस्थ न हुए तब बहुत बहुत समझाने हुए लक्ष्मणजी अन्तमें बोले— ]

मायेव हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोकवान् ।

अनुशिष्यादि को नु त्वामपि साक्षाद् बृहरथिः ॥ १७ ॥

जुद्धिष्व ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्तया ।

शोकेनाभिप्रमुष्टं ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥

दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् ।

इत्थाकुतुम्भमाऽनेभ्य यतस्व द्विर्तां वधे ॥ १९ ॥

किं ते सर्वविनाशेन ह्येन, पुरुषंम ।

तमेव नु रिपुं वारं विशयं देवैर्तमर्हसि ॥ २० ॥

हे वीर ! मुझको ही तुमने पहले बहुत उच्च समझाया है । मुहें भला कौन शिष्य देगा, साक्षात् इतरपि भी

[ नहीं सिला सकता, तब भग्यकी कौन गिनती है ] ॥ १७ ॥  
 हे महाप्राण, और तुम्हारी बुद्धिको तो देवता भी नहीं पहुँच  
 सकते [ इससे ईश्वरता सूचित की। तब मैं तो केवल ]  
 शोकके कारण सोये हुए तुम्हारे [ ही ] ज्ञानको [ मानो ]  
 जगा रहा हूँ ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुपुत्रभेद, और अपने दिव्य  
 तथा मानवी ( दोनों ही प्रकारके ) पराक्रमको देखते हुए  
 [ अर्थात् दिव्य पराक्रमके लिये यह उपयुक्त समय नहीं है  
 इसका विचार करते हुए केवल मानवी-पराक्रमका उपयोग  
 करके ] शत्रुबधमें प्रयत्न करो ॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम्हें सर्व  
 [ जोकों ] का विनाश करनेसे क्या [ लाभ होगा ] ? किन्तु  
 हँसकर केवल उसी पानीका उन्मूलन करना चाहिए ॥ २० ॥

[ सर्व जोकोंके विनाशका सामर्थ्य और दिव्य पराक्रम  
 मनुष्यमात्रमें होना असम्भव है। इससे रामजी श्वरय  
 विष्यवतार ही थे । ]

१४—(किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १८) —

[ सर्ग १६ में रामके द्वारा बाणविद होनेपर सर्ग १७ में  
 धावनीने रामपर अनेक कटु भाषण किये थे और उत्तर  
 माँगकर चुप हो गया था। सर्ग १८ में जब श्रीरामजीने सब  
 भाषणोंका समुचित उत्तर दे दिया तब (श्लोक ४४) बाणिको  
 श्रीरामजीपर मिथ्या अभियोग लगानेके कारण क्या पश्चात्ताप  
 उत्पन्न हुआ और धर्मविययमें निश्चय हो जानेसे जब  
 उसके मनमें रामका एक भी दोष न रहा तब यह हाय जोड़-  
 कर रामसे बोला— ]

त्वत्सेऽहं नममाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया ॥५७॥

सुग्रीविण सह भ्रात्रा दन्द्रयुद्धमुपागतः ॥५८॥

शरामितस्तेन विभेत्सा मया

प्रमाषितस्त्वं यदजानता विभो ।

हृदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम

प्रसादितस्त्वं क्षम मे हरीदवर ॥६६॥

तुमसे [ अचना ] कथ चाहता हुआ मैं ताराके द्वारा  
 रोका जाता हुआ भी [ अपने ] भ्रात्रा सुग्रीवसे इन्द्रयुद्ध  
 [ करने ] आया ॥५७॥.....॥ हे महेन्द्रके समान भयानक  
 विक्रमवाले, हे हरीरवर ( देवराज इन्द्रके  
 भी स्वामी भगवन् विष्णो ), बाणसे पीड़ित और विचिन्-  
 चित होते हुए अज्ञानवश ( अर्थात् आप भगवान् हैं इस  
 बातको भूलकर ) मैंने आपको जो कुछ कह बाजा, प्रसन्न  
 होकर आप मेरा वह [ दुर्बन्धन ] क्षमा करें ॥ ६६ ॥

१५—( किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २४) —

[ तारा बाणविययने कथ्यन्त भारत होकर, इन्द्र  
 और दुरामध एवं विद्युदसत्त्ववाले महानुभाव बिरतन्त्री  
 समीप आकर बोली— ]

त्वमत्रमेवम् दुरासदम्

त्रितेन्द्रियश्रोतमधर्मकम् ।

अधीणकीर्तिश्च विचक्षणम्,

धितिसम्भवात् श्रोतमनाम् ॥२१॥

तुम अत्रमेव ( अर्थात् देव और आदिके परिकल्पे  
 रहित तथा गुणोंकी इच्छा करके दुर्ज्ञेय ) और दुरासद  
 ( अर्थात् योगियोंको भी प्राप्त होनेके लिये अशक्य ) और  
 त्रितेन्द्रिय ( अर्थात् इरीकेय वा इन्द्रियातीत ) [ यहाँ तक  
 रामका निर्गुण प्रकृत होना प्रतिपादन करके आगे बढ़के  
 सगुण रूपकी स्तुति करती है ] और उत्तम ( अर्थात् पुरुषोत्तम  
 विष्णु भगवान् ) के धर्मों [ को धारण करने ] वाले हो। भुवती  
 कीर्ति [ सदा ] अधीण [ बनी रहती है ] अर्थात् किसी ऐसे  
 धर्मसे भी, जो आपके समान धामासमान हो, कभी ध्वंस  
 नहीं होती ] है और [ तुम ] विचक्षण ( विद्येन शानवान् ),  
 श्रुतियोंके सत्य प्रमावान् तथा रक्षणेप्रोवाहे हो ॥ २१ ॥  
 मारुति ( हनुमान्जी ) ने रामको क्या माना है—

१६—(सुन्दरकाण्ड सर्ग १३) —

[ सीतान्वेषणके लिये जङ्गलमें पहुँचे हुए हनुमान् बटोरे  
 वनिकामें मनसे भी पहुँचनेके पूर्व इष्टदेवतादिको प्रणम  
 करते हैं— ]

नमोऽस्तु रामाय सत्कर्मणाय

देवैश्च तस्यै जनकदमश्रवै ।

नमोऽस्तु खेन्द्रेन्द्रममानदेभ्यो

नमोऽस्तु चन्द्रार्कमधूरुणैः ॥५॥

स तंभ्यस्तु नमस्कृत्या सुग्रीवाय च मारुतिः ॥२८॥

[ यहाँ हनुमान्जी रक्षादि देवताओंसे भी पूर्व।  
 लक्ष्मण और सीताको नमस्कार करते हैं, त्रिते ल  
 कि ये इनको रक्षादि देवोंके भी ऊपर ( अर्थात् साक्षात्  
 और लक्ष्मीके अच्युतार ) होनेसे अचना इष्टदेव मानने।  
 और क्रम भी इसी बातका सूचक है क्योंकि सर्वेण  
 [ राम-लक्ष्मणरूप ] भगवान् और उनकी माताओं, ]

ने छोटे धन्याय्य देवताओंको, फिर उनसे भी छोटे अपने (सामी) सुमीयको नमस्कार किया। यदि ये राममें गत्वशुद्धि रखते होते तो देवताओंके पश्चात् उन्हें कार करते। यह बात भी विशेष ध्यान देनेके योग्य है एक देवताओंमें कहीं विष्णुका नाम नहीं लिया—यद्यपि पणके मतानुसार विष्णु ही इन्द्र-रुद्रादि सबसे बड़े जाने चाहिए थे। यदि रामको नमस्कार करनेसे ही उसे लिये भी नमस्कार गवार्थ न होता तो मुख्य दो-देवताओंकी भी गणनामें विष्णुका नाम न छोड़ा जाता। ]

१७—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ३०)—

यथा तस्मात्प्रमेयस्य सर्वसत्त्वदायकतः ॥६॥

[यहाँ भी इन्द्रमातृजी रामके लिये 'अप्रमेय' शब्दका पाँच त्रिकोण स्वरूप और गुण्य देश-काल या इयत्तासे वेष नहीं है] प्रयोग करके रामका साक्षात् प्रकाश होना व करते हैं। ]

१८—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ५१)—

[यथापि यदि सन्देह हो तो इन्द्रमातृजीके रामविषयक ले जो उन्होंने रावणके समक्ष किया या रामजी स्वयं शब्दके स्थिति-उत्पत्ति-संहार-कर्ता और सर्वजोकोके सिद्ध होते हैं—]

सर्वे राजमराकेन्द्र शुशुभ्य वचनं भ्रम ।

पानदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ॥३८॥

सर्वास्त्योक्तान् मुसंडल समूहान् सचराचरान् ।

पुनरेव तथा सप्तु शक्तो रामो महायदाः ॥३९॥

सर्वलोकेन्द्रवस्त्रेह इत्या विश्रियमीदृशम् ।

रामस्य रात्रितिरस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥४०॥

देवाश्च देवताश्च निशाचरोन्द्र

गन्धर्वनिवापरनागयज्ञाः ।

रामस्य लोहत्रयनायकस्य

व्याप्तुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ॥४३॥

मया स्वयम्भूक्तुरामनो वा

रुद्रशिनेत्रविपुत्रान्तको वा ।

एते मरेन्द्रः सुतनामको वा

व्याप्तुं न शक्ताः मुषि राघवस्य ॥४४॥

ये राघवराजोंके राजा (राघव व) मुझ रामजीके दास [य विशेष इस कारणसे दिया है कि समीप रहनेके

कारण दासको अपने स्वामीकी महिमाका टीक-टीक ज्ञान होता है अतएव उसकी बात विश्वासके योग्य है] विशेषतः दूत [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि दूतका अधिकार हितके उपदेशमें होता है और वह विपत्तीकी बातको ज्यों-का-य्यों दुहराता है जिससे उसके कहे हुए समाधारमें शङ्का करनेका अवकाश नहीं] (और एक) वानरके [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि मैं न तो रामकी (अनुप्य) जातिका और न पुत्रहारी (राघव) जातिका हूँ किन्तु एक वीसरी जातिका होनेसे पञ्चापतरहित होकर न्यायकी बात कहूँगा। तीनों विशेषणोंसे अपना सत्यवक्ता होना प्रमाणित किया है] सत्य वचनको सुन ॥३८॥ महायज्ञपासे राम [समल] पराचर भूतों (अर्थात् सब जातियोंके प्रायियों) सहित सब जोकोंको सम्बन्ध संहार करके किससे उसी प्रकार सृजनेको समर्थ है [इससे जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और संहारका कर्ता होना बतलाया] ॥३९॥.....॥ 'सभी जोकोंके ईश्वर' एवं राजभ्रेष्ठ रामका इस शोकात्मकै ऐसा अपकार करके तेरा जीवन [धचना] अक्षमभव है ॥४०॥ हे निशाचरोंके राजा (राघव), देव, दैत्य, गन्धर्व, विषाघर, नाग, यक्ष सभी लोग 'तीनों जोकोंके नियन्ता' श्रीरामजीके समक्ष मुझमें नहीं उठर सकते हैं ॥४३॥ मझाभी [जो] स्वयं उत्पन्न होनेवाले (सर्वादि हिरण्यगर्भ) [तथा] चार मुखोंवाले (अर्थात् सर्वज्ञ) [हैं], धयवा रत्न (शिष्यी) [जो] तीन नेत्रोंवाले (अर्थात् वीसरे ज्ञानरूपी नेत्रमे अज्ञानजनित कामादिको भयम करनेवाले) [तथा] त्रिपुरका अन्त करनेवाले [हैं], धयवा इन्द्र [जो] महापुरुषवाले [तथा] देवताओंके नायक [हैं] (अर्थात् जगत्की उत्पत्ति तथा संहार करनेमें समर्थ और महाशक्ती देवता भी कोई) रामजीके [भाग्ये] मुझमें नहीं उठर सकते ॥४४॥

[इन्द्रमातृजीने वैसे यह ई राघवके सामने धरनेको 'तीनों जोकोंके ईश्वर भगवान् राम' का 'दास' कहा है वैसे ही (सीताजीके सामने सुन्दरकाण्ड सर्ग २६ श्लोक २०, इत्यादि) अन्य स्थलोंमें भी धरनेको उन्हींका दास कहा है। परन्तु खीकिक दृष्टिमे तो इन्द्रमातृजी धरनेको मुझीरका ही दास कह सकते थे। रामके दाम तो उनमें अवताररहित रखनेके ही कारण अर्थात् परम वैष्यव होनेके ही कारण थे। हम उद्धरणमें भी मझा, रत्न और इन्द्रका तो नाम है परन्तु विष्णुका नाम बेशक इतोडिबे नहीं है कि राम स्वयं ही विष्णुके अवतार थे। ]





मुझे प्राप्त होता है अथवा (धौराधिक भेदका धवलम्बन करके सेवक-स्वामी, शिष्य-गुरु, रथ्य-रथक इत्यादि भावसे कृपायना करता हुआ) मैं सुभारता हूँ इसप्रकार याचना करता है उसे सब प्राणियोंकी ओरसे भ्रमय प्रदान करता है [इसपर भी ध्यास्याकारने अशुचिमान विलुप्त ध्यास्यान किया है जिससे रामके भगवदवतार होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है] ॥१३॥

२३—(युद्धकाण्ड सर्ग १६)—

[विभीषण चार राक्षसों समेत जाकर रामके धरणीमें प्रयाग करके स्वयं आगमनिवेदन करता है—]

अनुजे रावणस्पाहं तेन चासम्भवमानितः ॥१३॥  
मन्तं सर्वमन्तानां शरपयं शरणं गतः ।  
परित्यक्ता मयाऽह्ना मिश्राणि च धनानि च ॥१५॥  
भवद्वदं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥१६॥

मैं रावणका छोटा भाई और उससे अपमानित हुआ आपके शरण आया हूँ क्योंकि आप सब भूतोंके शरणके स्थान हैं। [यहां 'लोक' शब्दके स्थानमें 'भूतों' अर्थात् 'प्राणियों' का नाम देनेसे अधिकतर स्वरूपसे रामका भगवदवतार होना सूचित किया है।] मैंने जङ्गल और मित्रों और धन [सभी] को [आपके जिने] छोड़ दिया है ॥१४-१५॥ क्योंकि मेरा राज्य, जीवन, और [सभी] सुख आपहीके अधीन हैं [इससे सर्वज्ञ भगवान् राम अचरय रावणका सब करोंगे यह निश्चय व्यङ्ग्य है] ॥१६॥

२४—(युद्धकाण्ड सर्ग ३४)—

[रावणकी जननी और धृद मन्त्रीकी रावणसे कही हुई बातको उन्हीं शब्दोंमें सरमा सीतासे कही है कि (रखो० ११) मैथिली (सीताजी) को सकारपूर्वक रामके समर्पण को क्योंकि जनस्थानमें उनका जो अस्तु (अज्ञातिक) कर्म देखा गया है वही उनके पराक्रमका पर्याप्त निदर्शन (सम्प्राप्त) है]

तद्वनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनुमतः ।  
रथं च रथमां मुद्रकाः कुर्यान्मानुषो मुधि ॥२२॥

[कलिक रामका एक अनुचर अकेला हनुमान् ही सब राक्षसोंको भीत सकता है यथा] हनुमान्का समुद्रको जाँचना। [सीताको] देखना, और [रामका खरादि] राक्षसोंको पुराने मानना, यह सब युद्धमें कौन मनुष्य कर सकता है ?

[इसविधे न तो हनुमान् वानर हैं और न राम मनुष्य हैं, किन्तु सब देवावतार हैं—(तिलकव्याख्या)] ॥२२॥

२५—(युद्धकाण्ड सर्ग ४०)—

[न केवल हनुमान् ही किन्तु सुग्रीव भी रामको 'लोकनाथ' और अपनेको रामकी ओरके भावानुसार 'मित्र' होता हुआ भी अपनी ओरके भावानुसार 'रामका दास' मानता था जैसा उसने रावणको लजकारते हुए कहा है—]

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ।  
न मया मोक्षयसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥१०॥

हे राक्षस ! मैं 'लोकोंके नाथ' रामका सखा और दास हूँ। मैं राजाओंके राजा (राम) के तेजसे (अनुगृहीत हुआ) भाज तुम्हें न छोड़ूँगा ॥१०॥

२६—(युद्धकाण्ड सर्ग ५०)—

[राम और लक्ष्मणको शरविषत तथा मोहापन्न देखकर जब विभीषण निराश होकर विलाप करने लगा तब सुग्रीवने कहा कि हे धर्मश विभीषण ! जङ्गलमें सबतु रावणका मनोरथ पूरा होनेका नहीं है बल्कि तू ही जङ्गलका रामा होगा और—]

गृहधाविष्ठितातेनानुभौ रावणहृदमपौ ।  
रथकला मोहं बधिष्येते सगर्णं रावणं रणे ॥२२॥

गृहसे अघिष्ठित हुए ये दोनों, राम और लक्ष्मण, मोह छोड़कर रथमें अनुयायियों समेत रावणको मारेंगे [विभीषणको सांगत्वना देनेवाके इस वाक्यसे सुग्रीवने अपना, रामजी के सङ्गन्धमें भगवदवतार होनेका, ज्ञान सूचित किया] ॥२२॥

[[रखो० ३६] तब एक सुदृढ़के पश्चात् वानरोंने विनताके पुत्र महाबली गृहको प्रस्वन्नत अग्निसे सपुट देखा और (रखो० ३७) गृहको आया देखकर वे नाग जिन्होंने शर धनकर राम-लक्ष्मणको बाँध रखा था भाग खड़े हुए। (रखो० ३८-३९) तब गृहके इत्यपर्यंसे उनके सब घाब (अथ) भर गये और रखो० ४०) उनकी रूप, बलादि पहजेसे दूना निलर आया। (रखो० ४१-४२) रामके पुत्रनेपर गृहने अपना परिचय इसप्रकार दिया—]

अहं सस्ये काकृत्य प्रियः प्राणेः बहिःशरः ।  
गृहमानिदं संप्राप्तो युवयोः साहचर्यमाप्त ॥३६॥

मैं तुम्हारा बाहिर गमनाय करनेवाला प्राण एवं त्रिप  
मित्र गदग द्रुम दोमोंकी सहायताके हेतु यहाँ प्राणा हैं  
[बहिःगम्याती 'प्राण' कहनेमें गहकने शिष्यवत्तया राम-  
छरमणके साथ विष्णुवाहनके रूपमें धरना धनिष्ठ सम्बन्ध  
प्रदर्शित किया है। धर्म्यया शकोंके पूर्वार्द्धका अर्थ  
धरतागत होगा] ॥४९॥

२७—(युद्धकाण्ड शर्ग ५१)—

[रावणने छत्रमणके शक्तिवाच्य धरनेपर, द्रुम मयने  
कि पूर्वतरा कहीं फिर भी न थी उठे, रामको धमदाप  
कर देनेके अभिप्रायसे, छत्रमणको समुद्रमें फेंक देनेके विषये  
उठाना चाहा। परन्तु—]

हिमवान् मन्दरो मेरुश्रेतोत्तरं वा सहामरीः ।

शार्यं मुत्राम्यामुद्भुतं न शायो मरुतानुजः ॥१२०॥

शारत्या ग्राहत्या तु सौमित्रिस्तादितोऽपि सानन्तरे ।

विष्णोरमीमांस्यमागमप्रमानं प्रत्यनुस्मरत् ॥१२१॥

ततो दानवदर्पणं सौमित्रि देवकृत्कः ।

तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रमुर्दद्दधनेऽभवत् ॥१२२॥

हनुमानय तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ॥१२३॥

आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ।

बायुसूनोः सुहृत्वेन भक्त्या परमया च सः ।

शत्रुधामप्रकम्प्योऽपि लघुस्वमगमत् कपेः ॥१२४॥

आश्वस्तश्च विशत्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।

विष्णोर्मांममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥१२५॥

मिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥१२६॥

विष्ठ विष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।

क नु राक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमनाप्स्यसि ॥१२७॥

यदीन्द्रवैवस्वतमास्करान् वा

स्वयमुन्वैदवानर-शङ्करान् वा ।

गमिष्यसि त्वं दशधा दिशो वा

तथापि मे नाद्य गतो विमात्रयसे ॥१२८॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः ।

बायुपुत्रं महावेगं वहन्तं राघवं रणे ॥१२९॥

रोषेण महताऽऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।

आजयान शरीर्दक्षिः कालानलशिखोपमैः ॥१३०॥

[जिस रावणके लिये] हिमाजय, मन्दर, मेरु ( ये  
पर्वत ) धरया देवताओं सहित सीनों लोकका ( दो )

मुनाघोंसे उठा खेना सद्ग वा [ वर ] भारतके क्षेत्रे  
( लक्ष्मण ) को न उठा गया ॥१२०॥ [ शरीर ] सुनि  
पुत्र ( लक्ष्मण ) ने वर-रथके मन्त्रमें जाड़ी रजि  
आरुन होने हुए भी, धरने धरको, निःसंशय निकुने  
होनेका ( अथवा विन्नान नक्षिा या सनेयावा विष्  
माग धरने प्रति ) अनुस्मरण किया [ निद्रकनात्ता-  
धरनी ही कथु धरने धार ( अर्थात् स्थानी ) को न  
मारगी है इय धारणने लक्ष्मणने प्रकृष्टकिन्त्रक शक्ति  
धरना रथ करनेके लिये 'मैं भगवान्के तेजस्य संश  
हैं' ऐसा ध्याम किया। माया-मातुप शरीर-धारीका रूप  
ध्यान करना शरीरोंकी दृष्ट प्रतीतिके लिये है, परन्तु सर्व  
नहीं होता। इसप्रकार लक्ष्मणने 'मैं प्रकृष्ट हैं' ऐसी  
भावनाके द्वारा धरने शरीरको भारी कर दिया था, पर  
रथ है ] ॥१२०॥ तब ( अर्थात् लक्ष्मणके अपनी मरिनाथ  
अनुमनधान करनेपर ) देवोंका कण्ठक ( रावण ) शक्तिके  
दर्पका इनन करनेवाले सुमित्रापुत्र ( लक्ष्मण ) को ( दो )  
बाहुओंसे दबाकर हिलाने-डुबानेमें भी समर्थ न हो सका  
[ तब उठा खेनेमें तो क्या समर्थ होता ] ॥१२१॥ .....  
.....॥ तदनन्तर रावणसे पीडित उन लक्ष्मणजीके  
तेजस्वी हनुमान् अपनी मुजाघोंसे परिग्रह्य करके उनके  
समीप छे आये। वह ( लक्ष्मणजी ) शत्रुओं ( अर्थात्  
रावण तथा उसके सहायमृत अनुचरों ) के लिये प्रकल्प  
( हिलाने-डुबानेको धराक्य ) होते हुए भी बायुपुत्र वाच  
( हनुमान् ) के लिये मित्रभाव और परमभक्तिके कारण  
खुशु ( हलके ) हो गये [ भगवान् वा भगवद्भवतारोंका वह  
केवल भक्तोंके सख्य बरा होना स्वामाधिक ही है ] ॥१२२-  
१२७॥ .....॥ शत्रुविनाशक लक्ष्मण धरने विरतने  
विष्णुके निःसंशय वा अचिन्त्य अंश [ होने ] का अनुस्मरण  
करते हुए आरवला ( शान्तियुक्त ) और विशुद्ध ( वा-  
रहित अर्थात् सब गात्रोंमें नीरोग ) [ हो गये ] ॥१२३॥  
.....॥ [ क्रुद्ध हुए ] राम गम्भीर वाणीसे राक्षसी  
राजा ( रावण ) से बोले ॥१२४॥ हे राक्षससिंह, धर रा-  
ण मेरा ही ऐसा अपकार करके भला कहीं जाकर पुत्रका  
पावेगा ? ॥१२७॥ यदि तू हनु, यम और सूर्यके अथवा  
स्वयम्भु ( महाजी ), अग्नि और शङ्कर ( शिवजी ) के  
शरण या वर प्रकारकी विशाओं [ के अन्तों ] में भी जाके  
तो भी [ वहाँ ] गया हुआ [ भी ] धार मुझे नहीं हुए  
सकता ( अर्थात् धार मैं मुझे न बोर्गा ) [ वहाँ भी

का, अहोरात्रि देवोंके साथ विष्णुका नाम नहीं है क्योंकि न स्वयं ही विष्णु थे ] ॥१२८॥ रामका वचन सुनकर शबजवान् राक्षसराज (रावण) ने महारोग (अतिक्रोध) आविष्ट होते हुए और 'पूर्व वैरका अनुसरण करते हुए,' रावणवाले बायुसुत (हनुमान्) को [जो] रथमें नके [भरने ऊपर] चढ़ाये हुए [थे], प्रलयकालकी मिथ्याकाष्ठों सरीखे दील शरीरसे मारा [यहाँ रावणका वैर] था तो हनुमान्से या रामसे होना चाहिये। वर्तमान तीरमें दोनोंले उसका वैर नवीन ही था जो 'पूर्व' नहीं था वा सकता। हनुमान्जीके वर्तमान शरीरसे पूर्व एका वैर उनसे तो कुछ नहीं था किन्तु उनके पिता पुत्रे इसलिये था कि वे भी उसके शत्रु देवोंमेंसे एक थे। नु यह वैर भी कुछ विशेष तीव्र नहीं हो सकता। अतः लके अपने हिरण्यकशिपु धादि 'पूर्व'जन्मोंमें जो वैर आध्यात्मिकारी विष्णुसे था उसीसे यहाँ रामायणकारका अंगाय प्रतीत होता है ] ॥१३१-१३२॥

२८—( युद्धकाण्ड सर्ग १०८ )—

[इन्द्रके भेजे हुए रथके सारथि (मातङ्गि) ने राम रावणके युद्धको रात-दिल मुहूर्त-क्षण कमी न रुकने-वा देखा, और रामके जयको ध्वजक न देखा—]

अथ संस्मारयामास मातङ्गी रावणं तदा ।  
अत्रानिक्त्रिं किं वीर त्वमेवमनुवर्तसे ॥१॥  
सिन्धुजडस्मै बधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो ।  
मिनाशकालः कथितो मः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥२॥  
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाचयेन मातङ्गः ।  
अग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३॥

रथ जो मातङ्गिने उररी समय रामको अरण्य दिजाया कि हे वीर! तुम क्यों ऐसा व्यवहार कर रहे हो, मानो जानते हो न हो ॥१॥ [इले] मातङ्गिके जिये 'हे प्रभो' तुम सिन्धुजडका (माह) भस्म इसकी ओर खलाओ। देवताओंने [हृषिके] विनायका जो समय कहा था वह अब चालू है ॥२॥ तब मातङ्गिके उस वाक्यसे अरण्य दिजाये हुए उन (विष्णुवतार) रामने निःश्वास लेते हुए सर्वके समान शर (माहाय) को ग्रहण किया ॥३॥

[यहाँ देवेंद्रका सारथि देवलोकिनीर्णत बातोंका 'बात' रामको विष्णुवतार होनेके कारण ही दिखा सकता है। मनुष्यमात्र होकर राम मातङ्गिके कदनेपर भी चक-से

देखते रह जाते और मातङ्गिका अरण्य दिजाना भी विष्णुजयसङ्गत होता। ]

२९—( युद्धकाण्ड सर्ग १११ )—

[ रावणकी श्रेष्ठ पत्नी मन्दोदरी पतिको रामके हाथसे मरा हुआ देखकर विलाप करने लगी (श्लोक १-२)। उसे विश्वास न हुआ कि देवादि सर्व जगत्को दृढ़ज्ञानेवाले रावणको मालुपमात्र रामने क्योंकर मारा (श्लोक ३-८)। अथवा स्वयं धर्मराज रामरूपसे मायाका प्रयोग करके भाये होंगे (श्लोक ९)। अथवा इन्द्रने (रामरूप धारण करके) तुम्हें मारा होगा, परन्तु तुम-जैसे महायजीके सामने युद्धमें खड़े होनेकी भी शक्ति तो बंधारे इन्द्रमें नहीं है (श्लोक १०-११)। अतः— ]

व्यक्रमेण महायोगी परमात्मा सनातनः ॥११॥  
अनादिमध्यनिषेधा महतः परमो महान् ।  
तमसः परमो भक्ता शङ्खचक्रगदाधरः ॥१२॥  
श्रीवत्सवध्ना नित्यशीरजम्बुः शाश्वतो भुवः ।  
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥१३॥  
सर्वैः परिभूतो देवैर्वातान्स्वमुपागतैः ।  
शर्वैर्लोकेश्वरैः श्रीमाल्लोकानां हितकाम्यया ॥१४॥  
सराश्रसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम् ।  
इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं विभुवनं त्वया ॥१५॥  
स्मरद्भिरिव तदैरिन्द्रिषैरेव निर्रिक्तः ।  
यदैव हि जनस्थाने राष्ट्रसैर्बहुमिर्वृतः ॥१६॥  
खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुषः ।  
यदैव नगरीं लङ्कां दुश्चरेशां सुरैरपि ॥१७॥  
प्रविष्टो हनुमान् वीर्याच्छदैव म्मथिता वपम् ।  
किमतामविरोधश्च राष्ट्रनेषीति यन्मया ॥१८॥  
उभयमानं न शृण्वसि तस्येयं द्युष्टिरागता ॥१९॥  
पत्नीव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥२०॥

बह (राम) प्रकटरूपसे (सचमुच ही) महायोगी (अर्थात् स्वाभाविक सर्वशक्तियुक्त भगवान् कोटेश्वर) सनातन (सदा रहनेवाले) परमात्मा (अर्थात् सर्व आत्माओंके भी अन्तर्धामी धामरूप ईश्वर) ॥११॥ धादि (अन्त) मध्य (बुद्धि) और निचन (बाण) से रहित, महान् भी परम महान् [ 'महतो महीवान्' अतिके अनुसार ], तमः (अज्ञान) से परे [ 'तमसः परस्तात्' बुद्धिके अनुसार ], भाता (सब भूतोंके राजनेवाले) [ 'वतो वा इमानि भूयानि

जायन्ते' श्रुतिके अनुसार ], [ ध्वज उनके विग्रहगुणोंको कहती है—] शङ्ख, ध्वज और गदाके धारण करनेवाले ॥१२॥ हृदयमें श्रीधरस [का चिह्न धारण करने ] वाले, जिनसे लक्ष्मी कभी पृथक् नहीं होती, जो जीते नहीं जा सकते, शाश्वत (अपणय नामक भावविकारसे रहित), ध्रुव (परिणामरहित) [ यहाँतक भगवान्को धर्मों भावविकारोंसे रहित बतलाया ], मनुष्यका रूप धारण किये हुए और सत्य पराक्रमवाले विष्णु ही हैं ॥१३॥ [ जो ] बानररूपको प्राप्त हुए सब देवोंसे विरे हैं ( अर्थात् ऐसे देवोंको अपना सहाय बनाये हुए हैं । जोकोंकी हितकामनासे [ ऐसे ] श्रीमान् सर्वलोकेश्वरने देवोंके भयानक शत्रु [ रूप तुमको ] राक्षसपरिवारसमेत मारा है । तुमने पहले इन्द्रियोंको [ कठिन तपस्याद्वारा ] जीतकर [ सच ] त्रिलोकीको जीता था । मानो उसी वरका स्मरण करते हुए इन्द्रियोंने तुम्हें जीत रक्खा था [ जिससे तुम सीताअहरणमें प्रवृत्त हुए और अन्तमें मारे गये ] । ठीक उसी समय जब जनस्थान ( पञ्चवटी ) में बहुतसे राक्षसोंसे संयुक्त भ्राता खर मारा गया था [ यह सिद्ध हो चुका था कि ] राम मनुष्य नहीं ( किन्तु साक्षात् ईश्वर ) हैं । ठीक उसी समय जब देवताओंको भी भयान्य खड्गानगरीमें हनुमान् घुस आया थे [ उनके ] यज्ञसे हमलोग व्यथित हो चुके थे । मेरी कही हुई इस बातको कि रामसे सन्धि कर लो जो तुमने ग्रहण नहीं किया उसीका यह फल प्राप्त हुआ है ॥१४—१५॥.....॥ हे ! मेरे स्वामी तुम निश्चय पतिव्रता ( सीता ) के शपथसे दग्ध हुए हो ॥२३॥

३०—( युद्धकाण्ड सर्ग ११७ )—

[ ( श्लोक १—५ ) सीताके धर्मप्रवेशके समय जब राम लिखित हुए तब कुबेर, यम, विनय, १००० नेत्रोंवाले इन्द्र, जलेश्वर वरुण, त्रिनेत्र वृषभधर महादेवजी, सर्वलोकेश्वरों महाश्री, इन सब देवोंने विमानोंद्वारा खड्गोंसे रामके समीप आकर कहा— ]

कृता सर्वस्य लोकस्य धेष्टो ज्ञानविदां विभुः ।  
..... ।

कथं देवगणधेष्टमदमानं मादबुद्धयसे ॥६॥  
जलधरमा यमः पूर्णं बभूवौ च प्रजापतिः ।  
त्रकाश्रमति लोकनामदीकृता स्वयंभुः ॥७॥  
दशरथदहो दहः साध्यानामपि वधमः ।  
वदिती वदि कर्ता ते म्वाचन्द्रमयी वदी ॥८॥

अन्ते चादौ च मध्ये च दहयसे च पतंथ ।  
अपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥९॥  
इन्दुको लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य तपवः ।  
अमवीत् त्रिदशान्रहान् रामो धर्ममूर्तो वरः ॥  
आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथानमन्युः ।  
सोऽहं यद्य यतश्चाहं मणवस्तद् जवी ॥१॥  
इति जुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।  
अमवीच्छृणु मे वक्तव्यं सत्यं सत्यपराक्रम ॥१॥

( आर्य-स्तव )

मवन्तारणयो देवः धीमाश्रकाणुषः प्रभुः ।  
परुशुभ्रो वराहस्त्वं मृतमन्वसपत्नीम् ॥१॥  
महर्षं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्तं च राधन ।  
लोकानां त्वं परो धर्मो विधरसेनभ्रतुम् ॥२॥  
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।  
अजितः सङ्गधुमिवणुः कृष्णशैव नृहृदकः ॥३॥  
सेनानीश्रीमणीः सर्वं त्वं मुञ्चिस्त्वं धमा इमः ।  
प्रमत्तश्चाऽन्यथाश्च त्वामुपेक्षो मयुसूदन ॥४॥  
इन्द्रकर्मो महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणभ्रतर ।  
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिग्वा मर्षकः ॥५॥  
सहस्रशुभ्रो वेदरत्ना शतशीरो मर्षकः ।  
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंभुः ॥६॥  
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वकः ।  
त्वं यज्ञस्त्वं वधरुकारस्त्वनाङ्गाः पराधरा ॥७॥  
प्रमत्तं निघनं चापि नो विदुः को भवतिष्ठि ।  
दहयसे सर्वभूतेषु गोषु च प्राणेषु च ॥८॥  
दिषु सर्वेषु गणे परितेषु नरीषु च ।  
सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीरो महाशर ॥९॥  
त्वं वारयसि मृतानि पृथिवीं सर्वपरीत ।  
अन्ते पृथिव्याः सन्निधे दहयसे त्वं महोवा ॥१०॥  
त्रीत्येकान्धारयन्नाम देवगणपरिजनान् ।  
मर्षं ते दहयं राम शिवा देवी साधवी ॥११॥  
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्दिताः इहै ।  
निमेषन्ते स्मृता राषिचर्मिणे विरज्यन्त ॥१२॥  
संस्काराश्रयमकवेदा वैदरिणि तदा शिवा ।  
अधमं शरीरं ते स्वैर्देवैः ते मनुष्यद्वय ॥१३॥

कविः शोषः प्रसादस्ते सोमः शीतलसरक्षणः ।  
 तथा लोकाक्षयः मन्त्राः पुरा सौर्विक्रमेरिभिः ॥ २६ ॥  
 महेंद्रय इतो राजा बलिं बद्ध्वा मुदा रणम् ।  
 सीतां तस्मींश्चान्निष्कन्दैः कृष्णः प्रत्रापतिः ॥ २७ ॥  
 वकार्यं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।  
 तदिदं नस्त्वया कार्यं इदं धर्मभृतां वर ॥ २८ ॥  
 निहतो रावणो राम प्रददौ दिवमाक्रमम् ।  
 श्लोभं देव नीरवं ते न ते मोघाः पराक्रमाः ॥ २९ ॥  
 श्लोभं दर्शनं राम श्लोभस्तव संस्तवः ।  
 श्लोभास्ते मन्त्रिभ्यन्ति मन्त्रिमन्तो नरा मुनि ॥ ३० ॥  
 वेत्तां देवं पुनं मयाः पुराणं पुरातनम् ।  
 प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह होके परत्र च ॥ ३१ ॥  
 इमनांस्तवं दिग्भित्तिहासं पुरातनम् ।  
 ये नराः कीर्तिभ्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ ३२ ॥

[यहाँ सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिये कि ठक  
 रसोंके साथ विष्णुके आनेका कोई प्रसङ्ग इसीलिये नहीं  
 है कि राम स्वयं ही विष्णु हैं।] (तुम) सय लोकके कर्ता  
 [रामके मनुष्य शरीरके विषयमें सर्वलोककर्ता हूयादि  
 विशेषण इनके मूल (विष्णु) स्वरूपके अभिप्रायसे ही  
 दिये गये हैं—तिजकथ्याख्या।] ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, और  
 विष्णु (सर्वव्यापक) [होते हुए भी] क्योंकि अपने आपको  
 [रामादि] देवगणोंमें श्रेष्ठ नहीं समझते [क्योंकि 'विष्णु-  
 मुखा वै देवाः' यह धृति भी विष्णुको (अर्थात् तुम्हें) ही  
 सब देवोंमें प्रमुख बताती है] ॥१॥ [कतकथ्याख्यामें  
 'अदधामा' हूयादि तीन श्लोक (७-१) स्वीकार नहीं  
 किये गये हैं। तीर्थन्याख्यामें इनका व्याख्यान अपोजिलित  
 प्रकारसे किया गया है—] पूर्व (अर्थात् पूर्वकल्पमें अथवा  
 श्रद्धिपूर्व तुम) वसुधामां [के मध्य] में अदधामा नामक  
 शत्रु और प्रजापति [हुए थे तथा] तीनों ही लोकोंके  
 आदिकर्ता (अर्थात् अथर्व और अथर्वान्धितिरूप आदि-  
 शक्तिके कर्ता, एवं) स्वर्गप्रभु (अर्थात् सबके नियन्ता होते  
 हुए स्वर्ग किरीसे नियमित न होनेवाले) हो ॥७॥ तद्वर्षमें  
 अर्धे रथ (अर्थात् महादेवजी) और साध्योंमें पाँचवें  
 (अर्थात् वीर्यवान् नामक) भी [तुम्हारे ही]। [विराट्-  
 रूपका वर्णन करते हैं—] दोनों अधिनीकुमार तुम्हारे  
 (शत्रुओं) काव हैं, स्वर्ग और अन्धमा [तुम्हारी दोनों]  
 शक्ति हैं ॥८॥ हे शत्रुओंको तपानेवाले (भगवन् विष्णु) ]

[तुम्हारे तुम] अन्त, आदि और मध्यमें दिवायी पड़ते हो  
 [इससे यह स्थिति किया कि सर्वभूतताप तुम्हारे हो] और  
 [अग्निप्रवेशके समय] सीताकी उपेक्षा साधारण मनुष्यकी  
 भाँति कर रहे हो ॥१॥

[इससे लेकर मद्भाग्यवन्त] उन (पूर्वोक्त) लोकपालों-  
 द्वारा ऐसा कहे गये लोकस्वामी रघुलोलोचन धर्मधारियोंमें  
 श्रेष्ठ राम श्रेष्ठ देवोंसे बोले— ॥ १० ॥ मैं अपने आपको  
 मनुष्य (एवं) वक्षरथका पुत्र राम मानता हूँ। ऐसा  
 (मनुष्यशरीरमें अहंभुदियाका) मैं जो (परमार्थस्वरूप)  
 और जहाँसे (जिल कारणसे) हूँ उसे आप (भगवान्  
 महाजी) मुझको बतावें [यही, शिष्यकी जिज्ञासा होनेपर  
 गुरुद्वारा महाविद्याका उपदेश दिया जानेका, मार्ग सर्वत्र  
 धृति-स्मृतियोंमें प्रसिद्ध है। इसी कारणसे रामने अपने  
 भक्तोंको अपना स्वरूप बोधन करानेके लिये अज्ञ शिष्यकी  
 भाँति जिज्ञासु बनकर सर्वत्र गुरु महाजीसे प्रश्न किया—  
 तिजकथ्याख्या] ॥ ११ ॥ महाज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महाजीने  
 ऐसा पृथक् हुप का इत्य (राम) से कहा, हे सत्य  
 पराक्रमवाले (विष्णु) मेरे सत्य वाक्यको सुनो ॥ १२ ॥

[महाजीने रामके प्रश्नके उत्तरमें श्लोक १३ से ३२ तकका  
 'आर्षलव' नामक दिग्भ पुरातन इतिहास सुनाया। इसमें  
 रामको-नारायणदेव, चक्रासुध, एकचक्रब्राह्मण, अचरमहा,  
 शिवरसेन, चतुर्भुज, शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, पुरेयोतम पुरुष,  
 विष्णु, कृष्ण, सृष्टि-प्रलय [-कारण], उपेन्द्र, मधुसूदन,  
 पद्मनाभ, तीनों लोकोंका आदिकर्ता, स्वर्गप्रभु, धृष्ट,  
 वषट्कार, ओङ्कार, दिवान्तमें पृथ्वीके जलपर महोरग  
 (अनन्त वा शेषनाग) के ऊपर सोनेवाला, (२१-२६)  
 विराट्स्वरूप, धीवरजसज्जय, कामनावतारमें तीन ढगोंसे  
 तीनों लोक नापकर और बलिको बाँधकर महेंद्रको राजा  
 बनानेवाला—बतलाकर (श्लोक २७-२६में) स्पष्ट कहा  
 गया है कि—]

सीता [साध्यात्] जन्मी हैं और आप विष्णुदेव  
 एवं कृष्ण (अथवा रथामवर्ण) प्रजापति हैं ॥२०॥ रावणके  
 वधके लिये इसलोकमें मनुष्यशरीरमें आये हैं। हे धर्मधारियोंमें  
 श्रेष्ठ! तुम हमारा बड़ी कार्य कर चुके हो ॥ २० ॥ रावण  
 मारा गया, [अब] तुम [हुए] कालतक महाराजपदसे ]  
 प्रसन्न होते हुए महालोकको [गीत] चलो ॥ २१ ॥

[रामके महात्वका प्रतिपादन करनेवाले इस महर्षिके  
 वाक्यको सुनकर लोकसाक्षी अग्निदेव सीताजीको गोदमें

लिये पितासे निकल आये और गुरुरूपकी सीताको रामके  
 भरण्य करके बोले कि यह तुम्हारी सीता है जिसमें कोई  
 पाप नहीं है ( सर्ग ११८ सो० १-५ ) । इन्ने प्रहय करो  
 ( १० ) । रामने पैगा ही किया । इसके अनन्तर सर्ग  
 ११९ में मादेभरने रामसे कहा है कि हर्ष है कि तुम यह  
 कर्म कर चुके ( सो० २ ) अब अपनी माताओं, भाइयों तथा  
 सुहृदगणोंको ध्यानस्थि करके, अयोध्याका राज्य पाकर पूर्व  
 वंश स्थापन करके तथा अश्वमेध-यज्ञ करके ब्रह्मलोकको  
 गाना चाहिये ( ५-९ ) । देखो तुम्हारे द्वारा तारित हुए  
 यह राजा वरारथ जिन्हें इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है विमानपर  
 विराजमान हैं, तुम और लक्ष्मण इन्हें प्रणाम करो ( ७-८ )  
 प्रभुने पैसा ही किया और पिताको देखा ( १-१० ) ।  
 विमानस्थ राजा वरारथने अत्यन्त हर्षित होते हुए रामको  
 गोधुमें बिठाकर और गलेसे लगा कर कहा ( ११-१२ ) ।  
 तुम्हारे वनगमनके विरहसे स्वर्ग भी मुझे अश्रु न लगा,  
 किन्तु कैकेयीकी बातें मेरे हृदयमें गहरीं रहीं ( १३-१४ ) ।  
 आज तुम्हें और लक्ष्मणको सङ्ग्रहण देव और छातीसे  
 लगाकर मैं दुःखसे ऐसा छूट गया हूँ जैसे कुहरसे सूर्य  
 ( १५ ) हे पुत्र ! तुम-जैसे महात्मा सुपुत्रने मुझे सार दिया  
 जैसे अष्टावक्रने धर्मात्मा कश्यपको ( १६ ) ]

३१—( युद्धकाण्ड सर्ग ११६ )—

ईदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।

वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥ १७ ॥

पते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।

अभिवाद्य महत्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ २१ ॥

पतत् तदुक्तमन्यकमक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।

देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥ ३० ॥

और हे सौम्य ! अब मैंने जाना है कि जिसप्रकार  
 रावणके यणके लिये सुरेश्वरों ( देवों ) से [ प्रार्थित ]  
 पुरुषोत्तम ( भगवान् विष्णुरूप तुम ) यहाँ [ मेरे पुत्रके शरीर-  
 में ] छिपे थे ॥ १७ ॥ ..... [ अनन्तर राजाने  
 लक्ष्मणको रामकी शूद्रूपमें ही परम-कल्याणकी-प्राप्तिका  
 उपदेश करते हुए समझाया और कहा — ] ये इन्द्रसहित  
 धीनों लोक तथा सिद्ध और परमर्षिबोग [ हन ] महाराम  
 ( परमात्मा ) पुरुषोत्तम ( विष्णुरूप राम ) को प्रणाम करके  
 अर्चन कर रहे हैं ॥ २१ ॥ हे सौम्य ( कस लक्ष्मण्य )  
 तपानेवाके राम [ रूप सब ही ] यह ( प्रसिद्ध )  
 ( पेटवतिपादित ) अत्यन्त अचर है जो देवोंका

हृदय और गुण [ 'देवानां हृदयं महाप्रान्वितम्' तथा  
 मधोपनिषद् देवानां गुणम्' इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें  
 गया है ॥ ३० ॥

३२—( युद्धकाण्ड अन्तिम सर्ग १२८ )

[ अन्तमें समस्त रामायणके अथवा वा पाठ करने  
 सदा को फल मिळा करता है उसके प्रसंगमें  
 गया है कि— ]

प्रीयते स्ततं रामः सह विष्णुः सनातनः ।

आदिदेवो महाबाहुर्ईरिनांरायणः प्रभुः ॥ १ ॥

एवमेतदपुराणुत्तमस्वानं मद्रमसु ॥ २ ॥

प्रम्याहरत विसन्धं कं विष्णोः प्रकीर्तम् ॥ ३ ॥

राम निरन्तर प्रसन्न होते हैं [ और ] निजक  
 [ ही ] सनातन विष्णु आदिदेव महाबाहु इति  
 प्रभु हैं ॥ ११० ॥ इसप्रकार इस ऐतिहासिक प्राण  
 निःशङ्क उच्चारण किया करो, तुम्हारा [ सदा ] कल्याण  
 और विष्णुका सब बढ़े ॥ ११८ ॥

सूचनेविकासे तथा व्याख्याकारोंके अभिप्रायसे  
 निम्नलिखित रामायण-वाक्योंमें तथा ऐसे ही  
 अनुदृष्ट स्थलोंमें भी अवतार-वादका सङ्केत मिल  
 जिनका अधिक विचार यहाँ खेखडिके मन्त्रे वरीं  
 जा सकता—

३३—उत्तरोत्तरपुत्रो च वक्रा नाचरतीर्यथा ।  
 सुभूरायतताप्राज्ञः साधादिष्णुरिव स्वप्नम् ॥ ( १११ )

३४—इतेऽहं पुरुषम्यग्र शक्रतुल्यबलेन वै ।  
 मया तु पूर्व त्वं मोहात्त ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥

कौसल्या सुभ्रजस्ततः रामस्त्वं विदितो मया ।  
 वैदेही च महाभाग लवमणश्च महायज्ञः ॥ ( १११ )

३५—अहमेवाहरिष्यामि सर्वलोकमहामने ।  
 आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिदमिह कानने ॥ ( १११ )

३६—त्वमिद्वानुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।  
 प्रधानश्चापि नायश्च देवानां मधुवानि ॥ ( ११६ )

३७—अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकात् महामुने ।  
 आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिदमिह कानने ॥ ( ११६ )

३८—सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तवः ॥ ( ११६ )

३९—तानहं समतिक्रान्ता राम त्वाऽपूर्वदर्शनम् ।  
 समुपेतस्मिन् मानेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥ ( ११६ )

शक्तीकृत इत्यस्योक्तं जो ध्वनि है कदाचित् उसीसे  
मेरि होकर काब्रिदासको भी ऐसी रचनाकी सूची थी—

राममन्मथशरणेन तद्विज्ञा दुःसहनेन हृदये निशाचरी ।  
अप्यनदुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥  
(रघुवंश ११।२०)

परन्तु काब्रिदासके पद्यमें 'अमत-परार्थता' नामक  
बाध-दोष है जिसकी अपेक्षा आदिकविका श्लोक नितान्त  
निर्दोष है ।

४०-इति राजर्षयः सिद्धाः सगणाश्च दिजर्षभाः ।  
नलकौतूहलास्तस्युविमानस्याश्च देवताः ॥  
आदिष्टं तेजसा रामे संग्रामशिरसि स्थितम् ।  
एत्या सर्वाणि मृतानि भयादिभ्यश्चिरे तदा ॥  
(३।२४।२४-२५)

४१-जहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः ।  
अहो दीर्घमहो दास्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥  
पतदर्थं महत्तेजा भेदेन्द्रः पाकशासनः ॥  
शरमहाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरन्दरः ॥  
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।  
एषां वचार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥  
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥  
रामं वैवाङ्मयं एत्या तुतोष अनकात्मजा ॥  
(३।२०।२२, २४, २५, ३६, ४०)

४२-इह त्वं भव संनदो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ।  
अशमापत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन ॥  
(३।४३।४६-४७)

४३-तत्प्रतिनिवृत्तं आपमादावाऽऽत्मविभूषणम् । (३।४४।२)  
४४-असक्यं संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः ॥  
न चिराधीरवासास्तां रामो बुवि वचिष्यति ॥ (३।५०।२४)

४५-प्रवर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् ।  
अपसर्पममर्यादं तमसाऽन्वेन संतुलम् ॥  
न वाति मास्वस्तत्र निष्प्रमोऽभूदिवाकरः ।  
एत्या सीतां परानुष्टां देवो दिव्येन चतुषा ॥  
इदं कार्यमिति श्रीमान् व्याजहार पितानहः ।  
प्रहरा न्यपिताश्चासन् सर्वे ते परमर्षयः ॥  
एत्या सीतां परानुष्टां दण्डकारण्यवासिनः ।  
रत्नस्य विनाशं च प्राप्य बुद्ध्या यच्छ्रया ॥  
(३।६२।१-१२)

४६-इति रामं महात्मानं विलपन्तमानायवत् ।  
उवाच लक्ष्मणो प्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥  
(३।११।४, १२२)

लज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः ।  
महात्मानं कृतारमानमहाननं नानुबुध्यसे ॥

४७-जगतिष्ठतः प्रमदात्मवेह्यमाणः । (५।३०।४४)  
कुड्गव्याख्याकारोंकी दृष्टिसे रावण भी बालि, त्रिशिरादि  
अगवद्भक्तोंके समान रामके हाथसे मृत्यु चाहता था । परन्तु  
तिजकम्याख्यामें (अरण्यक २४।६ इत्यादि स्थलोंमें)  
इस मतका युक्तियुक्त खण्डन किया गया है । अतः इस  
वियथके प्रमाथोंका समावेश प्रकृत लेखमें नहीं किया गया  
है । तथापि अन्वयोंके मतसे थोड़े ऐसे प्रमाथ भी अवतार-  
पादके पोषक होनेसे यहाँ अन्तमें दिग्दर्शनरूपसे उद्धृत  
किये जाते हैं—

४८-प्रसह्य तस्या हरणे ददं मनो  
समर्थयामास वचाय रावणः ॥ (३।४६।३७)

४९-क्रोशन्तीं रामरामेति रामेण रहितां नने ।  
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ (३।६२।८)  
५०-तां जहार सुसंहटो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ (३।५।४६)  
५१-तदेवा सुस्विरा बुद्धिर्मुखोमादुपस्थिता ।  
मयात्र शकस्त्वां मोक्षतुमिरस्तः स संयुगे ॥ (३।२४।२५)  
५२-वचाम सीता सानीता दशप्रोवेण रक्षसा ॥ (३।४४।२)

युद्धकायकमें सर्ग ३६ के अन्तिम श्लोकसे पूर्व—  
रामं मन्वामहे विष्णुं मानुषं रूपमारिचतम् ।  
न हि मानुषमायोऽसौ राघवो ददविक्रमः ॥  
येन बद्धः समुद्रे च हेतुः स परमाद्भुतः ।  
कुरुष्व नरराजेन सन्धिं रामेण रावण ॥  
ये दो श्लोक भी किन्हीं रामायण-योषियोंमें थे, जिनमें  
प्रथममें स्पष्टतया राम विष्णुके अवतार बनाये गये हैं ।  
परन्तु रामवर्माके तिलकसे पता चलता है कि 'कृतक'-  
व्याख्याकी दृष्टिमें ये दोनों श्लोक प्रथित हैं, इसी कारणसे  
प्राचीन व्याख्याकारोंने इनका व्याख्यान नहीं किया । इसी  
विचारसे हमने भी इस लेखके प्रमाथोंमें इसप्रकारके  
प्रमाथोंका समावेश नहीं किया है ।

यद्यपि उत्तरकाण्डकी प्रामाणिकता भी युद्धकाण्ड सर्ग  
६० श्लोक २-१२ तथा सर्ग ११० श्लोक १२-१३, इत्यादिसे  
ही सिद्ध है कि वहाँ सूत्ररूपमें उन-उन कथाओंका संक्षेप



विद्यमान है जो उत्तरकाण्डके सर्ग १०, १६, १७, १८, २१, २४, २६ इत्यादिमें विस्तारसे मिलती हैं और जिनके बिना युद्धकाण्डपर्यन्त रामायणकी अर्थवत्ता भी अपूर्ण ही रहती है क्योंकि उत्तरकाण्डके अतिरिक्त अन्यत्र रामायणभरमें कहीं इनका विचार वर्णन नहीं किया गया है। (और इसप्रकारसे उत्तरकाण्ड एक प्रकारका परिशिष्ट है जो स्वयं आदिपवि वा उनके कुछ ही कालके पश्चात् होनेवाले किसी ऐसे महापुराणका रचा प्रतीत होता है जिसने

युद्धकाण्डपर्यन्त रामायणकी अपूर्ण बातोंको ही करनेका सफल प्रयत्न किया है) तथापि चापु पुरातत्त्ववेत्ताओंकी दृष्टिमें उत्तरकाण्ड कालीकृत अतएव प्रामाणिक नहीं समझा जाता है। इमीने उ काण्डके प्रमाणोंको मैंने इस लेखमें स्थान नहीं दिया यद्यपि उनकी एक बड़ी संख्या है। इसप्रकार वर यहीं समाप्त करके भगवदर्थण करता हूँ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

## उदासी साधु भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीमती श्रीहरिनामदासजी उदासीन महन्त, श्रीसाधुदेवा)



स्वन्त प्राचीन कालसे भारतवर्ष ही संसारकी सभ्यताका आदिस्त्रोत रहा है। यहाँसे संसारके समस्त विभागोंमें धर्म, सभ्यता, संस्कृति, विद्या, कला, कौराज आदिके प्रचारक-महात्मा, साधु तथा धर्मगुरु जाया करते थे। साधुका स्वरूप ही धर्म-उपदेश, जाति-रक्षा और देश-सेवाकी निर्यानी है। यही कारण है कि सृष्टिके आदिकालसे आजतक धर्म-रक्षा, देश-सेवाकी बागडोर साधु-महात्माओंके हाथोंमें रही है और आगे भी रहेगी।

भगवान्के अवतार धारणका प्रथम भी साधु-रक्षा ही है—'परिपालय साधूनां।' यहीं यहीं सर्पादा-पुण्योत्तम भगवान् शान्चन्द्रजीने अवतार धारणकर अनेक बास-खीजाएँ काने हुए जब जलकुटीरमें जाकर धनुष तोंगा तब परशुरामजीने उदासी साधुके कीर-वानेमें ही आकर वाचपीत की थी—

गैर सरीर मूर्ति मत्त आत्मा। मत्त विलसत विभुड विरात्मा ॥

हीन ब्या सति बदन मुहाला।

कृष्टि मुनि बल्लभ नृण दुःखीये। अनुसर कर कुटार कठ कीये ॥

शंते भेज करनी कठिन वरनि न जाय मुक्कय।

परि मुनि तद् बन् वीरस जपे बहै तव मूष ॥

अंशुपुत्रमन्त्रीको देखकर जब राजाघोने लगे होकर लि। वदेन अरुण-अरुण वायु सेने हुए उबको प्रदाम किया। वह साधु-स्वप्नका ही प्रमाण था।

तदनन्तर श्रीरामने अपनी चौदह बर्षकी वनवास उदासी साधुके रूपमें रहकर देश-हित, नीति-उपदेश, लोक-सर्पादा, मध्यवर्षमहात्मा वेदमतिपारित साधु रूपमें चरितार्थ करके दिया दिया। भगवान् प्रकाशपूर्ण के ऊँचा-नीचा सब जानते थे, उन्हें यह पूर्णतया विचार कि यदि हम साधुरूप धारण किये बिना ही कृपाएँ मा उतारेंगे तो आगे महात्मा साधु-घोषोंमें साधु बर होकर देश और धर्म-रक्षाके पुण्य कार्योंमें उनको कैसे पूरा करेगा? जब देश और धर्म-रक्षाका कार्य करने वाले निकल जायगा तो साधुओंकी महत्ता तुल्य हो जायगी और ऐसा होनेपर उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ेंगे। जब साधुओंको बर होता है तब मुझे भयानर सेना पड़ता है। इसलिए भगवान्ने पदसेते ही साधु-रूप धारणकर सबका कल्याण किया।

इस गूढ़ रहस्यका पूर्ण ज्ञान भीमजी महात्माने ही ही लीको भी था, तभी उन्होंने अपनेपति महात्मा इन्द्रावनेके वरदान माँगने समय श्रीरामजीके लिये चौदह बर्षके वनवासके साधु-साधु उनके लिये उदासी-गायु भेज कर लाने बुलिते रहना भी माँगा—

तासम भेज विसेन उदासी। चौदह बान रज करनी।

महात्मा दशरथजीको यह बात बड़ाआपने की थीले कठोर प्रतीत हुई, वर इसके भीतर जो गूढ़ ज्ञान था उसको वे नहीं समझ सके। वह भगवान् साधुकी रूपमें वनमें जाया महात्मा ही लगी। जिस समय वनमें



रामायणं श्रुत्वा मेमि रामदा नरांशुम् ।

रायको वीर्यं वनाय शिल्पं मोक्षं महावन्द्यम् ॥



साधुने पराकरवन जानेकी बात सुनी उस समय उनका मुख-  
रूप तिल गया, उनकी मनमानी हो गयी। वे बोले—

मुनिगन मिहन बिसेन बन सवहि भौंरि भल मोर ।  
देहि मईं पिनु आयमु बहुरि सम्मति जननी तोर ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताका कारण माता-पिताकी  
आशये उनकी मनोकामनाकी पूर्ति होना था। भगवान्  
गुप्त ही राजोचित वैभवं, धनद्वार और निवास-स्थान  
प्राप्त करने लगे, घरके रमणीय पदार्थोंका एक बार  
दुहर भी बखडोकर न किया।

'मुनि परम मन माननी । ओग घरि नेली मूडु बानी ॥'  
'एन गुत मुनि मेव बनाई । जके जनक जननी सिर माई ॥'  
माता कैटोकी दिये मुनि-(साधु)-पद धारणकर श्रीराम-  
के बचका सीधा मार्ग लिया। उनका उदासी साधुनेपमें  
एक काना मुन धर्मपत्नी महारानी सीता कब रुक सकती थीं ?  
इन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया—

श्रीरामचन्द्रजीके अनेक दुःख सुनाकर उनकी परीचा ली,  
एक बार शिवाया धीर-पत्नी धर्मसे कब पीछे पैर रखनेवाली  
थी, साफ बर् दिया—

रक्षिय भरष मो भवावि लगी रहत न जानिय प्रान ।

श्रीरामचन्द्रजीके साथसमस्त वनयात्रामें तपस्विनीरूपमें  
एक बरसा साथ दिया। यह है हमारे भारतवर्षका  
तीर्थार्थ तथा प्रतिग्रह-धर्म। इन दोनोंको साधुरूपमें  
एक करने देन अक्षय्य—नामकीसे एक चय 'भी पूयक' न  
राखेते अक्षय्य—कब दूर तकने थे ? उनके लो कीवल-  
मन प्राण-वन श्रीरामजी ही थे। यह है आनन्देहके पूर्ण  
सत्यका एक उदाहरण चित्र।

श्रीराम, सीता और अक्षय्यने चौदह वर्षोंतक वनमें  
रहकर उदासी साधुने पराकर तदनुभव व्यवहार और  
आशाकोइसा साधु शब्दकोपरिगर्भ कर दियाथा। उन्होंने  
एक काल की, (अनुभवहित निर अट वनने) अक्ष नहीं  
कथा, देवद कर्ण-मूक-कवचा भोजन किया—

शिर मुन्य भाना सहित बंद-मूक-कवच रूप ।

शिर—शिर मान साधुका और करि मान दिग्गद एतरी अक्षय्य होत है। दुःख और चरिते उपरकथे अक्षय्य  
शिरकारने लोने बरसा है, 'मुनेनकर अक्षयः' (१०।१०) 'सर्वेण पुत्रा' (१०।१०) —१९४६

धर श्रीरामचन्द्रजी वनमें अदि-मुनियोंके आश्रमोंमें  
मिलने गये तब अनेक जगह अदि और मुनियोंने उनको उदासी  
साधुरूपमें देखकर ही प्रथम प्रणाम किया। श्रीरामजी वृद्ध  
महात्माओंको प्रथम प्रणाम किया करते थे। साधुको साधु  
ध्यातमें प्रणाम किया करते हैं। धर श्रीरामचन्द्रजी  
अत्रियरूपमें गये होते तो उनको आश्रयसाधु प्रणाम नहीं  
कर सकते। यदि कहा जाय कि राजा या बलिष्ठ आनकर  
किया होगा तो यह नीतिके विरुद्ध होगा। अब रामजीके  
पिता महाराजा दरभयजीको कोई आश्रय-साधु प्रणाम नहीं  
करता था, बल्कि वे ही मुनियों और साधुओंका आगमन सुनकर  
आगे जाकर प्रणाम कर उनको सादर साथ खाते थे—

मुनि आगमन सुना अब राजा । मिहन गयउ के निर समारा ॥  
करि दंडवत मुनिहि सनमानी । नित्र आगन बैठरे जानी ॥  
अरन पक्षार कीन्ह अति पूजा । सो सम धन्य आनुनिहि दूजा ॥

तय भला रामजी अत्रियरूपमें होते तो उनका कीन  
साधु प्रथम प्रणाम कर सकता था और श्रीरामजीको ही  
यह कब स्वीकार होता ! भगवान् वेद तथा अक्षय्य-सर्वादा-  
भंगका कळंक धरने शिरपर क्यों छेते ! यह तो स्वयं  
सर्वादा-पुष्टोत्तम थे। जब वे उदासीन मुनि मुनीचयके  
आश्रममें गये तब मुनीचयने उनको उदासी साधु या  
तपस्वीके वेगमें देखकर ही प्रथम प्रणाम किया था—'एंड  
कुर इव अरनिह बागी ।'

श्रीहनुमान्जीने विग्रहरूपमें होने हुए भी भगवान्को  
प्रथम प्रणाम किया, इसका कारण भी रामजीका साधुरूपमें  
होना था, क्योंकि साधु सर्व बर्षोंका गुण होता है। इसीसे  
हनुमान्जीने कोई हाजि नहीं समझी। यदि रामजी अत्रिय-  
रूपमें होते तो हनुमान्जीमें परिहण कर देना कर  
सकने थे !

जब श्रीराष्ट्रजीने रामको वनमें देनकर वन ही-अव  
प्रणाम किया था, तब भी रामजी उदासी साधुके ही  
रूपमें थे—

पिता बचन हरि शर उदरणी । दंडव वन विराट अरिणी ॥

भारतजीने भगवान् रामको वनगमनर उदासी साधु-  
रूपमें ही देखकर ही प्रथम प्रणाम किया था—

कउ दंडवत निडे उरु । एव वी कर उर मई ॥

—भगवान् अथवा राजा जानकर नहीं किया था। ऐसा करना तो धर्म-मर्यादाके विरुद्ध होता। तब आजकलका-सा मनमानी घरजानीवाला समय नहीं था; गोसाईं तुलसीदासजी उस समयकी मर्यादा दिखाते हुए लिखते हैं—

बरनाश्रम निज निज घरम निरत वेद पथ रोग ।  
बढहिं सदा पावहिं मुस नहिं भय सोऊ न रोग ॥

यदि कोई कहे कि नारदजीने भगवान् या राजा जानकर प्रणाम किया था तो उसका उत्तर यह है कि जब वे अयोध्यामें रामचन्द्रजीके पास महाजीके भेजे गये थे उस समय रामजी अश्रिय राजकुमारके रूपमें थे, इसलिये उन्होंने नारदजीको देखते ही सहसा बठकर प्रणाम किया—

देखि राम सहसा उठि थाप । करत दंडवत मुनि उर ताप ॥  
सादर निज आसन बैठारे । जनकसुता तब चरन पसारे ॥

इससे साफ प्रकट है कि अयोध्यामें रामजीने साधुरूप नहीं धारा था इसलिये नारदजीको प्रणाम किया था और पम्पासरोवरपर नारदजीने साधुरूप जानकर ही प्रथम प्रणाम किया था। बालिने अन्त समय श्रीरामजीके जटाधारी साधुरूपका ही ध्यान किया था—“स्याम गात सिर जटा बनाये ।”

इसी प्रकार महारानी भगवती सीताने भी अपने पतिके स्वरूपका समस्त धनयाश्रममें अनुकरण किया है। जब हनुमान्जीने लङ्काकी अशोक-वाटिकामें सीताजीका दर्शन किया, तब सती-शिरोमणि सीताका शरीर अत्यन्त रुखा था और उन्होंने जटाजूट धारण कर रक्खा था—

रुस तनु सीस जटाइक नेनी । जपति हृदय रघुपति गुन-प्रेनी ॥

रावण श्रीरामजीको उदासी साधु ही जानता था इसीसे कई जगह अपने वचनोंमें रामजीके लिये तपस्वी शब्दका प्रयोग किया है—“मम पुर बस तपसिन सन प्रीतां” “कहु तपसिन कर बात बहोरी ।” इत्यादि

यदि किसीको संशय हो कि उदासी भेष तो पहले था ही नहीं फिर भगवान् रामचन्द्रजीका तपस्वी, उदासी, साधु भेषमें रहना बिलकर कहीं गोसाईं तुलसीदासजीने गलती तो नहीं की? मिय पाठको! गोसाईंजीने कोई

गलती नहीं की है। उन्होंने उपर्युक्त प्रसङ्ग श्रीराम रामायणके आधारपर अचरयाः सत्य लिखा है। देखिये

नव पथ न वर्णाणि दण्डकारण्यमश्रितः ।  
वीराजिनघरो वीरो रामो भवतु तापसः ॥

(२।११।२०)

पताश्रान्याश्च सुहृदामुदासीनाः शुभाः कथाः ।

आत्मसम्पूजनीः श्रुण्वन्वयौ रामो महापथम् ॥

(२।१०।१२)

वेदप्रतिपादित सनातनधर्मों उदासी भेष अर्थात् अश्रय चला आ रहा है। १०८ उपनिषदोंमें १२ वीं उपनिषद् तथा गरुडपुराण आचार-खण्ड ११।६-१० की कूर्मपुराण २।७६-८०-८१ देखनेसे यह बात स्पष्ट होती है।

अन्व कई पुराणों तथा महाभारतादि इतिहासोंमें उदासी साधुओंकी कथाएँ बहुत प्रकारसे आती हैं। वे बड़े बड़े जानेके भयसे उद्भूत नहीं की गयीं। गोसाईं तुलसीदासजीने अपनी रामायणमें श्रीरामजीको बौद्धकर अन्व का भेष उदासी साधुओंका वर्णन किया है। जैसे भरतजीके पुराण भरद्वाज मुनिने अपनेको उदासीन तपस्वी बताया है—

सुनहु भरत इम मुधा न कहही । उदासीन तापस बन राही ॥

आगे चक्कर और भी लिखते हैं—

‘साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कवि कोविद विरक्त सन्तसी ॥’

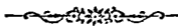
‘प्रमुदित तीरथराज निवासी । बैलानस बहु गृही उदासी ॥’

‘मिलहिं किरात कोठ बनवासी । बैलानस बहु जी उदासी ॥’

‘कहुँ कहुँ सरितातीर उदासी । बसाहिं ज्ञानरत मुनि सन्तसी ॥’

क्या आज भी साधु लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आदर्श जीवन और उपदेशका अनुसरण और आचरण के लिये तपस्याका परिचय देंगे, जिनसे समस्त अल्पज्ञ कल्याण होकर पूष साधु-समाज फिर पूर्ववत् आर्यभूत होकर भारतीय विमल कीर्तिकी गगन-गुम्बी पंजाब बनाएँ दुष्सा संसारमें भगवान् रामचन्द्रजी मरिका प्रजात के स्वयं कृतार्थ होकर चौतोंको भी कृतार्थ करायें।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आरीर्षान्ने देवका सन्तानों



# फारसीमें रामायण

(लेखक—श्रीमहेन्द्रप्रसादजी मौजूबी, भातिम-फ़ाज़िक)



सबजमानोंके राज्यकाळमें भारतमें हिन्दूसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद फारसीमें हुआ था जयवा यह कहना चाहिये कि अनेक फारसी ग्रन्थ संस्कृत-पुस्तकोंके आधारपर लिखे गये थे। हिन्दू-समाजमें रामायणको जो स्थान प्राप्त है वह सभी जानते हैं। यही कारण है कि फारसीमें भी अनेक रामायणें पायी जाती हैं।

रामायणको फारसी आमा पहचानेका पता सबसे पहले बम्बईके समयमें मिलता है। एक इतिहाससे पता चलता है कि सन् १२८२ ई०में 'महाभारत' का फारसी अनुवाद समाप्त होनेके बाद सन् १२८२ ई०में मुज्जा अम्दुलकादिर बहादुरीको रामायणके फारसी अनुवादके लिये आज्ञा हुई। सन् १२८२ ई०में यह अनुवाद समाप्त हुआ। इसके पश्चात् फारसपरफाजुसार उसकी सचित्र और सुसज्जित प्रति शाही पुस्तकालयमें रखी गयी। यह अनुवाद फारसी रूपमें था। इसकी कोई प्रति नहीं है या नहीं—इस विषयमें मैं प्रबलक कुछ नहीं जान सका। परन्तु फारसीमें जो रामायणें मेरी दृष्टिले गुजरी हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

(१)

जयमग १२ वर्ष गुजरे, मैंने 'नद्वतुज उल्मा' नामी बख्तखकी इस्लामी संस्थाके पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित फारसी रामायण देखी थी, उसपर जिला हुआ है—'रामायण जैसी'। यह सन् १३३४ ई०की जिल्दी हुई है। यह बख्तखकी फारसी शायमें है और इसमें पद्यका शंश बहुत ही योग्य है।

सम्राट अकबरने जो अनुवाद कराया था, उससे यह ग्रन्थ बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि सम्राटकी रामायण सर्वथा पद्यमें थी। उक्त रामायणमेंसे कुछ शंश स्पष्टकर है—

शंश करके रावन बाघीजे अफरे मौजे श्रीरामचन्द्र व शिफ्त सुन्दन व कुतः श्यन फौजे रावन बंद करदार।

सारा गांर कि शाहंशाह ख़ाबर जियाय अफर दर काहा म्हादिक वर फ़ारम्ल, ख़बर रजतन इनुमान व

बाबुरदन ग्याह संजीवन व सहीहुलबदन व तन्दुरुल श्यन बहादुराने फौज श्रीरामचन्द्र मुस्तसल व मुयारह बरावन जादिर श्यद विस्तार गुमगीन् गर्सीदः खज़ते धन् गुयल फ़िक नज़रा दीवार ईरत मान्द, बाद अन् साभते दजेराने फौज ख़ुदरा आमादा पैकार नयूदा बर्दी किअ तरतीव दाद ॥

दूसरी रामायण फारसी पद्यमें मुबला मसीह-कृत है। मुबला साहबको बहुतेरे लोग यह समझते हैं कि वह पानीपत (करनाल) के निवासी थे पर दरअसल यह कराना (जिला सहारनपुर) के निवासी थे। उन्होंने बर्हागीर बादशाहके जमानेमें अपना ग्रन्थ रचा था।

उक्त ग्रन्थ 'रामायण-मसीही' के नामसे मुंरी नवज-किशोर साहबके पन्नाखण्ड खखनउने सन् १८३३ ई० में प्रकाशित हो चुका है। यह मन्त्रके आकारके ३३० पृष्ठोंमें है। उदाहरणार्थ कुछ शंश इसप्रकार है—

शकरे गुफ़तार ई शीरी फ़सला।

बदी आईग बसकद ई तराना ॥

कि राये नूद अन्दर किशारे हिन्द।

बेज़रे ख़ातमशु बहाक ता लिन्द ॥

नशहरे अवष नामश राजा जसरत।

जे तल्लुश आसनां मीनुर्द हसरत ॥

पन्द दादन कुनमकान रावनरा व पराम् छन्द रावन बम् भो—

जुनी मोलीद व गुफ़त ये शाह दीबां।

रिक्ते मन् मान्दा अस्त इमरोज़ हैरां ॥

कि अज़ ख़ाबन् चरा बेदार करदी।

ख़िलाफ़े आदतन् आज़ार करदी ॥

मगर कारे दर उफ़तादः बरुदमन।

कि शोरंशी खुना सुता ख़ाब बरमन ॥

वगुफ़ता राम लहारा फ़तद कई।

सरासार शहर देनांन अट्टद कई ॥

(२)

तीसरा ग्रन्थ भीमान् चन्द्रमान 'बेदिब' इत्यपद्यमें है। यह ग्रन्थ औरज्ञेयके राज्यकाळमें किमी समय रचा गया था।

यह भी मुंशी नवबकिगोर साहबके पत्राचारपत्र सन १८७२ ई० में प्रकाशित हो चुका है। केवल ११४ पृष्ठोंमें है।

इस प्रसंगमें देखा भी प्रतीत होता है कि श्रीगुरु 'वेदिक' धर्मके सामायण्यके परके कारणी गणमें किया था। परन्तु भारती गण-सामायण्यका कुछ पता नहीं लगता। यहिक उक्तका सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। अतः कारणी गण-सामायण्यका ही कुछ अंश उद्घरण किया जा रहा है:—

मरतइद्दु वर अंगेराततु शपन कामहोदुर वरारि भाहम  
गुद व छारार सादु वर जंग ।

बरोरे दिगर शाहे रका वरदत,  
वर आमद बतद आम व तावे जे वरु ॥  
हमः मारयावने दरगाह ऊ,  
सतादन्द वर जाने गुद वरद ॥  
जे शाहजादहा अन्दरा मन्जिते,  
नीशस्तः बजाहाम सुद हर फते ॥

( ४ )

छाजा अमरसिंह नामक सम्मान जातिके कायस्थ थे, इन्होंने संवत् १७८३ वि० (१७०२ ई०) में एक रामायण फारसी गणमें लिखी थी। यह रामायण परं० भाष्यप्रसादजी-के उद्योगसे सन् १८७७ ई० में मुंशी नवबकिगोर साहबके पत्रालय सखनजसे प्रकाशित हो चुकी है। इसका नाम 'रामायण अमर-प्रकाश' है। बड़े आकारके २४४ पृष्ठोंमें है।

समूनेके रूपमें कुछ अंश नीचे है—

बानायान पेशीन चुनीं शुक्रतः अन्द कि दर शहर प्राग  
(प्रयाग) अजु मुलदिक शुदन गन्ना व जेमुना व सरस्वती  
त्रिवेनी नाम तीर्थें अख हर फस दर उमर शुद यक मरतवः  
गुसुल नुमायद अजायहाय जन्म जन्म धारा परवद व  
भाकि बनाम माह मकर गुसुल नुमायद मरातिव ऊ विः  
तवी शुक्रत ? अजु अर्थ व काम व मोच व धम हमः  
हासिब शवद ।

( ५ )

पांचवें ग्रन्थके लेखक जा० अमानतरायजी हैं। यह जातिके अश्रिय व लालपुर नामक ग्रामके निवासी थे। उस ग्राममें अधिकांश अश्रिय ही थे जो वस्तुतः रणसेवी थे। पर यह विद्या-सेत्रके एक शूर थे।

द्वैतयोगमें ब्राह्मण्य। ब्राह्मणकी पूजा किया। अ  
अमानतरायजी देहजो पकूने। इनके विद्वानकी बर्णन  
और फौजी। नराव अमतर अजी माहवने इन्ने जने व  
नौकर रक्षा और अब नराव सारव स्वर्गजो नि  
राव उनकी बहिन रहीमुशिया बेगन काजारीकी केंचि  
महाविद्या बनी। बाजारजने परके 'अनन्दमाला'  
कारणी गणमें किया था। देशमें जब उमका अका एक  
हुका तो भारने रामायणको सन् १७२४ ई०में इत  
पका कामा पढ़ाया।

यह अतूर्त ग्रन्थ भी मुंशी नवबकिगोर साहब  
पत्राचारपत्रे सन् १८७२ ई०में प्रकाशित हो चुका है। १८४  
पृष्ठोंमें है। समूनेके रूपमें आरम्भका कुछ अंश नीचे लि  
का रहा है केवल इसीमें मान्य हो सकता है कि ए  
रामायणके पद्य अिद्रीमीके शाहनामाके समान बोलत है।

पुसादत बयलाने हिन्दी उवां,  
कुन्द ई चुनीं शरहे ई रल्लं ॥  
कि दर नखे राना मन् कामगर,  
बसे रामा शुद अंजिते रोजु ॥  
हमः साहवे जुमरु रूपे अनी,  
कशीदः अशं जेर सुते नदी ॥  
अवरदस्त व पैयात्र व अरहीदिमन्,  
चू बहर व चू अजे सखत अज ॥  
अजी हा यके ऊ सगर नाम नूर,  
चू शूर अद ऊ दर अहां आम नूर ॥

( ६ )

एक ग्रन्थ खादौरेके एक पवित्र अविनीतान निरुद्धे  
पुत्र पवित्र रामदासजी कृत है। इसके रचे जानेका काल  
सन् १८६४ ई० है। मैं इसे अभी तक खपं बाँटे  
सका, इस कारण इसकी बावत भी अधिक ब  
लिख सकता।

× - - × ×

सम्भव है कि उक्त रामायणोंके लिये कुछ अ  
और भी रामायण फारसीमें हों, किन्तु उनके गिरने  
व तो मुझे अभी कुछ पता ही चका है व उनके लेख  
की नीवत ही आयी है। यदि किसी सम्मानको कुछ अ  
पता हो और वह कृपया मुझे सूचित करनेका बर हों तो  
मैं उनका आभारी हूँगा।

# मराठीमें रामायण

(लेखक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पाद्मकार वी० ए०, संपादक 'सुमुमु')



सर-भारतमें गुसाईं तुजसीदासजीकी रामायण जैसी लोकप्रिय है, वृत्तिये अर्थात् महाराष्ट्रमें ज्ञानेश्वर महाराजकी ज्ञानेश्वरी भी वैसी ही है। ज्ञानेश्वरी श्रीमद्भगवद्गीता-पर एक अद्वितीय टीका ग्रन्थ है, यह ज्ञान-

भक्तिग्रन्थ है। इसमें अद्वैत-ज्ञानका भक्तिके साथ उलूह सम्मेलन है तथा ज्ञान-भक्तिकी एकरूपता है। मराठी साहित्यके सभी उलूह ग्रन्थ ज्ञानेश्वरीके ढंगपर ही लिखे गये हैं। ज्ञानेश्वरी, एकनाथजी की भागवत और रामदासजीका दासबोध इन तीन ग्रन्थोंको महाराष्ट्र वेद-संरक्ष मानता है। नामदेव और तुकारामके अर्थग भी इसी प्रणालीके हैं। शिष्योपासकोंके लिये 'शिष्योपास्य' और वृत्तत्रयेके भक्तोंके लिये 'गुरुचरित्र' वे दोनों सम्प्रदाय-ग्रन्थ भी महाराष्ट्रमें लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्रीय धन्तःकरायकी स्थिति ज्ञानप्रधान है परन्तु इस ज्ञानके साथ भक्तिकी एकरूपता है। निरे वेदान्त-ज्ञान और कोरी उपासनाका महाराष्ट्रमें विशेष अद्भुत रीति। ज्ञान और उपासना, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण, एवं सूर्य और अमूर्त इन सबमें महाराष्ट्रीय मन एवं अनेक मान्यता है और महाराष्ट्रके समस्त सन्तकवियोंका अर्थग भी यही है।

मराठी साहित्यका यह रहस्य समझ लेनेके बाद मराठीमें रामायणको किसने कैसे गाया है, यह जानना विशेष आनन्द-प्रद होता है। यद्यपि महाराष्ट्रमें राम और कृष्णको सब एकरूप ही मानते हैं तथापि स्वामी रामदासने राम और हनुमान्की उपासनाका विशेष प्रचार किया। ग्रन्थ अनेक सत्पुरुष और कवि श्रीकृष्ण अर्थात् विद्वज्जके उपासक हैं। 'श्रीराम जय राम जय राम' यह रामदासका मन्त्र है और 'रामकृष्ण हरि' कृष्णोपासकका मन्त्र है। सारांश यह है कि राम-चरित्र और राम-नामका महत्व सर्वत्र मान्य है। श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीराम-चरित्र दिव्य-मात्रके लिये सर्वथा पृथक् और लिये हैं, और किसीकी किसी भी उपासनासे अविच्छेद है। राम और रामनाम सकल लोकप्रिय हैं।

मराठी भाषामें अनेक सन्तों और कवियोंने रामचरितका रच किया है और रामचरितसम्बन्धी पृथक् उपासकान

तो असंख्य हैं। राम-नामका गौरव-गान अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभीने किया है।

मराठी भाषामें रामचरित्रका सर्वोत्तम सुन्दर वर्णन चार-पाँच कवियोंने किया है। इन सबमें सयले बदा अत्यन्त सरस, विद्वत्, प्रतिभा और प्रसादगुणयुक्त, आध्यात्मिक तन्तुओंसे निर्मित होनेपर भी श्रीरामकृतके माधुर्यको अत्यन्त बढ़ानेवाला ग्रन्थ एकनाथजीका भावार्थ-रामायण है। यह चालीस हजार श्लोकियों (मराठीका एक छन्द)का प्रकाण्ड ग्रन्थ भावुकोंको आर्यन्त मिय है। वाल्मीकि, अश्वथाम, आनन्द और योगवासिष्ठ रामायण इत्यादि अनेक संस्कृत-ग्रन्थोंमें वर्णित कथाओंको अपनी इच्छानुसार पुनःकर कविने स्वतन्त्रताके साथ उनका रविस्तर वर्णन किया है। श्रीएकनाथजी महाभागवत माने जाते हैं और श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धपर लिखी हुई उनकी मराठी टीका भी ज्ञानेश्वरीके समान ही लोकप्रिय और सर्वमान्य है। मेरे निर्यायके अनुसार एकनाथजीका काव्य वि० सं० १६८६ से १६९२ है। भावार्थ-रामायण उनका अन्तिम ग्रन्थ होनेके कारण उसका रचनाकाल वि० सं० १६४६ से १६९२ तक ठहरता है अर्थात् यह ग्रन्थ भी गुसाईं तुजसीदासजीके रामायणके समकालीन ही है। श्रीएकनाथजी काशी गये थे। उनका भागवतग्रन्थ काशीमें ही वि० सं० १६३० में पूरा हुआ था। इसके सिवा उनके 'रविमयी-स्वयंवर' नामक ग्रन्थकी पूर्ति भी काशीमें वि० सं० १६२८ की रामनौमीके दिन हुई थी। इससे उनका करीब तीन वर्ष काशीमें रहना सिद्ध होता है। इन बीचमें एकनाथजी और तुजसीदासजीका काशीमें परस्पर प्रेम-परिचय अचरय हुआ होगा क्योंकि दोनों ही महाभागवत थे। अचरय ही दोनोंमेंसे किसीके ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख नहीं मिलता।

एकनाथजीकी रामायणमें रामकथा और मरुजानका उलूह एकीकरण है। अतएव उसके धर्मपनमें मग्यमेम और अध्यात्मज्ञान दोनोंकी साथ ही प्राप्ति हो जानी है। 'श्रीराम मुझे बरकर धरना चरित्र गान करवाने हैं,' इस बातका उदाहरण यही ही मनोहर रीतिसे वर्णन किया है।



'जायति माती नर्ततां। पुत्रे प्रकृतो रामकथा ।  
दुधिराजो देवो जतां रामनरता ।  
रामायणं दात्री ॥'

श्रीराम अपनी गणगणे बजाकार कथा कहजा रहे हैं। जागते राम, गंगो राम, मनमें राम, मौनमें राम, प्राण-धर्ममें राम हुआप्रकार—

रामे पुत्रिरी काठी विधिनी रही रामायणी ।

—राम मेरे देवे धीमे पढ़े कि मेरी दृष्टि श्रीरामायणकार परक गयी। श्रीरामके द्वारा हमप्रकार बजाकार निज गुण-गान करानेका दुर्जर प्रसन्न विरसे ही प्रणकारोंके भावमें होता है। श्रीराम सर्वथा अन्न-अन्न्या हैं। अन्नमे दरोन्त्रिय वरारपरूपसे भवतारित हुए, उनकी पार तानिपाई हैं। कौसल्या-सहिष्ठा, मुमिशा-शुद्धमेधा, कैकेयी अविद्या और उसकी दासी मंगरा-कुविद्या। छद्मय आम-बोध हैं, भरत आधार्थ हैं, श्रीराम पूर्ण आनन्द-विभ्रद हैं। इस-प्रकार एकनायकीने रामायणका बहुत ही सुन्दर रूपक बाँधा है। आध्यात्मतावकी ओर ऐसी निर्मल दृष्टि रखते हुए भी उन्होंने समस्त कथा-भागका अत्यन्त रसपूर्ण और मधुर भाषामें सविलार वर्णन किया है। हनुमान्जीकी रामभक्ति इतनी असीम थी, एकनायकी कहते हैं—

रामा वाञ्छुनि ब्रह्मज्ञान। आदासी न लगे न लगे जाण ।

आमुचे ब्रह्म रघुनन्दन। बोले गर्जन हनुमन्त ॥

अर्थात् श्रीहनुमान्जीने गरजकर कहा कि राम ही मेरे ब्रह्म हैं, उनके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा ब्रह्मज्ञान नहीं चाहिये। इस एक ही धोबीसे कथाके वर्णनकी सरसताका पता लग जाता है, विलार-भयसे अधिक नहीं लिखा जाता।

एकनायकीके गाती मुक्तेधरने भी एक श्लोकबद्ध रामायणकी रचना की है, उसकी श्लोक-संख्या १०२५ है। महाराष्ट्रके छोटे-छोटे गाँवोंमें अन्नपड़ और पढ़े-लिखे लोगोंको—सभी की पुरखोंको श्रीराम-कथा और श्रीकृष्ण-कथाका अमृत पिबानेवाला अत्यन्त रसिक और लोकप्रिय कवि था धीधर। उसने वि०सं० १०५६ में हरिविजय और १०६० में रामविजय एवं १०६६ में पाण्डवप्रताप इन तीन सुन्दर ग्रन्थोंका निर्माण कर श्रीराम-कृष्णके चरित्रका महाराष्ट्रके कोने-कोनेमें प्रचार कर दिया।

महाराष्ट्रमें रामोपासनाका प्रचार बढ़ानेवाले महापुरुष थे श्रीशिवाजी महाराजके मोक्षगुरु समर्थ श्रीरामदास। इनका समय वि०सं० १६६५ से १०३८ ई। उन्होंने रामायणके दो

काव्य लिखे हैं, जिनमें श्रीहनुमान्जीके चरित्रका अति वर्णन है, पहला सुन्दरकाव्य और दूसरा पुरुकाव्य। रामायणीने इन्होंने दोनों काव्योंपर रचना की, तथापि उनकी रामायणकी अनेक महाराष्ट्रमें उनके लिखे हुए राम-नाम अमंग, पद, कव्याष्टक, श्लोक, मन्त्रादि बहुत कविताओं अधिक प्रचार है और उन्होंने लोगोंमें रामभक्ति टिकी है। श्रीरामायणकी रामके अत्यन्त मत्त थे। इन्होंने श्रीराम और श्रीमारुतिजीकी उपासनाका प्रचार किया और रामभक्तोंमें उत्तरको शोकप्रिय बनाया।

मराठीमें रामकाव्यपर लिखनेवाले एक विद्वान की हैं मयूर-परिचय अथवा मोरोपन्तीजी। इनका काव्य वि०सं० १०८६ से १०८९ ई। इनकी जीवनी काव्यविवेचनमें १४ वसे २४ वर्ष पूर्ण होने प्रकाशित की थी। उनमें इस कविकी रामायणके सम्बन्धमें दो-तीन प्रकरणोंमें अर्ध ८० पृष्ठोंमें मीने सविलार विवेचन किया था। इस कविने १०८ रामायण लिखी हैं, जिनमें कुछ तो बहुत छोटी अ-कीम श्लोकोंकी हैं और कुछ दो-चार हजार श्लोकोंके पङ्क्तियों हैं। इनके ये ग्रन्थ बड़े अद्भुत हैं, इन सबकी श्लोक-संख्या ओरनेपर १६ हजारसे अधिक होती है। इन्होंने सब प्रकारके जन्मोंमें रचना की है। आर्षा-रामायण, अद्भुत-रामायण, विद्युत्-रामायण, दिग्दो-रामायण, अतिरिक्त-रामायण, सवाया-रामायण, समिन्धी-रामायण इत्यादि। इन रामायणोंके नाम जन्मोंके अनुसार ही रखे गये हैं। कवि मोरोपन्त बड़े विद्वान्, साहित्यज्ञ, जन्म-रामके निष्ठाव् और अत्यन्त रामभक्त थे। इनकी रामायणोंमें बड़े प्रसन्न तो बहुत ही मज्जदार हैं। मोरोपन्ती-राम मानो विरवर्माकी एक अद्भुत सृष्टि है।

## राम

रामके ही चिन्तनमें मनको लगाता रहूँ,  
रामके गुणोंका ही मृदुल गान गाऊँ मैं।  
रामको निहारकर अनिमेष चक्षुओंसे  
रामको पुकारा करूँ रामको ही ध्याऊँ मैं।  
रामके ही पद-पङ्क्तियोंका पटपद बनूँ,  
रामके ही प्रेमका प्रसाद नित्य पाऊँ मैं।  
आशा अभिलाषा और यही लालसा है मेरी,  
राम-नामसे ही राममें ही मिल जाऊँ मैं।  
—भगवतीप्रसाद विद्याठी विद्यादत्त प० १०६५-६६-६७

## बंगलामें रामायण



गालकी जनतामें सबसे अधिक तीन ही ग्रन्थों-का प्रचार है, जिनकी कथाओंको भक्तिपूर्ण हृदयसे सैकड़ों नर-नारी एकत्र होकर सुनते हैं--कृतिवासकृत रामायण, काशीरामदासकृत महाभारत और कृष्णदासकृत श्रीचैतन्य-चरितामृत। भोंपदीसे लेकर राजमहबोलक

इनकी अवाधित गति है। कृतिवासी रामायणके बंगलामें कई संस्करण निकल चुके हैं। इसके रचयिता पं० कृतिवास हैं० सन् १४३२ की वसन्तपञ्चमी रविवारको बंगालके नदिया-जिलान्तर्गत कुलिया नामक गाँवमें पैदा हुए थे। यह गाँव वर्तमान राधाघाटसे सात मील दक्षिण-पश्चिम है। कृतिवासके पितामह मुरारी चोभा अपने समयके एक सर्वमान्य प्रधान पण्डित थे। इनके पिताका नाम बनमाजी और माताका मालिनी था। ये ब्राह्मण थे।

गौड़-नरेशके आदेशसे कृतिवासने इस ग्रन्थकी रचना की थी। रचना इनकी सुन्दर है कि आबाल-वृद्ध-बनित्त सभीके लिये परम आदरकी वस्तु है। इस ग्रन्थने बंगालकी जनताको श्रीरामचरित्रसे परिचित कर धर्मभाव और सामाजिक आदर्शको बहुत ऊँचा उठा दिया है।

कृतिवासने वास्तविक और अध्यात्मके सिवा ग्रन्थान्य गुणयोंका भी आश्रय लिया है। सारी रचना बंगालके पयार-वृत्तमें है। धारा बहुत सरल है। कहीं-कहीं अद्भुत कथाएँ हैं। ओहन्मान्नी अब द्रोणाचल-पर्वतकी ओर भाये, तब उनकी काँसेमें तेजपुत्र सूर्यदेवको देखकर श्रीरामको बधा काय्य हुआ। उन्होंने पूछा कि 'हन्मान्, सूर्यदेवको तुमने काँसेमें कैने हवा रक्खा है?' हन्मान् बोले--'नाथ! मैं पारपर समीपनी खोज रहा था, मुझे यह दर था कि कहीं सबसे ब हो जाय। मैं सूर्यके पास गया और हाथ जोड़कर उनसे आर्चना की कि आपके बंशज श्रीराम इस समय कष्टमें हैं, कष्टव बधतक श्रीब्रह्मण न भी उठें, तबतक आप उद्व न हों। परन्तु सूर्यने मेरी बात नहीं मानी। तब मैंने सोचा कि सूर्य उद्व हो जायेंगे तो बहुत पुरा होगा। तब मैं उद्वें पकड़ लाया, इससे अब रात नहीं बीतेगी।' इसके बाद श्रीरामने सूर्यको पुरा दिया। मूल बर्णन इस-प्रकार है।

कहतले ताहार देखिया दिनकरे।

जिहासा करेन राम पवनकुमारे ॥

कि अद्भुत देखि, 'बापू पवननन्दन।

तोमार शरीरे केन रविर किरन ॥

हन्मान बोले 'प्रभु कर अवगति।

आनिवारे औपच गेहाम रत्नारति ॥

औपचि सुँत्रिया आमि शिखरे मेड़ाइ।

पूर्वदिके दिनपति देखिया दराइ ॥

पर्वत हईते गेनु मासकरे ठौर।

जोड़ हाय करि स्तन करिनु गोसौर ॥

तोमार सन्तान अति कष्टर श्रीराम।

शुणक कश्यप-पुत्र करह विग्राम ॥

यावत लक्ष्मण वीर नापान जीवन।

तावत उदय नाहि हइअं तपन ॥

आमार ए वाच्य ना शुनेन दिनपति।

घरिया पने छि ताइ ना पोहाय राति ॥

राम बनेन, 'बापू पति अमकार।

ना पोहाय रजनी ना धूबे अंगकार ॥

सूर्य उदय-जन्य संसार-प्रकाशे।

उाड़ह मारकर इनि उजून आकाशे ॥

रामेर बचने वीर तोडे दूई हाइ।

बादिर हइल तब अग्लेर नाथ ॥

सूर्य प्रणाम करे पवन-नन्दन।

बतेक बनर करे अरण-नन्दन ॥

आदिर्ना आपन बंशेर दिवाकर।

शात हात प्रणाम करेन रुपर ॥

उदय-पर्वते मानु करेन गमन।

पोहाएन विमारती प्रकाशे मुन ॥

इसप्रकार बहुत रोचक बर्णन है। इसके कनिष्ठिक श्रीरामकृत्य शय महाशयके भी वास्तविकके आधारपर बंगाल पद्यमें रामायण-रचना की है। माइकेल मजुमदरन एकत्र मेघनाद-बध काव्य बधा ही रोचक और अद्भुत है। इनके सिवा बंगलामें वास्तविक, अध्यात्म और गुणार्थकृत सभी रामायणोंके अनुवाद हो चुके हैं तथा रामायण और रामायणके पात्रोंपर अनेक महान्पूर्ण पुस्तकें लिखी गयी हैं।

## उत्कल-रामायण

( लेखक—पं० श्रीश्रीचनप्रसादजी पाण्डेय )



बन्धावली' के लेखक पं० श्यामसुन्दर रायगुरु भी० ए० लिखते हैं—हिन्दी-भाषी प्रान्तों में जिस भाँति गुसाईजी-कृत रामचरितमानसका प्रचार और आदर है, बङ्गाल में जिस भाँति कृत्तिवास पण्डित विरचित 'रामायण' का मान है, दक्षिण-देश में 'भास्कर-कवि' कृत रामचरित्र जैसा आदर है, उसी भाँति उत्कल-प्रान्त में बलरामदास कविद्वारा रचित 'रामायण' का प्रचार है। इन्हें यदि 'उत्कल-भारमीकि' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। ये उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्रके समयमें अर्थात् ईसा की सोलहवीं सदीमें विद्यमान थे। ये आतिके करण (उत्कलीय फायस्य) थे। घर इनका भीपुरयोत्तमघोष (पुरी) में था। इनके पिताका नाम महापात्र सोमनाथ था। इनकी जननीका नाम था मनोमाया। रामायण-रचनाके समय इनकी आयुष्वा केवल ३२ वर्षकी थी। वात्सेयीकि-रामायणके आधारपर इन्होंने अपनी रामायणकी रचना की। पर स्थान-स्थानपर बहुत-सी बाहरी और नयी बातें भी जोड़ी गयी हैं। हम इनकी रामायणको मूल संस्कृत-ग्रन्थका अनुवाद नहीं कह सकते। ३२ वर्षके युवकके लिये इतने बड़े ग्रन्थका प्रणयन बड़े साहसका कार्य कहा जायगा। उन्हींके शब्दोंमें मुनिये—

( उड़िया भाषा )

सामवेदुँ सन्मृत ए सत कण्ड कहि,  
कृष्णरूप अनन्त अपूर्व तनु बहि।  
ठाहा प्रसादे मोते सारदा दया कडा,  
रामायण ग्रन्थ मोर मुखे उचरिहा।।  
शैविस सहस श्लोक ए गीत रस,  
ब्रह्मीक मुनि बाहा कलेक प्रकाश।  
विद्वज्ज मुहकें ये मुनिगई ठाहा,  
बना कडे मोते वे कमला देवी नाहा।।  
तेनु एहि महाकाव्यकु वे वाच्य कहि,  
एथे पर टिक करि लीते बसप्रति।

जन्मद मुख मोर अल्प बयस,  
ग्रन्थकला कले मोते बरस बरिस।  
दारा सुत घन जन सुसमोम गिरी,  
अल्पे आपने देह अछन्ति ता हरि।।

इन्होंने अपनी रामायणका नाम 'जगन्मोहन-रामायण' कहा है। उसमें एक खाल पद है।

'जगन्मोहन' बलि ए रामायण नाम।  
तत्प करि भजिजे पावन विष्णु स्थान।।

× × × ×  
श्रीजगन्नाथकृ चरित मुहि कहि।  
रामायण सात काण्ड उछे पद होई।।

भाङ्गयोत्तर जातिके एक व्यक्तिद्वारा रचित ग्रन्थ बनेगए न देखा जाय, इस भयसे कविने संकाकारकमें लिखा है—

मुहि हीन पायी ये विशेषे शूद्र कोनि।  
सुश जने कोप न कीन रहा मुनि।।

इनकी भाषा अत्यन्त सरस और सरल है। सरलता लिये इन्होंने ग्राम्य शब्दोंको साहित्यगत करनेमें आगच्छी नहीं की है। अपने समयकी लोक-प्रचलित भाषाका प्रयोग इनके ग्रन्थभरमें देखा जाता है। वर्षानामें आङ्गण-रूपता है। छन्दमें भी स्वभङ्गुन्दता है। किसी पदके अन्त में, किसीके १३ वा १४ और कहीं-कहीं १५ और १६ अक्षर भी मिलते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान् और समालोचक पं० विष्णुपति महामशर महोदय लिखते हैं—

Balram Das is not ashamed of using those words freely which soon after his time came to be regarded as vulgar, for the poet reckons himself as one of the common people of the country. Balram Das as a national poet has sung for the people and by making Orissa a miniature world he himself has taught his countrymen to love the land of their birth.

महामशर महोदयके देगा लिखनेका अर्थ है।  
बलरामदासजीने ईशानाथ राजानाजीके कवि-ग्रन्थ लिखने

प्रसिद्ध कैबाल पर्वत माना है। उड़ीसाके कई स्थानोंमें श्रीराम-कर्मणको विषय कहाया है एवं 'बामबदा' और 'बवाई' राज्योंका भी उल्लेख किया है।

बजरामदास अपने समयके प्रसिद्ध भक्तोंमेंसे थे। जनश्रुति है कि एक बार रथयात्राके अवसरपर पयसे और पुत्रारिपोंके भापसे अभद्रताका व्यवहार किया था। आप इस अपमानको न सहकर महोदधिके निकट 'बाँकी मुद्दान' में जा कायर होकर भगवत्कामोधारणपूर्वक रोने लगे। हृषी श्रीरामदास महाप्रभुका रथ भागे न बदा—योग लौच लौच कर एक गये। पीछे स्वप्नमें तत्कालीन राजपति महाराजको यह आदेश हुआ कि मेरे भक्तका अपमान किया गया है। सबसे पना मारी जाय और उसे आदरपूर्वक भामन्त्रित किया जाय, ठर रथ चलेगा। वैसा ही किया गया। सबसे इसकी गवना पुरीके प्रधान हरिमंकोंमें होने लगी। इसी वदनाको छत्रचक्र किसी बड़ीय कविने लिखा था—

बन्दे जोड़िया बजरामदास महाशय ।

जगज्जाय बजराम बस मार हम ॥

इसकी यह कथा उदिया-भाषाके भक्त-माध कवि रामदासहृष 'दास्यता-भक्ति-रत्नासूत्र' में दी गयी है।

इसके रचे हुए अन्यत्र प्रन्थोंके नाम हैं—

- (१) कान्त कोहली (२) भर्तृनगीता (३) वेदा परिक्रमा
- (४) धृगुषीश्रुति (५) मध्यायकभूगोळ (६) गुप्तगीता
- (७) दुर्गास्तुति ।

कहा जाता है कि आपने श्रीशिवस्थामें प्रसिद्ध वैतन्व्यदेव माराजने वैष्णवधर्मकी दीक्षा ले ली थी। श्रेय इन्हें 'मत्त बजरामदास' भी कहा करते थे, क्योंकि ये सर्वैव हरिनामासूत्र पाठकर मत्त रहा करते थे।

बजारहाकार्य १०-२२ पंचियाँ हम 'आदि-आवह' से परी बद्ध करते हैं—

मने मारायण प्रभु कमहरपरति ।

नैठगिरी-शिवर मे प्रपूर्व मूरति ॥

सुन्दर श्रीनुखे नैठगिरी पाप दोमा ।

कि जगमि कि प्यन्तर शरत्शशी प्रमा ॥

बबन-मुक्त किश दारदर बध ।

बगु बीन नय परम-आनन्द ॥

सर्व जन निस्तारण सुरगण साहा ।

सर्वदा ये शंख चक्र गदा पण बाहा ॥

× × ×

श्रीजगन्नाथद्व आजा शिरे मुँ धरि ।

प्रन्य बक्षणिता इच्छा अदि अन्त करि ॥

कविने श्रीनीलाचल या नीलगिरिकी वर्णना तथा श्रीदासदास जगन्नाथ महाप्रभुके श्रीपुरोचमधाम(पुरी नगर) के सुन्दर शब्द-चित्र चित्रित करते जिला है कि श्रीजगन्नाथ महाप्रभुकी आशसे मैं इस रामायण-रचना-कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

कविने पुरीधामहीमें प्रन्थकी रचना की थी। उस समय पुरीका नाम पुरोचमपुरी था। पुरोचमका उदिया अपभ्रंश नाम 'पुरलम' होता है। पाटना नगर विशेषतः राजधानीको कहा जाता है। इसका समर्थन इन दो पंक्तियोंसे होता है—

पाटना-नगर नाम पुरलम पुरी ।

मद्रा मृति अलि जाहा अति बड करि ॥

श्रीरामनामकी मदिमाका वर्णन करते हुए कवि बजरामदास लिखते हैं कि पार्वतीश्री श्रीमहाशिवजीसे जो-जो प्रथ करती हैं उन्हींको खेर रामायणकी सम्युत्कर्षी कथा बनी है। एक बार 'कपिलात कन्द' में ब्रह्म विचमाय शिवजी विराजमान थे तब उनने श्री-भाय (कमुमुंन) मद्रामो मिखे। कुछक-विज्ञासाके पत्रार्थ शिवजीने मद्रामो-से कहा कि मेरा शरीर इन दिनों 'बर्हीन दुर्बल' हो रहा है, इसका कारण क्या है और यह दुर्बलता क्योंकर दूर हो। मद्रामोने उत्तर दिया कि आपने दूध-आपणसे विष्वेण करनेमें जो 'तामम भाव' धारण किया उनी कारणे यह अपवस्थात रूपक हुई है। इसके दूर करनेका एकमात्र उपाय 'तारक मद्र' का जप करना है, जो जप करी करें। कविने शब्दोंमें मद्राजी कहने हैं—

परिदय तेजे से महाकरर मे मेल ।

शरीर बगुण्य तर्षि म करिनु मेल ॥

एवे शरदिल नू शीर कोरकर ।

दरक मद्र नय मु करि नय हर ॥

राम नय करिरे मे छदि मिब पर ।

मिस्तिर मृति कने छन्द कमुगुष ॥



# हाड़ोती भाषामें रामायण

( लंछक—भीमन्दकिशोरजी सक्सेना )



जपानामें कोटा, बूँदी और म्हाजापाड़ करते हुए देखकर समझते हैं, वह भी सुनिये—  
रियासतें हाड़ोती भाससे प्रसिद्ध हैं। इस  
ग्रन्थ ( हाड़ोती ) की खोजी बड़ी ही  
सुन्दर, रसीली, चित्ताकर्षक है। भगवान्  
श्रीरामचन्द्रजीकी जीजाका गुणानुवाद जब  
विभिन्न भारतीय भाषाओंमें हुआ तो यह  
ग्रन्थ भी ऐसा अभागा नहीं था कि  
भगवान् रामके गुण-गानसे शून्य रहता।

ए. इस भाषामें भी बड़ा ही सुन्दर अनुवाद हुआ है।  
र अनुवादकी कुछ पंक्तियाँ - पाठकोंके सम्मुख रखी  
गी हैं। पाठकगण इनको पढ़कर हँसें नहीं, क्योंकि  
वेक प्रान्तकी भाषा निराखी होती है।

श्रीपार्वतीजी श्रीशिवजीसे भगवान् रामके अवतार-  
रूप बननेका कारण पूछती हैं—

सदाशिव पूँछें, राम अवतार,  
पृथ्वीको मांगे कैसे उतारयो भार

तब ( सदा शिव पूँछें जी )

निर्गुण ब्रह्म सगुण नयो होया, मनुष्य देहको धार

रूप दशरथके कस्यो लियो अवतार

काँ तपस्या करी छी मूषने, जी सँ जन्म्यो आर

( सदा शिव पूँछेंजी )

श्रीशिवजी कहते हैं—

पैरी उमा मया पूँछया समंचार

रामका चरित कहूँ अवतार ॥

जब जब दुःख पड़यो री मरुनपर

होयो धर्मको नाश :

मरुत जब जन्म्यो पृथ्वीपर आर

दुखी हो गया गरु ब्राह्मण देवता

जब लीनो अवतार ॥

जिस समय रामलीला होती है उस समय इसे आम-  
पत्ती ऐसी सज्जे गाले हैं कि धर्याकगण सुगंध हो जाते हैं,  
राम्य समझते हैं केवल हाड़ोतीवासी ही।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज ताराको विद्याप

जीव अविनाशी पड़ी या देह

पैरी तारा किसपर करती छेद,

पृथ्वी अग्नि गगन जल वायु, यो कर रच्यो शरीर

बीच मल मूत्र मरीरी या देह।

जीव अमर छै सुन जे री तारा, किसपर चारयो नेह ॥

परमप्रिय पाठकगण ! इस भाषाकी रामलीलामें  
वह ध्यानन्द आता है जो अक्षर्यानीय है। रामलीला  
हो जानेके बाद भी खोग बाराहों महीने रामचरितको बड़े  
मेमके साथ गाते हैं। वास्तवमें भगवान्की जीलामें जो  
आनन्द है वह किसी बस्तुमें भी नहीं है—

अच्युतकेशवं रामनारायणं

कृष्ण-दामोदरं वासुदेवं हरिम्,

श्रीपरं माधवं गोपिकावल्लभं

आनकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥

## द्रविड़ रामायण



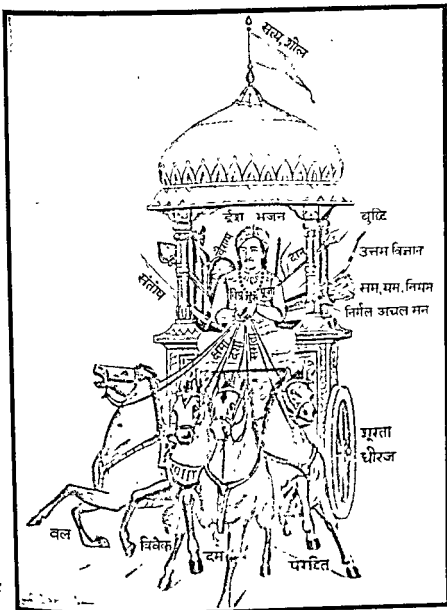
विड़ी भाषामें एक रामायण है। इसमें बहुत  
नयी-नयी घटनाओंका समावेश है। पाठकोंके  
मनोरञ्जनार्थ उसकी कुछ बातें संचेपमें यहाँ  
ही जाती हैं—

द्रविड़देशके राजाका नाम जीमूतवाहन था। एक बार  
इसने शत्रुओंसे भयभीत होकर जङ्गा और पालाकजङ्गाके  
महाबली और प्रतापी राघसराज भीमकी शरण ग्रहण की।  
राघसराजके कोई पुत्र नहीं था, और वह बड़ा हो चला  
था। उसने जीमूतवाहनकी सर्व सुखचक्र-संग्रह समझकर  
गोद ( दत्तक ) ले लिया। जीमूतवाहनका वहाँ एक सुन्दरी  
राघस-कन्यासे विवाह हो गया। महाराज भीमने जङ्गा  
और पालाकजङ्गाके राजसिंहासनपर जीमूतवाहनको बैठा  
दिया। इसी जीमूतवाहनके बंशमें माळी, मुमाळी और  
माल्यवान नामक तीन बचवान राजा हुए थे। परन्तु  
विद्याभरदेशके राजा इन्द्रने उनसे जङ्गाका राज्य धीन लिया



सर्वत्र चर्म अस्ति एव याका । सर्वत्र शीतल इव । यथा यथाका ॥

यथा विवेकः यथा परादिभ्यो कोटि । यथा यथा यथाका ॥



॥ इति भजल नाचो मुजाता । निरति नर्म संतोष इत्याता ॥

॥ इति भजल नाचो मुजाता । निरति नर्म संतोष इत्याता ॥

अजेय-रय ।

संयम नियम शिष्टोमुख नाता । अमल भगवत् मन शोण नमनाता ॥  
 कयन भवेद् विप्रगुरु पूजा । यदि नम विजय उनाय न पूजा ॥





# रामायण और राजनीति

(कैलक—काव्यतीर्थ प्रो० लौहसिद्धजी गौतम पृष्ठ ५०, एक० टी०, पृष्ठ ५० आर० ५० पृष्ठ०)



नू धर्म-धर्म्योंमें रामायणका स्थान बहुत ऊँचा है। सचमुच यह रथोंका भयदर है। इस निराखे महाग्रन्थका नाम 'पञ्चम वेद' रखना सब तरहसे ठीक है। यह धर्म-नीति, राज-नीति और समाज-नीतिके उपदेशोंसे पूर्ण है। इसमें वे सुखम साधन बतलाये गये हैं जिनसे मानव-जीवनका पूर्ण विकास और शेषमें अन्तिम लक्ष्यकी प्राप्ति हो सकती है।

मगवान् व्यासकृत धर्मशास्त्ररामायण और भाषि-कवि-रचित वाल्मीकि-रामायण दोनों ही ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। दोनों दोनोंके आधारपर भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अनेक रामायणोंकी रचना हुई है। उनमें गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानसका स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

रामायणने मनुष्य-जीवनकी समस्याओंको बड़े अर्थसे हल किया है। गृहस्थमें रहते हुए भी हम अपने अन्तिम ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं। इसी विषयका रामायणमें विशद विवेचन किया गया है। मद्राजानको माननेवाले वेदान्ती, बौद्ध और जैन आदि दार्शनिकोंने गृहस्थ-धर्मकी अर्थात् सिद्ध की थी। पर रामायणमें हन माया, दया और वैराग्यवादियोंको अर्थात् उत्तर दिया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफरताके लिये कुछ सद्गुणोंकी आवश्यकता है। जीवनमें किसी एक विशेष मुकाबकी प्रवृत्तिमें निरुत्तिकी आवश्यकता है। यथायं आत्मस्वाय और आध्यात्मिकताकी अस्त है जो धर और धर दोनों ही स्थानोंमें सम्मिश्र है। रामायणके प्रधान नायक भगवान् श्रीरामका पशुपतय जन ही प्रधान साधन है, क्योंकि धार्मिक गृहस्थ और संसारके समस्त यति तथा वनवासी पुरुषोत्तम श्रीरामकी परम-प्राप्त होनेमें अथवा अहोभाव्य समझते हैं।

अब कहा जा चुका है कि रामायणमें धर्म, राज्य और समाजकी नीतिका उपदेश भर है। मनुष्य खेलमें रामायणकी राजनीतिपर ही दो-चार शब्द लिखने हैं। कुछ लोगोंकी चारका है कि 'हिन्दू-सम्प्रदायमें राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ कभी विकसित नहीं हुईं। यहाँ तो अन्तमें अवसान

तक और जागनेसे सोनेतक केवल धर्मका ही अस्तपद साम्राज्य छाया रहता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुओंके पास और रक्खा ही क्या है? यही एकतन्त्रवाद (Autocracy) और यही राजाको ईश्वर बतलानेवाली भेद-सत्ता प्रजा! इतना ही नहीं हिन्दू-राजाओंकी भाषा अस्तके अत्याचारी नृारके समान ही निरकुश होती है। इनमें पाश्चात्य उदार राजनीतिकी कल्पना तो आकाश-जुमुमवद् है।' इस निराधार अकिका पूर्ण उत्तर स्वतन्त्र खेलमें दिया जा सकता है। इसके सिवा इनके सुप्रसिद्ध विद्वान् इसकी सारहीनता सिद्ध कर ही चुके हैं। यहाँपर इतना ही कह देना अजम् होगा कि रामायणमें उस मनुष्यत्वहीन कठोर राजनीतिका या शासनकलाका वर्णन अवश्य ही नहीं है जिसके कारण आज सभ्य और असभ्य संसारमें हाहाकार मच रहा है। रामायणकी राजनीति मनुष्यके प्रेम, आत्मत्याग और सर्व-मूल-हितकी भावनापर अवलम्बित है। इस राजनीतिका उद्देश्य लोकसम्प्रदा है। दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि हिन्दुओंकी राजनीतिका आधार धर्म है। रामायणमें राज्यकी राजनीति भी है, पर वह अल्प होनेके कारण स्थाय्य है। श्रीरामकी राजनीति ही धर्मानुमोदित और माद्य है।

नादिन राम राजके भूखे। धरमपुरीन विषय-रस कसे ॥

श्रीरामकी यह भावना ही अर्थात् राजनीति है। पाश्चात्य देशोंमें राजनीतिको ही धर्म समझा जाता है। अल्प-से-अल्प कार्य करनेपर भी किसीको राजनीतिक खाम होता हो तो भी वे उसे धर्म ही मानते हैं। पर श्रीरामकी राजनीतिमें यह बात कदापि नहीं। जिस राजनीतिक विकास यूरोपकी पिछड़ी चार शताब्दियोंमें हुआ है, सम्भवतः उस राजनीतिका उल्लेख रामायणमें न हो। उसके न होनेमें कोई इति तो है ही नहीं, मानव-समाजका खाम अवश्य है। पाश्चात्य राजनीति (Politics) या शासनकला यूरोपके लिये भजे ही कल्याणकारक हो, हमारे लिये तो यह पातक ही है। हमारी राजनीति तो मनुष्यता, समाज, दया और प्रेमकी मोद्धमें फजी-गूजी है। रामायणमें देवर्षि नारदने वासमीकिकीके प्रति श्रीरामकी गुणार्थिका बर्णन किया है। यहाँ अल्प गुणोंके साथ ही श्रीरामको अल्प बुद्धिमान, नीतिमान, धार्मिक और दयालु बतलाया है। मेरे

विचारसे तो धीराम जिस ग्रन्थके नायक हैं वह रामायण भारतीय राजनीतिका एक अन्धा ग्रन्थ है। 'अथमत्त प्रजं रक्षेत्' प्रमाद छोड़कर प्रजाकी रक्षा करना ही राजाका कर्तव्य है। इस कर्तव्यकी रक्षा रामायणमें आदिसे अन्त-तक की गयी है। महर्षि वाल्मीकिने आदर्श राजा, आदर्श राजकुमार और आदर्श राजनीतिका वर्णन किया है।

महाराज दशरथकी उम्र ढल रही है। कार्यकी शक्ति क्षीय होती जा रही है। उन्हें मालूम होता है कि अमता न रहनेपर राजधर्ममें विघ्न खलता आ जायगी। उनके रवेत केश धीरामको युवराज बनानेका परामर्श दे रहे हैं। इसी विषयको गोस्वामी तुलसीदासजीने यों कहा है—

राठ सुमाठ मुकुर कर लौन्दा। नदन बिलोकि मुकुट सम कीन्दा ॥  
सवन समीप भये सित केसा। मनहु जरठपन अस उपदेसा ॥  
नृप युवराज रामकहै देहू। जीवन जनम लाह किन लेहू ॥

महाराज दशरथने रूसके जार, इटलीके मुसोलिनी अथवा अभागे भारतके मूर शासक श्रीरंगजेवकी भाँति मन-माना फरमान नहीं मिकावा। उन्होंने राज्य-परिपद्की बैठकमें सबके सामने कहा—'आप लोग जानते हैं कि हमारा राज्य कैसा उत्तम है? हमारे पृथ्वीमें पुत्रके समान प्रजाका पालन किया है, मैंने भी यथारहित धारव्य त्यागकर सेवा की है, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, प्रजा-पालनका धर्म बड़े ही क्षायिक्यका है। अतः मैं धीरामको युवराज बनाकर प्रजापालनका भार सौंपना चाहता हूँ। आप लोग निस्संकोच अपनी सम्मति दीजिये।' उपस्थित माह्वण, सामन्त, राजा, नागरिक एवं राज्य तथा प्रजाके प्रतिनिधियोंने मिलकर परामर्श किया और अपने एकमतसे रामको युवराज बनानेकी सम्मति दी। महाराज दशरथको इसपर भी सन्तोष नहीं हुआ। प्रजा कहीं मेरे द्वाबन्धे मेरी रायमें शक न मित्रा दे, अतएव महाराज दशरथने उनसे फिर पूछा—

कयं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति।

मन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महावत्सु ॥

'मैं धर्मरूपेण राज्यका शासन कर रहा हूँ, फिर आप-लोग महावत्सु युवराज क्यों चाहते हैं?' उन लोगोंने मुकुरकटने कर, 'महावत्सु! रामके गुणोंको देखकर ही हम ऐसा चाहते हैं, अतएव आप योग्य ही उनका अभिषेक करवाइये।' दशरथकी राजनीतिका अनुमान पाठक हर्षाने कर सकते हैं।

धीरामके राजनैतिक जीवनका श्रीगणेश होनेका राज्याभियेककी तैयारियाँ हो रही हैं। सब लोग बड़े हैं, पर धीरामको जब यह शुभ समाचार मित्रता है वे सहसा कह उठते हैं—

जनने एक संग सब माई। भोजन समय केलि लीकरी।  
विमल वेस यह अनुचित एकू। सबहिं बिहाइ बदेहि अनिहरी।

धीरामकी त्यागमूलक राजनीतिका यह एक भाग है। आज-माह्योंमें ब्रा-सी भूमि और तदिकसे लाने लिये खून-खराबी हो जाती है। इतिहास जानने कि श्रीरंगजेवने अपने बड़े माई दाराको कर्ण करके बेचारे सुरादको गुला-गुलाकर मार डाला, गुलाको गुला-भटकाया और संगे बापको कैद किया तथा गुला-सागरके विनाशका बीज बोया। यह सब क्यों हुआ? अतएव अदस राज्यविप्लवा और बल-स्वार्थके कारण। वह राजनीति रामकी राजनीति नहीं है। वह तो संसारके इतिहासमें एक आदर्श वस्तु है। रामने प्रेममूलक राजनीतिसे गुं विपारों अपने चरणों में कर लिया। उसकी दशा अन्य-गुण नागराजकी-सी हो गयी। बुरा देखिये—

लिय फल मूल भेट परि मारा। मिलन चलेउ दिव इत अरता ॥  
फरि दंडवत भेट परि आगे। प्रमूहि निजोउत अथि बुरेते ॥

यहाँ कोई इसप्रकार अनुमान-रहित होकर निरा है यहाँ क्या राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार प्रजापदोंके किसी प्रकारकी शैथिली अपेक्षा है?

राम-बनगमनके पश्चात् माई भरतको बरी निरा लगी हुई थी कि कहीं राज्यकी कोई प्राचीन प्रथा है जाय और बड़े माई रामके रहते बनये बोया होनेके कारण मुकुरको राज्य-शासन देना देश और समाजके हिते हित सिद्ध न हो। भरतकी गहरी राजनीतिक विचारोंके मरता आदर्श है। वह कहते हैं—

कहौ सोच सब मुनि पतिपाहू। बादिय बरमाँत बनू ॥  
मोहि राज हठि देहहु बरही। रसा रसाज बरही हर ॥

भरतने भावी राज्यक्रांतिका विचारका बीज मिकनेकी इच्छा की और सेनाके साथ धर्मोन्मत्त बना दिया। गुं निरादको भरतपर सन्देश हुआ था की लाने बनये छोड़ा घेना बाहा था। परन्तु भरतकी अज्ञान विपक्ष गंगाकी धारामें बनाकर वह निगा हो गया। धीरामने जब भरतको राव्य बनने हुए गुं तो उन्हें

राजनीतिक पटुता क्रोधके सामने विलुप्त नहीं हो गयी। पर्यटन राम अपने मनमें किसी भी राजनीतिक चालकी धारकासे विचलित न हुए। श्रीरामकी यह राजनीतिक परीक्षा थी और वे इसमें उचीर्ण हो गये।

मल-मुमाउ समुद्रमनमार्ही। प्रसूचित हित-पिहित पावत नाहीं॥  
समापन तव मा यह बनि। भरत कहे मई साधु समाने॥

लक्ष्मणको बड़ा क्रोध आया। ये सुदके विचारोंमें निमग्न हो अनेक कड़ी बातें कइने लगे। और भरत, शमुद्रके बचकी प्रतिज्ञावककी मौखत था गयी। किन्तु राजनीति-कुशल श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें समझाया—

सुनु कवन मल मल-सरीसा। विधि-प्रपञ्चमहँ मुना न दीखा॥

भरतहि होय न राज-भद्र विधि-हरि-हर-पद पाइ।

कहुँकि कौजी-सीकरन्हि छौरसिधु विनसाइ॥

यह तो थी रामकी राजनीतिक गम्भीरता, और—

कहत भरत-गुन-सील-मुमाऊ। प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ॥

यह थी श्रीरामकी सच्ची भावना। भरत आये और लक्ष्मणको लेकर चले गये। श्रीरामके समक्ष भस्मपट आश्रायका बड़ा प्रलोभन था ! किन्तु उन्होंने अपनी दिक्कार स्थिर रहते हुए भरतका प्रेम निबाहा। श्रीराम गने बाहर मुनियोंसे मिले। उनके साथ-साथ मुनि-शुन्द ने चले गया। एक स्थानपर—

असि-समूह देखि रघुरामा। पूछा मुनिन शक्ति अति दाया॥

मुनिगणने उत्तर दिया—

निसिधर निधर सकल मुनि खाये। मुनि रघुबीर नयन जठ छाये॥

यह था श्रीरामका भाव और यह थी उनकी सहृदयता ! या राजा या राजकुमारके लिये अपनी प्रजाका दुःख देखकर ! उसके निवारणकी चेष्टा न करना राजनीतिमें कहीं तथा है ? यदि नहीं, तो भला क्या राम इस आदर्शके लिये रहनेवाले थे ? उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की—

निसिधर हीन करौ महि मुज उठाइ मन कीन्ह।

सकल मुनिन्हके अप्रमनिह जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

यही है उस राजनीतिककी शक्ति, जिसके भरोसेपर सब किया जाता है।

श्रीराम गौदावरोंके सदपर पञ्चदशमें रहते थे। उस

५—

सुपनखा रावनके नदिनी। दुष्टद्वय दादन जति अहिनी॥

पञ्चदशीसो गर एक नारा। देखि निकल भद्रजुगल कुमारा॥

शूर्पणखाने श्रीरामसे विवाहका प्रस्ताव किया। श्रीरामने लक्ष्मणको और लक्ष्मणने श्रीरामको संकेत किया। अपनी इच्छा पूर्ण न होते देख शूर्पणखाको क्रोध आया और उसने विकराल भेष धारण किया। लक्ष्मणने उसके नाक और कान काट लिये। तदनन्तर सर, दूषण, त्रिशिरा-समेत चौदह हजार निशाचरोंको श्रीरामने धराशायी किया। शूर्पणखाके अपमानका बदला लेनेके लिये रावणने जगदम्बा श्रीजानकीजीको हरनेका निश्चय किया और मारीचके पास जाकर सहायता मांगी। श्रीरामचन्द्रजीका नाम सुनकर मारीच काँप उठा और रावणको श्रीरामचन्द्रसे वैर न करनेकी सलाह देने लगा। वह एक धार भगवान्का प्रभाव देख चुका था। श्रीरामके भयसे कह उठा—

राममेव हि पदयामि रहिते राक्षसेधर।

दृष्ट्वा स्वप्रगतं राममुद्भ्रमासीव धेतनः॥

रकारादीनि नामानि रामव्रतस्य रावण।

रत्नानि च रथाश्चैव विव्रासं जनयन्ति मे॥

न ते रामकथा काव्यो यदि मां द्रष्टुमिच्छसि।

( वा० रा० ३।३९।१०-१८-२० )

'हे रावण ! जिस स्थानपर रामचन्द्रजी नहीं हैं वहाँ भी मैं उन्हींको देखता हूँ। स्वप्नमें रामचन्द्रको देखकर मेरा मन धबका जाता है और मैं बकने लगता हूँ। हे रावण ! रामचन्द्रसे बरे हुए मुझको रथ, रत्न आदि हकारसे प्राप्त होनेवाले पदार्थ भी भयभीत कर देने हैं। यदि मुझे देखना चाहते हो तो रामचन्द्रकी बात मेरे सामने न कहो !'

चारुमिकि-रामायणके प्र० क० ३२, ४०, ४१, ४२ सर्गोंमें रावण और मारीचका वाद-विवाद सब राजनीतियोंके लिये विशेषतया आधुनिक शासकोंके देखने योग्य है। मारीच रावणको समझाता है—

धियाः सन्तु न बध्यन्ते सच्चिदात्मर शाण।

ये त्वामुत्पन्नकण्ठं नानुग्रहन्ति सर्वतः॥

( वा० रा० ३।४१।१९ )

'हे रावण ! जो मन्त्री कुमार्गमें जानेसे दुर्ग नहीं रोके वे बध्य हैं। तुम इनको क्यों नहीं मार डालते ?' परन्तु रावणने तो सबे शापकका मन से जिहा था। वह था आज़कालकी धारामें Thorough Administrator अर्थात् 'पूर्णशासक'। रावणने बरे कर्मकारने कहा था—

विचारसे तो श्रीराम जिस प्रन्थके नायक हैं वह रामायण भारतीय राजनीतिका एक धनुषा प्रन्थ है । 'अप्रमत्त प्रजां रक्षेत्' प्रमाद छोड़कर प्रजाकी रक्षा करना ही राजाका कर्तव्य है । इस कर्तव्यकी रक्षा रामायणमें धादिसे धन्त-तक की गयी है । महर्षि वाल्मीकिने धादर्श राजा, धादर्श राजकुमार और धादर्श राजनीतिका वर्णन किया है ।

महाराज दशरथकी उम्र ढल रही है । कार्यकी शक्ति क्षीण होती जा रही है । उन्हें मालूम होता है कि क्षमता न रहनेपर राजधर्ममें विष्ट-खलता धा जायगी । उनके श्वेत केश श्रीरामको युवराज बनानेका परामर्श दे रहे हैं । इसी विषयको गोस्वामी तुलसीदासजीने धों कहा है—

राठ सुमाउ मुकुर कर लीन्हा । बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥  
 सवन समीप भये सित केसा । मनहु जरठपन अस उपदेसा ॥  
 नृप युवराज रामकहँ देहू । जीवन जनम् लाह किन लेहू ॥

महाराज दशरथने रुसके जार, इटलीके मुसोलिनी अथवा अभागे भारतके कूर शासक धौरंगजेवकी भौति मन-माता फरमान नहीं भिकावा । उन्होंने राज्य-परिपद्की बैठकमें सबके सामने कहा—'आप लोग जानते हैं कि हमारा राज्य कैसा उत्तम है ? हमारे पूर्वजोंने पुत्रके समान प्रजाका पाजन किया है, मैंने भी यथाशक्ति धालस्थ प्यागकर सेवा की है, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, प्रजा-पालनका धर्म बड़े ही दायित्वका है । अतः मैं श्रीरामको युवराज बनाकर प्रजापालनका भार सौंपना चाहता हूँ । आप लोग निस्संकोच अपनी सम्मति दीजिये ।' उपस्थित मन्त्रण, सामन्त, राजा, नागरिक एवं राज्य तथा प्रजाके प्रतिनिधियोंने मिलकर परामर्श किया और सवने एकमतसे रामको युवराज बनानेकी सम्मति दी । महाराजा दशरथको इसपर भी सन्तोष नहीं हुआ । प्रजा कहीं मेरे दबावसे मेरी रायमें राय न भिजा दे, अतएव महाराज दशरथने उमसे फिर पूछा—

कयं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुदासति ।  
 मवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महावत्सम् ॥

'मैं धर्मपूर्वक राज्यका शासन कर रहा हूँ, फिर आप-लोग महाबलवान् युवराज क्यों चाहते हैं ?' उन लोगोंने मुठकपट्टमे कहा, 'महाराज ! रामके गुणोंको देखकर ही हम ऐसा चाहते हैं, अतएव आप शीघ्र ही उनका अभिषेक करवायें ।' दशरथकी राजनीतिका अनुमान कर सकते हैं ।

श्रीरामके राजनैतिक जीवनका श्रीगणेश होने राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं । सब लोग कह रहे हैं, पर श्रीरामको जब यह शुभ समाचार भिजा वे सहसा कह उठते हैं—

जनमे एक संग सव भार्द । भोजन समय केलि हरि  
 भिमरु बंस यह अनुचित एक । सबहि बिहार बदेहि अनि

श्रीरामकी प्यागमूलक राजनीतिका यह एक है । आज भाइयोंमें जरा-सी भूमि और तदिकमें लिये खून-खराबी हो जाती है । इतिहास यह कि धौरंगजेवने अपने बड़े भाई दशरथको धा धा धेचारे सुरादको धुजा-धुजाकर मार राजा, युवाको भतकाया और संगे बापको कैद किया तथा युवा के विनाशका धीज बोया । यह सब क्यों हुआ अतएव राज्यलिप्सा और धन-स्वार्थके कारण । पर श्रीरामकी राजनीति नहीं है । वह तो संसारके धा धादर्श वस्तु है । रामने प्रेममूलक राजनीति अपने धर्ममें कर लिया । उसकी नागराजकी-सी हो गयी । धरा देखिये—

लिय फल मूल भेट भरि भासा । मिहन धरे करि दंडवत भेट धरि आये । प्रभुदिधि

वहाँ कोई इसप्रकार अनुशासन है वहाँ क्या राजनीतिके सिद्धान्तों किसी प्रकारकी चेष्टाकी अपेक्षा है ? राम-बनगमनके पश्चात् आ लगी हुई थी कि कहीं राज्यकी जाय और बड़े भाई रामके मुकको राज्य-शासन देना सिद्ध न हो । भरतकी मन्नता धादर्श है । वह कहीं सौंभ सब मुनि मोदि राज दृष्टि दे

भरतने भा मित्रनेकी इच्छा किया । युव कबसे छोटा

बदलि सखा तब इच्छा नाहीं। मोर दरस अमेध जगमाहीं ॥

अस कहे राम तिरक तेहि सारा। सुमन बुद्धि नभ मई अषारा ॥

इन चौपाइयोंमें कैसी राजनीति और कितना आत्म-विश्वास है। वानरोंमें कोई भी ऐसा न था जिससे श्रीरामने कुछ-प्रकार न पूछा हो। यह भाइयों है नेतृत्वका। नेताका कार्य है कि वह सबकी सम्मति ले और सबके कल्याण-कार्यको स्थिरकर कार्योत्तममें उतरे। श्रीरामको विनयद्वारा समुद्रसे पार जानेका कोई मार्ग नहीं दिखजायी देता, अतः वहाँ तकको राजनीतिका रहस्य यतज्ञाना पदा।

विनय न मानत जलधि जड़ गयेतीनि दिन नीति ।

बोलेराम सकेप तब बिनु मय होइ न प्रीति ॥

शक्तिसे भय और भयसे प्रीति, यह राजनीतिका उच्चतम उपदेश है। श्रीरामने इसीके अनुसार कार्य कर समुद्रको अपने घरमें किया।

संसारके इतिहासमें राजनीतिका कर्णन किसने न पड़ा होगा। आज भी राजनीतिका पावन होता है। पर श्रीरामकी राजनीति इन सबसे निरासी है। उन्होंने युद्धके समय रावणके साथ पद्मपर राजनीतिका पावन किया है। उन्होंने विभीषणका उचित उपयोग किया है। रामने रावणका नाराकर सुवर्णमयी कक्षा विभीषणको दी और धार्मिक संस्कृति-सम्पत्ताका मयदा फहराया। तदनन्तर सती सीताको खेकर अयोध्या आये। अयोध्यामें अपने वानरोंको गुरु बशिष्ठका परिचय इन शब्दोंमें करवाया—

मुनि रघुपति सब सखा बोलये। मुनिपर लागु सकल सिखाये ॥

गुरु बशिष्ठ गुरु पूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे ॥

और गुरु बशिष्ठसे वानरोंके विषयमें कहा—

ये सब सखा मुनहु मुनि मेरे। मये समर-सागर कई मेरे ॥

मम द्वित् लागि जनम इन हारे। मरतहुं ते मोहि अधिक पियारे ॥

मुनि प्रभु बचन मगन सब मये। निमिष निमिष उपजत सुख नये ॥

एक ओर अपनी विजयका अर्थ गुरुको और दूसरी ओर अपने सहायक वानरोंको देकर भाग लटपट रह गये। विजय-की भावके ही मस्तिष्कको सुगोभित कर रही थी, परन्तु अपने उसका सारा अर्थ दूसरोंको ही दिया। अहा! राजनीतिक पटुता, सज्जनाता, शिष्टता, हृत्कृता, भद्रता और निरधिमानताका कैसा अद्वैतिक उदाहरण है! इस राजनीतिमें आजकलकी राजनीतिकी नृशंसता और पटुता नहीं है। इसमें सद्भावता, भादिकता, स्वायं परता और अहमन्यता नहीं है। सब तो इसलिये दिया जाता है कि यह—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।

दण्डः सुष्ठु कार्गर्ति दण्डं परं विदुर्बुधाः ॥

( मनु ० ७ । १८ )

भगवान् रामने लोक-कल्याणार्थ रावणके प्राय अवरय ले लिये। परन्तु उन्होंने उसकी आत्माको घपनेमें मिलाकर उसको हृद्य गति दी। तभी तो कहा है—‘ओषोषि देवस बरेण तुल्यम्’। मारकर भी मोच देना, अपराधीको भी भौतिक बन्धनोंसे छुड़ाकर मुक्ति देना, भगवान्की विश्वरूपताके एक अंगका सुन्दर परिचय है। रामायणकी-रामकी इसी भावनापर अवस्थित राजनीति नित्य लोक-कल्याण-कारिणी है।

यह शंका हो सकती है कि जिस प्राधुनिक राजनीतिको श्रेय समझकर उसकी निन्दा की गयी है वह भी तो रामायणमें पायी जाती है। रावणकी एकान्तनीति ‘भक्ष्य-भक्ष्य’ (eat or be eaten) ही थी। जिसका पावन आजकल पाश्चात्य राजतन्त्रमें किया जाता है। श्रीरामने भी बालिवध क्यों किया था?

इसका उत्तर यह है कि रावणकी नीति रामायणकी दृष्टिसे त्याग्य होनेके कारण वह रामायणकी राजनीति नहीं कही जा सकती। श्रीरामका बालि-वध संसारके कल्याणके हेतु अथवा धार्मिक-संस्कृतिकी उन्नतिके लिये भी आवश्यक था अतः उसमें स्वार्थका शेष देखना अान्तिमात्र है। इस विषयपर स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है, स्थानाभावसे यहाँ विशेष बर्णन नहीं किया जाता। निस्तन्येद् श्रीरामकी राजनीति लोकसंग्रह और कल्याणके लिये ही थी।

आज श्रीरामकी राजनीतिसे संसारका पुनः उद्धार-कल्याण हो सकता है। इस प्रजातन्त्र राजनीतिसे सेनाकी बर्तनी हुई संख्या एक जायगी। इससे दूबे हुए छोटे छोटे देशोंके साथ न्याय होनेके कारण अनेक भाषी विद्वानोंका अन्त हो जायगा। इसके अवलम्बनसे अचरित-विगणित जाति अथवा स्वरूप पहचानेगी। इसीसे साथ, धर्म, दया, न्यायादि अनुप्योचित भावोंकी रचा होगी। इससे मानव-समाजके विकासमें पूर्ण सहायता मिलेगी। रामायणके प्रेमियोंका-रामके भक्तोंका कर्तव्य है कि वे श्रीरामकी राजनीतिद्वारा महात्म और अक्षयप्रसन्न मनुष्योंको ही नहीं, बरन् राश्योंको सुधारकर सम्पूर्ण अज्ञान प्रपन्न करें। यह कार्य धार्मिक उपान और संसारके कल्याणका है। ओषो राज रामचन्द्रकी जय !

# वालि-वधका राजनीतिक कारण

(लेखक—पं० श्रीराजेन्द्रनाथजी विद्याभूषण)



यह सीताहरणको लेकर ही रामसे रावणका वैर था, सो बात नहीं है। इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंसे रावणकी शत्रुता बहुत दिनोंसे चली आती थी। इक्ष्वाकुसे नीचेकी पांचवीं पीढ़ीके राजा अनरण्यके साथ रावणका भयानक संघाम हुआ था, जिसमें रावणके हाथसे अनरण्य मारे गये थे। इस युद्धके

बहुत दिनों बाद इक्ष्वाकुसे इसवें राजा मान्धाताके साथ भी रावणका युद्ध हुआ था ( उत्तरकाण्ड सर्ग १६।२६ )। राजा दशरथ भी रावणके पराक्रमसे भली भाँति परिचित थे। इतना ही नहीं, वह रावणके नामसे डरते भी थे। रावण कभी छोटे मोटे उपद्रव नहीं करता था। इन सब कामोंके लिये तो वह अपने सेवकोंको ही नियुक्त रखता था। जिस कामको दूसरे नहीं कर सकते, वैसे बड़े काममें वह स्वयं जगता था। विधामित्रने जब यह आरम्भ किया, तब रावण ने उसमें विघ्न डालनेके लिये मारीच और सुबाहु नामक दो महाबली राक्षसोंको नियुक्त कर दिया। यज्ञ-रक्षाका अन्य कोई उपाय न देखकर विधामित्र दशरथके दरबारमें रामको माँगने गये। विधामित्रने तपोबलसे यह जान लिया था कि रामके अतिरिक्त दूसरेसे मारीच-सुबाहु नहीं मर सकते। रावण दक्षिण समुद्रके उस पार लङ्कामें था और विधामित्र पश्चिम करते थे उत्तर हिमालयके अन्तःपाती लिङ्गाश्रममें ! यहाँ रावण-प्रेरित सुबाहु और मारीच यज्ञमें विघ्न करते थे और उनकी मारनेके लिये विधामित्र भाये थे अयोध्याके राजा दशरथके पास रामको माँगने ! मानो सारी पृथ्वीमें किसी एक हलचलका सूत्रपात हो रहा था। विधामित्रके मुखसे 'रावण-प्रेरित' शब्द सुनते ही दशरथ सहम गये और उन्होंने क्रोध झोझकर कहा—

नहि शकंस्मि संश्रामे स्थानुं तरय दुराग्रमनः ।  
 देवदानवदग्धैः यद्वाः पतगपश्रगाः ॥  
 न सदा रावणं स्तुतुं किं पुनर्मानवा मुधि ।  
 स तु दीर्घव्रता दीर्घमायते मुधि रावण ॥  
 ते न शक्यं न सकेऽस्मि संयन्तुं तस्य वा वदः ॥

( वा० उ० ११० )

'रावणकी तो बात ही दूर है मैं तो उसकी सेनाके भी युद्ध नहीं कर सकता। फिर मेरे पुत्र तो हैं ही कि गिनतीमें ?' जो कुछ भी हो बशिष्ठकी प्रेरणासे दशरथ रामको विधामित्रके हाथ सौंप दिया। अग्रमथ भी बड़े मर्दान्ता साथ चल दिये।

मारीच सुबाहुका वध हो चुका। रावणके दायेंतक संवाद श्रवण ही पहुँचा था और इस संवादसे मारीच-वध रामके प्रति रावणके मनमें कैसा भाव पैदा हुए, कवि-कविकी भाषामें इस सम्बन्धमें स्पष्टरूपसे कुछ कहा होनेपर भी रामायणकी घटनाओंपर विचार करनेमें इस मनोभावका रूप बहुत कुछ समझा जा सकता है। अन्तः इस विषयपर विचार कीजिये।

रामके वनगमनके बाद जब भरतने नदिवाग्ने हो कर सारी बातें सुनीं और सब लोगोंको साथ लेकर लङ्का सेवामें उपस्थित हो वापस लौटनेके लिये उनसे अपने आग्रह किया। तब अनेक प्रकारसे समझाकर अन्तमें लङ्का स्पष्ट ही कह दिया कि 'भाई, मैं नहीं लौटूँगा। रिताईने जिस प्रकारसे विभाग कर दिया है मैं उसी प्रकारसे लङ्का भोग करूँगा—

रव्या राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकात्मकम् ।  
 वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया बद्धजलासता ॥  
 पद्ममुक्त्वा महाराजो विभामं लोकलज्जिनी ।  
 न्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः ॥

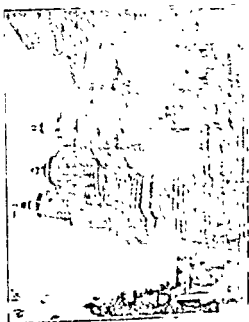
( वा० उ० ११० )

तुम अयोध्या जाओ और मैं दण्डकारण्य जाऊँ । तुम सहकर शत्रुमर्द हैं तो मेरे साथी लक्ष्मण हैं । ( वा० उ० १०१ ) अनेक प्रकारसे समझानेपर भी जब मान लियी जा नहीं माने तब रामने और भी दृढ़तासे कहा— 'मम पुत्र मम मनुष्योंपर राज्य करो और मैं वनवच पशुओंका राजा बनूँगा। तुम प्रसन्न हृदयसे भरतको लौट जाओ, हृष्य मैं जो बर्ष दण्डकारण्यमें प्रवेश करूँगा। सूर्य-किरणोंका निरपच बनने वाला सृज तुम्हारे मकरधर कीटक कापा करेगा। इस ही वर वनके वृष-समूहोंकी घनी छायाका आश्रय लूँगा। मैं कुटिलबुद्धि शत्रुमर्द तुम्हारे सहायक हूँ, इपी प्रजात संन लक्ष्मण बर्षा मेरे प्रयास विफल होंगे। इस वरों

११९



नासिक गोदावरी दृश्य ( २ )



नासिक गोदावरी दृश्य ( १ )







श्रीमदश्वमेध-मठ-समिन्धक-का-द्वार-द्वारा



गौदावर्तपर-नाथ-शंकरका-मन्दिर



भाई महाराजके चार सुपुत्र हैं अतएव आधो, इम सय मिल-  
कर महाराजको सत्पर स्थिर करें। तुम इसमें किसी  
प्रकारकी न तो आपत्ति करो और न विवाद ही करो।'  
(श. १०२, १०७। १० से १६)

रामकी इस ठकिते यह प्रतीत होता है कि दशरथ  
मानो सबके सामने राज्यका वंशवारा कर गये थे। एकके  
बिने अयोध्या और दूसरेके लिये दण्डक-वन। श्रीरामचन्द्र  
रिवाजे किये हुए वंशवारेको शिर चढ़ाकर आज दण्डक-  
वनमें तबान राज्यकी स्थापनाके लिये चले।

राम-वन्दनमें बहुत पहलसे ही रावणकी विधवा  
बहिन शूर्पणखा दण्डकवनमें रहती थी। मद्गमित,  
अंधान्ध रावणने प्रमादसे शूर्पणखाके स्वामी अपने बहनोई-  
हो मार डाला था। तदनन्तर अपने मौसरे भाई खर  
रामक शासनको चौदह हजार सेनाका स्वामी बनाकर और  
एकको सेनापति बनाकर शूर्पणखाकी रक्षाके लिये उसके  
साथ दण्डक वन भेज दिया था। खर-दूषणके अत्याचारसे  
एकदशरथवासी अधियोंके नाकाम हो गया था  
और उनके सारे कर्मकारण प्रायः मिट चुके थे। रावण  
तब ब्रह्ममें रहा और विधवा युवती बहिनको भेज दिया  
युद्धके उस पार घोर दण्डक-वनमें। और फिर उसकी खोज  
कर नी नहीं रहती, ऐसा क्यों किया? उजर धाने मिलेगा।

रावण कितना बदा पराक्रमी और भयङ्कर अपराजेय  
थि था, इस बातको दशरथ अच्छीमति जानते थे। दण्ड-  
वनमें रावणका एकाधिपत्य था, यह बात इसीसे सिद्ध  
होती है कि बहिन शूर्पणखाके रहनेके लिये रावणने दण्डक-  
वनको ही चुना था। जब विधामित्र रावणपत्नी और  
माय रावणके द्वारा ही नियुक्त यज्ञ-विश्रकारी सुश्राद्ध और  
पर्वणको मारनेके लिये श्रीरामचन्द्रको मारिने गये थे, तब  
रावणके मामले ही राजा दशरथ कितने अधिक डर गये थे,  
या बार डर कही जा चुकी है। राजपरिवारकी प्रबान  
और प्रथम सन्तान रामको अक्षयसहित विधामित्र के  
मने थे। उस समय बाळक राम-अक्षयके प्रति औरतया,  
दुःखि और कैदेवी दोनों ही राणियोंका समान आकर्षण था।  
क्योंकि सुश्राग्गामिककी बातसे पूर्वतक कैदेवी रामको  
सुपचारनी थी, और बड़े स्नेहकी दृष्टिसे देखती थी, इस  
दण्डके साथ जानते हैं। ऐसी अवस्थामें रावणके दण्डके  
और रावणके द्वारा ही नियुक्त दोनों राणियोंके बचके लिये  
विश्रमिदके साथ राम अक्षयके जानेकी और साथ ही  
ब्रह्म पराक्रमी रावणके बह-विश्रमकी अर्थात् राम-माताओंमें

अवरय ही हुई होगी, यह सहजहीमें समझा जा सकता है।  
प्रसन्नतः दण्डकारण्यमें रावण-सौदरा शूर्पणखाका सेना-  
सहित निवास करना, वहाँ राज्यका एकाधिपत्य होना,  
रावणसम्बन्धी अन्य अनेक विषयोंकी आज्ञाचना होकर, श्री-  
स्वभाव-मुलम अनेक दण्डकधर्मोंसे उसका एक रूप बन  
जाना भी सम्पूर्ण स्वाभाविक है। अब देलना यह है कि इस  
अनुमानकी सार्यकता कहाँ तक होती है।

मन्थराने अपने उपरामर्ममें कैदेवीको केवल दो ही  
बर मारिनेकी बात सिलखायी थी-एकमें रामको चौदह वर्षका  
वनवास और दूसरेमें भरतका राज्याभिषेक। इसके सिवा  
उसने और कुछ भी नहीं सिलखाया था। पर जब कैदेवीका  
मिजाज विगड़ा तब वह मन्थराके द्वारा बुभुक्षिरूप बदरकी  
घूँट पिलाये जानेसे पूर्व जैसे सोझहाँ जाने घरकी थी, दैसे ही,  
यकिक उससे भी और अधिक घुरी हो गयी। इसीलिये उसने  
मन्थराके 'वनवास अन्दके साथ' 'दण्डकारण्य' रुद्ध और  
जोड़ दिया। देशमें भयानक जंगल तो और बहुतसे थे, उने  
दण्डक ही क्यों बाढ़ प्राया? निरधन ही दण्डकारण्यके  
सम्बन्धमें पहलसे ही उसके मनमें कुछ संस्कार बढ गूळ थे।  
यह नहीं कि वह स्थान सुलोचमोंगके लिये सुन्दर है किन्तु  
इसके विपरीत उसकी धारणा यह थी कि दण्डक भयङ्कर  
राजसौते पूर्ण रावणरासित होनेके कारण विपत्तिपूर्ण और  
सत्पुत्रोंके रहनेके लिये सर्वथा अयोग्य है। उसने सुलसे  
रहनेके लिये रामको वहाँ नहीं भेजा था। रिता दशरथके  
विभागके अनुसार राम दण्डक में और भरत अयोध्यामें  
राज्य करें, यह बात भरतको समझानेके समय तब  
श्रीरामके सुलसे इम सुन ही चुके हैं।

दण्डकारण्यमें शूर्पणखाको भेजकर रावण  
निरिच्छत था। क्योंकि उसके समुद्र पार ब्रह्ममें रहने-  
पर भी उसका अभिन्नहृदय मित्र भी अंधे बाकि तो  
दण्डकके समीप हो राज्य करता था। बाकिर्की जानकारिमें  
रावणकी और रावणकी जानकारिमें बाकिर्की कोई चरि  
नहीं हो सकती थी या उनपर कोई आपत्ति नहीं जा सकती  
थी। वे दोनों धर्मिको साथी देकर (Offensive-Defen-  
sive) सन्धि-सुधमें बैठ चुके थे। इस बार बाकिर  
साभ्राज्य था और उस पार रावणका, बीचमें बा सिद्ध  
समुद्र। इस पारसे रावणके राज्यपर आक्रमण करनेवालेको  
सभसे पहले बाकिके साथ युद्ध करना होगा और तब पारने  
बाकिके राज्यपर आक्रमण करेवालेके साथ सर्वदम  
रावणका युद्ध होना अनिवार्य था। इस सन्धिवा प्रत्या  
रावणने ही पदमें किया था। बाकिके साथ बह-वर्षादे

हारकर रावणने उसने कहा 'हे बानर-श्रेष्ठ ! मैंने धारका बन्ध अपनी धर्मियों देव लिया, अब मैं अग्निको सामने रखकर आपके साथ चिरबन्धुत्व स्थापन करना चाहता हूँ। हे वीरराज ! धारसे हमारे और आपके छोटी, पुत्र, धर, राज्य, भोग, भाग्यदादन, भाजन सब अविनाश हो गये यानी एक हो गये।' यह कहकर उसने अग्नि जला दी और दोनोंने परस्पर हृदयसे लगकर स्नेहपूर्ण आभूषणकी स्थापना की। इसके बाद दोनों मित्र परस्पर हाथ पकड़कर महजमें गये।' ( पा० रा० ७।३४।४०से४३ )

अतएव शूर्पणखाके विहारक्षेत्र द्यवक-वनपर ही नहीं, रावणराज्यके किसी भी अंशपर किसी प्रकारसे भी यदि कोई भारतपरसे धात्रमय करने जाता तो उसके सबसे पहले धीरधैर्य यादृशसे खड़ना अनिवार्य था।

श्रीराम अपने पिताकी आज्ञासे द्यवक-वनमें भाये। वनवासमें दस वर्षका खम्बा समय अनेक धात्रमोंमें घूमकर और तीन वर्षका समय पक्षवतीमें रहकर आपने बिताया। अब केवल एक वर्ष बाकी है, इसी समय रावणने सीताको हर लिया।

रावणके सद्य दुर्दर्ष राक्षस वृत्ता नहीं। खड्डमें उसका निवास है। ऐसे शत्रुको दमन करनेके लिये जो कुछ आवश्यक है सुग्रीव सबसे पहले वही कर रहे हैं—'हे जन्मभय ! आप शान्त हों, सुग्रीव राक्षसायम रावणका बधकर रोहिणीके साथ चन्द्रमाकी भाँति सीतासहित रामको लावेंगे। रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुग्रीव कतोरों बानरोंकी सेना एकत्र करनेमें लगे हैं।' ( कि० सर्ग ३५ )

वाराकी इस उच्छिसे प्रतीत होता है कि रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुग्रीव भीषण और वृहत् आयोजनमें लगे हुए हैं। रावणने सीताको हर लिया, इस बातको सभी जान गये हैं और उसके समुचित प्रतिकारकी चेष्टा भी हो रही है, यह भी वाराकी बातोंसे स्पष्ट है। परन्तु यहाँ एक विद्वत् प्रश्न उपस्थित होता है कि सारी बातें जाननेपर भी सुग्रीवने अनेक स्थानोंके नाम बतला-बतलाकर उन देशोंमें जाकर सीताके अग्रहरण करनेवाले रावणका पता लगानेके लिये बानरोंसे क्यों कहा ? रावण सीताको खड्डमें छे गया था, यह बात तो वाराने जन्मभयसे पहले ही कह दी थी, फिर इतिहास-भूगोलके इतने खम्बे ध्याक्यानकी क्या आवश्यकता थी ? सीधे शब्दोंमें खड्डा करनेमें ही काम चला सकता था। इस उद्घाटन समाधान किसी भगवत् श्रेष्ठमें किया जायगा।

आज तो हमें यह सूचना है कि रामने केवल सुग्रीवके अग्रमित्रता करनेके लिये ही बाबिकों माता या अपने कोई और भी कारण था।

श्रीरामने जब भारतको अयोध्या और जानेके लिये बंधे देकर कहा था। तब यह भी स्पष्ट कह दिया था कि लिये लिये हुए विभागके अनुसार गुन अयोध्यामें जाकर अनुभवों राजा बनो और मैं द्यवककारणमें जाकर वनचरोंमें 'राज-राज' बनता हूँ। राजा और 'राज-राज' अर्थात् राजके द्यवक बहुत अन्तर है। द्यवक-वनमें शूर्पणखाके नरक-कर करने और खर-नृपणको मारनेसे रावणके साथ बोर-मुत्ता होती गयी थी। इस बातसे राम-जन्मभय अग्रचित्त नहीं है। शूर्पणखानेही रामके पुरुनेत्र यह साध कह दिया था कि रावण, कुम्भकरण, विभीषण और द्रुपद भादि नैर्वा हैं। ऐसी अवस्थामें महाबली राजबली बहिनके बधकर खटनेका कितना भयकर परिणाम हो सकता है, राजनीति-विचारद श्रीरामके लिये इस बातको समझना बकी नहीं था। रावणके साथ किष्किन्वा-नरेश महावीर बाबिकों मैत्री और सन्धिकी बात पहले कही जा चुकी है। अब यह भी मालूम होता है कि सीताहरणके बाद सहायके वि श्रीराम सुग्रीवके साथ मैत्री करनेके लिये तैयार न भी हैं और बाबिकों मारकर सुग्रीवको धरिते रावणपीत श्रेष्ठमें प्रतिज्ञा न भी करते तो भी उन्हें बाबिकों तो मार्य ई पड़ता। समुद्रके उस पार खड्डापति रावणनर जन्म करनेके लिये सारा उद्योग इस पार बाबिकों रामने ही कर था। रावण-बन्धु महावीर बाबिकों मित्रके विश्व रूपकको कभी सहन नहीं कर सकता। सन्धि-सुखके अनुसार राम शत्रु बाबिका भी शत्रु था। अतएव रावणके साथ पुर क पूर्व ही रामको बाबिकों साथ युद्ध करवा पड़ता। इस राज्यस्थापन और खड्डापति रावणके साथ विचार वा ही बातें बाबिकों कीवित रहते सहज नहीं थीं। इन रामका सर्वप्रथम कर्तव्य हो गया था—बाबिकों की हामीलिये श्रीरामचन्द्रने एक दूध राजवीरिणीकी ही आगे-पीछेकी सारी बातोंको सोच-समझकर सुग्रीवके मैत्री और बाबिकों-बधकी प्रतिज्ञा करके कतोरों बानर-सेना सहायतामें कर्तव्य-सम्पादनका निश्चय किया था। इस ही बाबिका प्रतिहृष्टी सुग्रीव हुजना गहरा नहीं था कदा। रावणचंद्र सुग्रीव तो केवल बाबिका बध और सन्धि

रार ही चाहता था । अपने ये दोनों ही उद्देश्य श्रीरामद्वारा  
 रह होते देखकर उसने सेनासहित अपने आपको रामकी  
 रक्षाके लिये लगा दिया । रामचन्द्र धर्मोपासनोंके लिये वनमें  
 गये थे । जीवनके प्रारम्भमें राजपुत्र राम अपनी प्यारी  
 भूमिको छोड़कर जानेको बाध्य हुए थे । प्रकृतिके  
 निकटतम निविद्ध दृष्यकारणमें नवीन और विशाल  
 जगत् स्थापनके लिये ही कृतसङ्कल्प होकर श्रीरामने  
 लक्ष्मणसे प्रेरण किया था । वे थीर थे । उनके लिये कोई भी  
 रं दुष्कर नहीं था । वे प्रसन्नचित्तसे ध्यानवृत्तके साथ अपने  
 र विता रहे थे । इसी बीचमें सीताका अपहरण होनेसे

रामचन्द्रके साथ युद्धका उद्योग करना पड़ा और उसीके  
 अंगीभूत अवरय कर्तव्योंमें बालिवध भी एक कर्तव्य था ।  
 अतएव रामपर किसी प्रकार भी दोषारोपण नहीं किया जा  
 सकता । सीताके उद्धारके लिये बालिके रागमें ररकर बालिके  
 जीते समुद्रपर पुत्र बाँधना और रावणके सर्वनाशके लिये  
 यिपुत्र उद्योग करना घतम्भव था । सीताके उद्धारके लिये  
 सबसे पहले बालिका वध अत्यन्त आवश्यक था । प्रमत्तवरा  
 इस बालि-वधके उपलक्ष्यमें सुमीचके साथ मैत्री हो गयी ।  
 जिससे समुद्र-वन्धन आदि कठिन कार्य बहुत कुछ सरल-  
 साध्य हो गये । यह भी बालि-वधका एक रहस्य है ।

## रामायण और श्राद्ध-तर्पण

( लेखक-पं० श्रीनाथारामजी शास्त्री, साहित्यभूषण, व्याकरणार्च्य, वेदान्तपथिक )

**म** धांदा-पुरोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी दिव्य  
 बीजा और उनके द्वारा स्थापित दिव्य  
 धादशोंका तथा उनके अनुकरणीय धाचरणों-  
 का वर्णन जिसप्रकार श्रीमद्भागमीकिजीने  
 अपनी रामायणमें किया है, वैसा वर्णन  
 करनेका सौभाग्य किसी दूसरे ग्रन्थकारको  
 प्राप्त नहीं हो सका । यही कारण है कि इस  
 ग्रन्थमें सब सम्प्रदायोंकी समान भद्रा है ।

प्रारंभिक पुरुष अनुकरण करनेके विचारसे  
 लक्ष्य अन्वेषण करते हैं । इसी ग्रन्थसे प्रसन्नकर श्राद्ध-  
 र कैसे कठिण विषयपर कुछ दिग्दर्शन कराना अनुचित  
 था । श्राद्धर श्राद्ध तर्पणपर कुछ लोगोंकी अग्रभद्रा  
 ही है । इस बातको भी धर्ममें रखकर यह प्रसन्न उपारेण  
 लाना होगा ।

रामायणमें सर्व प्रथम, अयोध्याकायदके ७६ में और  
 ११०में, श्राद्ध-तर्पणका वर्णन थापा है, वहाँ  
 १०६ में श्राद्धर दृष्टरपथा और्ध्वरेहिक संस्कार कर  
 लाकारि शक्तिशक्तके सहित उद्घृष्टदान दिया है—

तो धनतो निरता विरुष्य च पुनः पुनः ।  
 बनेभ्यः सरभूरीत्येतेषुपुत्रानाः ॥  
 इनेरेई दे भयेन सर्वा नृपुत्राना मन्त्रिपुरोद्विष्टाः ॥  
 धुराशिरकानुपरीतनेना मूर्ध्नी दशाई धनवन्त दुःखन् ॥  
 (रा० रा० २।१०।११-१३)

अर्थात् 'रोती-रोती वे बियाँ गुरमा गयीं । उन लोगोंने  
 बार-बार विज्ञाप किया, फिर वे राजद्विर्वा सरपूके तीतर  
 सवारियोंसे उतरें । उन रानियोंने तथा मन्त्री और पुत्रोदिन  
 आदिने भरतके साथ राजाको बजाप्रति ही । अनन्तर वहाँसे  
 रोते हुए वे भगमें भाये और इस दिनोंको भूमि-रुपन  
 आदिके द्वारा दुःखार्थक विताया ।' तथा—

ततो दशाहोऽग्निंशे इतरीषो नृपालमः ।  
 द्वादशेऽहनि संप्राप्ते द्वादशमोऽप्युदकारम् ॥  
 त्रादशमोऽप्येते रत्नं ददातमं च पुष्करम् ।  
 बालिकं बहुशुभं च गार्ध्वजिप बहुशलाः ॥  
 (रा० रा० २।१०।११-१३)

अर्थात् 'दस दिव बोलनेपर श्राद्धमार भरतने ग्यारह  
 दिनके धामगुदि करनेवाले कर्त्तव्ये । बारह दिन कर्त्तव्ये  
 राजाके सब श्राद्धकर्त्तव्ये लिये और त्रादशोंको धनर, बहुन-गा  
 धर, अनेक प्रकारके हामी वध, बर्षी और कनेक तीर्  
 प्रदान की ।

इस प्रकारमें नरं, द्वादशदिन, अग्निर्ध्वजकारके  
 धनमें श्राद्ध और निगोंके उद्देशमें रिचे लये श्राद्धके  
 शानका भी स्पष्ट परिचय मिलता है । जो लोग श्राद्ध  
 करने हैं कि 'दान अन्वको रिचा करना है और दान होगा है  
 अन्वको', वह दान अन्व-न-मी है । अन्वको बहुशुभ उद्देश  
 पर कालिक-अन्वके विचार करना चाहिये । काले अन्व-अन्वके  
 द्वारा किये हुए नि-तर्पणका उद्देश शानका है—



# रामायणमें सत्य और प्रेम

(लिखक-श्रीसरानन्दजी सग्वारक 'मैसेज'\*)



मायबका महार श्रीरामचन्द्रजीके बनवासमें निहित है। श्रीरामचन्द्रजीके पिता रामा दशरथने अपनी छोटी रानी कैकेयीको उसकी इच्छानुसार दो बरदान देनेकी प्रतिज्ञा की थी। जब रामचन्द्रजीके राम्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही थीं, तबकी विभाताने अपने सपत्नीके पुत्रको राम्याभिषेकके लिये पुत्रे जानेपर इंध्यां

अने हुए राज्याने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेको कहा। एक साले बसने श्रीरामचन्द्रके लिये चौदह वर्षका बनवास और इधरमें अपने पुत्र भरतके लिये अधोप्याका राज्य माँगा। वर सुनते ही रामाके गिरपर मानो वज्रपात हो गया! इस रूप अवसरपर धार्मिक ऐसा बरदान माँगनेसे ये दुःखमन हो गये। अपनी मृत्युके समयतक भी उनके मुखसे स्वीकृति-सूचक शब्द न निकल सके। किन्तु उस समयमें प्रतिज्ञा-पालन अत्यन्त पवित्र कर्म समझा जाता था, गतिशकी शकमानना अशक्य था। और दशरथजी-से चाहे फिटना ही कह क्यों न सहना पड़े, प्रतिज्ञाको पूरा करना उनका धर्म था।

श्रीरामचन्द्रजीने अपनी विभाताने जब अपने पिताके गोकुल कारण सुना तो वे रामाको शोकमुक्त करनेके लिये वैवाचिक आश्रयण करनेको तैयार हो गये। सच पूछिये तो पिताकी प्रतिज्ञाके लिये रामचन्द्रजी उचरदायी नहीं थे, और न राजसे ही उन्हें कोई ऐसी स्पष्ट भाशा मिली थी। किन्तु उनकी सत्यके प्रति ऐसी महान् प्रबुद्धा थी कि उन्होंने रामाको सत्यके धार्यपयसे गिरते नहीं देखना चाहा, चाहे उन्हें इसके लिये प्राय भी क्यों न देने पड़ें। यद्यपि सारी बातें उदरते आइए किन्तु, भरतने भी स्वयं उनसे प्रार्थना की और अधिपतिने समझाया परन्तु श्रीरामचन्द्रजी अपने अवसर मुग्ध रहे, क्योंकि वह सत्यको ही परमधर्म

समझते थे। जब भरतने राज्यशासन ग्रहण करनेके लिये प्रबल युक्तियाँ पेश कीं, जब सारे नगर-निवासी प्रार्थना करने लगे तब श्रीरामने कहा—'सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है, सच पदार्थोंमें सत्यको ही परम पुनीत वस्तु समझना चाहिये। सत्यपर ही वेद प्रबलम्बित हैं। पिताकी भाशाका अनुवर्तन करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनेपर, अब मैं जोभासे, प्रमादसे या अज्ञानसे कभी सत्यको मर्यादाका उल्लङ्घन न करूँगा।'

वे इस आत्म-स्थागकी कठिनाइयोंसे पूर्ण परिचित थे, वे अपने सिरपर धानेवाली व्यापद्-विपद्को देखते थे, किन्तु सत्यके निमित्त उन्होंने उनकी कुछ भी परवा न की। धाधुनिक नूटनीतिज्ञ उनके इस कार्यको विवेकशून्य समझेंगे, किन्तु भाजकलकी गार्हित नूटनीति जो अर्द्धसत्य या असत्यके आधार-पर ठहरी हुई है, उस युगमें किसीको मालूम ही नहीं थी। धाजकी नीति श्रीरामचन्द्र सत्यको, अपनी आत्माको लूट और परस्वापहरणके बाजारमें बेचनेके लिये तैयार न थे। सांसारिक लाभके लिये आसक्ति, लोभ और स्वायंपरताके द्वारा अन्धे होनेके कारण, धाधुनिक युगमें, हममेंसे अधिकांश अनुप्य इसकी महत्ताका अनुभव नहीं कर सकते। सत्यकी महिमा धाज अर्द्धवादके चकाचौंधमें, लोभ और लूट-ससोटके कूड़े-करकटमें, अहङ्कार और दम्भकी भूलमें लुप्त-प्राय हो गयी है। प्राचीनकालके यहूदियोंने सत्यके लिये ईसाको सूलीपर चढ़ा दिया, पर धाधुनिक कालके यहूदियोंने सत्यको ही सूलीपर चढ़ा दिया है। श्रीरामचन्द्रजीका युग एक दूसरा ही युग था। धाधुनिक कालके हीन मतवाद उस युगके सरल चित्त और ईश्वरसे दर्शनासे लोगोंके हृदयको स्पष्टतक नहीं कर सके थे। किन्तु उस समय भी सत्यके निमित्त श्रीरामकी महती निष्ठाने ध्या-आत्मागी यहूदियोंको भी चकित कर दिया था। सत्यकी रक्षाके लिये उनके प्रिय भाई जषमयका—जो उन्हें प्रायसे भी प्रिय

\* 'दी मैसेज' (The Message) अंग्रेजीका सर्वधर्मसामन्वय कारक और प्रेमका प्रचारक बहुत अच्छा मासिकपत्र है, इसमें श्रीरामचन्द्रजीके और सरानन्दजीके बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख रहते हैं। सरानन्दजी बहुत पवित्र मानते यह कार्य कर रहे हैं। अंग्रेजी-पत्रकारोंकी यह पत्र अवश्य पढ़ना चाहिये। इसका वार्षिक मूल्य सिर्फ एक रुपया है। यह गोरखपुर 'आनन्द-आश्रम'से प्रकाशित आ दे—सग्वारक।

मे—वन लाना आगवाणका एक दूगता उदाहरण है। पर गण-प्रेम ही उनके सर्वप्रिय होनेका जीवन-मूल है, जिसके कारण वे अचवार माने गये हैं।

इसके अतिरिक्त हम रामचन्द्रजीमें उन दृष्टियों, प्रभावों और पहाड़ी गया झरनी जगियाँके प्रति आगव प्रेमका परिचय पाते हैं, जिन्हें छोटा छोटी मन्त्रमे देवते, पूजा कर्मे और पशुपत् स्पर्षदार करते वे तथा जिन्हें बन्दर, भातु, निरिचर और राक्षस प्रभृति नामोंमे पुकारते थे। एतदर्थं इगमत्राका साहितिक कार्य करनेके लिये एक रामद्वारमें पहुँच कर उगाइकी आरपकना थी। अन्यत्र राजा गुहके मित्रवत् आभिन्न काना, शरीरके जूड़े बेर धागा, बामराज मुपीषके साथ मैत्री, राजसराज विभीषणके प्रति प्रेमभाव, कटायुका दाह-संस्कार करना, शत्रु राक्षसके मत्स्योपरान्त उसकी अन्वेषि प्रभृति करना, श्रीरामके ये कार्य छोड़ोंके इतने प्रिय खगे कि वे उनके लिये प्रत्येक प्रकारका त्याग करनेके लिये तैयार हो गये। वस्तुतः वे खड्गके युद्धमें इन्हीं सुखित, चारों तथा उपेक्षित लोगोंके प्रति अन्वतम प्रेम रखनेके कारण ही विजय प्राप्त कर सके थे। वे उस समय राजा नहीं थे और उनके पास सेनाको देनेके लिये—पहँतक कि भोजन प्रदान करनेके लिये भी—कुछ न था। किन्तु प्रेमके कारण ही उन्होंने एक विशाल सेनाका सङ्गठन कर लिया, लोग उनके प्रेम और सद्ब्यवहारसे इतने मुग्ध हो गये कि उनमेंसे प्रत्येकने श्रीरामके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करना अपना पवित्र धर्म समझा। हमारे नवयुवकोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

श्रीसीताजीके रावणद्वारा हरे जानेपर श्रीरामने उनके लिये शोककुल शोक जो विज्ञाप किया है उसीसे उनके पत्नी-प्रेमका पता लगता है। धार्ल्मीकिकी रचना यहाँ बड़ी सुन्दर हो गयी है।

श्रीरामका प्रजाके प्रति प्रेम लोक-प्रसिद्ध है ही। 'राम-राज्य' सुन्दर शासनके लिये एक पर्यायवाची परम्परागत नाम पड़ गया है। आधुनिक सरकार इस शासनकालसे क्या शिक्षा ग्रहण करेगी ?

अपनी प्रजाकी सम्मतिके प्रति श्रीराममें इतना आदर

था कि एक क्षण चौकीके विचामे उन्होंने पत्नी का दिया गीताको वनबाणके लिये भेज दिया।

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें आनन्द तथा अन्तर्म परित्र मात्र पूर्णरूपसे विकसित हैं। वे रामकी विरक्ति रोषभार्यक भाग लेते हैं और रामायणके पत्रक रूप तरद जानते हैं कि राम-प्रेमके कारण उन्होंने कैनेके कष्ट प्रमथनार्थक सहे थे।

श्रीगीताजी एक आदर्श हिन्दू-महिजा थीं, श्री-मुक्त गुर्षांकी अन्नना थीं। अन्न कष्टों और विरक्तियोंको सहा न करके अपने पतिके साथ बनमें गयी थीं। उन्होंने अपने पतिके साथ बन जानेके लिये आशा मँगते समय जो कष्ट उपस्थित किये थे, वे उनके स्वामी और प्रभुके प्रति अनुत्तम भक्तिमे श्रोतप्रोत थे। हमारे आधुनिक श्री-रामचन्द्रों सीताजीका अनुकरण करना चाहिये और अपने स्वयं उपदेश प्राप्त करना चाहिये।

श्रीहनुमान्का प्रेम और प्रभुभक्ति, जिसने उनके वन-को अमर बना दिया और जिसके कारण वे देवको प्रत दुप, मानव-जीवनके इतिहासमें एक दिवचय बात है।

सारांश यह है कि रामायण आदिने अन्ततक एक और प्रेमकी विजयका आख्यानमात्र है। सत्य-प्रेम, सौ-प्रेम, पति-प्रेम, आनृ-प्रेम, मित्र-प्रेम, शत्रु-प्रेम, प्रभु-प्रेम, दीन और दृष्टियोंके प्रति प्रेम, शिबइरीके सनाह होने जीवोंके प्रति प्रेम, चारों ओर प्रेम-ही-प्रेम है। और प्रेम ही एकमात्र मुक्तिका मार्ग है। जो लोग इस वाक्य अतुभव नहीं करते, वे रामायणको स्वयं ही एक रामायणके प्रयत्ना, अमर यशस्वी ऋषि वारमीकिने ही कहा है—

इदं पवित्रं पापत्रं पुण्यं वैदिय संनिन्दु ।  
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुञ्चते ॥  
पतदाख्यानमापुण्यं पञ्चामायणं नर ।  
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेक्ष स्वर्गं महीन्ते ॥

जो मनुष्य इस पवित्र, पुण्यमय, वेदायंमिनि आनु-प्रदाता (जीवन प्रदान करनेवाले) रामायणका करता है, अध्ययन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त पुत्र-पौत्रादि सम्बन्धियोंसहित स्वर्गको प्राप्त होता है।



# रामायणी-प्रजा

( लेखक—श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेकर )



रामचन्द्रजीने जोकाजुराजनाकाप्रसिध्दारा-  
मत प्रदह्य किया था वह अभी भी  
पूरा नहीं हुआ है। बाल्मीकिने जैसा  
कहला वैसी ही बीला रामचन्द्रजीको  
करनी पड़ी। तुलसीदासजीने उस  
रामायण-कथामें बहुत कुछ परिवर्तन  
किया। श्रीरामचन्द्रजीको यह भी मंजूर

रचना पड़ा। अथारामरामायण, अनुतरामायण, धानन्द-  
रामायण, भावार्थरामायण इत्यादि अनेक प्रासादिक ग्रन्थों-  
में श्रीरामचन्द्रजीको नये-नये रूपमें अपनी बीला दिखानी  
पनी है। अकवत्सल प्रभु भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके  
लिये सभी कुछ सहन करते हैं।

रामायणमें भारतीय जीवनका आदर्श चित्रित है।  
भारतकीका उदरय आदर्श राजाका चित्र प्रदर्शित करना  
था। बाल्मीकिने यह चित्र तैयार करके मनुष्य-जातिके  
सामने अनन्तकालके लिये रख दिया है। रामायणमें  
आदर्श राजा ( रामचन्द्र ), आदर्श पुत्र ( रामचन्द्र ),  
आदर्श भाई ( लक्ष्मण और भरत ), आदर्श सेवक  
( हनुमान् ), आदर्श भक्त ( शबरी ), आदर्श पुरोहित  
( वशिष्ठ ), आदर्श मित्र ( गुहक और विभीषण ),  
आदर्श सहायक ( जटायु ), आदर्श सचिव ( भंगद ), आदर्श  
पत्नी ( कौसल्या, सीता और उर्मिला तथा मन्दोदरी ), आदर्श  
सुनु ( रावण ), इत्यादि कई सुन्दर आदर्श बताये गये हैं।  
यथा हम कह सकते हैं कि रामायणी-प्रजा भी आदर्श है।

रामायणने बताया है कि राजा परम्परा और प्रजाकी  
इच्छाके अनुसार राज्यके उत्तराधिकारीका निर्वाचन कर  
सकता था। राजा दरारयने प्रजासे पूछा कि राम  
हमें पसन्द हैं ? लोगोंने ध्यानमिदल होकर कहा, 'भरतय'  
रामचन्द्र ही हमें पसन्द हैं।' परन्तु कैकेयीने लोगोंकी  
अपमानीकी बरी माना। बस, खोग सुपचाप बैठ गये।  
केवले क्या कर सकते थे ? रामचन्द्रजीको चौदह वर्षका  
कलय हुआ, खोग उनके पीछे चले। रामचन्द्रजीने  
इच्छाके साथ खौट दिया। वे रोते-रोते वापस खौट चाये।  
एतदवस्थाके देशान्त हुआ। कैकेयीने रामचन्द्र अपने  
रामसे किया। प्रजाके पुरचार उसे मंजूर कर लिया।

किर भरतजी चाये। उन्होंने राजधानी बदल दी। यह तो  
प्रजाको मंजूर ही करना पड़ा।

श्रीरामचन्द्रजी जंगलमें कहाँ गये? उनका क्या हुआ ?  
इस बातकी तो प्रजाने कभी कुछ खोज-खबर नहीं की।  
सीताका हरण हुआ, जटायुका वध हुआ, रामचन्द्रजीने  
चानर और शीशुकी मर्द की, समुद्रपर सेतु बाँधा, लंकापर  
हमला किया, दुनियाका असाधारण युद्ध हुआ, लेकिन  
रामायणी-प्रजाको उसका कुछ भी पता नहीं था।  
हनुमान्जी उधरसे श्रेयागिरि ला सके, लेकिन रामायणी-  
प्रजा दृष्टिसे रामचन्द्रजीकी खबर मालूम नहीं कर  
सकी। रावणका वध हुआ, लंका विभीषणको दी गयी,  
सीताने अग्नि-परीक्षा दी, इन बातोंकी भी इन लोगोंको  
कोई खबर नहीं थी।

अत्यन्त लोकप्रिय राजा रामचन्द्रजीके प्रति धनुर्क  
प्रजाकी हतनी उदासीनता क्यों थी? कुछ समझमें नहीं  
आता। क्या प्रजाको सुष-सुष नहीं थी? क्या धर्मका  
खयाल ही न था? मानो इस तोहमत्तका निराकरण  
करनेके लिये ही रामचन्द्रजी जन सीता और लक्ष्मणके  
साथ विजययात्रा पूरी करके अयोध्या पधारे तब प्रजाने  
अपने हृदयका सवाल पूछा कि सीता माता रावण-जैने  
दुराचारीके घरमें रहकर कैसे श्रद्धा रह सकी? अग्नि टुडि  
तो हम लोगोंने देखी ही नहीं है। उसका हठपार कैसे  
करें? रावणके घरमें सीतानी रही थी, हतना शाप दे गय  
खोग देख चाये होंगे! इसलिये उन बातपर तो विचार  
कर लिया, पर अग्नि-परीक्षाकरी देखी थी, उधर विचार  
कैसे करें? शाश्वत ही कहा है, 'चतुरै रतय।'

ऐसी प्रजाको लेकर रामचन्द्रजीने राज्य किया।  
सीताका त्याग करके सीताकी स्वयंभवी प्रतिमा शयन स्थान  
परवमेष-यज्ञ किया। फिर ही बाल्मीकिने स्वयं सीताको  
दोनों पुत्रोंके साथ वापस ले चाये। तो भी क्या हुआ—  
'अन्तमत्तका विनिरोधरेय !'

क्या ऐसी प्रजाको पूर्णतः भारभूत समझकर ही  
श्रीरामचन्द्रजी अपने साथ विजययात्रा ले गये ?

रामायणकालमें वह आश्चर्यका मान्य होनी है कि  
हम देखेंगे तेजस्वी धर्मजाय प्रजाका अन्तना हो।



# रामायणी शक्ति

(लेखक—धीनलिनीकान्त गुप्त, अरविन्दभाषम—पाण्डिचेरी)



विवेकी दृष्टिसे शतुलनीय होनेपर भी रामायण केवल एक कान्यमात्र ही नहीं है; रामायण है एक शक्ति।

यह रामायणी शक्ति, भारत-शक्तिका एक प्रधान अंग—एक मुख्य स्वरूप है। जिन मन्त्र-शक्तियोंने भारतकी शिक्षा-दीक्षाकी, भारतके धर्म-कर्मको एक महान् वैशिष्ट्य प्रदानकर निर्मित किया है, उन सयमें वाल्मीकिकी यह गाथा एक विशेष अवदान है।

प्रथम वेद और उपनिषद्, इनके बाद रामायण और महाभारत, तीसरे पुराण एवं चौथे धर्म या सृष्टि-शास्त्र हैं। भारतकी समस्त शिक्षा-दीक्षा इन्हीं चार प्रस्थानोंके द्वारा हुई है। इन्हीं चारोंने भारतीय जीवन-प्रतिभाको आकृति और प्रकृति—स्वरूप और स्वभाव प्रदान किया है।

भारतकी आदिमूल मातृ-शक्ति है वेद। भारतकी अन्तरात्मा यहाँ है। दूसरे छोरपर, भारतके दैहिक आपतनका विधान है सृष्टि। यह बाहरी स्थूल कर्मक्षेत्रकी, व्यवहारिक जीवन-यात्राकी व्यवस्था है। इन दोनों छोरोंके—इस अन्तरात्मा और वेदके बीचमें जो अन्तःकरणकी प्रयत्न-प्रयत्न भूमियाँ हैं, उनका निर्माण किया है रामायण, महाभारत और पुराणोंने।

वेद-उपनिषद् भारत-प्रतिभाकी बुनियाद हैं, पर वह बुनियाद बहुत अदृश, बहुत गहरी और जोक-दृष्टिसे परे है। उसके साथ, शारदत, अम्यय, श्यायुने गुंथरूपसे पीछेसे समस्त भारतजीवनको धारण कर रखा है और वह सयमें शक्तिका आधार कर रहा है। दूसरी छोर सृष्टि केवल उसकी प्रशान्ता-पत्रमात्र है। वह उसके केवल पहिरंगका विकास है। सृष्टिका सध, वेग, काल और पात्रके नियमाधीन है, वह निष्परिवर्तनशील है। रामायण-महाभारत भारतीय जीवनके प्रधान आधार हैं, और पुराण हैं इनकी कतिपय मुख्य शाखाएँ।

अन्तरात्माके साथको, वैदिक औशनसिदिक सिद्धिकी रामायण और महाभारतहीने जीवनमें—आयोंके स्वप्न-रूपमें सचच मूर्त करके धारण करनेकी चेष्टा की है और पुराणोंने उसी प्राणजीवाको विच्छिन्न विच्छिन्नद्वारा व्याख्या करके विच्छिन्नरूपमें रहत और विच्छिन्नरूपमें निष्पन्न-निष्पन्न

व्यवहार बनाना चाहा है। भारतीयकमें साधकमूलकी मध्यमें वेद-शक्ति छिपी हुई है। परन्तु जनसाधारणमें, समाज जीवनमें जो शक्ति प्रकट है वह प्रकारयमें रिक्तजीवी रामायण, महाभारत तथा पुराणोंसे। भारतके विच्छिन्न मूलप्राणको—जो कार्यकारिणी प्रकृतिकी प्रतिष्ठा है—निर्मित किया है रामायण और महाभारतने। पुराणोंने उस प्राण धर्मको और भी गोचर और अज्ञेय करके प्रदत्त किया है और तदनुसार स्थूलतर मन बुद्धिको उसी साँचेमें ढाल कर तैयार करनेकी कोशिश की है।

रामायणने भारतकी चित्तवृत्ति, प्राणोंकी धाराको स्थिर किया है, उसका निर्माण किया है हृदयके अवदानसे, तथा सरल सुकुमार अयच समर्थ भावरीजनके कल्याणसे। परन्तु महाभारतने उन प्राणोंको बाँध लिया है स्थिर-स्थित हृद्वाशक्तिके—सुरत मानसिक शक्तिके दबावसे। वह जा सकता है कि रामायणका मूलमन्त्र है 'तप' और महाभारतका है 'धर्म'। सत्ताकी सहज सृष्टि ही तप है। एक सहज बोध; सरल अनुभव उसे व्यक्त करता है। तप धर्मकी उत्पत्ति है सम्यक् बुद्धिसे, कर्तव्यज्ञानसे और आदर्श-परायणतासे। धर्मकी स्थिति है स्वाभाविक और पुत्रिपुत्र विचारके आधापर, परन्तु तप तो स्वतःसिद्ध है। तप एक नैसर्गिक औचित्यके आधापर स्वयं प्रकाशित है।

रामायणके वरारथ, राम, सीता, लक्ष्मण, आदि इन्मान्, सुग्रीव, विभीषण आदि सभी प्राणों कर्तव्यके निर्धारण और सम्पादनमें विचार-विचारका विशेष निर्भर नहीं किया है। यदि वहाँ मानसिक शक्ति तीव्र-मात्र करना चाहता तो कर्तव्योंकी पृथक्-पृथक् सम्भवतः दूसरे ही प्रकारकी होती। परन्तु वे तो अनुभवित हुए हैं सहजान स्वभावसिद्ध विवेकमें। इनके कर्म हैं अन्तरकी एक महत्ताके, उदात्ताके, विशालताके जो उन्मूलताके परिग्रह! यहाँतक कि कैंसेकी, अन्तःत्वात् शरण-सरीये पात्र भी अपने विद्वानके वरताने उन्मूलताके साथ चले हैं उनने बुद्धि, बुद्धि वरताने कर्म उन्मूलताके साथ चले हैं। इनके निर्माण महाभारतके धारणय बुद्धि, धर्म, धीम, शीघ्र, धर्म, धर्म, धर्म आदिमें कर्मका प्रवाह तीये प्राणोंके उन्मूलताके

भावा, वह मानों घुम-फिरकर मस्तिष्कके अन्दरसे होता हुआ बाहर निकला है। महाभारतके महापुरुष श्रीकृष्णमें बुद्धियोग विशेषरूपसे विकसित है। उनकी गीताका प्रधान-मन्त्र ही है 'बुद्धियोग'। परन्तु श्रीराममें सरल निमल भावोंकी सरल गतिके विग्रह हैं। पाशाबीके प्रत्येक पात्रनिर्घेपमें एक परिचित, आत्मप्रतिष्ठ, मनका स्थिर अक्षर, हृद्वा-शक्तिकी कल्पना परिरक्षित है। परन्तु सीताके कर्मके साथ है एक सरल भावगर्भमात्र। उसमें मन, बुद्धि अथवा युक्तिकी खाद नहीं है।

महाभारतकी शक्तिसे मानो तपश्चर्याका, कृच्छ्रताका गभीर, उदात्त और कठोर ताप निकल रहा है। रामायणकी शक्ति भी शक्तिमान है किन्तु वह एक उदार, महान् प्रसन्न-अन्त-गुणसे मण्डित है। महाभारत उज्ज्वल शैलशिखर है जो रामायण विशाल जलधि। महाभारत पात्रगुणका आधार है, हृष और श्रेय प्राण्य होते हुए भी पत्रियधर्म और आचारको ग्रहण किये हुए हैं। रामायणके हावभावमें गण्य-गुणका परिष्कृत विशेष है। रामायणके नायकके त्रिय होनेपर भी राम, दम, शुचि, अन्तरात्माकी सरल प्रज्ञा, प्राणोंकी सहज महत्ता आदि सच्चे प्राण्यके अर्थोंमें उनकी प्रकृतिका वैशिष्ट्य रच दिया है। वाल्मीकिके

हाथोंसे जिस सृष्टिकी रचना हुई है उसका सशयुग्म रजोगुणको अतिक्रम कर गया है। व्यासकी सृष्टिमें सत्यकी अनेक रजोगुणकी ही अधिक प्रधानता है। महाभारत दिन-दुपहरिका प्रखर प्रकाश है तो रामायण है पूर्णिमाकी रिंग्म ज्योत्स्ना।

भारतके प्राणोंमें रामायणी शक्तिने सार्वभ्य, सुकुमारता, सहज महानुभावता, नैसर्गिक गरिमा, अनायास सौष्टव, अयलमास परिपाठय सरलता और आर्जव आदि गुण भर दिये हैं। ध्यासदेवका भाविर्भाव आपरके अन्तमें हुआ था। उनको हमारा निर्माण करना या कलियुगके लिये। सम्भवतः इसी हेतुसे उन्होंने हमजोगोंको विशेष सजग, सावधान, दद, कुट्ट रुद्र और रूखा बनाना चाहा। परन्तु सौम्य सदास्य वाल्मीकिको इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे हमारे प्राणोंमें जिस शक्तिका सन्चार कर रहे हैं उसमें कोई जबरदस्ती प्रयास और बुद्धिका सञ्चलन नहीं है। वह शक्ति है वर्द्धनशील शिशु या तरुलताकी अद्भुत अर्थ्य अर्थ्य प्रशान्त अन्तःसञ्चिता जीवनी शक्ति, जो हृदयके अन्तस्तन्त्रमें प्रतिष्ठित है।

महाभारतका प्रयास है सत्ताका (गीताकी भाषामें) 'अर्जित' करके निर्माण करना; रामायण चाहती है सत्ताको 'धीमान्' करके प्रकाशित करना !

## श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महत्त्व

( लेखक—'उर्मिला-पद-रज-कण' )



रामायणमें रामसेवा-मती श्रीलक्ष्मणजीका और उनकी धर्मपत्नी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है फिर वह अनुपम कैसे हो गया ? वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका वास्तवमें उनके चरित्रकी परम उच्चताका सूचक ही चरित्रकी परम उच्चताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् व्यागपूर्ण है कि कविकी केशकी टलका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ चल जानेके लिये आग्रह करती हैं, और न खे मानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। कल्पि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले कचनोंको पञ्चकट उन्हीं साथ खे गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-बैहरमें रहनेका उपदेश दिया था,

सो तो जोकशिका, सती पतिमताके परम आदर्शकी स्थापना और पत्नीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सत्यिपाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी वनमें खे जाना ही चाहते थे, क्योंकि उनके गये बिना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए बिना उसकी सृष्टु अस्तम्भव थी जो भवतार धारण्यका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी साक्षात् अग्राधिकार और श्रीराम सच्चिदानन्दधन थे। वह उनसे कभी अलग रह भी नहीं सकती ! केवल पातिमताकी बात होती तो सीताजी भी शायद् उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जातीं। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुपस्था और उनकी सेवाव्रतधारिणी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं। यह भी सीताकी भाँति ही साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह कर सकती थीं, परन्तु उनके घर रहनेमें ही श्रीरामका प्रेम

शुभीता था, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पति का एवमात्र धर्म था और जिसके लिये उर्मिता पूर्ण सहमत और सहायक थी। इन्द्रजित् मेघनादको परदान था कि जो महापुराण खगातार बारह वर्ष तक फलमूल खायेगा, निद्राका त्याग करेगा और अक्षय्य महाधर्मका पावन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघनादका मरण होगा। इसलिये जैसे रावण-धर्ममें कारण बननेके लिये सीताजीका भीरामजीकामें सहयोगिनी बनकर वन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी रामजीकामें शामिल होनेके लिये तीम महामत-पावनपूर्वकमेघनाद-धर्मके लिये वन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिताजीका भी राम-जीका सुषाररूपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका मत था, धरपर रहना आवश्यक था। उर्मिताजी साथ जातीं, तब भी लक्ष्मणजीका महामत पावन होना कठिन था और वे धरपर रहते तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजीने उर्मिताजीको अवश्य समझा दी होगी या महान् विभूति होनेके कारण वह इस बातको समझती ही होंगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत-धर्मका वैया ही पावन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह करके किया था। धर रहनेमें ही पति लक्ष्मणजीका सेवाधर्म सम्पन्न होता है, जिन रामकी सेवाके लिये लक्ष्मणजी अवतीर्थ हुए थे वह सेवाकार्य इसीमें सफल होता है। यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिता कैसे कुछ कह सकती थीं? वह आज्ञाकण्ठीकी भाँति भोगकी भूखी तो थीं ही नहीं। पतिकी धर्मरक्षामें सहायक होना ही पत्नीका धर्म है, इस बातको वह खूब समझती थीं और यही उर्मिताजीने किया।

जोग कहते हैं कि 'लक्ष्मण्य वदे निहुर' ये, राम तो सीताको साथ ले गये, परन्तु लक्ष्मणने तो उर्मितासे बात-तक नहीं की।' पर वह क्या बात करते, वह इस बातको खूब जानते थे कि मेरा और मेरी पत्नीका एक ही धर्म है। मेरे धर्मपालनमें मद्रतप्राया कर्त्तव्यपरायणा प्रेममयी उर्मिताको सदा ही बड़ा आनन्द है। वह धर्मके लिये सानन्द मेरा विद्योह सह सकती है। जनकपुरसे ब्याहकर आनेके बाद बारह वर्षोंमें लक्ष्मण्य और उनकी अनुगामिनी सती उर्मिताने अपना राम-सेवा धर्म निश्चय कर लिया था, उसी निश्चयके अनुसार पतिके रामसेवामें भेजनेके लिये श्रीरंगना उर्मिता

भी उसी प्रकार मम्मन और प्रसन्न थीं, वैसे लक्ष्मण्य-वीर-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। धर्म-यग्य श्रीरंगनापुं अपने पति-पुत्रोंको हँसने-हँसते रखाइयमें भेज करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिताने भी किया। वह ही उर्मिता कुछ बोधी नहीं, परन्तु यहाँ न तो बोझने भवकाय ही था और न धर्ममें निर्य हार्दिक सम्मति होने काय बोझनेकी आवश्यकता ही थी, और न मर्त्या ही ऐसी आज्ञा देनी थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निर्य सेवकको तुरन्त करने योग्य प्रवृत्त मनचाहा सेवाधर्म समझा था पदनेपर सबाह-मरुतिरके लिये न तो धरग्रह रहता है और न उसकी सहधर्मिणी पत्नी भी इससे दुःख करती है, क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिले भवित्ति परिचित होती है और उसके प्रत्येक कार्यका अनुयोग करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात धीर है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परन्तु परतन्त्र सेवापरायण लक्ष्मण्य भी यदि उर्मिताके साथ खेजाना चाहते तो यह अनुचित होता, उन्हें रामजीकी सम्मति खेनी पड़ती, जहाँ धर्ममें श्रीरामजी सीताजीके साथ खे जानेमें ही आपत्ति करते थे वहाँ उर्मिताको साथ खे जानेमें तो बरूर आपत्ति करते। जो कार्य स्वामीकी इच्छे प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सत्त्वे सेवकके विरुद्ध उत्पन्न नहीं हो सकती। इसीप्रकार पतिकी इच्छे प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिता परम पतिव्रता थीं। लक्ष्मण्य उनके जाते थे। धर्मपालनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मण्यजी सेवाके लिये वन जाना चाहते थे, सैरके लिये नहीं। पत्नीको साथ खे जानेसे उसकी देहमात्रमें भी इनका समय जाता तथा दो छिपोंके संग्राहनेपर भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें डूबी नहीं डाल सकता, लक्ष्मण्यजी और उर्मिताजी दोनों ही इस बातको जस्तर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निरुत्साह बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मण्यजी और उर्मिताजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

वनवासमें श्रीलक्ष्मण्यजीके व्रतपालनका महत्त्व देखें। वे दिनरात श्रीसीता-रामके पास रहते हैं। कन्ध-मूक-बन्धा देना, पूजाकी रामप्रीति ज्ञा देना, आश्रमको धारण सुधारना, बेदिकापर चौक खगा देना, श्रीसीता-रामकी इच्छे





श्री सीताजीके गहने ।

मनं ज्ञानमि वेदं । मयं ज्ञानमि वृषभम् ।

मनुं धेव ज्ञानमि नित्यं पदनिवन्दनम् ।

धनुषर उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और दिनरात लका रहकर वीरसनसे बैठे राममें मन लगाये राम-नाम बोलते हुए पढा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें ये ही तप रहे हैं। महाभयंकरता तो पता इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी धंगका कभी ध्यान नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण को सीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने धरापर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने छालदिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनुमाजीकी सेवासे सुमोवके पास पहुँचे तब सुग्रीवने श्रीरामको वे गहने दिखावाये। श्रीरामके पहुँचनेपर लक्ष्मणजी बोले—

माई जानामि केयूरे माई जानामि कुण्डके ।

नूपरे तमिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

(वा०रा० ४।६।२२)

'स्वामिन् ! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता।

मैंने तो प्रतिदिन चरणचन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, मगर उन्हें पहचान सकता हूँ।' आजकलके देवोंको इससे किशा प्रशय करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके ह्यमदान् मतपर भीरामका क्या भारी विरवास था, इस बातका पता इसीसे

लगता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके पास सीताजीको थकले बेधक छोड़ देते थे। जब खर-वृषण भगवान्के साथ युद्धके खिये भाये थे तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें गिरिपुरामें भेज दिया था—

'राम बलाई अनुजसन कहा—

'हेहि जानकिहि जाहु गिरिकंदर ।'

मायाभूगको मारनेके समय भी सीताके पास भाप लक्ष्मणजीको छोड़ गये थे। और निर्वातपके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था।

लक्ष्मणजीका सेवामत तपपूर्ण था। उन्होंने बारह सालतक लगातार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की, इसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे। तपस्यामें उनका उदरैय भी यही था, क्योंकि वे श्रीरामको छोड़कर दूसरी बात न सोचते थे और न जानना चाहते ही थे। उन्होंने स्वयं कहा है—

गुरु पितु मातु न जानउँ काहु । कहहुँ मुमाउ नाथ पतिआहु ॥

जहँ लगे जगत सनेह सगहँ । प्रीति प्रतीति निगम निजगहँ ॥

मोरे सबहि एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु बर-अंत-जामी ॥

घरम नीति उपदेशिअ ताही । कीरति-भूति-सुगनि त्रिब जाही ॥

## रामजन्मकी प्रतीक्षा

( १ )

रहके गए थे पर आते ही न लाड़ले क्यों,  
बस ध्वतीत होती जा रही विछोहमें;  
बाह करती हूँ, मरती हूँ आह दिन-रात,  
साता चलती है सदा आशा बन टोहमें।  
कन सड़े प्यान है लगाए ध्योम वाणी जोर,  
कोसे थक बैठी अंत सवरीकी सोहमें;  
हू न को जहूत-अंग-अंग हो रहे हैं दूत,  
बने कहाँ पूत ! सो रहे हो किस गोहमें।

( २ )

रूपक विदेह देह तोड़ जोतते हैं भूमि,  
तो भी सत्य-व्यामला न सीता फर पाती है;  
खूनके घड़े अरे ! गड़े ही गड़े जाते सड़े,  
होंगे पड़े सोचते—यही तो मति आती है।  
आतुर निपाद भुज-भर भेटनेकी यहाँ,  
उसकी न, तात, तुम्हें मुष ही सताती है;  
आशा-अभिलाषा उपजाती छोड़ ताती याद,  
आती रामनीमी पछनाती रह जाती है।

भा.रा.री.न. दू.द. भा.री.न.रा.नी. भा.र.वृ.प.

# पशु-पक्षियोंका रामप्रेम

(लेखक-श्रीरामेश्वर बाजोरिया)

पाहन, पशु विटप निर्हेम अपने करि लीन्हे । महाराज दशरथके रंक राव कीन्हे ॥



मघरित भगवाण कल्याण-रत्नोंकी छानि है । उसमें जीवनको ऐसे सुन्दर सीधे सर्व-मान्य पयपर छानेकी शक्ति है कि जिससे सहज ही सुख-शान्ति और भक्ति-मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । इसीसे वह सदासे सयका भादर्शरूप और प्रिय रहा है, और है । जिसमें अपना परम हित सूझता है उसी कार्यको सभ किया करते हैं । वह परमहित भगवत्प्रेमका प्रत्यक्ष अनुभव होता है । भग-मङ्गलकर्ता जनसुखदायक भगवान् श्रीराम साचाप ईश्वर थे, परम-पिता थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । वे प्रत्येक चराचर प्राणीके दुःख-सुखका, हिताहितका सर्वदा ध्यान रखते थे । इसी लोक-हित, इसी जन-कल्याणके लिये ही तो वे अपनी प्रतिज्ञानुसार भवतरित हुए थे, फिर भला उनके चराचर-प्रिय होनेमें आश्चर्य ही क्या ? वे केवल उनको साचाप भगवान् रूपसे जाननेवाले षडिछादिके ही प्रिय न थे वरन् प्रेम-सुग्ध माता-पिताके भी अत्यन्त प्रिय थे । यहाँ ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब माता-पिताको अपना कुपूत पूत भी बचड़ा जगता है, तब फिर राम तो आजाकारी मातृ-पितृ-भक्त थे, इससे उनका प्रिय होना स्वाभाविक ही है । यह ठीक है, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी तो पुर-धन-परिवार समीके अतिप्रिय थे । सारी प्रजा सदा उनको देखती रहना चाहती थी, सदा उनके पास रहना चाहती थी । उसको उनसे विदुङ्गनेका नाम भी सुनते ही प्राणान्त कष्टका अनुभव होने लगता था । इसका वर्णन वन-वासके प्रसंगमें सभी रामकथाधर्मों में धराता है । उसे पढ़कर कौन सहृदय पाठक उनके कष्टकी सहायप्रभृतिसे रो नहीं उठता । भगवान् की सृष्टिमें मनुष्य सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझा गया है, अपने हितैषीके प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा प्रकट करना उसका स्वाभाविक कर्तव्य है, धर्म है । परन्तु अधिक भुवन-प्रिय रामको पशु-पक्षी और जटा-तुम भी कितना प्रेम करते थे, यह कुछ ध्यानसे मनन करनेका विषय है । यहाँ इसी विषयका कुछ वर्णन करना है ।

सांसारिक जीवोंके मुलके लिये भगवान् अपनी जीजा-द्वारा माता कैकेयीसे प्रेरित महाराज दशरथकी आज्ञा पाकर

पकल-बल धारणकर सीताजी और लक्ष्मणमरित जा रहे हैं । सुमन्तजीको उन्हें रयमें बैठा बन दिखानेकी आज्ञा दी जायगी । पुर-नर-नारी दुःखका तो भाज कइना ही क्या है, पर बरा पशु-पक्षी पेश-पौधोंका भी हाल देखिये ।

ततस्त्वयोध्यादिता महात्मना पुरन्दरंशैव मही सर्वदा शचालः वीरं मयशोकदीपिता सनागवोधा-धन्या ननाद य (वा० रा० २।१।२०)

सारी श्रयोप्या आज भगवान्के विद्योगमें करि लीये और हाथी चिगाड़ मारने जगे, सर्वत्र शोक-साज्जण गया । सभी भक्तिमान् जङ्गम और स्थावर प्राणी भगवान् वनमें कष्ट होनेकी आशंकासे दुःखित हैं और भगवान्के प्राण मूक भाषा-निश्रेष्ठ चेष्टामें और चञ्चलकी प्राणना करतें

भक्तिमन्तीह मृतानि जटमाज्जनानि च ।  
याचमानेषु तेषु त्वं भक्ति मकेषु दर्शन ॥  
अनुगन्तुमशकास्तां मूकैश्चतुर्विधैः ।  
उन्नता वायुयोगेन विक्रोशन्तीव पादपाः ॥  
निश्चिदाहारसंचारा बुद्धैकस्थाननिश्चिन्तः ।  
पक्षिणीपि प्रयाचन्ते सर्वमूलानुक्रमन् ॥  
दक्षे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥

(वा० रा० २।१।२१-२४)

भगवान्की क्षीणामें उसीके दिव्य रूपसे शक्तिमान्के अचर वृथापि चञ्चल नहीं सकते, बोल नहीं सकते वरन् जेन तो उन्हें भी अत्यन्त प्रिय हैं, इसीसे तो वे भी आज दुःखी हैं । रवणं भगवान् इन अणु जीवोंकी दशाका वर्णन करते हुए लक्ष्मणसे कहते हैं—

पश्य शून्यनगरस्थानि वदन्तीव समन्ततः ।  
यथा निरवमापद्भिर्मिहीनानि मृगद्विधैः ॥

(वा० रा० २।१।२५)

हमारे दुःखोंसे दुःखी होकर विदे हुए पशु-पक्षी शरणांसे विहीन इस शून्य बनेके दर्शनको देखो ।

हयगुह कल्याणमय श्रीरामने सुमन्तको आज्ञा ही—

अननसत्त्वमशेषे भव सौम्यैरयुवाच ह ॥

(वा० रा० २।१६।२२)

'हे सौम्य ! तुम सावधानीसे घोड़ोंकी देख-भाज करो।' भावुक मलयगणोंका उन पशु-पक्षियोंको, इन मन्-पक्षियोंको और लता-पुष्पोंको कृतपुण्य-धन्य धन्य बना होक ही है; जिनके लिये स्वयं भगवान्—

कदाहं पुनरागम्य सरस्वा पुष्यते वने ।

मृगयो पर्यटिष्यामि मात्रा पित्रा च संगतः ॥

(वा० रा० २।१९।१४)

—कदाहं उनसे पुनर्मिलनकी उत्कण्ठता दिखजाते हैं ।

निगाहवाह गुहका गुण-गानकर कौन अपनेको पवित्र करना नहीं चाहेगा । नगर-निवासी शिषित, सम्य जनसमुदायसे हृ विकट घोर जंगलमें रहकर हिसासृचितसे जीवन-निर्वाह करनेवाले इषामाया-हीन मनुष्य भी परम नम्र और सेवा-भाववाले बनकर रामके दासोंमें उध गिने जानेवाले बन जाते हैं, यह सारी बीजा अपने भगवत्-चरणोंमें प्रेम और इनकी (चरणोंकी) दीन दयालुताकी ही है । एक भगवत्-रसक और हानिकर एवं निन्दनीय पर रुद्रिगत आचार्य बातको भी जहाँ हम छोड़नेमें असमर्थ होते हैं वहाँ उन भौकोंका—जिनको हम जंगली कहते हैं—जैसा बड़बुद अपने प्रतिपक्षी सेवामें हाथ जोड़कर भेरे हुए उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करना कितने आश्चर्यकी बात है ? जिनपर 'उसकी' कृपा हो उनका देवता—नहीं—स्वयं भगवा, बन जाना भी कोई अमोक्षी बात नहीं, 'मगधहि कर प्रिंति सम ।' वह 'तो कसुं अकसुं' बनवा कसुं समर्थ' है ।

अब भगवान् गुरुराजके साथ गंगाको पारकर आगे जाना चाहते हैं, सुमन्तको यहाँसे लौट जानेके लिये प्रयत्न करते हैं । परन्तु सुमन्तको राजा और राजमाताओंके लक्ष्मण उन पशुओं और पक्षियोंकी भी दुःख स्मरण हो जाता है और वह कहता है—

मम तावन्नियोगस्थास्त्वद्वन्बुजनवादिनः ।

कथं रम्यं तवया हीनं प्रवाकन्ति ह्योत्तमाः ॥

(वा० रा० २।५२।५०)

'हे राम ! वे छोड़े जिनकी देख-भाज मेरे अधीन है, वे कलकत्तेकी ही से खडते हैं । जब आप खोग कोई

हस रथपर नहीं रहेंगे तब वे छोड़े रथको कैसे ले जायेंगे ?' सचमुच रामके जानेके बाद उनके वियोगमें घोड़ोंकी बड़ी डुरी दया हुई—

देसि दक्षिन दिसि ह्य दिदिनाही । जनु विनु पंस निहेंग अकुत्ताही ॥

नहिं तुन चरहिं न पिअहिं जठ मोचहिं लोचनबारी ।

म्याकुत्त मयेठ निपाद सब रघुबर-बाजि निहारि ॥

× × ×

चर फरहिं मग चले न घोरे । बनमृग मनहुं आनि रथ जोरे ॥

अकुकि परहिं फिरी हेरहिं पीछे । रामनियोगनिकर दुख तीछे ॥

जो कह रामु लन बदेही । हिंकिरि हिंकिरि हित हेरहिंतेही ॥

बाजि-बिरहगति कहि किमि जाती । विनु मनि फनि क विकर बेदिमांती

मयेठ निपाद विपादनस देसठ सचिव तुरंग ।

बोकि सुसेवक चारि तब दिप सारथी संग ॥

ये बेचारे जिधर राम गये थे उधर देख-देख पंश-कटे पक्षीकी तरह विकल हो बार-बार दिनदिनाने जगे । दुःखके मारे उनका खाना-पीनातक छूट गया । घ्राँलोंसे अन्न खसुथारा बहने लगी । राम-विरहाकुल घोड़ोंकी दया देखकर उपस्थित जोग भी शिपाय-मग हो गये । ये उन पशुओंको कृतकृत्य समझने लगे, जो धीरामको इतना प्रेम करते हैं कि उनके वियोगमें अपने शरीर-भाग्यकी भी परवा नहीं ।

घोड़े यह देखनेके लिये बार-बार कनीसी उठाकर हृपर-उधर देखते हैं कि कहीं किपी खोरसे रामचन्द्रजी आ तो नहीं रहे हैं वा पास ही कहीं खोज तो नहीं रहे हैं । ये उनके दरान पाने और उनके कथनामृत सुननेको इपाकुल हो रहे हैं । शिषित जंगली जानवरोंको आधर रथमें जोड़नेसे उनकी जो दया होती है वही इन चतुर घोड़ोंकी हो गयी है । खडते-खडते बार-बार घटक (दर) जाते हैं, और गर्दन घुमाकर पीछेकी ओर देखने हैं कि एक बार फिर रामजीके दरान हो जायें । रामका वियोगजनित उनका दुःख अघोर है । यदि वे किपीके मुँहसे राम, लक्ष्मण और सीताका नाम सुन पाते हैं तो हुंकारकर उसकी ओर प्रेमसे देखने लग जाते हैं । उन घोड़ोंकी विकल दयाका वर्णन कैसे हो सक्ता है ? वे यदिहीन सपकी तरह ब्याकुल हैं । अब निपाद उनकी दया देखकर अच्यन्त दुःखित हुए और वह सोचकर कि देवे घोड़ोंके



रथमें बैठे सुमन्तके साथ कुछ आश्चर्योका होना अत्यन्त आवश्यक है, न मालूम रास्तेमें इन घोड़ोंको क्या हो जाय, उन्होंने रथके साथ अपने चार आदमी भेज दिये ।

पाठको देखी अपने इन पद्यत्रोंके विमल प्रेमकी दुर्लभ स्त्रीकी । हम मनुष्य क्या इन पद्य कहलानेवाले घोड़ोंकी बराबरी कर सकते हैं ? ये परम धन्य हैं जो रामके वियोगमें इसप्रकार अपनी सुधि-सुधि खो देते हैं ।

अस्तु, किसी प्रकार गिरते-पड़ते घोड़ोंने रथको अयोध्याकीतक पहुँचा दिया । सुमन्त महलोंमें चले गये । फिर, बेचारे घोड़े रामवियोगको और अधिक न सह सके । उनकी इस कल्याणपूर्ण दशाका ध्यानकर आगेकी यातका लिखना-पढ़ना कठिन हो जाता है, इसीसे बादका

कुछ पता नहीं मिलता । न-जाने उन घोड़ोंने भी म दशरथजीकी तरह वियोगमें अपने प्राण खो दिए पुनर्दशनकी आशासे भरत और कौसल्याकी तरह प्रकार भीषित रहे ।

अच-वानरोंके प्रेमकी बात तो भगवान्ने स्वर्ग श्रीमुखसे कही है, उससे विचयमें हम क्या करें । विभीषणकी क्या तो प्रसिद्ध ही है, उष्ण त धारयन्त प्रेम था ।

यदि वे सबके परमप्रिय प्राणाराम न होते 'बीच चराचर याचत देही' क्यों कहा जाता । वे तो सब ही सबके आत्मा होनेके कारण सर्वप्रिय हैं । जय ! सर्वप्रिय श्रीराम और उनके प्रेमियोंकी ।

## रामायणके कुछ रत्न

(लेखक—श्रीयुव रामायणशरणजी रामायणी)

मंगल-मवन अमंगल-हारी । द्रवहु सो दसरथ अजिर-विहारी ॥



रामायणका महत्त्व अनिर्वचनीय है । इसकी महिमा जितनी गायी जाय उतनी ही घोड़ी है । मैं इस रामचरित-रत्नाकरमेंसे कुछ रत्न रामायणाङ्के पाठकोंकी भेंट करता हूँ । कृपया स्वीकार करें । उपहार प्रयोत्तरके रूपमें हैं ।

१—'श्रीरामचरितमानस फिस मन्त्रार्थपर है, जैसे श्रीमद्भागवत द्वादशाक्षर मन्त्रपर है और श्रीवाल्मीकीय रामायण गायत्रीके चौबीस अक्षरों-पर है ?'

'श्रीमानसरामायण 'श्रीरामाय ममः'-इस पद्याचर तारक मन्त्रराज पर है । परन्तु गुप्त है । 'वर्णानां' इस प्रथम श्लोकमें 'र'कार 'अ'कार चिन्दुसहित रामबीज है और पाँच अक्षर पाँच काण्डोंमें हैं, और अन्तका विसर्ग उत्तरकाण्डके अन्तमें है ।'

२—'ग्रन्थकारने इस ग्रन्थको 'य' कारसे क्यों प्रारम्भ किया ?'

'ग्रन्थके आदि और अन्तमें भी वकार ही है । वकार अमृत बीज है, इससे श्रीरामचरितमानसको 'अमियमय' सूचित किया । जैसे असुर पान करनेवालेको दूसरे रस-पान

करनेकी अपेक्षा नहीं, वैसे ही श्रीरामचरितामृत पान करने वालेको दूसरे साधनकी आवश्यकता नहीं है ।

३—'तुलसीकृत रामायणका श्रीरामचरितमानस नाम कैसे पड़ा ?'

'इसको श्रीशिवजीने रचकर बहुत समयतक अपने मानसमें रक्खा, फिर सुप्रसन्न पाकर श्रीशिवसे कहा।'राम'से 'रामचरितमानस' नाम पड़ा ।'

४—'श्रीरामचरितमानसमें गीतोपदेशका वर्णन कहाँ है ?'

'श्रीरामचरितमानसमें गीताका भाषान्तर वा समावर्णन वर्णन बहुत अगद मिलता है । विस्तारमयसे मैं यहाँ नहीं लिखता । केवल मानसमें कितनी गीतार्थ हैं उनके मात्र मात्र यहाँ लिखे जाते हैं, सज्जनगण रामायणमें पढ़कर ले लें । अयोध्याकाण्डमें ६१ दोहेसे ६३ दोहेतक विपण प्रति श्रीक्षमणजीका उपदेश 'श्रीक्षमणगीता' है । अयोध्याकाण्डमें दोहा १२२ से १३१ तक 'श्रीरामचरितगीता' है । आरण्यकाण्डमें पञ्चदशमें दोहा १७ से १८ तक श्रीक्षमणजीके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'श्रीरामचरितगीता' है । काण्डकाण्डमें श्रीविभीषणके प्रति श्रीरघुनाथजीके

शोच्यमान रूपका रूपकमें वर्णन किया है वह 'श्रीभगवद्गीता'  
है। उपकारार्थमें ४२ दोहेसे ४९ दोहेतक श्रीभयोप्या-  
शक्तिके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'पुरज्वनगीता' है।  
शुभः उपकारार्थके अन्तमें ११९ दोहेसे १२० दोहेतक  
'शान्तिगीता' और ११९ दोहेसे १२० दोहेतक 'श्रीभक्तिगीता' है।

५—'मनरूपी दर्पणमें मल क्या है ?'

'हाँ विषय मुझ मन लानी ।'

६—'मनरूपी दर्पणके साफ करनेका उपाय क्या है ?'

'बोधुदरेके परव्यक्तमलकी रज ।' क्या—

'रत्न मन मञ्जु मुकर—मल हरनी ।'

७—'परमेश्वरका रूप हृदयमें कैसे आ सकता है ?'

'शुभिरिष नाम रूप विनु देसे । आवत हृदय सनेह बिसेसे ॥'

८—'श्रीरामजीको घरा करनेका उपाय क्या है ?  
और किसने उन्हें वश किया ?'

'शुभिरिषनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखेहु रामू ॥'

९—'श्रीरामजी कैसे रीझते हैं ?'

'रीझत राम सनेह निसेते ।'

'गुन रीझहु सनेह मुक्ति घोरे ।'

'रोझत देखि तोरि चतुरां ।'

१०—'पापोंसे मुक्त होनेके विषयमें श्रीरामचरित-  
नामसमें क्या कहा है ?'

'विनसहु जानु नाम नर कहही । जनम अनेक संभित अथ दहही ॥'

'हीरथ अमित केटिसत पावन । नाम अखिल अथ-पुत्र्य मसावन ॥'

'पाम कि रई नीति विनु जने । अथ कि रई हरि-चरित नखाने ॥'

'सुमनुष्य हीय औष मीडि जवही । जनम केटि अथ नासौं तवही ॥'

'सदप्रप निशि ससि अपहरई । सन्त-दरस त्रिभि पातक टरई ॥'

११—'श्रीरामायणमें सहज स्वरूप किसको  
हते हैं ?'

'शुभ, सुख और कारख-शरीर सीनोंसे परे या

कोशादि क्या सीनों गुणोंसे परे भिन्न, अथवा जाग्रत

प, सुषुप्ति अवस्थाओंसे अतीत और शरीय अवस्थामें

क निमल भावन्की शक्ति शुद्ध सच्चिदानन्दधनस्वरूप

सहज स्वरूप है । क्या—

'ईश्वर अंत जीव अविनासी । जेतन अमल सहज सुखरासी ॥'

'मम दरसन फल परम अनूषा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥'

'सकर सहज सरूप सैनाता । कामि समाधि अखण्ड अपारा ॥'

१२—'घेदमें परमधम किसको कहा है ?'

'शुक्ति कष्ट परम धरम उपकारा ।'

'धरम धरम श्रुति विदित अहिंसा ।'

'सिर धरि आद्यसु करिय तुम्हारा । धरम धरम यह नाथ हमारा

१३—'सन्त किसकी प्रशंसा करते हैं ?'

'परहित कामि तजै जे देही । संतत संत प्रसंसीद देही ॥'

१४—'ईश्वरका प्रण क्या है ?'

'प्रन हमारा सेवक हितकारी ।' 'मग प्रन सरनागत मपहारी ॥'

१५—'कौन मनुष्य भवसागरमें नहीं पड़ता ?'

'मव कि परहि परमात्म विन्दक ।'

१६—'भवसागरमें कौन लोग पड़ते हैं ?'

'भवीतिनु अगाध परे नर ते । पद-पंकज-प्रेम न जे करते ॥'

१७—'संसारमें यश कैसे मिलता है और अपयश कैसे ?'

'पावन जस कि पुन्य विनु होई । विनु अव अजस कि पावै कोई ॥'

१८—'संसारमें किसकी भक्ति बिना सुख नहीं मिलता ?'

'श्रुति पुरान सदप्रन्य कहाही । रघुपति-मगति बिना सुख नाही ॥'

१९—'जीव किसके विमुख होनेसे सुख नहीं पाता ?'

'राम-विमुख सुख औष न पावै ।'

'जीव न लह सुख हरि-प्रतिभूला ॥'

'जिनि सुख लई न शंकर-प्रंही ॥'

२०—'जगत्में किसको कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है ?'

'परहित बस जिनके मनमाही । तिनकहै जग दुर्लभ कछु नाही ॥'

'हरि-प्रसाद दुर्लभ कछु नाही ॥'

२१—'जगत्में सबसे दुर्लभ क्या है ?'

'सबसे दुर्लभ मनुज सरीरा ।'

'सत्संगति दुर्लभ सैतारा ।'

२२—'मनुष्यको संसारमें सबसे बड़ी हानि क्या है ?'

'हानि कि जव यहि सम कछु मावै ।

मजिय न रामहि नर तनु पाई ॥'

२३—'परायी निन्दा करनेका क्या फल है ?'

'पर-निन्दा-सम अथ न गरिमा ॥'

'सबकी निन्दा जे नर करहीं। ते भमगादुर होइ अवतरहीं ॥'

२४—'शोक करने योग्य कौन मनुष्य है ?'

'सो धनीय सबही बिधि सोई। जो न छोड़ि छल हरिजन होई ॥'

२५—'श्रीरामजी क्या रूपा करते हैं ?'

'मन कम बचन छोड़ि चतुर्दर। मजत रूपा करिदैं रघुदर ॥'

२६—'श्रीरामजीको स्वप्नमें भी कौन अच्छा नहीं लगता ?'

'सिव पद-कमल त्रिनहि रति नाही। रामहि ते सपनेहु न सोहाई ॥'

२७—'श्रीरामभक्तके लक्षण क्या हैं ?'

'बिनु छल विषनाथ-पद-भेदु। राम मगतकर लक्षण पदु ॥'

२८—'किस उपायसे जीव शोक-रहित हो सकता है ?'

'चहुँ मुग तीन काल तिहुँ लोका। भये नाम अपि जीव असोका ॥'

२९—'संसारमें अभागी कौन हैं ?'

'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहि विषय-अनुरागी ॥'

३०—'बड़भागी कौन हैं ?'

'सोई मुनय सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥'

'रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बचन इव नर बड़भागी ॥'

३१—'श्रीरामजीका स्वभाव कैसा है ?'

'अति कोमल रघुबीर सुमाऊ। जद्यपि अखिल लोककर राज ॥'

'सुनहु रामकर सहज सुमाऊ। जन अभिमान न राखै काऊ ॥'

'उमा सुभाव राम जिन जाना। ताहि मजन तजि भाव न आना ॥'

'अस सुभाव कहुँ सुनौ न देखौ। केहि खगेस रघुपति सम लेखौ ॥'

'नै जानौ निज नाथ सुमाऊ। अपराधिहुपर कोह न काऊ ॥'

'राम सुभाव सुमिरि बैदेही। मगल प्रेम-तन-सुधि नहिं तेही ॥'

'आसु सुभाव अरिहु अनुकूल ॥'

३२—'लोक और परलोकमें सुखका क्या उपाय है ?'

'जो परलोक इहाँ मुख चहइ।

सुनि मम बचन हृदय ददु गहइ ॥'

'सुखम मुखद मारग यह भाई।

भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥'

## केवटका अतुल प्रेम

(लेखक-पं० श्रीरामनारायणजी मुकुंदाचर्यन)



न, धाधो ! परम मनोहर मगवती माती

तदपर देखो कैसी रमणीयता है ! स्व

दृशीकी पृथ विटक रही है। कृपागार,

उदार श्रीरामजी श्रीमिथिलेख-किशोरी और

खण्यजालजी सहित पधारें हैं। चलो, उ

पावन चरण-रज मल्लकर चारयम व

जन्मान्तरोंके अनन्त कल्प-युजको धो डालें। सम्म

कि आज इस तापस वेपमें 'बिनु सेवा ओ देवे रीनर

सरिस कोउ नाही।' से भी विठोप उदारता हो।

यह देखो, वही हैं हमारे प्यारे राम ! वही हैं राम

हृदय-धन !! जिनमें आ रहा है कि चरय पकड़का बीज

रो लें और उन कोमल धरुण चरणोंको प्रेमाशुभ्रोंने

घो डालें ! पर नहीं, टडरो ! इनका उचित अधिकारी व

उत्कण्ठासे घाट जोह रहा है, उसका इतीहा मन मनमन

करनेको धातुर बैठा है ! चलो उसकी सीधी-साड़ी कमूदन

वाणी सुनें और उसीके कर-कमजोहारा प्रेमसे कोरे पु

चरणामृतका पान करें ! आज प्रेम-पारावार प्रभु अपने

हुप भक्तके घर हो प्रेमका पाठ पढ़ायेंगे और अपने मन

भाव प्रकटकर भयसागरसे भी पार लगायेंगे।

बाहरे मनचले बड़भागी केवट ! धन्य तेरा धन्य प्रे

धन्य तेरी निष्कण्ट भक्ति ! धन्य तेरा चण्टा हड ! ध-

लोक वेद सब माँतिहि नीचा । जासु छौह हुप देखि सोचा ॥

—इस चौपाईको चरितार्थ करठा हुआ भी सरकारने सुने

अलफ़ाजोंमें सीनाजोरी कर रहा है। जिन्होंने सुन-मनुर छरके

'प्रबल कर्मकी डोरीमें' बाँध रक्ता है, उन्हेंको आज ते

बाखों ही बातामें बाँध लिया, और बाँधा भी देना कि कर्ने

पिता-पितामह तकका बन्धन मुक्त कराया जिया ! धन्य !

माँगी नाव न केवट आना । कहेसि तुम्हार मरनु नै जना ।

नाव माँगेपर लुले शब्दोंमें साक इन्कारी क

फिर एक तराँ तागावनीका भी 'तुम्हार मरनु नै जना ।

क्या खूब ? कैसा सौम्य और सरल भाव है ! जिय मनु

मूडुटि-बिबाससे ही सृष्टिका खय-विकार होता है। जो कवि

महापदका नायक है, राजराजेपर है, उनपर वह काँठ

में तुम्हारी मीयत खूब जानता हूँ । सहजमें तुम्हारी बावनी

था सकता। फिर इतने पर भी मुन नहीं रहा। करने कर-

पहि घाटते थोरिक दूर अहे  
कटिलौ जल बाह दिखारहौं जू ।  
पारसे पगधूरि तरे तरनी  
घरनी पर क्यों समझारहौं जू ॥  
तुलसी अन्हंज न और कछू  
हरिका केहि भौंति जियाइहौं जू ।  
बह मारिय मोहिं किना पग धोप  
हौं नाथ न नाव चढ़ारहौं जू ॥

महाराज ! गंगाजीमें जलकी गहराई कमरतक ही है ।  
बापे, मैं निकटका मार्ग दिखवा दूँ । आप उसी मार्गसे  
निकल जाइये, नावकी जरूरत ही क्या है ? मैं तो सरकार  
कमर धीन हूँ, नाव ही मेरा रोजगार है—

‘पहि प्रतिपारहौं सब परिवारक । नहिं जलौं कछु और कनाक ॥

यही मेरी जीसे प्यारी जीविका है ! न जाने आप-  
सीसे कितने राधा-बाबू इससे उत्तर गये हैं । हमें किसीसे  
परिचय तो करना नहीं है, ‘खरी मजूरी चोला काम’ आपका  
काम्य काम होगा, थोड़ा बहुत इनाम-भक्षराम दे दूँगे ।  
कन्यार तो इसीसे काम है, महाराज !

उत्तमिउ मुनि-धरनी होइ जाई । नाट परे मोरि नाव उड़ाई ॥

ऐसा काम मैं नहीं करना चाहता । खलिये जवद,  
आपको वह मार्ग बतवा दूँ, मुझे तो अपना काम करना है  
और आपको भी विज्ञान्व होता होगा । पर सरकार, मैं  
आपको यों ही नावपर नहीं बैठा सकता ।

पाव मरी सहरी, सकल सुत बाटे बाटे,  
कैयटकी जाति कछू बेद ना पढ़ारहौं ।

सब परिवार मेरो नाही लगि राजाजू,  
हौं दीन बितहीन कैसे दूसरी गढ़ारहौं ॥

गौनमकी धरनी क्यों तरनी तरनी मेरी,  
प्रभुसौं निषाद हँके नाद न बढ़ारहौं ।

तुगसीके ईस राम राखेसो सौँबा करी  
विना पग धोप नाथ नाव ना चढ़ारहौं ॥

आप जानते ही हैं, आपके घरवाली धूखि छूते ही मेरी  
पग धी बन जायगी । फिर बाबू-बच्चोंको हो रोटी खाईये  
मैत्रेयी ? हाँ, एक टपाप है—मुझे बाप्य पों खेये संश्रिये ।

परपदुम बौह चढ़ार नाव न नाप उडारै चरौं,  
मेहिं राम राखि आज दसराथ सपथ सब कौँबी करौं ॥

बह ठौर मारहु जनु ये जन्मनि न पावै पल्लरीही,  
तबहीन न तुटहीराम नाथ इपाहु पर उडारिही ॥

और क्या कहूँ ? बड़े सरकारकी सौगन्ध करके कहता  
हूँ—नाथ, पैर धोये बिना तो पार नहीं उतारनेका । छोटे  
सरकार टेढ़े-टेढ़े ठाक रहे हैं, मजे ही वे बाप्य मारकर मेरे  
प्राण खे लें । मैं मारा जाऊँगा, पर बाबू बच्चोंकेलिये नाव तो  
बच जायगी ।

जौं प्रभु पार अवति गा चहहू । मोहिं पद-पदुम पतारन कहहू ॥

बाह रे ‘पद पदुम’के सच्चे पुजारी ! क्यों न हो, आज  
तेरा प्यारा नाम प्रायैक राम-भक्तके रोम-रोममें रम गया  
है । धन्य तेरा प्रेमाग्रह ! जिन घरवाँको श्रीविदेहजीने  
धरनी जाइबी कुमारी सीताको धरपित करके पतारा था, जिन  
घरवाँकी धूखि जन्मजन्मान्तर तपरबयाँ करके महापिंगव्य  
कठिनतासे प्राप्त कर सकते हैं । ध्यान रूने धरने सरक  
प्रेमसे उनको प्राप्त कर लिया ।

शानन्दकन्द श्रीकौसलकिणोर श्रीराम धरने जनकी ‘प्रेम-  
खपेटी छटपटी’ बायी सुनकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए बोखे—  
बेनि आनु जल पाय पसाक । होइ बिहंन उटारि पाक ॥

बस, अब क्या था । भक्तने मनमाना पदार्थ पाया ।  
वह प्रेममें विद्वज हो घरवाँपर गिर पड़ा और जगा  
प्रेमाग्रुओंसे ही पावन घरवाँको पतारने । उसके ध्यानन्दका  
पार नहीं रहा—‘जन्म रंक ननु पास पाया ।’

श्रीरामजीने कहा—‘माई, हमें बेर हो रही है । यह  
क्या कर रहे हो । जल्दी पार उतार दो ।’ प्रभुके बार-बार  
कहनेपर कैयट दौड़कर बटौटा जे आया और बोला कि  
‘नाथ ! जल्दी न कीजिये । जगदीका मार्ग तो मैने आरको  
पहले ही बतवा दिया था । जरा खान्ति रहिये । मैं आरको  
बुझाने तो गया ही नहीं था, धनेक धाट थे, जगरी धी तो  
इधर न धाने । अब तो सबनक मेरा काम न होगा, तब-  
तक आपका भी नहीं होनेका । मैं अब राजके एक-एक  
कणको बरखाने बुझा लूँगा, तब नाथ मित्रेयी ।’ प्रभु  
मुसकराये धी बह—

कहिं जानन्द उमरी अनुगाण । चरन-जोगर करणन राण ॥

कैयट परमानन्दने मन्व हो धीरे धीरे प्यारके बाप्य को  
रहा है । कन्यार प्रेमभाजन कैयट, आज मेरे श्रीमान्को  
देवगय धी बखचा रहे हैं ! जिन घरवाँकी कटुका-  
नाग्रने ही श्रीभारतकाकरीने कल्पिताममें परपदुमी कयाकर  
18 वर्षकी चरधि पार की थी । जो बाप्य कीटका  
धन्यवाँके इष्ट-जानममें नरैव विनाय करने है, आज

तूने उनको हतना परामें कर लिया कि बार-बार कहनेपर भी नहीं छोड़ता ।

देवगण ध्यानदमग पुण्य बर्षा करते हुए मुक्तकण्ठसे पुकार रहे—

‘महि सम पुण्यपुण्य कोड नाही ।’

केवटने लूख राग-रागकर पाष्य घोये और फिर—

पद बसारी जलपान करि आपु राहित परिवार ।

पितर पाठ करि प्रसुद्धि पुनि मुदित गयठ लेह पार ॥

पार से आकर केवटने पुनः प्रणाम किया । प्रसु सङ्गघाये ।

कुड़ देना चाहिये, फिर क्या है ? धाममाता श्रीजानकीजीने प्रभुके ममका सहोच जानकर—‘मनि-मुदरी मन मुदित

वशाी ।’ सरकार केवटको उतार्ह देने का

केवट बड़ा चाकाक था, उसने कहा—

नाप आनु मै काह न पावा । मिटे दोष-दुख दारिद-

नहुत काक मै कीन्हि मसूरी । आनु दीन्हि विधि बनि मकि

अब कछु नाम न चाहिय मोरे । दीनदयक अनुग्रह ते

फिरती बार मोहि ओह देवा । सो प्रसजु मै सिर धरि के

‘फिरती बार मोहि ओह देवा ।’ देवा, आज वि

कैसे फाँस लिया सरकारको । चौदह वर्ष बाद

छोटे समय फिर हसी घाटपर आना होगा !

धौलो भक्त और भक्तवत्सल भगवान्की ज

## रसने !

[ भक्ति-गान ]

भजन कर ले, अरी रसना ! सरस हो, भजन कर ले । अरी रसना ० ।

रामकी सुनके कथा, उससे कुछ सयक पा ले,

तू भी भूतलमें गुणोंसे महा सुयश छा ले ।

चख चुकी खूब तो धिपयोंके विपैले भोजन,

है सुधा जिसमें भरी अब वही भोजन खा ले ॥

भक्ति-भावोंसे प्रभुका हृदय हर ले ।

अरी रसना ! सरस हो, भजन कर ले । अरी ० ॥ १ ॥

पूज्य कृतियोंका पूर्ण मान करनेके लिये, ज्ञान गुरु-गौरवका गान कर रसने !

‘रसिकेन्द्र’ पर्वजोंकी ज्ञान, ध्यान, शानपद; भक्ति-भरी भावनाका दान कर रसने !

मुक्ति मिल जायगी, तू पायगी अमर-पद; सत्य, धर्म-धारणाका ध्यान कर रसने !

सरस सुधाकी धार बरस रही है, बस—रामकी कथाका रस पान कर रसने !

व्याप रही संसारमें रामायणकी शक्ति,

पाता सिद्धि अभीष्ट वह, करता जो घर-भक्ति ।

राम रटके तू सागर अगम तर ले ।

अरी, रसना. सरस हो भजन कर ले । अरी ० ॥ १ ॥

जब-जब भूमि-भार भारी भरपूर होता, भूतलमें पापों भरे घड़े भर जाते हैं,

तब-तब हरि अवतार ले पसार प्रमा, दानवोंको मार भार भूमिका हटाते हैं ।

प्रेतायुगका पवित्र रामका चरित्र, मित्र, अबतक सुन-सुन मक सुख पाते हैं,

राजनीति-मर्म, न्याय, धर्म, पुण्य-कर्म भरे, धीर, रणधीर राम-राज्यमें दिखते हैं ॥

रामचन्द्र बल-धामके बल-विभ्रमका गान,

बरस धीर-रस, डाल दे—बेजानोंमें जान ।

मन्य भारत भी पहिली प्रमा भर ले ।

अरी रसना, सरस हो, भजन कर ले । अरी ० ॥ १ ॥ —विभ

# रामचरितमानस

(लेखक—महात्मा गांधीजी)

मित्र मित्र मित्र पृथुते हैं—

'रामायणको भाप सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते हैं, परन्तु समझमें नहीं आता, क्यों ? देखिये, गुजरातीदासजीने श्री-चरित्रकी कितनी निन्दा की है। बाब्रि-वधका कैला समर्थन किया है। विभीषणके देश-द्रोहकी किस कदर प्रशंसा की है। सीताजीपर घोर भ्रम्याय करनेवाले रामको भवतार बताया है। ऐसे ग्रन्थमें भाप कीन सौन्दर्य देख पाते हैं ? गुजरातीदासके काम्य-चातुर्यके लिये तो, शायद, भाप रामायणको सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं समझते होंगे ? यदि ऐसा ही है तो, कहना पड़ेगा कि भापको काम्य-परीचाका कोई अधिकार ही नहीं।'

उपर्युक्त सब सवाल एक ही मित्रके नहीं हैं, परन्तु मित्र-मित्र मित्रोंने मित्र-मित्र समयपर जो कुछ कहा है और लिखा है, उसका सार है। यदि ऐसी एक-एक टीकाको लेकर देखें तो सारी-की-सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सन्तोष नहीं है कि इस तरह प्रत्येक ग्रन्थ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। एक चित्रकारने अपने टीकाकारोंको उल्टर देनेके लिये अपने चित्रको प्रदर्शनीमें रक्खा और नीचे इस तरह लिखा— 'हैं कि जिनमें जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हो, वह उस जगह अपनी कजमसे चिह्न कर दे।' परिणाम यह हुआ कि चित्रके संग-प्रत्येक दोष-पूर्ण बताया गये। अगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था। टीकाकारोंने तो वेद, बाह्यबल और सुराजमें भी बहुतेरे दोष बताये हैं, परन्तु उन ग्रन्थोंके मक उतमें दोषोंका अनुभव नहीं करते। प्रत्येक ग्रन्थकी परीचा पूरे ग्रन्थके प्रत्येक दोषके लिये ही की जानी चाहिये। यह वास्तव परीचा है। अधिकांश पाठकोंपर ग्रन्थविरोधका क्या असर पड़ा है वह देखकर ही ग्रन्थकी आन्तरिक परीचा की जानी चाहिए। किरी भी साधनसे क्यों न देखा जाय रामायणकी प्रशंसा ही सिद्ध होती है। ग्रन्थको सर्वोत्तम करनेका उपाय नहीं कराया कि उसमें एक भी दोष नहीं है। परन्तु रामचरित-मानसके लिये यह दावा अवरय है कि जिनमें भापों मनुष्योंको शान्ति मिळी है। जो लोग रामचरित-मित्रके लिये हैं और रामके साम्यक लये हैं और भाप भी

जा रहे हैं। मानसका प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। मानस धनुभवजन्य ज्ञानका भयदार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिये रामचरितमानसका सहारा लेते हैं, इससे वह सिद्ध नहीं हो सकता कि वे लोग रामचरितमानसमेंसे अपने-अपने पापका ही पाठ सीखते हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि गुजरातीदासजीने जिन्योंपर अनिष्टकामे भ्रम्याय किया है। इसमें और ऐसी ही अन्य बातोंमें गुजरातीदासजी अपने युगकी प्रचलित मान्यताओंसे परे नहीं जा सके थे अध्याय गुजरातीदासजी सुधारक नहीं, बरिक्त भक्त-शिरोमणि थे। इसमें हम गुजरातीदासजीके दोषोंका नहीं परन्तु उनके युगके दोषोंका दर्शन अवश्य करते हैं।

ऐसी दृष्टांमें सुधारक क्या करें ? क्या हमको गुजरातीदासजी-से कुछ सहायता नहीं मित्र सकती ? अवश्य मित्र सकती है। रामचरितमानसमें श्री-जातिकी काफी निन्दा मिळती है, परन्तु उसी ग्रन्थद्वारा सीताजीके पुनीत चरित्रका भी हमें परिचय मिळता है। बिना सीताके राम कैसे ? रामका बरा सीताजीपर निर्भर है। सीताजी-का रामजीपर नहीं। कौरव्य, मुमित्रा आदि भी मानसके पूजनीय पात्र हैं। शबरी और बह्मपाकी भक्ति भाव भी सराहनीय है। रावण राचस या, अगर मन्दोदरी लयी थी। ऐसे अनेक दृष्टान्त इस पवित्र भयदारमेंसे मित्र सकते हैं। मेरे विचारमें इन सब दृष्टान्तोंसे नहीं मित्र होता है कि गुजरातीदासजी शान्तपूर्वक श्री-जातिके निन्दक नहीं थे। शान्तपूर्वक तो वह श्री-जातिके पुत्रा ही थे। वह तो जिन्योंकी बात हुई। परन्तु बाब्रि-वधके बारेमें भी दो मतोंको गुंजाहूँ है। विभीषणमें तो मैं कोई दोष नहीं पाता हूँ। विभीषणमें अपने भाईके साथ सत्पापड किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमें यह मिलता है कि करने देना या अपने शत्रुके दोषोंके प्रति सदा अनुमति रखना या उन्हें क्षमा देनामकिके नामको उचारा है, हमने विपरीत देते दोषोंका विरोध करना नहीं देनामकिक है। विभीषणके रामजीकी महाभयना करने देना अन्धा ही किया था। सीताजीके प्रति रामचन्द्रके लगी है विरक्ति नहीं थी, इसमें शक्य नहीं और रति-वेमका इष्टपुत्र था।

त्रिगके शिखमें हृग रामचन्द्रकी शंकाएँ शुद्ध भावमें  
 बरें, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके  
 धर्मको मन्त्रवन् स्वीकार न करें। त्रिग विरायमें हृत्प शंकिन  
 हो, उते धोष हैं। राम, अहिंसात्मिकी विरोधिनी किसी  
 वस्तुको स्वीकार न करें। रामचन्द्रने तुज किया था, हृत्पत्रिये  
 हम भी वृत्त करें, यह तोचना धीया पाठ पढ़ना है।  
 यह विरायण रामकर कि रामजी कभी वृत्त कर ही नहीं  
 राघने, हम पूर्ण गुरुपका ही ध्यान करें और पूर्ण प्रपका

ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्पारना रि टोपन  
 अिंराराग' श्यापानुसार सब प्रप्य होनपूर्व  
 ममरुकर ईवगन् शोररुनी नीरको निवाज को  
 गुण-रुपी धीर ही प्रदृष्ट करें। हम तार  
 सगूर्णकी प्रतिष्ठा करना, गुणशोरका प्रपकरव  
 हमेगा व्यक्तिमें धीर सुगोंकी परिस्तिपर निर्म  
 शानग्न सगूर्णता केवज ईरवमें ही है और  
 अकणनीय है। (नवनीरनसे)

## केवटका सर्वांगपूर्ण प्रेम

(केवट—५० श्रीरामचन्द्रकी दिव्ये)



राम पुनीत श्रीरामायणमें भगवराज  
 केवटका प्रेम-प्रसंग एक अत्यंतिक घटना  
 है। यह प्रसंग ज्ञान एवं भक्ति-रस-सुधासे  
 पूर्ण है। भक्तिमें आकर्षित होकर ही  
 अर्थादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रने  
 यह चरित्र प्रदर्शित किया, अन्यथा श्रीभगवान्को तो  
 नौकापर चढ़नेकी आवश्यकता भी नहीं थी, परम भगवत्प्रक  
 श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कथितावर्णोंमें तो केवटके  
 मुखसे ही यह बात स्पष्ट करा दी है कि यदि आपको पार  
 जाना अभीष्ट है और चरण पुजाना अभीष्ट नहीं है तो  
 'यदि पाठ ते धीरिक दूर अहे कटिलो जळ बाह देखाइरो ज'  
 अर्थात् 'नौकाके पीछे आप क्यों पड़ रहे हैं, इस घाटके  
 समीप ही भगवती भागीरथी केवल कटिपर्यन्त ही हैं, यह  
 केवल कहनेकी ही बात नहीं है, मैं स्वयं आपके धागे  
 धागे चलकर पता दूँगा' इत्यादि। किन्तु श्रीभगवान्को  
 तो भक्तको विमल भक्तिके रससे वृत्त करना था, अतएव यह  
 प्रसंग उसके धनोखे भावोंको प्रदर्शित करार प्रकट किया है।

कुछ सज्जनोंकी यह धारणा है कि निषादराज  
 और श्रीचरणप्राप्त पान करनेवाला केवट दोनों एक ही  
 व्यक्ति हैं। यह धारणा असंगत-सी प्रतीत होती है।

केवट-प्रसंग तो श्रीभगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त  
 होनेके पश्चात्—

‘वरवस राम सुमन्त पठामे। सुरसरि तीर आपु कलि कने  
 मांगी मान न केवट जाना।’

इत्यादि स्थानसे आरम्भ होता है और—

बहुत कीन्ह प्रमु लखन सिच, नदि क्यु केवट देर।

निदा कीन्ह करुनापतन, मगति विमल बर देर॥

—पर समाप्त होता है। 'विदा' शब्द भी इस बात  
 व्यञ्जित उदाहरण है। और निषादराजका प्रसंग—

‘यदि सुधि गुह निषाद जन पार’—से आरम्भ होकर

तन रघुवीर अनेक निधि सखहि सिखावन दीन्ह।

राम रजायसु सीस धरि गवन मवन तिन्ह कीन्ह॥

—पर समाप्त होता है। पुनः दूसरे स्थानपर श्री—

उत्तरी ठाढ़ मये सुरसरि रेता। सीम राम गुह लखन सेना॥

केवट उत्तरी दण्डवत कीन्ह।

इत्यादिसे भी यही प्रमाणित होता है कि केवट और  
 गुह दो व्यक्ति हैं। कारण कि पाँच व्यक्ति नौकासे उतरे  
 हैं—सीता, राम, गुह, लक्ष्मण और केवट। केवट तो गुह  
 (निषादराज) की प्रजाभाय है। ❀

\* अन्धारमरामायणमें यह प्रसंग बालकाण्डमें अहल्योद्धारके बाद ही जनकपुरके रास्तेमें गंगापार होनेके समय आता है।  
 अहल्याका पाषाणसे ऋषिपत्नी हो जानेके कारण आसपास बड़ा हो-बड़ा मच गया था, गाँवोंके रहनेवाले सरल लोगोंने बड़ी हता  
 किया था कि रामके चरणा-रजसे पर्यर ही ली बन जाता है, अतएव वहाँ केवट कहता है—

क्षालयामि तव पादपंकजं नाथ ! दासद्वन्द्वेः किमन्तरम् । मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रचीरती ॥  
 पादाम्बु बँते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि । नोचिषरी सपुत्रती मलेन स्वाचोदिभो ! विदि कुडम्बरानि ॥



### श्रीराम और केशव ।

श्रीराम चन्द्र ज्योति भंगुणा । राम स्वयं परमारत लणा ॥  
वशि मुसत मुर वकल मिताहा । एहि सम पुस्तक केशव राम ॥





उक्त भक्तिका पर्यायवाची शब्द 'प्रेम' है, अतएव इस प्रसंगमें भक्तिके स्थानमें प्रेमका ही विवेचन किया जाना उचित होगा। प्रेममें अतुल, अकथ, अलौकिक शक्ति है इसी कारणसे यह प्रसंग अलौकिक है। सच्चिदानन्दधन मनु प्रेमके वशीभूत होकर ही नाना अवतारोंद्वारा समित विचित्र जीलाएँ करते हैं। कभी पुत्र और कभी भगवाता बनकर सेवा-शुभ्रपा करना, कभी अपने प्रेमियोंके पथ होकर नृत्य करना, कभी विनय-निहोरा कर हा हा बारा, कभी भीलनोंके जूँटे फल खाना, कभी खगका भाद करना, कभी मानवतीके मनानेको परम सुन्दर वपु धारण करना, कभी उल्लसमें बँध जाना, कभी रुदन डानना, कभी हथका पहिया खेकर दौड़ना और कभी अपनेको परम इष्टतम मानना इत्यादि सभी जीलाएँ भगवान् अपने प्रेमी बनके प्रेमवश होकर ही करते हैं। वेद-शास्त्र-पुराण सभी सगुण ग्रन्थके प्रेमकी गाथा गाते हैं। ठीक ही कहा है—

बाकी मायावस विरंचि सिव नाचत पार न पायो ।  
करतल ताल भजाइ ग्वाल-जुवतिन तेदि नाच नचायो ॥

भगवान् नारदजीने भी प्रेमके विषयमें यही कहा है कि—'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' ( ना० भ० प० ५१ )

देखा जाय तो समस्त नारदभक्तिसूत्र 'प्रेम' शब्दपर ही एक पूरा निबन्ध है। ऐसे अनिर्वचनीय शब्दपर तो ग्रन्थके अन्त्य भी अर्पण हैं, उस प्रेमकी महिमा कहकर कौन पार पा सकता है। प्रेमका स्वरूप, प्रेमकी शक्ति, प्रेमकी प्रधानता, प्रेमका साधन, प्रेमकी वरदा इत्यादि अनेक विषय ही गहन और खिलने योग्य हैं। किन्तु इन सबपर यहाँ थोड़ा थोड़ा चिन्ता भी कठिन है तथापि केवटके प्रेमको उपयुक्त विवरणोंमेंसे एक-आधपर घटाना असंगत नहीं होगा।

'केवटका प्रेम' ज्ञानमय है, केवट और ज्ञानके सादरपका वेषर करनेसे इसप्रकार गुजना-सोती है कि ज्ञानका रूप, सबसागरसे पार तथा अल-श्रीशकी एकरूपता होना है। केवटका यह रूपन कहा जाता है—  
मुप केवट सबसागर केरे। नदी नलके हम बहुतेरे ॥  
तुरती हमती कल उतराईनापित नापितकी बनवारी ॥

इन शब्दोंमें सरण-तारण और सादरपताका भाव भरा है, केवट शब्द ही ज्ञानका बोधक है—केवटके प्रेममें अरुंभता, निर्भयता, उदासीनता, दौडता, निहुरता आदि गुण अतुलम सादरपताके घोटक हैं। सुतरां केवटका प्रेम ज्ञानमय है जो भक्तिका प्रधान कायद है।

केवटका-सा सुहावना मंगलमय सुभवन्तर भी संसारके हृदिहासमें होने गिने व्यक्तियोंको ही नलीब हुआ है। एक दिन महाराज बलिको मिजा था, जब सोनेकी मारीमें बल भरके उन्हींने श्रीभगवान्के पद-पङ्कज पहारे थे। फिर भगवान् कमलयोनि विधाताने इन्हीं चरणोंका प्रपाजन करके छोड़-हितार्थ उस पावन चरणामृतको निज कमपदसुमें भर बिपाया, तदनन्तर योगिराज बिदेहको भी वह दिन दितापी दिया था, अब उन्हींने—

बहुरि राम पद पंजज घोये । जे हर-ददय-कमलमई गोये ॥

इन सब भावनिधि महापुरुषोंने प्रभु-पद-सरसीयह बोधे अवरय थे परन्तु इस केवटकी तो धोचनि कुछ और ही है। अतक चरण धोनेवाले ही चरण पुजानेवालेसे चरण धोनेका निहोरा करते धाये हैं। किन्तु यहाँ तो चरण पुजाने-वाले-ही धोनेवालेका विनय-निहोरा कर रहे हैं। तप्य ही प्रेम या भक्ति क्रियाताप्य नहीं है, श्रीराम-शुभागाप्य हैं।

प्रेमकी दशाएँ अष्टमात्रमें भावानुह्वन, धमिन करकर प्रधानतः बारह बतलाई हैं। अष्टशिरोमयि महामा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने केवट-प्रसंगमें प्रेमकी बारहों दशाएँ बर्णन की हैं। सबसे पहली प्रेमकी 'उत्त' दशा कही गयी है—

सोह बपानुकेवरदि निहोरा। बेदि विच जग निहुं पलने सोरा ॥

यहाँ केवटके प्रेमकी 'उत्त' दशाका बर्णन है। 'उत्त' दशामें साधक जब 'मुप-आम-अवय'-रुच बीज बोता है तब वह साधान् नयनगोचर होकर साधकको दृग्गृह्य करना है। अपने एवं संसारके अदरर केवटने स्वयं भगवान्को यहाँ पा बिपा और देखने ही जगने पहचान बिबा, जिनमे चरण धोनेके सिगमे जगने श्रीभगवान्ने प्रेमविरोध प्रारम्भ किया। प्रेमकी दूसरी 'बन्' दशा है—'बन्' दशा-

बाबलीकीपदमावसमें 'अरण-पसाहन' प्रसंग नहीं है, परन्तु निबन्धका मुदकी आरामने अरिब (वेदः) जंग श्रेका मने है। यहाँ श्रीधमके पार उतराये हैं। निबन्धका यहाँ यह बजा है। इनमे भी यहाँ गिज होना है कि मुप और केवट तो अल्प्य है।  
‡ प्रेमके सम्बन्धमें विवेक जानना हो तो श्रीधमिने 'विनयो' कावक अथ केवटकर अरार रवि—अप्यरर

का अर्थ है जो अर्थात् जो वस्तु धान्दित है उसीकी चर्चा करना, उसीकी प्रशंसा उद्योग करना 'यत्' दया है ।

जो प्रभु अवसि पार गा चहहू । तो पद-पद्म पक्षारन कहहू ॥

इसमें 'यत्' धाचक 'जो' शब्द है, उसका निर्वाह यहाँ कैसा सुन्दर किया गया है अर्थात् जो शब्दमें प्रेमकी 'यत्' दशा समायी हुई है । तीसरी 'लजित' दशा-मनको प्रसन्न करनेवाली दशा है, जिससे गुरु-जगदिसे लज्जा भय आदि दूर होकर प्रीतममें परायणता होती है । पीछे सुधि होनेपर लज्जा और भय प्राप्त होता है ।

जासु नाम सुमिरत इकनारा । उतरहि नर भव-सिन्धु अपारा ॥

तथा—

पद-पद्म घोड़ जड़ाइ नारन नाथ उतराई चहाँ,  
मोहि राम राउर आनि दसरथ सपथ सब साँची कहाँ ।  
बर तीर मारहि लषन पै जनलगिन पाँव पक्षारिहाँ,  
तबलगिन तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतरिहाँ ॥

इन शब्दोंमें प्रेमकी कितनी मनोहर दशा दर्शित की गयी है, यहाँ केवट अपने व्यवसायकी बराबरीका दावा रखता हुआ बराबरका व्यवहार निभाना चाहता है । श्रीलक्ष्मणजीका भय भी मानता है, और अपनेको हृदय एवं सत्यप्रतिष्ठ भी सिद्ध करता है । चौथी दशा 'दलित' है—यह दशा विकलतासूचक है । यथा—

'अमित काल में कीन्ह मजूरी ।'

तथा—

'मिटे दोष हुसदारिद पावा ।'

यहाँ केवट अपनी विकलित दशाको प्रभुके सर्गमूल वर्णन करता है । पाँचवीं 'निजित' दशा है, अर्थात् प्रीतमके संपोगका परमसुख 'निजित' दशा है ।

अस्ति आनन्द उमगि अनुरागा । चरन-सरोज पक्षान हागा ॥

चरण-कमलोंके पक्षारनेके अनुरागमें केवटको गोस्वामीजीके चित्रना ध्यानदिन विप्रण किया है । यह उपाहरण दुर्दी 'गजित' दशामें भी घटित होता है जिसमें कि भक्त अपनेको मूढ-सा जानता है । सातवीं 'कजित' दशा है जिसको मातृकर भक्त प्रेममें मग्न हो अपनी विस्तारकर सम्मप हो जाता है ।

केवट कृपालु देउ उतराई । केवट चरन गेटउ अदुराई ॥

यहाँ तो बराबरीका दावा था कि हम दोनों नाविक

हैं, व्यवहार शुद्ध रहना चाहिये, यहाँ उतराई खेनेके ही अकुलाकर चरण गढ़ लेता है । यह प्रेमकी 'कजित' ही चित्र है । आठवीं 'विलित' दशा है जिसमें रगड़से कमी-कमी भक्तका हृदय विलिप्त जाता है । यथा—

'कहेउ तुमार मर्म में जाना ।'

तथा—

'सुनि केवटके बैन प्रेम लंपटे अटपटे ।'

तथा—

फिरती नार जो कलु मोहि देवा । सो प्रसद में तिर परि लेवा ।

आदि वाक्य केवटके प्रेमकी विलित-दशा सूचित करते हैं । सब कुछ पा लिया किन्तु तृप्त नहीं हुआ । नौठवीं बार आकर जब दोगे तब सिरपर धारक प्रवृत्ति जायगा । इतनेमें तो स्नेहकी वृद्धि हुई है, प्रेमका निष्पन्न जोड़ लिया गया है । भगवान्का प्युक्त केवटके स्नेह-हृदयको छीलता है जिसका कि आश्रय प्रेमी उलट दे देगा । नवीं 'चलित' दशा है, यहाँ चलना पारलौकिक वायु सम्बन्ध रखता है ।

पद पक्षारि जलपान करि आपु सद्धि परिपार ।

पितर पारकर प्रभुहि पुनि मुदित गपउ ठै पार ॥

अर्थात् प्रेमका नाता जोड़कर उसने पुराणों की अपनी परलोक्यात्रा निष्कण्टक कर ली है । दसवीं 'काल' दशा है जिसमें तृप्त होकर प्रेमी प्रियतममें अपना प्रयोग पूर्ण सममलता है और अपने मायाकी सराहना करता है ।

अब कलु नाथ न चाहिये गोरे । दीनदमात अनुग्रह होरे ॥

भाव स्पष्ट है । ग्यारहवीं 'विदित' दशा है जिसमें भगवान्को प्राप्त करके भी मान न त्यागनेपर बसके विशेषमें ही विशेष हरण हो जानेसे पञ्चतापा होता है । यथा—

पद नस निरसिदेव सारि हरपी । मुनि प्रभु बचन में हरपी बरपी ।

भगवान्को केवटके प्रेममें मग्न देखकर श्रीगोपालजीने पञ्चतापा हुआ । बारहवीं 'संतत' दशा है जिसमें तृप्त होकर प्रेमी प्रेमरसमें सम्पन्न तृप्त होकर मग्न रहता है । यथा—'नाथ आज हम बाहर न पारा ०' इत्यादि ।

केवटके अमित भाव और हृत्पुत्री कलुपुत्र रूप दोनोंकी अदिमा ही अक्षयनीय है । कल्प देवा ! कि अपार मायाका पार विधि-हरि हारने भी न पारा, हर्ष करमा हृत्पुत्री ही जिनमें थाया ।

## मानस और व्याकरण

( लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी )



छ जोगोंको प्रायः यह कहते सुना है कि कविताकार-कलाधर कविवर गोस्वामी तुलसीदासजीके 'रामचरित-मानस'में व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगोंकी प्रचुरता है। उसमें लिङ्ग-वचनके व्यभिचारके अतिरिक्त 'ने' विभक्तिका

वात नहीं है। यहाँ 'ने' साफ मालूम होता है। इसका अन्वय होगा—

मैं (ने) तुम्हारी चतुराई जानी।

इसी तरह—

'कही जनक जस अनुचित बानी'

—को समझना चाहिये। कोई कहे कि ऐसा घुषापर-न्यायसे हो गया है तो और भी उदाहरण खोजिये। यथा:—

सत्संगत महिमा नहीं मोई।

निज निज मुखन कही निज टोनी।

मले पोष सब निधि उपजाये।

राम सुमान मुकुट कर लीनहा। बदन जितेकि मुकुट सम कीनहा ॥

कपट लुरी उर पाहन टेरें।

कारन कवन कुटिलपन टाना।

शहे घरम-वित कोटि कहेता।

भरन काल निधि मति हर लीनही।

परसुराम पितु आशा रासी। मारी मातु लोक सब लक्ष्मी ॥

प्रभु करि जपा पावरी दीनहीं। सादर मरत सीस परि लीनहीं ॥

रक्तिमनरू यह मरम न जाना। जो कतु खरित रथा मगदना ॥

सो गोसाँई निधि मति जो टकी। सके कोटारि टंक जो टकी ॥

इत्यादि इसके प्रचुर प्रमाण हैं। विलास-प्रयोगे केवल प्रयोप्या और बाबकावसे ही कुछ जुने हुए उदाहरण दिये हैं। शेष पाँच कावट धरती सुप भी नहीं हैं। जिन्हें विरवाय न हो वह एक बार मामरामावयव प्यायसे वद धारें तो धार ही विरवाय हो जायगा।

अब लिङ्ग-वचनका प्रयोग देखिये। वह भी बावब मोलें पाव इली ठीक ही मिलेगा।

'मरी मति नीच उँकि रजि काली।

ऊँकी धरणी रजि, क्या कपटा प्रयोग है। और मुँकि—

रहरि बर अलस तर पूरी। अब कतु बरब लीन करि दूरी ॥

लनब देरि कीं बर दमनी।

बोर करि जिनै जट न रेनी।

बड़ी बरन अनु केच किलक।

विरिभार पद-पदर इष्टिगोचर होता है। गोस्वामीजीने मूलर भी कहीं 'ने' विभक्तिका प्रयोग नहीं किया है। पर अर्थमें ऐसी बात नहीं है। जिन्हें हिन्दी व्याकरणका ठनिक भी ज्ञान है, या जो उसकी बारीकियाँ समझते हैं वे ऐसा कभी नहीं कह सकते हैं। हाँ, केवल पाश्चिमिका पाठ करनेवाले जो चाहें सो कह सकते हैं। मुझे तो 'रामचरित-मानस' में व्याकरणानुसृत प्रयोग ही अधिकतासे मिले हैं। इनमें न तो लिङ्ग-वचनका व्यभिचार ही हुआ है और न 'ने' विभक्तिका बहिष्कार ही। कहीं-कहीं एकाध स्थानमें शिथिल प्रयोग अक्षर्य है, पर उसे गोस्वामीजीके मत्थे मङ्गना कदापि रचित नहीं, क्योंकि रामचरितमानसकी बड़ी धीछालेदर हुई है। खेसकों और प्रकाशकोंकी कृपासे ही गोस्वामीजी-पर ऐसा आरोप होता है। जिन जोगोंको गोस्वामीजी पर व्याकरण न जाननेका सन्देह है उनका सन्देह दूर करनेके लिये मैं यथाराजिक प्रयत्न करता हूँ।

सबसे पहले मैं यही दिखानेका प्रयत्न करूँगा कि गोस्वामीजीने 'ने' विभक्तिका प्रयोग किया है और अक्षर्य किया है। जिनका यह अनुमान है कि गोस्वामीजीके समयमें हिन्दी भाषामें 'ने' का व्यवहार नहीं था, वह नीचे जिली चौपाइयाँ बरा प्यायसे पढ़ें और विचारें। बस, यही मेरी मार्शना है। कृपया देखिये—

'चतुराई तुम्हारी मैं जानी'

इसमें 'ने' का प्रयोग है या नहीं? यदि कोई कहे 'नहीं' तो मैं उसे दयाका पात्र समझूँगा, क्योंकि इसमें 'ने' का प्रयोग है, पर कटा है। कवियोंको ऐसा करनेका पूर्ण अधिकार है। यदि गोस्वामीजी लिखते—

चतुराई तुम्हारी मैं जाना।

—तो अक्षर्य ही 'ने' का अभाव रहता, पर यहाँ यह

सीम मातु क्व विधि-नुमि नौंठी ।

बरसा विगत सरद रितु आरं ।

भूमि परत मा बाबर पानी । त्रिमि जीवहिं माया लपटानी ॥

इनमें आस पूती, भीम करि दूनी, चूक हंमारी, चोर नारि रोई, चन्नी चंग, विधि-नुधि चाँकी, सरद रितु आरं, मा बाबर पानी और माया लपटानी, ये प्रयोग जिह्मकी शुद्धि हंकेकी शोड बटा रहे हैं । अथ वचनकी शुद्धि देखिये—

तेपिनु मातु क्वहु सासि कैते । त्रिन पडेय बन नलक पेते ॥

माता-पिताके लिये कैते और बालक (राम + लक्ष्मण) के लिये ऐसे, कैते व्याकरणसम्मत प्रयोग हैं। अथवा और भी सुनिये—

सस मूल सव सुशत सुहाये ।

और

जानि सरद रितु संजन आये ॥

‘सव सुकृत सुहाये’ और ‘संजन आये’ देखकर भी क्या कोई गोस्वामीजीपर व्याकरण न ध्याननेका दोष लगा सकता है ?

कुछ लोगोंका कहना है कि गोस्वामीजीने ‘का, की, के’ का व्यवहार न कर केवल ‘कर’ से ही काम चलाया है। पर यह बात भी असत्ये खाली नहीं है। रामायणमें दोनों प्रकारके प्रयोग मिलते हैं, यथा—

मोह-मगन मति नहिं निदेहकी । महिमासि व रघुवर सनेहकी ॥

सुर नर मुनि सबकी यह रीती ।

मूल पर लकुटकी नाई ।

इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। हाँ, एक विन्तनीय प्रयोग भी मिला है, पर मैं उसे गोस्वामीजीके मत्थे नहीं मँदना चाहता, क्योंकि यह निश्चय ही लेखकोंकी भूल है। यथा—

यहाँ ‘गई बिलखाता’ न होकर बिलखाती होना चाहिये था। इसी तरह एक स्थानपर और सन्देह हुआ था, पर अब दूर हो गया। क्या कोई सज्जन ‘बिलखाता’ का भी सन्देह दूर कर देंगे ?

मित्रपर पं० अग्निवकाप्रसादकी वाजपेयी ‘स्वतन्त्र’ संग्रहांक से प्राप्यंता है कि वह अपने सूत्रोंके द्वारा इसका निर्याय कृपाकर कर दें। हाँ वह सन्देहवाली औराई यह है—

मर्म बचन सीता जब बोली। हरिप्रेरित लक्ष्मिन मन बोली ॥

पर एक दूसरी रामायणमें नीचे लिखा पाठ सन्देह दूर हो गया।

मर्म बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लक्ष्मिन मति बो

लेखकोंसे ‘मति’ का मन हो जाना अत्यन्त मतिका मन होनेसे ‘बोली’ का बोला और ‘बो’ ‘बोला’ हो जाना भी स्वामाबिक ही है।

आशा है, गोस्वामीजीके व्याकरण-दानपर करनेवाले सज्जन इतनेहीसे सन्तुष्ट हो जायेंगे और सन्देह न करेंगे।

## रामायण-सम्बन्धी यत् किञ्चित्

(लेखक—पं० श्रीज्ञानपरमजी वर्मा)

(१) प्राकथन



नू-जातिके परमाप्य नवीं पुरपोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र पुण्य-चरित विप्रित कर रामायण रूपमें महर्षिं वाचमीकि अथर्व लिये शिष्याका अथर्व्य एवं विदु मयदार-शुद्ध गये हैं। रामायण केवल राम-रावण-युद्धकी मातृका का शुद्ध इतिहास नहीं है, अथर्व

यह सर्वोच्च मानव-समाजका कर्तव्य-शास्त्र है। इसके अर्थमें यों कह सकते हैं कि रामायण भारतवर्षकी धर्मशास्त्र शास्त्र जातिका सर्वस्व है। रामायणका विशेष माहात्म्य ब्रह्मण्य समझानेकी आवश्यकता नहीं। कोटि-कोटि अथर्व हिन्दुओंके हृदय-यन्त्रपर अतिप्राचीन कालसे वाचमीकि रामायणकी महिमा अक्षित है। यहाँ रामायणका राम-पाठन और अथर्व्य पुण्यप्रद एवं अभीष्ट-फलदायक समझा जाता है। रामायणके प्रति हिन्दुओंकी जो बड़ बड़ श्रद्धा है, वह धर्म-सुदृष्टिसे है, कोरे इतिहास या कल्पना दृष्टिसे ही नहीं। रामायणकी महिमाका शोचन करने लिये निम्नाक्षित कुछ वचन ही पर्याप्त हैं—

वाल्मीकिगिरिसंभूता राम-सागरप्रतिनी ।  
पुनानु मुनने पुण्या रामायणमहामनी ॥

× × ×

वेदः प्राचेतसादासीत्साधुद्रामायणालम्बना ॥

×	×	×
रामायणमादिकान्ये	सर्ववेदार्यसंमतम् ।	
सर्वपापहरं पुण्यं	सर्वदुःखनिवर्हणम् ॥	
समस्तपुण्यफलदं	सर्वयशफलप्रदम् ।	

×	×	×
पैकैकमधुरं पुंसां	महापातकनाशनम् ॥	
×	×	×

जो महापुरुष रामायणकी रचनाकर धन्य हो गये हैं, निरालम्बे वह सुनिश्चये वाचमीकि हमारे प्रथम्य एवं ब्राह्मणान्वित भक्तिके पात्र हैं ।

### ( २ ) महर्षि वाल्मीकि

वाचमीकि धर्ति प्राचीन महर्षि हैं । प्रवेता-सनय होनेसे उनका नामान्तर प्राचेत भी है । वह सपोनिष्ठ त्रिकालजन्म-प्रेष्ठ महापुरुष थे । भरद्वाज-जैसे प्रख्यात ऋषि उनके शिष्य सयुवाय-सुक्त थे । जन्म-राज्य भगवान् रामचन्द्रका समस्त धरित प्रयत्न धर्म-समन्वित विचित्र पदोंमें उन्होंने वर्णन किया है । धारममें उन्होंने पद्मराजसर्गात्मक दुःख-वर्षोंकी रचना की । सप्तम उत्तर काण्ड महर्षिने पीठे बनाया ।

त्रिप समय लोकापवाद-भयसे भगवान् धीरामने सगर्भ जीताका त्याग किया उस समय रामाज्ञासुखर जन्ममयजीने की शिरोमणि सीताको गङ्गाके पर-पारवर्ती तमसा-दी-तीरतय युवकको महर्षि वाल्मीकिसे स्वर्ग-पुण्य प्राप्त करने की कोशा था । वह वहीं महर्षिकी रक्षामें रही । उसी समयमें जन्मग्रहणपूर्वक खाजित-पालित होकर सुस्वर-संग्रह परम मेधावी कुश और जयने महर्षि वाल्मीकि-जन्म रामायण-गानकी शिष्या ज्ञान की थी । वाल्मीकिसे काव्यमें ही शत्रुघ्नको रामधरित श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ।

धार्मिक धन्वेणकारियोंका मत है कि Tons नामक एक नदी जो बुन्देखलरकसे होकर प्रयागसे होती है, उसी नदीमें मिजती है, वही तमसा नदी है और इसी नदीमें स्नानके पास वाल्मीकिजीका तपोवन था ।

महर्षि वाल्मीकिसे सम्बन्धमें यह प्रवाद भी प्रचलित है कि उनका पूर्ण नाम रक्षाकर और दस्यु-वृत्ति थी । राम-

का उलटा भूलसे 'मरा' 'मरा' जपनेके प्रभावसे उन्होंने महर्षि-पद पाया । किन्तु यह बहुत पीछेकी कल्पना मालूम होती है । इसका कोई प्राचीन प्रामाणिक आधार भी नहीं है ।

### ( ३ ) रामायणकी शिक्षा

रामायणके साथ संसारके किसी ग्रन्थकी तुलना नहीं हो सकती । इसका कारण यह है कि महर्षि वाल्मीकिने अपने हृदयके सत्यको रामायणके प्रत्येक श्लोकके साथ विजडित कर दिया है । इस विशेषतासे रामायणका महत्त्व बहुत बढ़ गया है । वाल्मीकि-रामायणपर मनोनिवेशपूर्वक विचार कीजिये । यह विविध रस समन्वित काव्य है, सत्य-घटनावलम्बित इतिहास है और है कर्तव्यविधायक सोदाहरण सृष्टि । रामायणके द्वारा ही हमारे समस्त मर्त्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका आदर्श उपस्थित होता है, राघवराज रावणकी दुर्दान्त प्रवृत्ति और कार्यप्रयाजीका परिचय मिळता है । राम और रावणकी कार्य-व्यवहारीका परस्पर मित्रान कर हम भिन्न-भिन्न परिणामोंकी शिक्षा रामायणसे पा सकते हैं । पिताके प्रति पुत्रका क्या कर्तव्य है, भाई भाईका परस्पर क्या सम्बन्ध है, क्या व्यवहार है, प्रतिज्ञाका पाबन कैसे करना चाहिये, प्रजाके प्रति राजाका क्या धर्म है, एक-पत्नीव्रतकी क्या महिमा है, लोकापवादसे किसप्रकार बचना चाहिये, धर्म-विरोधियोंका शमन किस तत्परतासे किया जाय इत्यादि बातें हमें भगवान् रामके आदर्शसे मालूम होती हैं । इसके अतिरिक्त रामायण-वर्णित दृश्य और कौतुक्या प्रकृतिका अत्यन्त-स्नेह, क्लेशमयि मन्यराकी परोक्ष-असहिष्णुता, सीताका पातिव्रत, जन्ममयकी निःस्वार्थ सेवा, भरतका आत्-भक्ति-प्रधान स्वार्थ-त्याग, सुग्रीवकी मैत्री, हनुमान्की पृथक् प्रसुभक्ति और विभीषणकी शरणागतिके उदाहरण मानव-समाजके जिये शिक्षाके उत्कृष्ट साधन हैं । रामायणसे जिन आदर्शोंकी शिक्षा मिळती है उन आदर्शोंमेंसे यदि कोई एक भी आदर्शका पाबन कर सके तो जगके जीवनके धन्य होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं । वह अपने जिये, अपनी जातिके जिये—सभीके जिये उपयोगी हो सकता है । वह स्वयं आदर्श बनकर अपने समाजको आदर्श बना सकता है । जननी और जन्मभूमिको स्वर्गमें भी धार्मिक परिधमनी बनाने के लिये—'जननी जन्मभूमिश्च भद्रं रक्षति गरीयसी'—यह महात्मन महर्षि वाल्मीकिसे हृदयकी ही मजुर प्यजि है ।

## (४) रामायणमें वर्णाश्रम-धर्म

भगवान् श्रीरामचन्द्रके रामयमें वर्णाश्रम-धर्मपूर्णरूपसे प्रतिष्ठित था। माहात्म्य, अग्निप, वैश्य और शूद्र—चारोंवर्ष अपने-अपने धर्मके रङ्ग अनुयायी थे। यथा—

धर्मं ब्रह्ममुक्षं चासीद्देवमाः धर्ममनुव्रताः ।

शूद्राः स्वधर्मनिरतारक्षीन्वर्णानुपचारिणः ॥

( बा०रा०१।१।१२ )

अपने धर्मसे विपरीत शूद्र शम्भूक उपरया करने अग्रा था, उसका श्रीरामचन्द्रजीको बध करना पड़ा। यही नहीं, माहात्म्य अग्रा शूद्रको मन्त्र दान करनेपर पतित हो आते थे। सुन्दरकाण्डके ८ वें सर्गके २ वें श्लोकमें इसका उल्लेख है। माहात्म्योंके लिये धान और भासनादिकी स्वतन्त्र व्यवस्था थी।

## (५) रामायणकी विवाह-विधि

रामायणमें स्वयंवरका उल्लेख होनेपर भी कन्याको पति स्वयं वरण करनेका अधिकार नहीं था। वे स्वेच्छा-चारिणी नहीं थीं। वीर्यशूल्का सीताजीके स्वयंवरका आयोजन भी सीताजीने स्वयं नहीं, किन्तु राजा जनकने अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये किया था। जब श्रीरामचन्द्रका प्रबल पौत्र्य उन्होंने देख लिया—उनको और उनके भाइयोंको उपयुक्त पात्र समझ लिया—तब राजा दशरथको दूतद्वारा सन्देश भेजकर बुलाया। राजा दशरथ भरत-शत्रुघ्नको लेकर वसिष्ठादि सहित जनकपुर आये। वहाँ धर-पशुकी ओरसे इक्ष्वाकु-कुल-पुरोहित भगवान् वसिष्ठने वंशावली सुनायी और बभ्रु-पशुका वंश कीर्तन स्वयं राजा जनकने किया। इसके पश्चात् जनक दशरथको गोदान एवं पितृकार्य ( नान्दीमुख आदि ) करनेके लिये कहते हैं। यह कृत्य विवाहसे पहले दिन सम्पन्न हुए। दूसरे दिन समस्त कर्त्तव्यकर्म समाधानपूर्वक राजा दशरथ ऋषियोंको भ्रमणी बनाकर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नसहित राजा जनकके द्वारस्थ हुए। उसी समय वसिष्ठजीने धारो बढ़कर जनकको विवाहकी तैयारी करनेके साथ-साथ दशरथादिको यज्ञागारमें आनेकी अनुमति देनेके लिये कहा। जनक पहलेसे ही कन्याओं सहित तैयार बैठे थे। ऋषियों और पुत्रों सहित राजा दशरथके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचनेपर राजा जनकने वसिष्ठजीसे कहा—'आप ऋषियों सहित

लोकानि रामका विवाह-कार्य कराए। इससे विधामित्र और शतानन्द ने मण्डपमें विधिपूर्वक लोकी और—

अथवाह्यार तां देदि गन्धवुष्यैः समन्ततः ।

सुवर्णपरिष्कारिभ्यश्च चित्रद्रुमैश्च सङ्कुरैः ॥

शुद्धरात्र्यैः शरत्तैश्च घूपवात्रैः सवृषकैः ।

शङ्खवात्रैः सुवेः सुग्निः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः ॥

ताम्रचूर्णैश्च पात्रीमिरद्यैतरपि संस्तवैः ।

दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥

अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिवन्मन्त्रपुरस्कृतम् ।

जुहावाग्नौ महत्तेजा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥

ततः सीता समानीय सर्वामरणमूर्तिनाम् ।

समयमग्नेः संस्थाप्य राधवामिसुसे तदा ॥

( बा०रा०१।१।१३ । ११-२ )

इसके बाद राजा जनक की शल्यानन्दवदन की कहते हैं—

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।

प्रतीच्छ भैर्या मद्रै ते पाणि गृहीष्य पाणिना ॥

पतिव्रता महामाया सायेवमुगता सदा ।

यह कहकर राजाने मन्त्रपूत जल ढोच दिया। तरह लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके हाथमें क्रमानुसार दमि मायवही एवं श्रुतिकीर्तिके उद्देशसे जलनिचोपर्वक राजा जनकने सबको धारीबाद दिया—

सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचारितव्रताः ।

पत्निभिः सन्तु ककुत्स्था मामुक्तात्म्य पर्यवः ।

तदनन्तर कन्यागृहीतार्योंने तीनवार अग्निकी प्रार्थना करके राजा तथा ऋषियोंकी परिक्रमा की और यों विवाह विधि समाप्त हुई। यह भी रामायणसे सिद्ध है कि राजा जनकने बड़ा दहेज दिया था। इस विवाह-विधानके कन्याओंका स्वेच्छासम्मत स्वयंवर नहीं कहा जा सकता। रामायणमें यह भी देखा जाता है कि विवाहके सामर्थ्य कन्या स्वतन्त्र—स्वेच्छाचारिणी नहीं, प्रयुक्त करने लिये सर्वथा अधीन थीं। इसका उदाहरण—जहाँ बाबु, पृथ्वीराज कन्याओंसे भाषां बन जानेकी मायंग करता है वहाँ

अपारं उसको बड़ी कड़ी फटकार बताती हैं और बर्ती हैं—

मा मूंस कालो दुर्मोवः पितरं सत्यवादिनम् ।  
अवमन्य स्वधर्मण स्वयंवरमुपासमहे ॥  
पिता दि प्रमुररमाकं दैवतं परमं च सः ।  
वस्य नो दास्यति पिता स नो मर्ता भविष्यति ॥

( ११२।२१-२२ )

हे दुर्जिदि वायु ! धपने सत्यवादी पिताका अपमान करे हम भयनी इच्छासे स्वयंवर करें, ऐसा समय कभी न आवे । हमारे पिता कुशनाभ ही हमारे प्रभु और परम दैवत हैं वे जिस पुरुषके साथ हमारा विवाह करेंगे वही हमारा पति होगा ।

(६) रामायणकी कुछ फुटकर बातें ।

मग्यः शौचीस सहस्र श्लोकाम्बक सप्तकायड रामायणके अर्थव्यतिरिक्तोंकी चर्चा किसी एक खेलेमें नहीं हो सकती । उनका ज्ञान मनोयोगसे पढ़ने या सुननेपर ही हो सकता है । रामायणमें राजा दशरथकी जिस राज्य-व्यवस्थाका वर्णन है, उसके साथ समुच्चयसे समुच्चय राज्यकी व्यवस्थाकी तुलना की जा सकती है । विपुल वैभवशालिनी भयोप्याकी मनोहरवाका चित्र भी रामायणमें अनुपम है । इसके अतिरिक्त रामायणमें पितरोंके तर्पण और आडका भव्तीर्माति प्रतिपादन है । भाषोपवेशन (धरना) का भी उल्लेख मिलता है । भरतजी रामचन्द्रजीको धारण बानेके लिये धरना देकर बैठ गये थे किन्तु रामचन्द्रजीने धरनेको अत्रियोंके लिये अनुचित बताकर उन्हें बना कर दिया था । सीताकी खोजमें आकर अब अष्टादि बानर कुछ पता नहीं चल सका तब उन्होंने भी भाषोपवेशन करनेका विचार किया था । रामायण-कालमें संस्कृत शोधशास्त्री भाषाके रूपमें प्रचलित थी । इत्येक माहवका रूप धारणकर संस्कृत शोधकर ही आश्रयोंको निमित्त करता था । इन्सानजीने भी सर्वप्रथम अशोकवनमें पहुँचकर सीताजीसे किसप्रकार वार्तालाप किया जाय—इस विषयमें बड़ा शोध-विचार किया और अन्तमें संस्कृतमें ही भाषण करना निश्चिन किया । उस समय वेदराजोंके पटन-राजको मुख्यवस्था थी । वेदराज-सम्बन्ध माहव्य विद्वानोंका था समादर था, उन्हें दान-दक्षिणा भी लूच मिलती थी । अक्षिण्य शोध समाजोंमें पहुँचकर विजय पानेकी इच्छासे राजा भी किया करते थे । इवन एवं वनाजुष्टान भी बड़ी

धूम-धामसे विधिपूर्वक सम्पन्न होते थे । देवताओंके उदरपरसे कामना-सिद्धिके लिये चिर्पा पूजा, प्रार्थना और रात्रि-जागरण (रातीजग) भी किया करती थीं ।

## तुलसी-काव्य

( श्लोक-श्रीदामोदरसहायसिद्धजी, पृष्ठ ० टी०, 'कविकिंदर' )

( १ )

जानि परै मारग न छापे कुस कास उहाँ  
इहाँहूँ न सूके फलु मारग सुभाषयो ।  
सर सरितानकी लतानकी चितान उहाँ  
हरे हरे सूके इहाँ अन्ध-जस सायनो ॥  
'दामोदर' दीननको गृहतेँ विहीननको  
एक दुखदार् दूजो दुर्जन दुखायनो ।  
नातो साधुसज्जनके हेतु सध भाँतिन ही  
काव्य तुलसीके कैर्षी सायन सुहायनो ॥

( २ )

रामको जनमसो संजोगिनको आनंद है  
राम बनबाससो थियोगिन सुरापनो ।  
दादुको सोर बहुओर राम जस सोर  
रावनको जुद्ध रैन-रूपसो भयापनो ॥  
मायप भरतको अनूप हरियाली भरो  
खेतनमें नाज राम-राज मन भायनो ।  
पायनो मनोरथ नसायनो हियेको सोक  
काव्य तुलसीके कैर्षी सायन सुहायनो ॥

( ३ )

राम रस अमल अमृतकी पिमदु भूँद  
भक्तसालि ऊपर सदाही बरसायनो ।  
मरुभूमि मालशपे बायें दाहिनेपर सम  
जोग जुक्तिहो हूँ भक्ति-भायन भुलायनो ॥  
राम स्थामताके छाये घन घनघोर रिया—  
'दामोदर' दामिनी दर्भक दमचायनो ।  
हिय तुलसायनो नसायनो हियेको पीर  
काव्य तुलसीके कैर्षी सायन सुहायनो ॥



# रामायणमें आदर्श भ्रातृ-प्रेम

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

अनुज-जानकी सहित प्रभु आप-मान-वर राम ।

मम हिय-नागन इन्द्र इव बसतु सदा निष्काम ॥



गवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादा-रक्षक धात्रतक कोई दूसरा नहीं हुआ, ऐसा कहना शक्य नहीं होगा । श्रीराम साक्षात् परमात्मा थे, वे धर्मकी रक्षा और लोगोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे । उनके आदर्श जीलाचरित्रको पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें महान् पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है । उनका प्रत्येक कार्य परम पवित्र, मनोमुग्धकारी और अनुकरणीय करने योग्य है । ऐसे अनन्त गुणोंके समुद्र श्रीरामके सम्बन्धमें शुरू-सरीखे व्यक्तिका कुछ लिखना एक प्रकारसे लक्ष्मण ही तथापि अपने मनोविनोदके लिये शास्त्रोंके आधारपर थकितचित्त लिखनेका साहस करता हूँ, विज्ञान चमा करूँ । श्रीराम सर्वगुणाधार थे । सत्य, सुहृदता, गम्भीरता, चमा, दया, श्रद्धा, शूरता, धीरता, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरामता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, मर्यादा-संरक्षकता, एकपत्नीमत्, प्रजासङ्गता, सहाय्यता, मातृपितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, सरलता, व्यवहारकुशलता, प्रतिज्ञा-सत्परता, शरणागत-सत्सङ्गता, त्याग, साधु-संराध्य, दुष्ट-विनाश, निर्धैरता, सत्यता, आत्मियता आदि सभी सद्गुणोंका श्रीराममें विचक्षण विकास था । इतने गुणोंका एकत्र विद्यमान जगत्में कहीं नहीं मिलता । माता-पिता, बन्धु-मित्र, पौ-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका बैसा आदर्श वर्ताव है, उसकी ओर श्रद्धा रखते ही मन मुग्ध हो जाता है । श्रीराम-बैसी आत्मियता तो धात्रतक कहीं नहीं देखनेमें आती । कैकेयी और मन्थराको छोड़कर उस समय ऐसा कोई भी दासी नहीं था जो श्रीरामके व्यवहार और प्रेमके वर्तावमें मुग्ध न हो गया हो । वाल्मीकिमें कैकेयी भी श्रीरामके प्रभाव और प्रेममें सदा मुग्ध थी । राम-राम्याभिनेत्रको बाण मुनिकर वद मन्थराको पुरस्कार देनेके लिये प्रभुन हुई थी, आंगमके मुखोंपर उमका बना मारी

विरवास था । वनवास भ्रमणके समय शत्रु बनी कैकेयीके मुखसे भी वे सच्चे उद्गार निकल पड़ते हैं—  
तुम अपराध जोग नहीं तला । जननी-जनक-बन्धु-मुह-रा  
राम सत्य सब जो कछु कहह । तुम पितु-मातु-बन्धन-रत मा  
कैकेयीका रामके प्रति अभिप्राय और कठोर वर्ताव भगवान्की हृष्ट्या और देवताओंकी प्रेरणासे थोड़ा हुआ था । इससे यह नहीं सिद्ध होता कि कैकेयीको भी अभिप्राय नहीं था । देव, मनुष्य, राक्षस और पशु सभी किसीका रामसे विरोध नहीं था । पशुविध्वंसकारी राक्षसों शूर्यखलाके कान-नाक काटनेपर खर, वृषण, त्रिशिर, गण्डुम्भकर्ण, मेघनाद आदिके साथ जो वैर-भाव और उपद्रव प्रसंग आता है, उसमें भी रहस्य भरा है । वाल्मीकि रामके मनमें उनमेंसे किसीके साथ वैर था ही नहीं । राक्षसगण भी अपने सङ्कुम्भ-बन्दारके लिये ही उभरे हैं । भाषते भजते थे । रावण और मारीचकी बकिपोंके स्पष्ट है—

सुररंजन भंजन महि भारा । जो जगदीस दीन करता ।  
तो मैं जाइ बैर दृष्टि करिहौ । प्रभु-सखे मरसाग करिहौ ॥  
होइ भजन महि तामस देहा । मन क्रम बचन मन्त्र इव ॥

मम पाँडे पर भावत, धो सरासन बन ।  
किरि विरि प्रभुहि विरि किहौ । मन्य न मोक्ष मान ॥

इससे यह सिद्ध है कि श्रीरामके जगत्में वाल्मीकिपौका श्रीरामके प्रति बैसा आदर्श प्रेम था, बैसा आदर्श किरीके सम्बन्धमें भी वृत्तमें मुग्धमें नहीं बना । श्रीरामकी मातृ-भक्ति कैसी आदर्श है । स्वमाता की व्यवहार करनेवाली कैकेयीके प्रति भी श्रीरामने वर्तव्य रूप सामान्यमें पूर्ण ही वर्ताव किया ।

शिशु समय कैकेयीने वन जानेकी आज्ञा दी, जब वन श्रीराम वरके प्रति सामान्य प्रकृत करने हुए लेने, जगत् हृदयमें तो सभी तरह बैसा कल्याण है—

मुनिगन मिलन विशेष बन सवहिं भौति हित मोर ॥  
वेदिमहँपितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ॥

श्रीरामने कुपित हुए भाई लक्ष्मणसे कहा—

यस्या मदभिवकायें मादसं परितप्यते ।  
माता नः सा यथान स्यात्सविशङ्का तथा कुब ॥  
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्त्तमपि नोत्सहे ।  
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥  
न मुञ्चिपूर्वं नानुदं स्मरामोह कदाचन ।  
मनुष्यां वा पितुर्बाहं कृतमत्पं च विप्रियम् ॥  
( वा० रा० २ । २२ । ६-८ )

‘हे लक्ष्मण ! मेरे राज्याभियेकके संवादसे अत्यन्त  
रंजित पायी हुई माता कैकेयीके मनमें किसी प्रकारकी शङ्का  
न हो तुम्हें बैसा ही करना चाहिये । मैं उसके मनमें उपजे  
हुए शंकारूप दुःखको एक घड़ीके लिये भी नहीं सह  
सकता । हे भाई ! जहाँतक मुझे याद है, मैंने अपने जीवनमें  
कानमें या धनजात्रमें मातापिताका और पिताजीका कभी कोई  
बा-सा अग्रिय कार्य नहीं किया ।’

इसके बाद बनसे खीटते हुए भरतजीसे श्रीरामने कहा—

कामादा तात ! लोमादा माता तुम्यमिदं कृतम् ।  
न हन्मनसि कर्त्तव्यं वासिंतव्यं च मातृवत् ॥  
( वा० रा० २ । ११२ । १५ )

‘माता कैकेयीने (तुम्हारी हित-) कामनासे या (राज्यके)  
धोमसे जो यह कार्य किया, इसके लिये मनमें कुछ भी  
विचार न कर भक्तिभावसे उनकी माताकी भाँति सेवा करना ।’

इसने पता लगता है कि रामकी अपनी माताओंके प्रति  
किन्तनी भक्ति थी । एक बार लक्ष्मणने .वनमें कैकेयीकी  
इष्ट निन्दा कर बाधी । इसपर मानुषक और भ्रातृप्रेमी  
श्रीरामने जो कुछ कहा सो सदा मवन करने योग्य है—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हित्या कदाचन ।  
तमिदं वराकुनापत्यं मरतस्य कथां कुह ॥  
( वा० रा० २ । ११ । १० )

‘हे भाई ! बिचारी माता (कैकेयीकी) निन्दा कभी  
नग किया करो । बानें करनी हों तो इधराकुनाच मरतके  
साम्भ्रममें करनी चाहिये । ( क्योंकि मरतकी बर्षां तुम्हें  
बहुत ही मिय है )

इसीप्रकार उनकी पितृभक्ति भी प्रशस्त है । पिताके  
बर्षाओंके साथ कारने लिये श्रीरामने क्या नहीं किया ।

पिताको दुखी देखकर जब श्रीरामने कैकेयीसे दुःखका  
कारण पूछा तब उसने कहा कि ‘राजाके मनमें एक  
घात है परन्तु ये तुम्हारे डरते कहते नहीं हैं, तुम  
इन्हें बहुत प्यारे हो, तुम्हारे प्रति इनके मुखसे अग्रिय  
वचन ही नहीं निकलते, यदि तुम राजाकी शाशापाकनकी  
प्रतिज्ञा करो तो वे यह सकते हैं, तुमको यह कार्य अवरय  
ही करना चाहिये जिसके लिये इन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा  
की है ।’ इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा—

अहो विद् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ।  
अहं हि वचनाद्राजः पतेवमपि पावके ॥  
मद्भयं विषं तीक्ष्णं पतयमपि पाण्डे ।

( वा० रा० २ । १८ । २८-२९ )

‘अहो मुझे विचार है, हे देवि ! तुमको ऐसी बात  
नहीं कहनी चाहिये, मैं महाराजा पिताकी शाशासे धागमें  
कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष खा सकता हूँ, समुद्रमें कूद  
सकता हूँ ।’ लक्ष्मणने जब यह कहा कि ऐसे कामासक  
पिताकी शाशा मानना अधर्म है, तब श्रीरामने सगरपुत्र  
और परशुरामजी आदिका उदाहरण देते हुए कहा कि  
‘पिता प्रप्यथ देवता हैं, उन्होंने किसी भी कारणसे वचन  
दिया हो, मुझे उसका विचार नहीं करना है, मैं विचारक  
नहीं हूँ, मैं तो निश्चय ही पिताके वचनोंका पालन करूँगा ।’

विचार करती हुई जननी कौमर्यामे श्रीरामने एत  
ही कह दिया था कि—

नास्ति शक्तिः पितुर्बाहं समतिक्रमिजुं मम ।  
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥

( वा० रा० २ । ११२ । १६ )

‘मैं चाहोंमें सिर टेककर प्रणाम करता हूँ, मुझे वन  
जानेके लिये आज्ञा दो, माता ! पिताजीके वचनोंको टाटने-  
की तुममें शक्ति नहीं है ।’

श्रीरामका एककीर्तन आदर्श है, पत्नी सीताके प्रति  
रामका कितना प्रेम था, इसका कुछ दिग्दर्शन सीतारत्नके  
पश्चात् श्रीरामकी दृष्टा देखनेसे होता है । मरान् और  
दौर राम विरहोन्मत्त होकर अशुचूर्ण भँझोंसे करण, बँध,  
असोबादि वृक्षोंसे और हरिलोंमें सीताका वग घुमने है ।  
यहाँ भगवान् श्रीरामने अपने ‘विदनां प्रकल्पे नृ-देव  
भक्त्यात्’ के वचनको मानो परिपालन कर दिया है । वे विचार  
करने हैं, प्रभाव करते हैं, बगलकी भाँति दास्यत्वने हो

रहते हैं, सुनते हो रहते हैं, और 'हा सीते हा सीते' प्रकार  
करते हैं।

होना चाहते हैं, मरना चाहते हैं। सुमीरके साथ  
मिलना होनेपर वह मरनेके इच्छुक बतलाते हैं—

अहं मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥

मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥

**श्रीरामका भावप्रेम**

श्रीरामचन्द्रजी श्रीरामचन्द्रजी की भावप्रैमके साथ क्या  
करते हैं। मरना चाहते हैं और उन्हें मरना  
करना चाहते हैं। लेख-द्वारमें भी कभी उनको  
मरना चाहते हैं। वहाँ तक कि अपनी जीतमें भी  
मरना चाहते हैं। मरना चाहते हैं और प्रेममें  
उत्कृष्ट प्रकृतिकर हो रहे हैं—

हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥  
हे राम मृत्युं प्राप्नुमि । तस्मै च मृत्युं प्राप्नुमि ॥

पहुँचे। धनुष मंग हुआ। परशुरामजी भाये और  
धनुष छोड़नेवालेका नामधाम पूजने लगे, श्रीराम  
मन्त्रतासे और ब्रह्मयज्ञीने तेजयुक्त वचनोंसे उनके  
उत्तर दिया। ब्रह्मयज्ञीके कपनपर परशुरामजीको  
बाधा, वे उत्तर देते पीसने लगे। इसपर  
श्रीरामचन्द्रजीके कार्यका समर्थनकर  
सहिते हुए, उन प्रसंगके पढ़नेपर हृदय मुग्ध हो

वदन्तर विवाहकी तैयारी हुई, परन्तु  
स्वयंवरमें विजय प्राप्त कर चकेले ही प्रतापिन्द्र  
दिया। ब्रह्मयज्ञी तो साथ थे ही, भरत-शत्रुघ्नको  
सबका विवाह भी साथ ही करवाया।

विवाहके अनन्तर अयोध्या औरधर चारों भाई  
रहने लगे और अपने आचरणोंसे सबको मोहित  
लगे। कुछ समय बाद भरत-शत्रुघ्न विवाह  
पीछेसे राजा दशरथने मुनि बरिष्ठकी आज्ञा और  
सम्मतिसे श्रीरामके प्रतिशीघ्र राग्याभियेकका विजय  
चारों घोर मंगल-यथाहर्षाँ बँटने लगे और राग्याभियेक  
तैयारी की जाने लगी। बरिष्ठजीने आज्ञा श्रीराम  
हर्ष-संवाद सुनाया। राग्याभियेककी बात सुनकर  
प्रसन्न नहीं होता परन्तु श्रीराम प्रसन्न नहीं हुए, वे  
कहते हुए कहते लगे 'महो! यह कैसी बात है, कने  
लाना-पीना, सोना-खेचना साथ हुआ, कर्षण, कने  
विवाह भी चारोंके एक साथ हुए, फिर वह राजा  
चकेलेको क्यों मित्रता चाहिये, हमारे निर्मल हृदयमें  
मया अनुचित है कि छोटे भाइयोंको जोरकर  
बड़ेको ही राजगद्दी मित्रता है—

जन्मे एक संग सब भाई । भोजन सपन बेटी रीति  
कनैव उपरि विवाहा । संग संग सब मरत उर  
विमल बंस यह अनुचित एका । अनुभ विद्वान् नो भिन्ने  
श्रीरामको चकेले राग्य रीतिरार कायेमें बड़ा  
प्राणित हुआ। सबकी मन्त्रतासे नहीं, परन्तु शत्रुघ्नकी  
उन्हें राग्याभियेकका प्रत्याप स्वीकार करना था।  
उनके मनमें बड़ी था कि मैं निर्मल बंधु था और श्रीराम  
हैं, बाल्यमें राग्य तो भाइयोंका ही है। आज अनु  
वस समय मौजूब नहीं थे, अतः श्रीरामजीके ब्रह्मयज्ञीके  
सौमित्रे मुग्ध मोहित विद्वान् विद्वान् विद्वान्  
जीविनं चरितं राग्यं च स्वर्गं च विद्वान् ॥  
(संस्कृत)

'भाई सौमित्रे ! तुम (जोग) वाग्बिभूत भोग और राज्य-  
पन्नका भोग करो, मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे  
ही हिये है !'

इसके बाद ही इस बीला-भाटकका पट परिवर्तन हो  
गया। माता कैकेयीकी कामनाके अनुसार राज्याभिषेक  
व्यवस्थाके रूपमें परिष्कृत हो गया। प्रातःकालके समय  
श्वशुर भीराम पिता दशरथकी सम्मतिसे सुमन्तके द्वारा कैकेयीके  
प्रकारमें बुझाये गये और जब उन्हें कैकेयीके दरवानकी यात  
मातुल हुई तब उन्होंने यकी प्रसन्नता प्रकट की, वे कहने  
लगे कि 'माता ! इसमें बात ही कौन-सी है, मुझे तो केवल  
एक ही बातका दुःख है कि महाराजने भरतके अभिषेकके  
लिये मुझे ही क्यों नहीं कहा—

गच्छन्तु चैवानयितुं दूतः शीघ्रप्रवेद्वैमैः ।  
मरतं मातुलकुलादयैव नृपशासनत् ॥  
दण्डकारण्यमेवोऽहं गच्छाम्येव हि स्वरः ।  
अविचार्यं पितृवीच्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥  
(वा० रा० २। २६। ३२-३३)

महाराजकी आज्ञासे दूतगण सभी तेज घोड़ोंपर सवार  
होकर मामाजीके यहाँ भाई भरतको खानेके लिये  
गएँ। मैं पिताजीके धवन साथ करनेके लिये बिना कुछ विचार  
किये वीरह बरोंके लिये दण्डकारण्य जाता हूँ। प्रायश्चित्त  
भाई भरतका राज्याभिषेक हो, इससे अधिक प्रसन्नता मेरे  
लिये और क्या होगी ? विधाता आज सब तरहसे मेरे  
बहुद्व है—

मरतं प्राणप्रियं पावहिं राम् । निधि सब विधि मोहिं सनमुस आत् ॥  
को न जाउं बन येसहिं काज । प्रथम गनिधे मोहिं मूढ-समाजा ॥

अर्थ है यह त्याग, चाहिये अन्ततक कहीं भी  
राज्याभिषेकका नाम नहीं, और भाइयोंके लिये सर्वदा सर्वस्य  
त्याग करनेको तैयार ! इस प्रसंगसे हमें यह शिक्षा ग्रहण  
करनी चाहिये कि छोटे भाइयोंको छोड़कर राज्य, धन  
का सुखका अकेलेकभी ग्रहण नहीं करना चाहिये। योग्यता-  
वश ही ग्रहण करना ही परे तो उसमें भाइयोंका अपनेसे  
अधिक अधिकार सम्मत्ता चाहिये, बल्कि यह मानना  
चाहिये कि उन्हीं लोगोंके लिये मैं इसे ग्रहण करता हूँ  
और यदि ऐसा मौका था जाय कि जब भाइयोंको राज्य,  
धन, सुख मिळता हो और इसलिये अपनेको त्याग करना  
पता हो तो बहुत ही प्रसन्न होना चाहिये।

इसके बाद भीराम माता कौसल्या और यकी सीतासे  
विदा माँगने गये। भीरामने भरत या कैकेयीके प्रति कोई भी  
अपशब्द या विद्वेषमूलक शब्द नहीं कहा ! बल्कि सीतासे  
आपने कहा—

वन्दितव्याश्व ते निलं याः शेषा मम मातरः ।  
स्नेहप्रणयसंमोहिः समा हि मम मातरः ॥  
आतृपुत्र समी चापि द्रष्टव्यी च विशेषतः ।  
तस्या भरतशत्रुघ्नौ प्राणिः प्रियतरी मम ॥

(वा० रा० २। २६। ३२-३३)

'मेरी माताओंको नित्य प्रणाम करना, मुझपर स्नेह  
करनेमें और मेरा लाड़-प्यार तथा पालन-पोषण करनेमें  
मेरी सभी माताएँ समान हैं। साथ ही तुम भरत-शत्रुघ्नको  
भी अपने भाई और बेटेके समान सम्मत्ता, क्योंकि वे  
दोनों मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं !'

यहाँ विशेष ध्यान और प्रेमके कारण सीताजीको भी  
साथ चलनेकी अनुमति भीरामको देनी पड़ी, तब लक्ष्मणजीने  
भी साथ चलना चाहा। भीराम ऐसे तो दुष्ट थे ही नहीं,  
जो अपने आराधकके लिये लक्ष्मणसे कहते या उते उभारते  
कि 'ऐसे अत्याय राज्यमें रहकर क्या करोगे तुम भी साथ  
चलो।' उन्होंने लक्ष्मणको घर रहनेके लिये बहुत समझाया,  
अनेक युक्तियोंसे यह चेष्टा की कि किसी तरह लक्ष्मण  
अयोध्यामें रहे, जिससे राज्य-परिवारकी सेवा-सम्हाल हो  
सके, और लक्ष्मणको बनके बृष्ट न भोगने परे, परन्तु जब  
लक्ष्मणने किसी तरह नहीं माना तब उतको मुन्य  
पहुँचानेके लिये भीरामने साथ ले जाना स्वीकार किया।

भीराम छोटे भाई लक्ष्मण और सीतागदित बनके  
चले गये। बनमें लक्ष्मणकी भीराम-सीताकी हर तरह सेवा  
करते हैं और भीराम भी वही करते और करते हैं त्रिपणे  
भीसीताजी और भाई लक्ष्मण मुष्ठी हों।

शोच-रान जेहिं निधि मुग ठहरी। संहर रघुनाथ करहिं संहर कररी।।  
जुगवहिं प्रभु शिष्य-अनुग्रहिं बीसे। परब्र विधेःचन-गोचर प्रीमे ॥

इससे यह सीलना चाहिये कि अपनी सेवा करनेवाले  
छोटे भाई और पत्नीको जैसे मुझ बहूँसे जैसे ही कार्य करने  
चाहिये तथा उनकी जैसे ही रक्षा करनी चाहिये जैसे एहमें  
जासोंकी करती हैं।

× × ×

भरतके सार्वभ्य बनमें जानेका समाचार मत्तपर जब  
भीराम-मेरुके कारण लक्ष्मणजी पृथक् होकर भरतके प्रति



वहाँ पाँतों भाइयोंका परस्पर प्रेम देखकर सभी मुग्ध हो गये। भरतकी विनय, नम्रता, साधुता और रामकी देखकर तो लोग तन-मनकी सुधि भूल गये। श्रीरामको पिताके मरण-संवादसे बड़ा दुःख हुआ। पयोचित शास्त्रोक्त विधिसे किया करनेके बाद समाज जुड़ा। भरतने भंति भंतिसे क्लेश बुझियाँ दिखलाकर श्रीरामको राजप्रह्वयके लिये मर्यादा की। वशिष्ठादि ऋषियोंने, मन्त्री, पुरवासी और मातामोंने भी भरतका साथ दिया। जब भगवान् श्रीरामने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया तो भरतजीने कहा कि मैं अनन्तम व्रत रखकर प्रायः दे दूँगा। इसपर श्रीरामने ठण्डे पहाड़े तो धरना देनेके लिये फटकारा, फिर, विविध भंतिसे समझाकर शान्त किया और अन्तमें पर्याप्त पद रोते हुए भरतको अपने हाथोंसे खींचकर गोदमें बैठा लिया और प्रेमवश कहने लगे—

हे भरत, मुझे बनवाससे खौटाकर राज्याभिषेक करानेके लिये तुमको जो बुद्धि हुई है सो स्वाभाविक ही है, यह गुल्मेबा द्वारा प्राप्त विनय-विवेकका फल है। इस श्रेष्ठ बुद्धिके फलसे तुम समस्त पृथ्वीका पावन कर सकते हो। परन्तु—

रत्नमीश्वरनादपेयाद्वा हिमवान्ना हिमं त्यजेत् ।

अतीयास्तागरो वेद्ये न प्रतीज्जामहं पितुः ॥

( वा० रा० २।११२ः१८ )

'अनुमा चादे अपनी श्री त्याग दे, हिमजल हिमको छोड़ दे, समुद्र मर्यादाका उल्लंघन करदे पर मैं पिताकी प्रतिज्ञाको सत्य किये बिना पर नहीं खीट सकता ।'

श्रीगुणार्जुनीने जिज्ञा है कि श्रीरामने अन्तमें प्रेमविवश ही भरतजीसे कहा कि—

धैर्य ! तुम दुःख न करो, जीवकी गति ईश्वराधीन है, हे भाई ! मेरी समझसे तो सीनों काज और तीनों लोकोंमें जितने पुण्यलोक पुरुष हैं वे सब तुमसे नीचे हैं। तुमको जो मनमें भी कुटिल समझोगे, उसके लोक-परलोक बिगड़ जायेंगे, माता कैशेयीको बड़ी जोग होप दूँगे जिन्होंने गुण और साधुओंका संग नहीं किया है। मैं शिवको सापी देकर सत्य कहता हूँ, कि भाई ! अब यह पृथ्वी तुम्हारे रखले ही रहेगी। तुम अपने मनमें कुछ भी शंका न करो। हे प्यारे ! देखो ! महाराजने तुम्हको त्याग दिया, प्रेमका प्रय निवारनेके लिये शरीर भी छोड़ दिया परन्तु सत्य नहीं छोड़ा। इसलिये तुमको उनके बचन टाङ्गनेमें बड़ा संकोच

हो रहा है, परन्तु उससे भी बढ़कर मुझे तुम्हारा संकोच है, गुरुजीभी कहते हैं, अतः अब सारा भार तुमपर है, तुम जो कुछ कहो, मैं बर्ही करनेको तैयार हूँ—

मन प्रसन्न करि सोच तजि कहहु करौ सो आज ।

सत्यसिन्धु रघुबर बचन सुनि मा सुखी समाज ॥

सोच छोड़कर प्रसन्न मनसे आज तुम जो कुछ कह दोगे बर्ही करनेको तैयार हूँ यानी मुझे सत्य बहुत प्यारा है परन्तु उससे भी बढ़कर तुम प्यारे हो। तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ ।' इससे अधिक आत्मीयता और क्या होगा ? जिस सत्यके लिये पिता-माताकी परवा नहीं की, शौच धनायास वही सत्य, खौटानेके लिये आप हुप, भाई भरतके प्रेमपर छोड़ दिया गया !

अथर्व ही भरत भी श्रीरामके ही भाई थे। उन्होंने बड़े भाई श्रीरामका अपने ऊपर इतना प्रेम देखकर उन्हे संकोचमें डालना नहीं चाहा और बोले कि—

जो सेनक साहिब संकोची। निज दित चहेतामु मति पोची ॥

'जो दास अपने मालिकको संकोचमें डालकर अपना कल्याण चाहता है उसकी बुद्धि यही ही गीच है। मैं तो आपके राजतिलकके लिये सामग्री ज्ञाया था परन्तु अब—

प्रभु प्रसन्न मन सनुच तजि, जो जेहि आयसु देव ।

सो सिर परि धरिं करहि सब भिरिहि अनट अवेरन ॥

प्रभु निःसंकोच होकर प्रसन्नतासे जिसको जो आज्ञा दूँगे वह उसीको सिर बनाकर करेगा, जिससे सारी उल्लंघन आप ही सुलभ जायगी।' अन्तमें श्रीरामने फिर कहा 'धैर्य ! तुम मन बचन कर्मसे निर्मल हो, तुम्हारी अपमा तुम्हीं हो, बड़ोंके सामने छोटे भाईके गुण इस कुसमयमें कैसे बलानूँ ? भाई ! तुम अपने स्वयंसेवाकी रीति, पिताजीकी कर्ति और नीति जानते हो, और भी सारी बातें तुमपर विदित हैं। अथर्व चौदह वर्षतक तुमको बहुत कष्ट होगा—

जानि तुमहि मूढ कहौ कठोरा। कुसमव तज न अनुचित मोरा।

होहि नुठारै सुबुंघ सहाये। आदि हाय असनिंके पाये ॥

हे प्यारे ! मैं तुम्हारे हृदयकी कोमलता जानना हुआ भी तुम्हें यह कठोर बचन बहरा हूँ परन्तु क्या कहें ? यह समय ही ऐसा है, इस समयके लिये बर्ही उचित है, अब बुरा समय आता है तब मझे भाई ही काम आते हैं तबबारके बारको बचानेके लिये अपने ही हाथकी चाप करनी पड़ती है ।'

भगवान्के इन प्रेमपूर्ण रहस्यके धधनोंको सुनते ही भरत धीरामकी हृदयको भलीभाँति समझ गये। उनका विषाद दूर हो गया। परन्तु चौदह साब निराधार जीवन रहेगा कैसे ? अतः

सो अन्तर्भव देव मोहि देवा। अवधि पार पाँवड जेहि सेवा ॥

भगवान्ने उसीसमय भरतजीकी हृच्छानुसार अपनी चरखपादुका परम तेजस्वी महारामा भरतजीको दे दी। भरतजी पादुकाओंको प्रणामकर मल्लकर पर धारणकर धयोष्या लौट गये।

× × ×

श्रीरामने कुछ समय तक चित्रकूटमें निवास किया, फिर ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमते घूमते पंचवटीमें आये। वहाँ कुछ समय रहे। वनमें रहते समय भगवान् प्रतिदिन ही लक्ष्मणजीको भाँति भाँतिसे ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका उपदेश किया करते। एक दिन उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—

संत-धरन पंकर अति प्रेमा। मन-कम-नचन भजन वदनेमा ॥  
गुद पितु मानु बन्धु पतिदेवा। सब मोहि कहँ जाये वद सेवा ॥  
मम गुन गावत पुलकि सरौरा। गद-गद गिरानयन बह नीरा ॥  
कामादिक मद दंसन जाके। तत्र निरन्तर बस मैं ताके ॥

बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करइ निष्काम।

तिनके हृदय कमल महँ, करतँ सदा विराम ॥

इसप्रकार सत्पुष्पा और परम रहस्यके वार्तालापमें ही समय बीतता था। भाईपर इतना प्रेम था कि श्रीराम उन्हें हृदय खोजकर अपना रहस्य समझाते थे।

× × ×

सीता-हरण हुआ, खड़ापर चढ़ाई की गयी और भयावह मुद प्रारम्भ हो गया। एक दिन शक्तिवाकसे श्रीलक्ष्मणके पास जाकर श्रीरामने भाईके किये जैसी

● यह भगवान् श्रीरामकी प्रणव-जीवा मानी जाती है, प्रणवमें कुछका कुछ क्या जाना ही क्याकरि है। 'गुणगुण' का 'नर' भाग्ये दोहेके इन वाक्यते भी प्रकाश ही निद होता है। भगवान् शिवके इन वचनोंके कि, 'इसा वह बंधु है। 'नर गति' मय-द्वारु देखाई' से भी साधारण मनुष्यक प्रकाश ही उहरता है। हमने अर्थात् धरिणी कातरा नहीं, परन्तु यदि हमका अर्थ किया जाव तो वस्तुक योगारथमें—'जो वनमें वन-बन्धु मिलोहू। पिता बचन मनोई बने मे। इस श्रीवर्षा अर्थ वह करना चाहिये कि यदि मैं जानना कि वनमें बन्धुओंमें विशेष होगा तो मैं (पिता बचन बने) विशेष बचन मानकर वनमें तो आना, परन्तु ('नहिं मोहू') लक्ष्मणका आशय रहीरार वर वने वनमें पाव नहीं क्या।

इसी प्रकार 'निज जननीके एक कुमारा। तापु लख मुव मान अचारा' इन श्रीवर्षा अर्थ भी जानना चाहिये कि 'जो वनमें वन-बन्धु मिलोहू। पिता बचन मनोई बने मे। इस श्रीवर्षा अर्थ वह करना चाहिये कि यदि मैं जानना कि वनमें बन्धुओंमें विशेष होगा तो मैं (पिता बचन बने) विशेष बचन मानकर वनमें तो आना, परन्तु ('नहिं मोहू') लक्ष्मणका आशय रहीरार वर वने वनमें पाव नहीं क्या।

इस श्रीवर्षा अर्थ वह भी दिया जा सकता है कि 'जो वनमें वन-बन्धु मिलोहू। पिता बचन मनोई बने मे। इस श्रीवर्षा अर्थ वह करना चाहिये कि यदि मैं जानना कि वनमें बन्धुओंमें विशेष होगा तो मैं (पिता बचन बने) विशेष बचन मानकर वनमें तो आना, परन्तु ('नहिं मोहू') लक्ष्मणका आशय रहीरार वर वने वनमें पाव नहीं क्या।

विज्ञाप-प्रज्ञापकी जीवा की, उससे पता लगता है भाई लक्ष्मणके प्रति श्रीरामका कितना अधिक स्नेह था।

श्रीराम कहने लगे—

किं मे राज्येन किं प्राणै युद्धे कार्यं न निवृत्ते  
यत्रायं निहतः श्वेतै रणभूर्धनि रुद्रमणः ॥  
यथैव मां वनं वान्तमनुयाति महासुधीः।  
अहमप्यनुमास्यामि तथैवेनं वनसुधम् ॥  
(वा० रा० १।१।१।११-१२)

'यद्य युद्धसे, राज्यसे या जीवनसे क्या प्रयोजन कि प्यारा भाई लक्ष्मण रणभूमिमें सो युद्ध है। जिसप्रकार महातेजस्वीं तुम मेरे साथ वनमें आये थे वन में भी तुम्हारे साथ परलोकमें जाऊँगा।' तुम्हारे भी बचन

श्रीराम प्रज्ञाप करते हुए करते हैं—

सकहु न दुसित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तब मुजुत हुण  
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ निपिन दिव अत्रा  
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न मुनि मम बचरि  
जो जनेतँ वन बन्धु निहोहू। पिता बचन मनोई बने मे  
सुत नित नारि भवन परिवारा। होदि भाई जग बारी  
जया पंख निनु खग अति दीना। मनि निनु कनि करिब बर  
अस बिचारि प्रिय जागहु ताता। निरह न अत्र सहेउर प्र  
अस मम जिवन बंधु निनु तोही। जो ब्रह्म देव विनयि को  
जेहँ अवच कवन मुँह तहाँ। नारि हेतु प्रिय बन्धु मे  
अब अपलोक सोऊ सुत तोरा। सहिदि निनु कबोर उर मे  
निज जननीके एक कुमारा। तत्र तापु गुन जन अच  
सोपेसि मोहि तुम्हहि गदि वानी। सबदिनि मुकर परम प्रि  
उतर काह देहँ तेहि भाई। उठि निज मेदि निरानु मे  
नहु निवि सोऊत सोऊ भिजेवन। सरतपतिन तकि-बन्धो



### राम-विलाप ।

प्रभु-विलाप सुनिकान, विकल भए धारनिकर ।  
आह गयेउ हनुमान, जिमि करुना महं थोर रस ॥





जो भाई अपने जिये घरदार छोड़कर मरनेको तैयार है, उसके जिये विद्याप किया जाना उचित ही है परन्तु श्रीरामने तो विद्यापकी पराकाष्ठा कर भातृप्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिषा दी है।

श्रीरामानुजीके द्वारा संजीवनी छानेपर लक्ष्मणजी सत्य हो गये। राम-रावण युद्ध समाप्त हुआ। सीता-शोकके अनन्तर श्रीराम सबको साथ लेकर पुष्पक विमानके द्वारा अयोध्या छोड़नेकी तैयारीमें है। इसी समय विभीषण्य मारना करने छगें—

'भगवन्! यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, यदि आप सुन्दर स्नेह करते हैं तो मेरी प्रार्थना है—आप कुछ समय-वक बर्बाद करें, लक्ष्मण्य और सीता सहित आपकी मैं पूजा करना चाहता हूँ। आप अपनी सेना तथा मित्रों सहित पर प्यार कर उसको पवित्र करें और धर्म्मिकचित् सत्कार स्वीकार करें। मैं आपके प्रति आशा नहीं कर रहा हूँ, परन्तु स्नेह-सम्मान और मित्रताके कारण एक सेवककी भाँति आपको प्रणम्य करनेकी अभिलाषा रखता हूँ। (वा० रा० १। १११। १२-१५) विनयका क्या ही सुन्दर सीखने योग्य तरीका है!

श्रीरामने उत्तरमें कहा—

न कल्पेतल कुर्वाते वचनं राष्ट्रसेवक !  
 वं तु मे भ्रातरं द्रुपुं मरतं त्वत्ते मनः ॥  
 मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।  
 शिरसा चाक्षते मय्य वचनं न कृतं मया ॥  
 (वा० रा० १। १२१। १८-१९)

हे राष्ट्रसेवक, मैं इस समय तुम्हारी बात नहीं मान सकता, मेरा मन भाई भरतसे मिजनेके जिये घटपटा रहा है। जियेने चित्रकूटक धाकर मुझे खीटानेके जिये विनीत प्रार्थना की थी और मैंने उसको स्वीकार नहीं किया था। मित्रवर, तुम मेरी इस प्रार्थनापर दुःख न करना।

दोर कोल गृह मोर सन, सत्य वचन मुनु टाव ।  
 दस भरत की सुनिरे मोहि निमित्त कएव सम बात ॥  
 दाम देव सरीर दुस, बया निरंतर मोहि ।  
 देसो देनि सो जान कइ, सका ! निहोरी तेंहि ॥  
 को बैरी रते अवधि, श्रियत न बाडे नीर ।  
 रते मातकी समुसि प्रभु, पुनि पुनि पुक सरीर ॥

विभीषण्य नहीं रोक सके, विमानपर सवार होकर चले। भगवान्ने अपने छानेका संवाद हनुमान्के द्वारा भरतजीके पास पहुँचसे ही भेजकर उन्हें सुख पहुँचाया।

तदनन्तर अनन्तराधिक भगवान् श्रीराम अयोध्या पहुँचकर धन्यमें खीटासे ही सबसे मित्र जिये।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक भीन्ह बपलु खरारी ॥  
 अमित रूप प्रगटे तेहि काख। जयाजोग्य निकि सबहि बपाला ॥  
 कृपादृष्टि सब लोग बिलोकी। किन्हे सकल नरनारि बिलोकी ॥  
 छन महें सबदि मिले भगवान। उमा मर्म यह काहु न जाना ॥

भरतके साथ भगवान्का मिजान तो अर्पूय आनन्दमय है। फिर शत्रुप्रसे मित्रकर उनका विरह-दुःख नष्ट किया। राम-तिरककी तैयारी हुई। छान-मार्जन होने खगा। श्रीराम भी भाइयोंकी वात्सल्य-भावसे सेवा करने छगें। भरतजी बुझाये गये, श्रीरामने अपने हाथोंसे उनकी जग्य सुखम्भाई। तदनन्तर सीमों प्राणमिय भाइयोंको श्रीरामने स्वयं अपने हाथसे मज्ज-मज्जकर नष्टकाया। भरत लक्ष्मण्य शत्रुम्य विगृह्य श्रीरामके इस वात्सल्य-भावसे मुग्ध हो गये।

पुनि कइनानिधि मरत हँकारे। नित्रकर राम जटा निदबारे ॥  
 अन्हवाये प्रभु वीनिठें भाई। मगत-वडउ बपलु रगुतारै ॥  
 मरत भाग्य प्रभु कोमलतारै। संप कोटिसन सकदि न गाई ॥

शिवजी कहते हैं कि भरतजी (चादि भाइयों) के भाग्य और प्रभुकी कोमलताका बसान, सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कर सकते। धन्य भ्रातृप्रेम !!

भगवान् श्रीराम सीमों भाइयोंसे सेविग होकर राग्य करने छगें। रामराज्यकी महिमा खीव गा सकता है? भगवान् समय समय पर अपनी प्रजाको इच्छा कर उन्हें विविध भाँतिसे छोड़-परजोकेमें उचित और बरपाएके साधनोंके सम्बन्धमें शिषा देने हैं। ऐया म्याय और एवा-एयं शासन, सुन्दर बर्णाव, प्रेमभाव, छोड़-परजोकेमें सुख पहुँचानेकाही तथा मुक्तिहाविनी शिषा, सबकारके मुख साम्राज्यके अनिर्दिष्ट धरतक धरत दिनी भी राज्यमें कमी देले, मुने, वा चने नती गये!

× × ×  
 समच समच पर भाइयोंको साथ लेकर श्रीराम वन-उपवनमें जाने हैं भाँति अनिदिके शिषान्द उचरेत करने हैं एक समच गव उचरनेमें गये। भरतजीके श्रीरामके जिये बरना हुआ विद्या शिषा, भगवान् उचरत शिषाके, उचरन्त



विषये उत्तरमें दत्तोंने भी माने थे। इन्होंने ही कहा कि 'आप जिनकी तुलना पूछते हैं वे कुशलसे हैं।' भरतजी उसी दिन बच पड़े। अयोध्यामें पहुँचकर उसे श्रीहीन देख बड़े दुःखित हुए, उनका हृदय परिवारकी धनित आशांकासे भर गया, न तो किसीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत हुई और न किसीसे कुछ कहा ही। लोग तो उस समय भरतजीको रामवनवास और दशरथकी मृत्युमें हेतु समझकर बहुतही घुरी दृष्टिसे देखते थे, परतः उनसे कोई अणु भी सरह बोलता ही कैसे? आगे बढ़कर प्रकाने साफ कहा है—

मिम्या प्रमाजितो रामः समार्यः सहृदयमणः ।

मरते सखिबन्धः स्म सौमिके पशानो यथा ॥

(वा० रा० २।४।१८)

'मृदा' बहाना करके कैकेयीने श्रीरामको सीता वनवाससहित वनमें भेज दिया है। अब हम लोग उसी प्रकार भरतके अधीन हैं, जैसे कसार्हके अधीन पछ होते हैं।' लोग सामने आते हैं और दूरसे ही लुहार करके मुँह फेरकर चले जाते हैं—

पुत्रज मिळहि न कहहि कलु गवहि जोहारहि जाहि ।

मरत कुसल पूछिन न सकहि मय बिषाद मनमहि ॥

बचराये हुए भरतजी पिताकी शोचमें माता कैकेयीके मरवमें पहुँचे और 'पिता कहाँ है' ऐसा पूछने लगे, कैकेयी अपने कियेपर लूकी नहीं समाती थी, यह समझती थी कि आप भी मेरी हृति सुनकर राजी होंगे, परतः उसने फटोर बरफ मरसे कह दिया—

वा गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः ।

रामा महात्मा तेजस्वी धायजूकः सतां गतिः ॥

(वा० रा० २।७।२१५)

'सब भूत-आणियोंकी अन्तमें जो गति होती है वही हमारे पिताकी भी हुई, महात्मा तेजस्वी और वश करने-वाले राजने सपुत्रोंकी गति प्राप्त की है।'।

बच सुनते ही भरत शोकपीडित हो 'हाय! मैं मारा गया' इत्यादि सरसा पड़ाव लाकर प्रथीपर गिर पड़े। अंति-कीर्तिये विषाद करते हुए कहने लगे, 'हाय पिताजी! मुझे दुःखकारमें कोंडकर कहाँ चले गये—

असमर्थैः रामान राते मां क गतोऽसि भो ।

(अध्याय २।०।१।१७)

हे पिता, मुझे रामके हाथोंमें सौंपे बिना ही आप कहाँ चले गये।' कैकेयीने विलाप करते हुए भरतको उठाकर उसके भाँसू पोंछे और कहा कि 'बेटा, पीरज रखो, मैंने तुम्हारे लिये सब काम बना रखा है—समाधिस्थि भद्रं ते सर्वं समादितं यथा। (वा० रा० २।७।१८) परन्तु भरतजीका रोना बन्द नहीं हुआ, उन्होंने कहा—

यो मे आतापिता बन्धुर्वैश्य दातोऽरिभ संमतः ।

तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याहितकर्मणः ॥

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्गस्य जानतः ।

तस्य पादौ गृहीष्यामि स हीदामि गतिर्मम ॥

धर्मविद्मर्शीशिक्ष महाभागो दृढव्रतः ।

आर्ये किमत्रवीक्षाम पिता मे सत्यविक्रमः ॥

पश्चिमां साधु सन्देशनिभ्रामि श्रेतुमात्मनः ।

(वा० रा० २।७।३२-३५)

यह तो शीघ्र बता कि मेरे पिता-गुरुय बड़े भारी सरख-स्वभाव बड़ धीरखुनायजी कहाँ हैं, जिनका मैं मिय दास हूँ। मैं उनके चरख-बन्दन करूँगा, क्योंकि भय मे ही मेरे अवलम्ब हैं। आर्य-धर्मके आननेवाले लोग बड़े भारीको पिताके सत्य समझते हैं। माता, यह भी बतला कि धर्मज्ञ, रामन सत्यपराक्रमी मेरे पिता राजा दशरथने अन्त समयमें क्या कहा था, मैं उनका अन्तिम हृम सन्देश सुनना चाहता हूँ।' उत्तरमें कैकेयीने कहा—

रामेति एव विदुषु हा सीते उपनयेति च ।

स महात्मा परं लोकं गतो गीमनां वरः ॥

इतीमां पश्चिमां वाचं म्नाबहार पिता तवः ।

काठबर्षं परिश्रितः पादौरिव महागजः ॥

सिद्धार्थारुं नरा राममालयं सह सीरवा ।

उपमणं च महाबाहुं द्रवन्ति पुनरात्तम् ॥

(वा० रा० २।७।३६-३८)

'बेटा! बुद्धिमानोंमें बेहद तेरे पिता अन्तकाठमें 'दा राम! हा सीते!' पुकारते हुए पारकोक मिकारे हैं। हाथीजिगमका पाठमें बँधकर विरत हो जाता है वही प्रकार काठ-लाठने बँधकर तेरे पिताने बेबच बरी क्या वा कि 'क्यों! सीताके साथ छोड़कर जाने हुए श्रीराम-अन्तको जो मनुष्य देखेंगे, वही हृत्वायं लोगे।' यह सुनने ही भरतजीके दुःखकी सीमा ब रही।

उपमणं मरतो हेऽत्र वरं लक्ष्मिनीं च विन् ।

उदानी उपनयो वरि सीतां च पुन हेऽन्तम् ॥

(अध्याय २।०।१।१७)

भरतजीने वृद्धा 'माता ! क्या उस समय श्रीरामजी, लक्ष्मण या सीताजीमेंसे कोई भी नहीं था, वे सब कहाँ चले गये थे ?' इस वज्र-हृदया कैकेयीने सारी कहानी सुनाते हुए कहा कि—

रामस्य यौवराज्यार्थं पित्राते सम्मनः कृतः ।  
तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विप्रमाचरम् ॥  
राज्ञां दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् ।  
याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽस्मिन् ॥  
राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् ।  
ततः सत्यपरो राज्ञ राज्यं दत्त्वा तवैव हि ॥  
रामं सम्प्रेषयामास वनमेव पिता तव ।  
सीताम्पनुगता रामं पात्रिभ्रत्यमुपाश्रितः ॥  
सौभ्रात्रं दर्शयन् राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः ।  
वनं गतेषु सर्वेषु राजातानेव चिन्तयन् ॥  
प्ररुपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः ।

(अध्यात्म रा० २ । ७ । ७२—७६)

'गुह्यारे पित्ताने रामके राज्याभिषेककी बड़ी तैयारी की थी, परन्तु गुह्ये राज्य दिलानेके अनिमायसे मैंने उसमें विप्र ढाल दिया, घरदानी राजाने पूर्वमें मुझे दो घर देनेको कह रक्खा था, उनमेंसे एकसे मैंने गुह्यारे लिये सम्पूर्ण राज्य माँगा और दूसरेसे रामके लिये मुनि-व्रत-धारण-पूर्वक चौदह सालका वनवास माँगा। गुह्यारे पिता सत्यपरायण राजाने गुह्ये राज्य दे दिया, और रामको वन भेज दिया। पतिव्रता सीता भी रामके साथ वन चली गयी, और सच्चा भ्रातृत्व दिखाकर लक्ष्मण भी उन्हींके पीछे चल बिये। उन छोर्गोंके वन जानेपर उन्हींका चिन्तन करते हुए और 'हा राम, हा राम' पुकारते हुए महाराजा भी परलोक सिंघार गये !'

कैकेयीके इन बचनोंसे मानो भरतजीपर वज्रपात हो गया। वे पिताकी वृत्तुको लो भूल गये और अपने हेतुने श्रीरामका वनगमन सुनते ही सहम गये, पके हुए घावर मानो आगनी खग गयी।

भरतहि विमोहं विनु-मरन मुनन राम वन गौन ।

हेतु अपरवज्र जनि त्रिष मदिन रहे करि मौन ॥

मुनि मुडि सहमेउ रात्रहुमाक । पाँके छत्र अनु राजु अंगदम् ॥

भरतजी स्वाकुल हो उठे और दाहल शोकमें सारी-  
-बुद्ध भूलकर मानाको विचारकर चिन्ताने हुए कहने लगे—

'शरीरः ? तू राज चाहनेवाली माताके रूपमें मेरी है, तू पतिघातिनी और कुल-घातिनी है, तू धर्मात्मा बचपति कन्या नहीं है, उनके कुलका नाश करनेवाली राक्षसी हुई है। तू जानती नहीं कि श्रीरामके प्रति मेरा कैसा प्रेम है इसीसे तूने यह अन्याय किया है, मैं राम-लक्ष्मण छोड़कर किसके बलपर राज्य करूँगा ? तूने मेरे धर्मोपिपाका नाश कर दिया और मेरे भाइयोंको गजीग मील माँगनेके लिये भेजा है, एकपुत्रा माता कीसल्याको पुत्र वियोगका दुःख दिया है, वा तू नरकमें पड़। तू राम अत्र हो जा। शरीर तुझे ! तू धर्मसे पतित है, मगधरक मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे ! मैं इस समस्त राज्यको भाईके प्रति अर्पण कर दूँगा, वा तू कर्म-प्रवेश कर जा, जंगलमें निकल जा वा गलेमें रस्सी फाँसी लगाकर मर जा। मैं सत्यपराक्रम रामको राज्य देकर ही अपना कलङ्क धोऊँगा और अपनेको कृतकृत्य समझूँगा !'

(बा० रा० १/७४)

भरतजीने राम-प्रेममें नीति भूलकर शत्रुसे वार्तन कह डाला कि—

हृन्त्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।

यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मानुषाकम् ॥

(बा० रा० २/११२)

'हे भाई ! इस दुष्ट धाचरण्याली कैकेयीको मैं मा बालता, यदि धर्मात्मा श्रीराम मानुषत्वात् समकाल मुझसे वृथा न करते।'

आखिर भरतजीने माताका मुँह देखना तक बार लगवा और बोले कि—

जोहसि सोहसि मुहँ मसि हाई । अंसि भेट अडि वैतु बई ॥

× × ×

इतनेमें बुकड़ी मगधरा इनाम पानेकी आशासे सबकुछ धार्य। उसे देखते ही शत्रुमतीका कोप बा, वे लो उठे इनाम देने, परन्तु वृथा भरतजीने बुधा दिया। इन्ने बाद भरतजी माता कीसल्याके पाग वरुके और इन्ने दपनीय दशा देखकर स्वाकुल हो उठे। कीसल्याजीने कैकेयी-पुत्रके लाने भरतपर सग्देह करके हुए कतु टार करे। कीसल्याजीके कटु बचनोंसे भरतका हृदय विरिधी हो गल, और वह मूर्खिन होकर कीसल्याके वारकोंमें तिर वने, लो होशमें घाये तक वेगी-देगी कटोर शरपें लाने लगे, तिले माताका हृदय दर्शीय गया। भरतने क्या—





कौटुम्बिका भारत ।

भारत भारत को देखो । भांगु रोडिउ मृदु कला रकरो ॥

कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने ।  
अन्यद्वा यदि जानामि सा भया नोदिता यदि ॥  
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्यासतोद्भवम् ।  
इत्था वीशिष्ठं खेतनं अरुन्धत्यासमन्वितम् ॥

(अध्यात्म रा० २।७।१८८-८९)

'माता ! श्रीरामके राज्याभिषेकके विषयमें कैकेयीने जो उपमं किया है, उसमें यदि मेरी सम्मति हो या मैं उसे शक्यता भी होई तो मुझे ली मञ्जुहत्याका पाप लगे, और यह पाप भी लगे जो गुरु कशिष्ठजीकी अरुन्धतीजीसहित तबवासो इत्या करनेमें लगता है ।'

कौसल्याने गद्गद होकर निर्दोष भरतको गोदमें बिठा किया और उसके धाँसू पोंछकर कहने लगी—'बेटा ! मैंने शोकमें विकल होकर तुम्हपर आशेष कर दिया था । मैं जानती हूँ—

राम प्रान्ते प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहिं प्रान्ते प्यारे ॥  
बिनुविष जुबै सबै हिम आगी । होह बारिचर बारिविरागी ।  
मय म्यान बर मिटे न मोहू । तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न दोहू ॥  
मा तुम्हारे यह जो जग कहहीं। सो सपनेहूँ सुख सुगति न रहहीं ॥  
सत रुदि मातु मरतु हिय लाप, यनपय स्वहिं नयन जल छाप ॥

भरतजीके राम-प्रेमका पता कौसल्याके इन बचनोंसे स्पष्ट लगता है । भरतका परिश्रम और चिर धाचरित आश्रम ही था जिसने इस धवस्थामें भी कौसल्याके द्वारा भरतको आश्रमका ऐसा जोरदार सर्टिफिकेट दिलाया दिया ।

× × ×

पिताकी शाफ़्तके और्ध्वदैहिक किया करनेके बाद राजसभामें गुरु, मन्त्री, प्रजा और माताओंने यहाँतक कि माता कौसल्याने भी भरतको राजसिंहासन स्वीकार करनेके लिये अनुमोद किया परन्तु भरत किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए । उन्होंने अदलकूपसे कह दिया—

आपनि दारुन दीनता कहीं सबहिं सिरनाइ ।  
देसे बिनु रघुनाथ-पद त्रियकै जरनि न जाइ ॥

अब उपाह मोहि नहिं नूसा । को त्रियधी रघुवर बिनु नूसा ॥  
परहिं ओंठ रहै मनमाहीं । प्रातकाल चलिहीं प्रभुपाहीं ॥  
अपनि मैं अनमल अपराधी । मइ मोहिं कारन सकल उपाधी ॥  
उपनि सारन सनुमुख मोहिं देखी। छभि सब करहिं कृपा बिसेसी ॥  
सैत सनुचि सुटि सरल सुमाऊ । कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ॥

भरतके प्रेम भरे बचन सुनकर सभी मुग्ध हो गये । रामदर्शनके लिये वनगमनका निश्चय हुआ । सभी बचनको तैयार हो गये । रामदर्शन छोड़कर धरमें कौन रहता ?

जेहि राखहि धर रहु रखवारी । सो जौने गरदन जनु मारी ॥

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न चहै जग-जीवन टाहू ॥

जौरे सुसम्पति सदन-सुख, सुदद मातु पितु माइ ॥

सनमुख होत जौ रामपद, करइ न सहज सहाइ ॥

भरतजीने भगवान् रामकी सम्पत्तिकी रक्षा करना कर्तव्य समझकर जिम्मेवार कर्तव्यपरायण रक्षकोंको नियुक्त कर दिया और दयोप्यावासी नर-नारी चल पड़े । उस समय भरतके साथ नौ हज़ार हाथी, साठ हज़ार धनुषारी, एक लाख युद्धसवार थे । इसके सिवा रथों, माताओं और ब्राह्मणियोंकी पात्रकियों एवं सदाचारी ब्राह्मणोंकी तथा कारीगरों एवं सामानकी बैलगादियोंकी गिनती ही नहीं थी ।

भरतजीने वन जाते हुए मनमें सोचा—'श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पैदल ही नंगे पाँव वन-वन घूमते हैं और मैं सवारीपर चढ़कर उनसे मिलने जा रहा हूँ, मुझे धिक्कार है ।' यह विचारकर भरत और शत्रुघ्न पैदल हो जिये । दोनों आश्रमक भाइयोंको पैदल चलते देखकर धन्य लोग भी मुग्ध होकर सशरियोंसे उतरकर पैदल चलने लगे—

देखि सनेह लेण अनुसोमे । उत्तरि चले हय गज रथ त्पामे ॥

यह देखकर माता कौसल्याने धपनी छोड़ी भरतके पास खे जाकर मधुर बचनोंमें कहा—

तप्त चढहु रथ बलि महतारी । होइदि त्रिय परिवार दुसारी ॥

तुम्हरे चरत्र चलिहि सब लोगू । सकल लोक कृत नहि मग-जोगू ॥

माता कौसल्याकी आज्ञा मानकर भरतजी रथपर चढ़ गये । चलते-चलते शृंगवेरपुर पहुँचे । यहाँ निपादराजने भी भरतपर सन्देह किया परन्तु परीक्षा करके भरतका आचरण देख वह मन्त्रमुग्धकी भाँति भरतकी सेवामें लग गया । इंद्रुदीके पैरके नीचे लहरें श्रीरामने 'कुल-किमञ्च'की शय्यापर खेटकर रात बितायी थी, सुइके द्वारा डर त्यागको देखकर भरतकी विधि बटा हो गयी । वे भाँति-भाँतिसे विज्ञापकर कहने लगे 'इ ! यह बिगरी हुई पत्तोंकी शय्या क्या उगई श्रीरामको है जो सदा आकाशरशि राज्यागाधमें रहनेके धन्यासी हैं । जिनके महज सदा पुत्रों, चित्रों और चन्द्रमते चर्चित रहते हैं, जिनके महजका देवा ब्रह्मा मुय करनेवाले पवित्रों और मयूतोंका विदारण्यक है, त्रियकी



सोनेकी धीपारोंपर विचित्र विप्रकारीका काम किया हुआ है, वही स्वामी राम क्या इती हंगुरी पेदके नीचे रहे हैं ? हा ! इस अनर्थाका कारण भी ही है—

हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सामर्थ्यं इमे मनः ।  
 ईदृशी शयनः शय्यामभिरोते क्षनायकम् ॥  
 सार्वभौमकुले जनः सर्वलोकगुणसाहसः ।  
 सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्समम् ॥  
 कथमिन्दीवरदयामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः ।  
 सुरामागी न दुःसार्धः शयितो मुनि शयनः ॥

(वा० रा० २ । ८८।१०-१२)

हाय ! मैं कितना क्रूर हूँ, हा ! मैं मारा गया, क्योंकि मेरे ही कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताजीके साथ ऐसी कठिन शय्यापर अनायकी भाँति सोना पड़ा। यद्यो ! अक्रवर्ती कुलमें उत्पन्न हुए, सबको सुख देनेवाले, सबका प्रिय करनेवाले, कमनीय-कान्ति, नील कमलके समान कान्तियाले, रक्ताक्ष प्रियदर्शन श्रीरामचन्द्रको, जो सदा ही सुख भोगनेके योग्य तथा इस दुःख-भोगके अयोग्य हैं, मेरे ही कारण इस जमीनपर सोना पड़ा।'

तदनन्तर भरतजीने उस कुश-शय्याकी प्रणाम-प्रदक्षिणा की—

कुस-सायरी निहारि मुहार्हं । कीन्ह प्रनाम प्रदक्षिण जाई ॥  
 चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई । ननई न कहत प्रीति अधिकारी ॥  
 कनकबिन्दु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीम सम लेखे ॥

यहाँसे भरतजी फिर पैदल चलने लगे, जब सेवकोंने घोड़ेपर सवार होनेके लिये विशेष आग्रह किया तब आप कहने लगे—

रामु पयदेहि पाय सिधाए । हमकहँ रथ गज बाजि बनाए ॥  
 सिरभर जाउँ उचिउ अस मोरा । सबते सेवक घरम कठोरा ॥

भाई ! मुझे तो सिरके बख चढना चाहिये । क्योंकि जहाँ रामके चरण टिके हैं वहाँ मेरा सिर ही टिकना योग्य है । सीता-राम सीता-रामका कीर्तन करते हुए भरतजी प्रयाग पहुँचे । उनके पैरोंके छाजे कमलके पत्तोंपर भोसकी सूँदोंके समान धमकते हैं—

शलाका शतकृत पायन्ह कैसे । पंजककोष ओस-कन जैसे ॥

तदनन्तर महाराज भरतजी मुनि भारद्वाजके आश्रममें पहुँचे । परस्पर गिटाचारके उपरान्त भारद्वाजजीने भी भरतके हृदयपर मानो गहरा धायात करते हुए उनसे पूछा—

कश्चित् तस्यापास्तस्त्वं पापं कर्तुंभिहेच्छसि ।

अकण्ठकं मोक्षतुमना राज्यं तस्यानुत्सव च ॥

(वा० रा० २।९०।१२)

'क्या तुम उन पापहीन श्रीरामचन्द्र और अरुणवर्षा वधकर निष्कण्ठक राज्य भोगनेकी इच्छासे तो वनमें जा वा रहे हो ?' भरद्वाजजीके इन वचनोंसे भरतजीका हृदय दुकड़े-दुकड़े हो गया । वे कानर-कण्ठसे रोते हुए बोले—

हनोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्वते ।

(वा० रा० २।९०।१३)

'भगवन् ! यदि शिवालदर्शी होकर आप भी ऐसा ही मानते हैं तब तो मैं मारा गया । ऐसा कठोर वचन नहीं कहना चाहिये ।'

कैकेय्या यद्वृतं कर्म रामराज्यविषयजनम् ॥  
 वनवासादिकं वापि नहि जानामि किञ्चन ।  
 भवत्पादयुगी भेदथ प्रमाणं मुनिसत्तम ॥  
 इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्टवर्त्मनसः ।  
 शानुमर्हसि मां देव शुद्धोवा शुद्ध एव वा ॥  
 मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि ।  
 किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शादवतः ॥

(अध्याय १० । २ । ८८।१३-१५)

'हे मुनिश्रेष्ठ ! कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभियन्तेमें विप्र बाहनेके लिये जो कुछ किया था राम-वनवासपरिके सम्बन्धमें जो कुछ हुआ, इस विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता, इस सम्बन्धमें आपके चरणयुगल ही मेरे लिये प्रमाण हैं ।' इतना कह मुनिके दोनों चरणोंको पकड़कर भरतजी कहने लगे, 'हे देव ! मैं शुद्ध हूँ या अशुद्ध, इन बातको आप भजीर्माँति जान सकते हैं । हे स्वामिन् ! श्रीरामजीके राजा रहते, मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन है, मैं तो सदा-सर्वदा श्रीरामका एक किंकर हूँ ।'

इसपर भारद्वाजजीने प्रसन्न होकर कहा 'मैं तुम्हारी सब बातें जानता था, मैंने तो तुम्हारे भाव रह करते और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिये ही तुमने ऐसा राह लिया था । वास्तवमें तुम्हारे समान बड़भारी इतना कौन है, जिसका जीवन-धन-प्राय श्रीरामके चरणकमल ही—

सो तुम्हारा जीवन-धन-प्राणा। मूर्ति भाग को तुम्हारी समान ॥  
 मुनहु भरत रघुवर मनमाही । प्रेम-पाव तुम सम कोउ नही ॥  
 लखन राम सजिहि अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सारत ही ॥

मैं जानता हूँ तुम राम, सीता, लक्ष्मणको अत्यन्त प्यारे । ये सब यहाँ रहते थे तो रातभर तुम्हारी ही प्रशंसा कर । थे। तुम तो भरत ! मानो श्रीराम-प्रेमके शरीरधारी बनार हो ।

तुम तो भरत मोर मत पूह । धरे देह जनु रामसनेह ॥

हे भरत ! सुनो, हम तपस्वी उदासी बनवासी हैं, तुम्हारी विरसे मूढ नहीं बोलते, हमारी समझसे तो हमारी गल साधनाओंके फलस्वरूप हमें श्रीराम-सीता और लक्ष्मणके दर्शन मिले थे और अब श्रीरामदर्शनके फलरूप तुम्हारे दर्शन हुए हैं, सारे प्रयागनिवासियों सहित गंगा तथा सौभाग्य है—

गल धन्य तुम जग जस लयऊ । कहि अस प्रेममगन मुनि मयऊ ॥

इसके अनन्तर भरद्वाज मुनिने सिद्धियोंके द्वारा परम सम्मान्य प्रतिथि भरतजीका ध्यातिष्य-सत्कार किया, सभी प्रकारकी विज्ञान-सामग्री उत्पन्न हो गयी। सब लोग अपनी-प्राणी इष्टानुसार खान-पान और भोगादिमें जग गये परन्तु भातजीको रामके बिना कहीं चैन नहीं है, वे किसी भी प्रयोजनमें नहीं जा सकते ।

सम्पति चकई भरत चक मुनि आयसु खेजवार ।

हेहि भित्ति आसम पीजरा राखे भा भिनुसार ॥

भरद्वाजजीकी सिद्धियोंद्वारा उत्पन्न सम्पति मानो चकई है, और भरतजी चकवा है, मुनिकी आज्ञा यहेजिया है, जिसने उस रातको भरतजीको ध्याधमरूपी पिंजरेमें बन्द कर रखा और इसी प्रकार सवेरा हो गया। चकई-चकवा रातको नहीं मिला सकते। इसी तरह विज्ञान-सामग्री और भरतजीका (ध्याधमरूपी पिंजरेमें) एक साथ रहनेपर भी निष्कार नहीं हुआ। धन्य त्यागपूर्ण भ्रातृप्रेम !

× × ×

राजा बलानेके लिये निपादको छागे करके महाराज भातजी चित्रकूटकी ओर जा रहे हैं मानो साक्षात् अनुराग ही शरीर धारण करके चल रहा हो। यहाँपर गुप्तार्जुनने कहा ही मनोहर वर्णन किया है। भरतजीके न तो पैरोंमें शूल है और न तिरपर छत्र है। वे निष्करधमालसे प्रेमपूर्ण निमग्न करते हुए जा रहे हैं। भरतजी जिस मार्गसे निकलते हैं उसीमें मानो प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ता है और वहाँका वातावरण इतना विशुद्ध हो जाता है कि वहाँके बह-चेतन जीव भरतके भवतोग-नाशक दर्शन

पाकर परमरुद्रको प्राप्त हो जाते हैं। जिन रामजीका एक बार भी नाम लेनेवाला मनुष्य स्वर्ग तरता और दूसरोंको सारनेवाला बन जाता है वे श्रीराम स्वर्ग जिन भरतजीका मनमें सदा चिन्तन किया करते हैं, उनके दर्शनसे लोगोका बन्धन-मुक्त हो जाना कौन बड़ी बात है ?

भरतजीके दर्शनसे भ्रातृप्रेमके भाव चारों ओर फैल रहे हैं, जब महाराज भरतजी श्रीराम कहकर साँस लेते हैं तब मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है, उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर वज्र और पथर भी पिघल जाते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ?

जबहि राम कहि लेहि उलासा । उमगत प्रेम मनहुँ चहुँपासा ॥

द्रवहि वचन सुनि कुलिस पखाना । पुरजत प्रेम न जाय बखाना ॥

मार्गके नर-नारी भरतजीको पैदल चलते देख-देखकर नेत्रोंको सकल करते हैं और भाँति-भाँतिकी चर्चा करते हैं। वनकी नारियाँ भरतजीके शील प्रेम और भाग्यकी सराहना करती हुई कहती हैं—

चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राज ।

जात मनावन रघुवरहि मरत-सरिस को आज ॥

भायव मगति भरत आचरनु । कहत सुनवहुष-दूषन हरनु ॥

‘बहो ! पिताके विषे हुए राज्यको छोड़कर धात्र भरत फल-मूल खाते हुए पैदल ही श्रीरामको मनाने जा रहे हैं, इनके समान भाग्यवान् दूसरा कौन होगा ? भरतजीके आईपन, भक्ति और आधाचर्योंका गुण गाने और सुननेसे दुःख और पाप नाश हो जाते हैं ।’

भरतका ऐसा प्रभाव पड़ना ही चाहिये था !

भरतजीसहित सबको दृष्ट मसुन होने लगे, जिससे प्रेम और भी बढ़ा, प्रेमकी विडम्बतासे पैर उकटे-सीधे पड़ रहे हैं, इतनेमें रामसला निपादानेने शैलशिरोमणि चित्रकूटको बुरसे दिखजाया। कहा ! इसी पुण्यपान पर्वतपर मेरे स्वामी रघुनाथजी रहते हैं, यह सोचकर भरतजी प्रणाम करने लगे और सियावर रामचन्द्रजीकी जय-ध्वनि काने लगे। उस समय भरतको बैसा प्रेम था, उमका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते। कविके लिये तो यह उतना ही कठिन है जितना आईगा-ममनावाःके मन्त्र मनुष्यके लिये ब्रह्मानन्द !

भरत प्रेमु तेहि सनय जत ठत करि सकेन तेनु ॥

कहिदि अगन जिनि ब्रह्ममुख अर-कम-मजिन-जनेनु ॥

भरतजीने सारे समुदायसहित मन्दाकिनीमें स्नान किया और सब लोगोंको वहीं छोड़कर वे केवल शत्रुघ्न और गुहको साथ लेकर भागे चले । यहाँपर भरतजीके मनकी दशाका चित्रण श्रीगोस्वामीजीने बहुत ही सुन्दर किया है—

समुक्षि मातुकरतव सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मनमाहीं ॥  
राम-रूपन-सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहि तमि ठाऊँ ॥

मातु मते महँ मानि मोहि जो कुल कहहि सो थोर ।  
अथ अवगुन छमि आदरहि समुक्षि आपनी ओर ॥ -

जौं परिहरहि मलिन मन जानी । जौं सनमानहि सेवक मानी ॥  
मोरे सरन रामकी पनही । राम सुस्वामि दोष सब जनही ॥

धन्य भरतजी ! जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु जब शत्रुघ्नके दूत, सब नगर-निवासी, माता कौसल्या, निषाद और त्रिकालदर्राँ भरद्वाजजी तकने एक एक बार संदेह किया तो यहाँ भी लक्ष्मण-सीता मुझपर संदेह न करेंगे या श्रीराम ही मुझे मन-भक्तिन समझकर न त्याग देंगे, इसका क्या भरोसा है ? यह कौन मान सकता है कि माताके मतके साथ मेरा मत नहीं था । जो कुछ हो, राम चाहे त्याग दें, परन्तु मैं तो उनकी जूतियोंकी शरण पड़ा रहूँगा । माताके नाते मैं तो दोषी हूँ ही । पर श्रीराम सुस्वामी हैं, वे क्षयरप हूया करेंगे ।

छिद्र सब माताकी करतव यावृत्ता जाती है तो पैर पीछे पड़ने लग जाते हैं, अपनी भक्तिकी घोर देखकर कुछ भागे बढ़ते हैं और जब धीरधुनायत्रीके स्वभावकी घोर वृत्ति जाती है तो मार्गमें ज्वर-ज्वर पाँव पड़ते हैं । इस समय भरतजीकी दशा वैसी ही है जैसे जबके प्रवाहमें भँवरकी होती है, जो कभी पीछे हटता है, कभी अचर साता है और कभी छिद्र भागे बढ़ने लगता है । भरतके इस प्रेमको देखकर निषादराज भी तन-मनकी मुधि भूखगया ।

केरति मन्दि आनुकूल कोरी । अरत मन्ति बर श्रीराम कोरी ॥  
बह समुहान रघुनावमुमात्र । तब पय परत ठगारत पात्र ॥  
मानदलःतेदि अरमर कैमी । अर-प्रराइ अर-अरि-मन्ति जैमी ॥  
देजि मरत कर मोक्ष सवेरू । आ निचरदेदि समर विदेरू ॥

अरन-रघुना प्रेममें विह्वल हुए कहे जा रहे हैं—

स तव बरदुःखरति बिचर अररिबिदुनि परदिन करिः ।  
दररं रात्रय दुःखिन्वरात्रयबेह बचदररुः कुराः ॥

अहो ! सुघनमोहमूनि रामपादारविन्दोद्धितमूल्की पश्यामि यत्पादरजोविमृग्यं ब्रह्मादिदेवैःश्रुतिभिश्च निरम् (अध्यात्म रा० २।१।२-

जहाँ श्रीरामके चरण, शंभुश, श्वजा और कमल चिन्होंसे अंकित शुभ चरण-चिह्न देखते हैं वहाँ रोने लगते हैं और कहते हैं कि भागो ! धन्य हैं जो श्रीरामके उन चरणोंसे चिह्नित भूमि पर चल रहे हैं, जिन चरणोंकी रज मन्नादि देवता और वेद स खोजते रहते हैं ।

भरतकी इस अवस्थाको देखकर पशु, पत्नी और हुए मुग्ध हो गये । पशु-पत्नी जब पापायकी भाँति पृथ्वी जगाकर भरतकी घोर देखने लगे और हृषादि द्रवित हो खिलने-डोखने लगे—

होत न मूठक माठ भरतको । अचर सचर चर अचर करा को ।

भरत-शत्रुघ्नकी यह दशा देख निषादराज प्रेममें लम्ब होकर रास्ता भूख गया । दो पागलोंमें तीसरा भी लम्ब होनेसे कैसे बचता ? तीनों ही मतवाले हो गये । देवतामें पूज्य बरसाकर निषादको सावधान करते हुए रास्ता बसाया । बकिहारी प्रेमकी !

X X X

इधर लक्ष्मणजीको संदेह हुआ, उन्होंने सब कि भरत सुरी भीषणसे आ रहे हैं, अतः वे भीतिको भूख करने लगे, भ्राम में उन्हें भक्षीभाँति टिपा दूँगा—  
राम निरादर कर कल पार्ई । सोवहु सवर रोत्र होउ नई ॥

श्रीरामने लक्ष्मणजीकी भीषणकी प्रतीति अपने भरतका महान समझाया, लक्ष्मणजीका चित्त राग्य हो गया ।

भरतका जीवन क्या ही मार्मिक है । सर्वत्र सगुर्ण निर्दोष होते हुए भी सबके संदेहका शिकार बनना सारा है । भरतके मरुत सर्वथा शान्तिप्रिया-शून्य स्वभावका महाशुभकर इन्द्रकारके संदेहका इतिहास बगल में नहीं लिखता । इननेत्र भी भाग सब करने हैं, इन्द्रा ध्यामरुपा नहीं कर लेने । शान्ति, प्रेम और अहिंसाने अपनी निर्दोषताका बंधा बसाकर आशुपय सब करने हैं ।

कुछ ही समय बाद श्रीभारतीजी की आ मुझे भी दूरसे ही मनोचकागोंके साथ हुए हुए श्रीरामकी लक्ष्मणायनवर जैसे देखकर हीने और हुए हुए लक्ष्मण नेने हुए कहे—

यः संसदि प्रकृतिभिर्भेद्युक्त उपासितुम् ।  
 वनैर्भृगोरुपासीनः सोऽथमात्से ममाप्रजः ॥  
 वासोभिर्नहुसाहसैर्यो महात्मा पुरोचितः ।  
 मृगानिने सोऽथमिह प्रवर्त्ते धर्ममाचरन् ॥  
 अचारपद्यो विविधाशिक्षाः सुमनसः सदा ।  
 सोऽथ जटामारमिन् सहेते रायवः कथम् ॥  
 यस्य यज्ञैर्यथादिदैर्युक्तो धर्मस्य संचयः ।  
 शरीरज्ञेशसंभूतं स धर्मं परिमार्त्ति ॥  
 चन्दनेन महाहोण यस्याजमुपसेवितम् ।  
 महेन तस्यांगमिदं कथमार्त्स्य सेव्यते ॥  
 ननिमित्तमिदं दुःखं प्राप्नो रामः सुखोचितः ।  
 पिन्नोचितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥

( बा० रा० २ । १६ । ३१ से ३६ )

मेरे बड़े भाई राम, जो राजदरबारमें प्रजा और मन्त्रियों  
 द्वारा उपासित होने योग्य हैं वे, आज इन जंगली पशुओंसे  
 उपासित हो रहे हैं । ओ महात्मा धर्मोपासीमें उत्तमोत्तम  
 बहूपुत्र यहाँको धारण करते थे वे आज धर्माचरणके लिये  
 इन जिनमें वनमें केवल मृगवाला धारण किये हुए हैं । जो  
 भीमयुवाजी एक दिन अपने मलकपर अनेक प्रकारकी  
 सुगन्धित पुष्पमालाएँ धारण करते थे आज वे इस जटामार-  
 को कैसे सह रहे हैं ? जो आत्विजों-द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ  
 करते थे वे आज शरीरको अत्यन्त क्रोध देते हुए धर्मका  
 सेवन कर रहे हैं । जिनके शरीरपर सदा चन्दन लगाया  
 जाता था आज उनके शरीरपर मैल जमी हुई है । हाय !  
 निरन्तर सुख भोगनेवाले वे मेरे बड़े भाई श्रीरामजीको  
 आज मेरे लिये ही हतना असह्य कष्ट सहन करना पड़  
 रहा है, मुझ क्यूँके इस लोकनिन्दित जीवनको चिह्नार है ।'  
 जो विहाय करते और भाँसुघोंकी भ्रजव धारा बहाते हुए  
 चलते श्रीरामके समीप जा पहुँचे, परन्तु अत्यन्त दुःखके  
 कारण उनके चरणोंतक नहीं पहुँच पाये । बीच ही में 'हा भाय्य,  
 प्रभुआकर हीनकी अति गिर पड़े । शोकसे गला रुक गया ।  
 मैं कुछ बात नहीं कह सके । इसप्रकार—

चरितं श्रीरवसने प्राज्जलि पतितं भुवि ।  
 दरशं रामो दुर्दशं युगान्ते भास्करं यथा ॥

( बा० रा० २ । १०० । १ )

'जटा बरकलघारी भरतको हाथ छोड़ें हुए जमीनपर  
 पड़े श्रीरामने देखा, भरतजीकी क्षान्ति उसी प्रकार मज्जि  
 गयी थी, जैसे प्रलयकालमें सूर्यकी होती है । श्रीरामने

विवर्ण और दुर्बल भरतको बहुत ही कठिनतासे पहचाना  
 और बड़े आदरके साथ जमीनसे उठाकर उनका सिर धूँध  
 गोदमें बैठाकर कहा । 'भाई ! तुम्हारा यह वेश क्यों ? तुम  
 जटा-बलकल धारणकर राज्य त्यागकर वनमें कैसे आये !'  
 इसपर भरतजीने पिताकी श्रुत्युक्त संवाद सुनाया और कहा  
 कि 'मेरी मा कैंकेयी विधवा होकर निन्द्याके घोर नरकमें पड़ी  
 है, मैं आपका दासालुदास हूँ, भाई हूँ, शिष्य हूँ, आप  
 मुझपर दया करें ।

पवित्र सचिवैः सार्व शिरसा याचितो मया ।

अनुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥

( बा० रा० २ । १०१ । १२ )

पिताका मरणसंवाद सुनते ही श्रीरामकी छाँसोंमें  
 धाँसू भर आये । माताओं और गुरु वरिष्ठादि माह्वयोंको  
 प्रणामकर तथा सबसे मिलकर श्रीरामने मन्दाकीनीपर जाकर  
 स्नान किया, तर्पणकर पियददान दिये । उस दिन सबने उपवास  
 किया । दूसरे दिन सबजोग एकत्र हुए, तब भरतजीने  
 राज्याभिषेकके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की और कहा कि—

राज्यं पाञ्चन पिन्धते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा ।

धृत्रियाणामयं धर्मो यत्रजापरिचरतनम् ॥

इष्टया यज्ञैर्हृदिविभैः पुत्रानुत्पाद्य तन्वदे ।

राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यासि ततो वनम् ॥

इदानीं वनवासस्य कालो मेव प्रसीद मे ।

मातुर्मे दुःखत्वं किञ्चित् स्मृतं नास्ति पाहि नः ॥

( बा० रा० २ । १० । २३-२६ )

आप सबमें बड़े हैं, मेरे पिताजीके समान हैं, अतः आप  
 राज्यका पाञ्चन कीजिये । प्रजा-पाञ्चन ही चरित्रोंका धर्म है ।  
 अनेक प्रकार यज्ञ करके एवं कुल-मुद्रिके लिये पुत्र उत्पन्न करके  
 पुत्रको राजसिंहासनपर बैठाकर बाद आप वनमें पचारियेगा ।  
 यह वनवासका समय नहीं है । मुझपर कृपा कीजिये, मेरी  
 मातासे जो कुञ्चं बन गया है उसे मूककर मेरी रक्षा कीजिये ।

हतना कहकर भरतजी दृष्टकी तरह श्रीरामके चरणोंमें  
 गिर पड़े, श्रीरामने स्नेहसे उठाकर गोदमें बैठाया और  
 छाँसोंमें धाँसू भरकर चरिते श्रीभरतजीसे बोले—'भाई !  
 पिताजीने तुम्हें राज्य दिया है, और मुझे वन भेजा है—

अतः पितुर्बन्धः कर्मनाशान्दाम्नीयवत् ॥

पितुर्बन्धनमुद्दहय स्वतन्त्रो वरुणु वरुणै ।

स जीवनेन मृतको देहान्ते निरचं ब्रह्म ॥

( बा० रा० २ । १०१ । २१-२२ )

भरतजीने सारे समुदायसहित मन्दाकिनीमें स्नान किया और सब लोगोंको वहीं छोड़कर वे केवल शत्रुघ्न और गुहको साथ लेकर भागे चले । यहाँपर भरतजीके मनकी दयाका चित्रण श्रीगोस्वामीजीने बहुत ही सुन्दर किया है—

समुत्ति मानुकरतव सकुचाहीं । करत कुतरक कोटिमनमाहीं ॥  
 राम-रूपन-सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तनि ठाऊँ ॥

मातु मते महेँ मानि मोहि जो कुछ कहहि सो थोर ।

अथ अबगुन छमि आदरहि समुत्ति आपनी ओर ॥

जौ परिहरहि मरिन मन जानी । जौ सनमानहि सेवक मानी ॥  
 मोरे सरन रामकी पनही । राम सुखनि दोष सब जनही ॥

धन्य भरतजी ! जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु जब अपोष्पाके दूत, सब नगर-निवासी, माता कौसल्या, निपाद और त्रिकालदुरी भरद्वाजजी तकने एक एक बार सन्देह किया तो यहाँ भी अक्षयणी-सीता सुम्भर सन्देह न करेंगे या श्रीराम ही मुझे मन-भङ्गिन समझकर न त्याग देंगे, इसका क्या भरोसा है ! यह कौन मान सकता है कि माताके मतके साथ मेरा मत नहीं था । जो कुछ हो, राम चाहे त्याग दें, परन्तु मैं तो उनकी जूतियोंकी शरय पड़ा रहूँगा । माताके नाते मैं तो दोषी हूँ ही । पर श्रीराम सुस्वामी हैं, वे अपरय हृषा करेंगे ।

फिर जब माताकी करतुन याद आ जाती है तो पैर पीछे पड़ने लग जाते हैं, अपनी भक्तिकी घोर देतकर कुछ भागे बढ़ते हैं और जब शत्रुघ्नापजीके स्वभावकी घोर वृत्ति जाती है तो मार्गमें अरुन्ध-अरुन्ध पाँव पड़ते हैं । इस समय भरतजीकी दशा वैसी ही है जैसे अन्नके प्रवाहमें भँवरकी होती है, जो कभी पीछे हटता है, कभी चकर खाता है और कभी फिर भागे बढ़ने लगता है । भरतके इस प्रेमको देखकर निपादराज भी ठन-मनकी मुवि भूषणया ।

केलि मनहि मानुहुत कोरी । करत माउते बर बीरज कोरी ॥  
 बर सनुसत रघुनाथमुमाऊ । ठब पय परत ट्याऊक पाऊ ॥  
 भरतदस्ततेहि अवनरकैसी । अट-अरुह बड-अनि-मति प्रैनी ॥  
 देखि भरत बर सोच सनेहू । मा निपदतेहि मत्रय निदेहू ॥

भरत-शत्रुघ्न प्रेममें विह्वल हुए चले जा रहे हैं—

स तव बन्धुवृत्तनि कीचन चरन्निचिहन्नि वरनि सर्तः ।  
 दरसं तानस मुनेतिवन्त्यन्वपेर वदरतः कुम्भुक ॥

अहो ! सुषन्मोहममूनि रामचन्द्राविन्दुइउन्नुगं  
 पदयामि यत्पादरजोसिमृग्ये ब्रह्मादिदेवैःशुचीनिब्र निन  
 (अभयान ट. २।१।३)

यहाँ श्रीरामके वज्र, शंक्रा, ध्वजा और कमल चिन्होंसे अंकित शूभ चरख-चिह्न देखते हैं वहाँ होना उस चरखरजमें छोटने लगते हैं और कहते हैं कि यो धन्य है जो श्रीरामके उन चरखोंसे चिह्नित मूनि बन कर रहे हैं, जिन चरखोंकी रज महादि देवता और वेद खोजते रहते हैं ।

भरतकी इस अवस्थाको देखकर पट्ट, पत्नी और शत्रुघ्न हो गये । पट्ट-पत्नी जब पापापकी मति एक जगाकर भरतकी घोर देखने लगे और वृषादि इति हिङ्गने-बोझने लगे—

हेतन भूतक भाठ भरतको । अबर सपर पर भरा बर को  
 भरत-शत्रुघ्नकी यह दशा देख निपादराज प्रेममें हल होकर राखा भूख गया । दो पागलोंमें तीसरा भी क्या होनेसे कैसे बचता ! तीनों ही मतवाले हो गये । देखते-पूछ बरसाकर निपादको सावधान करने हुए राखा वरिहारी प्रेमकी !

× × ×

इधर अक्षयणीकी सन्देह हुआ, इन्होंने कि भरत जुरी भीपतसे आ रहे हैं, अतः वे भीतिके करने लगे, भात्र में उन्हें मञ्जीमति शिवा हूँ—  
 राम निपादर कर पक पाई । सोनहु सन सेव को ।

श्रीरामने अक्षयणीकी भीषणकी इतना भरतका महत्त्व समझाया, अक्षयणीका चित्त

भरतका बीयन बधा ही मारिब है । निर्दोष होते हुए भी सबके सन्देहका हिना है । भरतके महत्त्व सर्वथा तापत्रियया महाशुभकर इमयकाके सन्देहका नहीं मिळता । इननेर भी भात्र धामदया नहीं कर खेने । कागिन, धरनी निर्दोषताका वंका बजाए

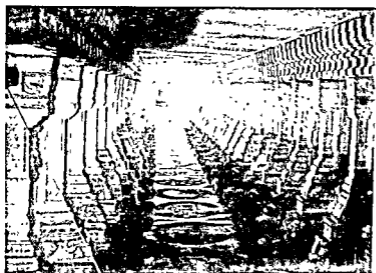
कुछ ही समय बाद श्रीराम ने भी अक्षयणीके वरिहारी प्रेमको









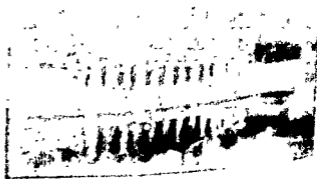


श्रीरामेश्वरजीके  
मन्दिरकी  
प्रदक्षिणा (फिरी)



राम भराणा

श्रीराम (मन्दाब)



वा राम-शत्रुण कोई नहीं कहता, परन्तु राम-लक्ष्मण सभी कहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी धीर, वीर, तेजस्वी, ब्रह्मचर्यव्रती, इन्द्रियविजयी, पराक्रमी, सरल, सुन्दर, तितिक्षा-सम्पन्न, निर्भय, निष्कण्ट, त्यागी, बुद्धिमान, पुरुषार्थी, तपस्वी, सेवापरी, नीतिके जाननेवाले, सत्यव्रती और रामगतप्राण हैं। उनका सबसे मुख्य धर्म श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनका अनुसरण करना था। वे श्रीरामसेवामें अपने आपको भुल जाते थे। भरतजीका विनय और मधुरता युक्त गम्भीर प्रेम जैसे धनोत्सा है, वैसे ही श्रीलक्ष्मणजीका धीरतायुक्त संग्राम्युक्त अनन्य प्रेम भी परम आदर्श है।

लक्ष्मणमें साथ खेलने-खानेके उपरान्त पन्द्रह वर्षकी उमरमें ही लक्ष्मणजी अपने यद्द भाई श्रीरामजीके साथ विश्वामित्रके यज्ञरथार्थ चले जाते हैं। वहाँ सब प्रकारसे भाईकी सेवामें नियुक्त रहते हैं। इनकी सेवाके दिग्दर्शनमें जनकपुरका वह दृश्य देखना चाहिये, जहाँ रातके समय विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मण महाराजा जनकके कतिपय रूपमें डेरें पर डेरें हैं। गुलाईजी उनके बर्तावका इतना प्रशंसन करते हैं—

समय सप्रेम विनीत अति शकुच-सहित दोउ भाइ ।

गुरु-पद-पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥

मिसे प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा । सबही सन्ध्या बन्दन कीन्हा ॥  
 कहत कथा इतिहास पुरानी । रुबिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥  
 मुनिबर सयन कीन्त तब जाई । उठे भरन भाँपन दोउ भाई ॥  
 निन्दे भरनसरोदह लागी । करत निबिध जप जोग विरामी ॥  
 वे दोउ बंधु प्रेम जुनु जीते । गुरु-पद-पदुम पठोउत प्रीति ॥  
 बार बार मुनि आग्या दीन्ही । रपुनर जाइ सयन तब कीन्ही ॥  
 भाँपन भरन लयन उर लाप । समय सप्रेम परम तनुपाप ॥  
 पुनि पुनि प्रभु कह सोनुह तस्ता । पौढ़े धरि उर पदजलजता ॥

उठे रुषन मिश्रि विगत मुनि अरुन-सिखा-पुनि कान ।

गुनो पहिलेही जगतपति जोगे राम गुमान ॥

बधा, क्या ही सुन्दर भादर्य दृश्य है ! श्रीराम-लक्ष्मण गुरु देखने लगे थे, वहाँ मगरवासी भर-भारी और समवयस्क का छोटे बाळकोंके प्रेममें रम गये, परन्तु अपने होते हुए विश्वामित्रजीका उर खगा। घतपूष बाळकोंको लक्ष्मण-शुभाकर यह मिथिलामोहिनी जुगल-जोड़ी डेरें पर और धारी । काकर भय, प्रेम, विनय और संकोचके साथ लक्ष्मणोंमें प्रत्यागकर दोनों भाई सुपचाप लड़े रहे, जब लक्ष्मणने आशा ही लच बँडे, फिर गुरुकी आज्ञासे डीक सम-प-

पर सन्ध्यावन्दन किया। तदनन्तर कथा-पुराण होते-होते दो पहर रात बीत गयी। तब मुनि विश्वामित्रजी सोये। अब दोनों भाई उनके चरण दधाने लगे। मुनि बार-बार शोकते और सोनेके लिये कहते हैं पर चरण दधानेके लाभ-को वे सोचना नहीं चाहते, बहुत कहने-सुननेपर श्रीराम भी खेड गये, अब लक्ष्मणजी उनके चरणोंको हृदयपर रखकर भय-प्रेम सहित सुपचाप दधाने लगे। ऐसे सुपचाप प्रेमसे दधाने लगे कि महाराजको नींद आ जाय। श्रीरामने बार-बार कहा, तब लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणकमलोंका हृदयमें ध्यान करते हुए सोये। प्रातःकाल सुनौकी ध्वनि सुनते ही सबसे पहले लक्ष्मणजी उठे, उनके हाथ श्रीरामजी और तदनन्तर गुरु विश्वामित्रजी। इस आदर्श राजिष्यासे ही दिनचर्याका भी अनुमान कर लीजिये। आज ऐसा दृश्य सपनेकी-सी बात हो रही है। इससे अनुमान हो सकता है कि श्रीलक्ष्मणजी रामकी किसप्रकार सेवा करते थे।

× × ×

श्रीलक्ष्मणजीकी आनुभक्ति अनुलनीय है। वे सब कुछ सह सकते थे परन्तु श्रीरामका अपमान, तिरस्कार और दुःख उनके लिये असह्य था। अपने लिये-अपने गुणोंके लिये उन्होंने कभी किसीपर कोप नहीं किया। अपने जीवनको तो सर्वथा त्यागमय और रामकी कठिन सेवामें ही खगाये रक्खा, परन्तु रामका तनिक-सा तिरस्कार भी उनको सहनना देता और वे भयानक काजनागकी भाँति कुंकार मार उठते। फिर उनके सामने कोई भी बर्षा न हो वे किसीकी भी परवा नहीं करते।

जनकपुरके स्वर्णवर्मसे सब शिवधनुषको तोड़नेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ, तब जनकजीको क्या डंरा हुआ, उन्होंने दुःखभरे शब्दोंमें कहा—

अब जनि कोउ मासह भट मानी । बीर-विहीन मही मैं मानी ॥

तत्रहु आस निर निर गृह जाऊ । शिकान बिधि बैदहि निबडू ॥

जे बनेउं बिनु भट महि मरु । ठी वन करि हंसेउं न हँतरु ॥

जनकजीकी इस बाकीको सुनकर सीताकी कोर रो-कर लोग दुखी हो गये। परन्तु लक्ष्मणजीके मनकी कुछ हृयरी ही करग्या है। अब जनकके मुँहमें 'अब कोई भी रामका अभिमान न करे' वह शब्द निकले, सभी ने अनुका उठे, उन्होंने सोचा कि श्रीरामकी उपस्थितिमें अन्ध बड क्या कर रहे हैं, परन्तु रामको आला हरी थी, कुछ रहे अँकित अब जनकजीने बार-बार चरणोंको बँगरिदीय



घोरद्वार शब्दोंमें रामके सामने रखते हैं, उनकी उक्तिवोंका बरतन करते हैं, कभी विद्वज्ज होकर विज्ञाप नहीं करते। पुरुष तो उनमें टपका पड़ता है, परन्तु जब श्रीरामका अन्तिम निर्णय जान लेते हैं, तब अपनी सारा पण सर्वथा छोड़कर रामका सर्वतोभावसे अनुगमन करने लगते हैं। शत्रुघ्नी और कैकेयीके इस आचरणसे दुर्गा हुई माता सीताका विज्ञाप करते देख भ्रातृप्रेमी जन्मव्यग्री मातासे अपने बने—

अनुत्कोऽस्मि भवेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः ।  
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥  
दीप्तमग्निमरुष्यं वा यदि रामः प्रवेक्षयति ।  
प्रसिद्धं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥  
इतिमी वीरदिदुःखं ते तमः सूर्यं इवेदितः ।  
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवक्षेत्रं पश्यतु ॥

( वा० रा० २ । २१ । १२-१८ )

'हे देवि ! मैं सत्य, धनुष, दानपुत्र्य और हृष्टकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं यथार्थ ही सब प्रकारसे अपने बड़े भाई श्रीरामका अनुयायी हूँ। यदि श्रीराम जलती हुई अग्निमें या घोर धनमें प्रवेश करें तो मुझे पहले ही उनमें प्रवेश हुआ समझो ! हे माता ! जैसे सूर्य उदय होकर सब प्रकारके अन्धकारको हर लेता है उसी प्रकार मैं अपने आत्मसे आपके दुःखको दूर करूँगा। आप और श्रीरामवन्धु मेरा पराक्रम देखें।' इन वचनोंमें भ्रातृप्रेम केना सुलक्षणा है !

इसके अनन्तर ये श्रीरामसे हर तरहकी वीरोक्ति करने लगे—'हे आर्य ! आप सुगन्त राज्यपर अधिकार रखें। आप किसी तरहका भय न करें, मैं धनुष-बाण अपने लिये आपकी सेवा और रक्षाके लिये सर्वदा तैयार हूँ। मैं लक्ष कालरूप होकर आपकी सहायता करूँगा तब अपनी शक्ति है जो कुछ भी विजय कर सके ? अयोध्याभरमें ही कैकेयीको छोड़कर दूसरा कोई भी आपके विरुद्ध नहीं परन्तु यदि सारी अयोध्या भी हो जाय तो मैं अयोध्या-रक्षक अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मनुष्यहीन कर दालूँगा। आपके मामा या उनके कोई भी हितैषी मित्र पण लगे तो उनका भी पण कर दालूँगा। कैकेयीमें आसक्त पिताजी यदि कैकेयीके वसाइनेसे हमारे शत्रु होंगे तो उनकी कैद कर दूँगा या मार दालूँगा। इसमें मुझे पाप नहीं लगेगा। आप करनेवालोंको शिक्षा देना धर्म है।'

त्वया चैव मया चैव इत्या वैरमनुत्तमम् ।  
काऽस्य शक्तिः श्रियं दातुं मरताग्निरिशासन ॥  
( वा० रा० २ । २१ । २५ )

'हे शत्रुसूदन ! आपसे और मुझसे वैर काके किसकी शक्ति है जो भरतको राज्य दे सके !'

श्रीरामने लक्षमणको सन्तवना देते हुए कहा—

तव लक्ष्मण ! जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।  
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥  
धर्मो हि परमो लोके धर्मं सत्त्वं प्रतिष्ठितम् ।  
धर्मसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमनुत्तमम् ॥  
सोऽहं न शक्यामि पुनर्निवेगमतिवर्तितुम् ।  
पितुर्हि वचनाद्गीर ! कैकेयाहं प्रचोदितः ॥  
वदेतां विमुञ्जानासौ धृष्यधर्मश्रितो मतिम् ।  
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्यं मद्भुजिरनुगम्यताम् ॥  
( वा० रा० २ । २१ । २६ । ३१ । ३४ । ३५ )

'लक्षमण ! मैं जानता हूँ, तुम्हारा मुझमें बड़ा प्रेम है और यह भी जानता हूँ कि तुममें धराप्रेय पराक्रम, तेज और सत्व है, परन्तु भाई ! इस लोकमें धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य भरा है। पिताके वचन धर्म और सत्यसे युक्त हैं। हमें उनका पालन करना चाहिये। हे वीर ! सत्य और धर्मको श्रेष्ठ समझनेवाला मैं कैकेयीके द्वारा प्राप्त हुई पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। तुम भी इस आज्ञाधर्मवाजी उग्र वृत्तिको छोड़ दो और इस तीक्ष्णबाणका त्यागकर विशुद्ध धर्मका आश्रय ले मेरे विचारका अनुसरण करो।

हे भाई ! तुम क्रोध और दुःखको छोड़कर धैर्य धारण कर, अपना मनको भ्रूजकर इतित हो जाओ। पिताकी सत्यवादी और सत्यप्रतिष्ठ हैं, वे सत्यप्युक्तिके भयमे परलोकमें रह रहे हैं, मेरे द्वारा सत्यका पावन होनेसे वे निर्भय हो जायेंगे। मेरा अभियेक न रोका गया तो पिताजीका सत्य कायणा, जिससे उनको बड़ा दुःख होगा और उनका दुर्लभ होगा मेरे लिये भी बड़े ही दुःखकी बात होगी। हे भाई ! मेरे वचनसमें दैव ही प्रधान कारण है, नहीं तो जो कैकेयी माता मुझपर इतना अधिक स्नेह रखती थी वह मेरे लिये वचनसका वरदान क्यों माँगती ? उसकी बुद्धि दैवने ही विगाही है। आज्ञातक औसत्वा और कैकेयी कादि मर्मा विगाहीने मेरे साथ पृथ-मा नर्नाच किया है। कैकेयी मुझे



बेमौमी विकाराज मूर्ति और कहाँ यह माताके सामने  
बचनेकी-सी करिवाय ! यही तो लक्ष्मणजीके भ्रातृप्रेमकी  
विशेषता है । श्रीरामजी भाई लक्ष्मणके इस व्यवहारसे  
दुःख हो गये और उन्हें धार्तरीसे खगाकर बोले—

सिन्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।

प्रिय प्राणसमो वदमो विधेयश्च सखा च मे ॥

(वा० रा० २।११।०)

भाई ! तुम मेरे स्नेही हो, धर्मपरायण, धीर, सदा सन्मार्ग-  
में स्थित हो, मुझे माथोंके समान प्रिय हो, मेरे वशवर्ती हो,  
मेरे आशाकारी हो और मेरे मित्र हो ! इसमें कुछ भी  
कम्ये नहीं है, परन्तु तुम्हारे साथ जो चलनेसे यहाँ दुखी  
पिता और शोकपीडिता माताओंको कौन सान्त्वना देगा !

मात-पिता-गुरु-स्वामिं सिख सिर धरि करहि सुभाय ।  
रहेउ लाम तिन्ह जनमकर नतख जनम जग जाय ॥

कस जिय जानि सुनहु सिख भाई करहु मानु-पिनु पद सेवकाई ॥  
रहु करहु सच कर परितोषू । नतख तात होबहि बड़ दोषू ॥

बही ही शुभ शिष्या है, परन्तु चातक तो मेघकी स्वाति-  
रूपको छोड़कर गंगाकी धोर भी नहीं ताकना चाहता, एक-  
दूसरे लक्ष्मण एक बार तो सहम गये, प्रेम-वश कुछ बोले न  
थे, फिर झड़काकर चरणोंमें गिर पड़े और आँसुओंसे  
आँसु धोते हुए बोले—

दीन्ह मोहि सिख नीक गोसाईं । लागि अगम मोरी कदराईं ॥

नकर धीर धरम-धुर-धारी । निगम नीति कहैंते अधिकारी ॥

मैं सिनु प्रभु-सनेह प्रतिपाला । मंदर मेरु कि लेइ मराला ॥

तुम सिनु मातु न जानैं काहु । कहैंते सुभाउ नाथ पतियाहु ॥

कहैं कृपि जगत सनेह सगारि । प्रीति प्रतीति निगम निज गारि ॥

सिरे सबहि एक तुम्ह स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥

धरमनीति उपदेशिय ताही । कीरति, भूति, सुगति प्रिय जाही ॥

तन कम बचन चरनरत होई । कृपासिधु परिहरिय कि सोई ॥

भगवान्ने देखा कि अब लक्ष्मण नहीं रहेंगे, सब उन्हें  
छोड़ दो, चपट्या—

सिंहु बिदा मातुसन जाई । आवहु बेगि चलहु नन माई ॥

लक्ष्मण्य करलेसे माता सुमित्राजीके पास गये कि कहीं  
या शोक न दें । परन्तु वह भी लक्ष्मणकी ही भा थी,  
होंने बड़े प्रेमसे कहा—

रामें ददारपं विदि मों विदि जनकामजाय ।

अयोध्यामटवी विदि गच्छ तात बयापुखन् ॥

आभो भेटा ! सुलसे वनको जाओ, श्रीरामको दशरथ,  
सीताको मुझे और वनको अयोध्या समझना । भेटा !

अनघ तहाँ जहाँ रामनिवासू । तहाँ दिवस जहाँ मानुप्रकासू ॥

अस जिय जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन काहू ॥

तुम्हारेदि माग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति-मगत जासु सुत होई ॥

नतख बौद्ध मकि नादि निपानी । राम-बिमुख सुतते बड़ि हानी ॥

लक्ष्मणका मनचाहा हो गया, वे दौड़कर श्रीरामके  
पास पहुँच गये और सीताके साथ दोनों भाई अयोध्या-  
वासियोंको दबाकर वनकी ओर चले दिये ।

× × ×

एक दिनकी बात है, वनमें चलते-चलते सन्ध्या हो  
गयी । कभी पैदल चलनेका किसीको अभ्यास नहीं था,  
सीनों जाने थके हुए थे, वनमें चारों ओर काले साँप  
धूम रहे थे । लक्ष्मणने अगह साफकर एक पेड़के नीचे  
कोमल पत्ते बिछा दिये । श्रीराम-सीता उसपर बैठ गये ।  
लक्ष्मणजीने भोजनका सामान जुटाया : श्रीराम इस कहको  
देखकर स्नेहवश जड़मणसे बार-बार कहने लगे कि 'भाई !  
शुभ अयोध्या लौट आओ, यहाँ आकर माताओंको सान्त्वना  
दो । यहाँके कष्ट-सुखको और सीताको ही भोगने दो ।'  
इसके उत्तरमें जड़मणने बड़े ही मार्मिक शब्द कहे—

न च सीता त्वया हीना न आहमपि राघव ।

मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्सयाविबोद्धवृत्ता ॥

नहि तातं न शत्रुभं न सुमित्रां परन्तप ।

द्रष्टुमिच्छेममदाहं स्वर्गं ज्ञापि त्वया भिना ॥

( वा० रा० २।५१।११-१२ )

'हे रघुनन्दन ! सीताजी और मैं आपसे अलग रहकर  
उसी तरह नहीं जी सकते, जैसे खलसे निकालनेपर मनुष्यों  
नहीं जी सकते । हे शत्रुनाशन ! आपको छोड़कर मैं माता,  
पिता, भाई शत्रुभ और स्वर्गको भी नहीं देखना चाहता।'

अन्य भ्रातृ-प्रेम ! इसीलिये तो श्रीराम भी लक्ष्मणके  
साथ प्रायः देनेको तैयार हुए थे !

जित समय निषादास्य गुरुके यहाँ श्रीराम-सीता रातके  
समय लक्ष्मणजीके द्वारा तैयार की हुई धारणियोंकी टाप्या-  
पर सोते हैं उस समय भी लक्ष्मण्य कुप वृत्तर कचे पररा  
दे रहे हैं, गुरुक आकर कहा है 'आपको आगनेका अन्त्य



कुछ जोग करते हैं कि श्रीलक्ष्मणजी रामसे ही प्रेम करते थे, भरतके प्रति सो उनका बिहारे बना ही रहा, परन्तु यह बात ठीक नहीं। रामकी श्रवण करनेवालेको धररप ही वे पना नहीं कर सकते थे, परन्तु जब उन्हें मालूम हो गया कि भरत दोषी नहीं हैं तब लक्ष्मणके धन्तःकरणमें अपनी कृतिपर बना ही पश्चात्प हुमा और वे भरतपर ईश्वर भद्रा तथा स्नेह करने लगे। एक समय जादेकी शत्रुमें उनके छन्द शीतकी भयानकताको देखकर लक्ष्मणजी शत्रुमामनिवासी भरतको चिन्ता करते हुए कहते हैं—

कर्मिस्तु पुरुषमात्र काले दुःखसमन्वितः ।  
 वपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे ॥  
 लक्ष्मण राज्यस्य मानस्य भोगांश्च निविषान् बहून् ।  
 तपस्वी निमताहारः शैले शीते महीतले ॥  
 शीतपि वेतामिमां नूनमभिवेकार्यमुद्यतः ।  
 नृपः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥  
 अत्यन्तसुखसंबृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः ।  
 कर्म त्वपररात्रेणु सरयूमवगाहते ॥  
 पप्रपञ्चैः श्यामः धीमात्रिहरो महान् ।  
 धर्मज्ञः सत्यवादी च हीनिषेचो जितेन्द्रियः ॥  
 त्रिषामिमांसी मयुरो दीर्घबाहुररीन्दमः ।  
 सन्त्य निविषान्भोगानाम् सन्निभना श्रितः ॥  
 जितः स्वर्गस्तन भ्रात्रा भरतेन महात्मना ।  
 वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥

( भा० रा० १३११२७-३१ )

'हे पुरुरभेष्ट ! ऐसे अत्यन्त शीतकाळमें धर्मात्मा भरत आपके प्रेमके कारण कष्ट सहकर तप कर रहे होंगे। ग्रहो ! निश्चित आधार करनेवाले तपस्वी भरत राज्य, सम्मान और निरिष प्रभारके भोग-विखासोंको त्यागकर इस शीतकाळमें रंगी जमीनपर सोते होंगे। ग्रहो ! भरत भी इसी समय ठंडकर अपने साथियोंको लेकर सरयूम नहाने जाते होंगे। अत्यन्त सुखमें पड़े हुए सुकुमार शरीरवाले भरत इनने सबके सरयूके अत्यन्त शीतकाळ जलमें डूबे स्नान करते होंगे ? अमज्जनयन रणामुन्दर भाई भरत सदा नीरोग, धर्मज्ञ, सत्यवादी, ब्रह्मचर्य धारणकी ओर कभी न ताकनेवाले, जितेन्द्रिय, शिव और मयुर-भायी और शम्बी भुजाओंवाले महात्मा हैं। ग्रहो ! आजने सब प्रकारके सुखोंका त्यागकर सब प्रकाशते धारका ही आपस खे विधा है। महात्मा भाई भरतने स्वर्गको भी

नीत लिया क्योंकि आप वनमें हैं इसलिये वे भी आपकी ही भाँति तपस्वी-धर्मका पाजनकर आपका अनुसरण कर रहे हैं।

इन वचनोंको पढ़नेपर भी क्या यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मणका भरतके प्रति प्रेम नहीं था ? इनमें तो उनका प्रेम टपका पतता है।

× × ×

लक्ष्मणजी अपनी बुद्धिका भी कुछ घमण्ड न रखके श्रीराम-सेवामें किसप्रकार अर्पित-प्राप्य थे, इस बातका पता तब लगता है कि जब पञ्चवटीमें भगवान् श्रीराम अश्वत्था-सा स्थान छोड़कर पर्यटुटी तैयार करनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा देते हैं। तब सेवा-परायण लक्ष्मण हाथ जोड़कर भगवान्से कहते हैं कि हे प्रभो ! मैं अपनी स्वतन्त्रतासे, कुप नहीं कर सकता।

परवानसि काकुत्स्थ त्वमि वर्षशतं शिवते ।

स्वयं तु शीघ्रं देतो क्रियतामिति मां वद ॥

'हे काकुत्स्थ ! चाहे सैकड़ों वर्ष भी तप जाय पर मैं तो आपके ही अधीन हूँ। आप ही पसन्द करके उत्तम स्थान बतायें।'

इसका यह मतलब नहीं है कि लक्ष्मणजी विवेकहीन थे। वे बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे एवं समय-समयपर रामकी सेवाके लिये बुद्धिका प्रयोग भी करते थे किन्तु यहाँ रामके लिये कामपर ही पूरा सन्तोष होता यहाँ वे कुछ भी नहीं सोचते थे। उनमें सेत्र और कोपके भाव थे, पर वे थे सब रामके लिये ही। लक्ष्मण विलाप करना, विद्वह होना, दिगान और रामविरोधीपर पना करना नहीं जानते थे। इसीसे अन्य दृष्टिसे देखनेवाले लोग उनके चरित्रमें दोषोंकी खण्डना किया करते हैं परन्तु लक्ष्मण सर्वथा निर्दोष, रामप्रिय, रामरहस्यके ज्ञाता और आदर्श आत्मा हैं। इनके ज्ञानका मयुरा देवना हो तो गुरुके साथ इन्होंने एकान्तमें जो बातें की थी, उन्हें पढ़ देखिये। जब निषादने विगाहपरा कैकेयीको डरा मजा कहा और श्रीसीतारामजीके भूमि-राजन-को देखकर दुःख प्रकट किया तब लक्ष्मणजी मद्यताके माथ मयुर बासीसे बसते बरने लगे—

काकु न डोड सुख-दुराकर दग्ना-निजजन्त करम मेग सब ब्रजा ॥

जोग विवोग मेग मक मंदा । दित अनदिन मयम भन कंदा ॥

जनम मदन जई तमि प्रजाजू । संपत्ति विपत्ति कान कर कजू ॥

धरनि काम वन पुर परिबक । सरन नरक जई तमि स्वरारक ॥

देखिय मुनिब दुनिब मन माटी । मोर-मूज परापरक नारी ॥



सापने होइ मित्तारि गुण रंक नाकपति होइ ।

जागे हानि न लाम कछु तिमि प्रपद्य त्रिय जेइ ॥

अस निचारि नहि कीजिय रोइ । कहुहि नादि न देख्य दोइ ॥

मोहनिसा सब शोचनिहारा । देखिय सपन अनेक प्रकारा ॥

पहि जग-जामिनि जागहि जोगी । परमारयी प्रपद्यबियोगी ॥

जानिय तबहि जीव जग जाग । जब सब विषय-बिहास निरागा ॥

होइ विनेक मोहभ्रम भागा । तब रघुनाथ-चरन अनुरागा ॥

सखा परम परमारय पट्ट । मन-क्रम-बचन राम-पद-नेहू ॥

राम भद्र परमारय रूपा । अविगत, अलस, अनादि अनूपा ॥

सकल विकार-रहित गतमेदा । कहि नित नेत्रि निरूपहि बेदा ॥

भगत भूमि मसुर सुरभि सुरहित लागि कपाल ।

करत चरित घरि मनुजतन सुनत मिटहि जग-जाल ॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय-रघुबीर-चरन रत होहू ॥

धीलक्ष्मणजीकी महिमा कौन गा सकता है ? इनके

समान परमार्थ और प्रेमका, बुद्धिमत्ता और सरलताका,

परामर्श और आज्ञाकारिताका, तेज और मैत्रीका विद्वत्त्व

समन्वय इन्हींके चरित्रमें है । सारा संसार श्रीरामका

गुणगान करता है, श्रीराम भरतका गुण गाते हैं और भरत

लक्ष्मणके भाग्यकी सराहना करते हैं । फिर हम किस

गिनतीमें हैं जो लक्ष्मणजीके गुणोंका संक्षेपमें बखान कर सकें !

### श्रीशत्रुघ्नका आठ-प्रेम

रियुवदन पद-कमल नमामी । सह्य सुसील भरत-भनुगामी ॥

रामदासानुदास श्रीशत्रुघ्नजी भगवान् श्रीराम और

भरत-लक्ष्मणके परमप्रिय और आज्ञाकारी बन्धु थे । शत्रुघ्नजी

सौनकर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषय-

विरागी, सरल, तेजपूर्ण, गुरुजनोंके भनुगामी, वीर और

शत्रुनाशन थे । श्रीरामायणमें इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण

महर्षि मिलता । परन्तु जो कुछ मिलता है, उसीसे इनकी

महत्ताका अनुमान हो जाता है । जैसे धीलक्ष्मणजी भगवान्

श्रीरामके चिर-संगी थे, इसीप्रकार लक्ष्मणानुज शत्रुघ्नजी

श्रीभरतजीकी सेवामें निरुक्त रहते थे । भरतजीके साथ ही

प्रायः उनके ननिहाल गये थे और पिताकी स्युपर सायही

चञ्चोप्या पहुँचनेपर कैकेयीजीके द्वारा पितामरथ

राम-बीना-लक्ष्मणके वनवासका समाचार सुनकर

भी बड़ा भारी दुःख हुआ । भाई लक्ष्मणके शौर्यसे

आप परिचित थे, अतएव इन्होंने शोकार्णव इन्द्रसे

गतियः सर्वमूतानां दुःखे किं पुनरामनः ।

स रामः सर्वसम्पन्नः श्रिया प्रत्राजितो वनम् ॥

बलवान्वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।

किं न मोक्षयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम् ॥

( वा०रा० २ । ७८ । २-३ )

'श्रीराम, जो दुःखके समय सब मृतमायियोंके आश्रय

हैं, वे हमलोगोंके आश्रय तो हैं ही, ऐसे महाबलवान् राम

एक ओ (कैकेयी)के प्रेरणासे ही वनमें चले गये । अहो !

धीलक्ष्मण तो बलवान् और महापराक्रमी थे, उन्होंने

पिताको समझाकर रामको वन धानेसे क्यों नहीं रोका ?'

इस समय शत्रुघ्नजी दुःख और कोपसे भरे थे, इतनेमें राम-

विरहसे दुखी एक द्वारपालने आकर कहा कि 'हे रामकुमार !

जिसके पद्मचन्द्रसे श्रीरामको वन जाना पया, और

महाराजकी स्यु दुर्ह, वह क्रूर पापिनो कुब्जा बजाभूषणसे

सजी हुई खरी है, आप उचित समझें तो उसे कुछ ठिपा

दें ।' कुब्जा भरतजीसे इनाम लेने आ रही थी और उसे

दरवाजेपर देखते ही द्वारपालने क्रन्दर आकर शत्रुघ्नसे

ऐसा कह दिया था, शत्रुघ्नको बड़ा गुस्सा आया, उन्होंने

कुब्जाकी छोटी पकड़कर उसे घसीटा, उसने शोरसे चीख

मारी । यह दृश देखकर कुब्जाकी अग्य सत्त्वियाँ

तो दौड़कर धीकौसव्याजीके पास चली गयीं, उन्होंने

कहा कि अब मयुरभाषिणी, इयामयी कौसव्याके शर

गये बिना शत्रुघ्न हमलोगोंको भी नहीं छोड़ेंगे । कैकेयी

बुझाने आयीं तो उनको भी फटकार दिया । आखिर भरतने

आकर शत्रुघ्नसे कहा—'भाई ! क्षी-जाति अतन्व है, नहीं

तो मैं ही कैकेयीको मार डालता—

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति रायः ।

त्वां च मां चैव धर्ममा नामिमांश्च्यते प्रुवम् ॥

( वा०रा० २ । ७८ । २३ )

'भाई, यह कुब्जा यदि तुम्हारे हाथसे मारी जायगी तो

श्रीराम निश्चय ही तुमसे और शत्रुघ्नसे बोजना छोड़ देंगे ।'

भरतजीके बचन सुनकर शत्रुघ्नजीने उत्तको जवाब दिया ।

यहाँ यह पता लगता है कि प्रथम तो रामकी धर्मनीति

क्षी-जातिका बिलग आदर था, क्षी अतन्व समझी जाती

थी । दूसरे, शोकाकुल भरतने इस अवस्थामें भी भाई



सीताजीकी अग्नि-परीक्षा ।  
विशुद्धभाषां निष्ठाया प्रतिगृहणाप्य संधिलाम  
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाप्रापयामि ते



शत्रुको भ्रातृ-प्रेमके कारण रामकी राजनीति घटकाकर धर्मसे रोका, और तीसरे, रोपमें भरे हुए शत्रुमने भी प्रत्येक माईकी बात मान ली। इससे हमलोगोंको क्यायोग सिद्धा प्रह्व्य करनी चाहिये। जो लोग यह आच्येप किया करते हैं कि प्राचीन कालमें भारतीय पुरुष धर्मियोंको बहुत शत्रु बुदितसे देखते थे, उनको इस प्रसंगसे सिद्धा प्रह्व्य करने चाहिये।

× × ×

इसके धनन्तर शत्रुमजी भी भरतजीके साथ धीरामको बोलने बनमें जाते हैं, और वहाँ भरतजीकी आज्ञासे रामकी कुटिया में रहते हैं। अब भरतजी दूरसे धीरामको देख कर दौड़ते हैं, तब धीरामदर्शनोत्सुक शत्रुम भी पीछे-पीछे दौड़े जाते हैं, और—

शत्रुमश्वापि रामस्य वन्दे चरमौ वदन् ।

राजुमै च समाहित्य रामोप्यश्रुष्यवर्तयत् ॥

( बा० रा० २।१३१।४० )

—वे भी रोते हुए धीरामको चरणोंमें प्रणाम करते हैं,

धीराम आसनसे उठ अपने हाथोंसे उन्हें उठाते हैं, फिर दोनों धूमिले विरट जाते हैं। इसी प्रकार शत्रुम अपने बड़े भाई ब्रह्मचर्यजसे भी मिलते हैं—भेटेउ ललन ललक ललु भां ।

इसके बाद धीराम भरतके संवादमें लक्ष्मण-शत्रुमका बीचमें बोलनेका कोई काम नहीं था। दोनोंके अपने-अपने नेता बड़े भाई मौन्द थे। शत्रुमने तो भरतको अपना जीवन खींच ही दिया था। इसीसे भरत कह रहे थे कि—

सानुज पठस्य मोहिं वन, कीमिय सर्वाहं सनाय ।

शत्रुमजीकी सम्मति न होती या शत्रुमके भ्रातृप्रेमपर परोसा न होता तो भरतजी ऐसा बर्बोर कह सकते ?

पादुका लेकर लौटनेके समय धीरामसे दोनों भाई दुःख गले लगाकर मिलते हैं। रामकी प्रदक्षिणा करते हैं। ब्रह्मचर्यजीकी भांति शत्रुमजी भी दुःख तेज थे, कैकेयीके प्रति उनके मनमें रोप था, धीराम इस बातको समझते थे, अपने बनसे विदा होते समय धीरामने शत्रुमजीको आश्वस्तिके कारण सिद्धा देते हुए कहा—

मातरं रघु कैकेयीं मा रोषं कुद तां प्रति ।

मया च सीतयाचन शतोऽसि रघुनन्दन ॥

( बा० रा० २ । ११२ । २० )

‘हे भाई, तुम्हें मेरी और सीताकी शपथ है तुम माता कैकेयीके प्रति कुछ भी क्रोध न करके उनकी रक्षा करते

रहना।’ इतना कहनेपर उनकी धाँसे प्रेमाशुधियोंसे भर गयीं। इससे पता लगता है कि धीराम-शत्रुममें परस्पर कितना प्रेम था !

इसके बाद शत्रुमजी भरतजीके साथ अयोध्या लौटकर उनकी आज्ञानुसार राज और परिवारकी सेवामें रहते हैं तथा धीरामके अयोध्या लौट जानेपर प्रेमपूर्वक उनसे मिलते हैं ‘पुनि प्रभु इरिषि शत्रुवन भेटे हृदय लगाय ।’ तदनन्तर उनकी सेवामें लग जाते हैं। धीरामका राज्याभिषेक होता है और रामराज्यमें सबका जीवन सुख और धर्ममय बौतता है।

एक समय ऋषियोंने आकर धीरामसे कहा कि लवणामुर नामक राक्षस बड़ा उपद्रव कर रहा है, वह प्राणिसाधको— खास करके तपस्वियोंको पकड़कर खा जाता है। हम सब बड़े ही दुखी हैं। धीरामने उनसे कहा कि ‘आप भय न करें मैं उस राक्षसको मारनेका प्रबन्ध करता हूँ।’ तदनन्तर धीरामने अपने भाइयोंसे पूछा कि ‘लवणामुरको मारने कौन जाता है?’ भरतजीने कहा ‘महाराज ! आपकी आज्ञा होगी तो मैं चला जाऊँगा।’ इसपर लक्ष्मणानुज शत्रुमजीने नम्रतासे कहा— ‘हे रघुनाथजी ! आप जब बनमें थे तब महामा भरतजीने बड़े-बड़े दुःख सहकर राक्षसका पाजन किया था, ये नगरसे बाहर नन्दीगाँवमें रहते थे, कुशपर सोते थे, फलमूल खाते थे, और जटावलकल धारण करते थे। अब मैं दाम जब सेवामें उपस्थित हूँ तब तुम्हें न भेजकर मुझे ही भेजना चाहिये।’ भगवान् धीरामने कहा— ‘ब्रह्मजी बात है तुम्हारी इच्छा है तो ऐसा ही करो, मैं तुम्हारा मधुरैत्यके सुन्दर नगरका राज्याभिषेक करूँगा, तुम शूरवीर हो, नगर बसा सकोगे हो, मधुराक्षसके पुत्र लवणामुरको मारकर धर्म-बुदितसे वहाँका राज्य करो। मैंने जो कुछ कहा है, इसके बदलेमें तुप भी न कहना, क्योंकि बड़ोंकी आज्ञा आज्ञाओंको माननी चाहिये। तुप यशित तुम्हारा विधिवत् अभिषेक करेंगे अतएव मेरी आज्ञासे तुम उसे स्वीकार करो।’ धीरामने अपने सुईसे बड़ोंकी आज्ञाका महत्व इसीलिये बतसाया कि वे शत्रुमकी त्याग-वृत्तिको जानते थे। धीराम ऐसा न कहते तो वे सर्वत्रमें राज्य स्वीकार न करते। इस बातका पता उनके ऊपरसे लगता है। शत्रुमजी बोले—

‘हे नरेश्वर ! बड़े भाईकी उपस्थितिमें छोटेका राज्याभिषेक होता मैं बर्बर्क सम्मन्ता हूँ। इधर आपकी आज्ञाका पाजन भी अवश्य करना चाहिये। आपके द्वारा ही मैंने यह धर्म मुना है। जो भरतजीके बीचमें मुझको तुप भी नहीं बोलना चाहिये था—



उसमें भिन्न-भिन्न लोगोंके विमल और आदर्श चरितसे हम लोगोंको एतना प्रभाव डालना चाहिये । साक्षात् सच्चिदानन्दवन भगवान् होने भी उन्होंने जीवनमें मनुष्योंकी भाँति जीजाएँ ही हैं जिनको आदर्श मानकर हम काममें जा सकते हैं ।

कुछ लोग कदा करते हैं कि 'श्रीराम जब साक्षात् मान्य थे, तब उन्हें अथवा धारण करनेकी क्या आवश्यकता थी, वे अपनी शक्तसे यों ही सब कुछ कर लेंगे' इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् सभी कुछ कर सकते हैं, करते हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं

है, परन्तु उन्होंने अथवा धारण कर ये आदर्श जीजाएँ हसींलिये की हैं कि हम लोग उनका गुणानुवाद मात्र और अनुकरण कर कृतार्थ हों, यदि वे अथवा धारण कर हम लोगोंकी शिष्याके लिये ये जीजाएँ न करते तो हम लोगोंको आदर्श शिष्या कहाँसे और कैसे मिलती ? अब हम लोगोंका यही कर्तव्य है कि उनकी जीजाओंका अथवा, मनन और अनुकरण कर उनके सब भक्त बनें ! खेल बहुत बढ़ा हो गया है इसलिये यहाँ समाप्त किया जाता है ।

## श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

(लेखक—श्रीविन्दु त्रिपाठीजी)



अपने कवि केवल अपनी दशाओंका वर्णन करता है, नानाविध कल्पनाओंके द्वारा वह अपनी भावनाओंको प्रकट करता है और महाकाव्य वह है जिसमें वह सगुण्य समाज और समस्त देशकी संस्कृति, भावना, रीति-रिवाज तथा मानव-प्रकृतिके सभी दृश्याद्युक्त रूपोंका चित्रण करता है । उसके महाकाव्यमें अलग-अलग दृश्याद्युक्त वर्णन होते हैं । श्रीरामचरितमानस महाकाव्य है । उसमें नायकत्वके सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तमत्व, नायकके विषय आदर्शके साथ-साथ आसुरभावके भी पूर्ण विघटाका दृष्टिपूर्ण वर्णन हुआ है । इसीसे उसमें प्रत्येक क्षण और दृश्याद्युक्त अनुकूल उक्ति मिल जाती है और अथवा समाजमें सर्वत्रभावले व्यवहार होता है । अब हमें यह देखना है कि श्रीरामचरितमानस महाकाव्य कैसे है और इसके सगुण्य अथवा उसमें कैसे प्रतिष्ठित हैं ।

श्रीरामचरितमानस महाकाव्यके अथवा हम प्रकार लिखे हैं—

सर्वत्रभाव महाकाव्ये तत्रैको नायकः सुराः ।  
 सदां हविरो बाधे श्रीरामचरितमानसः ॥  
 सर्वत्रभाव भूषाः सुरा भद्रोऽपि वा ।  
 श्रीरामचरितमानसमैकोऽपि वा ॥  
 अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः ॥  
 श्रीरामचरितमानसमैकोऽपि वा ॥

अथवा सर्वत्र रसाः सुस्तेष्वेकं च कर्तव्यम् ॥  
 आदौ नमस्क्रियादीनां बन्धुनिर्देशा एव वा ।  
 कविचिन्तास्यदीनां सतां च गुणदीर्घनम् ॥  
 एकवृत्तमैः पदोत्सवैः अथवा ॥  
 नातिस्त्रया नातिदीर्घाः सर्गा अथवा ॥  
 नानावृत्तमैः वदति सर्गः कथन एव वा ।  
 सर्गांते भाविसर्गव कथायाः सूचनं भवेत् ॥  
 सन्ध्यासूयैः अथवा प्रदोषात्प्रथमः ॥  
 प्रथमं अथवा श्रीरामचरितमानसः ॥  
 सर्वत्रभावमैः अथवा श्रीरामचरितमानसः ॥  
 एकवृत्तमैः अथवा श्रीरामचरितमानसः ॥  
 सर्गांते भाविसर्गव कथायाः सूचनं भवेत् ॥  
 अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः ॥

मानसमें इनकी परिचयार्थ—

श्रीरामचरितमानसकल्प—श्रीरामचरितमानसकल्प इत्ये कल्पे  
 है जिसमें काव्यरसका व हो, अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः  
 काव्यरस हो, अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः काव्यरस हो, अथवा  
 अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः काव्यरस हो, अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः

अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः काव्यरस हो, अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः  
 अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः काव्यरस हो, अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः

अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः काव्यरस हो, अथवा सर्वत्र रसाः सर्वत्ररसः

स्पाइते दुर्वचं घोरे हन्ताऽसिम् लवणं मृचे ।  
तस्यैव मे दुरकस्य दुर्गतिः पुराणम् ॥  
उत्तरं नदि वक्तव्यं ज्येष्ठेनामिहिते पुनः ।  
अधर्मसहितं चैव परलोकनिवर्तितम् ॥

( वा० रा० २।६३।४-५ )

'हे पुरुषधर ! 'लवणासुरको मैं मारूँगा' मैंने ये दुर्वचन कहे, इसीसे मेरी यह दुर्गति हुई। बड़े भाइयोंके बीचमें कभी नहीं बोलना चाहिये। ऐसा करना अधर्मयुक्त और परलोकका नारा करनेवाला है।' धन्य शत्रुघ्नी, आप राज्य-प्राप्तिको 'दुर्गति' समझते हैं ! कैसा आश्चर्य त्याग है ! आप फिर कहते हैं कि 'हे काबुरस्य ! एक दण्ड तो मुझे मिल गया, अब आपके बचनोंपर कुछ बोलूँ तो कहीं दूसरा दण्ड न मिल जाय, अतएव मैं कुछ भी नहीं कहता। आपकी इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ।'।

भगवान्की आज्ञासे शत्रुघ्नका राज्याभिषेक हो गया, तदनन्तर उन्होंने लवणासुरपर चढ़ाई की, श्रीरामने चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, एक सौ उत्तम हाथी, ऋष-विक्रय करने-वाले व्यापारी, खर्चके लिये एक लाख स्वर्णमुद्राएँ साथ हीं। और भाँति-भाँतिके सनुपदेश देकर शत्रुघ्नको विदा किया। इससे पता लगता है कि शत्रुघ्नी श्रीरामको कितने प्यारे थे।

रास्तेमें श्रपियोंके आश्रमोंमें ठहरते हुए ये जाने लगे। वाल्मीकिजीके आश्रममें भी एक रात ठहरे, उसी रातको सीताजीके लव-कुशाका जन्म हुआ था। अतः यह रात शत्रुघ्नीके लिये बड़े आनन्दकी रही। शत्रुघ्नीने मधुपुर जाकर लवणासुरका वध किया। देवता और श्रपियोंने आशीर्वाद दिये। तदनन्तर बारह साजतक मधुपुरीमें रहकर शत्रुघ्नी वापस श्रीरामदरानार्थ जाँटे। रास्तेमें फिर वाल्मीकिजीके आश्रममें ठहरे। अब लव-कुशा बारह वर्षके हो गये थे। मुनिने उनके रामायणका गान सिखला दिया था। अतएव मुनिकी आज्ञासे लव-कुशने शत्रुघ्नीको रामायणका मनोहर और करुणोत्पादक गान सुनाया। राम-महिमाका गान सुनकर शत्रुघ्न मुग्ध हो गये—

श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंशो वाप्लोचनः ।

स मुहूर्तमिवासंशो विनिःशयः मुहुर्मुहुः ॥

( वा० रा० ७।७।१।२७ )

'उस गानको सुनकर पुरुषसिंह शत्रुघ्नीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली, और वे बेहोरा हो गये। उस

बेहोशीमें एक घड़ी तक उनके ओर-ओरसे साँस चबल रहा।' धन्य है !

इसके अनन्तर उन्होंने अयोध्या पहुँचकर श्रीरामसहित सब भाइयोंके दर्शन किये। फिर कुछ दिनों बाद मधुपुरी छोड़ गये।

× × ×

परम धामके प्रयाणका समय आया, इन्द्रियविजयी शत्रुघ्नको पता लगते ही वह अपने पुत्रोंको राज्य सौंपकर वीढ़े हुए श्रीरामके पास आये और घरवालों प्रदानकर गद्गदकण्ठसे कहनेलगे—

हृत्वामिषेकं सुतयोर्द्वौमे राषवन्दनः ।

तवानुगमने राजन् ! मिद्धि मां व्रतमिष्यन् ॥

न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम् ।

विहन्यमानमिच्छामि मद्दिघेन विदेवतः ॥

( वा० रा० ७।१०८।१४-१२ )

'हे रघुनन्दन ! हे राजन् ! मैं अपने दोनों पुत्रों राज्य सौंपकर आपके साथ जानेका निश्चय करके आया हूँ हे वीर ! आज आप कृपाकर न तो दूसरी बात कहें और न दूसरी आज्ञा ही दें, यह मैं इसलिये कह रहा हूँ कि मैं खासतौरपर आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहता।' मतलब यह कि आप कहीं साथ फोरकन यहाँ रहनेकी आज्ञा न दें वरिसे मुझे आपकी आज्ञा भंग करनी पड़े, जो मैंने आज तक नहीं की। धन्य है आत्प्रेम !

भगवान्ने प्रार्थना स्वीकार की और सबने मित्रर श्रीरामके साथ रामधामको प्रयाण किया।

### उपसंहार

यह रामायणके चारों पूर्य पुराणोंके चारुतं श्रोत्रंमय किञ्चित् दिग्दर्शन है। यह खेल विरोधरूपसे प्राप्त्रंमय ही खिला गया है। अन्ध कर्णन तो प्रसंगगत का लगे हैं, अतएव दूसरे उपदेशप्रद चारुतं विनयोंकी बरोचन चर्चा नहीं हो सकी है। इस खेलमें अधिकांश भाग बालमि, अध्यात्म और रामचरितमानसके आधापर खिला गया है।

वास्तवमें श्रीराम और उनके बन्धुओंके कलाप करितकी याद कौन पा सकता है। मैंने तो अपने विचारके लिये न केवल ही है, मुटियोंके लिये विश्रवण समा करे। श्रीराम ही

के निब बन्धुओंके विमल और आदर्श चरितसे हमलोगोंको  
जाग उठाना चाहिये । साक्षात् सचिदानन्दधन भगवान्  
के भी उन्होंने जीवनमें मनुष्योंकी भाँति जीजाएँ  
हैं जिनको आदर्श मानकर हम काममें ला सकते हैं ।

कुछ लोग कहा करते हैं कि 'श्रीराम जब साक्षात्  
गया ये, तब उन्हें अवतार धारण करनेकी क्या  
आवश्यकता थी, वे अपनी शक्तिसे यों ही सब कुछ कर  
ले थे।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् सभी कुछ  
कर सकते हैं, करते हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं

है, परन्तु उन्होंने अवतार धारणकर ये आदर्श जीजाएँ  
हसीलिये की हैं कि हमलोग उनका गुणानुवाद गाकर  
और धनुकरण कर कृतार्थ हों, यदि वे अवतार धारणकर  
हमलोगोंकी शिष्याके लिये ये जीजाएँ न करते तो  
हमलोगोंको आदर्श शिष्या कहाँसे और कैसे मिलती ?  
यब हम लोगोंका यही कर्तव्य है कि उनकी जीजाओंका  
अवयव, मनन और धनुकरण कर उनके सच्चे भक्त बनें !  
लेख बहुत बढ़ा हो गया है इसलिये यहाँ समाप्त किया  
जाता है ।

## श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

( लेखक—श्रीविन्दु नारायणजी )



भयमें कवि केवल अपनी दुराओंका  
वर्णन करता है, नानाविध कल्पनाओं-  
के द्वारा वह अपनी भावनाओंको  
प्रकट करता है और महाकाव्य वह है  
जिसमें वह सम्पूर्ण समाज और  
समस्त देशकी संस्कृति, भावना, रीति-

के तथा मानव-प्रकृतिके सभी श्लाघ्य रूपोंका चित्रण  
का है। उसके महाकाव्यमें जगद्गुरुके दर्शन होते हैं।  
मोक्षोत्सामि गुलसीदासजी महाराजका श्रीरामचरितमानस  
गोती महाकाव्य है। उसमें नायकत्वके सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम-  
न, नायकके दिव्य आदर्शके साथ-साथ आसुरभावके भी  
विशालका उग्रदृष्टप्रदर्शन हुआ है। इसीसे उसमें प्रत्येक  
ने और दुराके अनुकूल उक्ति मिल जाती है और  
एव समाजमें सद्व्यवहारके व्यवहार होता है। अब हमें  
देखना है कि श्रीरामचरितमानस महाकाव्य कैसे है  
र इसके सम्पूर्ण अर्थय उसमें कैसे चरित हैं ।

साहित्यदर्पणमें महाकाव्यके अर्थय इसप्रकार दिये हैं—

सर्ववन्द्यो महाकाव्ये तत्रैको नायकः सुतः ।  
सदृशो धृतिवो नायिषी धीरोदात्तगुणान्वितः ॥  
एकदेशमवा मूपाः कुञ्जा नदीपि वा ।  
महावीरदान्तानामेकैःपरीरस इत्ये ॥  
महाभि सर्वेऽपि रसाः सर्वेऽप्यव्यवहाराः ।  
विशालैश्चैवं पुरुषान्वयं सज्जनान्वयम् ॥

अतारस्तस्य वयोः स्तुतेष्वेकं च कर्तं भवेत् ।  
आदौ नमस्क्रियादीनां रत्ननिर्देश एव वा ।  
स्वीचिन्दिनासुरादीनां स्तोत्रं गुणकीर्तनम् ॥  
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तैः ।  
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥  
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गाः कथनं वदन्ते ।  
सर्गांते मानिसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥  
सन्ध्यासूर्येन्दुराजनी प्रदोषधन्तदासराः ।  
प्रदार्भण्यङ्गमुगया शीतुर्बनसागराः ॥  
सम्भोगविप्रजन्मीच मुनिर्नरैरुराध्वराः ।  
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादवः ॥  
वर्णनीया यथायोगे साजोपहा मनी इह ।  
कवेर्वृत्तय वा नम्रता नायकदेशरथ वा ॥

मानसमें इनकी चरितार्थता—

धीरोदात्तनायकत्व—धीरोदात्त नायक उमे करने  
है जिनमें कामरुडाका न हो, जमारुड एवम् कल्प  
गामीर हो, इन-शोकके जो कविमत न हो, सर्व धी शिष्या  
विनयाप्युक्त हो और जो राजन हो, क्या—

अधिकथनः कथनानिस्मरते मन्त्रकः ।  
स्वेच्छिक्रिद्वदन्तो वीर्यतो वदन्त वदि ॥

अनात्मरत्नाया—

'समय दिनेके होन सब कति कन्दी हो :  
हरव न हरव-दिन कृ कं' धरुदित ॥



नाय, राम-धनु मंत्रनिहास। होईहि कोठ एक दास तुम्हारा।।

आयसु काह कहिय किन मोही।।

राममाय लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा।।

देव एक गुन धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे।।

सन प्रकार हम तुमसन हारे। समहु विप्र अपराध हमारे।।

चिति सबिपर कीन्ही दामा। बोंके मूडल बचन रघुराया।।

तुम्हरे बल मैं रावन मारा। शीलक विभीषन कई पुनि सारा।।

**गाम्भीर्यातिशय—यथा—**

राम कहेउ रिस तत्रिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा।।

मृगुपति बकहि कुठार ठठाप। मन मुसुकाहि राम सिर नाप।।

**क्षमा—यथा—**

कीन्ह मोह बस प्रोह जद्यपि तोहि कर बध उचित।

प्रभु छाडे करि छोई को कृपालु रघुबीर सम।।

**हृत्वादि।**

**महासहचरत्व—**

प्रसन्नतां या न गतामिषकृतः

तथा न मग्ने वनवासदुःखतः।

मुस्ताम्बुज शीरघुनन्दनस्य मे

सदास्तु सा मन्मुलमङ्गलप्रदम्।।

पितु आयसु भूषन-बसन तात तजे रघुबीर।

विसमय-हरष न हृदय कलु पहिरे बल्कल चीर।।

मुख प्रसन्न मन राग न राधू।

मूष सजेठ अमिषिक समानू। चाहत देन तुमहि जुबराजू।।

गुरु शिष देइ राम पहुँ गयऊ। राम हृदय अस विसमय मयऊ।।

जनमे एक सङ्ग सब भाई। भोजन-सयन-केलि-करिकाई।।

करनबेष उपवीत विवाहा। संग-संग सब मयठ उठाहा।।

विमल बंस यह अनुचित पक्कू। बन्नु निहाय बड़ेहि अमिषेकू।।

**विमासासे वनवास-प्रसङ्ग सुनकर—**

सब प्रसन्न रघुपतिहि सुनाई। बैठे मनहु तनु परि निठुराई।।

मन मुसुकाहि मानुकुल मानू। राम सहज आनन्द-निधानू।।

**स्वैर्य—**

प्रसन्न कहा मुनिसन रघुराई। निर्मय जय्य करहु तुम जाई।।

होम करन लागे मुनि क्षारी। आपु रहे मसकी रखवारी।।

मुनि मारीच निसाचर कोही। कै सहाय थावा मुनि-प्रोही।।

बेनु कर-बान राम तिहि मारा। सत जोत्रन गा सागर धारा।।

पात्रक सर सुबाहु पुनि जात। अनुज निसाचर कटक सँझात।।

मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति कराहि देव-मुनि क्षारी।।

**निगूढमानता—**

ध्रुवताहि दूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौ अभिमान।।

जौ हम निदरहि बिप्र बदि सत्य सुनहु मृगुनाय।

तौ अस कोजग सुमट जेहि मयबस नावहि माय।।

देव-धनुज-मूपति-मठ नाना। समबल अधिक होउ बढवाना।।

जौ रन हमहि प्रचारि कोऊ। लरहि सुखेन काल किन होऊ।।

छत्रिय-तनु धीर समर सफाना। कुल-कटक देहि पाँवर जाना।।

कहाँ सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु बराह न रन रघुनंठी।।

निप्रबंसकै अति प्रमुताई। अमय होइ जो तुम्हहि डेरार्थ।।

**दृढमतता—यथा—**

राय राम राखन-हित लगी। बहुत उपाय किय छठ लगी।।

लखी राम-रक्ष रहत न जाने। परम-धुन्यार धीर सपाने।।

मातु बचन सुनि अति अनुकूल। बनु सनेह सुरतरके फूल।।

सुख-मकरन्द भरे श्रीमूला। निरखि राम-मन-भँवर न मूला।।

जौ नहि किरहि धीर दोउ मारै। सत्य-सन्ध दृढ़तर रघुपारै।।

वनवासको स्वीकार कर जिया, फिर बनेक प्रेमातुरोप  
और कल्या-प्रार्थनाओंपर भी विचलित नहीं हुए।

**वनमें मुनियोंका धरिय-समूह देखकर—**

नितिचर हीन करौ महि मुज उठाप पन कीन्ह।

**वालिबध-प्रतिष्ठा—यथा—**

सुनु सुप्रीव मैं मारिहौ बालिहि पकहि बान।

ब्रह्म-रुद्र-सरनागतहुँ गप न उबरीहि प्रात।।

उन रघुकुलतिलक धीर-धीरशिरोमणिये को हुए  
कहा, वह कर दिखाया, जिसका झण्डाकार और रथीका  
कर जिया, अन्ततक सब प्रकार उसका निर्बाह किया।  
अत्रियोंके सर्वश्रेष्ठ पवित्र स्वर्णशर्म, परमप्रतापी सार्वभौम  
चक्रवर्ती-कुलमें अथवार धारण किया। रूप, शील, बुद्ध,  
वयस्य, गुण्य, गौरव, विद्या, प्रतिभा, विनय, बल, विक्रम, तेज, शौर्य  
प्रेरवर्ष, माधुर्य तथा कल्याणिक निस्त्रिज कल्याणगुण्यकारि  
होनेसे दशरथ-राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी मायकृष्णके दिव्य  
चादरों परम् पुरुषोत्तमपदकी मण्डल मर्वाया है। जैसे वे  
नृपत्यमें चक्रवर्ती हैं, वैसे ही मायकृष्णमें सार्वभौम अथवा  
धीरोदात्त मायकृष्णके उपपति राजा मर्वायातुरोत्तम हैं।  
(अवध)

## रामायणमें आदर्श पितृभक्ति

(लेखक—रामावहापुर रामा भीरुक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव विद्यावाचस्पति, पुरातत्व-विशारद टेकाडी)

पिता हि परमः स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।

पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

'सर्वकामो वंशे' इत्यादि वेदप्रतिपादित वाक्योंसे स्व-सुख-समन्वित, त्रिधापशुन्य, पुण्यकर्मों पुरस्कोंकी प्राप्ति तथा पवित्र-चरित्र-देव-वृन्दके आवास दिव्य लोकी कामनायके मनुष्य यज्ञके द्वारा यज्ञपुरस्ककी प्राप्ति करते हैं। उसी स्वर्गकी प्राप्तिके लिये वेदप्रतिपादित मार्गमें अग्रसर होनेवाले लोग तीर्थ-सेवन, यज्ञ-पूजा करते हैं, तथा उपनिषदोंमें अज्ञात-मनुष्य आशानका साधन करते हैं। भीमांसाके अनुयायी वेद-प्रतिपादित यज्ञकर्ममें तत्परताके ही उपासना मानते हैं। सब धर्मशास्त्रानुमोदित मार्गपर चलनेवाले साधक अज्ञानशक्त साधनाओंद्वारा जिस लोकको उत्तम समझकर जाना चाहते हैं और साहित्यामृतसेही धर्म जप्य जितकी ओर पृष्ठक देखते हैं—यह स्वर्ग क्या है? किसे यह जाना जाता है? और उसे प्राप्त होनेवाले यह क्या सुख भोगते हैं? इन प्रश्नोंके उपयुक्त उत्तर लोकोत्तरे समय महर्षि वेदव्यासराचित महाभारतका अष्टम स्कंध स्मर्य हो जाता है, जिसका तात्पर्य यह है कि स्वर्गप्राप्त पुरुष जिस सुखका उपभोग करते हैं, उसकी प्राप्ति पितृसे ही होती है। पितृसे ही तीनों धर्मोंसे प्राप्त होता है। तपके प्रभावसे जो सुख प्राप्त होता है, उसके बाद भी अनायास मिल जाता है। पिताको पूज्य करनेवाले पुरुषसे समस्त देवता भी सन्तुष्ट रहते हैं। अतः लिये रामायणका नाम लिया जा सकता है जिसे विदुषः पितृभक्तिका आदर्श ग्रन्थ समझते हैं। इस ग्रन्थके नामकरणमें भी पितृभक्तिका भाव व्यञ्जित है।

× धर्मपद—रामायण अर्थात् परमपितृभक्त धीरामका नाम है। तात्पर्य यह है कि यह ग्रन्थ जितमें आदर्श पितृभक्तिके चरित्रका निर्देश हुआ हो।

अतः उपयुक्त धर्मों प्रश्नोंके उत्तर इसप्रकार दिये जा सकते हैं— (१) पितासे स्वर्ग भिन्न नहीं है अर्थात् स्वर्ग ही स्वर्ग है। (२) यह पिता हमारे समीप रहते हैं। (३) हमारे हृदयगत धर्मकी तरह वे हमारे अधीन रहते

हैं। (४) उनके सन्तोषसे प्राणीमात्र प्रसन्न हो सुखकी सृष्टि करते हैं।

आदिकविने पितृभक्तिका स्वरूप-निर्देश करनेके पूर्व पितृत्वको बघैरूपसे दिसलाया है। यथा—पुत्रप्राप्तिके लिये राजा दशरथकी चिन्ता, श्रीवशिष्ठजीके परामर्शसे पुत्रप्राप्तिका समाारम्भ, ऋष्यशृङ्गको बुलानेके लिये सुमन्तका उपदेश तथा आषिका आगमन और यज्ञारम्भ प्रभृति विभिन्न सन्दर्भोंका उद्गमन किया गया है। महाराज दशरथके पुत्र प्राप्त होनेके पश्चात् अपरिवर्ष विधामित्रने घोषणा पचार कर प्रबल पराक्रमी विविध मायाविशारद मारीच, तादका, सुबाहु आदि दुर्दान्त राक्षसोंके विनाशार्थ महाराजसे उनके पञ्चदश वर्षीय पुत्र धीरामको माँगा। इच्छा न होनेपर भी महाराजने धीरामको विधामित्रके मन्त्र-रक्षांश शरणागमनके लिये आज्ञा दे दी और धीरामने भी राजकुमारोचित सुख-सम्भोग-सुहादी उपेक्षाकर अज्ञात और भक्तिपूर्वक विधामित्रका अनुगमन किया। यहाँ विचार करनेपर यह सद्द ही जाना जा सकता है कि धीरामको राज्यसुखसे अरथ-गमनके लिये आज्ञा दे दी और धीरामने भी राजकुमारोचित सुख-सम्भोग-सुहादी उपेक्षाकर अज्ञात और भक्तिपूर्वक विधामित्रका अनुगमन किया। यहाँ विचार करनेपर यह सद्द ही जाना जा सकता है कि धीरामको राज्यसुखसे अरथ-गमन अधिक सुखकर था। कहाँ तो धीरामका युद्धकलानभिज्ञ पञ्चदशवर्षीय सुकुमार बालक कहा जाता और कहाँ उनका ही दुर्दान्त भयंकर राक्षसोंसे निर्विघ्न अरथमें चकेले युद्धके लिये भेजा जाना। कैसा मयङ्कर न्यायार है! परन्तु वस्तुतः धीराम कलानभिज्ञ न थे क्योंकि उनके लौकिक ज्ञान तथा विशेष अभिज्ञताका कविबर वाचमोक्षिजीने सूच्य वर्णन किया है। विदु-आदेशके प्रति ऐसी अज्ञातकारण, उनके सुकोमल धर्मतःकरणमें पितृभक्तिका जो अनुकूलता हो रहा था, निःसंशय बही था।

धीराम निःसन्देह यह समझते थे कि पिता हमारे परम देव हैं उनकी आज्ञा पावन करनेसे हमें अरथ ही सब प्रकारसे सुख-सौभाग्य तथा समुन्नतिकी प्राप्ति होगी। उनके हृदयमें ऐसा विश्वास होनेपर उसमें भक्तिवताका संवर्धन भी सद्द ही होने लगा, त्रिपके फलस्वरूप दुर्दान्त राक्षसोंका बध, विधामित्रकी मन्त्र-रक्षा, शरणाग्र प्राप्ति, अनेक विषयोंमें अभिज्ञता, अरथलोदार, शिष्यपुनर्गम, शिष्टदा कीर्ति-रूपिणी ज्ञानकी देवीका आभ तथा पादुताम-गर्व-हरण आदि अनेक धार्मिककार्य सम्पन्न हुए। अतः

नाथ, राम-पुत्र मंत्रनिहारा। होरहि कोठ पक दास तुम्हारा ॥

आयगु काह कहिय किन मोही ॥

राममात्र लघु नाम हमारा। परगु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥

देव पक गुन चतुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥

सब प्रकार हम तुमसेन हारे। छमहु निप्र अपराध हमारे ॥

चिते सन्निवर कीन्ही दाया। बोले मुदुक बचन रघुरामा ॥

तुम्हारे बल मैं रावन मारा। तिलक निमीषन कहे पुनि सारा ॥

गाम्भीर्यातिशय—यथा—

राम कहेउ रिस तत्रिय मुनीसा। कर कुठार ओगे यह सीसा ॥

मुगुपति बकहि कुठार उठार। मन मुमुकाहि राम सिर नाप ॥

क्षमा—यथा—

कीन्द मोह बस प्रोह जयपि तोहिकर बध ठधित।

प्रमु छाड़े करि छोहं को कृपातु रघुबीर सम ॥

हृष्यादि।

महासायचरत्य—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः

तथा न मग्ने वनवासदुःखतः।

मुसागुञ्ज शीरधुनन्दनस्य मे

सदास्तु सा मन्त्रुलमङ्गलप्रदम् ॥

पितु आयसु भूषन-बसन तात तजे रघुबीर।

निसमय-हरष न हृदय कलु पहिरे बहकल चीर ॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोष ॥

मूष सजेठ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुमहि जुबराजू ॥

गुरु शिष देह राम पहें गयऊ। राम हृदय अस्त निसमय मयऊ ॥

जनमे एक सज्ञ सब भाई। भोजन-सयन-केलि-लरिकाई ॥

करनबेध उपवीत विवाहा। संग-संग सब मयठ उछाहा ॥

विमल बंस यह अनुचित पकू। बन्धु विहाय बड़ेहि अभिषेकू ॥

विमातासे वनवास-प्रसन्न सुनकर—

सब प्रसन्न रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई ॥

मन मुमुकाहि मानुकुल मानू। राम सहज आनन्द-निधानू ॥

हृष्यै—

प्रत कहा मुनिसन रघुराई। निर्मय जग्य करहु तुम जाई ॥

होम करन लगे मुनि क्षारी। आपु रहे मखकी रखवारी ॥

सुनि मारीच निसाचर कोही। कै सहाय धावा मुनि-प्रोही ॥

बिनु पर-बान राम विहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा ॥

पनक सर मुबाहु पुनि जारा। अनुज निसाचर कटक सईमा ॥

मारि अगुर द्विज निभयकारी। अस्तुति करहि देव-मुनि क्षारी ॥

निगूढ़मानता—

सुनताहि दूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौ अभिमाना ॥

जौ हम निदरदि निप्र बदि सरम सुनहु मृगुनाय।

ती अस को जग सुमट जेहि भयवस नावहि माय ॥

देव-दनुज-मूपति-मट नाना। समबल अधिक होउ बजाना ॥

जौ रन हमहि प्रचारे कोऊ। लरहि सुखेन कल किन होऊ ॥

छत्रिय-तनु परी समर सकाना। कुल-कलह तेहि पाँवर जना ॥

कहाँ सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कलहु डराहं न रन रघुवंसी ॥

निप्रबंसके अति प्रमुताई। अमय होइ जो तुम्हहि देताई ॥

दृढमत्तता—यथा—

राय राम राखन-हित लागी। बहुत उपाय किए छल त्यागी ॥

लखी राम-रख रहत न जाने। घरम-बुन्दवार धीर सयने ॥

मातु बचन सुनि अति अनुकूल्य। बनु सनेह सुरतले पूज्य ॥

सुख-मकरन्द भरे श्रीमूला। निरखि राम-मन-मौर न मूला ॥

जौ नहि फिरहि धीर दोउ भाई। सत्य-सन्ध दृढजत रघुराई ॥

वनवासको स्वीकार कर जिया, फिर अनेक प्रेमातुरोप

धौर कल्या-प्रापनाभाँपर भी विचलित नहीं हुए।

धर्म में सुनियोंका अस्थि-समूह देखकर—

निसिचर हीन करौ महि मुख उठाव पन कीन्ह।

बालिवध-प्रतिज्ञा—यथा—

सुनु सुग्रीव मैं मारिहौ बालिहि एकहि बान।

प्रह-रुद्र-सरनागतहुँ गप न उबरिहि प्रान ॥

उन रघुकुलतिलक धीर-धीरशिरोमणिये को उ

कहा, वह कर विजाया, जिसका अस्वीकार धौर स्वीक

कर जिया, अन्ततक सब प्रकार उसका निर्वाह किया

चत्रियोंके सर्वश्रेष्ठ पवित्र सूर्यवंशमें, परमप्रतापी सार्वभौ

चक्रवर्ती-कुलमें अच्युतार धारण किया। रूप, शीघ्र, बुद्ध

वयस, गुण्य, गौरव, विद्या, प्रतिभा, विनय, बल, विक्रम, तेज, शौ

प्रेरवर्ष, माधुर्य तथा कल्यादि निसिद्ध कल्याणगुणकारिणि

होनेसे दशरथ-राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी नायकत्वके निम्न

घादर्थ एवम् पुरुषोत्तमत्वकी मन्त्रु मर्यादा है। जैसे वे

नृपत्वमें चक्रवर्ती हैं, वैसे ही नायकत्वमें सार्वभौम अर्थात्

धीरोदाय नायकत्वके दृष्टप्रति राजा मर्यादापुरुषोत्तम हैं।

(कनक)

## रामायणमें आदर्श पितृभक्ति

(केचन-राजबहादुर राजा भीष्मदीनारायण हरिचन्दन जगदीश विद्यावाचस्पति, पुरातन-विशारद देहली)

पिता हि परमः स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।

पितरि प्रीतिगोपन्ते प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

'सर्वकामो वनेत' इत्यादि वेदप्रतिपादित वाक्योंसे पितृ-सुख-समन्वित, त्रिशापशूय, पुण्यकर्मों पुरणोंकी प्रीति तथा पवित्र-चरित्र-देव-मुन्दके आवास दिव्य शक्ति का मनावाले मनुष्य पशुके द्वारा पशुपुरणकी प्राप्ति करते हैं। वसी स्वर्गकी प्राप्तिके लिये पितृभक्तिपादित मार्गमें अग्रसर होनेवाले लोग तीर्थ-सेवन, जन्म-मृत्यु करते हैं, तथा उपनिषदोंमें अदाशील-मनुष्य मन्वानका साधन करते हैं। मीमांसके अनुयायी वेद-वेदांगित पशुकर्ममें सत्पराको ही उपासना मानते हैं। पशु धर्मशास्त्रानुसृत मार्गपर चलनेवाले साधक भिन्नशास्त्रोंक साधनाओंद्वारा जिस लोकको उत्तम समझते हैं, उसको प्राप्त करने चाहते हैं और साहित्यामृतसेवी धर्म जप्य-प्राप्तिकी ओर एकटक देखते हैं—वह स्वर्ग क्या है? प्रीति है? कैने पहचाना जाता है? और उसे प्राप्त होनेवाले लक्ष्य क्या है? सुख भोगते हैं? इन प्रश्नोंके उपपत्तिका लक्ष्य को जते समय महर्षि वेदव्यासचित महाभारतका पुरुष श्लोक स्मरण हो आता है, जिसका तात्पर्य यह है कि स्वर्गप्राप्त पुरुष जिस सुखका उपभोग करते हैं, उसकी प्राप्ति पितृभक्ति ही होती है। पितृभक्ति तीनों तापोंसे प्राप्त होता है। तपके प्रभावसे जो कुछ प्राप्त होता है, पितृभक्तिसे वह भी अनायास मिल जाता है। पिताको श्रेष्ठ रखनेवाले पुरुषसे समस्त देवता भी सन्तुष्ट रहते हैं। पितृभक्तिसे लिये रामायणका नाम लिया जा सकता है जिसे पितृभक्ति पितृभक्तिका आदर्श ग्रन्थ समझते हैं। इस ग्रन्थके नामकरणमें भी पितृभक्तिका भाव व्यञ्जित है।

अथः उपपत्तिका चारों प्रश्नोंके उत्तर इसप्रकार दिये जा सकते हैं— (१) पितासे स्वर्ग भिन्न नहीं है अर्थात् स्वर्ग ही स्वर्ग है। (२) वह पिता हमारे समीप रहते हैं। (३) हमारे हस्तगत वस्तुकी तरह वे हमारे अधीन रहते

हैं। (४) उनके सन्तोषसे प्राणीमात्र प्रसन्न हो सुखकी वृष्टि करते हैं।

आदिकविने पितृभक्तिका स्वरूप-निर्दान करनेके पूर्व पितृभक्तिको पद्येष्टरूपसे दिखलाया है। यथा—पुत्रप्राप्तिके लिये राजा दशरथकी चिन्ता, धीवशिष्टकी परामर्शसे पुत्रप्राप्तिका समारम्भ, अश्वत्थकी बुलानेके लिये सुमन्तका उपदेश तथा अपिका भागमन और यज्ञारम्भ प्रभृति विभिन्न सन्दर्भोंका उद्गमन किया गया है। महाराज दशरथके पुत्र प्राप्त होनेके पश्चात् अपिचर्ष विश्वामित्रने अयोध्या पधार कर प्रबल पराक्रमी विविध मायाविशारद मारीच, तापका, सुयाहु आदि हुदान्त राक्षसोंके विनाशार्थ महाराजसे उनके पद्मदरा वर्षीय पुत्र श्रीरामको माँगा। इच्छा न होनेपर भी महाराजने श्रीरामको विश्वामित्रके मन्त्र-रचार्य धरष्यगमनके लिये आज्ञा दे दी और श्रीरामने भी राजकुमारोचित सुख-सम्भोग-शुद्धाकी उपेक्षाकर अदा और भक्तिपूर्वक विश्वामित्रका अनुगमन किया। यहाँ विचार करनेपर यह सहज ही जाना जा सकता है कि श्रीरामको राज्यसुखसे धरष्यगमन अधिक सुखकर था। कहीं तो श्रीरामका युद्धकलानभिज्ञ पद्मदरावर्षीय सुकुमार बालक कहा जाना और कहीं उनका ही हुदान्त भयंकर राक्षसोंसे निबिड धरष्यमें अकेले युद्धके लिये भेजा जाना। कैसा भयङ्कर न्यापार है? परन्तु वस्तुतः श्रीराम कलानभिज्ञ न थे क्योंकि उनके लौकिक ज्ञान तथा विरोध अभिज्ञताका कविवर वाल्मीकिजीने लक्ष्य धरष्यन किया है। पितृ-आदेशके प्रति ऐसी अदाका कारण, उनके सुकोमल अन्तःकरणमें पितृभक्तिका जो अकुरोत्रम हो रहा था, निःसंशय वही था।

श्रीराम निःसन्देह यह समझते थे कि पिता हमारे परम देव हैं उनकी आज्ञा आज्ञा करनेसे हमें अक्षय ही सब प्रकारसे सुख-सौभाग्य तथा समुन्नतिकी प्राप्ति होगी। उनके हृदयमें ऐसी विरवास होनेपर उसमें भक्तिताका संवर्धन भी सहज ही होने लगा, जिसके फलस्वरूप हुदान्त राक्षसोंका वध, विश्वामित्रकी मन्त्र-रचा, शत्रुप्राप्ति, अनेक विषयोंमें अभिज्ञता, अदत्तोदार, शिष्यपनुभंग, विशुद्धा कीर्ति-रूपियाँ जानकी देवीका नाभ तथा पाशुराम-गर्भ-हरण आदि अनेक आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न हुए। अतः



तो हुई। यह विन्-भक्ति धन्य है। कौन कह सकता है  
के ऐसी विन्-भक्ति सफल नहीं होती ?

पिताके वीरित रहनेपर उनकी आज्ञाका पावन  
रखेबाड़े बहुत मिलेंगे, पर पिताके मर जानेपर भी  
उनकी आज्ञापर इसप्रकार बड़े रहनेका उदाहरण श्रीरामके  
उक्त ग्रन्थ्य नहीं मिलता !

धर्मादर्श धीरेन्द्रचूडामणिय श्रीरामने लङ्काकायडके  
जन्ममें अपनी प्राण-प्रिया सीताके अग्रहार-जनित दोषके  
पिताके लिये अग्निपरीक्षा करायी। पर अग्निपरीक्षाके  
उत्तर भी उनके मनमें सीताका निर्दोष होना नहीं  
था, तब उनके पिता धीशूररथने स्वर्गलोकसे आदेश  
दिया—“जानकी सती-शिरोमणिय है इसमें सन्देह नहीं”।  
श्रीरामने पिताकी इस आज्ञाशवाप्यीकी सुनते ही अपना  
नाइ सीताके लिये समर्पित कर दिया।

धनुर्दशवर्ष-वनवासके बाद अयोध्या लौटकर राजप्रहण्य  
पर प्रजापालन प्रभृति कार्य भी श्रीरामके जीवनमें विन्-  
देवके द्वारा ही हुए थे। इसप्रकार भगवान् श्रीरामका  
पूर्ण जीवन विन्-प्रादेशसे श्रोतप्रोत था !

जगत्में धरयमान देव-देवीगण जो देवालयोंमें विराजमान  
रहे हैं वे सब स्थूलतः अन्तःप्राण हैं, उनकी प्रतिदिन-  
पूजा-भर्चना हमलोगोंके अधीन है। धरयमान—  
स्व-यामस्थित देव-देवीगण मानव-वस्तुके अगोचर हैं।  
तनिक ज्ञानरष्टि-गोचर देव-देवियोंके अभीष्टप्रद होनेसे  
उन लोगोंसे हम लोगोंकी अभिजापन-सिद्धि अति दूर  
। परन्तु विन्-देव इन सबोंमें श्रेष्ठ है, इसमें कुछ भी  
शुक्ति नहीं। हमसे अघराय होनेपर भी वे हमें शाय  
भी देते। आराधना नहीं करनेपर भी वे असन्तुष्ट नहीं होते  
विन्-देव सदा-सर्वदा पुत्रकी उच्चतिके लिये सचेष्ट रहते हैं।  
वे देते विन्-देवकी उपासना इस जगत्में मानवमात्रको  
करनी चाहिये। इसप्रकार हमें विन्-आराधनामें  
पर कर उत्तियपयमें पहुँचानेके लिये आदिकविने रामायण  
सक वेदोपम ग्रन्थकी रचना करके हमारे अभिवन्दनीय  
गनको प्राप्त किया है। इस विषयको अधिक एहीभूत  
लेके लिये इस प्रबन्धके शीर्षकके नीचे जिले हुए  
अन्तरी परमः स्वर्गः इत्यादिकी पुनरावृत्तिकर हम खेसको  
प्राप्त करते हैं।

## श्रीराम-नाम

(केलक-महात्मा गापीजी)



मनामके प्रतापसे पत्थर सैरने लगे। रामनामके  
बलसे पानर-सेनाने रावणके धुके बुद्धा दिये।  
रामनामके सहारे हनुमान्ने पर्वत उठा लिया  
और राघवोंके घर अनेक वर्ष रहनेपर भी सीता  
अपने सतीत्वको बचा सकी। भरतने चौदह  
सालतक प्राण धारण कर रखे, क्योंकि उनके कण्ठसे सिवा  
रामनामके दूसरा कोई शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये  
गुलसीदासजीने कहा है कि कलिकालका मल धो बालनेके  
लिये रामनाम जपो।

इसप्रकार प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकारके मनुष्य  
रामनाम लेकर पवित्र होते हैं। परन्तु पावन होनेके लिये  
रामनाम हृदयसे लेना चाहिये। जीम और हृदयको एककर  
करके रामनाम लेना चाहिये।

× × ×

रामनामके गीत गानेके लिये यदि कोई मुग्धसे बड़े तो  
में सारी रात गाया करूँ। सो यदि आप अपनेको दुखी  
और पतित मानते हों—और हम सब पतित हैं—तो सुपह,  
शाम और सोते समय रामनामका रटन करो और  
पवित्र होओ।

× × ×

मैं अपने उन पाठकोंके सामने भी इत्ने पेश करता हूँ  
जिनकी षष्टि पुँषमी न हुई हो और जिनकी अदा बहुत  
विह्वला प्राप्त करनेसे मन्द न हो गयी हो। विह्वला हमें  
जीवनकी अनेक अवस्थाओंसे पार ले जाती है, पर संकट  
और प्रलोभनके समय वह हमारा साथ बिरगुल नहीं देती।  
उस हालतमें अकेली अदा ही उबारती है। रामनाम उन  
लोगोंके लिये नहीं है जो ईश्वरको हर तरहसे पुनर्बाधा  
चाहते हैं और हमेशा अपनी रक्षाकी भांश उसने बगाने  
रहते हैं। वह उन लोगोंके लिये है जो ईश्वरसे बाहर पचने  
हैं और जो संपमर्क जीवन बिठाना चाहते हैं पर  
अपनी निर्बलताके कारण उसका पावन कर नहीं पाते।

× × ×

इसलिये पाठक एवं सामक हैं कि रामनाम हृदयका  
बोल है। जहाँ बाधा और मनमें पकटा गरी, वहाँ बाधा



शताब्दिमें हुई थी। जेमेन्द्र दासव्यास, सोमभट्ट तथा अन्य कवियोंके कथानानुसार यह ग्रन्थ पैशाची भाषामें लिखा गया था। षाण्भट्ट, सुबन्धु, दयडी प्रभृति महा-कवियोंके उल्लेखसे पता चलता है कि यह ग्रन्थ ईसाकी शीशवीं या दुईठीं शताब्दितक प्रचलित था। इस ग्रन्थके षाण्भट्टरूप तीन ग्रन्थ संस्कृत-भाषामें और एक ग्रन्थ भाषिणमें आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत-ग्रन्थोंमें कारमीरका 'वृहत्कथा-श्लोक-संग्रह' सबसे पुराना है। प्रसिद्ध विद्वान् M. Lacote ने इसका सम्पादन किया है। दूसरा ग्रन्थ जेमेन्द्रदास व्यासकृत 'वृहत्कथामञ्जरी' है, जिसकी रचना १०१० ई०के लगभग हुई। और तीसरा ग्रन्थ कारमीरी विष्णुदेव सोमदेवभट्टकृत 'कथासरित्सागर' नामक वृहत्ग्रन्थ जो १००० ई०के लगभग प्रणीत हुआ माना जाता है। तथापि अन्तिम दोनों, जेमेन्द्र और सोमदेव समकालीन ही तथापि उन्होंने अपने-अपने ग्रन्थ स्वतन्त्र रीतिले ही लिखे हैं। 'वृहत्कथामञ्जरी' एक छोटी पुस्तक है, परन्तु 'कथासरित्सागर' तो एक विशाल ग्रन्थ है। इन सब ग्रन्थों-में 'कथासरित्सागर' विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि स्वयं व्यासकथने कहा है—

यथा मूले तथैवैतत् न मनागन्पतिक्रमः ।  
ग्रन्थविस्तरसंश्लेषनायं भाषा च विद्यते ॥  
(कथा० सं० सा० १।१।१०)

इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'कथासरित्सागर' में वर्णित कथाएँ क्यों-की-स्यों पहले 'वृहत्कथा' में रही होंगी। और साथ ही यह भी सिद्ध होता कि महाकवि भवभूति, जो ईसाकी ७ वीं और ८ वीं शताब्दीके सम्प्रकाशमें उपस्थित थे, 'वृहत्कथा'से पूर्वतया वर्णित थे।

अब हम उत्तररामचरितके 'समेखनाष्ट'के आधाराका वर्णन करते हैं। कथासरित्सागरके 'अजड्वारवती काम्बुधरी' अथवा 'अजड्वारवती' नामकी विधावती अपनी कन्या अजड्वारवतीके आश्रयसे समस्त अपने भावी कामाया नरकाइनकी कथा करती हुई श्रीरामकथाका वर्णन करती है। इसी प्रकारमे सीताराम-संबन्धका विषय प्राप्त होता है, साथ ही श्री और जनोसी बानें ही जो सर्वसाधारणको ज्ञान नहीं। इस कथाका मूल हम आर्योंकी लेखामें उपस्थित करते

हैं। एक दिन अपनी नगरीमें गुप्तवेदामें घूमते हुए प्रभु श्रीरामने देखा कि, एक पुरण—

हस्ते गृहीत्वा गृहीणीं निरख्यन्तं निजात् गृहहत् ।  
परस्परं गृहमगात् इति दोषानुकीर्तनत् ॥

—'अपनी स्त्रीको हाथसे पकड़कर अपने घरसे निकाल रहा है और यह दोष दे रहा है कि तू दूसरेके घर गयी थी।' इसपर यह स्त्री कहती है—

रक्षो गृहेषिता सीता रामंदेवेन नेत्रिभिरा ।  
अवमन्थविशो यो मामुज्जति शक्तिदेवमगाम् ॥

'अच्छ शत्रु और तिसपर भी समोगुणके अतारा राजसेधरके घर रहनेपर भी सीता निर्दोष रही और गुणके अनुसार गृह जानेपर भी इतना लाभित किया जाता है।' हमें देखकर श्रीरामचन्द्रजी विचारते हैं—'कहाँ एक साधारण पुरणकी स्त्रीके सर्वथा अपेक्षणीय सामान्य घरराथके द्विषे हुए— गृहनिवांस और वहाँ प्रजाके आदर्शन, मर्त्यादुःखरोक्तम कहलानेवाले राजर्षि रामचन्द्रका सीतापर ऐसा उच्छ्रेय प्रेम! श्रीरामचन्द्रका आदर्श इतना गिरा हुआ है! ऐसा कथारि नहीं हो सकता।' यह विचारकर जोआपचारके अपने प्रभुने अपनी प्राणप्रियाका परिव्याग कर राजा और जनक नन्दिनी वाशमौकिकके आश्रमकी ओर आश्रय पानेके द्विषे अग्रसर हुईं। सीता दुर्दैवके प्रेममें पड़ी हुईं थी। जो अचि-गुनि श्रीसीता-रामके गुण-वर्णनमें श्रीवनकी सफलता मानने थे, वही लोग उस सतीके गर्भावपर शत्रु करने लगे—

मूर्खे सीता सदीपैत्यका मर्त्ययथा कथन् ।

'अच्छ ही यह सीता शत्रुका है नहीं तो इनके बनि हमे क्यों त्यागने?' हा! विधि-विधान हैगा विचक्षण है! आज अचिगुण सीताको पारदर्शित समझकर इतने नहीं बने हैं और करते हैं 'अन्तरे धिःसात्मनः' कर्णान् विनी दूसरे आश्रमको चलो जाओ! आह! हमने अचिगुण दुःखदायी काज औरक्या हो सकती है! परन्तु मर्यादागुणोंको अन्धकारका भव हैने हो सकता है! सीता विचित्र होकर बरती है—

ममदन्तो बन्धा रिच ट्वा अन्धरेडै कन् ।

अनुदाका निरन्डैर विपद विचये इव ॥

'ममदन्त! आह जोहोंको लेने रिचमें जो अन्धरेडै उगकी अन्ध कर ले, अन्ध है अन्धरा होई जो ..



केवल मिथ्या है, दुःख है, शत्रुमाल है। ऐसे उधारवाले धारे संसार मझे घोसा गया जाय, पर वह अन्तर्धामी राम कहीं घोसा था सकता है? सीताकी भी हुई माझाके मनके हनुमान्ने कोष बाले क्योंकि ये देरना चाहते थे कि अन्दर रामनाम है या नहीं? अन्दरको समझदार समझनेवाले गुमरोने उनगे पूया-‘सीताजीकी मणिमाझाका ऐसा अनादर!’ हनुमान्ने जशब दिया-‘यदि उसके अन्दर रामनाम न होगा तो सीताजीका दिया होनेपर भी वह

हार मेरे लिये भातभूत होगा।’ तब उन क युद्ध बनाकर पूया-‘तो क्या तुम्हारे भीतर हनुमान्ने सुरीमे दुगन्त अचना इतय पीरक कडा-‘देतो अन्दर रामनामके सिवा अगार तो क्यूता।’ गुमड अजित हुए, हनुमान् हुई और उस दिनसे रामक्याके समय हनुमान् धारगम हुआ।

(नन्दीनके पुत्राने अंधोये संकी)

## श्रीरामकथामें एक अद्भुत पाठान्तर

(लेखक—भीपुत्र जी० एन० गोबनकर एम० ए०, एल०एल० बी०)



यः रामी प्राप्य विद्या विचारदोंका मत है

कि हिन्दुओंके महाभारत, रामायण इत्यादि पुरातन ग्रन्थोंके जो पाठ इस समय विद्यमान हैं वे ज्योंके त्यों मूलग्रन्थके पर्याय पाठ नहीं हैं, उनमें बहुत कुछ उलटफेर हुआ है। रामकथाकी भी यही अवस्था है। गोरेसियोका बंगलिपिवद पाठ, मार्गमैन, रवीगेज और बर्लिन काहमरी (जिसके दो संस्करण भारतमें हो चुके हैं) के संस्कृतपाठ—सभीमें कुछ-न-कुछ पाठभेद अवरय पाया जाता है। इसी प्रकार बरबर्हमें प्रकाशित वाल्मीकीय रामायणके आधारपर ‘ग्रिफिय’ का पद्यमय अंगरेजी अनुवाद गोरसियोकी प्रतिसे ‘द्विपोबिद् फ्रांश’ का फ्रेञ्च अनुवाद भी पाठभेदसे मुक्त नहीं है। वाल्मीकि-ग्रन्थमें भी कथा-भेदक पाया जाता है। कुछ दिन हुए मैं साहबने किसी कारमीरी लेखकके एक ग्रन्थकी टी थी, जिसमें लिखा था कि श्रीसीताजी मन्दोदरीकी कन्या थी और माताके परित्याग करनेपर जनकने ला-पोथा था। बंगलाके अद्भुत रामायणमें भी यह प्रकार बर्णित है। पर सर्वसाधारणमें सीताजीके अल्प होनेकी गाथा ही प्रचलित है। इसी प्रकार अनेक ग्रन्थोंमें अनेक कथा-भेद भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें मिले हैं, यहाँ उन सबके विवरणको आवश्यकता नहीं।

जब रामकथाका एक अद्भुत पाठान्तर उपस्थित पारा उद्देश्य है।

‘लोकायवादके मयसे सीताजीका परित्याग क बाद श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें पुनः स्वीकार नहीं किया बल्कीकि मुनिके आश्रमसे लौटनेपर श्रीराम-सभामें सब सामने अपने दिग्भ्रातृको दिखलाकर सीताजीके निजघाम प्रयास करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीता-विरहित विराग-वृत्तिसे अरुण्य जीवन व्यतीत किया।’ यही कथा सर्वत्र प्रचलित है। पर महाकवि भवभूतिने अपने ‘उत्तररामचरित’ नाटकके ‘सम्मेजनाङ्क’ में श्रीसीताजी और श्रीरामजीका पुनर्मिलन बर्णन किया है।

यहाँ सदाज ही यह प्रश्न उठता है कि ऐसे विद्वान् तथा महाकविने श्रीरामकथामें इतना बड़ा परिवर्तन क्यों और कि आधारपर किया? क्या हम इसे कविकी निरी निरुद्धत कहेंगे अथवा नाटकको सुखान्त बनानेके लिये उनका ऐसा करना उपयुक्त था? कुछ विद्वानोंका मत है कि संस्कृत नाटयशास्त्रके नियमोंके अनुसार शोक-पर्यवसायी नाटकोंकी रचना एक काव्य-दोष समझा जाता है। कदाचिद् इसी दोषके परिहारके लिये भवभूतिने अपने नाटकमें ‘सम्मेजन की धायोजना की हो। यह कल्पना तथ्यपूर्ण हो सकती क्योंकि संस्कृत साहित्यमें भासकविके नामपर प्रति ‘प्रिवेन्द्रम् सिरिज’ के एक शोकान्त नाटकके अतिरिक्त और किसी शोकान्त नाटकका उल्लेख नहीं मिलता। पर जब पता चला है कि इस अद्भुत, विद्वान् और कविने अनेक यह महावर्ण्य कथान्तर उपस्थित किया है उसका आधार प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘बृहत्कथा’ है। डा० बुलरके (Bulhar) मतानुसार इसकी रचना ईसाकी प्रथम या द्वितीय

शताब्दिमें हुई थी। चेमेन्द्र दासव्यास, सोमभद्र तथा अन्य कवियोंके कथनानुसार यह ग्रन्थ पैशाची भाषामें लिखा गया था। चाणभद्र, सुबन्धु, द्यही प्रभृति महा-कवियोंके उल्लेखसे पता चलता है कि यह ग्रन्थ ईसाकी शौचवीं या छठीं शताब्दिक प्रचलित था। इस ग्रन्थके प्राप्तरूप तीन ग्रन्थ संस्कृत-भाषामें और एक ग्रन्थ शमित्तमें आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत-ग्रन्थोंमें कारमीरका 'वृहत्कथा-श्लोक-संग्रह' सबसे पुराना है। प्रसिद्ध विद्वान् M. Lacote ने इसका सम्पादन किया है। दूसरा ग्रन्थ चेमेन्द्रदास व्यासकृत 'वृहत्कथामञ्जरी' है, जिसकी रचना १०२० ई०के लगभग हुई। और तीसरा ग्रन्थ कारमीरी कविश्रेष्ठ सोमदेवभद्रकृत 'कथासरित्सागर' नामक वृहत्ग्रन्थ है जो १००० ई०के लगभग प्रणीत हुआ माना जाता है। गद्यपि अन्तिम दोनों, चेमेन्द्र और सोमदेव समकालीन ही थे तथापि उन्होंने अपने-अपने ग्रन्थ स्वतन्त्र रीतिसे ही रचे हैं। 'वृहत्कथामञ्जरी' एक छोटी पुस्तक है, परन्तु 'कथासरित्सागर' तो एक विशाल ग्रन्थ है। इन सब ग्रन्थोंमें 'कथासरित्सागर' विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि स्वयं ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं—

यथा मूर्खे तथैवेतत् न मनागम्पतिक्रमः ।

ग्रन्थविस्तारसंश्लेषमात्रं भाषा य विप्रते ॥

(कथा० सं० सा० १।१।१०)

इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'कथासरित्सागर' में वर्णित कथाएँ ज्यों-की-त्यों पहले 'वृहत्कथा' में रही होंगी। और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि महाकवि भवभूति, जो ईसाकी ७ वीं और ८ वीं शताब्दीके सन्धिकालमें उपस्थित थे, 'वृहत्कथा' से पूर्वतया परिचित थे।

यद्यपि हम उत्तररामचरितके 'सम्मेलनाष्ट'के आधारका निर्धारण करते हैं। कथासरित्सागरके 'अलङ्कारवती लम्बकमें' 'अज्ञानप्रभा' नाम्नी विद्याधरी अपनी कन्या अलङ्कारवतीके विवाहान्तसे सन्तप्त अपने भावी जामाता नरवाहनकी सान्त्वना करती हुई श्रीरामकथाका वर्णन करती है। इसी कथामें सीताराम-संयोगका विवरण प्राप्त होता है, साथ ही कृष्ण और अश्वमेधी बातें हैं जो सर्वसाधारणको ज्ञात नहीं। अतः इस कथाका मूल हम पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करते

हैं। एक दिन अपनी नगरीमें गुप्तवेशमें घूमते हुए प्रभु श्रीरामने देखा कि, एक पुरुष—

हस्ते गृहीत्वा गृहीर्णां निररयन्तं निजात् गृहान् ।

परस्वये गृहमगात् इति दोषानुकीर्तनात् ॥

—'अपनी स्त्रीको हाथसे पकड़कर अपने घरसे निकाल रहा है और यह दोष दे रहा है कि तू दूसरेके घर गयी थी।' इसपर वह स्त्री कहती है—

रक्षो गृहीप्तिता सीता रामदेवेन नेभिस्तता ।

अयमभ्यधिको यो मामुञ्जति शक्तिवेदमगात् ॥

'अत्यन्त शत्रु और तिसपर भी समोगुणके अन्तार राक्षसेश्वरके घर रहनेपर भी सीता निर्दोषा रही और मुझे बन्धुके गृह जानेपर भी इतना लाजित्त किया जाता है।' इसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी विचारते हैं—'कहाँ एक साधारण पुरुषकी स्त्रीके सर्वथा उपेक्षणीय सामान्य अपराधके लिये दण्ड— गृहनिर्वासन और कहीं प्रजाके आदर्शभूत, मर्यादापुरोत्तम कहलानेवाले राजर्षि रामचन्द्रका सीतापर ऐसा उल्कट प्रेम! श्रीरामचन्द्रका आदर्श इतना गिरा हुआ है? ऐसा कदापि नहीं हो सकता।' यह विचारकर जोकापवादके भयसे प्रभुने अपनी प्राणप्रियाका पतित्याग कर दाजा और अनक-नन्दिनी बाल्मीकिके आश्रमकी ओर भाग्य पावनेके लिये अग्रसर हुई। सीता दुर्दैवके फेरमें पड़ी हुई थी। जो अचि-मुनि श्रीसीता-नामके गुण-वर्णनमें जीवनकी सफलता मानते थे, वही लोग उस सतीके सतीत्वपर शङ्का करने लगे—

नूनं सीता सदोपैवेत्यका मर्त्यायया कथम् ।

'अवश्य ही यह सीता सदोपा है नहीं तो इसके पति इसे क्यों त्यागते?' हा! विधि-विधान कैसा विज्ञाप्य है! आज अचिगण सीताको पापमूर्ति समझकर टहरने नहीं देते हैं और कहते हैं 'श्रीवैशं विप्ररामम्' अर्थात् किसी दूसरे आश्रमको चली जाओ! धाह! इससे अचिह दुःखदायी बात और क्या हो सकती है? परन्तु सरदारिम शूर्पको अन्धकारका भय कैसे हो सकता है? सीता विधेय होकर कहती है—

मगवन्तो यथा पिय तथा शोचतेऽहं मन् ।

अमुद्रायाः शिरस्तेऽ निग्रहः द्विपशं मन ॥

'मगवन्! आप लोगोंको मेरे विनयमें जो तन्देह है उसकी जाँच कर लें, यदि मैं अपद्रवा होऊँ तो दृष्टावश्य

मेरा सिर काट डाला जाय ।' ऋषियोंने सतीकी सत्य-परीक्षा करना निश्चित किया और कहा—

अस्यत्र टिटिमसरो नाम तीर्थं महावने ।  
टिटिमी हि पुरा कापि मंत्रान्यासद्भरद्दिना ॥  
मिथैव दूषिता साध्वी चक्रन्दाशरणाभुवम् ।  
लोकपालांश्च तैस्तस्या शुद्धयर्थं तद्विनिर्मितम् ॥  
तत्तथा राघववधुः परिशुद्धिं करोतु नः ।

'इस महावनमें टिटिम-सर नामका पुनीत सरोवर है । प्राचीन कालमें एक टिटिहरीके पतिने अत्यासङ्ग होनेकी शङ्कासे मूढ़े ही उस साध्वीको दूषित ठहराया था । इसपर वह टिटिहरी थलिल भूमयडलमें शरय पानेके लिये चिह्वाती फिरी, अन्तमें लोकपालोंने उसकी शुद्धिके लिये इस सरोवरका निर्माण किया । उसी सरके किनारे इस राघव-पत्नीकी परिशुद्धि भी की जाय ।' फिर क्या था ? जगन्माता श्रीसीताजी तत्काल उस सरोवरके तट पहुँची और इसप्रकार त्रिभुवनको धरानेवाला शपथोच्चार किया—

यदार्यपुत्रादन्यत्र न स्वप्नेऽपि मनो मम ।  
तदुत्तरेयं सरसः पारमन्व बसुन्धरे ॥

'यदि मेरा मन आर्यपुत्र श्रीरामसे अन्यत्र स्वप्नमें भी गया हो तो हे माताबसुन्धर ! इस सरोवरको मैं पार कर जाऊँ ।' इतना कहना था कि श्रीसीताजी उस अगाध जलको खीलासे पार कर गयीं ।

इस दिग्घट्टरपका ऋषियोंके ऊपर अद्भुत प्रभाव पड़ा । उनका सन्देह समूह नष्ट हो गया । और तत्पश्चात्—  
ततस्तां तं महासाध्वीं प्रणमुमुनयोऽसिरः ।  
राघवं शशुभैच्छेद्यं तत्परित्याग मन्थुना ॥

—'वे अलिल मुनि उस महासाध्वी श्रीसीताजीको आदाम करने क्षणे और अचिंत हो सीताको परिभ्याग करनेके कारण साक्षात् श्रीरामको शपथ देनेके लिये उद्यत हो गये ।' बात उचित थी । खोकापकाद-मपसे ही क्यों न हो, एवं निष्ठायासतीके साथ स्वयं वृक्ष करनेवाले रामचन्द्रको ही इच्छ क्यों न दिया जाय ? पर यह ठीक नहीं । त्रिमके स्व-प्रभावसे और सतीपत्नीकी समोच शक्तिके बलसे आर्य ऋषिपति ब्रह्माचार्य आद्य सादे संसारमें रहना रही है और अक्षयमें भी चंद्रराजो रहेगी वह आर्य-स्त्री पातिमनसे त्रिवि विचलित नहीं हो सकती, वह सदा 'वदितिवेरा' के सही प्रति-का वाचकनी बनी रहेगी । उसका सतीपत्नी के सने प्रतिष्ठा सदा सदा है । भारतीय महिलाओंका

यह विशेष गुण है । तापर्यं यह कि श्रीसीताजीने ऋषिवृन्दको शपथोद्यत व्यवस्थासे विरत करते हुए कहा—

मुष्माभिरार्यपुत्रस्य न ध्यातव्यमनंतमम् ।'

'आप लोगोंके लिये आर्यपुत्रके धर्मफलका ध्यान करना भी उचित नहीं, फिर शपथ देना तो और भी अनुचित है । सतीके प्रतिमेका यह सर्वोच्च आदर्श व्यवस्था ही आदर्श है । उन्होंने ऋषियोंसे स्पष्ट कहा—'आर्यपुत्र मनेव' अर्थात् 'शपथ देना हो तो आप मुझे शपथ दें ।' आर्य-स्त्रीके मुक्त-कमलसे ये शब्द कैसी शोभा दे रहे हैं ? दोष सर्वथा रामचन्द्रजीका है और प्रायश्चित्त सती सीता अपने माथे से रही हैं । सच है, जगत्को सिखावन देनेवाले जनक और मर्त्या पुरुषोत्तम श्रीरामकी पत्नी ऐसा न करे तो और कौन की करेगी ?

अस्तु, कुछ दिन पीतनेपर सीताजीके खव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । एक दिन सीताजी उसे लेकर बाव करने चली गयीं । उनको अनुपस्थितिमें ही वारसीफिजी आश्रममें लौटे और लवको दिंदोलेंमें न था बड़े बिलित हुए । उन्हें भय हुआ कि कोई हिन पशु बाघकरो क्या तो नहीं ले गया । सीताके भयसे तत्काल ही ऋषिने तपोव्रतसे कुशद्वारा एक बालककी रचना की और उस कुश-बाबकको दिंदोलेंमें सुला दिया । इसप्रकार सीताजीके भय और कुश दो पुत्र हो गये ।

एक दिन इन सीताकुमारोंने—

अर्थात्किं च बालकीकेभक्तुः क्रीडनीरकम् ॥

'बावसीफि मुनिके अर्चनीय शिवबिहोंको क्रीडाकी सामग्री बना डाला ।' उनके इस दोषके परिहारके लिये मुनिने परम दुर्घट प्रायश्चित्त गुनाया—

गत्वा कुबेरसरसः स्वर्गपद्मानयन ततः ।  
तदुद्यानस्य मन्दारपुष्पाग्नानयतु दुष्पम् ॥  
तैस्ती प्रातरतेनत् तिमयर्षवदनुजैः ।

'कुबेरसरसाका खव स्वर्गपद्मोंको और उनी उद्यानमें मन्दार पुष्पोंको साथ और दोनों भाई तिमयर्षुनी पूजा करें ।' इतने गुनने ही वह बाबक कुबेर-नार वृक्ष और वहाँके रक्षक यक्षोंको मारकर स्वर्गपद्म तथा स्वर्गपुष्प लेकर बीटा, रामनें एक वृक्षके नीचे निवास करे छागा, इतनेमें—

तत्रन्वरे च रामस्य तदेवे पुष्पम् ।  
विन्दन् पुष्पान्मन्त्रेण देव तत्रैव तत्रम् ॥

स एवं समराहते मोहनाखेण मोहितम् ।

श्रमपमेण वप्या तं अयोध्यामानवपुरीम् ॥

'श्रीरामके नरमेघके हेतु शुन्दर लक्ष्मणोंसे युक्त पुरखोंको हँसे-हँसे लक्ष्मणजी उसी मार्गसे लौटे और सबको युद्धके लिये खड्गधारक उसे मोहनाखसे मोहित कर बाँध करके अयोध्यापुरी खेगये ।' पाठक विचार कर सकते हैं कि इस समय सीताकी क्या दशा हुई होगी ? पर सर्वज्ञ वाल्मीकिजीने इसको दिव्य शस्त्रास्त्र देकर अयोध्या जाकर खड्गको बुझानेकी आज्ञा दी । कुशने तुरन्त अयोध्याके लिये स्थान किया और वहाँ जाकर—

शेष्यमानामयोध्यायां यज्ञभूमिं श्लेष सः ।

अयोध्यामें घोर संग्राम हुआ । पर सीताजी-जैसी विजिता-शिरोमणिको, लोकापवाद तथा धर्मके नामपर, निवासित कर देनेवाले राम और लक्ष्मण, साक्षात् नारायणके अवतार भी उस जैसी महासतीके पुत्र और ऋषिवर वाल्मीकिके परमभक्त त्रिभुवनविजयी श्रीरुद्रके सामने कैसे डहर सकते थे ? अयोध्यामें कुशने उन त्रिभुवन-कम्पी वीरवर्तोंको परास-न्न दिया । अन्तमें रामचन्द्रजीके पूछनेपर उसने कहा—

कुरास्ततोऽप्रवीत् बद्ध्वा लक्ष्मणेनाग्रजे मम ।

आनीत इह तस्माद् मोचनार्थमिहागतः ॥

आवां लक्ष्मणौ रामतनयौ इति जानयी ।

माता नौ वकि चेत्युत्वा तद्ब्रूतान्तं शशंस सः ॥

लक्ष्मण मेरे बड़े भाईको बाँधकर यहाँ लाये हैं । मैं उनके छुड़ानेके लिये यहाँ आया हूँ । हमारी माता जानकीने बतलाया है कि हम दोनों लक्ष्मण-श्रीरामके पुत्र हैं ।' इस वृत्तान्तको सुनकर श्रीरामका हृदय भर घाया और उन्होंने उन बाल-वीरोंको पकड़कर हृदयसे जगा लिया—

अथ सीतां प्रशंसतु श्रीरोऽप्रमत्सुतौ शिशू ।

श्रीरेषु मितितेष्वन स ती रामोऽप्रहीत् सुतौ ॥

आनाम्य सीतादेवी च बाल्मीकिराधमासतः ।

तया सह सुखं तस्यै पुत्र्ययस्तमरोऽय सः ।

श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी प्रशंसा करते हुए और उन दोनों अपने शिष्ट पुत्रोंको देखते हुए नगरनिवासियोंके साथ आनन्दते उनको ग्रहण किया और वाल्मीकिजीके आश्रमसे

श्रीसीता देवीको बुलवाकर पुत्रोंके ऊपर राज्यभार छोड़कर ये सुखसे जीवन व्यतीत करने लगे ।

यही 'कथासरित्सागर' में कही हुई कथाका संक्षेपरूप है । धन पाठक सहज ही देख सकते हैं कि इस वर्णनमें और लोक-विश्रुत रामायणी कथामें कितना भेद है ? उपर्युक्त टिप्पि-सर और नीर-परीक्षाका वृत्तान्त रामायणमें नहीं पाया जाता । शवण-वधके पश्चात् सीताजीके अग्नि-प्रवेशकी कथा सबको विदित है । पर सीताजीकी यह सरोवरप्रवेशकी बात एकदम अनोखी है । हाँ, सीताजीका नदी-प्रवाहके मार्गको बदल देने या नूतन गंगधाराको उत्पन्न करनेकी कथाएँ प्रचलित हैं परन्तु सत्य-परीचायं सीताजीका सरोवर—प्रवेश करना एक बिल्कुल नयी बात है । वैसे इस कथामें, नरमेघका उल्लेख भी कम आश्चर्यजनक नहीं । श्रीरामके अरवमेघकी बात तो प्रसिद्ध ही है पर श्रीरामके समय नरमेघकी राक्षसी प्रथा प्रचलित थी यह अत्यन्त ही असम्भव प्रतीत होता है । ॐ तीसरी बात, इस कथामें कुछ लक्ष्मणका अयोध्यामें युद्ध होता है । रामायणीय कथाके अनुसार यह युद्ध वाल्मीकिके आश्रमके समीप हुआ था । कहीं-कहीं तो इस युद्धके वाल्मीकि-आश्रमके समीप होने और कुश-लवके द्वारा श्रीराम-लक्ष्मणके पराजित होनेकी बात मिलती है । परंपुराणमें भी इस युद्धकी भूमि आश्रमके समीप ही बतलायी गयी है । इस कथामें कुश अपने माता-बिताका नाम स्पष्ट कह देते हैं और वाल्मीकि तथा अघ्याराम-रामायणमें दोनों बालक अपनेको मुनि-नुसार और वाल्मीकिजीके शिष्य कहते हैं और राम-सभामें राम-कथाका सुस्वर गान करते हैं । ऋषियोंका प्रभुको शाप देनेके लिये उद्यत होनेकी और खड्गके स्पर्शपत्र खानेकी कथा भी उल्लेखनीय है । एक और कथाभेद इसमें यह है कि जहाँ अन्य स्थलमें श्रीरामचन्द्रको सीता-सगर्भणी अपवादकी कथा बूतोंद्वारा प्राप्त होती है वहाँ इस कथामें उसे श्रीराम गुप्तवेरमें अयोध्यामें घूमते हुए स्वयं सुनने है । इस कथामें सती सीताके एक ही पुत्र होनेका बर्णन है और रामायणमें लक्ष्मण दोनोंके जानबीजीके गर्भसे उत्पन्न होनेकी बात पायी जाती है । कुश-नी कुशकी उत्पत्तिका बर्णन कल्पतरु रामायणमें भी नहीं पाया जाता । तथापि यह कथा समस्त भारतमें प्रचलित है । इस कथामें

ॐ सर्वदापुत्रोपम भगवान् श्रीरामका नरमेघ बंध करने का विषय सम्भव नहीं माना जा सकता । सम्भव है, नरमेघ कल्पतरुके लिये बनायी करवासे देवी वाते जिन ही हो । परन्तु इन बातोंपर कभी विचार करना योग्य नहीं ।

श्रीगान्धर्वगणके पद्मात् श्रीगान्धर्वगण पुनः संयोग रिणाया  
गया है। यह क्या सामाजिक कथने विद्वांस विन्द है।  
बाबमीकीय सामाजिक श्रीगान्धर्वगणका उन्नेय तो  
मिचगा है पर श्रीगान्धर्वगणकी जान नहीं मित्रता।  
श्रीर 'कथापरिणाम'में यह विधा है—

तथा सह सुमं तयो पुन्यमनतोऽप सः।

मोक्षके कथनानुसार यह अनुमान किया जाता है  
कि यह क्या वेगी ही 'वृहत्कथा' में वर्णित होगी। यह  
सम्भव नहीं कि सोमदेव-श्रीगान्धर्वगण और विद्वान् कनि  
सामाजिकी कथा (श्रीगान्धर्वगण और सुनि प्राथम्ये  
कीरते ही श्रीतीतार्थके निज धाम-गमन) से परतिष्ठित  
हो और साथ ही यह भी सम्भव नहीं कि उन्होंने  
'परिणाम' के प्राधारभूत वृहत्कथामें वर्णित राम-कथाके  
विपरीत पैसा फेरफार किया हो। अतः सोमदेवके  
कथनानुसार ही वृहत्कथामें श्रीतीतार्थ-राम-संयोग प्रथम ही  
परिष्ठित रहा होगा। साथ ही यह भी निरसन्देह है कि  
भवभूति इस प्रसिद्ध महात् प्रथमसे प्रथम परिष्ठित थे।  
दृष्टी, वाच, सुषुप्त्य प्रभृति कथिषोंके कथनानुसार ईसाकी  
दुर्ती शताब्दिमें यह ग्रन्थ प्रचलित था, अतः भवभूतिके  
इससे परिष्ठित होना नितान्त सम्भव है। मोक्षेतर खेवीका  
भी यह मत है कि भवभूतिके माखलीमायिका कथानक  
वृहत्कथाकी उस मूल कथासे लिया था जिसके प्राधारपर ही  
सोमदेवने कथापरिणाममें मदिरावतीकी कथा लिखी थी।

M. Lacote द्वारा प्रकाशित 'वृहत्कथा-श्लोक संग्रह'  
की विषयसूचीमें उपयुक्त रामकथाका वर्णन नहीं है, पर  
सेमेन्टकी 'वृहत्कथा-मञ्जरी' में रामकथा अति संक्षेपमें  
वर्णित है तथा यह श्लोक भी उसमें पाये जाते हैं—

## दोनों लोकोंका पन्थ

येदनकी भेद वेदव्यासने बखान्यो सोई,  
सरल सुबोध भाषाबद्ध करि गायी है।  
रामायन बालमीकि आदि गुरु ग्रन्थन के,  
भाव भरि कीन्हों सार-संग्रह सुहायी है॥  
पान करि पावत सुजान-अनजान, पेसो  
धानीमय पावन पियूष धरसायी है।  
दास तुलसीने ग्रंथ मानसके व्याज मानो,  
पंथ बुद्ध लोकनको पाधरो बनायी है॥

—अनुनरास केरिया।

द्विभोदि सरे मायो वपुःप्रदनेन समानताम्।  
प्रतिप्रकारिणा मन्विषा निष्कारि मानसाम्॥  
पुत्री पुन्यमिष्टीकी उकी कल्पनीकिा स्वप्नम्।  
ठी प्राय रामोदपितो मिश्रुद्धानिनिनय ताम्॥

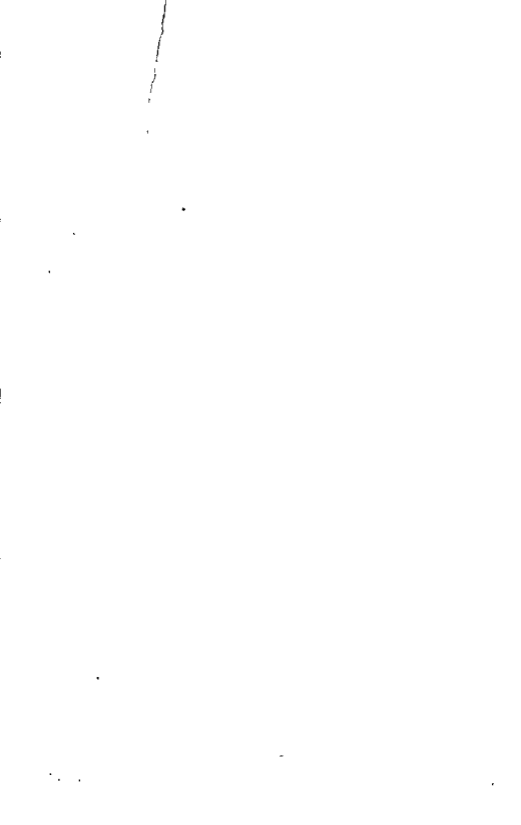
'स्वर्ग बाबमीकीके कथने पर कि वे कुत्र-अव नामके  
दोनों धारके पुत्र हैं, श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रथम कथकेन  
अनी मिश्रुदा भावां श्रीमीनाजीको पुत्रा मेजा।' इत्-  
प्रकार वृहत्कथाके प्राधारपर लिखे गये तीन संस्कृत-  
ग्रन्थोंमें दो ग्रन्थोंमें श्रीतीतार्थ-रामके पुनः सम्मेलनका  
वर्णन मिश्रता है। इतना ही नहीं, कथापरिणामके  
ग्रन्थकार तो वर्तक कथने हैं कि 'यथा मूलं तदंशेऽप  
मनागन्धिनिकमः।' इससे यह अनुमान सुरद होता है कि  
वृहत्कथामें श्रीतीतार्थ-राम-सम्मेलनकी कथा प्रथम वर्णित  
थी और क्योंकि यह ग्रन्थ ईसाकी दुर्ती शताब्दीमें प्रचलित  
था। अतः बहुमुल विद्वान् भवभूतिके इस कथासे परिष्ठित  
होनेके कारण उचरारामचरितके सम्मेलनकाइकी रचना अने  
समय इस कथाको अपने मनब्रह्मके सानने प्रथम रस्ता था।

'साथ ही यह बात भी याद रखने योग्य है कि रामकथा-  
वैसी परम प्रसिद्ध और परम पुनीत कथामें, नागरकथाके  
लिये ही क्यों म हो, सहसा पैसा विपर्यय करना भी सह्य  
नहीं। और नाटककी लोकप्रियताके लिये भी पैसा करना  
वक्तक उचित नहीं सम्भव था, वक्तक कविके उलके  
लिये ताकावीन साहित्यमें कुछ प्राधार न मिले था। अन्तमें  
हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उपयुक्त सोमदेवकी  
कथासे मिलती-जुलती कथाएँ अन्यत्र भी पायी जाती हैं।

## तुम्हे अर्पण करे

लोचन लखे तो लखे तेरा ही अनुप रूप,  
घाणी जो करे तो करे तेरे गुण गानकी।  
अर्पण सुने तो सुने तेरे ही मधुर वीन,  
तेरे ही तनू की गन्ध सुन्ध करे ध्यानकी।  
स्वचा भी छुप तो छुप तेरी ही सरण-भूलि,  
मन भी सोचे तो सोचे तेरे गुण-धानकी।  
हृदय तेरा ही लोभी तेरा ही आसक बने,  
अर्पण तुम्हे ही करे "वंद" प्रिय प्राणकी।

—शारदर राविका बी. २० "वंद"





परसंत-पद पावन सोक-नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।  
देखत रघुनायक जन-सुख-दायक सनमुख होर कर जोरी रही ॥

स. श. भुदशासय-अभवावा.

## अहल्याका पद-वन्दन

राम-गद-शकुन्तला-परी ।

ऋषि-तिय तुरत त्यागि पाहन तनु त्रिभय देह धरी ॥  
 प्रचल पाप पति-साप-दुसह-दध दारुन जरनि बरी ।  
 कृपा-सुधा सिचि विबुध बेलि ज्यो फिरि सुख-करनि फरी ॥  
 निगम-अगम मूरति महेश-मति-जुगति वराय बरी ।  
 सोइ मूरति भइ जानि नयन-गथ इक टकने न टरी ॥  
 वरनति हृदय सरूप-सील-गुन-प्रेम-प्रमोद भरी ।  
 तुलासीदास अस केहि आरतकी आरति प्रभु न हरी ॥

## श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी स्वकथित जीवनी

(लेखक-साहित्यरत्न पं० श्रीविजयानन्दजी विपाठी)



विशुद्ध-चूड़ामणि, धर्मप्राण, सकल-शास्त्र-  
 तपस्व, भगवद्गणप्रणय श्रीगोस्वामी  
 तुलसीदासजीका परिचय देनेकी कम-से-कम  
 दिग्दी जाननेवालोंके लिये कोई आवश्यकता  
 नहीं है। आपकी काशी-लाभ हुए केवल  
 तीन सौ वर्ष बीते हैं, फिर भी आपकी

जीवनीके विषयमें बहुत कुछ खोज होनेपर भी कोई विशेष  
 जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी बल्कि अम और भी बढ़  
 गया। इनके माता-पिताके नाम, इनकी जन्मभूमि आदिके  
 विषयमें ऐसा घोर मतभेद है कि जिसका सामञ्जस्य होना  
 निराम्भ असम्भव-सा हो गया है। श्रीवेणीनाथवराचित  
 'गोसाईं चरित' का नाम बहुत दिनोंसे सुनते आते हैं,  
 परन्तु यह पुस्तक बहुत खोज करनेपर भी प्राप्त नहीं हुई।

ऐसी अवस्थामें कविने स्वयं अपने विषयमें प्रसंगानुसार  
 कहीं कहीं जो कुछ कह दिया है उसीके संवहसे सन्तोष  
 करना है। यह कविजी भी ऐसे विरक्त थे कि अपने विषयमें  
 औरको बात तो कहना ही नहीं चाहते थे, बहुत नाराज  
 हुए तो कह उठे—

जिरी जाति पति न चहुँ काहूरी जाति पति,  
 मेरे कोऊ कामको, न ही काहूके कामको ।  
 साधु के असाधु भरो के शेष सौच कहा,  
 का काहूके द्वार परी, जो ही सोही रामको ॥

तथा—

भूत कही अवभूत कही  
 रजपूत कही, जोरदा कही बांड ।  
 काहूकी बेटीसो बेटा न न्यादन,  
 काहूरी जात विगारन सोऊ ॥  
 तुलसी सरनाम तुलाम है रामकी  
 आरे रथ सो कहे कतु बाऊ ।  
 मौरिके सीरो मनीतरो सोरने,  
 लरेको एक न देवेको दोऊ ॥

परन्तु हममें सन्देह नहीं कि गोसाईंजीने कियो परित्र  
 प्रालम्ब-कुलमें जन्म ग्रहण किया था यदि ऐसा न होना तो  
 वे रजपूत कहनेसे न चिढ़ते। दूसरे, उगड़ोंने स्वयं लिखा है  
 'दो सो सुकल जन्म शरीर सुन्दर हेतु मे पन चारिगे।' हममें  
 यह बात भी मिल्द होती है कि गोस्वामीजीका शरीर भी  
 सुन्दर था। नागरी-प्रचारियों-गणके प्रवचने ऐसे हुए  
 रामायणमें-जैसा वेदशास्त्र दिया हुआ है, उनका शरीर  
 ऐसा नहीं था। 'सुन्दर' वचने तो मन्त्रविज्ञान-प्रेम कर्तव्यमें  
 ऐसे हुए रामचरितमानसमें शिव प्राचीन चित्रकी प्रतिबिम्बि  
 ही हुई है बड़ी ममीचीन उचरती है, और बड़ी प्रतिबिम्बि,  
 गोस्वामीजीके अन्तर्गतके पारब्रह्मी स्वर्गीय शिष्यकी-प्रसाद  
 पदशाजीके वही गोस्वामीजीका जो प्रार्थन चित्र है, उगवे  
 मिलती लुचती है।



गोस्वामीजीके माता-पिताने इनके जन्म लेते ही—चाहे उक्त मूलमें जन्म लेनेके कारणसे ही हो—इन्हें त्याग दिया, और ये बहुत दिनोंतक बहुत ही दुखी अवस्थामें कते किये थे। यथा—

जायो कुल मंगन बघायो ना बजायो सुनि,  
भयो परिताप पाप जननी जनकको।  
बोरते ललात बिललात द्वार द्वार दीन  
जानत हौं चारि फल चार ही जनकको ॥

तथा—

मांहु पिता जग जाय तञ्चौ  
विधिहू न लिख्यो कहु माल मलाई।  
नीच निरादर भाजन कादर  
कूकर टूकन लाग ललाई ॥

परन्तु बचपनहीमें इन्हें किसी अच्छे महात्माका सत्संग, और उन्हींका शिष्यत्व प्राप्त होनेसे ये राम-रंगमें रंग यथा—

में पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सुसूकर सेत।  
समुझि नहीं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥

पि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कहु मति अनुसार। ॥

गोस्वामीजीके हृदयमें जैसी गुरुभक्ति थी, उससे उनके लेके अलौकिक सद्गुणोंका परिचय मिलता है, और सत्संगसे गोस्वामीजीमें जैसे सद्गुण, श्रद्धा, विश्वास, वैराग्य और भक्तिका उदय हुआ, उससे भी कहा जा ता है कि गुरुदेव बोधमय शस्त्ररूप ही थे।

गोस्वामीजीका नाम—चाहे उनके गुरुजीने रक्खा हो, त उनके रामनामकी स्तनको सुनकर खोंगोंने ही रख। हो—रामबोला था, जिसका उल्लेख गोस्वामीजी मानके साथ किया करते थे, यथा—'रामबोला नाम है। राम साहिब' फिर विनयपत्रिकामें करते हैं कि 'रामो। नाम रामबोला राबो राम।'।

गोस्वामीजीकी अरुनी मान्भूमिके प्रति कैसी भक्ति थी, वे क्षाया श्रीरामचन्द्रजीके अघोष्याका वर्णन करवानेमें ती है, यथा—

मूनि मन परी सुरचनि। उररहिं बह सरू पारनि ॥  
ने सब बैसुट बगना। बंद पुरज विदिन बन जन। ॥  
हरिहर सोइ विर नही सोइ। बह प्रसन्न स्तनि कोउ कोउ ॥

गोस्वामीजी स्वयं जिस भाँति चित्रकूटका वर्णन करते हैं और वहाँके कोल-किरात, बेलि-विटप, वृषकी भी महिमा करते हैं, इससे उनके चित्रकूट-ग्रान्तमें जन्म ग्रहण करनेकी बात युक्तियुक्त मालूम होती है। चित्रकूट जाते समय—  
कवि अलक्षित गति नेप विरागी। मन क्रम नचन राम अनुरागी ॥

—बटुका श्रीरामचन्द्रसे मिलना और फिर उसका दृष्ट न होना, श्रीरामचरितमानसमें एक ऐसी विचित्र घटना है, जिससे उक्त स्थलको उनकी जन्म-भूमि माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

गोस्वामीजीके ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि पारलौकिक साधनके उपयुक्त शास्त्रानुसारके होते हुए भी, गोस्वामीजीको गृहस्थाश्रमका पूरा अनुभव था, उन्होंने अथर्वण ही गृहस्थ जीवन निर्वाह किया था, और उसके मर्मको उनकी कुश्याम बुद्धिने अच्छी तरह समझ लिया था। विनयमें तो उन्होंने स्वयं स्पष्ट स्वीकार ही किया है—

हरिकार्डि बीती अभेत चित भंघरता भौगुनो थाव।  
बौवन उर जुवती कुपथ्य करि भयो विदोष भरे मदन भाव ॥

इत्यादि।

परन्तु ऐसे महापुरुषोंका बहुत दिनोंतक गृहस्थी जालमें फँसे पड़ा रहना असम्भव था। निमित्त कारण था कुंठ भी हुआ हो, पर इममें सम्यह नहीं कि अथवा पाते ही रुका हुआ वैराग्यका सोता फूट पड़ा, और—

बागुर विषम तोराय मनहु भाग मृग मान बग,  
—को चरितार्थ कर दिगजाया।

गोस्वामीजीके रामानन्द्रीय सगद्गंधी (दीर्घा) होनेके अनुकूल अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। इन सगद्गंधीके गृहस्थ शिष्यको विराट होनेमें किसी विशेष संस्कारकी आवश्यकता नहीं पड़ती। परका त्याग देना ही परम समझा जाता है, गृहस्थीके समयकी भी इई रीति ही बचेष्ट होती है। मान्य होना है कि गोस्वामीजीने भी ऐसा ही किया था, यथा—

में पुनि निज गुरुमन सुनी कथा सुसूकर के।  
समुझि नहीं तसि बालपन तब भी रहेँ अचेत ॥

दूररे वैरागीधमारा अथवा अथर्वण गौर बनगण।  
और गोर्गाँवो भी करते हैं—

भरिही अथने उपरानेहू न मुस्त होग  
सादीबके गोर गोर होर है गुलामको ।

हम परसे धरपुन गोत्र ही ध्वनित होता है । वैष्णव-  
सम्प्रदायमें स्मार्त सम्प्रदाय केवल धीरागिरियोंका है, और  
गोस्वामीजीके स्मार्त-वैष्णव होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

संचयतः गोस्वामीजीकी सम्पूर्ण जीवनी नीचे लिखे  
दस्तावेजोंके दो कवित्तोंमें आ जाती है, यथा —

कठपने मूधे मन राम तनमुख भयो,

राम नाम हेत मोगि खान टूक-टाक हौं ।

परपी खेचरितमें पुनीति प्रीति रामराय,

मोह-बस बैठवी तौर तरक तरक हौं ॥

छेते छोटे आचरन आचरत अपनायो

धंजनीकुमार सोधवो रामपानिपाक हौं ।

तुलसी गोसाईं भयो, भेडे दिन मूक भयो,

ताको कक पावत भिदान परिपाक हौं ॥

असन-वसन-दीन विषम विपाद लीन

देखि दीन दुखो करै न हाय हाय को ।

तुलसी अनपत्तो सनाय रघुनाथ क्रियो

दियो कठ सीक सिन्धु आपने सुमायको ॥

नीच यहि वीच पति पाइ भकभइगो

बिहाय प्रभु भजन बचन मन कायको ।

बडे तन पविषत धोर बरतोर भिस

फूटे फूटे निकसत लोन राम-रायको ॥

साधु-वैपचारि होनेपर गोस्वामीजीने अपनी अमृत-  
पयी वाणोंसे रामरस बरसाना आरम्भ किया और इनकी  
महिमा दिग्दर्शमें प्रसिद्ध हुई । ऐसे भगवत्कृपा करामाली  
होना भी कोई धारचर्यकी बात नहीं है, यथा—

रामप्राप सटी जो कहै कोउ शिला सरोरुह जाग्यो ।

निदान इनका नाम बदा परन्तु महापुरुष सरल होते हैं,

अपनी कधी-बकी सब कह डालते हैं । यथा—

धर धर मोगे टूक पुनि भूषति पूजे पाय ।

ते तुलसी तक राम किनु ते अब राम सहाय ॥

गोस्वामीजी बहुत दिनों तक अयोध्यामें रहे और वहीं  
रामचरितमानसकी रचना संवत् १६३१ की रामनवमीको

आरम्भ की । इस समय गोस्वामीजीकी उमिरषावस्था थी ।  
यथा—

मरठ सुमानम सुखिर बिराना । तुन्द रीत भवे आरु चिराना ॥

आप प्रयागराज, हुन्दावन, जनकपुर, हिमालय,  
चित्रकूट आदि तीर्थोंकी यात्रा भी करते थे और इस  
तीर्थोंका दर्शन भी इनके ग्रन्थोंमें पाया जाता है । रामचरित  
मानसके निर्माणके ४६ वर्ष बादतक जीवित रहनेसे तो  
यही अनुमान होता है कि गोस्वामीजीके विशेष नहीं, तो  
शतायु होनेमें कोई सन्देह ही नहीं है ।

यद्यपि गोस्वामीजीके नामसे बहुत-से ग्रन्थ देखे जाते  
हैं, परन्तु नारह ग्रन्थ तो गोस्वामीजीद्वारा रचित होनेमें  
सच एकमत हैं । ( १ ) रामचरितमानस ( २ ) रामलला-  
नहछू ( ३ ) वैराग्यसंदीपनी ( ४ ) बरवै रामायण ( ५ )  
पार्वतीमंगल ( ६ ) जानकीमंगल ( ७ ) रामाज्ञा प्रश्न  
( ८ ) दोहावली ( ९ ) कवितावली ( १० ) गीतावली  
( ११ ) श्रीकृष्णगीतावली और ( १२ ) विनयपत्रिका ।  
इन्हीं ग्रन्थरूपी स्मारकोंमें गोस्वामीजीका नाम अमर  
कर दिया है । इन ग्रन्थोंको देखनेसे गोस्वामीजीके प्रगाढ़  
पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्व, अनन्य रामोपासना, सरल  
स्वभाव, निश्चल विश्वास, उच्च उदारभाव आदिका पता चलता  
है । ये ग्रन्थ ऐसे हैं कि इनको वैष्णव, शैव, शाक्त सभी  
सानन्द पढ़ते हैं, और किसीके हृदयपर ठेल नहीं लगने  
पाती । अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी और द्वैतवादी सभी  
मनन करते हैं और किसीको अरन्तु नहीं बोध होता ।

'रामके गुणामनकी रीति प्रीति सूधी सब,

सबसों सनेइ सबहीको सनमानिये ।

इस पदको गोस्वामीजीने कार्यमें परिष्कृत करके  
दिलखा दिया है और अपनी रचनाकी फल-श्रुतिमें जो  
गोस्वामीजीने कहा है कि—

भावत वेद पुरान अष्टदस, उद्यो शाय सब ग्रन्थनको रस,  
मुनि जन पन सान्तनको सर्वस, सार अंस सब बिधि सखरीपी ॥  
सो बिल्वल ठीक है ।

अपनी रचनामें गोस्वामीजीने सम्पूर्ण शास्त्रोंका  
सामग्र्य कर दिखाया है, एक नाममार्गका सामग्र्य करनेमें  
गोस्वामीजी असमर्थ रहे । इतना ही नहीं, गोस्वामीजी साम-  
मार्गको धृति-सम्मत नहीं मानते थे, यथा—

तत्रि श्रुति पंथ नाम पथ चरही । बंचक बिरिच बेप जा पारही ॥  
रावणके प्रति शंभुकी उक्ति है—

गोस्वामीजीके माता-पिताने इनके जन्म लेने ही-चाहे बहुत मूलमें जन्म लेनेके कारणसे ही हो-इन्हें त्याग दिया था, और ये बहुत दिनोंक बहुत ही दुर्गा अवस्थामें भटकने पड़े थे। यथा—

जयो कुल मंगल यथायो ना वरायो मुनि,  
मयो परिताप पाप जननी जनकको।  
बारेते रज्जव विरज्जल द्वार द्वार दीन  
जानन हीं चारी फल चार ही फलकको ॥  
तथा—

मानु पिता जग जाय तमो  
विधिदू ग रिख्यो कलु माल मगई।  
नीच निरादर भाजन कादर  
कूकर टूकन हाग टलई ॥

परन्तु बचपनहीमें इन्हें किसी चरुघे महापमाका सरसंग हुआ, और उन्हींका शिष्यत्व प्राप्त होनेसे ये राम-रंगमें रंग गये, यथा—

मैं पुनि निज गुरुसन मुनी क्या सुसूकर सेत।  
समुक्ति नहीं तसि बालपन तव अति रहेउं अचेत ॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुक्ति परी कलु मति अनुसारा ॥

गोस्वामीजीके हृदयमें जैसी गुरुभक्ति थी, उससे उनके गुरुजीके थलौकिक सद्गुणोंका परिचय मिलता है, और उनके सरसंगसे गोस्वामीजीमें जैसे सद्गुण, धृढा, विश्वास, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका उदय हुआ, उससे भी कहा जा सकता है कि गुरुदेव योधमय शङ्कररूप ही थे।

गोस्वामीजीका नाम—चाहे उनके गुरुजीने रक्ता हो, अथवा उनके रामनामकी रटनको सुनकर लोगोंने ही रख लिया हो—रामबोला था, जिसका उल्लेख गोस्वामीजी अभिमानके साथ किया करते थे, यथा—‘रामबोला नाम है गुलाम राम साहिबो’ फिर विनयपत्रिकामें कहते हैं कि ‘रामको गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।’

गोस्वामीजीकी चपनी मातृभूमिके प्रति कैसी भक्ति थी, उसकी छाया श्रीरामचन्द्रजीसे चमोप्याका वर्णन करवानेमें आगयी है, यथा—

मि मम पुरी मुहावनि। उत्तर दिशि बह सरजू पावनि ॥  
ब नैरुण्ट बखाना। बेद पुरान विदित जग जाना ॥  
रस मोहि प्रिय नहीं सोऊयह प्रसंग जाने कोउ कोऊ ॥

गोस्वामीजी स्वयं जिम भीनि चित्रचूटका वर्णन करते हैं और वहाँके फोल-कितान, वेत्रि-विटप, तृणकी भी महिमा करते हैं, हमसे उनके चित्रचूट-ग्रन्थमें जन्म प्रदय करनेकी बात सुक्तिगुण मालूम होती है। चित्रचूट जाने समय—

कवि अत्यन्त गति बंध विरागि। मन क्रम बचन राम अनुगणी।

—चटुका श्रीरामचन्द्रमें मिलना और फिर उमका शुक न होना, श्रीरामचरितमानसमें एक ऐसी विचित्र घटना है, जिसमें उक्त स्थलको उनकी जन्म-भूमि माननेके लिये वाच्य होना पड़ता है।

गोस्वामीजीके ग्रन्थोंके धरलोकनमें यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि पारलौकिक साधनके उपयुक्त शाखानुभवके होते हुए भी, गोस्वामीजीको गृहस्थाश्रमका पूरा अनुभव था, उन्होंने अचरय ही गृहस्थ जीवन निर्वाह किया था, और उसके मर्मको उनकी कुत्याम बुद्धिने अच्छी तरह समझ लिया था। विनयमें तो उन्होंने स्वयं स्पष्ट स्वीकार ही किया है—

तरिकाई बीती अचेत चित भंचडता चौनुनो चप।  
यौन जर जुवती कुपय करि मयो विदोष भरे मदन बाप ॥

हायादि।

परन्तु ऐसे महापुरुषोंका बहुत दिनोंतक गृहस्थीके बालमें फँसे पड़ा रहना असम्भव था। निमित्त कारण चाहे कुछ भी हुआ हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि अचरय पाते ही रुका हुआ वैराग्यका सोता फूट पड़ा, और—

बागुर नियम तोराय मनहु माग मृग भाग बल,  
—को चरितार्थ कर दिखलाया।

गोस्वामीजीके रामानन्दीय सम्प्रदायो (वैरागी) होनेके अनुकूल अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। इस सम्प्रदायके गृहस्थ शिष्यको बिरक्त होनेमें किसी विशेष संस्कारकी आवश्यकता नहीं पड़ती। घरका त्याग देना ही पर्याप्त समझा जाता है, गृहस्थीके समयकी लीं हुई हीरा भी यथेष्ट होती है। मालूम होता है कि गोस्वामीजीने भी ऐसा ही किया था, यथा—

मैं पुनि निज गुरुसन मुनी क्या सुसूकर सेत।  
समुक्ति नहीं तसि बालपन तव अति रहेउं अचेत ॥

दूसरे वैरागीसमाज अपना अनुत्तम गौर बरजगा है  
और गोसाईंजी भी कहते हैं—

की। अपने बचपनेही न बही होय  
 लखने को गंत होय है मुन्यमको ।

एन सपने कथ्युन मोत्र ही ध्वनि होय है । वंज्य  
 कानमें स्मार्त्त सगुराय केवत्र वेरागियोंका है, को  
 लखनेके स्मार्त्त-बन्धव होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

श्रीराम गोस्वामीजीकी सगूर्ण जीवनी नीचे लिखी  
 लखनेके दो कवियोंमें था जाती है, यथा —

रामने मूषे मन राम सनमुग भयो,  
 राम नाम देव मँनि सत दूह-दाह हो ।

कनैशंकर(शिव)ने पुन कि श्रीरामराय,  
 मोह-बस देहकी तीरि तरक तराह हो ॥

दोरे दोरे आचरन आचरत अपनयो  
 श्रवणीदुमार सोचयो रामपानिपाठ हो ।

जुनी गेयाई मयो, भोंडे दिन मूठि गयो,  
 ताडो फड बावन निदान परिपाठ हो ॥

अन-बलन-हीन विगन विहाद हीन  
 देखि दीन दूबयो करै न हाय हाय को ।

जुनी बनारसो सनाय रघुनाथ क्रियो  
 दिशे फरु सीक सिन्धु आरने मुमायको ॥

द्वैव बदि नीब पति पाद भरुआइयो  
 विद्या प्रमु मजन बचन मन कायको ।

होत वन परिपाठ वार भरतोर मिस  
 पूष्टि पूष्टि निरुसत लेन राम-रायको ॥

अनु-बैववाती होनेपर गोस्वामीजीने अपनी अमृत-  
 तिलको रामसे बरताना आरम्भ किया और इनकी  
 सेवा दिग्गजमें प्रविष्ट हुई । ऐसे भगवत्प्रकटा करामाती  
 तिल की कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, यथा—

अमृत सही जो कहे कोउ दिला सरोवरु जायो ।  
 विगन इनका नाम वदा परन्तु महापुरुष सरल होते हैं,  
 जिनके शरीरों सब कह डालते हैं । यथा—

पर परमो दूह पुनि मूपति पूजे पाप ।  
 वे तुनी तर राम भिनु ते अब राम सहाय ॥

गोस्वामीजी बहुत दिनों तक सप्योष्यामें रहे और वहीं  
 कर्णनायककी रचना संवत् १६३१ की रामनवमीको

आरम्भ की । इस समय गोस्वामीजीकी परिपक्ववस्था थी  
 यथा—

भरत मुमानस सुधिर धिराना । मुखद सीत रुचि पाद चिराना ॥

आप प्रयागराज, वृन्दावन, जनकपुर, हिमालय,  
 पिप्राट आदि तीर्थोंकी यात्रा भी करते थे और इन  
 तीर्थोंका वर्णन भी इनके ग्रन्थोंमें पाया जाता है । रामचरित-  
 मानसके निर्माणके ४६ वर्ष बादक जीवित रहनेसे तो  
 यही अनुमान होता है कि गोस्वामीजीके विशेष नहीं, तो  
 शतायु होनेमें कोई सन्देह ही नहीं है ।

अपवि गोस्वामीजीके नामसे बहुत-से ग्रन्थ देखे जाते  
 हैं, परन्तु बारह ग्रन्थ तो गोस्वामीजीद्वारा रचित होनेमें  
 सब एकमत हैं । (१) रामचरितमानस (२) रामलला-  
 नहट्ट (३) वैराग्यसंदीपनी (४) कवै रामायण (५)  
 पार्वतीमंगल (६) जानकीमंगल (७) रामानु प्रभ  
 (८) दोहावली (९) कवितावली (१०) गीतावली  
 (११) श्रीकृष्णगीतावली और (१२) विनयपत्रिका ।  
 इन्हीं ग्रन्थरूपी स्मारकोंने गोस्वामीजीका नाम अमर  
 कर दिया है । इन ग्रन्थोंको देखनेसे गोस्वामीजीके प्रगाढ़  
 पाण्डित्य, छोकोत्तर कवित्व, धनन्य रामोपासना, सरल  
 स्वभाव, निश्चल विश्वास, उच्च उदारभाव आदिका पता चलता  
 है । ये ग्रन्थ ऐसे हैं कि इनको वैष्णव, शैव, शाक्त सभी  
 सानन्द पढ़ते हैं, और किसीके हृदयपर डेस नहीं लगने  
 पाती । अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी और द्वैतवादी सभी  
 मनन करते हैं और किसीको अरुणुद नहीं बोध होता ।

'रामके गुणमनकी रीति प्रीति मूषी सब,  
 सबसो सनेह सबहीको सनमानिये ।

इस पदको गोस्वामीजीने कर्णमें परिणत करके  
 दिखवा दिया है और अपनी रचनाकी फल-श्रुतिमें जो  
 गोस्वामीजीने कहा है कि—

गावत वेद पुरान अष्टदस, उषो कल्प सब ग्रन्थनको रस,  
 मुनि जन धन सन्तनको सर्वस, सार अंस सब निधि सबहीकी ॥  
 सो बिचुल टीक है ।

अपनी रचनामें गोस्वामीजीने सगूर्ण शार्ङ्गका  
 सामाज्य कर दिखाया है, एक धाममार्गका मान लय करनेमें  
 गोस्वामीजी असमर्थ रहे । इतना ही नहीं, गोस्वामीजी धाम-  
 मार्गको धृति-सम्मत नहीं मानते थे यथा

उत्रि धृति पंच नाम पथ चरही । बचन विराच वेपत्रवर्ही ॥  
 शत्रुके प्रति शंघटकी उक्ति है—

कौटुम्बिक काम बस कृपिन विमूढा । अति दरिद्र अत्रसी अति बूढा ॥  
 जीवत शत्रु समान ये प्राणी ।

गोस्वामीजीने अखिल वेदमूलक वादोंको, अधिकारी भेदसे ठीक माना है । अद्वैतवादको गोस्वामीजी परम अधिकारीके लिये ठीक मानते हैं, यथा—

मोहि परम अधिकारी जानी ।

लागे करन ब्रह्म उपदेशा । अज अद्वैत अगुण हृदयेसा ॥  
 अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभवगम्य असंख अनुपा ॥  
 निरविकार निरवधि सुखरासी । मनगोतीन अमल अविनासी ॥  
 सोतै तोहि ताहि नहि भेदा । बाहिर बीचि द्व गवहि वेदा ॥

और जब भुशुयिडजीने उस उपदेशको नहीं माना, तब मुनिजीसे क्रोधपूर्वक कहलाते हैं कि—

मूढ परम सिद्ध देउं न मानसि । उत्तर प्रत्युत्तर बहु आनसि ॥

भुशुयिडजी इसी प्रकारका उल्लेख करते हुए गरुडजीसे कहते हैं कि 'भक्तिग्रह हठ करि रहेउं दोन्ह महामुनि साय'

यहाँ भी भुशुयिडजीका हठ फहकर अद्वैतवादकी उत्कृष्टता दिखलायी है । ज्ञानदीप-प्रकरणमें तो 'सोहमसि' अर्थात् 'सोहमसि' कहकर स्पष्ट अद्वैतवादका स्थापन करते हैं, परन्तु सामान्य जीवके लिये इसे नितान्त दुष्कर समझते हैं । इसभाँति अद्वैतवादको गोस्वामीजीने ज्ञानमार्गके नामसे उक्त किया है ।

विशिष्टाद्वैत मध्यम अधिकारियोंके लिये माना है, यथा—

मायावस परिचित जट जीव छि ईत समान ।  
 यद्यथा—  
 सेवक सेव्य भाव निनु म्य न तरीय उरगारि ।

इस वादको गोस्वामीजी भक्तिमार्गके नामसे उक्त करते हैं । भक्ति-मण्डिके प्रकरणमें ज्ञानकी दुष्करता और भक्तिके सुपूरताको बहुत स्पष्ट करके दिखलाया है, और इसभाँति ज्ञानपर भी भक्तिकी प्रधानता दिखलायी है ।

सब विद्वानोंको ध्याद देते हुए देखकर लोगोंमें भ्रम उत्पन्न होता है कि स्वयं गोस्वामीजीका कौटुम्बिक विद्वान्ता ? और इसपर वाद-विवाद उपस्थित हो जाता है । परन्तु विचारणीय बात है कि अनेक वादोंका यथास्थान ध्याद तथा पद्यदेवोपायक विना अद्वैतवादके और कहाँ सम्भव है ?

प्रामाणिक रीतिसे यह भी पता चलता है कि इस सम्प्रदायके परमाचार्य भगवान् रामानन्दजी ज्योतिर्मण्डके ब्रह्मचारी थे । बारह वर्षतक गिरनारपर तप करके उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी । इनके सम्प्रदायमें भजनका प्रधान्य है । इसीसे लोगोंको इनके विशिष्टाद्वैतानुयायी होनेका भ्रम हो जाता है । परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है, शरद सम्प्रदायवाले भी निरुपासि-ज्ञानको (उपासनाहीन) अकिञ्चिद्वर मानते हैं । स्वयं नाभाजीने भक्तमालमें भगवान् शङ्कराचार्यको भक्तोंमें गणना की है, यथा—'आचार्य शङ्कर सभट' निदान रामानन्दीय सम्प्रदायमें वादविवादकी अभिरुचि कभी भी नहीं रही । गुरु-परम्परासे मौखिक उपदेशकी प्रथा गोस्वामीजी तक चली आयी, और गोस्वामीजीने उसे लिखित करके रामचरितमानस नाम रक्खा । अतएव यह उक्त सम्प्रदायका एक मात्र साम्प्रदायिक ग्रन्थ है । इसके मूलसम्प्रदायमवर्तक भी शङ्कर ही माने जाते हैं यथा—

रचि महेश नित्र मानस राषा । पाद सुसमय सितासन माषा ॥  
 सोसिव कागमुमुदिदि दीन्हा । राम-मन्ता अधिकारी श्रीन्हा ॥  
 तेहिसन जागबलिक पुनि पाषा । तिन पुनि भाद्दान प्रती माषा ।  
 औरोजे हरिमगत सुजाना । कहहि सुनिदि समुसदि निधिनाषा ॥  
 मैं पुनि नित्र गुरुसन मुनी कथा सुमधर सेन ।  
 .....माषावद्ध करन मै गौई ॥

कवितावलीमें गोसाईंजीने कहा है कि 'येर विगमये राग भये मनु ।' इससे उनका पैरागी होना सिद्ध होता है और ईसवेच भी कहा है, यथा—'करि बंगको वेच बरो मने तज दे सक बावमकी करनी .' कदाचित् बैरागियोंके वेचको ईस-वेच और संन्यासियोंके वेचको परमईस-वेच माना जाय ।

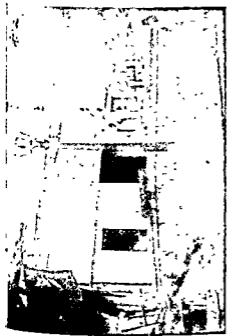
गोस्वामीजीकी सरलता, साधुता और भजनवासंगतासे भी ऐसा ध्यादर दिया कि कहाँ-कहाँ उभवा कह-विधान हुआ वे सब स्थान तीर्थरूप माने गये, और वहाँ अद्वैत-ध्यादके बने हुए हैं ।

जामु नामवर सहर कासी । देन सखदि राम मरी अधिकारी ।  
 इय विरवापर गोस्वामीजी कासीमें जा बने, और यहाँ—

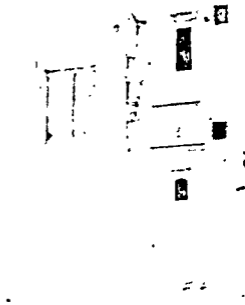
सब सेंटर् से अमी, मनी संके ही ।  
 सवन सवन तीर्थको तुम? वेच ही ॥



ब्रह्मर पाद, काशी । १० गंगाधामजी जोशीका घर ।



१० गंगाधामजी जोशीके घरका बाहरी दृश्य, काशी



विजयदेविका मन्दिरका बाहरी भाग, काशी





गोसाईं तुलसीदासजीका चित्र, काशी



चित्र



चित्र



चित्र मन्दिर, काशी

आजकलका प्रचलित पाठ है कि—

सावन शुद्धा सप्तमी तुलसी तज्यौ सरौर ।

—परन्तु यह पाठ नितान्त अशुद्ध है। भङ्करके कई दोहे 'सावन शुद्धा सप्तमी' परक हैं, यथा—

सावन शुद्धा सप्तमी जाँ गरजे अधिरात,  
तथा—

सावन शुद्धा सप्तमी उदय न देखिय मान । इत्यादि

अतः सावन शुद्धा सप्तमी लोगोंके ज्ञानपर थी, और सावन रथामा तीज का अर्थ भी उतना सीधा नहीं है। अतएव प्रमादसे इस पदके स्थानको भी सावन शुद्धा सप्तमीने दबल कर लिया।

गोस्वामीजीके अन्धाड़ेका कई पुरतसे सेवक होनेके नाते मैं अक्छी तरह जानता हूँ कि 'सावन रथामा तीज' पाठ ही शुद्ध है। गोस्वामीजीके अन्धाड़ेमें तथा टोडरमलके (जिनके यहाँका पञ्चनामा गोसाईंजीके हाथका लिखा थीमान् काशीनरेशके यहाँ सुरक्षित है) वंशज चौधुरी कालवहादुर मिश्रके यहाँ भी यही तिथि मान्य है।

यह सुनकर भी कष्ट होता है कि किमी मद्दाशयने, मम्भवतः डाक्टर प्रियर्शनके अनुमानका अनुसरण करने हुए कवितावलीसे यहाँतक सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि उस समय काशीमें ज़ेग फैला हुआ था। यथा—

संहर सहर सर नारि नर धरिबर

बिरुल सरुल महामारी भाग्य भई है ।

एक तो कराक करिकारमल मूल तामे,

कोटनेधी खाज ही सनीचरी है मीनरी ।

अतः गोसाईंजीको भी ज़ेग हो गया, जोड़ा हुआ, बाहुमें पीड़ा हुई, यथा—

'पापपीर पेटपीर बाहुपीर मुहँपीर

जर जर सरुल सरौर पीरई है ।

बहुतसे देवी-देवता मनाये गये, जब नहीं अपने हुए तब यह कहा कि 'होह रही मीनहाँ बने सो जानि दुनिबे' और देहान्त हो गया।

शरीरीका शरीरसे वियोग किसी-न-किसी हेतुसे होता ही है, ज़ेगका हेतु होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

परन्तु जिस समय काशीमें ज़ेग फैला था उस समय कवितावलीके ही अनुसार मीनकी सनीचरी थी, और यदि दोहावलीकी सहायता ली जाय तो यह भी सिद्ध होता है कि उस समय रङ्गीसी भी चल रही थी, यथा—

अपनी बीसी आपने पुरहिँ रगापो हाथ ।

केहि विधि विनतीविद्वकी करोविद्वके नाथ ॥

अब मीनकी सनीचरी और रङ्गीसी दोनों संवत् १६७१ में ही समाप्त हो जाती है, और गोसाईंजीका देहावसान संवत् १६८० में हुआ, अतः गोसाईंजीके देहावसानका कारण ज़ेग प्रमादित करनेके लिये हुनका यद्वा भाहसकरना कि मीनकी सनीचरी तथा रङ्गीसीको भी ६ वर्ष घागे तक खींच ले जाना उच्युक्त नहीं मान्य होता।

वैद्य-दानरोंके पूछनेसे पता चलेगा कि बाहुपीर बाहु-मूलसे उठकर उँगलियों तक जाती है, और प्रति घसस घेदना पैदा करती है, अतएव बाहुमूलकी पीर ज़ेगकी शोतकमर्ही है, और न बरतोर का अर्थ ज़ेगकी गिलटी है, और न 'होह रही मीन बने सो जानि दुनिबे' यह पद ही कविता-वलीकी प्राचीन लिपिमें मिलता है, अतएव उनका ज़ेगसे मरना नहीं शोचके प्रयत्नमें शायारी पानेशालोंकी कपोल-फलपनाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

सत्यमे यद्वा प्रमाण यह है कि यदि तब रोगमें गोस्वामीजीका देहावसान हो गया होता, तो अनुमानबाहुकका अनुष्ठान रोगकी निवृत्तिके लिये कदापि न किया जाता। अनुष्ठानबाहुकके अनुष्ठानकी परिचायीने ही यह बात सिद्ध है कि गोस्वामी इस रचनाके बलमें हुनकी बड़ी पीरमें विनियुक्त हुए।

### गोस्वामीजीकी लिखावट

गोस्वामीजीके अक्षर सुन्दर और पुष्ट होते थे। संवत् १६९६ में उनके भक्त टोडरमलके वंशजोंमें संरलि विभागके लिये भगदा हुआ। गोस्वामीजीने विभाग कर दिया और उन्ने दोनों पक्षोंने प्रमाण माता। तदनुसार पञ्चनामा लिखा गया, उसमें दो श्लोक और एक दोहा गोस्वामीजीके हाथका लिखा हुआ है। वर्णशाम्बी महात्म्य वृंशरीनागरनगिह काशिराजने उग पञ्चनामके टोडरमलके वंशजोंके यहाँमें अपने यहाँ भोगवा किया, और यहाँ अक्षरक भी रूढ़ है।





# श्रीहनुमान्जयिका महत्त्व

(लेखक—श्रीवृत्त रामचन्द्र शंकरजी यकी मडगाव २.० ५०)

अवदेव, जय देव, जय माधवतिराया, श्रीमाधवतिराया ।  
 आरति ओवातूँ तुज, मकधामतूँ प्याया ॥  
 लहान्नी काम-कोषा जातुनियां ।  
 बुदी सीता दुदी, करिसी कपिवर्यां ॥  
 अगव शकी तूसी, न कळे कोणासी ।  
 द्रेणागिरी तूँ उचरुनि, शेपा रक्षीसी ॥  
 दबतुनि गडडगवां, फोडुनि मणि तला ।  
 दास मको आहं, सिद्धिती हनुमंता ॥  
 त्रघाण्ड पूराणो, आदकळे शान ।  
 वेद्येति तेषि पुनरपि अर्जुन रथी पूर्ण ॥  
 धारिसि उडी तद् अंटे, जपितूँ मंदिरीया ।  
 श्रीशंकरभुत राम, लोपे तव पावान ॥

उनकी शक्ति गये और हनुमान्को मचतः प्रकट करत गये  
 वरदान दिये । इन्का अर्थ हनुमान्को जातः कायदा हनुमान्  
 हनुमान्पन परत दः प्रकट दियेमान्, तेजसी तथा  
 पराकमी है । इन्हान्का शक्तिगुण सुखीयता तथा जगया,  
 सीताके श-वेपका कठिन पावं भी इन्हान्किया  
 शक्यता गवं मष्ट किता घोर श्रीरामचन्द्रजीकी शक्त्य शक्ति  
 प्रकारसे सहायता की । एक पृथगिष्ट रामभक्त है ।  
 किंपुरुषरथमें रहत श्रीरामजी उपायना करे ह । ने एत  
 है । अर्जुनके रथपर महाभागगुण यहा पठे थे । इनके  
 मारति, महावीर, अजितनन्दन चारि अनेक नाम है इनका  
 रामायण-रचना 'नाटकरामायण' या 'हनुमन्कारक' के  
 नामसे विख्यात है ।

श्रीहनुमान्का जन्म श्वेत-गुजा एतमाको होनेका  
 कारण यह है कि मन्मथसगुण मोघ-प्राप्तिके लिये प्रियराये  
 नव दिन तथा भक्ति साधना प्रारम्भ करता है । पहले  
 दिन भयण-भक्ति करनेके उपरान्त फिर प्रमत्तः प्रतिदिन  
 कीर्तन, नामस्मरण, धार्येहन, धर्म, धर्म, धार्य, धर्म  
 तथा धार्यनिवेदन चारि भक्तियोंको निराम भक्तिसे करते  
 तथा उन सबको ईश्वरपंथ करनेपर जयेभीको समर्पण-  
 का काम होता है । अर्थात् अन्तिम भक्ति करनेसे समर्पण  
 करने उये रहत कोप होता है ।

श्रीहनुमान् यह देखकर कि, सर्वत्र शाक्यो गुरुन  
 आज्ञान प्रव रहा है तथा यह जानकर कि, ज्ञान प्रदान  
 होना ही मायाभिक्ति है । अज्ञानसे यह उन्का अन्तर  
 पड़े । उस समय उनका विवेक करनेके लिये हास्यिकता  
 कामादि यहगुणोंसे उन्को अज्ञान भक्ति करनेके लक्षण  
 भूमिधारण वाली, किन्तु यह वेद अज्ञानसे ही वेदकी  
 तरह उदक गर्मी ।

अथ उपसृक्तः धार्यनीकी कीर्तनाया कथने ॥—  
 'अवदेव, अवदेव, जय माधवतिराया' इत्यं कथं  
 वाचके प्रकृतये हन्का उक्त होनेके कारण उन्का अर्थ  
 वाचकुरत करने है । इत्यं श्रीहनुमान्की ईश्वरकी शक्ति

स दिन मुझे उपसृक्त धार्यनीकी शक्ति हुई  
 और मैंने गोपालको बुझाकर इत्ये लिखवा  
 लिया । धार्य श्रीहनुमान्की प्रेरणामे उम  
 शरीरका शरीरकरण करनेका धवसर प्राप्त हुआ है ।  
 हनुमान् कौन है, उनका क्या अधिकार है ? प्रभृति प्रभोंके  
 ज्ञान खेनेपर धार्यनीका अभिप्राय सहज ही हनुमन्म  
 काया । अतः भारतीय पौराणिक साहित्यके धवसरण  
 में हम विरयको स्पष्ट करूंगा ।

श्वेती तथा अज्ञानी बानर-गुमने वायुदेवताके प्रगादने  
 हुए हुआ, वही वाचक हनुमान् नामसे प्रकृत हुआ ।  
 हनुमान्की शक्ति अन्तर धवसरित हुए थे । इनका जन्म  
 १२ को हुआ ।

त्रिय दिन यह सर्वके विरयको एकदने आकारमें उदे,  
 त्रिय सर्वप्रदण था । जब यह आकारमें तीम भी  
 उदे उदगये, तब सर्व धवरा गये । तब देवता  
 के पाये । पर इनके रामने चिन्ताकी एक भी न करी ।  
 अपने इनका अज्ञानकार किया, त्रियने हनुमन्  
 के कारण श्रीहनुमान्की शक्ति होकर गिर पड़े । इस  
 उदे देवकर इनके विना वायुदेवने तब देवताओंके  
 अज्ञानको आकार्य कर दिया, त्रियने तब धवराकर

१ अर्थात् उदे यह उदक का नाम किंपुरुषरथ है ।

प्रदानकर ज्ञानयुक्त भक्तिका आरावादन करनेके लिये 'भारती  
श्रीवाल्मीकि' यह पद दिया गया है।

### लंका दहन

'ठड्डा रूपी काम क्रोध जाहुनिमाँ मुद्धि सीता मुद्धि करि ति कथिवयाँ

'इस पदसे लंकादहन तथा सीता-शुद्धि-अर्थात् श्रीहनुमान्जीकी इन लीलाओंमें जीवोंके साररूपी दर्पणका रज-तमरूप लेप नष्ट हो जानेपर चित्तशुद्धि-योगसे प्रतिबिम्ब विम्बमें मिल जानेपर सद्गुरुकी कृपासे 'सर्वमसि' वाक्यका ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, यह बतलाया। इस लीलाका वर्णन आपटे महोदयके बालरामायणमें इसप्रकार किया है—

'सीताको अनुकूल करनेके लिये रावणने उसे बहुत मनाया, परन्तु सीताने उसके एक बात भी नहीं सुनी। पश्चात् रावणने राक्षसियोंके पहरेमें रखकर सीतासे छल किया। इसपर भी उसके वशमें न होनेके कारण उसे एक वर्षकी अवधि दी और उस अवधिके बीतनेपर यदि वह राजी न हुई तो उसे मार डालनेकी धमकी दी। इस अवधिमें अथ दो ही मास बाकी रह गये थे। सीता वारम्बार श्रीरामका स्मरण करती हुई महान् दुखी हो रही थी। उसे अन्न-जल भी अच्छा नहीं लगता था। इस दशामें अचानक हनुमान्जीने आकर श्रीरामचन्द्रकी दी हुई धंग्ठीका स्मृतिचिह्न दे श्रीराम-लक्ष्मणके कुशलयुक्त होने और शीघ्र ही आकर उसे छुड़ा ले जानेका समाचार निवेदनकर डाइस दिया। उस समय श्रीजानकीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने हनुमान्को यह कहकर विदा किया कि शीघ्र आकर श्रीराम-लक्ष्मणको ले आओ। श्रीहनुमान्ने वहाँसे जाते समय अशोक-वनको त्रिषंस कर डाला। यह समाचार या राक्षस दौड़े आये, पर उन सबको भी उन्होंने मार डाला। तब रावणने अपने पुत्र अक्षय तथा इन्द्रजीतको भेजा। त्रिनमें अक्षयको तो हनुमान्जीने पदाङ्ग दिया, पर इन्द्रजीतके आप स्वयं ही अधीन हो गये। तब राक्षस इनके हाथ-पैर बाँधकर रावणके समीप ले गये। रावणने उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी, परन्तु विभीषणके राज्ञ्यमें समझानेपर उसने उनकी पूँटमें चिपड़े लपेट तेल टाँसकर धाग लगानेकी आज्ञा दी। रावणकी इस आज्ञाका पावन होने ही हनुमान्जी उसले और इन्होंने एक परसे दूसरे परपर दूते हुए सारी लंकाको जला दिया। परचात् समुद्र पारकर अंगदादि वानरोंने आ विद्वे और

सबके साथ रामचन्द्रजीके समीप गये। श्रीहनुमान् चिह्नके लिये श्रीसीताजीकी बेणीकी दिव्यमणि ल उते श्रीरामचन्द्रजीको दिललाकर सब वृत्तान्त नि करने लगे। तब श्रीरामको अत्यन्त हर्ष हुआ और अत्यन्त प्रेमसे श्रीहनुमान्जीको छातीसे लगा लि

### द्रोणगिरि लाना

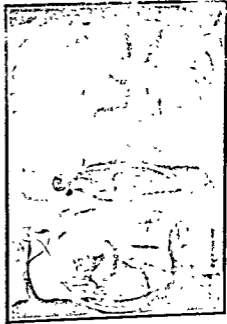
श्रीहनुमान्जीके द्रोणगिरि उडा लानेकी कथा श्रीवेद रामायणमें इसप्रकार है—

'सुपेण (रामसैन्यका वानर) श्रीरामको सान्त्वना कहता है—

'महाराज, लक्ष्मण मरे नहीं हैं, ऐसा मैं विश्वास है। इनका मुख निस्तेज नहीं हुआ है। इन करतल पत्र-पत्रके समान शीतल और सुस्तरपरी जान पड़े हैं। हृदयकी धुकधुकी चल रही है। आसोच्छ्वास भी मन्द-मन्द चलता प्रतीत होता है। इस समय यदि सञ्जीवनी मिल सके तो मैं इन्हें तुरत सचेत कर सकता हूँ। तब श्रीहनुमान्जी आगे बढ़कर बोले, 'हे सुपेण! सञ्जीवनी कहाँ मिलेगी? बताओ, मैं उसे एक क्षणमें ले आ सकता हूँ।' सुपेणने कहा—'इस दुष्कर कार्यको करनेवाला तू ही है, और कोई नहीं। ज, हिमालयपर कैलासके दक्षिण श्रृंखल पर सञ्जीवनी मसीधि है, और वहाँ विश्वयन्त्रणी तथा सावर्णिकापी नाग्री भोगधियाँ हैं, उन्हें शीघ्र ला।' यह सुनते ही श्रीहनुमान्जी उड़ें और थोड़े ही समयमें हिमालय-पर्वत-पर पहुँच कैलासपर्वतके दक्षिण श्रृंखल भोगधि पहुँचने लगे, पर उन्हें पहचान न सके। फिर यह सोचकर कि खोजनेमें विशेष बिलम्ब हो जायगा, श्रीहनुमान्जी उस सम्पूर्ण श्रृंखला पर उते गेवकी तरह हाथमें ले हिमालयसे उचे और काष्ठोंमें सुपेणके समीप उगे। सुपेण श्रीहनुमान्जीके इस अमूल्य पराक्रमको देखकर दौगें सके डैगली दशहर रह गया और उगने धाननेमे उनकी पीठ टोंकी। त्रिभिन् विभाम करके हनुमान्ने कहा—'इस श्रृंखलकी भोगधियाँ काय पहचान कीजिये, मैं वहकार करी सचा और बिलम्ब होनेके भयसे इस श्रृंखला ही लेने आया। सुपेणजीने आनन्दयक भोगधियाँका स्मृतिचिह्न भीत्रपदकी के भास्में दौका जगगे वे लक्ष्मण सावधान हो उा है।



श्रीलक्ष्मणजीको जीवित करवैके लिये द्रोणाचार्य लाना।



यँवा उकारेके बार इन्मालकी जननी मीनाकी पाण्य उरदना कर रहे हैं।





गरुड-गर्व-हरण

गरुडे मनमें अपने परम पराक्रमी होनेका महान् गर्व था। यह जानकर श्रीविष्णु भगवान्ने आशा की कि—दे सुगर्ष, तू बड़ा पुरुषार्थी है, तेरे-जैसा पुरुषार्थी तीनों लोकमें और कौन होगा? अब तू शीघ्र अपने धाकर एक बन्दर पकड़ कर ला। तू चकेला ही पकड़ लायगा या अपने साथ कुछ सेना भी लेता जायगा? यह सुन कर गरुड बड़े आवेशमें आये और उन्होंने श्रीहरिसे कहा— मैं तो गिरते हुए आकाशको भी अपने बलसे धारण कर सकता हूँ, मुझे यही आश्चर्य मालूम होता है कि धार मुझमें पायकीको बन्दर पकड़ने क्यों भेज रहे हैं? हे सभासदो! देखो, मैं अभी बन्दर पकड़ लाता हूँ। ऐसा कहकर श्रीहरिकी धारण-बन्दना कर गरुड आकाशमें उड़े। शीघ्र ही वनमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि हनुमान् उनकी धोर पीठ चिरे हुए बैठे हैं और कौतुकसे फल खा रहे हैं; साथ-साथ मुँहसे रामनाम-कीर्तन भी कर रहे हैं। यह देखकर गरुडने कहा—‘रे बन्दर! तूने सारा वन नष्ट कर डाला और सारे वनचरोंको भगा दिया। अरे पामर! तूने तो फल खा भी ला डाले। तू यड़ा अन्धारी है, मैं तुम्हें दबडूँगा।’ गरुडकी इस बातकी सुनकर हनुमान्जीने मुसकराकर कहा कि—‘तुम अपनी नाम हमें बताओ। तुम्हें किसने भगा है?’ गरुडने कहा कि ‘मेरा पुरुषार्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। मैं करपपसुत, श्रीहरिका दूत पचिराज गरुड हूँ। मैंने सब देवताओंको पारस्त कर अपने पुरुषार्थसे प्रसन्न किया है। मेरे भयसे नागराज पृथिवीके नीचे चले गये हैं।’ इसपर हनुमान्जीने कहा—‘जो अपने बलसे अपनी प्रशंसा करता है वह सौ मुखोंकी अपेक्षा भी अधिक अज्ञानी है। बल, यश, कीर्ति, धर्म, पुरुषार्थ तथा अपनी परम विद्याकी जो अपने मुँहसे प्रशंसा करता है, वह वास्तवमें वैसा नहीं होता।’ इसपर गरुडने उत्तर कहा कि, ‘रे बन्दर, मालूम होता है, मरते समय ही तूनी बोलने लगता है।’ हनुमान्जीने भी वैसा उत्तर दिया, जिसे सुनकर गरुडने आकाशमें उड़कर ऐसी चाल गर्जना की कि सकल धरतल वनचरादि जीव भयभीत हो गये। तब अकस्मात् गरुड हनुमान्जीपर ऊपटा और चोंच करने लगा। पर हनुमान्जी जरा भी न डिबले। पर्वतपर चढ़कर, बड़े पेड़पर मक्खी या हाथीके कन्धेपर चोंटीका भाँसा भाँसा होता है वैसा ही गरुडका भार हनुमान्जीको लगाना पड़ा। अणभर ऐसी लीला करनेके उपरान्त

हनुमान्जीने गरुडको पाँशोंमें दबा गर्दन पकड़कर उठाया, जिससे गरुड चपटा गया, डपकी आँखें निकलने लगीं, तब उसको पकड़कर हनुमान्जीने समुद्रमें फेंक दिया। अहनुमान्ने गरुडको जो हारकासे फेंका तो वह ताठ महत्त्व योजन दूर जाकर समुद्रमें गिरा और छुटपटाकर दूबने लगा, फिर संसं रोपकर वह पानीसे ऊपर आया और मनमें कहने लगा कि ‘मैंने जो हरिके सामने अभिमान किया था, उसका पूरा फल मिल गया। संसारमें कोई विद्या-मन्त्रे मस्त है तो कोई धनमन्त्रे उन्मत्त है, पर भगवान् जरा भी अभिमान करनेसे उन्हें दण्ड देते हैं।’ अब गरुडजी श्रीहरिका स्मरण करने लगे। उन्होंने कहा—‘हे भक्तव-सल! आप मुझपर क्यों कोप करते हैं?’ गरुडको विराभ्रम ही गया, इतनेमें उसने हारकाका प्रकाश देखा। तब श्रीहरि-कृष्णका नाम जपते हुए वह आकाशमें उड़ा और मनमें सोचने लगा कि ‘यदि फिर उसी वनसे जाऊँगा तो वह बन्दर मुझे फिर पकड़ लेगा, अतः वह दूसरे मार्गसे ही लौटा। किसी प्रकार हारकाके महाहापर आया और वहाँ मूर्च्छित हो गिर पड़ा। सेवकोंने यह समाचार श्रीहरितक पहुँचाया और गरुडको भी उठाकर श्रीहरिके चरणोंपर रख दिया। तब श्रीहरिने कृपापूर्वक उसके नेत्रोंमें जल लगाकर उसे सचेत किया।

मीम गर्व-गंजन

कथा है कि एक बार छोटे-बड़े ऋषि रक्षकी गालियोंमें देव-दुर्लभ पदार्थ भोजन कर रहे थे, उस समय भीमने ब्राह्मणोंसे इसप्रकार बड़ी बचन कहे—‘हे ब्राह्मणो! देखो, पात्रमें आप कुछ भी उरिष्ठ न छोड़ सकेंगे। यदि ऐसा करेंगे तो मैं उसे आपकी पोटियोंमें बाँध दूँगा। जितना आपके पेटमें घंटे उतना माँग लें। पालीमें अधिक खेद छोड़ देना ठीक नहीं होगा। मेरा स्वभाव आप लोग अच्छी तरह जानने ही है।’ भीमके भयसे ब्राह्मण अत्यन्त आदर करने लगे, त्रिभुसे वे बेचारे हुंजल हो गये। यह बात श्रीहरि ताक गये और भीमसे बोले—‘तुम शीघ्र जाकर गन्धमाद्रनने ऋषियोंको बुला आओ, उनकी बड़ी आचर्यकता है।’ भीमके मनमें अपने बलका गर्व था अतः वह तेजीसे उन ऋषियोंको लाने चले। मार्गमें कुछ खानेके बेशमें ब्रह्मा पर्वतकी तरह अपनी पूँछ मार्गमें घड़ाकर हनुमान्जी बैठे थे। उनसे भीमने गर्जन कहा—‘रे बानर! मैंनेमेंने पूँछ हटा, मुझे शीघ्र ऋषिदर्शन करनेकी आचर्यकता है।’ इसपर श्रीहनुमान्जीने नम्रतापूर्वक कहा—‘हे





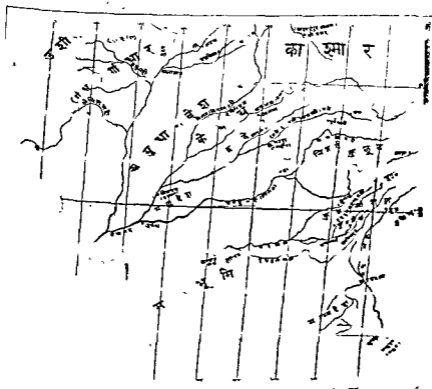








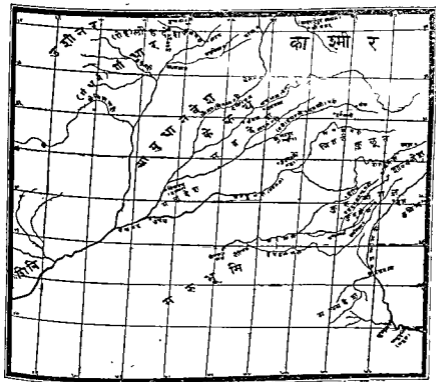
रामायणकालीन भारतवर्ष नं० २



मानचित्रकार—श्री सी०गण०पट्टे ।



रामायणकालीन भारतवर्ष नं० २



मानचित्रकार—श्री वी०एच०बडेर ।



पाञ्चाल देश उत्तरी घोर दक्षिणी भागोंमें पीछे विभक्त हुआ होगा, जिनमें उत्तर पाञ्चाल अर्थात् खैलखण्डकी राजधानी अहिषत्र थी। कुरुजाह्नव प्रान्त हस्तिनापुरके प्रायव्यमें वर्तमान सरहिन्दभागका अरुण्य प्रदेश है। कुरुक्षेत्रमें हुए कुरु-जाह्नवका समावेश था पर धीरामचन्द्रके समयमें इस प्रान्तको कुरुजाह्नव या कुरुक्षेत्र नहीं कहते होंगे। कुलिन्द दिल्लीके उत्तरमें स्थित सहारनपुर जिला है। सरदरवा नदी कौन-सी थी यह निश्चय नहीं किया जा सकता।

सरधारा के अभिकाल तथा तेजोभिवन गाँव और इक्षुमती नदीको पार करके आगे बढ़े। इक्षुमती नदीको आजकल काली नदी कहते हैं। यह कजौज (कान्यकुब्ज) के पास गंगासे मिलती है। आगे यमुना पार किये बिना ही वे वाल्हीक (पञ्जाब) की घोर सुधे। सुदाम-पर्वतके पाससे विपारा (व्यास) तथा शारमली-नदियोंको देखते हुए गिरिमन्त्र (गिर्भक) नगरमें पहुँचे। सुदाम-पर्वतके आधुनिक नामका पता नहीं चलता।

भारतके साथ चतुरंगिणी सेना होनेके कारण उनको कुछ दूरका मार्ग स्वीकार करना पड़ा था। इसका वर्णन अयोध्याकाण्ड सर्ग ७१ से आगे मिलता है। उनको क्रमशः सुदामा, हादिनी और शतद्रु नदी मिली। सुदामा चन्द्रभाग (चिनाव) नदीका ही दूसरा नाम हो सकता है। हादिनी नदीका पाठ अत्यन्त विस्तीर्ण था। इसपरसे अनुमान किया जा सकता है कि वह वर्तमान रावी (इरावती) नदी होगी। अन्तिम शतद्रु (सतलज) तो प्रसिद्ध ही है।

तदनन्तर ऐलघान और उसके समीप बहनेवाली शिलाबहा नदी मिली। पश्चात् विशाल पर्वतोंको पार करके भरत चैत्ररथ वनमें आ पहुँचे और आगे पश्चिमकी ओर बहनेवाली सरस्वती नदी मिली।

शिलाबहा नदीका ठीक-ठीक पता नहीं मिलता। तथापि सरस्वती (सुरसुदी अथवा घग्घर) नदीमें उतरसे आ मिलनेवाली अरुणा और बौशिकी नदियोंसे बड़ा एक हो सकती है। अरुणा जिलेके पूर्व भागका नाम चैत्ररथ वन होगा। आगे सुचक्षु तथा सीता-नदीपरले होते हुए एवं अयोध्री गाँवके पास आ करके भरतजी दक्षिणकी ओर सुधे।

आरभीरके उत्तर पारकन्दमें ओ सुचक्षु और सीता नामकी नदियाँ बहती हैं, वे भिन्न हैं। हमारी रायमें इसी नामकी नदियाँ अयोध्रीके पास भी बहती होंगी।

इसके बाद भरत वीरमत्स्य-देगके उत्तरमें स्थित प्रदेशमें होने हुए भारण्ड नामके वनमें आ पहुँचे। इसके आगे चलनेपर कुलिगा उर्फ वेगिनी नदी मिली और हादिनी नदीको पार करके भरत यमुना नदीके पास आ पहुँचे। यहाँ यमुनातीरपर उन्होंने सेनासहित विश्राम किया। यमुना पार करनेके उपरान्त अशुधान नामक ग्रामके पास गंगाको पार करना असम्भव देख भरत प्राण्डपुर आये और यहाँ भरतने ससैन्य गंगाको पार किया। इसके अनन्तर वे कृटिकोटिका नदीके समीप आये।

कृटिकोटिका नदी रामगंगास मिलनेवाली अयोध्या प्रान्तकी कोह नदी है, यह कोहकृटिका नदी पूर्वकी ओरसे रामगंगामें आ मिलती है और इसका दूसरा नाम कोशिला भी है। कृटिकोटिका नदी ससैन्य पार करके भरत धर्मवर्षन गाँवको गये और तोरण्य ग्रामके दक्षिणकी ओरसे जम्बूपथ्य गाँवमें पहुँचे। इसके बाद अरुण्य ग्रामक गाँव मिला। इसके आगे रम्यवनमें घाम करके भरत पूर्वकी ओर चल पड़े और उज्जिहान नगरमें पहुँचे। फिर वाहिनी नदीकी ओर चलकर तथा सर्वतीर्थ नामके गाँवमें थोड़े समय निवास करके उन्होंने उत्तरगंगा नदीको पार किया तदनन्तर इलिपृष्ठक गाँवमें आ पहुँचे। अनन्तर कुटिका नदीको पार करके लोहित्य ग्राममें कपिवती नदीको पार किया। आगे एकपाल ग्रामके समीप स्थायुमती नदी उतरकर विनतगंधके पास गोमती नदीको पार किया और कर्जिग नगरके पास साजवनमें आ पहुँचे, एवं रातोरात अरु वनको पारकर अरुणोदयके समय अयोध्यामें आये। मार्गमें पुत्र सात रातें व्यतीत हुईं। वा० रा० २।७१। १० तक ऐसा वर्णन मिलता है और वा० रा० २।७७। २२ में उस दिन दशरथ राजाके देहान्तके पश्चात्सेरहवें दिनके प्राग्भ होनेका उल्लेख है।

तदनन्तर भरत धीराम-दर्शनार्थं चतुरंगिणी सेना-सहित निकले। उनके साथ कैकेयी, गुमिशा तथा शौर्यपात्री थीं। जिस मार्गमें धीरामचन्द्र चित्रकूट पहुँचे थे, उन्हीं मार्गमें भरत भी चित्रकूट-गिरिपर रामचन्द्रकी पर्यटुरीपर गये। चित्रकूट-गिरि भरतत्रय-आधम अर्थात् प्रयागमें १॥ पोजन अर्थात् २४-२६ मीलपर था। बी. आई. पी. रेलवेके चित्रकूट स्टेशनमें १३ मील दूर यह पर्वत है



आजकल इयका नाम कामतानाथगिरि हो गया है। चित्रकूटके उत्तरकी उदयकापर जो एक चौकोन शिला है वही सीतामठ है (वा० रा० २। १९)। यह स्थान जी. आई. पी. के बन्नीसा स्टेशनके समीप ही स्थित है। इस पहाड़में बहुत-सी ग्योरी हुई इमारतें हैं। असु,

श्रीरामके दर्शन कर चुकनेपर श्रीरामकी आज्ञासे भरत अयोध्या लौटकर मन्दिप्राममें रहने लगे। इधर जब श्रीरामजी चित्रकूटपर पास कर रहे थे, तब सर नामक आपसकी जनपदके सब तपस्वियोंको भगाने और सतानेकी शेषकायत उनके पास आयी। अतएव उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी अग्नि-आध्रमकी ओर चल पड़े। इससे स्पष्ट है कि अग्निमुनिका आध्रम वन-प्रदेशमें था। वनमें प्रवेश करनेपर पहले विराध नामक राक्षस मिला। इसके पीताका नाम जब और माताका शतहृदा था। विराधकी आँहोंको काटकर राम-लक्ष्मणने उसे परान्न किया और आदकर उसे मुक्ति दी।

विराधकी समाधिसे प्रतापी शरभंग मुनिका आध्रम ०-२० मीलपर होगा। श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित इस आध्रमकी ओर पधारे। मार्गमें रामने लक्ष्मणको चन्द्र-रथ दिखलाया। तपश्चात् शरभंग ऋषिसे मिलकर नकी आज्ञासे राम सुतीक्ष्ण मुनिके आध्रमकी ओर जानेके लिये रवाना हुए। इसके पूर्व ही शरभंग ऋषिने रामके मन्त्र-प्रवेशके द्वारा देहत्याग करके स्वर्ग प्राप्त किया। तीक्ष्ण मुनिका आध्रम मन्दाकिनी नदीके उद्गमकी ओर था।

उपयुक्त वर्णनके अनुसार विराधकी समाधि, शरभंग मुनिका आध्रम तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आध्रमका वर्तमान स्थान बुन्देलखण्डके पन्ना रियासतमें होना स्पष्ट प्रकट होता है।

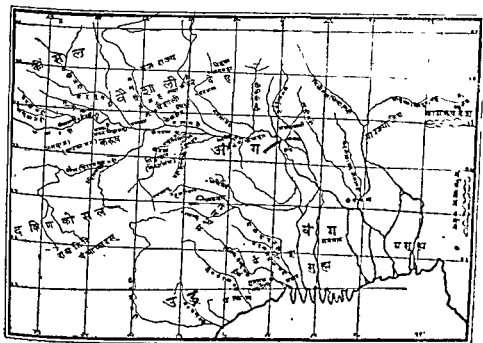
सुतीक्ष्ण मुनिने रामसे कहा,—‘हे राम! वानप्रस्थोंके राट समुदायके नाथ आपके होते हुए भी अनाथोंकी तरह इस उसका वारम्बार घात करते हैं इसलिये आप उनका उच्छेद करें।’ श्रीरामने सुतीक्ष्ण मुनिके आध्रमके मार्गमें मेरुके समान एक ऊँचा पर्वत देखा (वा० रा० ३। ७)। मुनिका आध्रम एक घोर वनमें था। इस वनको दृग्दृकारण्यका उत्तर भाग मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी समग्र दृग्दृकारण्य तथा उसमें पास करनेवाले ऋषियोंके आध्रम-दर्शनार्थ विदा हुए। मार्गमें उन तीनोंमें एक वर्गमीलका एक महात् सरोवर देखा। उस सरोवरके मध्य भागमें सुस्तर गायनकी आवाज आती थी। धर्मश्रुत नामक मुनिने रामचन्द्रसे कहा कि ‘यह सरोवर मायदृक् मुनिने दस हजार वर्ष धीरे तपश्चात् करके निर्माण किया है और इसका नाम पद्माक्षर सरोवर है एवं यह सार्वकालिक है।’

इस पद्माक्षर सरोवरके बारेमें प्रो० नन्दलाल द्र० अपने भौगोलिक कोष पृष्ठ ६२ में लिखते हैं कि, द्योदा नागपुरके मायदृक् रियासत उदयपुर नामक स्थानमें यह सरोवर था। इस सरोवरका अधिकांश सूख गया है और वहाँ कपु, बन्धनपुर आदि गाँव बस गये हैं। इस पद्माक्षर तीर्थके आसपास अनेक मुनियोंके आध्रम थे। श्रीरामचन्द्रजी सब आध्रमोंमें थोड़े-थोड़े समयतक रहे। कहीं दस महीने, कहीं साल भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच या षट् महीने, और कहीं साल दो सालसे भी अधिक रहे। इसप्रकार श्रीरामके दस वर्ष मुनियोंके आध्रमोंमें सुखसे बीते। तब रामचन्द्र फिर सुतीक्ष्ण मुनिके आध्रमको लौट आये। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद उन्होंने अगस्त्य मुनिके आध्रमकी ओर प्रस्थान किया। सुतीक्ष्ण मुनिके आध्रमसे दक्षिणकी ओर चार योजनपर अगस्त्य ऋषिके बन्धुका आध्रम था और उसके दक्षिणमें एक योजनपर अगस्त्य ऋषि वास करते थे।

वहाँ कुछ काल व्यतीत करके श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण सहित अगस्त्य ऋषिकी आज्ञानुसार पञ्चवटीकी ओर रहनेके लिये रवाना हुए। यह प्रदेश अगस्त्याश्रमसे दो योजनके अन्तरपर था। इस प्रदेशपर राक्षसोंका बारम्बार आक्रमण होता था। पञ्चवटी जाते हुए श्रीरामजी एक महाकाय गीघ पचीसे भेंट हुईं। अनन्तर वे तीनों पञ्चवटी पहुँचे। इस प्रदेशका वर्णन वा० रा० ३। १२ में है। इनके साथ जटायु भी था। पञ्चवटीमें पर्याशला बन्धुका उन्होंने एक आतुरमांस व्यतीत किया। तपश्चात् हेमन्त-ऋतुका प्रारम्भ होनेपर एक दिन प्रातःकाल राक्षसकी अग्नि शूलंखला उस आध्रममें पहुँची, और सीताको मारनेके लिये तैयार होनेपर लक्ष्मणने उसके नाक काट काटकर उसे निकाल बाहर किया।

रामायणकालीन भारतवर्ष नं०३



मानचित्रकार—श्री पी०एम० चड्ढा ।

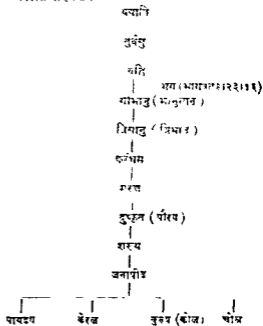


इसपर वह खर-दूषणके पास जाकर उन्हें धीरामने युद्ध करनेके लिये प्रोत्साहित कर अपने साथ ले छापी । चौदह हजार सेना लेकर खर और दूषण जनस्थानसे चले । खर-दूषण रावण-राज्यके सीमा-रक्षक थे (वा०रा०३।३१) । महा शरणा श्रीरामने उन चौदह हजार राक्षसोंसहित खर, दूषण, त्रिशिरा आदिका रथमें बंध कर ढाला । उपयुक्त पहाड़ी, जनस्थान आदि प्रदेशोंका प्रथमी तक सन्तोपजनक निर्यय नहीं हुआ है । बहुत-से विद्वानोंके मतानुसार जनस्थान और पञ्चवटी वर्तमान बम्बई प्रान्तके नासिक शहरके समीप गोदावरी नदीके उद्गम स्थानके पास थे । किन्तु कुछ विद्वानोंके मतानुसार प्राचीन समयमें गोदावरी नदीके मुखके समीप उसके उत्तर-दक्षिण तटपर स्थित प्राग्ध प्रान्तके एक विभागका नाम जनस्थान था । पार्सीटो अपने 'Ancient Indian Historical Tradition' नामक पुस्तकके पृष्ठ २७८ में लिखते हैं:—

Rama travelled south to Prayaga then southwest to the region of भोपाल, then south across the नर्मदा and then to a district where he dwelt ten years. That was probably the दक्षीणकोसल district, because that was called the दक्षिण कोसल and in it was a hill called रामगिरि. His long stay then connected it with his home कोसल, hence probably arose its name. Also later the people of पूर्व कोसल part of old कोसल through fear of जरासंध migrated to the south no doubt to this district. [ Vide J. R. A. S. of 1908 P. 323 & Mahabharat 2-13-591. ] Afterwards he went south to the middle गोदावरी where he came into conflict with the राक्षस colony of जनस्थान.

श्रीरामचन्द्रके काळमें दक्षिण भारतमें सभ्य अर्थात् प्राचीन लोगोंकी आबादी केवल जनस्थान और दक्षिणधाममें थी । उस समय पायद्वय लोगोंकी आबादी नहीं थी । जमीन केरल (कुलप), कोल, केरल आदिको भी आबादी नहीं थी । यह पार्सीटो साहबका मत है । इसमें हम सहमत नहीं हैं क्योंकि यथात्रि राजाके पाँच पुत्रोंमें सुवंसु

नानक एवम्बो वंशावली प्रायः सब पुराणोंमें मिलजुमिलित प्रकारसे बखाने हैं ।



तेषां जनपदाः कुन्धाः पाण्डिताथे यः सके (१) ।

(भाग्युगाय १. १९)

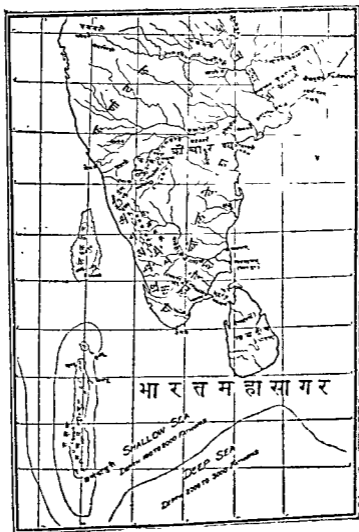
अर्थात् इन राजपुत्रोंने अति प्राचीन कालमें दक्षिण भारतमें अपने नामपर आबादी कायम की थी । श्री० मन्मथराज देवे अनुसार श्रीराजासाहू अथवा देवगिरि (दौलताबाद) के समीपवर्ती प्रदेशका नाम जनस्थान था । इस मतको न माननेके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) 'अनर्ष-राषव' के कर्त्ता मुरारीका काव शाखिवाहनका ७ वाँ शाक है । उसने अपने शाकके चौथे अर्ध पाँचवें अंशमें अण्णमूक एवंबो जनस्थानके राजा ही बतलाया है । अण्णमूक दक्षिणया दक्षिणमें सुप्रसन्न नदीके दक्षिण तटपर थे, ऐसा 'ममक-राषव'-शाखिवाहन कावरेण कविते स्पष्ट बतलाया है । अण्णमूक कवि शाखिवाहनको तेरहवीं शताब्दिमें ही मने है । इसीप्रकार शाखिवाहनका आठवीं शताब्दिमें हुए कावराजासाहूके कर्त्ता मन्मथराज कविका भी वही मत है ।

(२) 'इक्ष्वाकुवर्तिन'का इतिहास कवि अण्णमूकने 'महावीरकविन्म्' कट्ट २ में भी लिखित किया है ११२० ई. पू. तक ही है—



रामायणकालीन भारतवर्ष नं ४



दक्षिण भारत भूदृश्य (संस्कृत साहित्य संस्थान, काशी)



और सरोवरोंको पार करता हुआ सर्राटेसे निकल गया । वह तिमि नामक मत्स्य और नकोंके तथा वरुणके अर्च्य निवासस्थान-सागरको लौघता हुआ चला । (वा० रा० ३।१५।१६-८)

मध्यभारतमें रीवाँ प्रान्तके दक्षिणमें सौ मीलके अन्दर ही लङ्का थी, ऐसा आग्रहपूर्वक सिद्ध करनेवाले महानुभावोंने वारमीकीय रामायणान्तर्गत उपयुक्त वर्णनको जरा भी महार न देकर मध्यभारतमें जो एक बड़ा दलदल था, उसीको सागर मान लिया है । उसी प्रकार वे रामायणोक्त समुद्रकी दूरी और लम्बाई-चौड़ाई तथा लङ्काको लम्बाई-चौड़ाईके वर्णनको भी घटिशयोक्ति कहकर वारमीकिके आर्यकाव्यको अज्ञुत कथाओंका उपन्यास मानते हैं ।

अस्तु, पम्पासरके समीप ही पम्पा नदी बहती थी । येन्नाती जिलेका हम्पी क्षेत्र ही पम्पा है और पम्पा नदी उस क्षेत्रके पाससे बहती है । जिसप्रकार काठियावाड़ और मारवाड़की भागमें 'स' के स्थानपर 'ह' के उपयोग करनेकी परिपाटी है, उसी प्रकार कनाड़ी भागमें 'व' के स्थानमें 'ह' का प्रयोग होना प्रसिद्ध है ।

धीरामने एक बसन्त ऋतु शप्यमूक पर्वतपर बितायी । वहाँ रहते समय हनुमान्जीकी प्रेरणासे उनकी मुदीबके साथ मैत्री हुई । बालिके भयसे मुदीब मातृवयान पर्वतपर रहता था, और बालि किष्किन्धा नगरीमें रहता था । बालि हतना बलवान् था कि माझ मुहूर्तमें उठकर पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक तथा दक्षिण समुद्रसे उत्तर समुद्रतक प्रतिदिन ज्वर लगा आया करता था ।

मुदीबका कार्य करनेके लिये रामचन्द्रजीने शप्यमूकमें किष्किन्धा जानेका निश्चय किया । सप्तजन-मुनिके आश्रमसे किष्किन्धा विशेष दूरीपर थी । सप्तजन मुनिका आश्रम तथा सप्तमागर तीर्थ एक ही प्रदेशमें थे । वहाँमें शप्यमूक पर्वत करीब ही होना चाहिये । धीरामजी कम पर्वतसे मुदीबको साथ लेकर तथा अपनी प्रणय्य धनुष लेकर रक्षामा हुए । उनके साथ हनुमान्, मज, गोज और तार नामक घोर-वानर भी थे । मार्गमें निर्मल भीरुवाहिनी समुद्रगामिनी नदियोंका उद्गोंने अन्वयोक्त किया । रास्तेमें एक कल्पवृक्ष आश्रयजनक बन उन्हें मिला । उन्हीं वनमें सप्तजन-मुनि सतत जलमें शोभावनमें (गिर भीचे और रीर करारकर) तपश्चर्या करते थे, धीराम उनकी बन्दनाकर भागे बने । (वा० रा० ५।३।३१२६)

हमके पश्चात् गात्रि-मुदीबका पुत्र हुआ और धीरामकी कृपासे बालिका बन हुआ । बालि ही काटोटा रीरामन एक नदीके तीरपर प्रसन्नता व्यक्त कर रहा था । निरागत यह गज आधुनिक मुद्रमग ही ग । बालि ग दहन मित स्थानपर किया गया था, पर स्थान आनन्दत भाः नेत्रोंको मिलाता है ।

पश्चात् धीरामने सुमावळ राज्याधिक तथा बांगूरके वीरराजाभिषेक करनेकी इन्तजानके आश्रय की और वर्याका प्रथम मास प्रवलय शुरू हा जनेटे काय्य प्रभयण गिरिपर दास करनेकी अपनी हृदय मुभावन प्रकट की । सुमीवने वर्यावाल समस्त होनेपर वर्या कातिकमें रावणवधके लिये दल करनेका धीरामको आग्रहाशन दिया । धीरामने प्रवलय-पर्वतके शिखरपर १०००० विमानों गुहामें निवास करनेका निश्चय किया । उस गुहाके पास एक रमणीय सरोवर था और एक कल्पवृक्ष निर्मल पत्रवाजी पूर्ववाहिनी नदी बहती थी । रमणीय किष्किन्धापुरी वहाँमें बहुत दूर नहीं थी । (वा० रा० ५।३०)

उपयुक्त वर्णनमें किष्किन्धा-नगरीका किष्प्य पर्वतके समीप होना किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि किष्प्य पर्वतके पासमें पूर्वकी घोर बहनेवाली कोट्टे नदी नहीं है, उपयुक्त नदी निर्मलपत्र वाहिनी ही है । शप्यमूक, पम्पा, मातृवयान पर्वत, प्रवलय गिरि, किष्किन्धा आदि सब स्थान आश्र भी इन्हीं क्षेत्रके आश्र-पासके प्रदेशमें प्रसिद्ध है । और निरमदेर यह प्रदेश कल्पवृक्ष प्राचीनतम प्रतीत होता है । उन्हीं विभागके पास ही प्राचीन विजयनगर राजकी राजधानीके आश्रयण प्राप्त भी इतिगोचर होते हैं ।

'एक विद्वान्का मत है कि (१) किष्किन्धा किष्प्य पर्वतके उत्तरमें गंगा-बमुनाके पश्चिम और विष्णुके मध्यमें थी तथा रीरामन रीवाँका कल्पो नामक नाम ही प्राचीन किष्किन्धा है और (२) कलरकलर ही प्रवलय गिरि है । हृदय मनेके विष्णु एक दूरीके विद्वान् छेनहने वर्णमान कल्पमें हीको ही एक प्रमादोंमें किष्किन्धा निश्चय किया है । हम्पी छेनहने यह निश्चय किया है कि किष्किन्धा, हम्पी (रम्पा), कल्पमें ही, शिखरवगर, विद्यानगर आदि सब एक ही प्रदेशमें प्रवलयके तीरपर थे । पत्रवाजीय पत्रवाजी ही इन्हीं पत्रको पूर कल्पी है । कल्पमें हीमें पत्रवाजी ही ही कल्प है । कल्पवृक्ष पर्वत कल्प ही है । कला (रम्पा) हीको कल्प ही है ।



अनागोंदी (किष्किन्धा) है और मार्गमें चक्रतीर्थ है। विरूपाक्ष-चेत्रकी सीमाके अन्दर किष्किन्धा, पम्पासर, मारुत्यवान-पर्वत, ऋष्यमूक-पर्वत, इन सबका समावेश हो जाता है। अजन्ती पर्वत भी करीब ही है। अनागोंदीसे चालिकी गुहा १॥ मीलपर है। प्रलवण पर्वत माल्यवान् पर्वतसे सटा हुआ ही था। जयदेव कविका अभिप्राय भी ऐसा ही है। 'प्रसन्नराघव' नाटकके वर्णनसे ऋष्यमूक-पर्वत और किष्किन्धाका तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणमें होना संशयातीत है। बालरामायण-कार कवि राजशेखर ( शक ८००-१०० ) ने रामवनवासका बहुत ही व्यवस्थित वर्णन किया है। उससे भी किष्किन्धाका निःसन्देह तुङ्गभद्राके समीप होना ही प्रमाणित होता है। प्रसिद्ध कवि भवभूतिके ऐसा स्पष्ट अभिप्राय मिलता है कि किष्किन्धा-नगरी विन्ध्य-पर्वत और गोदावरी नदीके दक्षिणमें बहुत दूर थी।

जैन-कवि विमलसूत्रिका भी यही मत है कि दण्डकारण्यके आग्नेयमें समुद्रके पास तथा कर्णारवा-नदीके दक्षिणमें बहुत दूर जनस्थान था और कर्णारवा-नदी नर्मदा तथा ताप्ती नदियोंके दक्षिणमें थी, और किष्किन्धा उसके भी दक्षिणमें थी।

पराहमिहिरकी बृहत्संहितामें वर्णित भूवर्णनमें आग्नेय देशोंकी सूचीमें किष्किन्धा-देशका नाम दिया हुआ है। पर उससे ठीक निश्चय नहीं हो सकता।

महाभारत ( सभापर्व ) में दक्षिणके देशोंकी सूचीमें किष्किन्धाका नाम आया है। अतः किष्किन्धा-नगरी तुङ्गभद्राके तट-प्रान्तमें थी, यह बात सिद्ध होती है।

प्रो० हायमन भी किष्किन्धाको दक्षिण भारतके मैसूर राज्यमें बतलाते हैं। ( Classical Dictionary of Hindu Mythology, Geography etc. Page 159 )

इसी प्रकार सीतान्वेषणके लिये श्रीराम लक्ष्मण अथ दक्षिणकी ओर चले तब मार्गमें उन्हें पवित्रश्रेष्ठ, मारुत्यमुख जटायु मिला। उनसे रावणका आकाशमार्गसे सीताको दक्षिणकी ओर ले जानेका समाचार श्रीरामने निवेदन किया। जटायुकी अन्वेषित किया श्रीरामने स्वयं मगध की। त्रिम स्थानपर वह पटना हुई वह स्थान आककच मद्रास-प्रान्तके गच्छूर-जिलेमें विनुकोंडा-ग्रामके समीप एक पहाड़ीपर बगवाण बसा है। विनुकोंडाका अर्थ 'समाचार मित्रनेका प्लव' है। ( Provincial Geographies of India, Madras Presidency. Page 280. ) आगे श्रीराम प्रो० हायमनसे चर्चके त्रिमका कर्णार कर दिया जा चुका है।

विस्तार-भयसे यहाँके समस्त भूगोल-वर्णनका विचार यहाँ करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। अन्य कि लेखमें इसपर विचार किया जा सकता है। अस्तु।

सुमीचीकी आशासे गये हुए वानर वीरोंको एक मास अन्दर खोज करके लौट आनेकी विरोध आशा थी। तब राम-लक्ष्मण प्रलवण-गिरिपर ही वास करते थे। सीता खोजमें गये हुए वानर वीरोंमें हनुमान्के सिवा और किसी विरोध वर्णन रामायणमें नहीं मिलता। अर्हत् तथा तारक लेकर हनुमान्जी चले थे वे दूर जाकर विन्ध्य-पर्वत हैंने अपने यहाँ कपटुनामके ऋषिसे उनकी भेंट हुई। हैं हैं अर्हत् धक जाने पर वे वानर विन्ध्य पर्वतके नैऋत्यमें आये। उन्हें वीर अर्हत्सिंह नामकी प्रचण्ड गुहा मिली। उस विराममें मेरुसावर्णिकी स्वयंभवा नाशी कन्या, जो ईमा अम्बराके स्थानकी रक्षा कर रही थी, उन्हें मिली। यह वानरवीर जब उस गुफामें थे, तभी उन्हें मिला हुआ एक मासका समय समाप्त हो गया, जिससे सब वानर बहुत ही पचपा गये। तब उस स्वयंभवाने अपने पोगायलसे सब वानरोंको उन विवरके बाहर विन्ध्य-पर्वतकी उपन्यकापर पहुँचा दिया। अत्र दने कहा कि आरियन ( भरवयुज ) महानेकी अपथि समाप्त हो गयी। ( वा० रा० ४।१३।१४ )

आगे हनुमान्के मुखसे यह वाक्य निकलते हैं कि 'राजा सुमीचीकी आशाके कारण सीताका पता लगाने बिना जब यहाँसे लौट जानेपर हमारी जान जाना निश्चित ही है तो हम यहाँ पवित्र समुद्र-तीरापर दण्ड-मग्न स्नान करके वर्षों न प्राण दे दें।' ( वा० रा० ४।५१।१२० )

इसपर सब वानर अनशन करनेके निश्चयसे लज गये, तब जटायुका बलवान् भाई सप्तगि वहाँ आया और वानररूपी अपने भक्तको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। स अर्हत्के मुण्डने जटायुका किम्मा सुनने ही दूर्गिताप सुननेकी उने मग्न इच्छा हुई। अर्हत्ने उतागे जटायुकी तथा कुछ रामकहानी सुनायी। इसपर उतागे सीताका इत्थान तथा रावणकी अज्ञाका वृत्तान्त वानरोंमें निवेदन किया—

इति इति समुद्रस्य समुद्रे इत्यनेने।

उत्तिनेत्तुगुपी सवा निर्विना विरुद्धमे।

( वा० रा० ४।५६।१२४ )

— और अज्ञानसे रावणके अन्त-पुरमें सीताके रहनेका लज बतलाया। आचमणी विद्याके योगसे वह भी अज्ञानसे दूरकर कर भी देख सकता था और जगती विज्ञानसे

दिव्य दृष्टिके कारण यह पता उसने मतलाया था। पश्चात् सर्गातिके निवेदन करनेपर वानर उससे समुद्रतटपर ले गये, और वह सुगारवं पक्षीसे उसे जो संवाद प्राप्त हुआ था उसे करने लगा—

'सुगारवं महेन्द्र-पर्वतका द्वार अथर्वदू करके अपने मध्यस्थी प्रतीक्षामें जब बैठा था तब रावण सीताको ले जा रहा था और रावणके गिड़गिड़ानेके कारण उसने उसे जाने दिया।' तदनन्तर अटायुके नामसे समुद्र-तटपर तर्पण करके सर्गाती जब फिर पर्वतपर आ बैठा, तब उसने कहा— 'यह दक्षिण समुद्रके तटका विन्ध्य-पर्वत है, यहाँ पर एक विशालक अथि आश्रममें तपश्चर्या करते थे, उनके स्वर्ग विशारनेके पश्चात् आठ हजार वर्षोंमें इस पर्वतपर विताये।' (वा० रा० ४।६०।८)

सर्गातीको इस रामकार्यके करते ही पढ़ा था जानेका वरदान मिला हुआ था। अतः वानरोंसे सीता-समाचार करनेही उसके पक्षि फिर आ गये तब वे सब दक्षिण समुद्रके तट तीरपर जाकर ठहरे।

उपर्युक्त वर्णनसे यह स्पष्ट है कि भारतकी दक्षिण सीमापर जो पर्वत था उसका नाम विन्ध्याद्रि था। नर्मदा नदीके उत्तका विन्ध्याद्रि उत्तरविन्ध्याद्रि है। अद्रदका यह पक्ष और सर्गाती कुमारी-अन्तरीपके प्रदेशमें ठहरे थे, ऐसा वाचमीकीय रामायणसे स्पष्ट होता है। महेन्द्र-पर्वतके शिखरपर चढ़कर हनुमान्ने सौ योजन विस्तीर्ण तप समुद्रको लाँघनेकी तैयारी की। वह प्राणवायुको हृदयमें निरुद्ध करके उड़े और प्रचण्डरूप धारण करके आकाशमार्गसे जाने लगे। उस समय समुद्रपर जो उनकी धारा पड़ी, वह दस योजन चौड़ी तथा तीस योजन लम्बी थी। (वा० रा० १।१।७७) हनुमान्जी जब आकाशमार्गसे प्रयाण कर रहे थे, तब हृषीकेशुलाधिपति सगर राजाके शाप बर्णने हुए समुद्रने उसी कुलमें उत्पन्न रामको सहायता करनेका उत्कृष्ट विचार किया। तब उसने अपने अङ्गमें प्राणदाहित सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाकको हनुमान्की सहायता करनेके लिये उदकके बाहर धानेको कहा। अजानक मैनाक-पर्वतके बाहर निकलनेके कारण हनुमान्को यह एक विश्व प्रतीत हुआ और हनुमान्ने अपने वचःस्थलके कर्णसे उसे नीचे गिरा दिया।

तपश्चात्सुरसा नाग्री नागमाताके मुखमें जाकर अद्रुध-माय देहसे बाहर निकलकर तथा उसके गर्वको मिश्रकर हनुमान् आगे बढ़े तब उन्हें सिद्धिका राक्षसी मिली जिम्ने

उनकी धारा पकड़ ली। तब हनुमान्ने अपना शरीर जगता और फिर दोटा टा धारण करके वे उसके मुखमें गये और मुँह फाड़कर निकल बसे। पश्चात्—

रुद्रश्रे तं पतत्रेव विविचद्रुम-निक्षिप्तम् ।

द्वीपं शास्त्रामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥

(वा० रा० १।२०६)

—आकाशमार्गमें उड़ते हुए हनुमान्ने सौ योजनके अन्तमें एक वनपंक्ति देखी और माना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित द्वीपऔर उसमें उदवन देते। इसके बाद मरिचोंके मुख भी देखे। तदनन्तर हनुमान् शरीर दोटा करके उस द्वीपके त्रिहृष्टाचल-पहाड़के जम्ब नामी शिखरपर उतरे और वहाँसे लङ्का-नगरीका निरीक्षण किया। तपश्चात् सीतादेवीके दर्शनकर हनुमान्ने उनसे राम-लक्ष्मणका सारा वृत्तान्त निवेदन किया और उनको आशामन दिया। श्रीरामचन्द्रके लिये सीताका सन्देश तथा भिन्नतका चिह्न (सहृदानी) लेकर हनुमान् वहाँसे लौटे। लौटती बार राक्षस-धीरोंको अपने बाहुबलका यथेच्छ पराजय दिग्गजाकर वीचमें धरिष्ट नामके एक श्रेष्ठ पर्वतपर आरुढ़ हुए (वा० रा० १।१६।१२६)। यह पर्वत ४० कोस (८० मील) चौड़ा तथा १२० कोस (२४० मील) ऊँचा था। यहाँसे उड़नेके लिये प्रचण्डरूप धारणकर हनुमान् आकाशरूपी समुद्रमें तैरने लगे और कुछ समयके बाद महेन्द्र-पर्वतके उस शिखरपर आ पहुँचे जहाँ जाम्बवन्त, अद्रुद्रादि वातरथ और वहाँ उनको लङ्काका सब हाल सुनाया। वहाँसे राम-दर्शनार्थ पड़े और सुग्रीवके संरक्षित मधुवन नामक वनमें आ पहुँचे। वहाँसे प्रसवण-गिरिपर जाकर हनुमान्ने सीताकी स्मृति एवं लङ्कादहन आदि सब समाचार रामचन्द्रमें निवेदन किये तथा सीता देवीका दिया हुआ चिह्न देकर उनका वृत्तान्त कहा। इसके पश्चात् राम-रावण युद्ध हुआ और उसमें रावणका वध करके श्रीरामने सीताको पुनः लिया।

उपर्युक्त वाचमीकीय रामायणके विरल वर्णनमें वानर राजा किम प्रदेशपर राज्य करने थे तथा लङ्का-नगरी कहाँ थी, इसका पता चल जाता है। लङ्काके सम्बन्धमें 'तपश्चर्या लङ्का कहाँ थी?' शीर्षक प्रबन्धमें हमने लङ्काका स्थान-निर्णय-सम्बन्धी अथवा मन प्रकट किया है, पाठक उन्ने प्यानसे पढ़ें।

रामायणमें जो और भी भौगोलिक वृत्तान्त मिलता है, उसे ही मन्दा तो दूसरे खेनमें देनेका विचार करके हम इस खेगकी समाप्त करने हैं।

# रामायणकालीन स्थान-परिचय

( लेखक श्रीगुन बी० एन० वडेर बी० ए०, एल.एन० बी०, एम० आर० ए०एम० )

अमरस्राग्म-यह आध्रम रोहिण्य-पर्वतपर स्थित है ।  
इ पूर्वी-पश्चिमी घाटोंके बीच दक्षिण-भागमें काईमम-  
पर्वतसे नीचे स्थित है । यह पृथिवीतलसे ६२०० फीट  
या सूरपाकार पर्वतशृङ्ख है । अगस्त्यजी यहाँपर वास  
रते थे । काईमम-पर्वत प्रायनकोरकी सीमापर अवस्थित है ।  
'Provincial Geography of Madras)

अगस्त्यपुरी-यह नासिकसे २४ मील दक्षिण-पूर्वके  
स्थानपर है ।

अश्विनती-छोटी गण्डक  
अर्धगंगा-कावेरी ।

अपर ताल-इसे नक्षत्रमें दिखलाया है (देशान्तर ७६°  
४१' २४-३० )

अपर विदेह-रङ्गपुर तथा दीनाजपुर ।

अमिसरी-उत्तरी पञ्जाबका हज़ारा जिला ।

अग्नि-आध्रम-दण्डकारण्यकी सीमापर

अर्बुद-आबू पर्वत

अयोध्या-प्रसिद्ध है ।

अरुणकुण्डपुर-वारङ्गल

अश्वतीर्थ-गंगा तथा काली नदीका संगम ।

अहिच्छत्र-उत्तर पाञ्चाल ( रुहेलखण्ड ) की तात्कालिक  
राजधानी ।

अंग-यह प्रान्त भागलपुरके समीप था । इसकी राजधानी  
गुप्तापुरी गङ्गाके तीरपर थी । इसकी पश्चिमीय सीमा  
गङ्गा तथा सरयूके संगमतक थी ।

अवन्ति-आधुनिक उज्जैनसे पूर्वकी ओर एक प्राचीन  
राज्य ।

अंशुमती-यमुना नदीका एक प्राचीन नाम ।

अंशुधान-गङ्गा नदीके किनारेका एक गाँव ।

आनन्द-मालवाका कुछ भाग तथा गुजरात

रुद्रमती-रहेलखण्डके काकलीनदीका प्राचीन नाम ।

एल्लोरा Ellora—निजामराज्यके दौलताबाद-

के समीप पहाड़ोंके काटकर बनायी गयी गुफाओंमें यह  
स्थल प्रसिद्ध है ।

उरुलुवेत्र-देखिये 'मोरों' ।

उज्जैन-उज्जैन, यह स्थान कार्वापुर या गोविण्डसे  
१ मील पूर्वकी ओर या मदावरसे दक्षिण-पूर्वकी ओर ६०  
मीलपर है ।

उरुल-उड़ीसा या उडू ।

उत्तरमा नदी-उत्तानिदा नदी-इन नदियोंको आजकल  
रामगंगा कहते हैं । यह अरब-प्रदेशमें होकर बहती है ।

उशीनर-दक्षिणी अरुणानिस्तान ।

शुभ्रवान् पर्वत-गौडवाना पर्वतश्रेणी । यह पर्वत  
विन्ध्याचलका पूर्वीय भाग है । इसका विस्तार यज्ञकी  
खाड़ीसे लेकर नर्मदा नदीके उद्गमस्थानतक है ।

शुभ्रमूक पर्वत-यह पर्वत मद्रास-प्रान्तके बेङ्गाली-  
जिलान्तर्गत पम्पा या हाम्पी (Hampi)के समीप है ।

शुभ्रशृङ्गाग्रम-भागलपुर जिलान्तर्गत माधीपुर तहसील-  
में सिंहदर स्थानपर था ।

एकताल-स्थानुमती नदीपर स्थित एक ग्राम ।

पेलवान-शिलाबहा नदीपर स्थित एक बरती ।

ओंकारनाथ-इसे आजकल अमरेश्वर कहते हैं । यह  
नर्मदा-नदीपर स्थित महेरा नामक स्थानसे २ मील पूर्वकी  
ओर मंडलेधरके समीप है ।

कण्व-आध्रम-मालिनी-नदीपर स्थित विज्नौर ।

कपिल्य-देखिये 'संकास्या' ।

कपीवती नदी-भैरव-नदी यह रामगंगा नदीकी एक  
शाखा है ।

करुण-विहारप्रान्तान्तर्गत शाहाबाद जिलेका पूर्वीय  
भाग इस नामसे प्रसिद्ध था । इसके पश्चिमी भागको मन्ना  
कहा जाता था ।

कर्णाट-प्राचीनकालमें दक्षिण-भारतका एक प्रान्त ।  
आजकलके बेलगाँव, धारवाड, बीजापुर, बेङ्गाली तथा  
इनके शासपासकी सभी देशी रियासतें इसीमें हैं ।

कर्मेनारा-यह नदी विहारप्रान्तान्तर्गत जिला शाहाबाद-  
की पश्चिमी सीमापर है ।

करतोया नदी-यह रत्नपुर तथा दिनाजपुर जिलोंमें बहती है इसका दूसरा नाम 'सदानोरा' है।

फलिङ्ग देश-उड़ीसासे दक्षिण तथा द्रविड देशसे उत्तर पूर्वोत्तर एक प्रदेश।

कण्टहारणी घाट-मुँगेरमें है।

कांची-चिन्नलपट जिलेमें। आधुनिक 'काञ्चीवरम्'।

कान्यकुब्ज-आधुनिक कन्नौज नगर।

कामपत्य-कम्पिल-यह फर्रुखाबाद जिलेके फतेहगढ़ (५० पी०) से २८ मील उत्तर-पूर्व है।

कामरूपदेश-आसाम प्रान्त। इसकी राजधानी प्राग्-शोतिषपुर थी, जिसका वर्तमान नाम गौहाटी है।

कारापय-कालाबाग अथवा काराबाग। यह सिन्धुनदी-पर है। श्रीरामचन्द्रजीने धीलधमण्जीके पुत्र चन्द्रकेतुकी पत्नीका राजा बनाया था।

काठिन्दी नदी-यमुना नदीका एक प्राचीन नाम।

कावेरी-प्रसिद्ध नदी है। अर्धगङ्गा भी कहते हैं।

किष्किन्वा-(आनागोंदी) विजयानगर राज्यान्तर्गत पुन्नमदा-नदीपर स्थित है। जिला बेत्तारीमें होस्तेट्टे ६ मील तथा हागपी (पग्गा) से ४ मीलकी दूरीपर है।

कुडिकानदी-इसे कौसिला नदी कहते हैं। यह अवध प्रान्तकी रामगंगाकी पूर्वीय शाखा है।

कुरुक्षेत्र-नाथ वेस्टर्न रेलवेके कुरुक्षेत्र स्टेशनके समीप एक प्राचीन नगर।

कुरुगंगक-यह स्थान हस्तिनापुरसे उत्तर पश्चिमकी ओर सरहिन्दमें है। यौद्धकाजमें इसे श्रीकण्ठ देश कहा जाता था। यह कुरुक्षेत्रका एक भाग था।

कुसुमिगुप्ती-दिल्लीसे उत्तरका सहारनपुर जिला।

कुशस्थली-हाराका, हारापत्ती।

कूटिकण्डिका नदी-अवधप्रान्तमें रामगंगा नदीकी एक पत्नी-सी शाखा।

कुरुप-कोलम तथा चेनाय नदीके मध्यका प्रदेश। यहाँका राजा अरवपति था।

कुरुप-इसमें आजकलके तीन प्रदेश हैं; कनाडा, मन्ना-गार तथा दारनकोर।

कौसल-अवधप्रान्त।

कोणिकी नदी-कुशीनदी; यह गंगामे मिलती है।

कुरुकालका-बंगाल प्रदेशान्तर्गत पडोसिण्ट नदी।

कृष्णाणी-वर्तमान कृष्णा नदी।

राजापय-इस विरहूच संगतका प्रसार मद्रा-प्रान्तके समस्त सान्पूर राज्यमें है। यह जिला बेत्तारी, पुन्नकल, सान्दयाल तथा पूर्वोत्तर घाटपर भिन्न जंगलों तक फैला हुआ है। जनस्थानसे तीनकोस दूर है।

गङ्गा नदी-प्रसिद्ध है।

गन्धर्व देश-कुनार तथा सिन्धु-नदीके बीच कातुल नदीके-किनारे किनारेका प्रदेश।

गर्गाश्रम-राथबरेजी निशेमें गंगाने पार अथनीमें टीक सामने।

गाधिपुर-कन्नौज।

गालवाश्रम-जयपुर/Jaypur,से तीन मीलकी दूरीपर है।

गिरिद्रज-चेनाय (चन्द्रभागा) नदीपर स्थित केचयदेशकी राजधानी। सरप्रति ज्वालामुखे उत्तर-पश्चिमकी ओर ३० मीलपर गिरभक या जलालपुर।

गोकर्ण पर्वत-गोकर्णेश्वरके समीप पश्चिमी घाटपर।

गोदावरी नदी-प्रसिद्ध है। इसे रेवा या मुरजा-नदी और दक्षिण-गङ्गा भी कहते थे। इसीके किनारे जटायुकी शीर्ष-देहिक क्रिया की गयी थी।

गोप्रतार-घाट-यह पैजाबादमें मर्यू नदीपर है। यहाँपर श्रीरामचन्द्रजी परमधाम पधारे थे।

गोमती नदी-यह नदी आजकल भी इसी नामसे प्रसिद्ध है, इसीपर जलनऊ नगर अवस्थित है।

गौतमाश्रम-तिरहुतमें, जनकपुरमें २४ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर परगना जर्लके अहिपारी गाँवमें अहिष्वा-स्थान।

धम्मर नदी-एण्दती नदी।

चन्द्रिकापुरी-देखिये 'आवनी'।

चम्प-चम्पानगर-चम्पापुरी-भागलपुरके पास चम्पा नगर। यह बंगकी प्राचीन राजधानी भी है।

चयनाश्रम-शाहाबाद जिलेके अन्नगंग चम्पगा या चयनपुर।

चर्मचनी नदी-आधुनिक चम्बल नदी।

चित्रदूट पर्वत-यह चित्रदूट स्टेशनके समीप है। आजकल इसे कामनानाथ-गिरि कहते हैं। बिराध यहाँ मारा गया था।

चित्रकूटा नदी-देखिये मन्दाकिनी नदी ।

चेर-एक समय इसके भीतर द्वावनकोर, मलावारका कुछ हिस्सा, तथा कोयम्बदूर था ।

चैत्ररथ बन-चित्राल ।

चैत्र अथवा द्रविड़ देश-कारोमण्डल-किनारेपर, कृष्णा तथा कावेरी नदीके मध्यका प्रदेश । इसकी राजधानी कांचीपुर अथवा कांची था—

जनस्थान-महाकवि भवभूतिकी दृष्टिसे जनस्थान तथा पञ्चवटी दोनों ही गोदावरी नदीके मुहाने हैं । आजकल यहाँ खरवाड़ी बस्ती है । यह दण्डकारण्यकी दक्षिण सीमा पर है । (सायक नक्शा देखिये) यहाँ खर, दूषण, त्रिशिरा आदि रहते थे ।

जन्तु आश्रम-भागलपुरसे पश्चिमकी ओर ई० धार्द० रेखवेपर स्थित सुलतानगंजमें । इसी स्थानपर अब गौबीनाथ महादेवका मन्दिर है ।

जमदग्नि-आश्रम-गाजीपुर जिलेमें जमानिया नामक बस्ती।

जाबार्ति-पट्टण-जयलपुर ।

तथशिला-आजकलका तचिला ग्राम ।

तमसा नदी-यह नदी अयोध्यासे दक्षिण सरयूनदी

और गोमतीनदी के बीचमें है ।

ताम्रपर्णी नदी-आजकल यह तिष्ठेवेळी त्रिजेमें ताम-बरवारीके नामसे प्रसिद्ध है । कृष्णानदीकी एक शाखा है ।

दक्षिण कोमर मध्यभारतका गोंडवाना जिला ।

दक्षिण गङ्गा गोदावरी नदी ।

दक्षिण मधुरा मधुरा ।

दण्डकारण्य-यह बन विष्णुदत्त-पर्वतसे खेहर जनस्थान अथवा गोदावरी-नदीके मुहानेनक फैला हुआ था । (विमलसूत्र ३०० प० वी०)

दण्डनी मध्यभारतकी धरम्यान (Dhassan) नदी ।

दुर्गेश्वर यह भागलपुर-त्रिजगन्नाथ षड्वर्गीय (Colgong) शहरमें एक मीलकी दूरीपर हमी नामके एक बर्तनपर स्थित था । अथवा—यथा त्रिष्ठेके नगरा

केन्द्रमें तभीकेन्द्रमें ० मील दक्षिण-पूर्वकी ओर ह्य आश्रमका स्थान है ।

दुर्गा: नदी-दण्ड नदी ।

धनुषकोटि { भारत तथा सीलोनके मध्यका प  
धनुःतीर्थ { नामक जल-सागं ।

धर्मपट्टण-देखिये 'श्रावस्ती' ।

धर्मारण्य-सत्य अथवा कृतयुगमें विहार, बंगाल उत्कलमें श्रायोंका अधिनिवेश (भगवान् श्रीरामके सम

धनला नदी { बूढ़ी रापती ।  
धुमला नदी { अजुनी ।  
धुमला नदी { सीतामरथा ।  
बाहुदा ।

धोपापुर-मुलतानपुरसे १८ मील दक्षिण-पूर्व गोमती-नदीपर स्थित है ।

नन्दीग्राम-नन्दिगाँव—अयोध्यासे एक कोस नर्मदा नदी-प्रसिद्ध ही है ।

नीमसार { आजकल इसे नीमगार

अथवा— { यह छो० धार० धार० के  
नेमिगारण्य { स्थानसे २४ मीलकी दूरीपर  
{ नदीके बायें किनारेपर स्थित  
{ २० मीलकी दूरीपर है ।

पञ्चवटी-आधुनिक नासिक । महाकवि

अनुसार यह गोदावरी नदीका मुहाना है ।

अनुमार यह जनस्थान,—जो दण्डकारण्य

है—में था। (३०० प० वी०)

पञ्चासर सरोवर—घोरा नागपुर राज्यके है । घं० २२° दे० ८४° के पास है । (बी

पर्णासा नदी-बघाम नदी ।

प्रश्रव-सुंशपर वा सुन्दोर, पश्चि

विजनीसे ८ मील दक्षर है ।

प्रयाग-प्रसिद्ध है । यहाँपर महाश्वर-प

पद्मामर-इसे 'हागरी' भी कहते हैं ।

वेजारी त्रिजगन्नाथ होशेठके पास है १ मील है ।

वपविही नदी देखिये 'मन्दाकिनी

वपार-दक्षिणवर्ध ।

वपार जनपद-यहाँ आजकलके त्रि

जिंहे हैं । पूर्वीय विहारपर स्थित ना

ममथ मधुरा राजधानी थी ।

पुण्डरीक-शिव नदी तथा का स्थित पुण्डरीकनी तीर्थ ।

प्रसरण पर्वत—तुङ्गभद्रा नदीके पास है।

प्राग्ज्योतिष—कामरूप अथवा कामाख्या। कामरूपकी प्राचीन राजधानी।

प्रास्यपुर—गङ्गा-नदीपर एक नगर।

प्राचीनसाहिनी नदी (जाङ्गलीतुल्य)—किष्किन्धाके पास प्रेङ्गशिखा—देसिये 'रामगया'।

पद्म नदी—प्रेतशिखा आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली नदी। श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण लोप हो गयी है। एने मधु नदी भी कहते थे।

ब्रह्मपुत्र पर्वत (ब्रह्मयोनि)—यही गयशिर पर्वत है।

बलसर—धर्मारक्षयमें है।

बाहुदा नदी—धवला नदी—अथ इसका नाम पुमेला अथवा बूडो रापती है। यह अथधमें रापतीकी एक शाखा है।

बाल्हिकि—आधुनिक बलखु-प्रान्त।

विन्दुसार—गङ्गोत्तरीसे २ मील दक्षिण है।

भारद्वाज आश्रम—प्रयागमें है।

भाटपड देश—वीरमरुथ देशसे उत्तर।

भीमरथी—भीमा नदी

मृगु—आश्रम—बलिया—यह गङ्गा तथा सरयूके संगमपर है। धर्मप्रम भी इसीका नाम है।

मनत्र आश्रम, मन्त्र-सरोवर—मद्रास प्रांतके बेलारी जिलेमें पग्गा नदीके पास। क्रौञ्चारक्षयसे ३ कोसके भीतर (वा० रा० ३। ६४। ८)

मनत्र-वन—पग्गाके पश्चिमी तीरपर।

मतिपुर—मदावर—बिजनौरसे ८ मीलकी दूरीपर है।

मधु नदी—प्रेतशिखा आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली नदी। श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण इसका लोप हो गया है।

मधुपुरी—मधुरा—इसे शत्रुघ्नजीने मधुके पुत्र लवणको अर्पण बताया था। मधुरासे दक्षिण-पश्चिमकी ओर गोली नामक स्थान है। यही प्राचीनकालमें मधुपुरीके नामसे प्रसिद्ध था।

मन्दाकारक—भागलपुर जिलेके बाँका तहसीलमें बीसीसे २ मील।

मन्दाकिनी नदी—चित्रकुटा नदी अथवा पवस्विनी नदी।

यह कल्पवृक्ष पर्वतसे वि. उज्ज्वल चित्रकूटमें बहती हुई कुशु धारो जाकर यमुनामें मिल जाती है।

महरा—विदारा-नगंर शताब्दाद् जिलेका पश्चिमीय भाग।

महाराज—पञ्जाब-प्रान्तका मुचतान जिला। तत्कालके पुत्र अक्षयके श्रीगणेशजीने इस भाग राजा बनाया था।

महानदी—प्रसिद्ध है।

महेन्द्रपर्वत—पूर्वीय घाटके अन्तर्गत जितमें है।

मार्कण्डेयाश्रम—कमार्यु जिलेमें वागेश्वरके पास सरयू तथा गोमती-नदीके संगमपर स्थित है।

मन्वन्त पर्वत—अन्नामोदीके पास है।

मालिनी नदी (संदिग्ध)—प्रलम्ब तथा अपर ताल नामक प्राचीन जिलोंके मध्यमें बहनेवाली मुक्त (शुक्र) नदी, यह नदी अयोध्यासे ५० मील ऊपर सरयू नदीमें गिरती है। अथि कश्यपका आश्रम इसी नदीपर स्थित था।

माहिषनी—नर्मदा-नदीपर स्थित आधुनिक माण्डजा।

मिथिला—(१) वैजयन्त नगर (२) विदेहमें धनकपुरसे दक्षिण एक नगर।

मैसल—(क) अमरकण्ठक पर्वत—जो कि नर्मदा-नदीका उत्तम स्थान है।

मैनाक पर्वत—शिवालिक-पर्वतमाळा।

यमुना—प्रसिद्ध जमना नदी।

यवदीप—जावा द्वीप।

रङ्गपुर—मध्यप्रान्तमें छत्तीसगढ़ प्रदेशमें दक्षिण बीसजकी राजधानी।

रमितपुर—धम्वल नदीपर रमताम्बर नगर

रामगया, रामशिखा— ब्रह्मयोनि पर्वतके पास ही अन्य पहाड़ियाँ। पहाँपर आंशामने पिन्-धादमें विरहदान दिया था। (बाहुपुराण)

रामनाद—रामेश्वरके पास एक नगर। रामनादका राजा सेतुपति-वंशकी सन्तान था। अज्ञाने कीरने हुए श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरपर सेतुकी रचनाके लिये त्रिन गान व्यक्तियोंकी नियुक्त किया था, उनमेंसे एक रामनाद था।

रामेश्वर—प्रसिद्ध ही है।

रामेश्वर-संगम—धम्वल तथा ब्रह्मण नदीका संगमस्थान।

राष्ट्रतास-समरामने ३० मील दक्षिण शाहाबाद जिलेमें है। इसकी राजा हरिभन्द्रके पुत्र रोहितारवने बनाया था।

राष्ट्रण पर्वत सीलोनमें गुमनाहट पर्वतको कहते हैं। घाजकन यह ऐडम पीक (Adam's Peak) के नामसे प्रसिद्ध है।

रक्षणावती—लक्ष्मीती, यह गौडका दूसरा नाम है, इसका भगनावशेष मालदाके पास है।

लवपुर—लवकोट, लवगार भयवा जाहीर है। इसकी स्थापना भगवान् श्रीरामके पुत्र लवने की थी।

रा इगूरी—राजपूतानेकी लूनी नदी।

लोमशगिरि—यह गया जिलान्तर्गत नवादा सप्त-दिवोजनके राजौली स्थानसे ४ मील उत्तर है।

लोमशाश्रम—लोमशगिरि पर है।

लोह—अफगानिस्तान।

लोहितप्रान—कपीवती नदीपर स्थित है।

लोहित्यसागर—बंगालकी खाड़ी।

लोहित्या-नदी—महपुत्र-नदी।

वसन्तमि—प्रयागसे पश्चिम एक जिला। इसकी राजधानी कोशाग्री थी।

बानीरमाहिनी नदी—धर्मारण्यकी नदी।

बाल्मीकि—आश्रम—तमसा नदीपर। गंगासे दक्षिण। प्रयागसे १० कोस।

बालिगुहा—धनागोंदो स्थानसे १॥ मील दूर है।

बितस्ता नदी—पंजाबकी झेलम नदी।

विदर्भ—बरार।

विदिशा—मध्यभारतका भिलिस्ता ग्राम।

विदेह—आधुनिक तिरहुत—इसे मिथिला भी कहते हैं।

विनतप्रान—गोमती नदीपर एक ग्राम।

विन्ध्याद्रि—प्रसिद्ध है। यह पर्वत भारतवर्षको उत्तरी तथा दक्षिणी दो भागोंमें विभक्त करता है।

विनुचोडा—गन्धर्व जिलेमें इस नामका एक नगर तथा एक पर्वत है, इसका अर्थ 'मुननेका पर्वत' है। परम्परासे यह बात चर्ची जाती है कि हमीरस्यजपत श्रीरामचन्द्रजीने सीता-हरणका समाचार सुना था।

विपाशा नदी—पञ्जाबप्रान्तकी व्यास नदी। (वेदोंकी धार्वाक्या नदी)

विष्वायु ध्रुव—(हामरीमें मन्दिर)। हम किष्किन्धा, पद्मसरोवर, तारा, मान्यवान् तथा पर्वतादि हैं।

वेदध्रुवा नदी—तमया या तानया नदी।

वेदूर्ध्वपर्वत—सतपुरा पर्वत।

वेतरणी नदी—यह नदी कलिङ्ग प्रान्तमें बहती, की खाड़ीमें गिरती है।

वेशाढी—हाजीपुरसे १८ मील उत्तर गण्ड स्थित बेमारग्राम।

वैग—बंगाल। किसी समय यह पाँच प्रान्तों था। १—पुण्ड्र २—समतट ३—कामरूप ४—ताम्र ५—कर्णसुवर्ण।

शतद्रु नदी—पञ्जाबकी सतलज नदी।

शारंगेश्रम—आश्रम—उद्वपुरमें। अत्रि—आश्रमने दिशामें।

साम् नदी—साम् या घाघरा नदी—गङ्गा नदी काहा। इसीके किनारेपर भवप या कोमलकी राजधानी भयोध्यापुरी है।

शिबि—सिबिन्धान। सिन्ध नदीके किनारे सिन्ध एक भाग।

शुकसेत्र—देविये 'सोरो'।

शूर्पाक—बम्बई प्रान्तमें बसईके पास सोपारा प्रसिद्ध है।

शोण—सोन नदी। यह गंगा नदीमें गिरती है। एक नाम शिरण्यवाह भी है।

शुद्धकेरपुर—आधुनिक सिंगौर। माघोनकाजमें राजा गुह था।

श्रवण—उज्जयिनेसे २० मील दक्षिणपूर्वकी ओर नदीपर स्थित है। इसी स्थलपर राजा इरावने भवण भयवा सिन्धु अश्रिको मार डाला था।

श्रावस्ती—सूर्यवंशी राजा श्रावस्तने हमे बनाया श्रावकज राजती भयवा ईरावती नदीके दक्षिण सहेत-महेतके नामसे प्रसिद्ध है। यह अशोकाने ३० मील उत्तरकी ओर है। माघोनकाजमें यह उत्तरकोण राजधानी थी। इसके तीन नाम हैं १—धर्माव २—अश्रिकापुरी ३—सहेत-महेत।

सदानीरा नदी—दक्षिणे 'काठिया'।

स्पन्दिका नदी-अथवा-प्रदेशकी आधुनिक सई नदी। गोमती और गंगाके बीचमें कोसल-देशकी दक्षिण सीमा-पर बहती है।

सरस्वती नदी-आजकल इसे सरस्वती अथवा घग्गर नदी कहते हैं। यह उत्तर राजपूतानेकी रेतमें लुप्त हो गयी है।

सदेत-महेत-देखिये 'श्रावस्ती'।

शिवाग्रम-धोरा तथा गंगा नदीके संगमके पास शाहाबाद जिलेमें बससरके नामसे प्रसिद्ध है।

सीता नदी-वारकण्ड अथवा जूरप्रशान्दी। इसीपर वारकण्ड शहर बसा हुआ है।

सीतासेत्र-कार्जिजर पर्वतकी एक पहाड़ी (साधारण रूँचा पर्यटिका भाग)

सुतीक्ष्ण-आश्रम-शरभंगाश्रमसे दक्षिण।

सुवर्णद्वीप-सुमात्रा।

सुनामा नदी-रामगंगा नदी। देखिये 'उत्तरगंगा नदी'।

सुखदेश-आराकानप्रान्त। एक समय इसकी राजधानी वाप्रजिसा थी।

सैरिन्ध-सरहिन्द।

सोमगिरि-हाला-पर्वतका दक्षिणी भाग।

सोरो-शुक्रसेन या उकलसेत्र—यह स्थान पृथाले २७ मील उत्तर-पूर्वकी ओर है। कहते हैं इसी स्थानपर हिन्दोके पूजनीय महाकवि गुलसीदासका बाल्यकालमें पालन-पोषण हुआ था।

सैत्रस्या-करुंलाबाद-जिब्रान्तगंत फतेहगढ़से पश्चिमकी ओर २३ मीलपर हजूमती-नदीपर कवित्थके नामसे प्रसिद्ध है।

हलाहरण-हरदोईसे २८ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर कन्याण्डके पास है।

हरद्वार-गंगापर प्रसिद्ध नगर है।

हस्तिनापुर-अधुना गङ्गा-नदीके दाहिने तटपर स्थित एक ग्राम। यह दिल्ली तथा मेरठसे उत्तर-पूर्व तथा विजयनौरसे पश्चिम-पश्चिमकी ओर है।

हृष्टक-आथक (मानमीलके पास अथर्वसे स्थान)

हारीताश्रम-एकलिंग। रामपूतानेके उदयपुत्रसे १ मील उत्तर।

हिरण्यवती-छोटी गण्डकी।

हिरण्यवाह-देखिये 'शोण नदी'।

निम्नलिखित स्थानोंके नाम रामायणमें द्योते हैं परन्तु इनके सम्बन्धमें ठीक-ठीक पता नहीं लगता।—अनिलोद्धत, अभिकाण्ड, आंमवती, हृष्टसागर, उज्ज्वान नगर, अथम-पर्वत, कवन्ध वन, कज्जिन्नगर, कालमटी नदी, बुजिन्द, कुण्ड, चीरसागर, गिरिश्रृंग, जम्बूद्वीप ग्राम, आतरूपशील पर्वत, तेजोभिवन, तोरण ग्राम, दूधवाह आश्रम, धर्मवर्धन, प्रभास, प्रत्यवस्थली वेदी, मण्डिमन् पर्वत, महाम्राम, शौण्डिक द्वीप, बरुण ग्राम, वादिनी नदी, वीरमत्स्य देश, शरद्वदा, शयरी आश्रम, शक्यकाण्ड, शास्मलीनदी, शिलावाह नदी, शिशिर पर्वत, सप्तजनमुनि-आश्रम, सप्तसागरतीर्थ, श्यामुमती नदी, सुच्छ नदी, सुदर्शन सरोवर, सुदामा नदी, सोरोन, हलिष्टक ग्राम, हादिनी नदी आदि।

## रामायण-रहस्य

(एक नवीन दृष्टि)

(लेखक—श्रीमोतीलाल शंकर पोद्दार, बी० ए०, एल० ए००००००)



रत्नकी अविनाशी सम्पत्ति समझी जानेवाली रामायणी कथा सर्वांशमें चाहे ऐतिहासिक क हो परन्तु रामायण और श्रीरामचन्द्रजी के दोनों हिन्दू-समाजको गृहस्थाश्रम और राजधर्मका अद्वितीय आदर्श दिखला रहे हैं। इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। पर प्रस्तुत खेल इस आदर्शकी दृष्टिसे नहीं लिखा जाता है। यह खेल एक मर्फी दृष्टिसे लिखा जाता है, इसलिये यदि किसी पाठकको कुछ अनुचित प्रतीत हो तो हम पहलेहीसे क्षमा माँगते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीको हम परमात्मा, श्रीविष्णु भगवान्का अवतार मानते हैं, हमारी इस आस्तिक बुद्धिके मातेये तो हमें किसी प्रकारकी संका नहीं करनी है। अज्ञानकारण हम एक भिन्न दृष्टिसे विचार करना चाहते हैं, इनद्विजे एक नवीन विचार दृष्टि करनेका प्रयास किया जाता है। अज्ञानकारण और विचारकारण इन दोनोंमें कुछ-कुछ समानता है, और ये दोनों ही बाद-बुद्धिकाचक होनेके कारण विचारके योग्य ठहरते हैं।



हमारे पुराणोंका अध्ययन करनेसे पता खगता है कि इन ग्रन्थोंकी रचनामें कितनी बहुत युक्तिका उपयोग किया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि इनमें वर्णित कथाओंको छोकोपकारक बनानेके लिये, उनके मूल ग्राम ग्रंथोंके आधारपर उन्हें नये यद्वाभूषणोंसे सजित किया गया है। इसके अतिरिक्त, 'यथा विष्टे तथा मन्नाग्धे' हमारे इस तारिखक सूत्रमें निहित मुख्य भावको सर्वथा परिताप करनेकी भी चेष्टा पुराणकारोंने की है।

पुराणोंके पाठकको सूत्र दृष्टिसे कथाओंका पर्यवेक्षण करना होगा। क्योंकि अवताररूपसे माने हुए देव-दानवोंके चरित्र चित्रण करके ही पुराणकार शुभ नहीं हो गये हैं, उन्होंने उन देव-दानवोंका एक और ज्योतिष्यकी दृष्टिसे और दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टिसे भी वर्णन किया है। इस वर्णनके द्वारा उन्होंने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विषयोंकी पक्षार्थता सिद्ध कर दी है। मतलब यह कि हमारी पुराण-कथाएँ ऐसी हैं कि उनको हम भिन्न-भिन्न अर्थोंमें घटा सकते हैं, और इसी दृष्टिसे यह लेख लिखा गया है।

वेदमें 'यज्ञ' 'विष्णु' और 'सूर्य' ये तीन शब्द एक ही अर्थमें व्यवहृत हैं, इसके अतिरिक्त उदय होते, केन्द्रमें स्थित रहते और अस्त होते सूर्यकी जिन तीन अवस्थाओंकी हम बार-बार आवृत्ति देखते हैं, ये तीनों ही विष्णुके एकके बाद एक अवताररूपसे समझी गयी है, ऐसा भी वेदादि ग्रन्थोंके आधारपर कहा जा सकता है। अन्य अवतारोंके सम्बन्धमें यहाँ कुछ नहीं कहना है। रामायणके आधारपर हम श्रीरामजीको सूर्यवंशी मानते हैं। इससे श्रीरामका सूर्यके साथ सम्बन्धित होना सिद्ध है। रमाने यानी ध्यानन्द प्रदान करनेवालेको राम कहते हैं। ऐसे तेजस्वी पुरुष ही 'सूर्यवंशज राम' हैं, यह सीधा अर्थ किया जा सकता है। प्रलर किरणोंवाले सूर्यका परशुराम उग्रस्वरूप है, उसके मुकनेपर (पराजित होनेपर) जो नया स्वरूप (सूर्यका) बनता है उसका अल्प उग्र होकर छोक्तमात्रको मुख पहुँचानेवाला होना स्वाभाविक ही है (यहै हुए सूर्यका स्वरूप उग्रतामें कम और सुखकारक होता है)। श्रीरामके जन्मकाबसे ही छोक्तमात्रको ध्यानन्द होता है परन्तु ध्यानन्द तो बही है जो होता ही रहे। रामका वय ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-ही-त्यों ध्यानन्द भी बढ़ता जाता है, पर कदाँ तक और किस प्रमाणमें ? राम अपनी प्रिया श्रीसीतारूपी पुत्रिका त्याग करके भी छोक्तमात्रको प्रसन्न करनेसे नहीं सूके।

श्रीराम अपना पराक्रम दिखाकर जो सीताका वरण करते हैं, यह बात भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है। परशुराम, संक्रान्तिकालके सूर्यका स्वरूप होनेसे अर्धक्रान्तिवृत्तिरूपी धनुषका भंग करनेवाले रामरूपी सूर्यसे पराजित हों, यह हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है। रामकी पत्नीका नाम सीता है 'सीता' शब्दका अर्थ 'शुद्ध' या 'हलरेखा' होता है, और वह पुत्रिरूप भी है, तथा सौम्य भी है। धनुष-भंग करके रामरूपी सूर्य सीतारूपी पुत्रिका वरण करते हैं। इसका अर्थ यह करना चाहिये कि रामरूपी सूर्यका तेज छोक्तमात्रको सद्य है। उत्तरायणका सूर्य दिन बीतनेके साथ ही दक्षिणायनका होने लगता है। यह बात श्रीरामके अपनी पत्नी सीताके साथ दक्षिण-नामनकी कथासे इतनी अधिक मिश्रता है कि राम-कथा और सूर्य-कथाको हम परस्पर पूरक नहीं कह सकते। रामकी शक्तिरूपा सीताका रावणने हरण किया, इस कथाको जो हम सूर्यके अन्य अवतारों—नृसिंह या वामनकी कथाके साथ तुलना करते हैं तो तबतः उन सबसे एक ही अर्थका बोध होता है। सूर्यकी अपनी वास्तविक पुत्रिरूप पत्नीको कैद कर रखनेवाले 'तेजोमयदंड' रूपी हिरण्यकशिपुका जैसा नृसिंहरूपी विष्णु भगवान्ने ध्वंस किया था, उसी प्रकार (वायुपुराणके अनुसार) हिरण्यकशिपुके अवतार रावणका,—जिसने सीताको कैद कर रखा था—रामरूपी सूर्य—विष्णुद्वारा ध्वंस हुआ और परिणाममें रामरूपी सूर्यको सीतारूपी पुत्रिका पुनः प्राप्ति हुई।

मतलब यह कि रामायणान्तर्गत राम-कथाका हम ज्योतिर्विद्याकी दृष्टिसे अन्यरूपसे भी अर्थ कर सकते हैं और ऐसा करनेसे अवरप ही रामायणी कथाका प्रयोजन भी नष्ट नहीं होता !

### वरसाये देत

छाये देत छोर छोर साघनी घटा-सी छटा,  
डुएन जयास भोरि भोरि भरसाये देत ।  
विशुन सी परत घाय पातक-गहारम दे,  
चातक विबुध उर भकि सरसाये देत ।  
दास तुलसीके छंद गरजत मेघ जैसे,  
भक्त मंजु मानस मयूर हरसाये देत ।  
राम यश पायन सुहायन है घाटा धर,  
जगमें विष्णु वारि घारा वरसाये देत ।

जगजन्मनर प्रीति

## श्रीरामनामकी महत्ता

(लेखक—विश्व-विद्या-विशारद पं० आनन्दचन्द्ररामजी तानगाँवकर)



ति प्राचीन काखसे श्रीरामनाम-कारणकी जो इतनी महिमा खली घायी है, इसका कारण क्या है ? यह रामनामका अर्थ हमारे ऐहिक या पारमार्थिक कल्याणमें क्या और कैसे काम आता है, यह जानना चाहिये । रामनामका यह प्रचार केवल पुरानी लीक पीटते खले जानेका ही एक नमूना है या इसमें कोई गम्भीर विचार भी है, यह जाननेके लिये इस नामकी महिमा जिन्होंने बताया है, उसकी योग्यता क्या और कितनी थी यह देखकर आज दिन प्राथमिक शास्त्रोंकी इतनी उन्नति हुई है उन प्राथमिक शास्त्रोंकी कसौटीपर कसकर यह देलना होगा कि इस रामनामकी महिमा कितनी उज्ज्वल है और उससे फिना बड़ा उपकार हो सकता है । ऐसा करनेसे प्राणिक कांछके सुशुचित मनुष्यको इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहेगा और यह इसका उपयोग करके अपना व्यावहारिक और परमार्थिक लाभकर लेगा ।

स्वयं श्रीरामचन्द्र भगवान् शंकरसे कहते हैं—  
हे शिव ! मुझुके दाहिने कानमें जिस किसीको राममन्त्रका उपदेश हो और जो कोई इसप्रकार जप करे वह मुक्त होगा ।

गाणपदेभ्यु शीवेभ्यु शक्तसिरे श्वभोहृद ।  
वैष्णवेभ्यपि सर्वेभ्यु राममन्त्रः फलाधिकः ॥  
—रामोत्तरतापिन्युपनिषद्

'गाणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु इन सब नामोंके जपसे होनेवाले कल्याणकी अपेक्षा रामनाम-मन्त्रके जपका फल अधिक है ।'

इसप्रकार रामनामके जपकी महिमा उपनिषदोंने गायी है । अब मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे राम इन अक्षरोंके उच्चारणमें क्या शक्ति है, यह देलना चाहिये ।

### वर्णोच्चार-गुण-धर्म-वर्णन

- 'र' वर्ण श्राद्धकर विहृतिकर है ।
- 'अ' स्वर सर्वगत और भाकरपंक है ।
- 'म' वर्ण विद्वेयी मोहनकर है ।

—ब्रह्मसंहिताकोपनिषद्

### बीजाक्षर गुणवर्णन

- 'र' अग्निबीज है ।
- 'आ' वायुबीज है ।
- 'म' आकाशबीज है ।

पृथ्वीबीज सम्भक्त, आप्यबीज शान्तिकर, तेजबीज साहक, वायुबीज चालक और आकाशबीज संश्लेषक है । इन अक्षरोंके निमोच्चारणका परिणाम विहृत पञ्च महाभूतोंकी स्थूल स्थिति तथैव अणुबीजित पञ्च महाभूतोंके सूक्ष्म स्वरूपपर भी घटित होता है । आकाशसे पृथ्वीतक आनेमें जैसे सूक्ष्मसे स्थूलमें आना होता है वैसे ही स्थूलको पुनः छोटाकर पृथ्वी और आपकी अग्नि, वायु और आकाशमेंसे होकर इनके भी परे जो सूक्ष्मस्वरूप अणुं महास्वरूप है उसमें ले जानेकी सामर्थ्य भी इन्हीं अक्षरोंमें अणुं रामनाममें है । देखिये, गुप्ताई तुलसीदासजी, क्या कहकर रामनामका बन्दन करते हैं—

बंदी रामनाम खुबरके । हेतु इतनु भनु दिनकरके ॥

### उपनिषदोंमें वर्णित महिमा

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दचिदात्मनि ।  
श्रुति रामपदेनात्तौ परं ब्रह्मामितीमते ॥  
—रामपूर्वतापिन्युपनिषद्

'योगीजोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मामें रामनाम होते हैं उसीका रामपदसे बोध होता है । उसीको प्राप्त कहते हैं ।'

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः ।  
फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः ॥  
—रामपूर्वतापिन्युपनिषद्

'यह मन्त्र रामका वाचक है और राम वाच्य है । राम शोनोंका जो योग है वह सब प्रकारके साधकोंको देनेवाला है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।  
उपदेशयति मन्मथः स मुक्तो भविता शिव ॥



(८) इयमें होनेवाले ये सूक्ष्म काम तेज और उष्णता-के रूपमें त्वक् और नेत्रके द्वारा ज्ञात होनेकी कच्चांमें आ जाते हैं तभी उन्हें व्यवहारमें तेज और उष्णता कहते हैं।

इयप्रकार इयपर होनेवाले ध्वनिके परिणामका विचार हुआ। अब शरीरके किन-किन भागों और अर्थों-पर क्या परिणाम होता है, इसका विचार करें।

सुँहसे मन्त्रोच्चार करनेके पूर्व उस उच्चारका अपने मनमें उत्पन्न होना आवश्यक होता है। मनमें उत्पन्न हुए विना वह सुँहसे निकल ही नहीं सकता। पर मनके भी पूर्व उसका अपने मस्तिष्कमें किसी सूक्ष्म अनुभूत-सी धारणामें होना जरूरी है। मस्तिष्कमें होनेसे ही वह मनमें उत्पन्न होकर मुखके द्वारा बाहर निकलता है।

विषमप्रज्ञावदका साधत और व्यापक वस्तुस्वरूप तथा विचारस्वरूपका बोध करानेवाले श्रीराम-मन्त्रके कम्प (Vibrations) मस्तिष्कके अन्तर्मांगके सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तन्तुओंको कम्पित किये हुए वहाँ अनुभूत-रूपमें रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो उन कम्पोंका कहींसे उत्पादन नहीं हो सकता। इन अनुभूत कम्पोंका उत्पादन होनेपर ये कम्प वहाँसे ज्ञानवान् नाडी-जाल (Sympathetic Nerve) में, फिर वहाँसे ज्ञानेन्द्रिय नाडी-जाल (Sensory) के वाग्-नाडी-जालमें रहनेवाले शब्दोत्पादक (Hypoglossal Nerve) गतिवान् (Motor Nerve) ज्ञान-तन्तुओंको प्रेरित करते और जीभको कम्पित करके मन्त्रका स्पष्ट उच्चार कराते हैं। राममन्त्रके कम्प इसप्रकार वाद्य वातावरणपर पवित्र और समर्थ परिणाम करके फिर लौटकर शरीरके अन्तर्मांगोंपर परिणाम करते हुए मूल उत्पत्ति-स्थानमें वा पहुँचते हैं। सृष्टि-शास्त्रका यह अथापिहित सिद्धान्त है कि, जो-जो शक्ति जिस-जिस मूल स्थानसे उठकर क्रियामें प्रवृत्त होती है वह शक्ति फिर उसी मूल उत्पत्ति-स्थानमें आकर अपना वर्तुल (Circulation) पूरा करके ही वापको प्राप्त होती है। इस नियमके अनुसार राम-नामके जो कम्प अपने मूल स्थानसे उठकर सुँहत्क आकर बाहर निकलते हैं और फिर वर्तुल पूरा करते हुए लौटते हैं, वे शरीरमें अन्दरकी ओर जाते हुए जीभके स्नायुओंमेंसे होकर गतिवान् ज्ञानतन्तुओंमें जाते हैं, वहाँसे ज्ञान-तन्तुओंके शब्दज्ञानरज्जु (Auditory Nerve) में कम्प उत्पन्न करते हुए मूल स्थानसे ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जालमें कम्पित करते हुए जब मानस द्रव्यमें जाते हैं तभी वे अपने और

दूसरोंके शरीरके शब्दका स्वरूप पकड़ सकते हैं, वही उनके अर्थका कार्य निर्माय होता है और श्रीरामस्वरूप तेज अवतरित होकर मस्तिष्क पिण्डान्तर्गत प्रज्ञाहृदय (Seat of the Soul) में विलीन हो रहता है। इस प्रकार यह पूरी क्रिया प्रत्येक जपमें होती है। और राम-मन्त्रके जपसे, स्थूल और सूक्ष्म क्रियास्वरूप संस्कारसे, मानस-शक्तिमें, विद्युत् और प्राणमें प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं और उनके संघ तथा संघसमुच्चयसे सूक्ष्म और शान्त तेजोमय धाकृति निर्माय होती है।

इस तेजोमय देवताकृतिमें उष्णता नहीं, शान्ति होती है (सुषुप्तोत्पत्तिकारणं चन्द्रकोटिलभप्रथं)। इस धाकृतिकी निर्माणक्रियामें मन्त्र शब्दोच्चार, मन्त्र अर्थाकार और भावना-स्वरूप जितना ही समर्थ और दृढ़ होगा उससे उतने ही अधिक तेजस्वी और बलवान् मानसिक तेज-कम्पन और चैतन्य विद्युत्-कम्पन होते हैं और उसी परिणामसे युक्त उस देवताका सूक्ष्म अथवा स्थूल देह निर्माय होता है। मन्त्र-शास्त्रके नियमानुसार इसप्रकार जपके द्वारा उस देवताका वह आकार हमारे मानसिक द्रव्यमें उच्च भूमिकापर सूक्ष्म रूपसे तैयार होने लगता है और जैसे-जैसे इसका संस्कार सतत जपसे दृढ़ होता है वैसे-वैसे हमारे सम्पूर्ण शरीर और मनमें पवित्र शुद्ध भक्तिफौजकर वह मनुष्यको इसी मनुष्य देहमें देव बना जाकती है, उसे ज्ञानयुक्त भक्त और मुक्त बना देती है। श्रीरामनामके जपमें इतनी सामर्थ्य है।

इसप्रकार वेद और उपनिषदके वचनोंसे, अनुभवी सन्तोंकी वाणीसे, मन्त्रशास्त्रसे, शरीरशास्त्र और मनो-विज्ञानसे तथा ध्वनिशास्त्रसे श्रीरामनामके जपकी अपार महिमा सिद्ध होती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है-

‘मज्ञानो जपपहोऽस्मि’

इसप्रकार जप-यज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ ही ही, पर इसमें रामनामके जपकी महिमा सबसे अधिक है, यह ऊपरके विवेचनसे पाठकोंके ध्यानमें आ गया होगा। इस दृष्टिसे रामरक्षातोत्रमें जो यह कहा है, यह यथार्थ ही है कि-

राम रामेति रामेति रेमे रामे मनोरेमे।

सहस्रनाम तनुत्वं रामनाम वरानने ॥

यहाँतक जप और राममन्त्र जपकी महिमाका दिव्यरंग करनेके पश्चात् अब मन्त्र-जपकी क्रमपरतिका विवरण भी यहाँ दे देना आवश्यक मालूम होता है।

वाचिक जप-इस जपकेदो अंग हैं—प्रथम वाचिक और अनन्तर उपांग। जोसे स्पष्ट उच्चार करते

ताप जिसके भावतंग होते हैं उसे वाचिक जप कहते हैं; और जिसमें होंठ और जीभ हिलते हैं पर स्वर इतना धीमा होता है कि जपने ही कानमें वह सुनायी दे, शब्द बाहर न भाय उसे उपांगु जप कहते हैं। इन वाचिक और उपांगु जपोंसे वाणी और भ्रवणका कार्य करनेवाले स्नायुओं और ज्ञानतन्तुओंमें गति निर्माण होती है और उससे अन्तर्वाद्य जगत्पर वैखरी वाणीसे गतिशील प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं। इनसे अन्तर्वाद्य सृष्टिमें इष्ट परिवर्तन होता है।

मानसिक जप—इस जपमें होठ या जीभके हिलनेका काम नहीं है। मनसे मनोमय शब्दकामन-ही-मन स्पष्ट उच्चार करना होता है। यह उच्चार शब्दोच्चारणके ज्ञान-तन्तुओंमें होता है और उससे कानोंके शब्दज्ञान तन्तु कम्पित होकर मनसे होने-वाला स्पष्ट उच्चार मनको ही सुनायी देता है। इसप्रकार जो जप होता है उसे मानसिक जप कहते हैं। यह मानसिक जप अत्यन्त वाणीसे ज्ञानतन्तुओंमें सूक्ष्म गति उत्पन्न करके स्वर आदि सूक्ष्म द्रव्योंमें कम्प निर्माण कर पियद-प्रकाशयदके सूक्ष्म शरीरपर परिणाम करते हैं।

ध्यान जप—यह जप पर्यन्तोवाणीसे मानस तेजाकार तथा मानस प्रत्यक्ष करके स्वतन्त्र ज्ञानवाद् ज्ञानतन्तु-जाल (Sympathetic Nerve System) और नाडीचक्र (Nervous flexuous) को सूक्ष्म गति देकर इधरसे भी सूक्ष्म प्राणद्रव्योंमें प्रकम्पन उत्पन्न करता है और उसका पियद-प्रकाशयदके कारण शरीरपर परिणाम होता है।

अनन्य जप—यह जप परावाणीसे कुयडलिनी नादीमें तेज स्पष्ट करके जीवात्मतेजमें सूक्ष्मतर गतियुक्त प्रकम्पन उत्पन्न करता है और पियद-प्रकाशयदके महाकारण देहपर परिणाम करके जीवात्मरूपी लघु केन्द्रको परमात्मरूपी बृहत्केन्द्र बनाया करता है।

यह मन्त्र-जपकी क्रमपद्धति है। प्रथम उच्चस्वरसे राम-नामका जो जप करता है, उसे उसके अज्ञानते ही, जैसे-जैसे अभ्यास बढ़े, वैसे-वैसे, उसकी प्रकृति ध्याप ही इसका जप करा देती है, और वह वाचिक जपसे मानसिक जपमें, अनसिकसे ध्यानमें और ध्यानसे अनन्य जपमें पहुँच कर स्वररूप हो जाता है। जिसको इस रामनामका एक बार गान्वाद् मिला और वह इस रामनाम-चक्रमें अटक कि कोई प्रपन्न किये बिना, उसकी गतिके वेगके आगे बढ़ता जाता है और स्वभावतः ही पहुँचकर श्रीराम-प्रभुषको प्राप्त होता है।

## श्रीमानसकी चौपाइयोंके विनोदी अर्थ

(केसव-कविसम्राट् पदार्थशास्त्ररति पं० राजरामजी शुद्ध)

सयकर मत खग नायक पहा।

करिय राम पद पङ्कज नेहा ॥ उ० क०

(१) सयकर मत (सबहीके मत—सम्प्रदाय) ख ग्य्य अर्थात् कुछ नहीं, सार हीन हैं। गना यक पदा (यह एक अर्थात् अष्ट गिना गया है कि करिय राम पद पङ्कज नेहा (हरिमक्ति कर्षण्य है) भाव, बिना अष्टके शून्य व्यर्थ होते हैं, अब अष्ट सायमें हो, तब शून्य सार्थक होता है, इसी भाँतिसे हरिमक्तिसे योग विराग आदि सफल होते हैं, वा ०० वा ००० = कुछ नहीं पर १० = दश और ०१ = ११। रामनामको अष्ट है, सब साधन है मूल। अष्ट गये बहु शाय नहि, अष्ट रहे दश गून ॥ तुलसी सतसई

(२) सयकर (सबही कुछ करनेवाला) है खगनायक! मत पहा (हे गहक यह मत है) कि—करिय राम-पद पङ्कज नेहा (हरिमक्ति करे)

(३) हे खगनायक! सय कर (सबही धर्म अर्थ काम मोक्षकी कल) मत पहा (यह सम्प्रदाय है) कि करिय राम-पद पङ्कज नेहा (हरिमके करे)

(४) हे खगनायक! सयक (सकल सृष्टिके शिरपर) पदा रमत (पही रमत है) कि करिय राम-पद पङ्कज नेहा (हरिपद में करे) क= सिर जैसे दशकन्धर-दश शिर धारण करनेवाला। शङ्का—किस रूपको मन्त्रे ? उत्तर

(५) स (सत्यगुणसे) व (बासुदेव है) र (रमोगुणमें) क (महा है) त (तमोगुणसे) म (शिव है) पर—करिय राम-पद पङ्कज नेहा ऐसा ही श्रीमद्भागवतमें कहा है—सर्व रवत्वा इति प्रकृत्युपात्तैर्व्युक्तः परः पुरुष एक इहाएव बतः। सित्तारवे हरिविराधिरिति संशयः भेदसि तत्र सत्य मत्वात्कर्मणोः तुः। क=महा म=शिव। संस्कृत कोष देसो

\* भाप कोक और चौपाइयोंके पदोंका अर्थ करनेमें बौद्ध सिद्धांत है का,पकी विद्वत्तापर मुग्ध होना पङ्कज है। एकदपकी चौपाइयोंके सम्बन्धमें आपने एक बड़ा लेख भेजा है। मनुके डीलर उहाँका एक छोटा-सा अंश पाठकोंके विनोदार्थ दिया जाता है। पूरा लेख न छप सकनेके लिये सम्मान्य दुष्करी महाराज कृपार्थक क्षमा करें।

## तुलसी-रामायण

(लेखक—श्रीविनोबाजी भावे)



रातीय साहित्यके इतिहासमें तुलसी-दासजीके रामायणका एक स्वतन्त्र स्थान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और उस भाषाका यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है, अतः राष्ट्रीय दृष्टिसे तो इस ग्रन्थका स्थान अद्वितीय है ही पर भारतके सात आठ करोड़ लोग इसे वेद-तुल्य प्रामाणिक मानते हैं, यह निरर्थक परिचित तथा धर्म-जागृत्तिका एकमात्र आधार है; अतः धर्मदृष्टिसे भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। रामभक्तिका प्रचार करनेमें, 'शिष्यादिच्छेद परानयम्' इस न्यायसे, वाल्मीकीय रामायणके धराजयका ध्यानन्द देने-वाला यह ग्रन्थ है अतः भक्तिमार्गके दृष्टिसे भी यह अद्वितीय ही है। सीनों दृष्टियोंका ऐक्य करके यदि इसपर विचार किया जाय तो यह अनन्वयालंकारका उदाहरण प्रतीत होता है। राम-रावणके युद्धकी उपमा जैसे राम-रावण युद्ध ही या जैसे ही तुलसीरामायणकी तुलना भी तुलसीरामायण ही है।

प्रथम तो रामायण मर्यादापुराणोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका परित्र है और फिर तुलसीदासजीने भी उसे विशेष मर्यादा-पूर्वक किया है, इस कारण यह ग्रन्थ छोटे बालकोंके भी शायमें देने योग्य पवित्र और निर्दोष बन गया है। इसमें काव्यके सब रसोंका वर्णन नैतिक मर्यादाकी रक्षा करते हुए किया गया है। स्वयं भक्तिको भी नियमोंसे नियन्त्रित किया गया है। अतः सुरदास-जैसी मल भक्ति इसमें देखनेको नहीं मिलती। तुलसीदासकी भक्ति नियमित थी। नियमित और मल भक्तिमें वही मौखिक भेद है तो श्रीराम-भक्ति और श्रीकृष्ण-भक्तिमें है। पर यहाँ भी तुलसीदासजीकी उच्च विशेषता है ही।

तुलसी-रामायणका वाल्मीकीय रामायणकी अपेक्षा अन्यायकरामायणसे अधिक सम्बन्ध है। बहुतेरे वर्धनोंमें—विशेषतः भक्तिके उद्गारोंमें तो भागवतकी द्वाया दोष पढ़ते हैं, शीलाकी द्वाया छो दे हरि। महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मार्थजन्मी सन्तोंके ग्रन्थोंसे जो परिचित हैं उन्हें तुलसी-रामायणमें वही भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती! वही नीति,

वही निर्मल भक्ति, वही संयम है। सुदामाजीको धपने प्राममें चौट धानेपर भी जैसे भ्रम हुआ या कि हम फिर द्वारकामें ही पहुँच गये हैं, उसी प्रकार तुलसी-रामायण पढ़ते समय महाराष्ट्रीय सन्त-मण्डलीके बचनोंसे परिचित मनुष्योंको ऐसी शंका होती है, वहाँ हम विरपरिचित धपन हो नहीं पढ़ रहे हैं। महाराष्ट्रीय सन्तोंमें भी धीएकनाथका तुलसीदाससे विशेष स्थाय पाया जाता है; धीएकनाथके भागवत और तुलसी-रामायणमें तो अत्यन्त स्थाय दिखलायी पड़ता है। धीएकनाथने भी रामायण जितनी है पर उनके धारणाका प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है, उनके भागवतमें! भीरानाथको इसी भागवतने पागल बना दिया था। नाथ कृष्णभक्त थे तो तुलसीदासजी रामभक्त थे। नाथने कृष्ण-भक्तिकी मन्मीको उतारा, यह उनकी विशेषता थी। ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सबके सब कृष्णभक्त तथा मर्यादा-शील थे।

तुलसीदासजीकी मुख्य धारणात उनके अयोध्याकारणमें दिखलायी देती है। उस काव्यकी रचनामें उन्होंने विशेष परिश्रम किया, ऐसा दिखलायी देता है। अयोध्याकारणमें भारतकी भूमिका बहुत है। भरतजी तुलसीदासजीकी प्यान-मूर्ति थे। इस प्यानमूर्तिके पुनर्नेमें धीकित्य प्रतीत होता है। अथमलाजी और भरतजी दोनों ही श्रीरामके परम भक्त थे, पर एकको संयोगका सौभाग्य प्राप्त हुआ या तो दूसरेको वियोगका। वियोग भी 'सौभाग्य' स्वरूप हो गया क्योंकि उसमें भी भरतजीने संयोगका अनुभव किया। हमारे मायमें दरमेश्वरके वियोगमें रहकर काम करना बड़ा है, अथमलाजीकी तरह संयोगमें रहकर कार्य करनेका हमारा छोड़ोभारद नहीं है, अतः शिवोगमें रहकर भी हमें सौभाग्य किम तरह प्राप्त हो सकता है, यह जाननेके लिये भारतजीका आदर्श हमारे लिये बहुत उपयोगी है।

शास्त्रीय संयोगकी अनेका धार्मिक संयोगका विशेष महार है। शरीरमें सहिष्णु रहकर भी मनुष्य मनसे दूर रह सकता है। दिन-रात वहीनी क्रोधकी जोरकर कोष हुआ कपार आइंलाने दिखनुक अविश रह सकता है। इनके विरुद्ध शास्त्रीय वियोगमें भी धार्मिक संयोग रह सकता

है। इसमें संयम कमीटी है। भक्तिकी तीव्रता वियोगसे पड़ती है। यदि ध्यानवृद्धि देता जाय तो प्रत्यक्ष स्वराग्य-प्राप्तिके ध्यानवृद्धि भयेवा स्वराग्य-प्राप्तिके प्रयत्नों में जो ध्यानवृद्धि मिलता है, यह कुप और ही है, केवल उसके अनुभव करने योग्य। रसिकता होनी चाहिये। भक्तोंमें यह रसिकता होती है अतः वे मुक्तिकी इच्छा न करके भक्तिमें ही सुखी रहते हैं। भक्तिका अर्थ है बाह्य वियोगमें प्राण्टरिक ऐश्वर्य। यह कोई मापूजी भाग्य नहीं, यह तो परम भाग्य है। मुक्तिसे भी यहकर घटोभाग्य है। भरतजीका यही सौभाग्य था। लक्ष्मणजीका भी घटोभाग्य था। पर प्रथम तो वह हमें नसीब नहीं और दूसरे वह प्राण्टविक है भी नहीं। इसका कारण 'अंगूर खट्टे हैं' यह नहीं बल्कि 'उपवास मीठा है' यही है। भरतजीके भाग्यमें उपवासकी मधुरता है।

अर्थात् 'मोक्षेऽपि कठे त घोष करके'—अपनी तर किया है। तुलसीदासजीके मूर्ति हैं। भरतजीकी मूर्ति

अरयन धरम न काम य

जनम जनम रति रामप

इसप्रकार लोकमान्यके उत्तर दिया है।

भरतजीमें वियोग-भक्तिका

इसी कारण से तुलसीदासजीके

सेवाधर्मका उत्तम रीतिसे पावन वि

पूर्ण परिपाजन किया, ईश्वरका वि

ईश्वरी आज्ञा मानकर ही प्रजापाजन

श्रेय ईश्वरको अर्पण करके स्वयं सदा

रहकर अरय-वासका अनुभव किया। वि

नियमादि विषम बातोंका पावन करके

रखनेबाजे देहके परदेको पतवा कर बा

कहते हैं कि यदि भरतजी-जैसे भक्त वैदा

जैसे पतितको रामके सम्मुख कौन करता

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनम

मुनि-मन-अगम-जम-नियम-सम-दम विषम त्र

दुख-दाह-दारिद-दम-दूषन सुख-मित अपद

कलिकाल तुलसी-से सटाई हठि राम-सनमुल क

रामायणमें राम-सखा भरत, भारतमें शकु

पराक्रमी भरत और भागवतमें जीवन्मुक्त अक्षर म

तीन भरत प्राचीन इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। हिन्दू

'भारतवर्ष'संज्ञा शकुन्तलाके वीर भारतसे मिली हो

ऐतिहासिकोंका अनुमान है, धीष्कनायजीने अ

यह संज्ञा प्राप्त होना बतलाया है और तुलसीदा

कदाचित् इसको रामभक्त भरतसे प्राप्त बतलाया

कुपु भी हो पर आजके वियोगी भारतके लिये भारत

वियोग-भक्तिका आवर्त सय प्रकार अनुकरणीय है

तुलसीदासजीने इस आवर्तको पवित्र अनुभवसे प्रसि

करके हमारे सम्मुख रखा है। उसके अनुगामी अ

करवा हमारा कर्तव्य है।

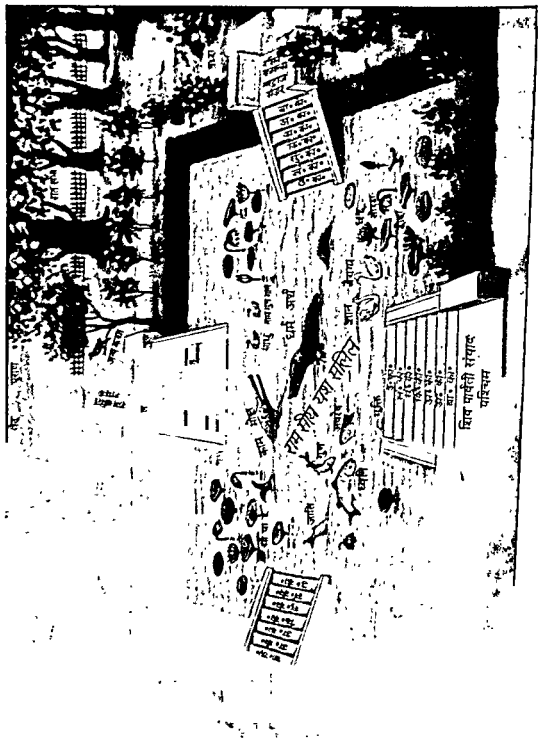
'संन्यासीको भी मोक्षका लोभ होता ही है।' गीता-रहस्यमें लोकमान्यने ऐसा आक्षेप किया है, पर हमारे साधु-सन्तोंने इस आक्षेपसे बचनेका भी तरीका ढूँढ निकाला है। उन्होंने लोभको ही संन्यास दे डाला। स्वयं तुलसीदासजी भी भक्तिकी नोन-रोटीपर राजी हैं। मुक्तिकी मिजमानीका उन्होंने तिरस्कार किया। तुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—'मुक्ति निरादरि भगति लोभाने।' 'ज्ञानदेव महाराजने भी 'भोग-मोक्ष निबल्लेण पायातली।' 'मोक्षान्ची सोयी बाँधी करी' 'चहुँ पुण्यायां शिरी। भक्ति जैसी।' आदि बचनोंमें मुक्तिको भक्तिकी चेरी बनाया है और साधुवर तुकाराम महाराजने तो 'नको मद्राशन आरामस्तिभाव' कह करके मुक्तिको इन्तीफा ही दे डाला है। धीष्कनायने भक्तिको मुक्तिसे कई स्थानोंमें श्रेष्ठ बतलाया है। गुजरातके नरसी मेहता तो 'हरिना जन तो मुक्ति न मोंगे' की ही श्टन्त खगाया करते थे। सारांश, किसय भागवत-धर्मोय वैष्णव-भक्तगण मुक्तिके लोभसे पूर्णतया मुक्त रहे हैं। इस वैष्णव-परम्पराका उद्गम भक्तशिरोमणि प्रह्लादसे है। 'नेतान् बिहाय रूपगान् विदुमुश यदाः' अर्थात् 'इन गरीबोंको छोड़कर मैं धकेबा ही मुक्त होना नहीं चाहवा' यह सूत्रा जवाब प्रह्लादने नृसिंहजीको दिया था। कलियुगमें श्रौत, स्मार्त, संन्यास-मार्गकी स्थापना करनेवाले धर्मोपकारार्थने भी—

ब्रह्मण्याथाय कर्मणि संगं लवत्वा करोति यः।

—इस गीताके छोड़कर भाष्य करते हुए 'संगं लवत्वा'







आ. ४०  
 आ. ४१  
 आ. ४२  
 आ. ४३  
 आ. ४४  
 आ. ४५

राम मीठा थका मरिचक

शिव पार्वती संघाट  
 पश्चिम

आ. ४६  
 आ. ४७  
 आ. ४८  
 आ. ४९  
 आ. ५०

## प्रार्थना !

साधिदानन्द सनातन रूप ।  
अगुण अज अव्यय अलस अनूप ॥  
अगोचर आदि अनादि अपार ।  
विश्वव्यापक विभु विश्वाधार ॥

न पाता जिनकी कोई थाह । समझकर विषवत् सारे भोग-  
बुझि-बल हो जाते गुमराह ॥ त्याग, हो जाते स्वस्थ निरोग ।  
सन्त श्रद्धालु, तर्क कर त्याग । एक बस, करते प्रियकी चाह ।  
सदा भजते मनके अनुराग ॥ विचरते जगमें बे-परवाह ।

धरा धन धाम नाम आराम ।  
सभी कुछ राम विश्व-विश्राम ॥  
देखते सबमें, ऐसे भक्त ।  
सतत रहते चिन्तन-आसक्त ॥

प्रेम-सागरकी तीक्ष्ण तरंग । प्रेम-वस्तु विह्वल हो श्रीराम ।  
बाँध मर्यादाका कर भंग ॥ भक्त-मन-रंजन भति अभिराम ॥  
बहा ले जाती, जब श्रुति-धार । दिव्य मानन-नारीर-वर पार-  
सन्त तप करते प्रेम-मुकार ॥ अनोखा, हरि लेते अथवार ॥

मदन-मन-मोहन, मुनि-मन-हरण ।  
सुरासुर सकल विश्व सुख-करण ॥  
मधुर मन्मथ मूर्ति धृतिमान् ।  
विविध शीघ्र करते भगवान् ॥

दयावश करते जग-उद्धार । बिन्हे गा-सुनकर तप संभार ।  
प्रेमसे, तथा कित्तीको मार ॥ सहज होता भव-नारीधि पार ॥  
विविध लीला विनाल मुषि चित्र । तोड़ माया-बन्धन जग-बाढ ।  
अलौकिक सुखकर सभी विचित्र ॥ देखना 'सर्व-नाम' हर-हाल ॥

वही सुन्दर मृदु युगल-स्वरूप ।  
दिखाते रहों राम रघु-भूप ॥  
'सकल जग सीध-दानमय' जान ।  
करै सबको प्रणाम तब मान ॥

सर्वज्ञान

## रामायण हमें क्या सिखाती है

- १-बुद्ध सखिदानन्दधन एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और अखिल विरव एवं विषकी घटनाएँ उसीका स्वरूप और लीला हैं।
- २-परमात्मा समय-समयपर अवतार धारणकर प्रेम-द्वारा साधुओंका और दण्डद्वारा दुष्टोंका उद्धार करनेके लिये लोककल्याणार्थ आदर्श लीला करते हैं।
- ३-भगवान्की शरणागति ही उद्धारका सर्वोत्तम उपाय है। उदाहरण—विभीषण।
- ४-सत्य ही परम धर्म है, सत्यके लिये धन, प्राण, ऐश्वर्य सभीका सुखपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। उदाहरण—भीराम।
- ५-मनुष्य-जीवनका परम ध्येय परमात्माकी प्राप्ति करना है और यह भगवत्-शरणागतिपूर्वक संसारके अमल कर्म ईश्वरार्थ त्यागवृत्तिले फलासक्ति-शून्य होकर करनेसे सफल हो सकता है।
- ६-वर्थाभ्रम-धर्मका पालन करना परम कर्त्तव्य है।
- ७-माता-पिताकी सेवा पुत्रका प्रधान धर्म है। उदाहरण—भीराम, धीश्रवणकुमार।
- ८-छियोंके लिये पातिप्रत परम धर्म है। उदाहरण—ताजी।
- ९-पुरुषके लिये एकपत्नी-व्रतका पालन अति आवश्यक उदाहरण—भीराम
- १०-भाइयोंके लिये सर्वस्व त्यागकर उन्हें सुख पहुँचाने-करना परम कर्त्तव्य है। उदाहरण—भीराम, भरत, शत्रुघ्न।
- ११-धर्मोत्तम राजाके लिये प्राण देकर भी उसकी प्रजाका प्रधान कर्त्तव्य है। उदाहरण—(१) समय धर्मोत्थ्याकी प्रजा। (२) अज्ञाके युद्धमें धामवलिदान।
- १२-धर्मोत्तम राजाके अत्यायका कभी समर्थन देये। सगे भाई होनेपर भी उसके विपक्ष लगे। उदाहरण—विभीषण।
- १३-प्रसारजनके लिये प्राण-मिय वस्तुका भी कर देना राजाका प्रधान धर्म है। उदाहरण—भीराम सीता-त्याग।
- १४-प्रजाहितके लिये यज्ञादि कर्मोंमें सर्वत्र बालना। उदाहरण—दशरथ और भीराम।
- १५-धर्मपर अत्याचार और अन्यायपर गुस्सा बड़े-से-बड़े शक्तिशाली सम्राटका विनाश हो जाता। उदाहरण—रावण।
- १६-मित्रके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहना हमारे उसके सभी कार्य करना। उदाहरण—भीराम-सुग्रीव और भीराम-विभीषण।
- १७-निष्काम सेवा-भावसे सदा सर्वदा भगवान्के दासत्वमें लगे रहना। उदाहरण—भीरामानुजी।
- १८-सौतेके पुत्रोंपर भी प्रेम करना। उदाहरण कौसल्या, सुमित्रा।
- १९-प्रतिज्ञा-पालनके लिये सगे भाईतक उसके प्रति हृदयमें पूर्ण प्रेम रखते हुए भी त्याग कर देना। उदाहरण—भीरामके द्वारा लक्ष्मण-त्याग।
- २०-आज्ञाय-साधुओंका सदा दान-मानसे सम्मान करना। उदाहरण—भीराम।
- २१-अवकाशके समय भगवत्परा ध्या सचिन्तन कर उदाहरण—भीराम आदि भाइयोंकी बातचीत।
- २२-गुरु, माता, पिता, बड़े भाई आदिके चरणोंमें निष्प्रणाम करना।
- २३-पितरोंका अज्ञापूर्वक तर्पण-आद करना।
- २४-अन्यायका सर्वदा और सर्वथा प्रतिवाद करना। उदाहरण—छत्रमण्य।
- २५-धर्मपालनके लिये बड़े-से-बड़ा कष्ट सहन करना। उदाहरण—भीराम, छत्रमण्य, सीता, भरत।
- २६-द्विजमात्रको निम्न टीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये।
- २७-सदा निर्भय रहना चाहिये। उदाहरण—भीराम-लक्ष्मण्य।

२८-बहुविनाह कभी नहीं करना चाहिये । उदाहरण—  
श्रीराम ।

२९-साधु-सन्त-महात्माओंके धर्मकार्यकी रक्षाके लिये  
सदा तैयार रहना । उदाहरण—श्रीराम-लक्ष्मण

३०-भ्रमना पुरा करनेवालेके प्रति भी सख्खा ही  
वर्ताव करना । उदाहरण—श्रीरामका वर्ताव कैकेयीके प्रति,  
श्रीशशिष्ठाका वर्ताव विधामित्रके प्रति ।

३१-स्त्रीके लिये परपुरुषका किसी भी भ्रवस्यामें  
ज्ञानबुझकर स्पर्श नहीं करना । उदाहरण—लक्ष्मणमें सीताने  
हनुमान्की पीठपर चढ़कर जाना भी शस्वीकार कर दिया ।

३२-पुरुषोंको परस्त्रीके धङ्ग नहीं देखना चाहिये ।

उदाहरण—लक्ष्मणजीने दरसों साथ रहनेपर भी सीताके  
धंग नहीं देखे, इससे वे उनके गहने तक नहीं पड़चान सके ।

३३-साधारण-से-साधारण जीवके साथ भी प्रेम करना  
चाहिये । उदाहरण—श्रीराम ।

३४-भगवान्के चरणोंका आश्रय लेकर प्रेमसे उनकी  
चरण-यज्ञ मस्तककर धारण करनेसे जङ्ग भी सैतन्य हो  
सकता है । उदाहरण—महत्पत्नी ।

३५-बर्षोंके बीचमें अनधिकार नहीं बोलना ।  
उदाहरण—शत्रुघ्न ।

३६-नास्तिकवाद किसीका भी नहीं मानना । उदाहरण—  
श्रीरामने जाबालि-सरीले ऋषि और पिताके मन्त्रीकी बात  
नहीं मानी ।

## चित्र-परिचय

उद्धारकर्त्ता भगवान् (रंगीन) चन्द्रका मुख-  
पृष्ठ-यह चित्र गीता अ० १२ श्लो० ६-७ के आधारेपर  
बनाया गया है । विशाल भवसमुद्रमें धनकी गँठरी  
बाँधे और भोग-विज्ञानमें रत स्त्री-पुरुष गोते खा रहे  
हैं । भगवान्का अनन्यभक्त भगवान्की घोर मन और  
नेत्रोंको जगाये भवसमुद्रमें दूधते हुए जोगोंको उबारनेके  
लिये निष्काम प्रयत्न कर रहा है, भगवान् स्वयं सुन्दर सुन्द  
नौकापर स्थित हैं और भक्तकी बाँह पकड़कर उसे पार ले  
वानेके लिये नौकापर चढ़ाना चाहते हैं ।

श्रीरामपञ्चायतन (रंगीन) पृष्ठ १-भगवान् श्रीराम  
तीर्थाजी-सद्विद्वान्-सिंहासनपर विराजमान हैं, भरतजी और  
लक्ष्मणजी चँवर हुआ रहे हैं, शत्रुघ्नजी भेंट लिये खड़े  
हैं, श्रीहनुमान्जी चरण दबा रहे हैं ।

श्रीरामगीता—पृष्ठ ४-श्री 'राम' शब्दमें सारी राम-  
गीता लिखी है ।

सोहे रामसियाकी जोरी—पृष्ठ २०-युगल जोड़ीका  
पान करनेवालोंके लिये बहुत ही सुन्दर चित्र है ।

श्रीपरशुराम-राम (रंगीन) पृष्ठ ३९-विवाहके बाद  
सोपाना औटनेके समय परशुरामजी रास्तेमें मिलते हैं, उन्हें  
जलते ही दशरथजी अत्यन्त दर आते हैं, मुनि वशिष्ठ और  
परमात्म शान्त खड़े हैं, श्रीलक्ष्मणजी तेजसे भर रहे हैं,

श्रीराम हाथमें धनुष जेते ही चढ़ा देते हैं, परशुरामजी  
अत्यन्त विस्मित हो जाते हैं । रामायणपृष्ठ ३९ देखिये ।

सीता-यनयास पृष्ठ ४२-गंगाके उस पार लक्ष्मण-  
जीने रोते हुए, सीताको रामका सन्देश सुनाया, मुनते ही  
सीताजी सहम गर्भी, लक्ष्मण रोने लगे, वधा ही कल्या-  
जनक इरय है । चित्र बहुत सुन्दर भावपूर्ण है । रामायणपृष्ठ  
४२ और वा० रा० ७।४८ देखिये ।

श्रीराम-सीताकी सुप्तमन्त्रणा—पृष्ठ ४४ (रंगीन)—  
सीताजी एकान्तमें श्रीरामकी देवताओंका सन्देश सुनाती  
हैं । रामायणपृष्ठ ४४ देखिये ।

श्रीरामके चरणोंमें भरत (रंगीन) पृष्ठ ९९-श्रीराम-  
सीता चित्रपट्टमें पर्वश्रुतीके बाहर वेदिकापर बैठे हैं,  
लक्ष्मणजी पास खड़े हैं, कुटियामें दोनों माइबोंके धनुष-बाण,  
तलवार-बाण आदि टेंगे हुए हैं । इतनेमें भरतजी आकर  
दूरसे ही 'हा प्रार्थ !' कहकर गिर पड़ते हैं, वहाँ श्रीराम  
और लक्ष्मणके भाव देखने ही योग्य हैं । शत्रुघ्नजी पीछे  
खड़े चरणोंमें गीता ही चाहते हैं । निषादराज हनुमान्की  
देखकर आनन्दमें भर रहा है । रामायणपृष्ठ ९९  
वा० रा० २ । २१ देखिये ।

कैकेयीकी क्षमा-याचना, (रंगीन) पृष्ठ ८२-  
चित्रपट्टके एकान्त स्थलमें कैकेयीजी श्रीरामसे क्षमा माँग

# रामायण हमें क्या सिखाती है

- १-शुद्ध सच्चिदानन्दधन एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और अखिल विरव एवं विधकी घटनाएँ उसीका स्वरूप और लीला हैं।
- २-परमात्मा समय-समयपर अवतार धारणकर प्रेम-द्वारा साधुओंका और बुराद्वारा दुष्टोंका उद्धार करनेके लिये लोककल्याणार्थं आदर्श वीला करते हैं।
- ३-भगवान्की शरणागति ही उद्धारका सर्वोत्तम उपाय है। उदाहरण—विभीषण।
- ४-सत्य ही परम धर्म है, सत्यके लिये धन, प्राण, ऐश्वर्य सभीका सुखपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। उदाहरण—भीराम।
- ५-मनुष्य-जीवनका परम ध्येय परमात्माकी प्राप्ति करना है और वह भगवत्-शरणागतिपूर्वक संसारके समस्त कर्म ईश्वरार्थं त्यागवृत्तिसे फलासक्ति-शून्य होकर करनेसे सफल हो सकता है।
- ६-व्याधम-धर्मका पालन करना परम कर्त्तव्य है।
- ७-माता-पिताकी सेवा पुत्रका प्रधान धर्म है। उदाहरण—भीराम, श्रीधन्यकुमार।
- ८-छिपोंके लिये पातिव्रत परम धर्म है। उदाहरण—भीसीतामी।
- ९-पुरुषके लिये एकपत्नी-व्रतका पालन अति आवश्यक है। उदाहरण—भीराम।
- १०-भाइयोंके लिये सर्वस्व त्यागकर उन्हें सुख पहुँचाने ही चेष्टा करना परम कर्त्तव्य है। उदाहरण—भीराम, भारत, अश्वमेध, शत्रुघ्न।
- ११-धर्मोत्तम राजाके लिये प्राण देकर भी उसकी सेवा करना प्रजाका प्रधान कर्त्तव्य है। उदाहरण—(१) जनगमकके समय अयोध्याकी प्रजा। (२) अहोके युद्धमें जननी प्रजाका आत्मबलिदान।
- १२-धन्यापी अथर्वी राजाके अत्यायका कभी समर्थन न करता चाहिये। सगे भाई होनेपर भी उसके विद्वह करने सेना उचित है। उदाहरण—विरमण्य।

- १३-प्रजारक्षनके लिये प्राण-प्रिय वस्तुका भी विसर्ज कर देना राजाका प्रधान धर्म है। उदाहरण—भीरामजीका सीता-त्याग।
- १४-प्रजाहितके लिये यज्ञादि कर्मोंमें सर्वत्र दान कालना। उदाहरण—दशरथ और भीराम।
- १५-धर्मपर अत्याचार और अज्ञातिपर क्रुद्ध करनेसे बड़े-से-बड़े शक्तिशाली सम्राटका विनाश हो जाता है। उदाहरण—रावण।
- १६-मित्रके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहना तथा उसके सभी कार्य करना। उदाहरण—भीराम-सुग्रीव और भीराम-विभीषण।
- १७-निष्काम सेवा-भावसे सदा सर्वदा भगवान्के दासत्वमें लगे रहना। उदाहरण—श्रीहनुमान्जी।
- १८-सौतेके पुत्रोंपर भी प्रेम करना। उदाहरण—कौसल्या, सुमित्रा।
- १९-प्रतिज्ञा-पालनके लिये सगे भाईतकका उसके प्रति हृदयमें पूर्ण प्रेम रखते हुए भी त्याग कर देना। उदाहरण—भीरामके द्वारा अश्वमेध-त्याग।
- २०-माहाय-साधुओंका सदा दान-मानसे सम्मान करना। उदाहरण—भीराम।
- २१-अपकारके समय भगवत्पदा या सन्निहतन करना। उदाहरण—भीराम आदि भाइयोंकी बातचीत।
- २२-गुरु, माता, पिता, बड़े भाई आदिके चरणोंमें निज प्रणाम करना।
- २३-पितरोंका अत्रापूर्वक तर्पण-ब्राह्मण करना।
- २४-अत्यायका सर्वदा और शर्षपा मनिराज करना। उदाहरण—अश्वमेध।
- २५-धर्मगात्रनके लिये बड़े-से-बड़ा कर उदाहरण—भीराम, अश्वमेध, सीता, जनक।
- २६-द्विजमात्रको शिवा दीव्य चाहिये।

घोर देख रहे हैं। देवतागण पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। रामायणक  
पृष्ठ ४२३ देखिये।

श्रीराम-विलाप-पृष्ठ ४४०-लक्ष्मणके शक्ति  
खगनेपर भगवान् विज्ञाप कर रहे हैं, सुपेय वैद्य पास बैठे  
हैं। हनुमान्जी श्लोणगिरि उठाये आ रहे हैं।

श्रीकौसल्या-भरत-(रंगीन) पृष्ठ ४४२-भरत-शशुभ्र  
ननिहाजले लोटकर माता कैकेयीसे मिलनेके बाद  
कौसल्याजीसे मिलते हैं, भरतजीको सखा प्रेमी और दुखी  
जानकर माता गोदमें ले लेती हैं, दोनों माँ-बेटे रो रहे हैं  
रामायणक पृष्ठ ७७ और वा० रामायण तथा पु० रामायणमें  
देखिये।

श्रीसीताकी अग्नि-परीक्षा (रंगीन) पृष्ठ ४६०-  
सीताको लेकर अग्निदेवता जलती हुई लपटोंमेंसे प्रकट  
होकर श्रीरामको सीता समर्पित करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण  
शानन्ध और आश्रयमें निमग्न हैं, उनके मुख और शरीरपर  
अमिका प्रकाश पड़ रहा है। रामायणक पृष्ठ २० तथा  
वा० रा० ६। ११८ देखिये।

अहल्याका उद्धार-पृष्ठ ४७३, कथा प्रसिद्ध है।  
शुद्धसीरामायण-आजकायद देखिये।

श्रीसीताका-पाताल-प्रवेश-पृष्ठ २००-पृष्ठी माता  
वर्ष प्रकट होकर सीताको लेकर पातालमें प्रवेश कर रही हैं।  
श्रीराम-लक्ष्मण, मुनिगण और लव-कुश आश्रय और शोकमें  
रहे हैं। रामायणक पृष्ठ २४ देखिये।

मानस-सरोवर (रंगीन) पृष्ठ २०२-श्रीरामचरित-  
मानसके आरम्भमें गोसाईंजीने मानस-सरका बड़ा ही सुन्दर  
पथ बर्णना है। उसीके आधारपर यह सुन्दर शिवाग्रद चित्र  
गाया गया है। मानस-आलकायर्षमें यह प्रसङ्ग देखना  
हिये।

श्रीहनुमान्जीके चित्र-७  
बहा-बाहके बाद, सीता चरण बन्दन  
श्लोणगिरि खाना  
राम-गण-द्वय  
रामोदना और हृदय औरकर दिखजाना  
श्रीरामका आनोपदेश  
श्रीरामपर श्रीहनुमान्जी  
हनुमान्जीपर हनुमका बन्ध गिराना  
हनुम परिचय 'श्रीहनुमान्जीका महत्त्व' शीर्षक लेख पृष्ठ

} पृष्ठ ४८०  
} पृष्ठ ४८१

४७३ में देखिये। चित्र भेजनेके लिये भीसहस्रप्रसारक  
मण्डली शंभेरीको बनेक धन्यवाद।

माननीय कारीनरेशकी अभूतपूर्व परमसुन्दर  
रामायणके चित्र-३०

मूल चित्र रंगीन बड़े ही सुन्दर हैं, सारी रामायण  
चित्रोंसे भरी है, उन्हीं चित्रोंमेंसे ३० चित्रोंके छाया-  
चित्रोंके बजाक बनवाकर चित्र छापे गये हैं। ये चित्र  
बाबू श्रीकौसलकिशोरजी बी० ए० एल० टी० से हमें प्राप्त हुए  
हैं। इसके लिये हम माननीय महाराज कारीनरेश और  
श्रीकौसलकिशोरजीके बड़े ही कृतज्ञ हैं। चित्रोंके परिचयके  
लिये प्रत्येक चित्रके नीचे घटनाक्रमको बतवानेवाली चौपाई  
या दोहा दे दिया गया है, उसीके आसपासका पूरा चित्रथ  
प्रत्येक चित्र है, श्रीरामचरितमानसकी कथा निकाजकर मिष्ठान  
कीजिये। प्रत्येक चित्र कथाके आधारपर ही बना है।

श्रीभयोध्यापुरीके चित्र-३१

ये चित्र हमें सम्मान्य रायबहादुर भवधवासी आजा  
सीतारामजी बी० ए० और उनके सुपुत्र बाबू कौसल-  
किशोरजी बी० ए० एल० टी० की कृपासे प्राप्त हुए हैं।  
इसलिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं। चित्रोंका पूरा परिचय  
बाबूसाहब जिसकर भेज न सके। आजाजी जिसल  
'अयोध्याकी भाँकी' पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेपर प्रायः  
सब चित्रोंका ऐतिहासिक परिचय पाठकोंको मिल सकेगा।  
पुस्तक तैयार हो रही है।

श्रीजानकपुरधाम, चित्र-६  
श्रीजानकीजीका मौजला मन्दिर-४  
मन्दिर महाराजा टीकमगढ़का बनबाया हुआ  
है। कहा जाता है, महाराजने सत्रह ज्ञान  
रूपसे भ्यय किये थे, जिसमें देवदत्त हनु  
मन्दिरके निर्माणमें नव ज्ञान रूपसे तर्ज  
हूए।

} पृष्ठ ३१८

श्रीजानकीजीका सिंहासन-(श्रीशिवकी-मन्दिरके चन्द्र  
यह चाँदी-सोनेका सिंहासन है, यह भी राजा टीकम-  
गढ़ने करामग ४० हजार रुपये खर्चाकर बनवाया था। हुनर  
श्रीराम-आनकीकी सुन्दर मूर्तिवाँ विराजमान हैं।) पृष्ठ ३१८

श्रीजानकी मन्दिरके भीतर श्रीकामोदहनमन्दिरका  
पूर्वी दरवाजा-पृष्ठ ३२८  
श्रीराममन्दिरके सामनेका चतुरवेणुके पूर्वी दरवा-  
जा-पृष्ठ ३२९



घोर देख रहे हैं। देवतागण पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। रामायणक  
 पृष्ठ ४२३ देखिये।

श्रीराम-विलाप-पृष्ठ ४४०-लक्ष्मणके शक्ति  
 जगनेपर भगवान् विज्ञाप कर रहे हैं, सुषेण वैद्य पास बैठे  
 हैं। हनुमान्जी द्रोणगिरि उठाये आ रहे हैं।

श्रीकौसल्या-भरत-(रंगीन) पृष्ठ ४४२-भरत-यजुष  
 ननिहालते लौटकर माता कैकेयीसे मिलनेके बाद  
 कौसल्याजीसे मिलते हैं, भरतजीको सखा प्रेमी और दुखी  
 जानकर माता गोदमें खे लेती हैं, दोनों माँ-बेटे रो रहे हैं  
 रामायणक पृष्ठ ७० और ७० रामायण तथा तु० रामायणमें  
 देखिये।

श्रीसीताकी अग्नि-परीक्षा (रंगीन) पृष्ठ ४६०-  
 सीताको लेकर अग्निदेवता जलती हुई लपटोंमेंसे प्रकट  
 होकर श्रीरामको सीता समर्पित करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण  
 धानन्द और आश्रयमें निमग्न हैं, उनके मुख और शरीरपर  
 अमिका प्रकार पद्म रक्षा है। रामायणक पृष्ठ २० तथा  
 १० १०६। ११८ देखिये

अहल्याका उद्धार-पृष्ठ ४७३, कथा प्रसिद्ध है।  
 प्रबलीरामायण-बालकाव्य देखिये।

श्रीसीताका-पाताल-प्रवेश-पृष्ठ २००-पृथ्वी माता  
 अर्ध प्रकट होकर सीताको लेकर पातालमें प्रवेश कर रही हैं।  
 श्रीराम-लक्ष्मण, मुनिगण और जव-कुश आश्रय और शोकमें  
 पड़े रहे हैं। रामायणक पृष्ठ २४ देखिये।

मानस-सरोवर (रंगीन) पृष्ठ २०२-श्रीरामचरित-  
 मानसके आरम्भमें गोसाईंजीने मानस-सरका पद्म ही सुन्दर  
 पद्म बाँधा है। उसीके आधारपर यह सुन्दर शिष्यामय चित्र  
 बना गया है। मानस-बालकाव्यमें यह प्रसन्न देखना  
 दिये।

श्रीहनुमान्जीके चित्र-७  
 रक्षा-नाहके बाद, सीता चरण बन्दन  
 गोकुल गिरि खाना  
 लक्ष्मण-हरण  
 लक्ष्मणकी और हृदय और कर दिलखाना  
 रामका आश्रयपदेश  
 लक्ष्मणपर श्रीहनुमान्जी  
 हनुमान्जीपर हनुका वज्र गिराना  
 हनुका परिचय 'श्रीहनुमान्जीका महात्म्य' शीर्षक खोल पृष्ठ

} पृष्ठ ४८०  
 } पृष्ठ ४८१

४७३ में देखिये। चित्र भेजनेके लिये श्रीसत्रिकप्रसारक  
 मण्डली धर्मेश्वरीको अनेक धन्यवाद।

माननीय काशीनरेशकी अमृतपूर्व परमसुन्दर  
 रामायणके चित्र-३०

मूल चित्र रंगीन बड़े ही सुन्दर हैं, सारी रामायण  
 चित्रोंसे भरी है, जहाँ चित्रोंमेंसे ३० चित्रोंके छाया-  
 चित्रोंके बजाक बनवाकर चित्र छाये गये हैं। ये चित्र  
 बाबू श्रीकौसलकिशोरजी बी० ए० एल० टी० से हमें प्राप्त हुए  
 हैं। इसके लिये हम माननीय महाराज काशीनरेश और  
 श्रीकौसलकिशोरजीके बड़े ही कृतज्ञ हैं। चित्रोंके परिचयके  
 लिये प्रत्येक चित्रके नीचे घटनाक्रमको बतखानेवाली चौपाई  
 या दोहा दे दिया गया है, उसीके आधारपर पूरा परिचय  
 प्रत्येक चित्र है, श्रीरामचरितमानसकी कथा निकालकर मिष्ठान  
 कीजिये। प्रत्येक चित्र कथाके आधारपर ही बना है।

श्रीअयोध्यापुरीके चित्र-३१

ये चित्र हमें सम्मान्य शायबहादुर अय्यवासी ब्राह्म  
 सीतारामजी बी० ए० और उनके सुपुत्र बाबू कौसल-  
 किशोरजी बी० ए० एल० टी० की हयासे प्राप्त हुए हैं।  
 इसलिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं। चित्रोंका पूरा परिचय  
 बाबूबाहब जिलकर भेज न सके। बाबाजी किरिण  
 'अयोध्याकी माँकी' पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेपर बाबा  
 सब चित्रोंका ऐतिहासिक परिचय पाठकोंको मिला सकेगा।  
 पुस्तक तैयार हो रही है।

श्रीजानकपुराधाम, चित्र-६

श्रीजानकीजीका मौजसा मन्दिर-बह  
 मन्दिर महाराजा टीकमगढ़का बनवाया हुआ  
 है। कहा जाता है, महाराजने सत्रह जग  
 रुपये व्यय किये थे, जिसमें केवल हम  
 मन्दिरके निर्माणमें नव जग्य रुपये लब्ध  
 हुए।

} पृष्ठ ३२८

श्रीजानकीजीका सिंहासन-(श्रीजानकी-मन्दिरके अन्दर  
 यह चाँदी-सोनेका सिंहासन है, यह भी राजा टीकम-  
 गढ़ने अगमग १० हजार रुपये अगमकर बनवाया था। इसका  
 श्रीराम-जानकीकी सुन्दर मूर्तिवाँ चित्रात्मक है।) पृष्ठ ३२८

श्रीजानकी मन्दिरके भीतर श्रीजगमोहनमन्दिरका  
 पूर्ण दृश्य-पृष्ठ ३२८  
 श्रीराममन्दिरके सामनेका चतुर्भुजके पूर्ण दृश्य-  
 पृष्ठ ३२९



श्रीराममन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ—पृष्ठ ३२६  
श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दरय सेठ रामदासजीकी  
द्विपैलरीसे—पृष्ठ ३२६

श्रीलक्ष्मणका मन्दिरगानकी मन्दिरसे उत्तर—पृष्ठ ३२६

ये सातों चित्र श्रीरगुनग्ननप्रसादसिंहजीकी प्रेरणासे  
कपुरवासी सेठ श्रीरामदासजीकी कृपासे प्राप्त हुए हैं।  
5जीने फोटो उत्तारनेताकका खर्च अपने पाससे दिया है।  
उके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

३८ गयेरपुरके चित्र ४।

शान्तादेवीका मन्दिर—शान्ताजी भगवान् श्रीराम-  
यकी पहिले शप्यग्नको ब्याही गयी थी। पृष्ठ ३४१

श्रीगणेशपिकी समाधि—शान्ताजीके मन्दिरके  
धेम एक मन्दिर बना हुआ है, इसीको शपिकी समाधि  
ज्वाते हैं। पृष्ठ-३४१

श्रीरामके सोनेका स्थान—कहा जाता है कि वन  
ते समय यहाँ भगवान् सोये थे।

श्रीगौरीशङ्कर-पाठशाळा—यह पाठशाळा श्रीमती  
बुध्नाहन बोधाईसरिजी धानापुर स्टेटने अपने पतिकी  
प्रयत्नसिमें स्थापित की थी। पृष्ठ ३४१

यही स्थान निपादराजकी राजधानी और शप्यग्नका  
वासस्थान बतलाया जाता है। आजकल इसका नाम  
गंगरी है। कहते हैं यहाँसे श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीने  
पस वेप घर गंगा-पार किया था। ये चित्र और विवरण  
प्रेतुत महेशप्रसादजी आलिमफाजिलने कृपापूर्वक भेजा है,  
सके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

चित्रकूटके चित्र—२२

ये चित्र भी शब्देय लाजाजी और बाबू कौसलकिशोरजी-  
ने कृपासे ही मिले हैं। इनका परिचय लाजाजी लिखित  
चित्रकूटकी भाँकी'नामक पुस्तकमें शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

भरद्वाज आश्रम (प्रयाग)—रा० ब० लाजा सीता-  
मजी द्वारा प्राप्त। पृष्ठ-३७७

नासिक पञ्चवटी, चित्र—८

नासिक गोदावरी दरय १, नासिक  
गोदावरी दरय २, छाषका-नाजा, पञ्चवटीमें  
श्रीराममन्दिर (यही प्रधान मन्दिर है)

गोदावरीपर गारोशङ्करका मन्दिर,  
शप्यग्नके मन्दिर (बाहरी दरय) यह  
प्रसिद्ध पीठ गोदावरीसे १२ मील दूर है।  
गोदावरीका पुत्र  
रामकृष्ण और गंगामन्दिर—इसी कुण्डमें स्नान  
किया जाता है।

इन आठ चित्रोंमें तीन बाबू कौसलकिशोरजीकी  
कृपासे और शेष बाबू 'सुमुचु'-सम्पादक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र  
पांगारकर की० ए० की कृपासे मिले हैं। एतदर्थ धन्यवाद!

सेतुबन्ध रामेश्वरम्-चित्र—६

इन दूः चित्रोंमें तीन बाबू धर्मचन्द्र खेमका रंगून  
प्रवासीसे और शेष बाबू कौसलकिशोरजीसे मिले हैं। इस  
कृपाके लिये धन्यवाद।

श्रीकाशीके चित्र—८।

प्रह्लादघाट, पं० गंगारामजी जोशीका घर। } पृष्ठ ३७१  
पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी दरय। }

गोस्वामीजी पहलेपहल कारीमें प्रह्लादघाटपर  
भारबाही पुष्करणा ब्राह्मण पं० गंगारामजी जोशीके घर  
रहते थे, जोशीजीसे आपका बड़ा प्रेम था। जोशीजीके  
पास जहाँगीर बादशाहका बनवाया हुआ गोस्वामीजीका  
एक चित्र था जो अब उनके उत्तराधिकारी पं० रघुदेवदास-  
जी ब्यासके पास है। ब्यासजीने प्रयत्न करके गोस्वामीजीकी  
एक मूर्ति बनवाकर स्थापन कर दी है।

विनयपत्रिका लिखनेका स्थान। } पृष्ठ ३७१  
मुजलीघाट।

श्रीहनुमान्जीका मन्दिर। } पृष्ठ ३७०  
गोस्वामीजीका चित्र।  
संकटमोचनका भीतरी दरय।  
संकटमोचनका बाहरी दरय।

संकटमोचन हनुमान्जीकी स्थापना गुसाईंजीने की थी।  
ये चित्र हिन्दू सृष्टिके देहमातर पं० रामनाथपट्टी  
मिश्र की० ए० की प्रेरणासे उनके विद्यार्थी श्रीदेवनाथपट्टीने  
बड़े परिश्रमसे उत्तरवाकर दिये हैं, एतदर्थ दोनों सत्रोंको  
धनेक धन्यवाद!



कल्याण

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० ५



श्रीरामकी जनकपुर यात्रा (मानचित्रकार श्री पी०एच० पंडे)

## जमा-याचना



गवान् भीरामका चरित्र लोक-परलोकमें नित्य परम कहयाथकारी है। इससे इहलौकिक मनवान्निष्ठ सुख और परम भानन्दस्वरूप श्रेयकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। साक्षात् सच्चिदानन्दधन परमात्माके धराभाममें मानवादि रूपोंमें अवतीर्थ होकर विविध लीलाएँ करनेका एक प्रधान कारण यह भी है कि मनुष्य उन लीलाओंको गाकर, उन्हें पढ़-सुनकर, उनका अनुकरणकर अविद्याकी भनादि प्रणियोंसे मुक्त हो जाय और विश्वमय केवल एक भगवान्के ही दर्शनकर तद्रूपताको प्राप्त हो जाय। कलियुगी जीवोंके लिये तो दुःखोंसे छूटनेका प्रधान साधन भगवान्के गुणोंका गान करना ही है। गोस्वामीजीके अनुभवके वचन हैं—

कलियुग-सम युग आन भईहें जो नर कर विस्वास ।

याद राम-गुन-अन विमल प्रद तद विनुहि प्रवास ॥

भारतवर्षमें जालों वर्षोंसे इस काव्यरूपमें प्रकाशित सधे इतिहास रामायणका इतना प्रचार और धादर इसी पारमार्थिक दृष्टिसे है। इतिहास और काव्यतो बहुत-से हैं, पर उनके कथन-श्रवणके प्रभावसे जन्म-मृत्युका चक्र नहीं छूटता, अविद्याकी फाँसी नहीं टूटती; किन्तु श्रीराम और श्रीकृष्णके चरित्रोंसे पूर्ण शुष्य-मन्य रामायण, महाभारत और भागवत आदिमें यह विशेषता है। इनके कथन-श्रवणसे पुरय-जाम होता है, लौकिक कामनाएँ सिद्ध होती हैं, सदाचारकी छुट्टि होती है, दैवी-सम्पत्तिके गुणोंका विकास होता है और कैवल्य मोक्ष तथा परमात्माके धनन्य और विशुद्ध प्रेमलक्षकी प्राप्ति हो जाती है। इसी विधासके कारण हिन्दूजाति इन ग्रन्थोंको पूजती है और इसी विधाससे कल्याण-समाजकोंका भी यह छद्म प्रवास है।

हम सबके भाषोंका धादर करते हुए तथा सर्वेवादी, सर्वोप्या, विधरूप परमात्माके एवं वषायोग्य बुद्धिकी विद्याबताके भाते सबको एय और वगुदीय मानते हुए नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहते हैं कि हम श्रीराम और श्रीकृष्णको साक्षात् पूर्णमय परमात्मा मानते हैं और अस्वामिकत्वं उनके अलौकिक गुण-कर्मोंको

गाने और सुननेमें ही अपना परम शोभाग्य समझते हैं। अपनी लौकिक और विषय-विमोहित अनिश्रयामिक शुष्क बुद्धिके द्वारा भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंकी समाजोचना करने और उनके उचितानुष्ठितकी मीमांसा करनेका हम अपना अधिकार नहीं समझते।

किसी भी वहाने भगवान्की लीलाओंका स्मरण और उनका गुण-गान होना हमजोगोंके लिये परम कल्याणमय है, इसी निश्चयसे रामायणाङ्क प्रकाशित करनेका प्रयास किया गया है। हम इस बातको रज समझते हैं कि रामायणाङ्कके सम्पादनकी योग्यता हममें नहीं है। न तो साम्यन्तरिक रहस्य समझनेके लिये हृदयमें श्रीरामकी भक्ति ही है और न वाद्य परीचयके लिये विद्या ही है, इसीसे मनमें कई बार स्फुरत्या होनेपर भी पूरा साहस नहीं होता था। इसके अतिरिक्त चित्र भी अनेक भाये। हम कार्यमें प्रधान सहायक थावा रायवदासजीको सरकारने मेहमान बना लिया, एक दूसरे सहायक भी सत्याग्रह-संग्राममें बजे गये, एक निपुण चित्रकार ठीक समयपर बीमार पड़ गये, ब्लाक बनानेवाले और चित्र छापनेवाले कारीगर भी बीमार हो गये, एक बड़ी मशीन टूट गयी और मनमें भी अनेक प्रकारकी तरंगें उठीं, परन्तु 'ठेरे मन कतु भोर है करताके कतु भोर।' श्रीरामको यह कार्य काना अभीष्ट था, इसीसे हो गया। हम जब अपनी ओर देखते हैं जो हमें निरसंकोष यह सत्य मुक्तदृष्टने स्वीकार करना पड़ता है कि हमारी शक्ति, हमारी योग्यता, हमारी इच्छा और हमारी लगनके बलपर रामायणाङ्क नहीं निकलता है। श्रीरामने प्रेरणा की, कृपातु और प्रेमी मित्रोंने कृपाकर बाँधकर उत्साह दिखाया, लेखक महोदयोंने कृपापूर्वक लेख भेजे, सुयोग्य चित्रकार मिल गये, तीनोंके चित्र-संग्रहमें सम्मान्य रायवदासजी थावा सीतारामजी बी० ए० तथा आरके सुपुत्र जाजा कौसलकिशोरजी बी० ए० एच० टी०, सुपुत्र-सम्पादक श्रीकृष्णमय रामचन्द्र पाण्डरकर बी० ए०, चौथी धीतयुनन्कनप्रभाईसिंहजी, कीपुत्र महेन्द्रराजजी को० दि० वि० विद्याबज्ज, ए० रामनारायणजी मिश्र बी० ए०, दीपकदिगम्बरजी शरीर, मेड रामदासजी, की०जी०चन्द्रजी शेरवत, ए० भगवदासजी अयोध्या आदिने सहायता प्राप्त हुई, ब्लाक बनाने और चित्रादि प्रकाशक भेदरेमें श्रीवर्मासाहाजीने



## हे राम !

सवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव-भीर ।

प्राहि प्राहि आरतिहरन, सरनसुखद रघुबीर ॥

हे शरणागतवत्सल राम ! हे दीनों और पतितोंके आश्रयदाता लोकाभिराम ! हे अपने आचरणोंसे लोकमर्यादाकी स्थापना करनेवाले सर्वाधार राम ! हम तुम्हारी शरण हैं ! प्रभो ! रक्षा करो, रक्षा करो ! हम अज्ञान हैं, तुम्हारी 'शिव-विरंचि-मोहिनी' मायामें फँस रहे हैं, हमें कर्तव्याकर्तव्यका पता नहीं है, इसीसे तुम्हें छोड़कर विषयोंके अनुरागी बन रहे हैं । नाथ ! अपनी सहज दयासे हमारी रक्षा करो । एक बार जो शरण होकर यह कह देता है कि मैं तुम्हारी शरण हूँ तुम उसको अभय कर देते हो, यह तुम्हारा प्रण है, सचमुच प्रभो ! हम तुम्हारी शरण नहीं हुए ! नहीं तो तुम्हारे प्रणके अनुसार अवतक अभय-पद पा गये होते । परन्तु नाथ ! यह भी तो तुम्हारे ही हाथ है । हम दीन, पतित, मार्ग-भ्रष्ट और निर्बल हैं, और तुम दीनवन्धु, पतित-पावन, पथप्रदर्शक और निर्बलके पल हो ! अब हम कहाँ जायँ, तुम्हारे सिवा हम-सरीखे पामर गरीब दीनोंको कौन आश्रय देगा ? अपनी ओर देखकर ही अब तो हमें खींचकर अपने चारु चरणोंमें डाल दो । प्रभो ! हमें मोक्ष नहीं चाहिये, तुम्हारा कोई धाम नहीं चाहिये, स्वर्ग या मर्त्यलोकमें कोई नाम नहीं चाहिये । हमें तो बस, तुम अपनी चरणरजमें लोट-लोटकर बेमुध होनेवाले पागल बना दो, अपने प्रेममें ऐसे मतवाले कर दो, कि लोक-परलोककी कोई मुधि ही न रहे, आँखोंपर सदा 'पावर-श्रद्धु' ही छापी रहे और तुम उस जलधारासे सदा अपने चरणकमल परखरवाने रहो । प्रभो ! यह दिन कब होगा जब—

नयनं गलदधुधारया, वदनं गद्गदद्वया गिरा ।

पुलकैर्निचितं वपुः कदा, तत्र नामपहणे भक्तिभ्यनि ॥

—तुम्हारा नाम लेते ही नेत्रोंमें आनन्दके आँसुओंकी धारा

होकर वाणी रुक जायगी और ममरत शरीर रोमाञ्चित

हमजोगोंके उखाड़ने सहते हुए भी बची मरुद की। इस प्रकार सारा सामान छुट गया। यद्यपि यह सारा कार्य श्रीरामकी प्रेरणासे ही हुआ थायदि हमें तो इन कृपालु राजनोंका कृतज्ञ होना ही चाहिये। चित्र-संग्रहमें साक्षात् सीतारामकी और बापू श्रीसलकितोरजीने जिस परिभ्रमके साथ सहायता की है उसके जिये तो हम उनके बच्चे ही कृतज्ञ हैं। अयोध्या, चित्रदूत, प्रयाग और काशी रामायणके सभी चित्र आपसे ही प्राप्त हुए हैं।

इसके सिवा खेसादिके संग्रहमें तथा अन्यन्य प्रकारसे अनेक राजनोंने सहायता की है, जिनमें निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं अतएव हम उन सभी राजनोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं—

पं० श्रीजनशङ्करजी पाण्डिक एम० ए०, श्रीरङ्गनाथ रामचन्द्र दिवाकर एम० ए० एल०एल० बी०, श्री वी० एच० घरे एम० ए०, एल०एल० बी०, रायसाहब बापू रयामसुन्दरदासजी बी० ए०, श्रीराजशरणाशरण देवर बी० ए० बी० एल०, श्रीजनकसुताशरण श्रीउज्जवाहायजी बी०ए०एल०एल० बी० सम्पादक 'मानसपीयूष', साहित्यरत्न पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी, श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री एम० ए० पी०एच० बी०, स्वामी अखण्डानन्दजी, श्रीसुत रामचन्द्रकृष्ण कामट, सङ्गतिप्रचारक मयदली-अग्नेरी, श्री टी० बी० कृष्णस्वामीराम सम्पादक 'मधुमुनिदास', श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी सम्पादक 'विद्याज-भारत', श्रीगीरीशङ्करजी गोयलका, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्व सम्पादक 'श्रीकृष्ण-सन्देश', महात्मा बाबकरामजी विनायक कनकमवन अयोध्या आदि आदि।

रामायणोंके जिये हिन्दीके इतिहास मराठी, गुजराती, बंगला और अंग्रेजीमें भी बहुत-से लेख भाये थे जो अनुवाद करके प्रकाशित किये गये हैं। लेखकोंमें युक्तप्रान्त, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्णाटक, मद्रास, पंजाब, राजपूताना आदि विभिन्न प्रान्तीय विद्वानोंके सिवा हंगलैयकके भी कुछ विद्वान् हैं। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी हैं। इससे रामायणकी लोकप्रियताकी भी पता लगता है।

हम अपने कृपालु लेखकों और कवियोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए नुतियोंके जिये उनसे हाथ जोड़कर धन्या-वाचना करते हैं। कई लेखोंमें स्थानाभाव और अन्यन्य कारणोंसे काट-छाँट की गयी है, कई अपूर्ण छपे

हैं, कुछका केवल अंशमान ही छपा है और कुछ लेख ऐसे आनेके कारण तथा स्थानाभावमें इतना रहनेपर भी विकृत नहीं छप सके हैं। गन बार 'गीतांक' बहुत बढ़ा हो गया था जिसके कारण छाटा भी रहा और कुछ निष्ठिष्ट मित्रोंने इस बार आकार कुछ छोटा करनेके जिये अनुरोध भी किया था, इससे रामायणोंके खगमग ४०० पृष्ठका निकालनेका विचार किया गया था परन्तु लेख इतने अधिक आ गये कि निवृत्त होकर आकार बढ़ाना पड़ा—तिसर भी सैकड़ों लेख रह गये। लेख न छाप सकनेके कारणके जिये लेखक महोदय क्षमा करें, स्वीकृत लेख आगामी अंकोंमें छापनेका विचार है।

रामायणोंकी सूचना छापकर विभिन्न भाषाओंके देशी एवं बिदेशी सहयोगियोंके जो कृपा की है उसके जिये हम उनके श्यथी हैं।

इस अंकके जिये जितने विषय सोचे गये थे उनमेंसे बहुत-से रह गये हैं। ऐसे-ऐसे कई अंक हों तो रामायणके सब विषयोंपर कुछ कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। यह अंक तो श्रीरामकी कृपासे बैसा कुछ बन सका है आपजोगोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है, कैसा हुआ है, इसका निर्यय आप ही करें। हम-सरीसे विद्या और कलाहीन भवप-बुद्धि व्यक्तियोंका सम्पादकके दासनपर बैठना पाँच सवारोंमें शामिल होनेके समान हास्यास्पद ही है और वास्तवमें बड़े संकोचका विषय है, किन्तु बर्कोंकी आज्ञा और मित्रोंके प्रेमसे यह निर्लज्जता स्वीकार करनी पड़ी है। गुरुजन, महात्मा, ज्ञानी, भगवधेमी, रामायणके मार्मिक चिद्वान् और चिद्वान् सम्पादकगण इस घटताके जिये क्षमा करें।

हे राम! अन्तमें तेरे पतितपावन घरयोंमें यह विनीत प्रार्थना है कि इस अंकमें अनेक जगह प्रमादवश तेरी अवज्ञा हुई होगी, तू दयालु है अपनी ओर देखकर क्षमा कर। तेरी कृपासे इसी बहाने तेरे कुछ नाम आ गये हैं और तेरी जीजाएँ पढ़ने-समझनेका किञ्चित् सीमान्त सिद्धा है। यह सब तेरी ही कृपा, इच्छा और प्रेरणासे हुआ है। सब तेरी चीज तेरे ही हाथ परबर्कों

कर तू ऐसा बना  
घरय  
क्रियाएँ

## हे राम !

सवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव-भीर ।

नाहि नाहि आरतिहरन, सरनसुखद रघुबीर ॥

हे शरणागतवत्सल राम ! हे दीनों और पतितोंके आश्रयदाता लोकाभिराम ! हे अपने आचरणोंसे लोकमर्यादाकी स्थापना करनेवाले सर्वाधार राम ! हम तुम्हारी शरण हैं ! प्रभो ! रक्षा करो, रक्षा करो ! हम अज्ञान हैं, तुम्हारी 'शिव-विरांचि-मोहिनी' मायामें फँस रहे हैं, हमें कर्तव्याकर्तव्यका पता नहीं है, इसीसे तुम्हें छोड़कर विषयोंके अनुरागी बन रहे हैं । नाथ ! अपनी सहज दयासे हमारी रक्षा करो । एक बार जो शरण होकर यह कह देता है कि मैं तुम्हारी शरण हूँ तुम उसको अमय कर देते हो, यह तुम्हारा प्रण है, सचमुच प्रभो ! हम तुम्हारी शरण नहीं हुए ! नहीं तो तुम्हारे प्रणके अनुसार अवतक अमय-पद पा गये होते । परन्तु नाथ ! यह भी तो तुम्हारे ही हाथ है । हम दीन, पतित, मार्ग-भ्रष्ट और निर्बल हैं, और तुम दीनबन्धु, पतित-पावन, पथप्रदर्शक और निर्बलके बल हो ! अब हम कहाँ जायँ, तुम्हारे सिवा हम-सरीखे पामर गरीब दीनोंको कौन आश्रय देगा ? अपनी ओर देखकर ही अब तो हमें खींचकर अपने चारु चरणोंमें डाल दो । प्रभो ! हमें मोघ नहीं चाहिये, तुम्हारा कोई धाम नहीं चाहिये, स्वर्ग या मर्त्यलोकमें कोई नाम नहीं चाहिये । हमें तो बस, तुम अपनी चरणरजमें लोट-लोटकर बेगुघ होनेवाले पागल बना दो, अपने प्रेममें ऐसे मतवाले कर दो, कि लोक-परलोककी कोई सुधि ही न रहे, आँखोंपर सदा 'पावत-श्रुतु' ही छापी रहे और तुम उस जलधारासे सदा अपने चरणकमल पाररवाने रहो । प्रभो ! वह दिन कब होगा जब—

नयनं गलदधुपारवा, वदनं गह्वरद्वया गिरा ।

पुलकैर्निचितं वपुः कदा, तव नाममहणे भविष्यति ॥

—तुम्हारा नाम लेते ही नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी धारा बहने लगेगी, गह्वर  
होकर चापी रुक जायगी और समस्त शरीर रोमाञ्चित हो जायगा ।



## श्रीरामायणकी आरती

आरति श्रीरामायणजीकी ।  
कीरति कलित ललित सियपीकी ॥ टेक ॥  
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद ,  
वाल्मीकि विज्ञान विसारद ।  
सुक सनकादि सेप अरु सारद ,  
वरनि पवनसुत कीरति नीकी ॥१॥  
संतत गावत संभु भवानी ,  
शौघट संभव मुनि विज्ञानी ।  
व्यास आदि कविपुंग वसानी ,  
काकभुसुंडि गरुडके हियकी ॥२॥  
चारुँ वेद पुराण अष्टदस ,  
वहीं साम्र सब ग्रन्थनको रस ।  
तन मन धन संतनकी सर्वस ,  
सार अंस समात रावहीकी ॥३॥  
कलिमल-हरनि विषय-रसफाकी ,  
सुभग सिंगार मुक्ति युवतीकी ।  
हरनि रोग भव मूरि अमीकी ,  
तात मात सवविधि ॥ ॥

